॥ ॐ ॥

सटीक

# श्रीदादूदयालजी की वाणी



सम्पादक—

श्रीमंगलदास स्वामी

जयपुर

प्रकाशक—

वैद्य जयरामदास स्वामी भिषगाचार्य

श्रीस्वामीलक्ष्मीरामचिकित्सालय

जयपुर

प्रथमबार १००० ॥ सम्वत् २००८ सन् १९५१ ॥ मूल्य सजिल्द ८)॥

प्रकाशक—

**वैद्य जयरामदास स्वामी भिषगाचार्य**

श्रीस्वामिलक्ष्मीरामचिकित्सालय

जयपुर

❀ ❀ ❀

## श्रीस्वामिलक्ष्मीराम ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित सन्तसाहित्य-सुमनमाला की पुस्तकें—

| | | |
|---|---|---|
| १. | श्री बखनाजी की वाणी | ॥= |
| २. | श्री गरीबदासजी की वाणी | ॥) |
| ३. | पञ्चामृत ( भीषजनजी, बालकरामजी, छीतरदासजी, खेमदासजी और वाजिन्दजी की कृतियें ) | ॥) |
| ४. | श्रीदादू जन्मलीला परची | १॥) |

पोस्टेज खर्च अलग

पुस्तक प्राप्तिस्थान—

**१. श्रीस्वामीलक्ष्मीरामचिकित्सालय**
साँगानेर दरवाजा
जयपुर ( राजस्थान )

**२. कान्हदासजी स्वामी**
आयुर्वेदाचार्य.
दादूद्वारा, पतराम दरवाजा
भिवानी ( हिसार )

❀ ❀ ❀

मुद्रक—

**केशवदास स्वामी वेदान्तशास्त्री**

मंगल प्रेस, जौहरी बाजार,

मोतीसिंह भूमिये का रास्ता

जयपुर ( राजस्थान )

* श्री: *

# प्रकाशकीय-निवेदन

*आपा मेटै हरि भजै तन मन तजै विकार ।*
*निर्वैरी सब जीव सूं दादू यहु मतसार ।।*

उस अचिन्त्य एवं अविज्ञेय शक्ति को अनन्त धन्यवाद है जिसकी प्रेरणा से आज यह कार्य अंशांश रूप में पूर्ण होकर सन्तसाहित्यसेवियों की सेवा में उपस्थित हो पाया है। परमादरणीय श्री दादूजी महाराज की वाणी के प्रति बाल्यकाल से मेरी श्रद्धा रही है, उसी श्रद्धा के कुछ प्रसून आज इस रूप में समर्पित करने में मुझे हर्ष है।

इस समाज में मेरा दीक्षा संस्कार शैशवावस्था में ही सम्पन्न हुआ। मेरे दीक्षागुरु परम पूज्य श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री कल्याणदासजी महाराज थे। आप जिला हिसार के अन्तर्गत भिवानीस्थ दादूद्वारा के अधिपति (महन्त) थे। यह स्थान परमादरणीय श्री दादूजी महाराज के शिष्य श्री [illegible] महाराज के थाम्भे में है। श्री गुरुवर्य अपने समय के ख्यातिप्राप्त आयुर्वैदिक चिकित्सा में सिद्धहस्त थे। कथाकलानिधि पण्डित स्वामी श्री हीरादासजी महाराज ने इस स्थान की प्रतिष्ठा को वृद्धिंगत किया। आप हरियाणा प्रान्त में कथा प्रवचन में असाधारण प्रतिभा रखते थे। आप दर्शन, वेदान्त, वेद के अतिरिक्त पुराणों पर बहुत अच्छा अधिकार रखते थे। आपके कई साधु एवं गृहस्थ शिष्य थे। आप एक आदर्श महात्मा थे और आपकी प्रतिष्ठा गृहस्थ व साधु समुदाय दोनों में समान थी। इस कारण यह स्थान और भी प्रतिष्ठित हुआ एवं आज भी है। यह स्थान पतराम दरवाजे के बाहर विद्यमान है।

दुर्भाग्यवश मुझे बाल्यावस्था में ही गुरुवात्सल्य से वञ्चित होना पड़ा और गुरु शुश्रूषा करने का अवसर न मिल सका। गुरुवर्य की मुझ पर महती कृपा थी। उनने वैकुण्ठप्रयाण के पूर्व यह निर्देश किया था कि उनके बाद उत्तराधिकारी इन पङ्क्तियों के लेखक को ही नियुक्त किया जावे। तदनुसार अन्य ज्येष्ठ गुरुभाइयों के होते हुए भी मुझे ही गद्दी पर बैठाया गया।

पूज्य श्री गुरुवर्य के महाप्रयाण के अनन्तर अपने गुरुसदृश श्रद्धेय स्वामी श्रीगोपालदासजी महाराज के आदेशानुसार मैं काशी चला गया और उन्हीं के संरक्षण में रहते हुए काशी में संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया। पूज्यवर्य स्वर्गीय स्वामी श्री गोपालदासजी महाराज दादू संप्रदाय के मान्य महात्माओं में से थे। आप कुम्भ के अवसर पर सदा अन्नक्षेत्र लगाया करते थे जहां हजारों की तादाद में साधु व गृहस्थ निःशुल्क भोजन प्राप्त करते थे। इसके अलावा आप दीन दुःखियों की सेवा में सदा तत्पर रहते थे। आप आयुर्वेद शास्त्र के भी पारंगत थे। आपके कई शिष्य अच्छे अच्छे स्थानों पर चिकित्सा द्वारा ख्याति प्राप्त करते रहे हैं। संस्कृत-ज्ञानार्जन के बाद आपने मुझे आयुर्वेदाध्ययन के निमित्त आयुर्वेदमार्तण्ड स्वनामधन्य वैद्यरत्न प्राणाचार्य स्वर्गीय स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज, जयपुर की सेवा में उपस्थित होने का आदेश दिया।

श्रद्धेय गुरुदेव आचार्यप्रवर श्री स्वामी लक्ष्मीरामजी महाराज आयुर्वेद मार्तण्ड के विषय में प्रकाश डालना सूर्य को दीपक-दर्शनमात्र होगा। पूज्य गुरुदेव आयुर्वेद के स्तम्भ माने जाते थे। आपको यदि युगपुरुष भी कहा जावे तो अत्युक्ति नहीं। राजस्थान में जो आयुर्वेद का स्वरूप आज दृष्टिगोचर हो रहा है उसका श्रेय श्रद्धेय गुरुदेव को ही है। आयुर्वेदसंसार में जयपुर को जो प्रतिष्ठा मिली उसका एक मात्र कारण श्रद्धेय गुरुदेव का अथक परिश्रम तथा इस शास्त्र के प्रति अनन्य श्रद्धा तथा अतुलित ज्ञान था आपके चिकित्साक्षेत्र में पदार्पण करने के पूर्व शास्त्रीय ढंग की चिकित्सापद्धति का अभाव था। आपको ही वर्तमान चिकित्सा-पद्धति का प्रवर्तक कहा जावे तो अत्युक्ति नहीं। आपने अन्य चिकित्सापद्धतियों के विद्वानों के सामने आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति का वैशिष्ट्य एवं सार्थकता सिद्ध की। ऐसे महापुरुष की सेवा का अवसर भाग्य से ही मिलता है। मुझे जो यह अवसर प्राप्त हुआ इसको भाग्य की देन मानता हूं। इस तरह मैं आयुर्वेद-अध्ययन के निमित्त सं० १९७९ में गुरुदेव की सेवा में उपस्थित हुआ।

मनुष्य जो कुछ सोचता है वह यों ही धरा रह जाता है और जो ईश्वर को मन्जूर होता है वही होकर रहता है। अध्ययनकाल के बाद मैं अपना कार्यक्षेत्र भिवानी बनाने की कल्पना कर रहा था किन्तु क्या मालूम था कि यह कल्पना ही रह जायगी। अध्ययनकाल में मेरे ३ लक्ष्य थे, १-श्रद्धेयगुरुदेव की सेवा, २-अध्ययन, ३-स्थान व्यवस्था। इस लक्ष्यत्रय प्राप्ति में जो साफल्य प्राप्त हुआ वह गुरुदेव की कृपा का फल था। गुरुदेव ने मुझे सर्वांश में अपना स्नेहभाजन बनाया और

परिणामतः अपना उत्तराधिकारी बनाकर सारा कार्य मेरे ही सुपुर्द कर दिया। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि श्रद्धेय गुरुदेव ने ऐसा करके समाज के समक्ष एक दृष्टिकोण उपस्थित किया। यही कारण था कि वंशावलि भिन्न होते हुए भी उनने मुझे ही अपना उत्तराधिकार सौंपा। भिवानी का स्थान श्री बनवारीदासजी महाराज के थाम्भे में है और जयपुर का स्थान श्री घड़सीदासजी महाराज कालाडहरा की वंशावलि में। किन्तु इसका कोई आग्रह न करते हुए गुरुदेव ने समाज के सामने स्थान रक्षा के दृष्टिकोण का एक निदर्शन उपस्थित किया। सं० १६६६ श्रावण कृष्णा अष्टमी को गुरुदेव इहलीला समाप्त करके परब्रह्म में लीन हो गये।

प्रारंभ से ही मेरी सन्तसाहित्य में अभिरुचि विशेष रही है और उसका एक मात्र कारण परमादरणीय श्री दादूजी महाराज की वचनावलियों का प्रायः अनुशीलन तथा अन्य सन्तसाहित्य का अवलोकन था। मैं स्वकीय अत्यल्प अनुभव के आधार पर इतना ही कह सकता हूं कि अबतक के जीवन में जब कभी मैं अशान्त, उद्विग्न एवं दुःखी हुआ हूं तो इस वचनावलि से मुझे पूर्ण सन्तोष प्राप्त हुआ है और अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त किया है। यह मेरे जीवन का बहुत बड़ा आधार बना हुआ है। सच्चे झूंठे का विवेक संसार की सुख समृद्धि का मूल है। ईश्वर के यहाँ झूठे के लिये कोई स्थान नहीं, तब भी दुनियाँ में सत्य का आचरण मँहगा होता है। सन्तों की ये वाणियाँ बराबर चेतावनी देरही हैं, किन्तु, फिर भी मनुष्य अन्धानुन्ध भागा जा रहा है—वह समझता है इस अन्धी दौड़ के अन्त में शान्ति प्राप्त होगी, पर—यह दौड़ तो वह दौड़ है भोले प्राणी! जो कभी समाप्त होने वाली ही नहीं। इसकी समाप्ति का साधन तो, यदि कोई खोजना चाहे, भीतर ही है, बाहर नहीं। महात्माओं और महापुरुषों की वाणियां ही इस दौड़ की समाप्ति का साधन हैं यदि उनमें आस्था रखकर उन्हें पढा और समझा जाय।

अब तक श्री दादू वाणी के कई संस्करण कई जगह से निकल चुके हैं जैसा कि संपादकीय निवेदन में उल्लेख किया है। किन्तु जिसकी मैं खोज में था वह बात इन संस्करणों में नहीं मिली। मेरी सदा से यह हार्दिक कामना रही है कि इसका एक ऐसा संस्करण निकले जो कि वेद, दर्शन, उपनिषद् आदि अन्य शास्त्रों के सिद्धांतों के साथ समन्वय रखता हो और पण्डितसमाज तथा सर्व साधारण के लिए उपयोगी हो। जिससे प्रत्येक पाठक वाणी के अनुभवों को समझने में सफल हो सके, एवं अल्पज्ञ व्यक्ति भी अनुभवगिरगुम्फित वचनों का रसास्वादन ज्ञानपूर्वक कर सके। यह कमी खटकने वाली थी।

सन्तों की वाणियां देखने में सरल, पर समझने में बड़ी गम्भीर हैं यही देख
: हमने श्री दादू वाणी का एक ऐसा संस्करण जो सर्वजनोपयोगी होने के साथ साथ
ध्ययनय क्षेत्र की वस्तु बन सके, निकालने का विचार किया था।

बर्तमान में यह कार्य दो व्यक्तियों के साध्य था। शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन करना
वामी श्री सुरजनदासजी आचार्य एम. ए. के साध्य था एवं सर्वसाधारण जनोपयोगी
विवेचन श्री स्वामी मङ्गलदासजी महाराज के। किन्तु प्रत्येक कार्य देशकालानुबन्धी
होता है। पुस्तक का अभाव निरन्तर बढता जा रहा था, इस अभाव को देखते
हुए यही उचित समझा गया कि पहले सर्वसाधारणोपयोगी संस्करण का ही प्रकाशन
किया जाए जिससे अभाव का निवारण व बढती हुई मांग की पूर्ति की जा सके।
इस कारण शास्त्रीय विवेचन के विचार को फिलहाल त्यागना पड़ा। शास्त्रीय
विवेचन धीरे धीरे तैयार किया जावे और संपन्न होने पर प्रकाशन किया जावे।
अतः उस रूप का प्रकाशन न होकर इसी रूप के प्रकाशन में सफल हुआ। इसके
लिए मैंने पूज्य श्री स्वामी मङ्गलदासजी महाराज से प्रार्थना की और उनने अन्य बहुत
कुछ कार्यों के रहते हुए भी इस कार्य को करने की स्वीकृति दे दी और शीघ्र ही इसे
किसी अंश में पूर्ण कर दिया।

मैं यह मानता हूँ कि इस संस्करण में बहुत कुछ कमियें रही हैं। मुद्रण में भी
त्रुटियां रही हैं। टीका में साखियों के नीचे दृष्टांत की साखियेंमात्र दी गई हैं जब कि
उनका संक्षेप में सारांश भी दिया जाना परमावश्यक था, किन्तु ग्रन्थकलेवर के बहुत
बढ जाने के भय से वह इस संस्करण में नहीं दिया जा सका और इस अभाव को
सहना पड़ा। यदि संभव हुआ तो दृष्टान्तों को लेकर एक पृथक् 'दृष्टान्त संग्रह' ही
संकलन करने का प्रयास किया जावेगा। तब भी हमने श्री दादूवाणी के मर्मज्ञ अध्येता
और सफल पारायणी श्री स्वामी मङ्गलदासजी महाराज द्वारा तैयार किये गये वाणी
के गहनस्थलों की व्याख्या और कठिन शब्दों के अर्थ पादटिप्पणियों के रूप में देकर
वाणी के भावों को सुलभ बनाने का यत्न किया है।

श्री 'दादू वाणी' केवल एक फिरके या समाज विशेष की ही वस्तु नहीं है, यह
तो सार्वजनिक निधि है। आत्मा के लिये अमृत सरोवर है जो चाहे, इसमें
अवगाहन कर सकता है। आत्मा संसार में एक है, आत्मजिज्ञासु कोई भी बिना
किसी आधार के भेद भाव के इस पवित्र-सागर में डुबकी लगाकर यदि उससे शक्य
हो, इसमें भरे हुए अमूल्य रत्नों का भी लाभ उठा सकता है। मनुष्य को याद रखने

की बात है कि इहलौकिक सुख-सम्पत्ति ही उसका लक्ष्य नहीं है उसे अपने गन्तव्य-स्थान के लिये भी सामान इकट्ठा करना है। यदि यह बात ध्यान में रह सकती है तो मनुष्य कभी अपने सत्य-मार्ग से विचलित नहीं हो सकता, पर प्रश्न तो यह है कि इस प्रकार का ध्यान सदैव बना कैसे रहे ? श्री स्वामी मङ्गलदासजी के कथनानुसार "संसार की धकापेल" तो एक वह शक्ति है जिसके सम्मुख खड़ा रह जाना कोई तमाशा नहीं। इस संसार के माया मोह तथा काम क्रोध के अंधड़ का प्रभाव न होने देने के लिये ही तो इस प्रकार के वीतरागियों की वाणी के किले में संरक्षण प्राप्त करने की आवश्यकता है। इस प्रकार के उच्च विचारों का पारायण आत्मा के चारों ओर एक प्रकार का पवित्र कोट खड़ा कर देता है जिसके कारण मनुष्य के षड्विध विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) रूपी शत्रु, उसपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते सन्तों की वाणी के अध्ययन के साथ ही साथ पाठक में सन्तोचित गुणों का समावेश स्वतः ही होने लगता है। 'श्री दादूजी' की वाणी में भी दादूजी के लोकातीत व्यक्तित्व का पुट है। श्री दादूजी का यह व्यक्तित्व उनकी वाणी में कुछ ऐसा घुल मिल गया है कि उनकी वाणी में प्रभाव प्रेषणीयता का ढंग अन्य सन्तों की अपेक्षा कुछ अधिक ही आ गया है। श्री दादूजी विनीत और प्रीत हैं। कबीर वाली अक्खड़ता उन्हें छू भी नहीं गई है। 'दयाल' की यह विनीत और प्रीत मनोवृत्ति ही वह विशेषता है जिसने वाणी में पाठक-हृदय को वशीभूत कर लेने की अटूट शक्ति भरदी है, और यही कारण है कि संसार के सारे झमेलों से बचाने वाले निरभिमान का दादू वाणी के अक्षर अक्षर से निर्झर सा निकलता चलता है।

मुझे आशा ही नहीं, विश्वास है, भारतीय अशान्त समाज की इस घोर आपत्ति-वेला में [illegible] वातावरण का संचार करने में इस वीतरागी की इस वाणी का यह सर्व सुलभ सुबोध संस्करण बहुत कुछ उपयोगी सिद्ध होगा।

यदि श्री दादू वाणी के प्रस्तुत प्रकाशन ने देश के आत्मकल्याण तथा समाज की शान्ति स्थापना की ओर कुछ भी सहयोग दिया तो हम अपने इस प्रयास को सफल समझते हुए आगे भी 'सन्त-साहित्य' के सर्वोपयोगी संस्करण निकालते रहने के लिये प्रयत्नशील होंगे। हमें आज यह भेंट पाठकों के हाथ रखते हुए परम हर्ष है।

मैं स्वामी श्री मङ्गलदासजी महाराज का बहुत ही आभारी हूँ जिनने वाणी-संपादन विषयक मेरी प्रार्थना को सहर्ष स्वीकृत कर मुझे अनुगृहीत किया। श्री दादू-महाविद्यालय का संचालन, राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का मंत्रित्व, सम्मेलन-पत्रिका का संपादन आदि गुरुतर कार्यों का भार आपके कन्धों पर होते हुए भी इतने

बड़े ग्रन्थ का संपादन इतनी शीघ्रता से कर सकना साधारण कार्य नहीं, अपितु प्रतिभावैशिष्ट्य का द्योतक है। आपके प्रति आभार प्रदर्शित करना शब्दगम्य नहीं। मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि वे हम लोगों के और विशेषतः मेरे तो एक पथ-प्रदर्शक के रूप में हैं।

मैं स्वामी श्री [illegible] एम. ए. [illegible] योगाचार्य प्रधान मंत्री [illegible] और [illegible] जयपुर के [illegible] किया [illegible] और [illegible] में आपने बहुत [illegible] और आशान्वित हूं कि वे निकट भविष्य में [illegible] करने में अपना पूर्ण सहयोग देंगे।

मैं स्वामी श्री [illegible] संचालक [illegible] प्रेस जयपुर का भी आभार मानता हूँ [illegible] का सारा भार अपने ऊपर लेकर [illegible] कार्य-भार को बहुत [illegible] कर दिया एवं मुद्रण में [illegible] सावधानी रखी। मुझे प्रसन्नता है कि उन्होंने इस कार्य को स्वकीय [illegible] किया है और आशा है भविष्य में भी इसी रूप में [illegible] रहेंगे। और भी जिन जिन सहयोगियों ने मुझे इसमें सहयोग प्रदान किया है उनका हृदय से धन्यवाद करता हूँ, एवं भविष्य में उनके सहयोग की कामना करता हूँ।

अन्त में पुनः मैं उस अचिन्त्य शक्ति को धन्यवाद देता हूं जिसकी प्रेरणा व अनुकम्पा से इस कार्य की यथाकथञ्चित् पूर्ति करने में सफल हुआ, एवं श्री दादूजी महाराज के शब्दों में ही विनय करता हूं।

*तन मन निर्मल आत्मा, सब काहू की होय।*<br>
*दादू विषय विकार की बात न बूझै कोय ॥*

इति शुभम्।

आयुर्वेदमार्तण्ड श्रीस्वामि लक्ष्मीराम—<br>
चिकित्सालय, जयपुर<br>
वसन्त पंचमी वि. सं. २००८।

विश्वकल्याणकामः—<br>
**वैद्य जयरामदास स्वामी**<br>
भिषगाचार्य

# निवेदन

अखिल विश्वाधार उस व्यापक अचिन्त्य शक्ति की महती अनुकम्पा से उच्च आध्यात्मिक साधक परम सन्त श्री दादूजी महाराज की अनुभव वाणी का यह संकलन उन महानुभावों के समक्ष उपस्थित किया जा रहा है जो अपने जीवन की गुत्थी को सुलझाने के लिये कुछ प्रयत्नशील हैं।

स्वामी दादूजी महाराज की वाणी के ५ प्रकाशन इससे पहिले हो चुके हैं। इसका पहिला संस्करण प्रयाग से, दूसरा संस्करण रायसाहब चन्द्रिकाप्रसाद जी त्रिपाठी द्वारा अजमेर से, तृतीय व चतुर्थ संस्करण डाक्टर दलजंगसिंहजी खांका एम० बी० जयपुर द्वारा तथा पांचवां संस्करण दादूसेवक प्रेस के संचालक जीवानन्दजी भारतभिक्षु द्वारा जयपुर से प्रकाशित हुआ है।

इन पांच संस्करणों में प्रयाग तथा जयपुर के दो संस्करण केवल मूल-मात्र के हैं। रायसाहब चन्द्रिकाप्रसादजी ने अपने संस्करण में पर्याप्त श्रम किया। पाठ-शुद्धि, कठिन शब्दों के अर्थ तथा कठिन साखियों के भावार्थ देकर उनने इस को पर्याप्त उपयोगी बनाया। भारतभिक्षु जीवानन्दजी ने जो वाणी का संस्करण निकाला है वह सटीक है। उनने भी इस संस्करण को उत्तम बनाने का उचित प्रयास किया है तथा उनका प्रयास भी पर्याप्त सफल हुआ है।

सटीक वाणी के पांचवे संस्करण के तीन खंड और मूल्य है पन्द्रह रुपये। प्रत्येक जिज्ञासु के लिये इस संस्करण का लेना साध्य नहीं है। मूल पुस्तक का अभाव हो गया है। इस अभाव की निवृत्ति के विचार से ही यह छठा संस्करण निकाला गया है।

दादूजी महाराज की वाणी की ओर मेरी सम्वत् १९७७ से, जबकि श्रीदादूमहाविद्यालय की स्थापना हुई, प्रवृत्ति है। मैंने तभी से उसके समझने का प्रयास प्रारम्भ किया था।

विद्यालय के छात्रों को वाणी का प्रवचन सुनाने के लिये तात्कालिक वाणी के ज्ञाता जो जो मण्डलीश्वर थे वे सभी क्रमशः विद्यालय में आगे

और उनने अपनी-२ विशेषताओं के साथ वाणी का छात्रों को उपदेश दिया। उस समय मैं भी उसका श्रोता था।

मेरी स्वाभाविक निष्ठा वाणी में इसलिये अधिक थी कि महाराज दादूजी ने अपनी अनुभूति को बिना अपर विचारकों की कठोर समालोचना के सहज स्वभाव से व्यक्त किया था।

उनका प्रत्येक वाक्य व प्रत्येक शब्द शान्त तथा निर्मल है। प्रेम और श्रद्धा से सराबोर उनके शब्द प्रत्येक जिज्ञासु के अन्तःकरण को स्पर्श किये बिना नहीं रहते। दादूजी महाराज ने अपनी भावनाओं को हिन्दी, गुजराती, पंजाबी, मराठी तथा फारसी भाषाओं में व्यक्त किया है। इससे सम्पूर्ण वाणी के अर्थ को ठीक से समझना शक्य नहीं है। फिर विषय है आध्यात्मिक। उसकी दुरूहता भी साधारण जिज्ञासु की बुद्धि के लिये बाधक है।

मैंने कई महात्माओं के मुख से वाणी सुनी पर फिर भी अनेक स्थल मेरे लिये अबूझ पहेली ही रहे। ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री चेतनदेवजी महाराज उस समय के वाणी-विज्ञों में प्रमुख थे।

मैंने उनसे प्रार्थना की और उनने मेरी प्रार्थना स्वीकार की। सम्वत् १९९६ में उनने जयपुर पधार विद्यालय में ठहर वाणी का प्रथमवार प्रवचन किया। किन्तु स्वर्गीय पूज्यचरण श्री स्वामी लक्ष्मीरामजी महाराज के अस्वस्थ होने के कारण मैं उस समय प्रवचन को यथावत् पूरा न सुन सका। माननीय श्रीचेतनदेवजी महाराज ने दुबारा पुनः अनुकम्पा की और मैंने उनसे वाणी का अक्षरार्थ यथाशक्य सुना। इस द्वितीयावृत्ति में मैंने विशेषस्थलों के नोट भी ले लिये थे।

इसके पश्चात् मेरा यह संकल्प हुआ कि वाणी का एक उत्तम संस्करण प्रकाशित हो सके तो अत्युत्तम है। स्वर्गीय स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज के उत्तराधिकारी स्वामी श्री जयरामदासजी भिषगाचार्य भी मेरे इस विचार से सहमत थे।

इस संस्करण का संकलनकर्त्ता कौन हो? मै स्वयं इस योग्य हूं नहीं कि वाणी के निगूढ आध्यात्मिक भावों को, जिनका सम्बन्ध संस्कृत वाङ्मय के उपनिषद् तथा दार्शनिक सिद्धान्तों से अत्यधिक है, स्पष्टतया व्यक्त कर सकूं।

श्री स्वामी सुरजनदासजी व्याकरण—वेदान्त—साहित्य—सांख्ययोगाचार्य, एम० ए० इस कार्य के उचित अधिकारी थे। उनने अपनी स्वीकृति भी दे दी थी।

मूल वाणी के अभाव से महात्मा तथा अन्य सद्गृहस्थ बार बार वाणी के प्रकाशन की मांग कर रहे थे। स्वामी सुरजनदासजी का सम्पादन-कार्य समय-सापेक्ष था। स्वामी श्री जयरामदासजी महाराज ने पुस्तक की अप्राप्ति का परिहार करने के विचार से मूल संस्करण निकालने का निश्चय किया।

उनने मुझे निर्देश दिया कि तुम्हारे पास जो सामग्री है उसका उपयोग भी होजाय तथा मूल संस्करण का प्रकाशन हो जाय तो अत्युत्तम हो। मंगल प्रेस के संचालक स्वामी केशवदासजी वेदान्तशास्त्री ने मुद्रण का भार सहर्ष स्वीकार किया।

फाल्गुन शुक्ल पक्ष में नराणे का वार्षिक मेला होता है; विचार किया गया कि मेले पर यह संस्करण तैयार हो जाय तो बहुत ही ठीक रहे। मार्गशीर्ष का महीना समाप्त होने को था। कुल २॥ महीने ही मेले के शेष थे। इतने थोड़े समय में प्रेसकापी तैयार करना तथा प्रेस द्वारा मुद्रण होना कठिन समस्या प्रतीत होती थी। पर प्रेस संचालक की दृढता ने मुझे भी प्रेरित किया। मैंने मार्गशीर्ष शुक्ला ११ सम्वत् २००७ को प्रेस कापी का प्रारम्भ किया। जैसा कि प्रतीत होता था प्रेस से मुद्रण का कार्य सम्पन्न हुआ नहीं। मैं भी शीघ्रता में काम करने के कारण इस संस्करण को जैसा बनाना चाहता था, बना न सका।

शीघ्रता के कारण मूल पाठ रायसाहब चन्द्रिकाप्रसादजी के संस्करण से लिया गया। इस मूलपाठ में जो त्रुटियां उस समय की रहीं हुई थीं, वे इस संस्करण में भी रह गईं। शीघ्रता के कारण छपाई में जो उत्तमता आनी चाहिये थी वह भी नहीं आ सकी।

साखियों के भावार्थ तथा कठिन शब्दों के पर्यायों में भी यत्किंचित् न्यूनता शेष रह गई है। फिर भी जहां तक हुआ है कठिन साखियों के पूरे अर्थ तथा भाषा-भेद से प्रयुक्त शब्दों के पर्याय अधिक से अधिक दे दिये गये हैं। पाठकों की सहूलियत के विचार से शब्दार्थ तथा साखियों के अर्थ उसी पृष्ठ में दे दिये गये हैं, जिस पृष्ठ में उनका सम्बन्ध है।

साखियों का मूल अर्थ वही दिया गया है जिसकी साम्प्रदायिक मान्यता है। जैसा कि मैंने ऊपर व्यक्त किया है इस संस्करण में साखियों के अर्थ तथा कठिन शब्दों के पर्याय दिये गये हैं वे अधिकांशतः महामान्य स्वर्गीय महाराज श्री चेतनदेवजी द्वारा निर्दिष्ट हैं।

अर्थाभिव्यक्ति में अस्पष्टता या विषयप्रतिपादन में असम्बद्धता यदि कहीं रह गई है तो वह मेरी अज्ञता का परिणाम है। कहीं कहीं कुछ भूलें शीघ्रता के कारण भी रह गई हैं फिर भी मेरा जहां तक खयाल पहुंचता है यह संस्करण सामान्य जिज्ञासुओं के लिये पूर्व संस्करणों से अत्यधिक उत्तम है। वे इस संस्करण के सहारे दादूजी महाराज के अमृतोपदेश का अधिकांशतः रसास्वादन कर सकेंगे!

मानव-जीवन के उपयोग का प्रशस्त मार्ग कौनसा है इसके बारे में सन्त साधकों ने अपनी अनुभूति से जो कुछ निश्चय किया है उससे प्रत्येक मानव उनकी विमल वाणी द्वारा अधिक से अधिक लाभ उठा सकता है।

महात्माओं ने जाति व धर्म के भेदोपभेदों से बचकर सामान्य मानव-धर्म की ओर ही अपना विचार केन्द्रित किया था। इसी से उनकी मानवता ने विश्व-बन्धुत्व को व्यवहार में लाकर सिद्ध कर दिया कि मनुष्य की सच्ची मानवता वही है जिसमें किसी तरह की भेदबुद्धि का अनुबन्ध नहीं है। संपूर्ण विश्व मैं ही हूँ, इसकी यथार्थता सामान्य मानवधर्म से ही पाई जा सकती है।

संसार के अनन्त क्लेश रागद्वेषमूलक हैं। राग द्वेष का कारण भेदजन्य प्रवृत्ति है। धर्मभेद से, जातिभेद से, देशभेद से तथा वर्गभेद से जब हम विचारों में अनेक भेदमूलक संस्कार स्थिर कर लेते हैं तभी हमसे वर्गवाद की उत्पत्ति होती है।

संत साधकों ने इस प्रकार की सभी भेदक प्रवृत्तियों को अनुचित बतलाया है। उन्होंने इसी पर जोर दिया है कि निरपेक्ष मानवता का संरक्षण ही मानव का मुख्य कर्तव्य है।

इसी की पूर्ति से मनुष्य के जन्म की सार्थकता हो सकती है। अन्यथा मनुष्य सापेक्ष ही रहेगा और वह अपने भेदक संस्कारों से वर्गवाद की वृद्धि में ही अपना उपयोग कर इस अमूल्य मानवजीवन को व्यर्थ खो चलेगा।

आज के भौतिक युग में इस भेदमूलक प्रवृत्ति का बल दिनों-दिन अधिकाधिक बढ़ता जाता है। उधर विद्या और विज्ञान की महान् सफलताओं का जयघोष किया जा रहा है, इधर ईर्ष्या और द्वेष की भयंकर ज्वालायें अशेष विश्व को अपनी गोद में ले भस्मसात् करने को उद्यत हैं।

बातें शान्ति की, दुहाई अन्तर्राष्ट्रीयता की, चालें उत्कृष्ट सभ्यता की चली जा रही हैं पर उन सबमें निहित असत्य के कारण उनका प्रतिफल सर्वथा विपरीत हो रहा है।

भौतिक पदार्थों की धक्कापेल ने संसार के मानव-प्राणियों को उद्-विग्न कर दिया है। भोग की वासना ने अपना आंचल संसार पर इस तरह फैलाया है कि जिसके आवरण से बाहर जाना अतिदुष्कर हो गया है।

श्रद्धा, स्नेह, शील, सचाई, सहिष्णुता, सौहार्द ये मानव की आवश्यक गुणसम्पत्ति हैं, एकान्त: भौतिकी शिक्षा ने इन सब गुणों को बहुत तीव्र धक्का पहुंचाया है। बनावटीपन, औद्धत्य, उपेक्षा, अहंमन्यता, असत्य और अनावश्यक अहंकार ने मानव के अन्त:करण को अंधकारमय बना दिया है।

कर्ममय जगत में निष्कर्म होकर संसार की सर्वथा उपेक्षा न तो की ही गई है, न की जा सकती है। सन्त साधकों का उपदेश कर्म-विरति नहीं है। वे तो अथक कर्म का उपदेश दे रहे हैं पर वह होना चाहिये वस्तुत: मानव-कर्म। वे कर्म के नाम पर दानवता की विभीषिका के साम्राज्य को पनपाने में सहायक नहीं हो सकते। उनने जोर इसी पर दिया है कि मानव अपने मानवपन को बिसार भोगवाद के एकान्त जाल में उलझता हुआ अगत्या दानवता के विवर्द्धन में ही अपना उपयोग न करने लग जाय। उनका यह निर्देश न तो निरर्थक है न अनुपादेय।

उनकी सचाई को परखने के लिये दूर जाने की आवश्यकता नहीं। हम स्वयं अपने आपका तथा बदलते हुये संसार का चित्र विचार के उचित दर्पण में देखें तो निश्चय हो जायगा कि हम कहां से कहां आ रहे हैं! संसार किधर से हटकर किधर को द्रुतवेग से भगा जा रहा है?

यदि भौतिकवाद का यही फल हमें प्राप्त होना है तो फिर इसको महत्व को महत्व नाम से कहा जाय तो निस्सार वस्तु किसका नाम होगा?

चालीस वर्ष में दो भयानक विश्वयुद्ध हो चुके हैं । मानव की बहुमूल्य कृति का तथा स्वयं मानव का इसमें जैसा और जितना विनाश हुआ वह नगण्य नहीं है । तीसरे युद्ध की जिस द्रुत गति से तय्यारी हो रही है तथा उनमें विनाश के जैसे भयंकर साधन तलाश किये जा रहे हैं, क्या यह स्पष्टत: ही मानव को डंके की चोट चेतावनी नहीं है कि वह भौतिक उत्कर्ष की एकान्त चाहना में लग अपने को क्यों भस्मीभूत करने को उद्यत है ? इतने पर भी यदि दुहाई भौतिक भोगों ही की दी जाय तो इसे हम अपने या मानव के दुर्भाग्य के सिवाय क्या कह सकते हैं ?

सन्त-साधकों ने अपनी अनुभूति के परिपक्क विचारों से मानव को यही प्रेरणा देने का प्रबल प्रयास किया है कि वह भौतिक जगत् से आगे बढ़ आध्यात्मिक जगत के रहस्य को जाने जिससे वह अपनी मानवता को सार्थक सिद्ध कर सके ।

महाराज दादूजी की वाणी आपको यही संदेश दे रही है । आप उसका प्रतिदिन थोड़ासा भी मनन करेंगे - तो निश्चय ही मानव-जीवन की सार्थकता के लिये कुछ न कुछ प्रेरणा अवश्य मिलेगी ।

दादूजी महाराज की वाणी में क्या है ? मैंने इस बारे में कुछ नहीं लिखा है । वह आप स्वामी सुरजनदासजी आचार्य एम० ए० की गवेषणा-पूर्ण भूमिका में देखेंगे ।

दादूजी कौन थे ? इसकी जिज्ञासापूर्ति अनतिकाल में ही प्रकाशित होने वाले "दादूजी के जीवनचरित्र" से करेंगे ।

दादूजी की जीवनी का विषय स्वतंत्र विषय है तदर्थ सम्यक् प्रकाश डालने की आवश्यकता है ।

अन्त में मैं महामान्य स्वर्गीय स्वामी श्री चेतनदेवजी के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ कि जिनकी कृपा से वाणी का यह संकलन आपके सामने आया है ।

प्रकाशन का व्ययभार मान्य स्वामी श्री जयरामदासजी भिषगाचार्य ने उठाकर महती कृपा की है, जिससे वाणी के जिज्ञासुओं की आशा पूरी की गई है ।

प्रेससंचालक भी धन्यवाद के अधिक पात्र होते यदि वे इसके प्रकाशन में और भी अधिक सावधानी रखते, फिर भी उनका धन्यवाद इस श्रम के लिये भी आवश्यक है ।

भूमिका के लिये आचार्य सुरजनदासजी एम० ए० ने जो श्रम उठाया है तदर्थ मैं, प्रकाशक तथा पाठक सभी कृतज्ञ हैं ।

अन्त में मैं महात्मा दादूजी की निम्न दो साखियों के साथ अपना निवेदन समाप्त करता हूँ ।

**साँई सत सन्तोष दे, भाव भक्ति विश्वास ।**
**सिदक सबूरी सांच दे, मांगे दादू दास ॥ १ ॥**
**तन, मन, निर्मल, आत्मा, सब काहू की होय ।**
**दादू विषय विकार की, बात न बूझै कोय ॥ २ ॥**

सं० २००८
श्रावण कृष्णा १२ सोमवार

**मंगलदास स्वामी**
श्रीदादूमहाविद्यालय, मोतीडूंगरी
जयपुर सिटी

# भूमिका

इस महनीय आर्यावर्त में वैदिक काल से लेकर आज तक एक आदर्श संस्कृति चली आरही है। उस संस्कृति का प्रादुर्भाव व विकास इस आर्यावर्त में ही हुआ है। उस संस्कृति का नामकरण यदि किया जाय तो मानवसंस्कृति से अधिक उपयुक्त नाम उसके लिये नहीं मिल सकता। मानवसंस्कृति वही है कि जो मानव में मानवता का आधान कर उसे दानवता से बचा सके। दैवी व आसुरी सम्पत् के भेद से द्विधाविभक्त सम्पत्तियों में दैवी सम्पद् मानवता का उत्पादक व परिपोषक तत्व है और इससे विपरीत आसुरी सम्पत् दानवता का उत्पादक व परिपोषक तत्व है।

सांसारिक प्राणियों का निर्माण दोनों ही तत्वों से होता है जैसाकि भगवान् मनु ने बतलाया है—

*ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवदानवाः ॥*
*देवेभ्यश्च जगत् सर्वं, चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥*

अर्थात् सृष्ट्युत्पादक मौलिक ऋषिप्राण से पितृप्राण पैदा होते हैं, पितृप्राण से देवप्राण व दानवप्राण और देव व दानव उभयविध प्राणोंसे चराचरात्मक सकल विश्व की उत्पत्ति होती है। यही कारण है कि संसार में दोनों तत्वों की, न्यूनाधिक तारतम्य से, प्रत्येक प्राणी में उपलब्धि होती है। इसी तत्व को लक्ष्य में रखकर यह आभाणक भी लोक में प्रसिद्ध होगया है कि "गुणदोषमयं सर्गं स्रष्टा सृजति कौतुकी" अर्थात् विधाता ने संसार में सभी पदार्थों को गुण व दोष से युक्त पैदा किया है। ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिस में सर्वथा गुण का या दोष का अभाव दृष्टिगोचर होता हो। सर्वदोषाकर वस्तु में भी किसी न किसी गुण की उपलब्धि होती है, और अशेष गुणाकर वस्तु में भी कोई न कोई दोष मिल ही जाता है।

छान्दोग्योपनिषत् व बृहदारण्यकोपनिषत् में प्राणश्रेष्ठताबोधन करने वाली प्रसिद्ध आख्यायिका में भी यह स्पष्ट किया गया है कि प्राणों को छोड़कर

---

१—द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च। ततः कनीयसा एव देवा ज्यायसा असुराः।

शेष प्रत्येक इन्द्रियां देव व असुरों से आक्रान्त हैं। तात्पर्य यह है कि मानव का निर्माण भी उभयविध तत्वों से हुआ है। अब यह कार्य संस्कृति का व संस्कारों का है कि वे उसमें दैवी सम्पदाओं का आधान करके मानव को मानव बनावें और दानव होने से बचावें।

जन्म से कोई भी मनुष्य वास्तविक मानव नहीं कहलाता जब तक कि उसमें मानवता (मानवधर्म) न उत्पन्न हो। और वे मानवधर्म दैवी सम्पद्रूप ही हैं। इसीलिये मानवसृष्टि के आदिप्रवर्तक भगवान् मनुने धृति, क्षमा, अस्तेय, सत्य, शौच, इन्द्रियनिग्रह आदि दैवी सम्पद् रूप गुणों को ही मानवधर्म बतलाया है। नीतिकारों[3] ने मानव का पशु से भेद कराने वाले जिस धर्म का उल्लेख किया है वह यही भगवद्गीताप्रतिपादित व मनुस्मृति-प्रतिपादित दैवी सम्पत्स्वरूप धर्म ही है।

मानव में मानवता की आधायिका दैवीसम्पद् है और दानवता की प्रयोजिका आसुरी सम्पत् है। जिसमें जिस सम्पत् का आधिक्य व विकास होता है वह उसी शब्द से व्यवहृत होता है। इसीलिये रावण कुम्भकर्ण आदि को, उत्तम पुलस्त्यकुलोत्पन्न ब्राह्मण होते हुए भी, आसुरी सम्पत् व आसुरी कृत्यों के कारण ही दानव व दैत्य शब्द से व्यपदिष्ट किया गया है।

इस तरह मानवता की शिक्षा देने वाली मानवधर्म के सिद्धान्तों का

---

त एषु लोकेष्वस्पर्धन्त। ते ह देवा ऊचुर्हन्तासुरान्यज्ञ उद्गीथेनात्ययामेति ॥ १ ॥ ते ह वाचमूचुस्त्वं न उद्गायेति। तथेति तेभ्यो वागुदगायत्, यो वाचि भोगस्तं देवेभ्य आगायत्, यत् कल्याणं तदात्मने। ते विदुरनेन वै न उद्गात्रात्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽविध्यन्त्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं वदति स एव पाप्मा इत्यादि। बृ० उ० १ अ० ३ ब्रा०।

२—धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम् ॥ मनुस्मृति

३—आहारनिद्राभयमैथुनञ्च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ॥
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

अपने आप में समाविष्ट करने वाली भारतीय संस्कृति प्रारम्भ से रही है। भारतीयों का धर्म भी मानवता के तत्वों को अपने में समाविष्ट करने वाला है। यही कारण है कि उसमें पुरुषों की रुचिभेद से अवान्तर भेदों के होने पर भी मानवता के परिपोषक तत्वों से वह विहीन नहीं है। इसीलिये विश्व के सभी वास्तविक धर्मों का समावेश उसमें होजाता है। इसी महाशयता के कारण भारत पर विदेशियों के आक्रमण के द्वारा जितने भी विदेशी धर्म आये उन सब धर्मों को यह हमारा सनातनधर्म पचा गया तथा उदरसात् कर गया।

दूसरे शब्दों में मानवता ही वास्तविक व्यापक धर्म है। जब जब इस धर्म पर आपत्ति आती है अर्थात् समाज में या मनुष्य में मानवता के विघातक धर्मों की अभिवृद्धि होती है उस समय भगवान् को किसी न किसी विशेष रूप में अवतीर्ण होकर पुनः उसकी प्रतिष्ठापना करनी पड़ती है। यही अवतार का मूल है। इसी रहस्य का निरूपण श्रीमद्भगवद्गीता व श्रीमद्भागवत में किया गया है। गीता में जिस धर्म की रक्षा के लिये अवतार का निरूपण किया है वह यही धर्म है, अन्य धर्मविशेष नहीं। क्योंकि राम, कृष्ण, बुद्ध, जिन आदि का अवतार किसी धर्मविशेष की स्थापना के लिये नहीं था किन्तु समाज में मानवता-विरोधी तत्वों के समावेश से परित्रस्त मानवता की रक्षा के लिये ही था।

मध्यकाल में भी जब भारत पर यवनों का साम्राज्य स्थापित हुआ, उस समय समाज में पारस्परिक कलह से मानवताविरोधी तत्वों का समावेश प्रबल रूप में हुआ। उस समय परित्रस्त व विध्वस्त मानवता के संरक्षण के लिये भगवान् ने मध्यकालिक सन्तों के रूप में अवतार लिया। उनने समाज में व्याप्त आसुरी सम्पत्ति के विरुद्ध आवाज बुलन्द की, तथा दैवी सम्पत्ति के स्थापन के लिये पूर्ण प्रयास किया।

उपर्युक्त प्रकार से विलुप्त तथा भारतीय संस्कृति का पुनरुज्जीवन कर मानवधर्म की रक्षा करना तथा जनता में उसका प्रचार करना सन्तों की जगत् को सर्वप्रथम देन है।

२—सन्तों ने जो विश्वको दूसरी देन दी है कि वह है ब्रह्म व आत्माको सर्वव्यापक मानना तथा उसके द्वारा विश्वबन्धुत्व की स्थापना करना। यद्यपि इससे

पूर्व उपनिषत्काल में तथा दर्शनकाल में विशेषत: शंकराचार्य के अद्वैतवाद के समय में भी यह प्रवृत्ति बल पकड़ चुकी थी किन्तु इसके बाद सगुण भक्तियुग में, जब कि जनसाधारण के कल्याण के लिये ब्रह्म के सगुणत्व व सोपाधिकत्व की कल्पना की गई, इस प्रवृत्ति का ह्रास होगया। और ईश्वर की सीमितता ने शनै: शनै: इतना बल पकड़ा कि वह ईश्वर केवल मन्दिरों, मस्जिदों व मूर्तियों तक ही सीमित रह गया। सर्वसाधारण जनता इस बात को सर्वथा भूल गई कि मूर्ति केवल उस ईश्वर की प्राप्ति के लिये साधन या प्रतीकमात्र है। यह मन को उस ईश्वर में लगाने का एक मूर्त साधन है न कि यही ईश्वर व आत्मा है। उसने साधन को ही साध्य मानकर उसीकी रक्षा पूजा व आराधना में अपनी इति-कर्तव्यता की समाप्ति समझली, और काल्पनिक ईश्वर व उसके आवासभूत मन्दिर व मस्जिद की रक्षा के लिये ईश्वर के वास्तविक आवास प्राणियों का संहार करने लग गये। मानव अपनी मानवता को ताक में रख कर दानवता का नग्न ताण्डव करने लगा।

उस समय सन्तों ने सर्वात्मवाद के आधार पर पारस्परिक विरोध को हटाने का उपदेश या और इसके विरोध के मूलभूत संकुचित दृष्टिकोण को छोड़कर व्यापक दृष्टिकोण को अपनाने का निर्देश किया।

'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त का तथा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'आत्मैवेदं सर्वम्' इस औपनिषद सिद्धान्त का एकबार उनने पुन: प्रचार किया। उनने बतलाया कि सब प्राणियों में समान रूप से[१] उस ईश्वर की सत्ता विद्यमान है और उस ईश्वर का वास्तविक आवासस्थान जीवधारियों का देह व हृदयमन्दिर है न कि काल्पनिक मन्दिर व मस्जिद। अत: भगवान् के इन काल्पनिक निवास-

---

१—*दादू समकरि देखिये, कुञ्जर कीट समान ॥*
*दादू दुविध्या दूरि करि, तजि आपा अभिमान ॥*

२—*आप चिनावे देहुरा, तिसका करहिं जतन ॥*
*प्रत्यक्ष परमेश्वर किया, सो भानै जीव रतन ॥*
*मसीति संवारी माणु सों, तिसको करै सलाम ॥*
*ऐन आप पैदा किया, सो ढाहै मुसलमान ॥*

स्थानों की रक्षा के व्यपदेश से भगवान् के वास्तविक आवास स्थान को नष्ट करना कहां तक संगत है ? अतः प्रत्येक भगवत्प्रेमी सन्त या मानव का कर्तव्य है कि वह किसी भी प्राणी की किसी भी प्रकार से हिंसा न करे, अपितु सर्वत्र ईश्वर की व्यापक व शाश्वत सत्ता का अनुभव करता हुआ सबसे निर्वैरता का व समता का भाव रक्खे। यही सन्तों का विश्वबन्धुत्व धर्म है, जिसका प्रतिपादन दादूजी की निम्न साखियों में मिलता है।

*आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार ॥*
*दादू मूल विचारिये तो, दूजा कौन गँवार ॥*
*आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार ॥*
*निर्वैरी सब जीवसों, दादू यहु मत सार ॥*
*दादू सम करि देखिये, कुञ्जर कीट समान ॥*
*दादू दुविधा दूरि करि, तजि आपा अभिमान ॥*
*दादू सूंका सहजैं कीजिये, नीला भानै नाँहि ॥*
*काहे कौं दुख दीजिये, साहिब है सब माँहि ॥*

३—शरीर में ही ब्रह्म या ईश्वर की गवेषणा करना व उसका अनुभव करना सन्तों की तृतीय देन है। यद्यपि उपनिषदों में—

'यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह'।

मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' कठोपनिषद्

'योऽसौ सोऽहं, योऽहं सोऽसौ'

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

इत्यादि श्रुतिवाक्यों के द्वारा अधिदैवत व अध्यात्म की एकता बतलाई गई है। तथा उस व्यापक ब्रह्म व आत्मा की तथा प्रकृति में विद्यमान सभी तत्वों की सत्ता इस शरीर में बतलाई गई है। 'यथा-

---

*१—निर्वैरी सब जीव सों, सन्तजन सोई ॥*
*दादू एकै आत्मा, वैरी नहिं कोई ।'*

२—'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा, सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो, यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः" ॥ (मुण्डकोपनिषद्)
"मनोमयः प्राणशरीरनेता, प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय" ॥ ( मुण्डक )
"अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ॥ कठोपनिषद् )
"अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा, सदा जनानां हृदये संनिविष्टः" ॥ कठोपनिषद् )

साधना उनकी विशेषताओं तथा अन्य प्रवृत्तियों को जानने के लिये आधारभूत तथा उन उपदेशों, सिद्धान्तों व विचारधाराओं का संग्रहभूत उनका "अनुभववाणी" नामक ग्रन्थ है। इसका अवलोकन करने पर हमें उनकी विचारधाराओं का स्पष्ट आभास मिल जाता है।

दादूजी की अनुभव वाणी एक परिमार्जित व स्पष्ट विचारों को सरल, सरस प्राञ्जल भाषा में व्यक्त करने वाला एक ग्रन्थ है। यद्यपि यह ग्रन्थ दादूजी महाराज के दीर्घकालिक साधना व अनुभव से प्राप्त विचारधाराओं का, जिनको कि उनने समय स पर समागत जिज्ञासुओं तथा भक्तों के सामने व्यक्त किया, उनके अनुयायी शिष्यों द्वार किया हुआ संग्रहमात्र है न कि प्रथमतः सुनिश्चित विचारों को व्यवस्थित प्रणाल में व्यक्त करने के लिये प्रयासपूर्वक निर्मित ग्रन्थ। तथापि उनके शिष्यों ने उ उपदेशों व विचारधाराओं के प्रतिपादक वाक्यों का संकलन ऐसे सुन्दर क्रम से किया है जिससे यह प्रतीत नहीं होता कि यह एक सुनिश्चित व सुव्यवस्थित प्रणाली को लेकर बनाया हुआ ग्रन्थ नहीं है। इसमें भिन्नभिन्न नामों से निर्दिष्ट प्रकरणों में उसी विषय से सम्बद्ध वचनों का संग्रह है न कि दूसरे विषय के वचनों का। साथ ही उस प्रकरण में उस विषय का सर्वांगपूर्ण विवेचन है न कि अपूर्ण। मध्य मध्य में सर्वत्र उस विषय के अवान्तर प्रकरणों का भी शीर्षक रूप से विन्यास किया गया है। इतना ही नहीं, अंगों के क्रम में जो पूर्वापरभाव रक्खा गया है वह भी अपना विशेष अभिप्राय रखता है। इसका दिग्दर्शन इसी भूमिका में "रहस्यवाद" नामक प्रकरण में कर दिया गया है।

यदि सूक्ष्मदृष्टि से अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि जिस विचारधारा को कबीर ने जन्म दिया था, उसका पूर्णरूप हमें दादूजी की वाणी में ही दिखाई देता है। कबीर ने शंकर के ब्रह्मवाद व मायावाद, सूफियों के प्रेम, वैष्णवों की प्रपत्ति (अनन्यशरणागति) आदि तत्त्वों का समन्वय करके एक नई विचारधारा को जिसे निर्गुण भक्तिमार्ग व ज्ञानाश्रयी शाखा कहते हैं, जन्म दिया है। उसके उन तत्त्वों का उतना स्पष्ट व विस्तृत निरूपण हमें कबीरजी की [illegible] में नहीं अपितु दादूजी की वाणी में ही मिलता है। दादूजी की वाणी में इन सभी विषयों का बहुत ही स्पष्ट, विस्तृत व मार्मिक विवेचन उपलब्ध होता है जिसकी कि वास्तविकता इसके अध्ययन से ही मालूम की जा सकती है।

इसके अतिरिक्त दादूजी ने अपनी पृथक् साधना में जिस साधना व तथ्यों को अपनाया उनका भी स्पष्ट निरूपण हमें इसमें उपलब्ध होता है इसका निरूपण आपको इसी भूमिका में "दादूजी की साधना" नामक प्रकरण में मिलेगा। इस तरह यह एक अपूर्व व मननीय ग्रन्थ है। किन्तु परिस्थितियों के कारण तथा दादूसम्प्रदायी सन्तों की उदासीनता से इस ग्रन्थ का अभी तक साहित्यिक समाज में नहीं के बराबर प्रचार हुआ है।

खेद की बात तो यह है कि किसी भी रिसर्चस्कालर ने भी इस पर अपनी लेखनी नहीं चलाई। क्योंकि आजकल के रिसर्चस्कालर अधिक परिश्रम करना नहीं चाहते और पहिले से बने बनाये मैटर में से इधर उधर से संकलन कर और कुछ अपनी तरफ से मिलाकर रिसर्च करना पसन्द करते हैं और दादूजी की वाणी के विषय में यह संभव नहीं था, इसी काठिन्य के कारण कितनों ही ने रिसर्च के लिये दादूजी को चुनकर भी छोड़ दिया।

किन्तु मेरा यह विनम्र अनुरोध है कि साहित्य-प्रेमियों को इधर अवश्य ध्यान देना चाहिये और इस पर अनुसंधान करना चाहिये। जहां तक मेरा खयाल है इस पर किया हुआ श्रम कदापि निरर्थक सिद्ध नहीं होगा और हिन्दी भाषा के साहित्य में अच्छी श्रीवृद्धि करेगा।

इसके अतिरिक्त भी दादू सम्प्रदाय में दादूजी के अनुयायियों द्वारा बनाया हुआ प्राञ्जल, सरस व उच्च साहित्य अतिमात्रा में है और वह हिन्दी साहित्य के भिन्न भिन्न विषयों पर है जिसके प्रकाशन व अनुसन्धान से हिन्दी साहित्य के कोष की अभिवृद्धि निश्चित तौर से हो सकती है।

अस्तु, आज जब कि 'दादूजी की वाणी' का यह नवीन संस्करण प्रकाशित हुआ है इसकी भूमिका के रूप में हम 'दादूजी की वाणी' नामक उनके अपूर्व ग्रन्थ के आधार पर दादूजी के कतिपय सिद्धांतों, साधना व उनकी अन्य विचार-धाराओं का संक्षेप से सामान्य दिग्दर्शन कराने का प्रयास करेंगे जिससे पाठकों को उन विषयों की सामान्य जानकारी प्राप्त हो सके।

यह प्रयास यद्यपि बहुत अपूर्ण व त्रुटिपूर्ण रहेगा फिर भी इस तरफ प्रारम्भिक प्रयास होने से विद्वान् पाठकों को क्षम्य व स्वीकार्य होगा ऐसी आशा है।

कबीर की तरह दादू भी वेदान्तिसम्मत निर्गुण राम को मानने वाले थे बे मायारूपी राम के उपासक नहीं थे । वे अलख (इन्द्रियागोचर) आदि (सर्व जगत्कारण) अनादि जिसका कोई दूसरा कारण न हो ऐसे राम को स्वीका करने वाले थे । वे न प्रस्तर मूर्तिरूपी भगवान् को मानने वाले थे और न देवकी व कौशल्या आदि के गर्भ से पैदा होने वाले अवतारी भगवान् को । दादू का आराध्य निर्गुण, निरञ्जन, निराकार, निष्कल तथा हिन्दू मुसलमान आदि के भेद से अतीत तत्व है । उनका उपास्य निर्धर्मक है । न वह हलका है न भारी है, न उसका मोल है, न माप है, न उसकी कीमत है न लेखा है । न उसका वार तथा पार व अन्त है । उसके यथार्थ स्वरूप का कोई भी वर्णन नहीं कर सकता । सब अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार उसके स्वरूप का वर्णन करते हैं किन्तु उसके यथार्थ स्वरूप को कोई नहीं जान सकता है । वह जैसा है वैसा वह स्वयं ही जानता है दूसरा कोई नहीं । न वह जनमता है और न मरता है । न जागता है, न सोता है । सब संसार

---

१—मायारूपी राम कों सब कोई ध्यावै, अलख आदि अनादि है सो दादू गावै ॥

२—सोई देव पूजूं जे टांची नहीं घड़ियां, गर्भवास नहिं अवतरिया ॥

३—दादू अलह राम का द्वै पख थैं न्यारा, रहिता गुण आकार का सो गुरु हमारा ।

४—ऐसा राम हमारे आवै, वार पार कोई अन्त न पावै,
हलका भारी कह्या न जाय, मोल माप नहिं रह्या समाय ॥
कीमत लेखा नहीं प्रमान, सब पचि हारे साधु सुजान ॥
आगो पीछो परिमित नांहीं, केते पारिप आवहिं जाहीं ॥
आदि अन्त मधि कहै न कोइ, दादू देखे अचिरज होइ ॥

५—सबही ज्ञानी पण्डिता, सुरनर रहे उरझाई ॥
दादू गति गोविन्द की क्यों हीं लखी न जाई ॥
जैसा है तैसा नाम तुम्हारा, ज्यों है त्यौं कहि सांई ॥
ज्यों आपै जाणै आपको, तहं मेरा गमि नांहि ॥
अविगत की गति कोई न लहै, हम अपना अनुमान कहैं । इत्यादि

६—उठै न बैठे एकरस, जागत सोवे नांहि ॥
मरे न जीवे जगतगुरु, सब उपजि खपै उसमाहि ॥

उसी से पैदा होकर उसी में विलीन हो जाता है। न वह घटता है, न बढ़ता है, न वह उठता है, और न बैठता है। वह पूर्ण है, निश्चल है, एकरस है, निर्मल है, सत्य है, अविचल व स्थिर है। इस तरह दादू का उपास्य राम वेदान्तिसम्मत विशुद्ध ब्रह्म है। वेदान्ती भी ऐसा ही ब्रह्म का स्वरूप मानते हैं। जैसे—

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ॥
नित्यं सर्वगतं सूक्ष्ममादिदेवमजं विभुम् ॥
एष नित्यो महिमा ब्रह्मणोऽस्य न कर्मणा वर्धते नो कनीयान् ॥
तस्यैव स्यात्पदवित्तं विदित्वा—
यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् ॥
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥

नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः। इत्यादि किन्तु इतना होते हुए भी दादू का आराध्य सर्वसमर्थ तथा कर्ता है वह बिना किसी [illegible] के सारे संसार को क्षणमात्र में पैदा कर सकता है वह अपनी सामर्थ्य से कीड़ी को कुञ्जर, कुञ्जर को कीड़ी, मेरु को राई तथा राई को मेरु, जल को थल तथा थल को जलहर (समुद्र) धरती को अम्बर तथा अम्बर को धरती एवं दिन को रैन तथा रैन को दिन बना सकता है। उसको कोई रोक नहीं सकता। सारे जगत्‌जाल की रचना करता हुआ भी वह निर्लेप व गुणातीत ही रहता

---

*ना वहु जामे ना मरे, ना आवे गर्भवास ॥*
*दादू ऊँधे मुख नहीं, नरक कुण्ड दस मास ॥*
*कृतम नहीं सो ब्रह्म है, घटै बधै नहिं जाय ॥*
*पूरण निहचल एकरस, जगत न नाचै आय ॥*
*साँई मेरा सति है, निरंजन निराकार ॥*
*दादू विनसै देखतां झूठा सब आकार ॥*
*परब्रह्म परात्परं, सो मम देव निरंजनम् ॥*
*निराकारं निर्मलं, तस्य दादू वन्दनम् ॥*

*१—दादू कर्ता करे तो निमष में, कीड़ी कुञ्जर होई।*
*कुञ्जर तैं कीड़ा करै, मेटि सके ना कोई ॥*
*कर्ता करे तु निमष में, राई मेरु समान ॥*

है। वह सदा निहचल, एकरस, वा असंग ही रहता है। सारा संसार अन्ततो गत्वा काल के मुख में जाता है, तथा काल से भयभीत रहता है, किन्तु दादू का उपास्य राम काल का डरानेवाला तत्व है। काल स्वयं उससे डरता है। वेन्दान्तियों का ब्रह्म भी इसी प्रकार का है। वह अपनी मायाशक्ति से एकाकी ही विचित्र प्रपञ्च की रचना कर सकता है। यही रहस्य 'सर्वोपेता च तद्दर्शनात्' 'सर्वधर्मोपपत्तेश्च' इन सूत्रों के द्वारा भगवान व्यास तथा श्रीशंकर ने व्यक्त किया है। वह करता हुआ भी उदासीन व निर्लिप्त रहता हैं, इस विषय का भी प्रतिपादन भगवान् शंकर ने 'परमात्मनस्तु स्वरूपव्यपाश्रयमौदासीन्यं मायाव्यपाश्रयं च प्रवर्तकत्वम्" इस वचन के द्वारा किया है।

इस तरह यद्यपि दादू का आराध्य राम वेदान्तप्रतिपादित निरंजन ब्रह्म ही है तथापि उनने इसकी प्राप्ति के लिये उपासना ( भक्ति ) मार्ग को ही अपनाया है न कि ज्ञानमार्ग को। यद्यपि आत्मकल्याण तथा भवसागरसंतरण के लिये दोनों ही मार्ग समान रूप से उपादेय हैं जैसा कि गोस्वामी श्री तुलसीदासजी ने कहा है--

*भगतिहिं ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा, उभय हरहिं भवसम्भव खेदा॥*

और दोनों ही संसारमूल अविद्या के नाश के कारण हैं, तो भी भक्तिमार्ग सरल और ज्ञानमार्ग अति जटिल है। ज्ञानमार्ग की विषमता उपनिषदों, स्मृतियों आदि

---

*मेरु को राई करै, तो को मेटे फरमान॥*
*कर्ता करै तो निमष में, जल मांहे थल थाप॥*
*थल मांहे जलहर करै, ऐसा समर्थ आप॥*
*दादू धरती को अम्बर करे, अम्बर धरती होय॥*
*निशि अंधियारी दिन करे, दिन को रजनी सोय॥*

१—*लिपै छिपै नहीं गुण करे, गुण नहिं व्यापै कोइ॥*
*दादू निहचल एकरस, सहजै सब कुछ होइ॥*

२—*दादू सब जग कंपै काल सों, ब्रह्मा विष्णु महेश॥*
*सुरनर मुनिजन लोक सब, स्वर्ग रसातल शेष॥*
*चन्द्र सूर धर पवन जल, ब्रह्मण्ड खण्ड परवेस॥*
*सो काल डरै कर्तार थैं, जै जै तुम आदेस॥*

में स्पष्ट प्रतिपादित की है । जैसे—

"क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति" । (काठक उप०)

तुलसीदासजी ने भी—

'ज्ञानका पन्थ कृपान की धारा परत खगेश होहि नहिं वारा ॥

अति दुर्लभ कैवल्य परमपद, संत पुराण निगमागम वद ।

इत्यादि वचनों से ज्ञानमार्ग की कठिनता व दुरूहता का प्रतिपादन किया है । भक्तिमार्ग की सरलता भी शास्त्रों में स्पष्ट बतलाई गई है । जैसे—

*भगति करत बिनु जगत प्रयासा संसृतिमूल अविद्या नासा ॥*

इस भक्तिमार्ग के अपनाने से ज्ञानप्राप्य कैवल्यपद ( मुक्ति ) की स्वतः प्राप्ति हो जाती है व प्रासंगिक फल की तरह मिल जाती है । क्योंकि मुक्ति हरिभक्ति के साथ रहती है, उ[illegible] छोड़कर नहीं रह सकती । इसलिए महात्मा लोग मुक्ति की याचना न कर [illegible] याचना करते हैं । इसी बात का तुलसीदासजी ने बहुत सुन्दर शब्दों में निरूपण किया है—

राम भजत [illegible] मुकुति गुसांई, अनइच्छित आवहिं बरि आई ॥

जि[illegible] बिन जल रहि न समाई, कोटि भांति कोई करे उपाई ॥

[illegible] सुख सुन खगराई, रहि न सकहिं हरिभगति विहाई ॥

अस विचार हरि भगति सयाने, मुक्ति निरादर भगति लुभाने ॥

अर्थात् ज्ञा[illegible] म सुख अनिच्छित होते हुए भी हरिभक्ति से मिल जाता है क्योंकि जैसे [illegible] करने पर भी जल थल बिना ठहर नहीं सकता उसी प्रकार मोक्षसुख भी हरिभक्ति को छोड़कर रह नहीं सकता । इसीलिये हरिभक्त मुक्ति का निरादर [illegible] भक्ति [illegible] करते हैं ।

दादूजी ने भी शिवपुर ब्रह्मपुर इत्यादि सभी को छोड़कर भक्ति के लिये ही परमेश्वर

---

*१—भगति मांगूं बाप भगति मांगूं, मूनैं थारा नाम नो प्रेम लागो ॥*
*शिवपुर ब्रह्मपुर सर्व सौं कीजिये, अमर थावा नहिं लोक मांगों ॥*
*आप अवलम्बन ताहरा अंगनों, भक्ति सजीवनि रंग राचों ॥*
*देह नैं गेह नैं वास वैकुण्ठ तणां, इन्द्र आसन नहिं मुकति जाचों ॥*
*भगति वाहली खरी, आप अविचल हरी निर्मलो नाम रसपान भावे ॥*
*सिद्धि नै रिद्धि ने राज रूड़ो नहीं देवपद म्हारे काम न आवै ॥*

से याचना की है। इस तरह दादूजी ने भक्तिमार्ग को अपनाया है फिर भी तुलसीदासजी की तरह वे सगुण के उपासक नहीं हैं किन्तु कबीर की तरह निर्गुण निरंजन के ही उपासक हैं। वे निरंजन देव की पूजा करते हैं और उसके लिए सामान्य चन्दन पत्र आदि साधनों का उपयोग नहीं करते जैसा कि सगुण की पूजा के लिये सगुणोपासक किया करते हैं। उसका आराध्य जिस प्रकार सगुणोपासकों के आराध्य से सर्वथा भिन्न निर्गुण निराकार व निरंजन है उसी प्रकार उसकी सेवा तथा सेवा के साधन भी विलक्षण हैं। पांचों इन्द्रियां वहां पत्र हैं, तनमन रूपी वहां चन्दन है, प्रेमरूपी माला है, अनाहद नाद घण्टा है, ज्ञानरूपी दीपक है, प्राणरूप बत्ती है, सुरति या भाव ही वहां सेवा है और मनसा ही वहां मन्दिर है[1]।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि निर्गुण निरंजन निराकार की उपासना कैसे हो सकती है। क्योंकि निर्गुण अवाङ्मनसगोचर है। अतः वह मन का विषय नहीं बन सकता। उत्तर इसका सरल व सुगम है। जैसे कि अवाङ्मनसगोचर ब्रह्म ज्ञान का विषय बन सकता है वैसे ही उपासना का भी। क्योंकि उपासना की तरह अनुभव-रूप ज्ञान में भी मनोविषयता की आवश्यकता होती है। इसीलिये "मनसैवेदमाप्तव्यम्" इत्यादि श्रुतियों में शुद्ध आत्मा को व निर्गुण ब्रह्म को मनका विषय स्पष्ट बतलाया है। श्री विद्यारण्यस्वामी ने पंचदेशी[2] में, स्वामी श्री निश्चलदासजी

---

आतमा अन्तर सदा निरन्तर, ताहरी बापजी भगति दीजै ॥
कहे दादू हिवै कोड़ी दत्त आपै तुम बिना ते अम्हैं नहीं लीजै ॥

१–दादू देव निरंजन पूजिये, पाती पंच चढ़ाइ ॥
तन मन चन्दन चरचिये, सेवा सुरति लगाई ।
इहिं विधि आरती राम की कीजै आतमा अन्तर वारणा लीजै ॥
तनमन चन्दन प्रेम की माला, अनहद घण्टा दीनदयाला ॥
ज्ञान का दीपक पवन की बाती, देव निरंजन पांचों पाती ॥
आनद मंगल भाव की सेवा, मनसा मन्दिर आतम देवा । इत्यादि ॥

२—निर्गुणब्रह्मतत्त्वस्य न ह्युपास्तेरसंभवः ॥
सगुणब्रह्मणीवात्र प्रत्ययावृत्तिदर्शनात् ॥
अवाङ्मनसगम्यं तन्नोपास्यमिति चेत्तदा ॥
अवाङ्मनसगम्यस्य वेदनं न च संभवेत् ॥

ने विचारसागर में तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म की भी उपासना बतलाई है। और श्रीसुरेश्वराचार्य ने माण्डूक्य आदि उपनिषदों के आधार पर निर्गुण ब्रह्म की उपासना सिद्ध की है, जिसको प्रणवोपासना व अहं-ग्रहध्यान नाम से व्यवहृत किया है—

अपिच निर्गुण व निरञ्जन राम के सर्वधर्मातीत होने पर भी उसकी उपासना नामरूप प्रतीक के द्वारा सम्यक्तया बन सकती है। इसलिये निर्गुण ब्रह्म की भी उसके वाचक शब्द ओंकार के द्वारा उपासना उपनिषदों में बतलाई गई है। मध्यकाल के सभी सन्तों ने, चाहे वे निर्गुण निरञ्जन के उपासक हों या सगुण के, नामोपासना को प्रधानता दी है और सभी ने नाम के महत्व को सर्वोपरि माना है। महात्मा तुलसीदासजी ने भी सगुण निर्गुण भेद से ब्रह्म के दो भेद बतलाकर नाम को दोनों से उत्कृष्ट व बड़ा बतलाया है और उसमें युक्तियां भी दी हैं कि यद्यपि निर्गुण राम सर्वत्र व्यापक है फिर भी उस अव्यक्त का प्राकट्य नाम द्वारा ही होता है। इस तरह नाम निर्गुण से बड़ा है। और सगुण-रूप से कुछ परिगणित व्यक्तियों का उद्धार हुआ है, और नाम से

---

*वागाद्यगोचराकारमित्येवं यदि वेत्त्यसौ ॥*
*वागाद्यगोचराकारमित्युपासीत नो कुतः ॥*

१—*ध्यान अहंग्रहप्रनवरूप को कह्यो सुरेश्वर श्रुति अनुसार ॥*
*अच्छर प्रनव ब्रह्म मम रूप जुं यूं अनुलव निज मति गति धार ॥*

२—*ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ॥*
*सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥*

३—*अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥*
*मोरे मत बड़ नाम दुहूतें। किये जेहिं जग निज वस निज बूतें ॥*
*व्यापक ब्रह्म एक अविनासी। सत चेतन आनन्द घनरासी ॥*
*अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी ॥*
*नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ॥*

४—*सवरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ ॥*
*नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ ॥*

से याचना की है। इस तरह दादूजी ने भक्तिमार्ग को अपनाया है फिर भी तुलसीदासजी की तरह वे सगुण के उपासक नहीं हैं किन्तु कबीर की तरह निर्गुण निरंजन के ही उपासक हैं। वे निरंजन देव की पूजा करते हैं और उसके लिए सामान्य चन्दन पत्र आदि साधनों का उपयोग नहीं करते जैसा कि सगुण की पूजा के लिये सगुणोपासक किया करते हैं। उसका आराध्य जिस प्रकार सगुणोपासकों के आराध्य से सर्वथ भिन्न निर्गुण निराकार व निरजन है उसी प्रकार उसकी सेवा तथा सेवा के साधन भी विलक्षण हैं। पांचों इन्द्रियां वहां पत्र हैं, तनमन रूपी वहां चन्दन है, प्रेमरूप माला है, अनाहद नाद घण्टा है, ज्ञानरूपी दीपक है, प्राणरूप बत्ती है, सुरति या भाव ही वहां सेवा है और मनसा ही वहां मन्दिर है।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि निर्गुण निरंजन निराकार की उपासना कैसे हो सकती है। क्योंकि निर्गुण अवाङ्मनसगोचर है। अतः वह मन का विषय नहीं बन सकता। उत्तर इसका सरल व सुगम है। जैसे कि अवाङ्मनसगोचर ब्रह्म ज्ञान का विषय बन सकता है वैसे ही उपासना का भी। क्योंकि उपासना की तरह अनुभव रूप ज्ञान में भी मनोविषयता की आवश्यकता होती है। इसीलिये "मनसैवेदमा सव्यम्" इत्यादि श्रुतियों में शुद्ध आत्मा को व निर्गुण ब्रह्म को मनका विषय स्पष्ट बतलाया है। श्री विद्यारण्यस्वामी ने पंचदेशी[2] में, स्वामी श्री निश्चलदासजी

---

आत्मा अन्तर सदा निरन्तर, ताहरी बापजी भगति दीजै ॥
कहे दादू हिवै कोड़ी दत्त आपै तुम बिना ते अम्हैं नहीं लीजै ॥

१-दादू देव निरंजन पूजिये, पाती पंच चढ़ाइ ॥
तन मन चन्दन चर्चिये, सेवा सुरति लगाई।
इहिं विधि आरती राम की कीजै आत्मा अन्तर वारणा लीजै ॥
तनमन चन्दन प्रेम की माला, अनहद घण्टा दीनदयाला ॥
ज्ञान का दीपक पवन की बाती, देव निरंजन पांचों पाती ॥
आनद मंगल भाव की सेवा, मनसा मन्दिर आतम देवा। इत्यादि

२—निर्गुणब्रह्मतत्त्वस्य न ह्युपास्तेरसंभवः ॥
सगुणब्रह्मणीवात्र प्रत्ययावृत्तिदर्शनात् ॥
अवाङ्मनसगम्यं तन्नोपास्यमिति चेत्तदा ॥
अवाङ्मनसगम्यस्य वेदनं न च संभवेत् ॥

ने विचारसागर में तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म की भी उपासना बतलाई है। और श्रीसुरेश्वराचार्य ने माण्डूक्य आदि उपनिषदों के आधार पर निर्गुण ब्रह्म की उपासना सिद्ध की है, जिसको प्रणवोपासना व अहं-ग्रहध्यान नाम से व्यवहृत किया है—

अपिच निर्गुण व निरञ्जन राम के सर्वधर्मातीत होने पर भी उसकी उपासना नामरूप प्रतीक के द्वारा सम्यकतया बन सकती है। इसलिये निर्गुण ब्रह्म की भी उसके वाचक शब्द ओंकार के द्वारा उपासना उपनिषदों में बतलाई गई है। मध्यकाल के सभी सन्तों ने, चाहे वे निर्गुण निरञ्जन के उपासक हों या सगुण के, नामोपासना को प्रधानता दी है और सभी ने नाम के महत्व को सर्वोपरि माना है। महात्मा तुलसीदासजी ने भी सगुण निर्गुण भेद से ब्रह्म के दो भेद बतलाकर नाम को दोनों से उत्कृष्ट व बड़ा बतलाया है और उसमें युक्तियां भी दी हैं कि यद्यपि निर्गुण राम सर्वत्र व्यापक है फिर भी उस अव्यक्त का प्राकट्य नाम द्वारा ही होता है। इस तरह नाम निर्गुण से बड़ा है। और सगुण-रूप से कुछ परिगणित व्यक्तियों का उद्धार हुआ है, और नाम से

---

*वागाद्यगोचराकारमित्येवं यदि वेत्त्यसौ ॥*
*वागाद्यगोचराकारमित्युपासीत नो कुतः ॥*

*१—ध्यान अहंग्रह प्रनवरूप को कह्यो सुरेश्वर श्रुति अनुसार ॥*
*अच्छर प्रनव ब्रह्म मम रूप जु यूं अनुलव निज मति गति धार ॥*

*२—ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ॥*
*सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥*

*३—अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥*
*मोरे मत बड़ नाम दुहूतें। किये जेहिं जग निज बस निज बूतें ॥*
*व्यापक ब्रह्म एक अविनासी। सत चेतन आनन्द घनरासी ॥*
*अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी ॥*
*नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ॥*

*४—सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ ॥*
*नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ ॥*

अनन्त व्यक्तियों का । इसलिये यह नाम सगुन से भी बड़ा है । इस तरह नाम का प्रभाव सर्वविदित है । भागवत में भी नामकीर्तन को ही कलियुग में व्यक्तियों के उद्धार का एकमात्र कारण बतलाया है ।

दादूजी ने भी इस नामोपासना को महत्व दिया है और निर्गुण निरञ्जन राम की प्राप्ति के लिये वे नामोपासना का ही निर्देश करते हैं और सन्तों की इस विषय में साक्षी देते हैं ।

*दादू नीका नाम है सो तू हिरदै राखि ॥*
*पाखण्ड परपञ्च दूरि करि, सुनि साधूजन की साखि ॥*
*दादू नीका नाम है, आप कहें समझाइ ॥*
*और आरम्भ सब छाडि दे, राम नाम ल्यौलाइ ॥*
*दादू नीका नाम है, तीन लोक ततसार ॥*
*राति दिवस रटबो करै, रे मन इहै विचार ॥*
*दादू राम अगाध है, अविगत लखै न कोइ ॥*
*निर्गुण सगुण का कहै, नाम विलम्ब न होइ ॥*

उपर्युक्त सन्दर्भ से यह स्पष्ट होता है कि दादूजी ने निर्गुण निरञ्जन व निर्धर्मक ब्रह्म की उपासना नाम को प्रतीक मानकर की है और इस नाम के द्वारा निर्धर्मक की उपासना संभव है, अतः निर्गुण व निरञ्जन राम को उपासना का विषय मानने में किसी प्रकार की शास्त्रीय व लौकिक आपत्ति नहीं है ।

## ( २ ) रहस्यवाद

रहस्यवाद की विविध परिभाषायें लेखकों ने की हैं। आत्मा (जीव) की पर ब्रह्म विषयक संकल्पात्मक मूल अनुभूति ही काव्य में रहस्यवाद शब्द से व्यवहृत होती है । रहस्यवाद में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा प्रधानतया रहती है । और उसी जिज्ञासा से प्रेरित होकर वह उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तथा अन्त में उस

---

*१-हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ॥*
*कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥*

प्राप्त भी कर लेता है। यहां श्री रामकुमार वर्मा के अनुसार रहस्यवाद की परिभाषा मानकर तदनुसार दादूवाणी में रहस्यवाद का निरूपण किया जा रहा है।

जीवात्मा की दिव्य व अलौकिक अव्यक्त शक्ति (परमात्मा) से मिलने की व उससे मिलकर एक हो जाने तथा उस दिव्य शक्ति के अभूतपूर्व आनंद की अनुभूति प्राप्त करने की प्रवृत्ति ही रहस्यवाद शब्द से व्यवहृत होती है। क्योंकि जीवात्मा स्वयं किसी समय अपने आप में परिपूर्ण था, दिव्य, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान था, किन्तु आज वह किसी कारण से उससे पृथक् हो गया है। उससे अलग होने पर उसमें बहुत ही न्यूनतायें आ गई हैं—जैसे अल्पज्ञता, अल्पशक्तिमत्ता, अपूर्णता, मानवता, परिमितता आदि। अतः वह इन न्यूनताओं से ऊब कर फिर अपनी पुरानी परिस्थिति में जाना चाहता है और यह उसके लिये स्वाभाविक भी है। उसकी यह अपने स्वरूप से फिर मिलकर शान्त व निश्छल आनंद प्राप्त करने की प्रवृत्ति ही रहस्यवाद कहलाती है।

इस प्रवृत्ति की अधरोत्तर भेद से तीन दशायें हैं। पहिली दशा वह है जहां यह परिच्छिन्न जीवात्मा उस अव्यक्त दिव्य शक्ति से अपना सम्बन्ध जोड़ने के लिये अग्रसर होता है। इस दशा में वह सीमित व दुःखपूर्ण संसार से परे सांसारिक बन्धनों से रहित दिव्य अव्यक्त शक्ति की तरफ इशारा करता है, उसका उसे कुछ आभास मिलता है और वहीं वह जाना चाहता है। इस लोक से परे अव्यक्त ब्रह्म शक्ति के लोक में वह वहां की दिव्य विभूतियों को देखता है और उन्हें देखकर वह विस्मित सा हो जाता है। इस दशा का सुन्दर वर्णन हमें श्रीदादूवाणी में मिलता है—

*चलि दादू तहं जाइये, जहं मरै न जीवै कोइ ॥*
*आवागवन को भय नहीं, सदा एकरस होइ ॥*

*चलि दादू तहं जाइये, जहं चन्द सूर नहीं जाइ ॥*
*रात दिवस की गमि नहीं, सहजैं रह्या समाइ ॥*

*चलि दादू तहं जाइये, माया मोह थें दूरि ॥*
*सुख दुख को व्यापै नहीं, अविनासी घर पूरि ॥*

चल दादू तहं जाइये, जहा जम जोरा को नाहिं ॥
काल मीच लागे नहीं, मिलि रहिये ता माहि ॥
एक देश हम देखिया, जहा बस्ती ऊजड़ नाहि ॥
हम दादू उस देश के, सहज रूप ता माहिं ॥
एक देश हम देखिया, तहा रुति नहिं पलटे कोइ ॥
हम दादू उस देश के, जहा सदा एकरस होइ ॥

ऊपर के सन्दर्भ को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दादूजी उस देश में पहुंचना चाहते हैं जहां सांसारिक बन्धनों का कोई सम्पर्क नहीं है, किन्तु उनसे पूर्णतया मुक्त है। उस प्रदेश का उनको आभास मिल गया है। उसी लोक की दिव्य विभूतियों का उनने उपर्युक्त साखियों में वर्णन किया है।

किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि उस दिव्य शक्ति का, जिसका आभास रहस्यवादी को प्राप्त हुआ, वह उस की दिव्य विभूतियों व शक्तियों का भावरूप में वर्णन करने में असमर्थ रहता हैं, अतः वह उन विभूतियों का सांकेतिक रूप में व अन्य सांसारिक वस्तुओं के अभावबोधनरूप में ही वर्णन करता है इसीलिये दादूजी ने उस अव्यक्त शक्ति का अथवा उस लोक का- सांसारिक बन्धनों का वहां किंचित् भी सम्पर्क नहीं, इसी रूप में वर्णन किया है।

रहस्यवादकी दूसरी दशा वह है जहां वह उस अव्यक्त अज्ञात शक्तिका आभास प्राप्त कर उसे प्राप्त करने की लालसा में इतना व्यग्र होजाता है तथा उससे इतना अधिक प्रेम करता है कि उसके दर्शन व प्राप्ति बिना साधक का जीवन भी भार बन जाता है। इन्द्रियां व मन सब विषयों का परित्याग कर उसी की प्राप्ति में व्यग्र हो उठती हैं। उसके सांसारिक कार्य उस तीव्र लालसा व प्रेम की दशा में अवरुद्ध होजाते हैं। उसके रोम रोम अव्यक्तशक्ति की अप्राप्तिजन्य विरहाग्नि से जलने लग जाते हैं। और वह चातक की तरह अनन्य भावना से उसी का चिन्तन करने लग जाता है। इस उत्कट प्रेम व लालसा की दशा में उस साधक की दशा उन्मत्त की तरह होजाती है। इस दशा में उसके हृदय के विकार सब जल कर भस्म हो जाते हैं। यही विरहदशा कहलाती है। इसका वर्णन श्रीदादूजी ने बड़े ही मर्मस्पर्शी शब्दों में किया है:—

*अरे मेरे सदा संगाती रे राम कारण तेरे । टेक—*
*कन्था पहिरों भस्म लगाऊं, वैरागिन ह्वै ढूंढूं रे राम ।।*
*गिरिवर वासा रहों उदासा, चढ़ि सिर मेर पुकारों रे राम ।।*
*यहु तन जालों यहु मन गालों, करवत सीस चढ़ाऊं रे राम ॥*
*सीस उतारों तुम पर वारों, दादू बलि बलि जाऊं रे राम ॥*

*आओ राम दया करि मोरे, बार बार बलिहारी तेरे ।।*
*विरहनि आतुर पन्थ निहारै, राम राम कहि पीव पुकारै ।।*
*पन्थी बूझै मारग जोवै, नैन नीर जल भरि भरि रोवै ।।*
*निसदिन तलफै रहे उदास, आतम राम तुम्हारे पास ।।*
*वपु विसरै तन की सुधि नांहीं, दादू विरहनि मृतक मांही ।।*

रहस्यभावना की तीसरी दशा वह है जिसमें आत्मा परमात्मा के साथ सायुज्य प्राप्त कर लेता है, तथा उससे मिलकर एक हो जाता है । केवल उस परमानन्द के रस का आस्वादन करने लिये वह अपने आपको परमात्मा से पृथक् समझता है । वह वहां उससे मिलकर अभूतपूर्व ( अद्वितीय ) आनन्द का अनुभव प्राप्त करता है । उसकी लीलाओं का प्रत्यक्ष दर्शन करता है । रहस्य भावना की इस दशा का भी सुन्दर निरूपण दादूजी ने किया है जैसे:—

*राम तूं मोरा हूं तोरा पाइन परत निहोरा ।*
*एकै संगै वासा, तुम ठाकुर हम दासा ।*
*तनमन तुमको देवा, तेज पुंज हम लेवा ।*
*रस मांहै रस होइबा, जोति सरूपी जोइबा ।*
*ब्रह्म जीव का मेला, दादू नूर अकेला ।*

यहां ब्रह्म जीव का अभीष्ट मेल हो जाता है । यद्यपि इस दशा में वह उसका निरन्तर दर्शन करता है, उसके साथ रहता है, फिर भी वह उसका यथार्थ स्वरूप वर्णन करने में असमर्थ ही रहता है ।

इस दशा में साधक ब्रह्म में मग्न हो जाता है, और अगम अगोचर की लीलाओं को देखकर अमन्द आनन्द का अनुभव करता है फिर भी उन लीलाओं का तथा उस अनुभूति का वह वर्णन नहीं कर सकता, और न वह उस लीलाधारी

के स्वरूप, सामर्थ्य व गुण का बखान कर सकता है। वह केवल आश्चर्यान्वित होकर उसके स्वरूप व सामर्थ्य का दर्शन करता है तथा हार कर उसे अगम अगोचर कहकर अव्यक्त शब्दों में अपने हृदय के भावों को व्यक्त करता है। जैसे—

*मोहन माली सहज समाना, कोई जाणै साधु सुजाना।*
*काया बाड़ी माँहैं माली, तहां रास बनाया।*
*सेवक सों स्वामी खेलन कों, आप दया करि आया।*
*बाहर भीतर सर्व निरन्तर, सबमें रह्या समाई।*
*परगट गुप्त गुप्त पुनि परगट, अविगत लख्या न जाई।*
*ता माली की अकथ कहानी, कहत कहीं नहिं आवै।*
*अगम अगोचर करत आनन्दा, दादू ये जस गावै।*

वह उसके स्वरूपवर्णन में तथा उस सुख के वर्णन में अपने आपको असमर्थ पाकर हैरान हो जाता है और अपनी हैरानी का वर्णन करता हुआ यहीं कहता है कि—

*जैसा है तैसा नाम तुम्हारा, ज्यों है त्यों कहि साँई।*
*तूं आपे जाणै आपको तहं मेरी गमि नाही॥*
*देखि दिवाने ह्वै गये, दादू खरे सयान।*
*वार पार कोइ ना लहै, दादू है हैरान॥*
*एक कहूं तो दोय है, दोय कहूं तो एक।*
*यों दादू हैरान है, ज्यों है त्यों ही देख॥*
*गूंगे का गुड़ का कहूं, मन जानत है खाइ।*
*त्यों राम रसायन पीवतां, सो सुख कह्या न जाइ।*

इस तरह हमने आजकल प्रचलित रहस्यवादी भावना के अनुसार यह दिखलाने का प्रयत्न किया कि मनुष्य की यह एक सामान्य प्रवृत्ति है कि वह जिस अगम अगोचर तत्त्व से पृथक् हुआ है उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करे और वापिस उसमें मिलकर तदाकार हो जाय तथा पृथक्ताजन्य सांसारिक सब दुःखों का परित्याग कर उस असीम अनन्त शक्ति से अपना सम्बन्ध जोड़कर फिर उस वास्तविक आनंद को प्राप्त करे जो आनंद उसे पहिले प्राप्त था। वह जिस तत्त्व की प्राप्ति व सम्बन्ध की इच्छा करता है वह तत्त्व वस्तुतः अव्यक्त, अगम व अगोचर है, एवं रहस्यमय है

और अन्त में उसके प्राप्त हो जाने पर व मेल हो जाने पर भी उसका स्वरूप व उसकी सामर्थ्य मन व वाणी द्वारा वर्णनातीत होने से रहस्यमयी ही बनी रहती है अतः इसकी भावना रहस्यभावना तथा रहस्यवाद कहलाती है।

वस्तुतः सन्तों की वाणियों में आधुनिक काल में प्रचलित रहस्यवाद को तलाश करना व उसका निरूपण करना नितान्त अनुचित है। सन्तों को न तो हाल के तौर पर ईश्वर का ज्ञान हुआ है और न उनने कल्पना द्वारा ही उस अज्ञात तथ्य का निरूपण किया है, किन्तु उनने इस वस्तु का सामान्य ज्ञान प्राप्तकर उसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया, और उसकी शक्तियों का अपनी बुद्धि के अनुसार सामान्यतया निरूपण किया। इसी तथ्य को हम आगे की पंक्तियों में स्पष्ट करना चाहते हैं—

भारतीय शास्त्र में उस अज्ञात वस्तु परमात्मा की प्राप्ति के दो साधन प्रधानतया माने गये हैं १—ज्ञान, २—भक्ति। वह अज्ञात वस्तु निर्गुण निराकार इन्द्रियातीत वस्तु है। ज्ञानमार्गानुयायी ज्ञान के द्वारा उसको पहिचानने का प्रयत्न करते हैं और भक्तिमार्गानुयायी भक्ति से। ज्ञानमार्ग के अनुसार शब्द द्वारा उस वस्तु का परोक्ष ज्ञान किया जाता है कि वह निराकार निर्धर्मक तत्त्व इस तरह का है। उसके बाद युक्तियों द्वारा वह वस्तु वैसी ही हैं जैसी कि शब्द द्वारा प्रतिपादित की गई है निश्चय किया जाता है। उसके बाद उस तत्त्व का यथार्थ निश्चय कर लेने पर उपासनापरपर्याय भावना द्वारा ही उसका वह साक्षात्कार करता है और इस तरह मायारूप अविद्या का नाश करता है।

दूसरा मार्ग उस अव्यक्त को जानने का भक्ति है। ज्ञानमार्ग के अनुसार अव्यक्त को जानने की जैसे तीन स्टेजें हैं, उसी प्रकार भक्तिमार्ग के द्वारा उसका साक्षात्कार करने में अधरोत्तर भाव से ३ स्टेजें हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि ज्ञान में तत्त्वचिन्तन की प्रधानता है और भक्तिमार्ग में प्रेम की व राग की। इसीलिये भक्ति का लक्षण करते हुए नारदसूत्र में लिखा है कि ईश्वर में अत्यन्त अनुराग ही भक्ति है, 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' इति।

भक्ति की प्रथम स्टेज में श्रवण, कीर्तन, अर्चन, पादसेवन, स्मरण, वन्दन, दास्य, सख्य व आत्मनिवेदन यह नवधा भक्ति आती है। इसीको कनिष्ठा भक्ति या भक्ति की पहिली सीढ़ी कहते हैं।

भक्ति की दूसरी स्टेज प्रेमलक्षणा भक्ति है। इसी में तीव्र विरहाग्नि पैदा होती है। यही भक्ति की अवस्था गोपियों[1] की थी। इसी विरहाग्नि की ज्वाला में साधक के सब अन्त:करण के कामादि दोष जल जाते हैं, और उसमें उस अव्यक्त के जानने की क्षमता पैदा हो जाती है।

इस अवस्था में भक्त अपने शरीर की सुधबुध भूल जाता है और उसके अत्यन्त प्रेम और तज्जन्य विरह की दशा के कारण उसके व्यवहार लोकमर्यादा में सीमित नहीं रहते हैं। अत: लोग उसे उन्मत्त भी कहने लग जाते हैं। इस दशा का सुन्दर विवेचन श्रीसुन्दरदासजी ने अपने ज्ञानसमुद्र में किया है। इस दशा में उसे अन्त:करण शुद्ध हो जाने पर और वृत्ति के एकाग्र होने पर हृदयदेश में वर्तमान उस परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। यही ज्ञान है और इस तरह वह उस अव्यक्त ईश्वर को पहिचान लेता है। यह अन्तिम भक्ति की दशा ही परा भक्ति कहलाती है। इस परा भक्ति का निरूपण यतिप्रवर श्रीसुन्दरदासजी ने बहुत ही अच्छे शब्दों में किया है—

*सेव्य कों जाइ के दास ऐसे मिले। एक सो होइ पै एक ह्वै ना मिले।*
*अपनो भाव दासत्व छांड़ैं नहीं। सा परा भक्ति है भाग्य पावै कहीं।*
*हरि में हरिदास विलास करै। हरि सों कबहूं न विछोह परै।*
*हरि आश्रय त्यों हरिदास सदा। रस पीवन को यह भाव जुदा॥*

इसतरह भक्तिमार्ग के द्वारा साधक उस अज्ञात, अगम, अगोचर ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है, और भक्ति के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार अन्यत्र भी शास्त्रों में बतलाया गया है। जैसे—

*नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।*
*यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्॥ मुण्डक उप०*

---

*१—प्रेम अधीना छाक्या डोलै, क्यों की क्यों ही बानी बोलै।*
*जैसे भूली गोपी देहा, ताकों चाहे जासों नेहा।*
*२—प्रेम लग्यो परमेश्वर सों तब, भूलि गयो सिगरो घरबारा,*
*ज्यों उन्मत्त फिरै जित हीं तित, नेक रही न शरीर संभारा।*
*श्वास उसास उठें सब रोम, चलै दृग नीर अखण्डित धारा,*
*सुन्दर कौन करै नवधा विधि, छाकि पर्‌यो रस पी मतवारा॥*

*पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ॥*
*प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।*
*भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ( गीता )*

इस तरह यह स्पष्ट होजाता है कि सन्तों ने ईश्वर—साक्षात्कार के लिये भक्तिमार्ग को ही अपनाया था जो कि ज्ञान की अपेक्षा सरल व व्यावहारिक था । इसलिये सन्तों की वाणियों में अव्यक्त तत्व का जो कुछ वर्णन मिलता है वह भक्ति... है न कि रहस्यभावना या साम्प्रदायिक रहस्यवाद के रूप में । रहस्यवादी के लिये परमात्मा की प्राप्ति के लिये किये जाने वाले प्रयत्न में जो अधरोत्तर भाव से ३ दशायें हैं वे सब भक्ति की तीनं दशाओं से पूर्णतया मेल खाती हैं। अत: सन्तों द्वारा किये गये अव्यक्त वर्णन को रहस्यवादी प्रवृत्ति मानना असंगत है, किन्तु भक्तिमार्ग की प्रवृत्ति मानना ही उचित है । हां, उस प्राप्य को अव्यक्त या रहस्यमय मान कर उसकी संज्ञा रहस्यवाद की जाय तो बात दूसरी है, किन्तु आजकल प्रचलित साम्प्रदायिक रहस्यवाद के अनुसार उस वर्णन को रहस्यवाद में सम्मिलित करना अनुचित है ।

सगुण निर्गुण भेद से उपास्य दो प्रकार का है अत: यह भक्तिमार्ग भी सगुण निर्गुण भेद से दो प्रकार का हो जाता है । सगुण भक्तिमार्ग में उपास्य के सगुण होने से अर्चन, वंदन, पादसेवन आदि नौ प्रकार की कनिष्ठा भक्ति बन जाती है । किन्तु निर्गुण भक्तिमार्ग में उपास्य के निर्गुण होने से कनिष्ठा भक्ति के नौ भेदों में से श्रवण, कीर्तन, स्मरण तीन ही भेद उपपन्न होते हैं न कि अन्य । क्योंकि इस मार्ग में प्राय: नाम की उपासना होती है । और नाम का श्रवण, कीर्तन व स्मरण ही बन सकता है, वन्दन पादसेवन आदि नहीं । अत: निर्गुण भक्तिमार्ग के अनुयायी सन्तों की वाणी में इन्हीं का निरूपण है न कि अन्य कनिष्ठा भक्ति के भेदों का । और यदि कहीं अन्य भेदों का निरूपण मिलेगा भी तो वह केवल मानस भावना के रूप में न कि बाह्याचाररूप में ।

---

*यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।*
*तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् ।*
*भक्त्या त्वनन्यया शक्यः, अहमेवंविधोऽर्जुन ।*
*ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन, प्रवेष्टुं च परंतप ॥*

दादूजी भी निर्गुण भक्तिमार्ग के अनुयायी हैं, अतः उनकी वाणी में इन्हीं श्रवण, कीर्तन व स्मरण का निरूपण है न कि कनिष्ठा भक्ति के अन्य भेदों का। दादूजी की वाणी में सर्वप्रथम श्रवण के साधक गुरुदेव के अंग का निरूपण है, क्योंकि भक्तिमार्ग में श्रवण गुरुमुख द्वारा होता है अन्य प्रकार से नहीं। श्रवण के बाद भक्ति के कीर्तन व स्मरण इन दो अंगों का अनुष्ठान किया जाता है। इसके लिये दूसरे स्मरण के अंग का निरूपण किया गया है। इसके बाद कनिष्ठा भक्ति की दशा समाप्त हो जाने पर अत्यन्त प्रेमरूप विरह की दशा आती है जो कि प्रेमा भक्ति कहलाती है। इसके निरूपण के लिये तीसरा अंग विरह का रक्खा गया है। इस दशा की समाप्ति के बाद परा भक्ति की दशा आती है जिसमें भगवान् का साक्षात्कार हो जाता है। इसे ही परचा (परिचय) कहते हैं। इसीलिये दादूजी ने विरह के बाद परचा का अंग लिखा है। और इसमें आत्मा परमात्मा का साक्षात् सम्बन्ध व सायुज्य उनने बतलाया है। साक्षात्कार हो जाने के बाद भी वह उस ब्रह्म या भगवान् के स्वरूप व तद्दर्शनजन्य आनन्द का वर्णन करने में असमर्थ रहता है अतः इसके बाद हैरान का अंग आता है। साक्षात्कार हो जाने के बाद भी भक्त इस आनन्द का अनुभव समाधिदशा में ही करता है न कि व्युत्थान दशा में, अतः सर्वदा उस आनन्द का अनुभव करने के लिये उससे मनोयोगरूपी लय लगाई हुई रखनी चाहिये, इस बात का निरूपण करने के लिये हैरान के बाद लय के अंग का निरूपण किया है। यह बात भक्ति-मार्ग में ही नहीं है, ज्ञानी को भी समाधिदशा में ही उस ब्रह्मानंद का अनुभव होता है संसार दशा में नहीं। यह ज्ञानमार्गी भी मानते हैं।

अस्तु, यहां प्रश्न यह उपस्थित होता है कि निर्गुण भक्तिमार्ग में उपास्य निर्गुण अव्यक्त व अज्ञात होता है अतः उसके प्रति प्रेमरूपा भक्ति कैसे बन सकती है। जैसा कि स्वर्गीय आचार्य शुक्लजी ने अपने "काव्य में रहस्यवाद" निबन्ध में लिखा है कि "उपासना जब होगी तब व्यक्त और सगुण की ही होगी, अव्यक्त और निर्गुण की नहीं।" "भारतीय दृष्टि के अनुसार अज्ञात और अव्यक्त के प्रति केवल जिज्ञासा हो सकती है अभिलाष या लालसा नहीं। यदि यह कहा जाय कि मोक्ष की इच्छा का फिर क्या अर्थ होगा? इसका उत्तर यह है कि मोक्ष या मुक्ति केवल अभावसूचक शब्द हैं जिसका अर्थ है छुटकारा। जिससे मोक्षार्थी छुटकारा चाहता

है वह दु:खक्लेशादिसंघात उसे ज्ञात होता है। छुटकारे के पीछे क्या दशा होगी इसका न तो उसे ज्ञान होता है और न अभिलाष ही हो सकता है।" इत्यादि ।

किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट विदित हो जाता है कि सर्वथा अज्ञात वस्तु में न तो जिज्ञासा बन सकती है और न अभिलाष या लालसा ही। जिज्ञासा व लालसा के लिये सामान्य ज्ञान की आवश्यकता होती है इसलिये भगवान् शंकर ने जिज्ञासा सूत्र के भाष्य में 'ब्रह्म ज्ञात है तो ज्ञात वस्तु में जिज्ञासा बन नहीं सकती जैसे कि ज्ञात घट में, और यदि अज्ञात है तो अज्ञात होने से जिज्ञासा नहीं बन सकती। यह शंका करके उत्तर दिया है कि ब्रह्म सामान्यतया सत्ता रूप से ज्ञात है और विशेषरूप से अर्थात् आनन्दरूप से ज्ञात नहीं है। अतः सामान्यतया ज्ञात होने से और विशेषतया अज्ञात होने से जिज्ञासा ब्रह्म में बन सकती है। इससे यह सिद्ध है कि सर्वथा अज्ञात में भी जिज्ञासा नहीं बनती और न सर्वथा ज्ञात में, अपितु सामान्यतया ज्ञात व विशेषतया अज्ञात में ही बन सकती है। अतः जिस ब्रह्म को अज्ञात बतला रहे हैं वह सर्वथा अज्ञात नहीं है, अपितु सामान्यतया ज्ञात है, यह स्वीकार करना पड़ेगा और साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि जिस रूप से उसे जानने की इच्छा करते हैं वे धर्म और तद्धर्मस्वरूप वह ब्रह्म है। अन्यथा उन आनन्दादि धर्मों के अज्ञात होने से उनकी व तद्रूप ब्रह्म को जानने की इच्छा भी कैसे बन सकती है। मुमुक्षु की यही तो इच्छा है कि उसे शाश्वत सुख प्राप्त हो। शाश्वत सुखरूप प्रत्यगात्मा ब्रह्म है इसलिये वह उस शाश्वत सुखको प्राप्त करने की तथा दुःख की आत्यन्तिक व ऐकान्तिक निवृत्ति की इच्छा से ही उस आनन्दरूप ब्रह्म को जानने की इच्छा रखता है। अतः आनन्दादि धर्मों का तथा आनन्दादिधर्मरूप ब्रह्म का भी उसको ज्ञान है। भेद इतना ही है कि उनका ज्ञान उसे शब्दजन्य अर्थात् परोक्ष है न कि प्रत्यक्ष और बिना प्रत्यक्षानुभव के उस आनन्द का अनुभव हो नहीं सकता. अतः उस प्रत्यक्षात्मक अनुभव के लिये मुमुक्षु को इच्छा होती है।

ऐसा मान लेने पर मुमुक्षु की तरह भक्त को भी उपास्य का सामान्य

---

१—*तत्पुनर्ब्रह्म प्रसिद्धमप्रसिद्धं वा स्यात्। यदि प्रसिद्धं न जिज्ञासितव्यम्। अथाप्रसिद्धं नैव शक्यं जिज्ञासितुम्।* ब्र० शां० भा०

ज्ञान है और उसके धर्म आनन्द, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्व गुणों का भी उसको ज्ञान है फिर उसमें अभिलाष या लालसा की अनुपपत्ति कैसे हो सकती है !

मोक्ष को दु:ख से छुटकारा मानकर अभावरूप मानना तो अद्वैतसिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल है। दार्शनिक सिद्धान्तों में अद्वैतवेदान्त सिद्धान्त तो प्रधानतया ऐसा है जो मुक्ति को केवल अभावरूप न मानकर भावरूप मानता है। यद्यपि उनने बन्धनिवृत्ति को ज्ञान का प्रयोजन मानकर अभाव रूप भी मुक्ति को माना है फिर भी वहां अभाव का भी पर्यवसान भाव में ही है, जैसा कि कहा है—

"अधिष्ठानावशेषो हि नाशः कल्पितवस्तुनः।

अर्थात् कल्पित जगत् या बन्ध की वह निवृत्ति ( अभाव ) अपने अधिष्ठान सच्चिदानन्दब्रह्मरूप ही बचती है भिन्न नहीं। इसीलिये द्वैत की आपत्ति नहीं। नहीं तो भाव तथा अभाव उभयरूपा मुक्ति के होने पर द्वैतापत्तिदोष आजायगा। अतः अज्ञात में लालसा का अभाव सिद्ध करने के हेतु मोक्ष को अभावरूप मानना सर्वथा सिद्धान्तविरुद्ध है। एवं उपर्युक्त रीति से ब्रह्म की लालसा बन सकती है क्योंकि वह सर्वथा अज्ञात नहीं है।

अव्यक्त के प्रति लालसा न बनने से ब्रह्म की लालसा या अभिलाष नहीं बन सकती और इस तरह निर्गुण अव्यक्त ब्रह्म की उपासना नहीं हो सकती यह कहना भी असंगत है; क्योंकि अव्यक्त से यदि परोक्ष अर्थ लेते हैं तो अप्रत्यक्ष अर्थ की लालसा भी गुणादि द्वारा देखी गई है जैसे दमयन्ती का नल के प्रति व नल का दमयन्ती के प्रति। और यदि अव्यक्त से सूक्ष्म या प्रकृत्यतीत अर्थ लेते हैं तो भी अव्यक्त ब्रह्म में लालसा या इच्छा बन सकती है। क्योंकि लालसा या अभिलाष के लिये अभिलषणीय वस्तु का येन केन प्रकारेण ज्ञान अपेक्षित है न कि उस वस्तु का स्थूल व प्रकृत्यन्तर्गत होना, नहीं तो उसके जानने की इच्छा भी कैसे होती। राम कृष्ण आदि अवतारों की उपासना न कर शुद्ध ईश्वर के उपासक भी तो उपासक हैं और ईश्वर सूक्ष्म भी है और प्रकृत्यतीत भी। यदि यह कहा जाय कि ईश्वर संसार में अन्तःप्रविष्ट होने से संसार के अन्तर्गत है अतः उसकी उपासना बन सकती है तो उस अव्यक्त की उपासना मानने वाले

भी तो उस अव्यक्त ब्रह्म को अपने हृदयरूपी सीमित क्षेत्र में ही मानकर उपासना करते हैं तो फिर उसमें उपासना का असम्भव क्यों ? सन्तों का उपास्य ब्रह्म घटप्रदेशवर्ती है । जिस प्रकार ईश्वर को गीता (अ० १८) हृदयप्रदेश में ही बतला रही है उसी तरह बृहदारण्यकोपनिषद् में अन्तर्यामी ब्राह्मण में उस अक्षर को भी सर्ववस्तुहृदयवर्ती ही बतलाया गया है । फिर ईश्वर की तरह उसकी उपासना होने में आपत्ति क्या है ।

और गीता[1] में भगवान ने स्पष्टतया अव्यक्त सर्वव्यापक कूटस्थ को उपास्य बतलाया है[2] । यह बात दूसरी है कि उसकी उपासना में कष्टाधिक्य[3] का वर्णन किया है ।

निष्कर्ष यह है कि निर्गुण ब्रह्म, जिसे अलौकिक, अव्यक्त, व अज्ञात मानते हैं सर्वथा अभिलाषा का विषय बन सकता है और उसकी उपासना हो सकती है । इसीलिये भागवत में भी निर्गुण भक्तियोग[4] बतलाया है, और उसका यह लक्षण बतलाया है कि जैसे समुद्र में अविच्छिन्न रूप से गंगाजल का प्रवाह बना रहता है उसी तरह जहां मनोवृत्ति निरन्तर अविच्छिन्न रूप से हृदयगुहावर्ती ब्रह्म में लगी रहती है वह निर्गुण भक्तियोग कहलाता है ।

## (३) योग-सिद्धान्त

मुगलकालिक सन्तों के निर्गुण भक्तिमार्ग के आविर्भाव से पूर्व नाथसम्प्रदाय के योगसिद्धान्त का भारत में पर्याप्त प्रभाव था । वे भी निर्गुण सन्तों की तरह घटप्रदेश में ही निरंजन का दर्शन किया करते थे । वे उस निरंजन के दर्शनके लिये योगप्रक्रिया को अपनाते थे । उस योगप्रक्रिया में हठयोग की

---

१—ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥
गीता अ० १८

२—ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते । सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ।
गीता अ० १२

३—क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् । अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥
गीता अ० १२

४—मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये । मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् । अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥
भागवत ॥

क्रियाओं को विशेष महत्त्व देते थे। वे शारीरिक क्रियाओं द्वारा स्थूल विजय प्राप्त करते थे और इस तरह चित्तशुद्धि द्वारा सूक्ष्म शरीर को वश परमात्मा का साक्षात्कार करते थे। निर्गुण भक्तिमार्ग के अनुयायी परमात्मसाक्षात्कार के लिये हठयोग प्रक्रिया को नहीं अपनाया, किन्त भक्ति द्वारा जीव व परमात्मा के सम्बन्ध में आवरणभूत माया के पर्दे को घट में ही उस अद्वैतनिरंजन का दर्शन किया। फिर भी जनसाधारण में नाथ सम्प्रदाय की योगक्रियाओं का सामान्य प्रभाव उन पर भी पड़ा, अत भी अपने मार्ग के अनुकूल निरंजन दर्शन के उपयोगी योग की सामान्य को अपनाया और उनका निरूपण अपनी वाणियों में किया। हठयोग निर्गुण भक्तिमार्ग से मेल नहीं खाता था, क्योंकि हठयोग में नेति, धो अनेक प्रकार के आसन व तीव्र प्राणायाम, मुद्राबन्ध आदि क्रियाओं द्वा को बलपूर्वक हठ से वश में किया जाता है और शरीर को कष्ट दिया जाता है भक्तिमार्ग में शरीर पर विशेषतया किसी प्रकार का अत्याचार न करके व मन को ईश्वरस्मरण व प्रेम द्वारा वश में करके आत्मा में अविच्छिन्न लगा दिया जाता है और इस तरह घट में उस निरंजन का दर्शन किय है। किन्तु हठयोग की क्रियाओं को छोड़ कर और भी यौगिक क्रिय हैं जिनके द्वारा ब्रह्माण्ड का पिण्ड में दर्शन किया जाता है और वे प्राणायाम, स्वरोदय व अन्य तरीकों से मन को शुद्ध करके उसको आत्मा करने वाली हैं। ऐसी क्रियायें योगशास्त्र में 'लययोग' नाम से प्रसिद्ध हैं योग का सामान्य निरूपण हमें सन्तों की वाणियों में मिलता है। लययोग सब अंगों का सन्तों की वाणियों में वर्णन उपलब्ध नहीं है, किन्तु त्रिवेणी आत्मा में मन का लय, सुषुम्णा, इडा, पिंगला, सूर्य, चन्द्र, शून्य स्थान, कुण्ड अनाहतनाद, अजपाजाप, नाद, बिन्दु, आदि का निरूपण मिलता है; और विप्रकीर्ण ही मिलता है।

उपरिवर्णित सब चीजें प्रायः लययोग में उपलब्ध होती हैं। लययोग योग व राजयोग आदि में बहुत सी क्रियायें प्रायः समान हैं, यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये अंग भी प्रायः समा किन्तु कुछ मौलिक भेद तीनों में मौजूद है जैसे स्थूल शरीर को हठ क्रि

द्वारा वशीभूत कर उसके द्वारा सूक्ष्म शरीर व मन को वश में करना हठयोग की विशेषता है वैसे 'यथा अण्डे तथा पिण्डे' इस न्याय के अनुसार पिण्ड व ब्रह्माण्ड की समानता होने से पिण्ड का ज्ञान गुरु द्वारा प्राप्तकर प्रकृत्यादि का पुरुष में लय करना लय-योग की विशेषता है। लययोग में लयक्रिया की विशेषता के साथ नादोपासना, व बिन्दुध्यान की भी विशेषता है। यह नादध्यान व बिन्दुध्यान हठयोग में नहीं होता। दूसरी बात यह है कि स्थूल शारीरिक क्रियाओं की प्रधानता हठयोग में है और सूक्ष्म क्रियाओं की प्रधानता लययोग में है, जैसे प्राणायाम, स्वरोदय, मनोलय आदि की। शेष इडा, पिंगला, सुषुम्णा, कुण्डलिनी की जागर्ति षट्चक्रभेद आदि दोनों में समान होते हैं। कबीर के आलोचकों ने इडा, पिंगला, सुषुम्णा, षट्चक्र आदि का वर्णन देखकर उनकी वाणी में हठ-योग मान लिया है। वस्तुतः देखा जाय तो उनकी वाणी में हठयोग नहीं अपितु लययोग है। हठयोग होता तो उसकी विशेषक्रियायें नेति, धोति, वस्ति आदि अवश्य वर्णित होतीं। अतः यदि उसका कुछ वर्णन है भी तो परसिद्धान्त-निरूपण रूप से है। अस्तु हमें प्रकृत में यह कहना है कि ये लयलोग की कुछ क्रियायें सामान्यतया दादूजी की वाणी में भी मिलती हैं उनका दिग्दर्शनमात्र हमें यहां करना है।

योगशास्त्र में बतलाया गया है कि पायु से दो अंगुल ऊपर और उपस्थ से दो अंगुल नीचे चतुरंगुल विस्तृत समस्त नाड़ियों का मूलकेन्द्र पक्षी के अण्डे के आकार का एक केन्द्र विद्यमान है जिससे बहत्तर हजार नाडियां निकलकर सारे शरीर में व्याप्त हो गई हैं। उन नाडियों में तीन मुख्य हैं—इड़ा, पिंगला व सुषुम्णा।

इनमें मेरुदण्ड के बायें भाग में इड नाम की नाडी दक्षिण अण्ड के मूल से निकल कर धनुष के समान टेढी होती हुई वाम नासा के अन्ततक गई है। यह सोम-

---

*१—गुरूपदेशतः पिण्डज्ञानमाप्य यथायथम्।*
*लययोगाभिधेयः स्यात् प्रोक्तमेतन्महर्षिभिः॥*
*ध्यानं बिन्दुमयं भवेत्। ध्यानमेतद्धि परमं लययोगसहायकम्॥*
*गुदात्तु द्व्यङ्गुलादूर्ध्वं मेढ्रात्तु द्व्यङ्गुलादधः॥*
*चतुरंगुलविस्तारं, कन्दमूलं ततः स्मृतम्॥*
*नाड्यस्तस्मात् समुद्भूताः, सहस्राणां द्विसप्तति॥*

स्वरूपा है। मेरुदण्ड के दक्षिण भाग में पिंगलानाम की नाड़ी दक्षिण अण्ड
मूल से मिलकर धनुष के समान टेढ़ी होकर दक्षिणनासापर्यन्त गई है यह
रूपिणी है। इडा व पिंगला के मध्य में अर्थात् मेरुदण्ड के बीच में सुषुम्णा न
मूलाधार से निकल कर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त पहुंची है। यह अग्निरूपिणी है। इड
पिंगला भी भ्रूमध्य में संगत होकर वाम नासा व दक्षिण नासा तक पहुंचती
भ्रूमध्य में धनुषाकार होने से इडा व पिंगला का यहां मेल होता ही है और सुषु
सीधी ऊपर से ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचती है अतः यहां तीनों नाड़ियों का मेल हो ज
है। भ्रूमध्य जो कि तीनों का संगमस्थान है योगियों की शरीरान्तर्वर्ती त्रिवेणी क
लाता है। योगी भ्रूमध्य में ध्यान लगाकर इसी त्रिवेणी में स्नान किया करते
योगशास्त्र की परिभाषा के अनुसार चन्द्ररूपा इडा गंगा है सूर्यरूपा पिंग
यमुना है तथा सुषुम्णा मेरुदण्डान्तर्गत होने से तिरोहित है अतः प्रच्छन्नसलि
सरस्वती कहलाती है। इन तीनों नाड़ियों का संगम लोक में जैसे त्रिवेणी कहलात
वैसे ही अध्यात्म में इन तीनों नाड़ियों का संगम त्रिवेणी कहलाता है। जैसे प्रयि
में त्रिवेणी सदा बहती रहती है, किन्तु कोई पुण्यात्मा भाग्यशाली पुरुष पूर्वकर्मोदय
ही उसमें स्नान करता है। उसी प्रकार यह आध्यात्मिक त्रिवेणी भी सदा
प्रवाहशील है। इसमें कोई बिरला व्यक्ति ही स्नान कर सकता है जो कि पू
सञ्चित पुण्यकर्मोदय से अपने मन को उसमें लगा लेता है। उस त्रिवेणी स्नान से
पापों की निवृत्ति होती है[२] वैसे ही इस त्रिवेणी स्नान से भी सभी कर्मों का नाश हो जा
है। और मनुष्य दुःखत्रय से छुटकारा पाकर शाश्वत आनंद का अनुभव करता

---

१—*इडा भगवती गंगा, पिङ्गला यमुना नदी ॥*
*इडापिङ्गलयोर्मध्ये, सुषुम्णा च सरस्वती ।*
*त्रिवेणीसङ्गमः सा प्रोक्ता, तत्र स्नानं महाफलम् ॥*
*इडा गंगा पुरा प्रोक्ता, पिङ्गला चार्कपुत्रिका ॥*
*मध्या सरस्वती प्रोक्ता, तासां सङ्गोऽतिदुर्लभः ।*

२—*सितासिते सङ्गमे यो, मनसा स्नानमाचरेत् ॥*
*सर्वपापविनिर्मुक्तो, याति ब्रह्म सनातनम् ॥*
*मृत्युकाले प्लुतं देहं, त्रिवेण्यां सलिले यदा ॥*
*विचिन्त्य यस्त्यजेत् प्राणान्, स सदा मोक्षमाप्नुयात् ॥*

भौतिक त्रिवेणी का संगम जैसे प्रयाग में हुआ है उसी प्रकार इस त्रिवेणी का संगम दोनों भोहों के मध्यप्रदेश (ललाट) में है। यहीं पर 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इस महावाक्य में प्रतिपादित ऐतरेयोपनिषद् में उपदिष्ट प्रज्ञान ब्रह्म निवास करता है, जिसमें मुमुक्षु साधक अपने मन की अविच्छिन्न वृत्ति को लगा देता है। इसी का निरूपण गीता में निम्न श्लोक में किया गया है:—

*भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्, स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥ इति*

महाभारत में भी—

*नोपलभ्यति मूढानां, प्रत्यक्षं ब्रह्म शाश्वतम्॥*
*ललाटमध्ये तिष्ठन्तं, द्विधाभूतं क्रियां प्रति॥*

इस पद्य के द्वारा उसी तथ्य का प्रतिपादन किया है।

इस ब्रह्म में ध्यान लगाने से अनहद नाद सुनाई देता है जोकि लययोग का मुख्य ध्येय है। दादूजी ने इस स्थान का व तज्जन्य अनहद नाद के श्रवण का प्रतिपादन निम्न रीति से किया है:—

*इब दादू ऐसी बनि आई, रामचरण बिन रह्यो न जाई।*
*सांई को मिलिबे के कारनि, त्रिकुटी संगम नीर नहाई॥*
*चरण कमल की तहं ल्यौ लागै, जतन जतन करि प्रीति बनाई।*
*जे रस भीना छावरि जावै, सुन्दरि सहजैं संग समाई॥*
*अनहद बाजे बाजन लागै, जिभ्या हीणै कीरति गाई।*
*कहां कहौं कछु वरणि न जाई, अविगति अन्तरि ज्योति जगाई॥*
*दादू उनको मरम न जानै, आप सुरंगे बैन बजाई॥*

दादूजी इसी त्रिवेणी में पांचों इन्द्रियों को धोकर निर्मल करना चाहते हैं। जैसे—

*नीकै राम कहत है बपरा,*

*घर मांहैं घर निर्मल राखै, पंचों धोवै काया कपरा।*
*सहज समर्पण सुमिरन सेवा, त्रिवेणी तट संजम सपरा॥*
*सुन्दरि सन्मुख जागन लागी, तहं मोहन मेरा मन पकरा।*
*बिन रसना मोहन गुन गावै, नाना वाणी अनभै अपरा॥*
*दादू अनहद ऐसे कहिये, भक्ति तत्व यहु मारग सकरा॥*

यह त्रिवेणी इड़ा, पिंगला, सुषुम्णारूप है यह भी उनने स्पष्ट है। जैसे—

*ऐसा ज्ञान कथो नर ज्ञानी, इहिं घर होय सहज सुख जानी।*
*गंगा जमुना तहं नीर नहाई, सुषुमन नारी रंग लगाई॥*
*आप तेज तन रह्यो समाई, मैं बलि ताकी देखों अघाई॥*

लययोग की दूसरी प्रधान वस्तु नादानुसन्धान है। प्राण व मनको रुद्ध कर आन्तरिक प्रणव रूप ओंकार में अथवा राम इत्यादि में लगान नादानुसन्धान हैं। भीतरी नाद के श्रवण का अभ्यास करने पर बाह्य ध्व सुनने में नहीं आतीं। क्यों कि आन्तरिक नादश्रवण बाह्य ध्वनियों का रोध कर देता है। नादश्रवण का अभ्यास करते करते साधक को प्रारम्भ अनेक प्रकार के नाद सुनाई देते हैं जैसे-जलधिनाद, मेघनाद, मेरीनाद, निर्झर मर्द्दलनाद आदि महान् नाद सुनाई देते हैं और अन्त में वंश, वीणा आदि के सू सूक्ष्म नाद सुनाई देते हैं। साधक को चाहिये कि कैसा भी नाद सुनाई उस आन्तरिक नाद में अपने मनको लगाये रक्खे। ऐसा करने पर मन निश्च होजाता है और उस आन्तरिक अनाहत नाद पर मन स्थिर होजाता है। प्रणवरूप ओंकारात्मक नाद में मनका लय होजाता है। नादासक्त मनको कि भी विषय की इच्छा नहीं होती, जैसे मकरन्दपानासक्त भ्रमर को किसी गन्ध अपेक्षा नहीं होती। इसका निरूपण नादविन्दूपनिषत् आदि उपनिषदों में स्पष्टत

१—*सिद्धासने स्थितो योगी, मुद्रां सन्धाय वैष्णवीम्।*
*शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे, नादमन्तर्गतं सदा॥*
*अभ्यस्यमानो नादोऽयं, बाह्यमावृणुते ध्वनिम्।*
*श्रूयते प्रथमाभ्यासे, नादो नानाविधो महान्॥*
*वर्धमाने तथाभ्यासे, श्रूयते सूक्ष्मसूक्ष्मतः॥*
*आदौ जलधिजीमूतभेरीनिर्झरसंभवः॥*
*मध्ये मर्द्दलशब्दाभो, घण्टाकाहलजस्तथा॥*
*अन्ते तु किंकिणीवंशवीणाभ्रमरनिःस्वनः॥*
*इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते सूक्ष्मसूक्ष्मतः॥*

किया गया है । इसी तरह बिन्दु का धारण भी योग के लिये आवश्यक है क्योंकि बिन्दुस्थैर्य से प्राण की स्थिरता हो जाती है। किसी भी प्रकार के आकर्षण से जिसका बिन्दु क्षरित नहीं होता है उसे किसी प्रकार की मृत्यु का भय नहीं रहता, और वह अमर हो जाता है । योगी लोग इसी नादविन्दु के द्वारा अपने शरीर को पूर्ण करते हैं । और अपने मन को हृदयान्तर्वर्ती ईश्वर में लगाकर आनन्दानुभव करते हैं तथा अमर बन जाते हैं । दादूजी ने भी इस नादविन्दु का धारण करने से जुग जुग जीने का उपदेश दिया है—जैसे—

*नादविन्दु सों घट भरै, सो जोगी जीवै ।*
*दादू काहे को मरै, रामरस पीवै ॥*

इसी नादरूपी आन्तर शब्द में मन की वृत्ति को लगाकर उस नाद को सारे शरीर में व्याप्त कर देने से योगी बहुत समय तक इस नश्वर शरीर को रख सकता है, इस बात का भी दादूजी ने रूपकालंकार द्वारा सुन्दर निरूपण किया है जैसे—

*शब्द सुई सुरति धागा, काया कन्था लाइ ॥*
*दादू जोगी जुग जुग पहिरे, कबहू फाटि न जाइ ॥*

नादरूपी सुई में मनोवृत्तिरूपी धागा पिरोकर इस कायारूपी कन्था को सीने पर अर्थात् नाद में मनोवृत्ति का लय कर देनेपर मनुष्य अमर हो सकता है।

---

*घनमुत्सृज्य वा सूक्ष्मे, सूक्ष्ममुत्सृज्य वा घने ।*
*रममाणमपि क्षिप्तं, मनो नान्यत्र चालयेत् ॥*
*सर्वचिन्तां समुत्सृज्य, सर्वचेष्टाविवर्जितः ।*
*नादमेवानुसंदध्यान्नादे चित्तं विलीयते ॥*
*मकरन्दं पिबन् भृङ्गो गन्धान्नापेक्षते यथा ।*
*नादासक्तं तथा चित्तं विषयं न हि काङ्क्षति ।*

१—*स्थिरे बिन्दौ स्थिरः प्राणः । इति योगबिन्दूपनिषत् ।*

२—*बिन्दुः क्षरति नो यस्य कामिन्यालिङ्गितस्य च ॥*
*यावद्बिन्दुः स्थितो देहे, तावन्मृत्युभयं कुतः ॥*

इस अनाहत नादरूपी आन्तरिक शब्द की सारे शरीर में व्याप्ति भी द
ने अन्यत्र बतलाई है जैसे—

शब्द अनाहद हम सुन्या. नख सिप सकल शरीर ॥
सब घटि हरि हरि होत है, सहजैं हां मन थीर ॥

हमारे शरीर के भीतर ६ चक्रों में से सबसे नीचे मूलाधार चक्र है। मूलाधार से ही इड़ा, पिंगला व सुषुम्णा नाड़ी का उद्गम होता है। इनमें सु नाड़ी के निम्नमुख में कुण्डलिनी (सर्पाकार दिव्यशक्ति) निवास करती है। कुण्डलिनी प्राणायाम व अन्य साधनों से जागरित हो जाती है तो वह सुषुम्णा सहारे आगे बढती है और षट्चक्रों को भेदन करती हुई सहस्रदल कमल में त्रती है। इस सहस्रदल कमल में एक चन्द्र है। इस चन्द्र से सुधावर्षण होता[1] रहता है। इस सुधा का शोषण मूला चक्र में स्थित सूर्य द्वारा होता है[2]। और इस तरह उसका नाश जाता है। यदि साधक इस प्रवाह को रोक दे और उस अमृत का शोषण द्वारा न होने दे तो वह उस सुधा को अपने शरीर की शक्तियों की वृद्धि कर लगा सकता है। योगी इसी अमृत का पान किया करते हैं और जरामरण मुक्त हो जाते हैं। इस साधना का साफल्य खेचरी मुद्रा द्वारा होता है। खे मुद्रा में जिह्वा को उलटकर कपाल विवर में चन्द्र के पास पहुंचा दिया जात और भ्रूप्रदेश में लगा दिया जाता है[3]। इस तरह इस अमृत का पान करने

---

१—विषं वर्षति सूर्योऽसौ स्रवत्यमृतमुन्मुखः।
तालुमूले स्थितश्चन्द्रः सुधां वर्षत्यधोमुखः॥ योगशिखोपनिषद्

२—मूलाधारे हि यत् पद्मं चतुष्पत्रं व्यवस्थितम्॥
तत्र मध्ये हि या योनिस्तस्यां सूर्यो व्यवस्थितः॥ शिवसंहिता।

३—अन्तः कपालकुहरे, जिह्वां व्यावृत्य धारयेत्।
भ्रूमध्यदृष्टिरप्येषा, मुद्रा भवति खेचरी॥ योगतत्त्वोपनिषत्
कपालकुहरे जिह्वा, प्रविष्टा विपरीतगा॥
भ्रुवोर्मध्यगता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी॥
सूर्याचन्द्रमसोर्मध्ये निरालंबान्तरं पुनः॥
संस्थिता व्योमचक्रे या, सा मुद्रा भवति खेचरी॥

योगी को न क्षुधा व तृषा लगती है न उसे आलस्य आता है और न जरा तथा मृत्यु ही उसके पास फटकती है और प्राण भी स्थिर हो जाता है।

इस खेचरी मुद्रा के अभ्यास से ही उन्मनी[1] अवस्था अन्तमें सिद्ध हो जाती है। यह अवस्था समाधि की है। इसमें प्राण, मन, आदि सभी का भ्रूमध्यस्थित परमात्मा में लय हो जाता है। इसी अवस्था में आन्तरिक अनाहत नाद का श्रवण स्पष्ट होता है और साधक उसमें मस्त होजाता है। यही तुरीयावस्था है। इसमें ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है, और साधक को शाश्वत ब्रह्मानन्द का अनुभव होता रहता है। वह ब्रह्म रस का आस्वाद करता है। इस अवस्था में पहुंचने पर मन:स्थैर्य हो जाता है। कुण्डलिनी के जागरित होने से ब्रह्मद्वार का मार्ग खुल जाता है। और सुषुम्णा षट्-चक्रों का भेदन करती हुई ब्रह्मरन्ध्र में पहुंच जाती है। उस समय जीव ब्रह्म से मिल जाता है यही सहजावस्था व शून्यावस्था भी है।

दादूजी ने इन सब तत्त्वों का सामान्यत: बहुत सुन्दर वर्णन किया है—

*मन पवन लो उनमन रहै, अगम निगम मूल सो लहै। टेक।*
*पंच वायु जे सहजि समावै, शशिहर के घर आने सूर ॥*
*शीतल सदा मिले सुखदाई, अनहद शब्द बजावै तूर ॥ १ ॥*

*बंकनालि सदा रस पीवै, तब यहु मनवा कहीं न जाइ ॥*
*विगसै कमल प्रेम जब उपजै, ब्रह्म जीव की करै सहाइ ॥ २ ॥*

*बैसि गुफा में ज्योति विचारै, तब तेहि सूझै त्रिभुवनराइ ॥*
*अन्तर आप मिलै अविनासी, पद आनन्द काल नहिं खाइ ॥ ३ ॥*

*जामण मरण जाइ भव भाजै, अवरण के घर वरण समाइ।*
*दादू जाय मिलै जग जीवन तब यहु आवागमन बिलाइ ॥ ४ ॥*

---

*१—अभ्यस्ता खेचरी मुद्राप्युन्मनी संप्रजायते ॥*
*चित्तवृत्तिर्यदा लीना तस्मिन् योगी भवेद् ध्रुवम् ॥*
*तदा विज्ञायतेऽखण्डज्ञानरूपि निरञ्जनम् ॥*
*तस्मात् गलितपीयूषं, पिबेद्योगी निरन्तरम् ॥*

अर्थात् जब साधक मन और पवन दोनों को रोक कर निर्विकल्प उन्मनी अवस्था में लगा लेता है तब उस अगम-निगम-मूल ब्रह्म की होती है। एवं पंच प्राण को सहज रूप समाधि में अथवा सहज रूप आत लीन करदे और पिंगला को भी चन्द्रमा के घर सहस्रदलकमल में ले तब वहां सन्तापमय त्रिविध दुःखों से रहित आनन्दरूप ब्रह्म की प्राप्ति हो है, अनाहदनाद उस समय सुनाई देने लगता है, सुषुम्णा उस चन्द्र से सु पान करने लग जाती है। और उस समय प्राणनिरोध हो जाने से तथा वृत्ति के आत्मा में लग जाने से मनश्चाञ्चल्य नहीं रहता। उस अवस्था में सहस्रदलकमल विकसित होजाता है और रामरूप परमात्मा में जीव की पैदा होजाती है एवं ब्रह्म दुःखादिनिवृत्ति द्वारा जीव की सहायता करता उस समय जीव सहस्रदलकमलमध्यवर्ती शाश्वत ब्रह्मज्योति का विचार व है तब उसका साक्षात्कार होजाता है और घटके भीतर ही अविनाशी परम मिल जाता है। वह आनन्द का स्थान है। वहां न काल का भय है न जन्ममरण का। उस अवस्था में सर्वधर्मातीत परमात्मा के निवासस्थान उपलब्धिस्थान सहस्रदलकमल में या ब्रह्मरन्ध्र प्रदेश में वरण अर्थात् सोपाधिक परिच्छिन्न चेतन जीव तथा मन व पवन सब समा जाते हैं अर्थात् लीन जाते हैं।

उपर्युक्त पद में पहिले दो चरणों में उन्मनी अवस्था का व पवन का निरोध कर ब्रह्मरन्ध्र व सातवें स्थान में लगाने का, एवं 'बंक ना सदारस पीवै' इस पद के द्वारा खेचरी मुद्रा तथा सुधापान का और वहां मन लगाने पर ब्रह्मसाक्षात्कार, सकल दुःखनिवृत्ति तथा जन्म, मरण, काल आदि निवृत्ति का वर्णन योगशास्त्रानुसार स्पष्ट हैं।

इसी तरह योगप्रक्रिया में एक अजपा जापरूप गायत्री भी बतलाई गई है। मनु

---

१—मारुते मध्यसंचारे मनःस्थैर्यं प्रजायते।
यो मनःसुस्थिरीभावः सैवावस्था मतोन्मनी॥
मरुदभ्यसनं सर्वं मनोयुक्तं समभ्यसेत्।
इतरत्र न कर्तव्या मनोवृत्तिर्मनीषिणा॥

रात दिन में अर्थात् २४ घण्टों में २१६८० श्वासप्रश्वास स्वभावत: लिया करता है। उस श्वासप्रश्वास के साथ यदि साधक अपने मनको लगा लेता है तब स्वत: ही ईश्वर के नाम का जाप होता रहता है। वह जाप "सोऽहं हंस:" इस मन्त्र का होता है। क्योंकि जब श्वास (प्राण) बाहर निकलता है उसमें 'हम्' ऐसी ध्वनि होती है, और जब श्वास भीतर आता है उस समय 'स:' ऐसी ध्वनि होती है। इसी को 'सोऽहम् अथवा हंस' इस शब्द से व्यवहृत किया जाता है। यह जाप रात दिन स्वत: ही श्वास प्रश्वासके साथ होता ही रहता है किन्तु जबतक हमारा मन उस ध्वनि के साथ सम्बद्ध नहीं होता तब तक वह जाप होता हुआ भी नहीं के समान है, और जब साधक व योगी उस ध्वनि के साथ अपनी मनोवृत्ति का सम्बन्ध कर देता है तब वह जाप सार्थक होने से जाप कहलाता है। यह अजपा जाप इसलिये कहलाता है कि इस जाप में अन्य जापों की तरह मुख व कण्ठ का सहारा नहीं लेना पड़ता। आधार[३]पद्म, हृदयपद्म व नासापुट इन तीनों के द्वारा यह जाप होता है। योगशास्त्र वाले इसमें कुण्डलिनी की जागर्ति को कारण बतलाते हैं। इसका योगशास्त्र में

---

*१—भुजङ्गिन्या: श्वासवशादजपा जायते ननु।*
*हङ्कारेण बहिर्याति, सः कारेण विशेत्पुन: ॥*
*षट् शतानि दिवारात्रौ, सहस्राण्येकविंशतिम्।*
*अजपा नाम गायत्री जीवो जपति सर्वदा ॥*

*२—हंस हंसेत्यमुं मंत्रं, जीवो जपति सर्वदा।*
*शतानि स दिवारात्रं सहस्राण्येकविंशतिः।*
*एतत् संख्यान्वितं मन्त्रं, जीवो जपति सर्वदा।*
*अजपा नाम गायत्री, योगिनां मोक्षदा सदा ॥*
*अस्या: संकल्पमात्रेण, नरः पापैः प्रमुच्यते।*
*अनया सदृशी विद्या, अनया सदृशो जप: ॥*
*अनया सदृशं पुण्यं, न भूतो न भविष्यति"।* ध्यानबिन्दु उपनिषद्
*सोऽहं शब्देन जीवानां श्वासोच्छ्वासौ निरन्तरम्।*
*स्यातां वा हंसशब्देनोच्छ्वासश्वासौ विपर्ययात् ॥*
*इत्ययं द्व्यक्षरो मन्त्रो जीवजप्योऽजपा मता ॥*

*३—मूलाधारे यथा हंसस्तथा हि हृदि पङ्कजे ॥*
*तथा नासापुटद्वन्द्वे, त्रिभिर्हंससमागमः ॥*

तथा उपनिषदों में बहुत स्पष्ट वर्णन मिलता है दादूजी ने भी इस जाप का वर्णन किया है और इसे परम जाप व अजपा जाप शब्द से ही व्यवहृत किया है उनने इस जप के करने के प्रकार का भी स्पष्ट निर्देश किया है। जैसे—

दादू सतगुरु मन माला दिया, पवन सुरति सों पोइ ॥
बिन हाथों निसदिन जपै, परम जाप यों होइ ॥
बिन रसना जहं बोलिये, अन्तरजामी आप ॥
बिन श्रवणहु सांई सुणै, जो कुछ कीजै जाप ॥

रज्जबजी ने इस अजपा जाप का इसी तरह वर्णन किया है।

लययोग का अन्तिम अंग समाधि है। समाधि में अन्तःकरण ( मन ) उपास्य परमात्मा में संलग्न होकर उस परमात्मा से अभिन्न हो जाता है जैसे जलबिन्दु समुद्र में मिलकर समुद्र से अभिन्न हो जाती है, जिस प्रकार सैन्धव (लवण) जलमें मिल कर जलरूप ही हो जाता है जल से पृथक् अपना अस्तित्व नहीं रखता, उसी प्रकार यह मन अथवा मन उपाधि वाला जीव भी अपने उपास्य परमात्मा से मिलकर तद्रूप ही बन जाता है, उससे पृथक् उसका अस्तित्व नहीं रहता, यही समाधि है, यही लययोग का परम लक्ष्य है। इसीका नाम लय है क्योंकि यहां मन व तदुपाधिक जीव का परमात्मा में पूर्णरूप से लय हो जाता है। लययोग में यही समाधि का उपर्युक्त स्वरूप योगशास्त्र में बतलाया गया है। दादूजी ने भी लय व समाधि का यही स्वरूप बतलाया है। निम्न साखियों को देखने से इसका स्पष्ट दिग्दर्शन होजाता है। जैसे—

पर आतम सों आत्मा, ज्यों जल उदक समान ॥
तन मन पाणी लूण ज्यों, पावै पद निर्वाण ॥

---

१—मन पवना अस सुरति सों, आतम पकड़े आप ॥
रज्जब लावै सुरति सों यहै अजपा जाप ॥

२—सरित्पतौ पतितवाम्बु, यथा भिन्नमि [illegible] ॥
तथा भिन्नं मनस्तत्र, समाधि समवाप्नुयात् ॥
सलिलं सैन्धवं यद्वत्, साम्यं भजति योगतः ॥
तथात्ममनसोरैक्यं, समाधिरभिधीयते ॥

*तन मन अपना हाथ करि, ताही सौं ल्यौलाइ॥*
*दादू निर्गुण राम सों, ज्यों जल जलहि समाइ॥*
*पर आतम सो आतमा, ज्यों पानी में लूण॥*
*दादू तन मन एक रस, दूजा कहिये कूण॥*
*तन मन विलय यों कीजिये, ज्यों पाणी में लूण॥*
*जीव ब्रह्म एकै भया, तब दूजा कहिये कूण॥*

इस तरह अन्य साखियों व पदों में बहुत जगह इन यौगिक सिद्धान्तों का निरूपण दादूजी की वाणी में उपलब्ध होता है। जैसे राग भैंरू के 'जीवन मूरी मेरे आतमराम' इस पद में तथा राग धनाश्री के अन्त के दो तीन पदों में। किन्तु उन सबका यहाँ विस्तार के भय से निरूपण नहीं किया जा रहा है।

## साम्यवाद (समत्वभावना)

आज संसार में सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिस्थितियों के समाधान के लिये जो एक सर्वोत्कृष्ट उपाय माना गया है वह है साम्यवाद। आज दुनियां की दृष्टि शीघ्रता से साम्यवाद की तरफ आकृष्ट हो रही है। वस्तुतः समत्वभावना सभी रोगों की अचूक औषध है, किन्तु आजकल यूरोपीय देशों में प्रचलित साम्यवाद वास्तविक समत्वभावना नहीं है। वह केवल जनता पर बलपूर्वक थोपी गई एक आर्थिक समानता है। इस साम्यवाद में मनुष्य के मन में प्राणिमात्र के प्रति या मनुष्यमात्र के प्रति समत्वभावना या बन्धुत्वभावना पैदा नहीं होती। आधुनिक साम्यवाद के अनुसार पूंजी व उत्पादनसाधनों को कुछ चन्द व्यक्तियों के हाथ में जाने से रोका जा सकता है फिर भी मनुष्य की दुर्भावना व द्वेषभावना को नहीं मिटाया जा सकता। एक साम्यवादी राष्ट्र भी दूसरे राष्ट्र पर उसी तरह आक्रमण करने व उसको अपने अधीन बनाने के लिये तैयार है जैसे एक साम्राज्यवादी देश। यदि वस्तुतः हमें विश्व में शान्ति स्थापित करनी है तो वास्तविक समत्वभावना को अपनाना पड़ेगा। और वह समत्वभावना भारतीय आर्य महर्षियों और सन्तों द्वारा प्रतिपादित व आचरित प्राणिमात्र के प्रति समत्वव्यवहार ही है। पाश्चात्यों की विचारधारा का उद्गम भौतिक जगत् है। उसी से उनको प्रेरणायें प्राप्त होती हैं और उनका व्यवहार-क्षेत्र भी भौतिक जगत् तक ही सीमित रहता है। किन्तु भारतीयों की प्रत्येक

विचारधारा का स्रोत आध्यात्मिक जगत व संसार का मूल कारण ब्रह्म है। अतः उसका व्यवहारक्षेत्र भी भौतिक जगत् तक सीमित न रहकर आध्यात्मिकक्षेत्र तक पहुंचता है। उसकी जड़ गहरी जाती है। इसीलिये उसका प्रभाव भी स्थायी व अत्यन्त लाभप्रद होता है। उनकी समत्वभावना का स्रोत भी भौतिक जगत् नहीं है अपितु इस भौतिक व आन्तरिक जगत् का मूलकारण ब्रह्म, आत्मा व प्रकृति है। संसार के मूल कारण ब्रह्म (पुरुष) व प्रकृति का स्वरूप ही समत्वरूप है। ब्रह्म व आत्मा का रूप सारे संसार के पदार्थों में समान है। उसमें किसी प्रकार का अन्तर या भेद नहीं है। वह सभी कालों व परिस्थितियों में समानरूप ही रहता है। जैसे सूर्य का प्रकाश नील, पीत, हरित, रक्त आदि दर्पणों में समान रूपसे पड़ता है व समान रूप से ही रहता है। नील, पीत, हरित आदि उपाधियों के भेद से चाहे उसमें विषमता व विभिन्नता मालूम देवे किन्तु वस्तुतः उसमें किसी भी प्रकार की विषमता व विभिन्नता नहीं है। उसी प्रकार उपाधिभेद से चाहे आत्मा में ज्ञानित्व, अज्ञानित्व, सुखित्व व दुःखित्व, धनित्व व निर्धनत्व आदि विषमता चाहे प्रतीत हो किन्तु स्वरूपतः वह सब में समान ही है और समत्व ही उसका स्वरूप है। उसी तरह जगत् का उपादान कारण प्रकृति भी सर्वत्र सर्वदा समान ही है। सत्व, रज व तम की साम्यावस्था ही प्रकृति कहलाती है। उसमें आगन्तुक कारणान्तरकृत विषमता भले ही रहे, किन्तु स्वरूपकृत विषमता नहीं है। सारा जगत् जब इन्हीं दो तत्वों से उत्पन्न होता है तब उसमें समत्व भावना क्यों नहीं हो सकती, अवश्य होगी। उसको जानने व व्यवहार में लाने की आवश्यकता है।

इतना अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि प्रकृति के समान होने पर भी संसार उस साम्यावस्थापन्न प्रकृति से नहीं पैदा होता है, किन्तु विषमावस्थापन्न प्रकृति से पैदा होता है। विषमावस्थापन्न प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण इस संसार में बाह्य दृष्टि से देखने पर अणु अणु में क्षण क्षण में सर्वत्र विषमता दृष्टिगोचर होती हैं, किन्तु हमें ध्यान रखना चाहिये कि इस विषमता की तह में (मूल में) एक समता व्याप्त है जो कि उस मूलकारण की है। जैसे शाश्वत गति में स्थिरता मूलरूप से विद्यमान है और जैसे क्रान्ति की तह में शान्ति विद्यमान है उसी प्रकार इस विषमता की तह में शाश्वत समता विद्यमान है, उसका ज्ञान हमें करना चाहिये और उसे समझकर

व्यवहार में लाना चाहिये, जिससे शाश्वत शान्ति प्राप्त की जा सके। क्योंकि वह समता स्वयं शाश्वत शान्तिरूप है, स्थिर है तथा अपरिणामी व अविनाशी है। भारतीय महर्षियों ने इस भौतिक जगत् की विषमता के अन्तः अनुस्यूत उस समता का दर्शन किया था और उसे समझा था और इसीलिये वे संसार में उस समत्व के दर्शन द्वारा सर्वत्र शान्ति व सुखसमृद्धि को स्थापित करने में समर्थ हो सके थे। भारतीय साहित्य में, भारतीय संस्कृति में तथा भारतीयों के प्रत्येक समाज में व धर्म में हमें इस समत्व भावना के दर्शन होते हैं। प्राचीन वैदिक महर्षियों ने प्राकृतिक सूर्य उषा अग्नि आदि जगत् के प्रत्येक पदार्थ में उस चिरन्तन सत्य तत्व का दर्शन किया था और उस अलौकिक दिव्य आनन्द की अनुभूति की थी। इसके बाद महाभारतकाल व पुराणकाल में हमें यही भावना विस्तृत रूप से दृष्टिगोचर होती है। गीता में इस समत्वदर्शन का अत्यन्त स्पष्ट उल्लेख मिलता है। अपने कर्तव्य से च्युत अर्जुन को कर्तव्यमार्ग का उपदेश देते हुए भगवान् ने समत्वरूप योगनिष्ठ होकर कर्म करने का उपदेश किया है जैसे—

*योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।*
*सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ इति*

इसी समत्वदर्शन व समत्वयोग का वर्णन गीता में बहुत जगह किया है और इस समत्व भावना के द्वारा सब दुःखों से छुटकारा बतलाया है। केवल मनुष्यों में ही समत्वभावना रखने का उपदेश नहीं अपितु प्राणिमात्र में समत्वदर्शन का उपदेश गीता में किया गया है क्योंकि समत्वभावना का मूल कारण आत्मा समानरूप से सब में विद्यमान है। जैसे—

*विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि- हस्तिनि॥*
*शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥*

*इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः॥*
*सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु॥*

*साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥*

भगवान् ने स्पष्ट कहा है कि जो अपनी ही तरह सब प्राणियों में सुख दुःख का दर्शन करता है अर्थात् जैसे स्वयं सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होता है वैसे ही दूसरा भी सुख से सुखी और दुःखी होगा, इस भावना का साक्षात्कार कर लेता है वह योगी सर्वोत्कृष्ट है। इस भावना वाला मनुष्य किसी को भी हानि नहीं पहुंचायेगा और सबको सुख पहुंचाने का ही प्रयत्न करेगा। इसलिये अन्यत्र भी शास्त्रों में उसे ही ज्ञानी बतलाया है जो कि सर्वत्र आत्मसदृश आचरण करता है जैसे—

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति ॥

इसी समत्वयोग का दर्शन हमें शंकर के अद्वैत मत में व भक्तिदर्शनों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सहिष्णुता की मूल आधारभित्ति इसी समत्वभावना के कारण भारत में नाना धर्मों, मतों व सम्प्रदायों के होते हुए भी किसी प्रकार का सहानवस्थानरूपविरोध दिखाई नहीं देता। अपितु इस भारत भूमि में सभी भिभिन्नधर्मों व मतों का निर्विरोध समन्वय चलता आया। किन्तु मुस्लिम आक्रमण के समय परिस्थितियों के कारण यह समत्वभावना देश से लुप्त होने लगी। क्योंकि मुसलमानों के परधर्मासहिष्णु मुस्लिम मत ने हिन्दुओं में भी धार्मिक असहिष्णुता पैदा कर दी। इसका प्रभाव इतना भयंकर सिद्ध हुआ कि आर्यों का वह प्रसिद्ध "उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" वाला सिद्धान्त तो दूर रहा परस्पर हिन्दुओं में भी जाति पांति ऊंच नीच व स्पृश्य अस्पृश्य के भेद को लेकर असहिष्णुता ने घर कर लिया। सन्तों ने इसके विरुद्ध आवाज बुलन्द की और फिर एक बार फिर उस प्राचीन भारतीय आदर्श की तरफ जनता का ध्यान आकृष्ट किया। उनने बतलाया कि सभी प्राणियों में व चौदह लोकों में सभी जगह वही एक आत्मा व्याप्त है, चाहे वह मुसलमान हो या हिन्दू हो, ब्राह्मण हो, या चाण्डाल हो, पशु हो या मनुष्य हो। यदि तात्त्विक दृष्टि से देखें तो सब प्राणी एक हैं और यदि बाहरी मिथ्या दृष्टि से देखा जाय तो नानात्व उसमें स्पष्ट प्रतीत होता है। दादूजी की इन निम्नलिखित साखियों में इस एकात्मदर्शनरूप समत्वभावना की पुष्टि होती है—

आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार ॥
दादू मूल विचारिये तो, दूजा कौन गंवार ॥

दादू पूरण ब्रह्म विचारिले, दुतीभाव करि दूर ॥
सब घट साहिब देखिये, राम रह्या भरपूर ॥
दादू सम करि देखिये, कुञ्जर कीट समान ॥
दादू दुविध्या दूरि करि, तजि आपा अभिमान ॥
दादू पूरण ब्रह्म विचारिये, तब सकल आत्मा एक ॥
काया के गुण देखिये, तो नाना वर्ण अनेक ॥

जब यह एकात्मदर्शन रूप समत्वभावना का उदय हो जाता है तब वैर विरोध स्वयं नष्ट हो जाता है और दुःख तथा शोक की निवृत्ति भी हो जाती है ।

यदा सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ॥
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

यह ईशोपनिषन्मन्त्र इसी भाव को व्यक्त कर रहा है । दादूजी ने भी इस भाव की अभिव्यक्ति निम्न साखियों में की है—

ज्यों आपै देखै आपकों, यों जे दूसर होय ।
तो दादू दूसर नहीं, दुःख नहिं पावै कोय ॥
किससों वैरी ह्वै रह्या, दूसर कोई नाहि ॥
जिसके अंग थें ऊपजैं, सोई है सब माँहि ॥

दादूजी ने केवल जंगम प्राणियों में ही नहीं, स्थावर प्राणियों में भी इस समत्वरूप एकत्वभावना के दर्शन किये हैं और उनको सताने का भी निषेध किया है। जैसे—

दादू सूका सहजैं कीजिये, नीला भानै नाँह ॥
काहे को दुःख दीजिये, साहिब है सब माँहि ॥

जैसे गीता में समत्वदर्शी को तथा समत्वदर्शन के द्वारा सब में निर्वैरता रखने वाले को ही वस्तुतः योगी बतलाया है व श्रेष्ठ कहा है उसी प्रकार दादूजी ने भी इस समत्वभावना वाले को ही वास्तविक साधु बतलाया है । जैसे—

सोई साध शिरोमणि, गोविन्द गुण गावै ॥
राम भजै विषया तजै, आपा न जणावै ॥
मिथ्या मुख बोले नहीं, पर निन्दा नांही ॥
औगुण छाड़े गुण गहै, मन हरि पद मांही ॥

का नाश जीवितावस्था में ही हो जाता है। अतः ज्ञानी को वे जीवन्मु
हैं। जीवन्मुक्त शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ भी इसी बात को स्पष्ट कर रहा है कि
तावस्था में ही ज्ञानी की क्लेशों से निवृत्ति हो जाती है जैसा कि श्रुति
रही है—

*भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥*
*क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ इति ॥*

दादूजी वेदान्तमत के अनुसार जीवन्मुक्ति को ही वास्तविक मुक्ति
हैं। उनका मत है कि मनुष्य ज्ञान के द्वारा या ईश्वरोपासना द्वारा
नामोच्चारण द्वारा मन इन्द्रिय व प्राण का निरोध करता हुआ देहादि वे
को सर्वथा नष्ट कर दे और शुद्ध निरंजन आत्मा में अपनी सुरति को
रूप से लगा दे जिससे सर्वदा उस शाश्वत आनंद की अनुभूति हो
और किसी भी प्रकार के दुःख की प्रतीति न हो। जीते जी इस दशा क
करना उनके मत में वास्तविक मुक्ति है। यदि जीते जी मनुष्य इस अव
न पहुंच सका तो फिर देहत्याग के बाद दुःखनिवृत्ति व आनन्द की
आशा रखना सर्वथा व्यर्थ है। इसी तरह वे इस बात को भी मिथ्या मान
मुक्ति किसी लोकान्तर की वस्तु है जैसा कि दार्शनिक गोलोकवास
लोकवास को मुक्तिस्थान स्वीकार करते हैं। मुक्ति इसी संसार में और इ
में प्राप्त हो जाती है उसके लिये लोकान्तरगमन की आवश्यकता नह
इस संसार में व इस शरीर में दुःखनिवृत्तिरूप मुक्ति नहीं हुई तो वह लो
प्रयाण पर कभी भी नहीं प्राप्त हो सकती। मरने पर व लोकान्तर में जाने
मिलेगी इन बातों को वे सर्वथा मिथ्या व पाखण्ड मानते हैं। नीचे की सा
देखने से यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जाती है जैसे—

*दादू जीवत छूटै देह गुण, जीवत मुक्ता होइ ॥*
*जीवत काटै कर्म सब, मुकति कहावै सोइ ॥*
*दादू जीवत ही दूतर तिरै, जीवत लंघै पार ॥*
*जीवत पाया जगत गुरु, दादू ज्ञान विचार ॥*
*जीवत मेला ना भया, जीवत परस न होइ ॥*
*जीवत जगपति ना मिले, दादू बूडै सोइ ॥*

*जीवत दूतर ना तिरै, जीवत न लंघै पार ॥*
*जीवत निर्भय ना भये, दादू ते संसार ॥*
*जीवत प्रकट ना भया, जीवत परचा नांहि ॥*
*जीवत न पाया पीवको, बूडै भौजल मांहि ॥*
*मूवां पीछै मुक्ति बतावै, मूवां पीछे मेला ॥*
*मूवां पीछै अमर अभय पद, दादू भूलै गहिला ॥*
*मूवा पीछै वैकुण्ठवासा, मूवा सरग पठावै ॥*
*मूवा पीछै मुकति बतावे, दादू जग बौरावे ॥*

इस तरह जीवन्मुक्ति को ही वास्तविक मुक्ति माना है, देहत्यागानन्तर मुक्ति को मुक्ति नहीं। इसीलिये उनने मुक्ति व अमुक्ति का स्वरूप बतलाते हुए कह दिया है कि

*जीवत मिले सो जीवते मूयें मिलि मर जांहि।*

अर्थात् जीते जो अविद्या आदि बन्धनों का परित्याग कर परमात्मा से मेल कर लिया तो वास्तविक जीना (मुक्ति) है। और ऐसा नहीं तो मरने के बाद परमात्मा में मिलना तो मरना ही है, अर्थात् संसार में आवागमन करना है, वह मुक्ति नहीं है। इस विषय में एक युक्ति का भी प्रदर्शन उनने किया है कि यदि देहमुक्ति से ही मुक्ति होवे तो फिर देहत्याग प्रत्येक व्यक्ति का होने से प्रत्येक व्यक्ति की ही मुक्ति हो जानी चाहिये।

यह मुक्ति स्थूलशरीर के नाश से कभी सम्भव नहीं है, किन्तु सूक्ष्मशरीर व कारणशरीर अर्थात् अविद्या, काम, कर्म व पूर्वप्रज्ञा के नाश से ही हो सकती है। दादूजी ने स्थूलशरीर के नाश को पिण्डमुक्ति तथा सूक्ष्म व कारणशरीर के परित्याग को प्राणमुक्ति पद से व्यवहृत किया है। तथा यह भी बतलाया है कि पिण्डमुक्ति सब व्यक्ति करते हैं किन्तु प्राणमुक्ति अर्थात् जीवनमुक्ति कोई बिरले ही व्यक्ति सम्पादन किया करते हैं जैसे—

*पिण्ड मुक्ति सब कोइ करै प्राण मुक्ति नहिं कोइ।*
*प्राणमुक्ति सतगुरु करै दादू विरला होइ ॥*

---

२—*दादू छूटै जीवतां मूवां छूटै नांहि।*
*मूवा पीछै छूटिये तो सब आये उस मांहि।*

कबीर व दादू आदि सन्तों ने जीवन्मुक्त पुरुष के लिये जीवतमृतक शब्द का प्रयोग किया है। इनके मत में वेदान्तियों की तरह आत्मा सदा नित्यमुक्त व नित्यानन्दस्वरूप है। केवल अविद्या व अध्यास रूप आपा के कारण ही वह संसारी व बन्धनयुक्त होरहा है। यदि हमने आपा को मार दिया तो हम मुक्त हैं परमेश्वर से मिल जाते हैं। अतः जीवदवस्था में ही मुक्ति के व परमेश्वरप्राप्ति के प्रतिबन्धक इस आपा को मार देना चाहिये। जिस साधक ने ऐसा कर लिया वह आपा को मारने के कारण जीवतमृतक होजाता है। यह जीवतमृतकत्वप्राप्ति अर्थात् अध्यास का नाश ही परमेश्वरके साक्षात्कार का प्रधान कारण है। दादूजी ने बतलाया है कि 'हे जीव पीव की प्राप्ति के प्रतिबन्धक इस आपा का परित्याग कर और उस तत्व को पहिचान जिससे यह आपा पैदा होता है। क्यों कि अविद्या व अध्यासरूप आपा परमात्मा से ही उत्पन्न होता है'। वेदान्ती भी ऐसा स्वीकार करते हैं जिसका प्रतिपादन ऊपर किया जा चुका है। वेदान्त शास्त्रों में अध्यास को जो अनादि बतलाया है वह केवल प्रवाहानादित्व के अभिप्राय से है जैसा कि बीजांकुर की अनादिता है।

जीवतमृतक पुरुषकी क्या स्थिति होती है एवं उसका मालूम कैसे किया जा सकता है, इसका भी समुचित उत्तर दादूजी ने अपनी वाणी में दिया है। जैसे

*दादू मृतक तब ही जानिये जब गुण इन्द्रिय नाँहि।*
*जब मन आपा मिट गया ब्रह्म समाना माँहि॥*
*देह रहै संसार में जीव राम के पास।*
*दादू कुछ व्यापै नहीं काल झाल दुख त्रास॥*

उपर्युक्त रीति से जीतेजी मनोवृत्ति को पूर्णरूप से आत्मा में लगाकर सुख दुःखादि द्वन्द्वों से रहित हो जाना दादूजी को अभिप्रेत है न कि परलोक में जाकर दुःखध्वंस की आशा करना। यही जीवनमुक्ति तथा वास्तविक मोक्ष अर्थात् दुःखत्रय से छुटकारा है।

---

१—*दादू तो तूं पावै पीव कूं मैं मेरा सब खोइ।*
*मैं मेरा सहजैं गया तब निर्मल दर्शन होइ॥*
२—*दादू तो तूं पावै पीव कों जे जीवतमृतक होइ।*
*आप गंवाये पीव मिले जानत है सब कोइ॥*
३—*दादू तो तूं पीवै पीव कों आपा कछू न जान।*
*आपा जिस थें उपजै सोई सहज पिछान॥*

## (६) विरहयोग

अपने हृदयस्थित परमात्मतत्त्व की प्राप्ति के लिये शास्त्रों में अनेक साधन बतलाये हैं। जैसे—ज्ञानयोग, भक्तियोग, बुद्धियोग, कर्मयोग, लययोग, राजयोग आदि। किन्तु उन सब योगों से विलक्षण एक योग और है। जिसके मधुर रस का आस्वादन गोपियों व सन्तों ने ही प्रधान तौर से किया था। वह योग-साधन है विरहयोग। विरह एक ऐसा साधन है जिसमें साधक को किसी भी बाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं होती और वह साधक के ईश्वरप्राप्ति में अन्तरायभूत प्रत्येक वस्तु को हटा देता है तथा मलिनता, कषाय, राग, द्वेष आदि को जलाकर भस्म करदेता है। यह विरह बाह्य विषयों से मनकी वृत्ति को हटाकर आराध्य की तरफ लगा देता है व उसे एकतान व एकाग्र बना देता है। विरह उपास्य के प्रति अनन्य अनुराग को पैदा करता है तथा उस प्रेम में अपावन तत्वों को जला कर उसे पवित्र व सोने की तरह शुद्ध बना लेता है। विरह वह अग्नि है जिसमें तपकर साधक का प्रेम सुवर्ण की तरह उज्ज्वल व परिशुद्ध बन जाता है।

ईश्वर की प्राप्ति के लिये अनन्यसाधारण उत्कट व परिशुद्ध प्रेम की आवश्यकता है और प्रेम में उत्कटता व परिशुद्धि बिना विरह के आगम के नहीं होती है। यही कारण है कि भक्तिमार्ग में इस उत्कट प्रेम अथवा विरहका प्रमुख स्थान है। गोपियों का प्रेम कृष्ण से तभी होगया था जब कि वे ब्रज में रहते थे और गायें चराया करते थें, किन्तु उस में वासना का भाव विद्यमान था और उसमें वह प्रबल वेग नहीं था जो कि भगवान् के वास्तविक स्वरूप के दर्शन के लिये आवश्यक था। क्यों कि जैसे जल का तीव्र अप्रतिहत प्रवाह ही रास्ते के झाड़ झंखाड़ आदि को साफ कर सकता है उसी प्रकार प्रेम का वह प्रबल प्रवाह विरह ही मन के दोष वासना, कालुष्य व राग द्वेष आदि को नष्ट करने में समर्थ हो सकता है। इस प्रकार मन के दोषों के सर्वथा निवृत्त होने पर ही हमारे मनरूपी दर्पण में भगवान् का पूरा प्रतिबिम्ब पड़ सकता है और हम उसका आस्वाद कर सकते हैं। जबतक मन स्वच्छ व एकाग्र नहीं है तबतक भगवान् का पूर्ण व वास्तविक स्वरूप हमारे मन में आ ही नहीं सकता, और न हम उसका पूर्ण आस्वादन ही कर सकते हैं। इसलिये गोपियों को भी भगवान् ने

कबीर व दादू आदि सन्तों ने जीवन्मुक्त पुरुष के लिये जीवतमृत
का प्रयोग किया है। इनके मत में वेदान्तियों की तरह आत्मा सदा
व नित्यानन्दस्वरूप है। केवल अविद्या व अध्यास रूप आपा के क
वह संसारी व बन्धनयुक्त होरहा है। यदि हमने आपा को मार
हम मुक्त हैं परमेश्वर से मिल जाते हैं। अतः जीवदवस्था में
के व परमेश्वरप्राप्ति के प्रतिबन्धक इस आपा को मार देना चाहिये
साधक ने ऐसा कर लिया वह आपा को मारने के कारण जीवतमृतक
है। यह जीवतमृतकत्वप्राप्ति अर्थात् अध्यास का नाश ही परमेश्वरके सा
का प्रधान कारण है। दादूजी ने बतलाया है कि 'हे जीव पीव की
प्रतिबन्धक इस आपा का परित्याग कर और उस तत्व को पहिचान
यह आपा पैदा होता है। क्यों कि अविद्या व अध्यासरूप आपा पर
ही उत्पन्न होता है'। वेदान्ती भी ऐसा स्वीकार करते हैं जिसका प्र
ऊपर किया जा चुका है। वेदान्त शास्त्रों में अध्यास को जो
बतलाया है वह केवल प्रवाहानादित्व के अभिप्राय से है जैसा कि
की अनादिता है।

जीवतमृतक पुरुषकी क्या स्थिति होती है एवं उसका मालूम कैसे वि
सकता है, इसका भी समुचित उत्तर दादूजी ने अपनी वाणी में दिया है

*दादू मृतक तब ही जानिये जब गुण इन्द्रिय नाहिं।*
*जब मन आपा मिट गया ब्रह्म समाना माहिं॥*
*देह रहै संसार में जीव राम के पास।*
*दादू कुछ व्यापै नहीं काल झाल दुख त्रास॥*

उपर्युक्त रीति से जीतेजी मनोवृत्ति को पूर्णरूप से आत्मा में लगा
दुःखादि द्वन्द्वों से रहित हो जाना दादूजी को अभिप्रेत है न कि परलं
जाकर दुःखध्वंस की आशा करना। यही जीवनमुक्ति तथा वास्तविक मोक्ष
दुःखत्रय से छुटकारा है।

---

१—दादू तो तूं पावै पीव कूं मैं मेरा सब खोइ।
मैं मेरा सहजैं गया तब निर्मल दर्शन होइ॥
२—दादू तो तूं पावै पीव कों जे जीवतमृतक होइ।
आप गंवाये पीव मिले जानत है सब कोइ॥
३—दादू तो तूं पावै पीव को आपा कछू न जान।
आपा जिस थैं ऊपजै सोई सहज पिछान॥

## (६) विरहयोग

अपने हृदयस्थित परमात्मतत्त्व की प्राप्ति के लिये शास्त्रों में अनेक साधन बतलाये हैं। जैसे—ज्ञानयोग, भक्तियोग, बुद्धियोग, कर्मयोग, लययोग, राजयोग आदि। किन्तु उन सब योगों से विलक्षण एक योग और है। जिसके मधुर रस का आस्वादन गोपियों व सन्तों ने ही प्रधान तौर से किया था। वह योग-साधन है विरहयोग। विरह एक ऐसा साधन है जिसमें साधक को किसी भी बाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं होती और वह साधक के ईश्वरप्राप्ति में अन्तरायभूत प्रत्येक वस्तु को हटा देता है तथा मलिनता, कषाय, राग, द्वेष आदि को जलाकर भस्म करदेता है। यह विरह बाह्य विषयों से मनकी वृत्ति को हटाकर आराध्य की तरफ लगा देता है व उसे एकतान व एकाग्र बना देता है। विरह उपास्य के प्रति अनन्य अनुराग को पैदा करता है तथा उस प्रेम में अपावन तत्वों को जला कर उसे पवित्र व सोने की तरह शुद्ध बना लेता है। विरह वह अग्नि है जिसमें तपकर साधक का प्रेम सुवर्ण की तरह उज्ज्वल व परिशुद्ध बन जाता है।

ईश्वर की प्राप्ति के लिये अनन्यसाधारण उत्कट व परिशुद्ध प्रेम की आवश्यकता है और प्रेम में उत्कटता व परिशुद्धि बिना विरह के आगम के नहीं होती है। यही कारण है कि भक्तिमार्ग में इस उत्कट प्रेम अथवा विरहका प्रमुख स्थान है। गोपियों का प्रेम कृष्ण से तभी होगया था जब कि वे ब्रज में रहते थे और गायें चराया करते थे, किन्तु उस में वासना का भाव विद्यमान था और उसमें वह प्रबल वेग नहीं था जो कि भगवान् के वास्तविक स्वरूप के दर्शन के लिये आवश्यक था। क्यों कि जैसे जल का तीव्र अप्रतिहत प्रवाह ही रास्ते के झाड़ झंखाड़ आदि को साफ कर सकता है उसी प्रकार प्रेम का वह प्रबल प्रवाह विरह ही मन के दोष वासना, कालुष्य व राग द्वेष आदि को नष्ट करने में समर्थ हो सकता है। इस प्रकार मन के दोषों के सर्वथा निवृत्त होने पर ही हमारे मनरूपी दर्पण में भगवान् का पूरा प्रतिबिम्ब पड़ सकता है और हम उसका आस्वाद कर सकते हैं। जबतक मन स्वच्छ व एकाग्र नहीं है तबतक भगवान् का पूर्ण व वास्तविक स्वरूप हमारे मन में आ ही नहीं सकता, और न हम उसका पूर्ण आस्वादन ही कर सकते हैं। इसलिये गोपियों को भी भगवान् ने

यह अवस्था प्रदान की जिससे उनके मनके वे सब दोष निवृत्त हो गये, उनमें अपने प्रियतम के वास्तविक स्वरूप को जानने की व तज्जन्य रसा करने की क्षमता आई ।

केवल ईश्वरप्राप्ति के लिये ही विरह की आवयश्कता नहीं है, किन्तु ल प्रेम की विशुद्धि के लिये भी विरह की आवश्यकता होती है । इसीलिये म कालिदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक शकुन्तला में तथा अन्य काव्यों में विरह के द्वारा उस लौकिक वासनामय प्रेम को शुद्धकर अलौकिक व परिशुद्ध रूप किया है ।

शाकुन्तल नाटक में हमें यह स्पष्ट यह देखने को मिलता है कि आ जानेपर सखियों के साथ आश्रमवृक्षों को सींचती हुई शकुन्तला के दर्शनम दुष्यन्त और शकुन्तला में गहरे प्रेम का उदय हो जाता है, और एततफल वे परस्पर गान्धर्व विवाह भी कर लेते हैं, किन्तु इस प्रेम में स्थायित्व व दृढ़ता नहीं है । वह केवल वासनामूलक है । वासनाप्रधान यह प्रेम आद नहीं है और न अनुकरणीय ही है । शृंगार के सिद्धहस्त कविशिरोमणि कालि उन दोनों का दुर्वासा के शाप द्वारा वियोग करवा देते हैं और उस वियोग में विरहाग्नि के द्वारा दोनों की ही वासनायें नष्ट हो जाती हैं । दोनों में ही वास उत्ताल प्रेम के स्थान में शान्त निर्विकार व स्थायी प्रेम का उदय होता है । दिव्य प्रेम है । यही स्थायी है । इसमें न वासना के शैवाल रहते हैं और न त की उत्ताल तरंगें । अतः यह शान्त निश्छल व निर्विकार रूप में परिणत हो ज है । यही प्रेम लोककल्याणकारी है । इसी प्रेम के प्रादुर्भाव के लिये का दास को प्रयत्न करना पड़ा और वह उस प्रेम के प्रादुर्भाव व आस्वादन क में पूर्ण सफल हुआ यही उसकी सिद्धहस्तता है जो कि अन्य किसी कवि नाटककार में इस स्वरूप में उपलब्ध नहीं होती । इसीलिये जर्मन कवि की प्रशंसा अत्यन्त औचित्यपूर्ण है ।

---

१—वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यत् ।
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम् ॥
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो—
रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम् ॥

सन्तों ने भी अपनी लक्ष्यप्राप्ति के लिये इस विरहयोग को अपनाया। सन्तशिरोमणि कबीर ने विरह को ही प्रेमपियारे मीत के पाने का साधन बतलाया है। वे कहते हैं—

*कबीर हँसना दूर कर, रोने से कर प्रीत।*
*बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत॥*
*हँस हँस कन्त न पाइया, जिन पाया तिन रोय।*
*हाँसी खेले पिव मिले, कौन दुहागन होय॥*

दरियासाहिब भी विरहप्राप्ति को हरि की कृपा बतलाते हैं और मानते हैं कि विरह ही संसार की विषयरूपी निद्रा का आस्वादन करने वाले मर्त जीव को जगाने का साधन है।

*दरिया हरि किरपा करि, विरहा दिया पठाय।*
*यह विरहा मेरे साध को, सोता लिया जगाय॥*

इस तरह अन्य सन्त भी ईश्वरप्राप्ति के लिये विरह को अत्यावश्यक मानते हैं, किन्तु दादूजी तो ईश्वरदर्शन के लिये ज्ञान, ध्यान, जप, तप, योग आदि अन्य सब साधनों को त्याग कर इसी को अपनाने का आदेश देते हैं। जैसे—

*ज्ञान ध्यान सब छाडि दे, जप तप साधन जोग।*
*दादू विरहा ले रहै, छाडि सकल रस भोग॥*
*जहँ विरहा तहँ और क्या, सुधि बुधि नाठे ज्ञान।*
*लोक वेद मारग तजै, दादू एकै ध्यान॥*
*विरह अग्नि में जालिबो, दर्शन के ताईं।*
*दादू आतुर रोइला दूजा कुछ नाहीं॥*
*बाट विरह की सोधिकरि पन्थ प्रेम का लेहु।*
*लैके मारग जाइये दूसर पाव न देहु॥*

परमात्मदर्शन के लिये मन व तदनुगामी इन्द्रियों का बाह्य विषयों से हट कर अविच्छिन्न रूप में आत्मोन्मुख होना आवश्यक है और यह बात विरह से सहज में ही होजाता है। यद्यपि विरह का आगम व उसका साधन सहज नहीं है फिर भी विरह के द्वारा आगे का कार्य सहज में होजाता है। अतः विरह अन्य साधनों की अपेक्षा उपयोगी व महत्वपूर्ण साधन है। जैसे—

*दादू विरह जगावै जीवको, दरद जगावै जीव ॥*
*जीव जगावै सुरति को, पंच पुकारे पीव ॥*
*सहजैं मनसा मन सधे, सहजै पवना सोइ ॥*
*सहजैं पंचों थिर भये, जे चोट विरह की होय ॥*

अर्थात् विरह से अन्तःकरण बाह्य विषयों से हट कर आत्मोन्मुख जाता है, और मनके आत्मोन्मुख होने से उसकी वृत्ति आत्माकार बन जाती और मनके आत्मोन्मुख तथा मनोवृत्ति के आत्माकाराकारित होने से मन की अ गामिनी अन्य इन्द्रियां भी स्वतः आत्मोन्मुख हो जाती हैं।

विरह के द्वारा आसानी से मन, मनोवृत्ति, पञ्च प्राणों का संयम व नि होजाता है, और पञ्च ज्ञानेन्द्रियों का भी निरोध होजाता है। दादूजी कहते कि विरह के द्वारा मन के सब विकार नष्ट होजाते हैं तथा वह निस्त्रैगुण्य हो आत्माकार ही बन जाता है। जैसे——

*विरह प्रेम की लहरि में, यह मन पंगुल होइ ॥*
*राम नाम में गलि गया, बूझै बिरला कोइ ॥*
*विरह अगनि में जलि गये, मन के मैल विकार ॥*
*दादू विरही पीव का, देखेगा दीदार ॥*
*विरह अगनि में जलि गये, मन के विषै विकार ॥*
*तार्थैं पंगुल है रह्या, देखेगा दीदार ॥*

आत्मदर्शन के लिये विरह की आवश्यकता क्यों है इस विषय के एक कार का ऊपर दिग्दर्शन किया जा चुका है। किन्तु दूसरा कारण एक और है जिस निर्देश दादूजी ने किया है और वह यह है कि यद्यपि आत्मदर्शन परमात्मा के प्र उत्कट प्रेम से होता है जिसे अनन्य व अव्यभिचारिणी भक्ति भी कहते हैं, कि उस परम प्रेमरूप भक्ति का वास्तविक उदय बिना विरह के नहीं होता। उपा की तरफ प्रवृत्ति व इच्छा या परम प्रेम बिना विरह के सम्भव नहीं। क्योंकि उत्क प्रेम अभीष्ट वस्तु की अप्राप्ति पर होता है। वस्तु का मूल्य ही उसके अभाव मालूम पड़ता है। यदि हीरा व चिन्तामणि भी निरन्तर पास में रहें व उपल रहें तो उसकी कोई कीमत व आदर नहीं होगा। जैसे अच्छे अच्छे पकवानों प्रीति बिना भूख के नहीं होती, शीतल व सुमधुर जल की इच्छा बिना प्यास

नहीं होती, जैसे शीतल व सुगन्धित छाया का मूल्य बिना धूप के नहीं होता, और जैसे अच्छी औषधियों व भस्मों आदि की इच्छा बिना व्याधि के नहीं हो सकती, उसी प्रकार परमात्मा के प्रति प्रीति भी अभावात्मक विरह के बिना नहीं हो सकती। अभाव ही एक ऐसा तत्व है जो कि प्रत्येक वस्तु के प्रति मनुष्य की इच्छा को जागरित करता है और उसके वास्तविक मूल्य को बतलाता है। इसीलिये अभावात्मक विरह की परमात्मा के प्रति अनुराग पैदा करने के लिये नितान्त आवश्यकता है। जैसे——

*पहली आगम विरह का, पीछै प्रीति प्रकाश ॥*
*प्रेम मगन लै लीन मन, तहाँ मिलन की आश ॥*

*दादू तृषा बिना तनि प्रीति न उपजै, शीतल निकट जल धरिया।*
*जनम लगै जीव पुणग न पीवै, निरमल दह दिशि भरिया ॥*

*दादू क्षुध्या बिना तनि प्रीति न उपजै, बहुविधि भोजन नेरा ॥*
*जनम लगै जीव रती न चाखै, पाक पूर बहुतेरा ॥*

*दादू तपति बिना तनि प्रीति न उपजै, संग ही शीतल छाया ॥*
*जनम लगै जीव जाणै नांही, तरवर त्रिभुवन राया ॥*

*दादू चोट बिना तन प्रीति न उपजै, औषध अंग रहन्त ॥*
*जनम लगै जीव पलक न परसै, बूंटी अमर अनन्त ॥*

*प्रीति न उपजै विरह बिन, प्रेम भगति क्यों होई ॥*
*सब झूठे दादू भाव बिन, कोटि करै जे कोई ॥*

यद्यपि विरह से आराध्य के प्रति अनन्य अनुराग का उदय होता है, और अन्त में उसे आराध्य के स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है। किन्तु यहां यह प्रश्न पैदा होता है कि विरह एक भयंकर ज्वाला है जो कि शान्त न होने पर साधक को भी जला सकती है। अत: यदि उसकी दीप्ति व तीव्रता से साधक का शरीर ही नष्ट हो जाय तो फिर यह मूल का नाश करने वाला साधन किस काम का। इससे तो अच्छा यही है कि ऐसे साधन को अपनाया ही न जाय जिससे लक्ष्य-प्राप्ति तो दूर रहा मूल के भी नष्ट होने की संभावना हो। इसका उत्तर दादूजी ने बहुत ही सुन्दर दिया है और वह है कि कदाचित् विरहाग्नि की तीव्रता से साधक का स्थूल शरीर नष्ट होजाय और पीव की प्राप्ति भी न हो तो उससे घब-

राना नहीं चाहिये। क्योंकि विरह के द्वारा विरहनी के मरने पर भी उसकी सुरति अर्थात् सूक्ष्मशरीरमयी मनोवृत्ति ही विरहनी बन जाती है जो स्थूलशरीरमय विरहनी के मरने पर भी पीव पीव पुकारती रहती है। जैसे—

जो कबहूं विरहनि मरै, तो सुरति विरहनी होइ।
दादू पीव पीव जीवतां, मुवां भी टेरै सोइ।

किन्तु यह विरह वास्तविक व आन्तरिक होना चाहिये, बाहरी व दिखावटी नहीं। वास्तविक विरह में किसी भी प्रकार का बाह्य दिखावा नहीं होता। बाह्य शरीर पर उसकी कोई प्रतिक्रिया भी दृष्टिगोचर नहीं होती। किन्तु भीतर निरन्तर अग्नि सी लगी रहती है। उसे किसी भी तरह अपनी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के बिना चैन नहीं पड़ता, विरही अन्दर ही अन्दर छटपटाता रहता है और झूरता रहता है। इसी प्रकार का पीव के प्रति आन्तरिक पीव के दर्शन के लिये दादूजी के मत में उपादेय है न कि कृत्रिम बाह्य विरह। जैसे—

अन्दर पीड़ न ऊपजै, बाहर करै पुकार।
दादू सो क्यों करि लहै, साहिब का दीदार॥
मनही मांहैं झूरणा, रोवै मन ही मांहि।
मन ही मांहि धाह दे, दादू बाहर नांहि॥
बिन ही नैनहुं रोवणा, बिन मुख पीड़ पुकार।
बिन ही हाथों पीटणा, दादू बारम्बार॥

ऐसे विरही के रोने व विलखने की कोई निश्चित अवधि नहीं है वह रातदिन विलाप किया ही करता है। उसकी अवधि अपने प्रियतम की प्राप्ति है। विरही किस प्रकार रातदिन विलाप किया करता है इसका उदाहरण दादूजी ने भारतीय परम्परा के अनुसार चातक व कुंज[3] आदि पक्षियों का दिया है। जैसे

---

१—विरही रोवै रातदिन, झूरै मन ही मांहि।
दादू औसर चलि गया, प्रीतम पाये नांहि।
२—मन चित चातक ज्यों रटै, पिव पिव लागी प्यास।
दादू दरसन कारनै, पुरवहु मेरी आस॥
३—दादू विरहनि कुरलै कुंज ज्यों, निस दिन तलफत जाइ।
राम सनेही कारनै, रोवत रैनि विहाइ।

चातक व कुञ्ज पक्षी की रटन अविच्छिन्न रूप से रातदिन लक्ष्यप्राप्ति तक चलती ही रहती है उसी तरह प्रेमी विरही की भी रटन चलती ही रहती है। यदि विरही की उस दशा का किसी से दृष्टान्त दिया जा सकता है तो जलसे से परित्यक्त मीन का दिया जा सकता है और इसी को सर्वाधिक उपयुक्त होने से दादूजी ने भी चुना है।

दादूजी इस विरह को पीव की प्राप्ति का सुगम व सहज उपाय मानते हैं, वे उसको साधारण लौकिक मनुष्यों की तरह विरह को शत्रु न मानकर उसे मित्र मानते हैं क्योंकि यह विरह ही है जो कि संसार सागर के विषयों में निमग्न सोते हुए जीव को सचेत करता है, और उसको अन्ततो गत्वा अपने प्रियतम अगम व अगोचर ब्रह्म से मिला देता है। अतः ऐसा उपकार करने वाले मित्र विरह को भी जो शत्रु मानते हैं वे मनुष्य न जाने कैसे हैं।

*विरह विचारा ले गया, दादू हमको आइ ॥*
*जहं अगम अगोचरराम था, तहं विरह बिना कोजाइ ॥*
*विरहा वपुरा आइकरि, सोवत जगावै जीव ॥*
*दादू अंग लगाइ करि, ले पहुंचावै पीव ॥*
*विरहा मेरा मीत है, विरहा वैरी नाहि ॥*
*विरहा को वैरी कहैं, सो दादू किस माहि ॥*

इस तरह विरह को सबसे सुन्दर व अचूक उपाय बतलाते हुए दादूजी इसी विरहयोग को ही रामप्राप्ति का उपाय बतलाते हैं तथा इसके होने पर अन्य उपायों के अवलम्बन का निषेध करते हैं। क्योंकि इसके होने पर अन्य उपायों की कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे—

*वाट विरह की सोधि करि, पन्थ प्रेम का लेहु।*
*लै के मारग जाइये, दूसर पांव न देहु ॥*
*विरहा वेगा भक्ति सहज में, आगे पीछै आइ ॥*
*थोड़े मांहें बहुत है, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥*

किन्तु दादूजी कहते हैं कि यह विरह विरही को अपने प्रियतम ईश्वर से तभी मिलाता है जबकि उस में पूर्ण अनन्यता हो। वह अनन्यता उसी की तरह होनी चाहिये जैसे चातक की स्वाति बिन्दु के प्रति, मीन की जल के प्रति, चकोर की चन्द के प्रति, पतंग की दीपक के प्रति व अमली की अमल के प्रति।

---

१—*अति गति आतुर मिलन कों जैसे जल बिन मीन ॥*
*सो देखै दीदार कों दादू आतम लीन।*
*ज्यों चातक चित जल बसै ज्यों पानी बिन मीन।*
*जैसे चन्द चकोर हैं ऐसे दादू हरिसों कीन।*

## (७) दार्शनिक सिद्धान्त

यद्यपि मध्यकालिक सन्तों के विषय में यह सामान्य धारणा है कि वे बहुत पढ़े लिखे नहीं थे। और न कहीं भी दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रक्रियानुसार उनने निरूपण किया है फिर भी उस समय की परम्परा तथा सत्संग के द्वारा उन्हें दार्शनिक सिद्धान्तों का पर्याप्त ज्ञान था, तथा उनकी साधना व परिपक्व अनुभव ने उनके उस समय प्रचलित तथा उनके द्वारा व्यवहार में परिणत ज्ञान को पर्याप्त परिपक्व बना दिया था। उनने जिन दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण किया है वे सब दार्शनिक प्रक्रिया से प्रायः मैल खाते हैं और उनका निरूपण देखकर यह मान नहीं होता कि यह निरूपण करने वाला व्यक्ति निरक्षर तथा दार्शनिक सिद्धान्त का ज्ञाता न था।

श्री दादूवाणी के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञान होता है कि उनने उच्च दार्शनिक सिद्धान्तों का बहुत ही सरल व प्राञ्जल तथा निर्भ्रान्त भाषा में निरूपण किया है तथा उनके दार्शनिक विचार भी अत्यन्त निर्भ्रान्त व संशयरहित हैं। दर्शनों का प्रक्रियानुसार अध्ययन करने वाले व्यक्तियों में भी इतनी निर्भ्रान्तता नहीं पाई जाती जितनी कि इन सन्तों के ज्ञान में। इसका एक मात्र कारण यही है कि उनने उन सिद्धान्तों का केवल गुरुमुख द्वारा श्रवण व वाणी द्वारा उच्चारण या आवर्तनमात्र नहीं किया किन्तु, उनको अपने जीवन में ढाला और इसतरह उनका पूर्ण प्रायोगिक अनुभव प्राप्त किया, जिससे उन सिद्धान्तों व तथ्यों के विषय में उन्हें प्रत्यक्षद्रष्टा की तरह किसी भी प्रकार की भ्रान्ति व संशय शेष नहीं रहा।

दार्शनिक सिद्धान्तों में भी ज्ञानाश्रयी शाखा के अनुयायी मध्यकालिक सन्तों ने निर्गुण ब्रह्म व माया आदि का तथा उनके निरूपक वेदान्त शास्त्र के सिद्धांतो का ही विशेष निरूपण किया है तथा उस समय परम्परानुसार प्राप्त प्रचलित योगदर्शन के सिद्धान्तों का। इन्हीं दो का निरूपण सन्तों की वाणियों में विशेषरूप से मिलता है। दादूजी ने भी इन्हीं का प्रधानतया निरूपण किया है। योगसिद्धान्तों का निरूपण उनकी वाणी में पहिले 'योगसिद्धांत' इस प्रकरण में करा चुके हैं। परिशेषात् यहाँ वेदान्तसिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराना है। उन में सर्वप्रथम प्रक्रिया को छोड़ कर फुटकर रूप से उनकी वाणी में मिलने वाले वेदान्तसम्बन्धी सिद्धान्तों का यहाँ दिग्दर्शन किया जाता है—

उन में भी सर्वप्रथम अभ्यर्हित होने से ब्रह्म के स्वरूप का, जैसा कि उनकी वाणी में मिलता है, दिग्दर्शन किया जाता है तथा दर्शनों के साथ उसका समन्वय भी किया जाता है।

**ब्रह्मस्वरूप—**

परं ब्रह्म[1] परात्परं, सो मम देव निरञ्जनम्।
निराकारं निर्मलं; तस्य दादू वन्दनम्॥
कृतम[2] नहीं सो ब्रह्म है, घटै बधै नहिं जाइ॥
पूर्ण निहचल एक रस, जगत न नाचै आइ॥

ऐसा [3]तत्त्व अनूपम भाई, मरै न जीवै काल न खाई॥
पावक जरै न मार्यो मरई, काट्यो कटै न टार्यो टरई॥
अखिर खिरै न लागे काई, शीत घाम जल डूब न जाई॥
माटी मिलै न गगन रहाई, अघट एक रस रह्यौ समाई॥
ऐसा तत्त्व अनूपम कहिये, सो गहि दादू काहे न रहिये॥

**मायारूप—**

उपजै बिनसै गुण धरै, यहु माया का रूप॥

---

१—निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्।
नित्यं सर्वगतं सूक्ष्मादिदेवमजं विभुम्॥

२—एष नित्यो महिमा ब्राह्मणोऽस्य, न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्।
तस्यैव स्यात्पदवित्तं विदित्वा न कर्मणा लिप्यते पापकेन॥ बृह. उप.

३—नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥
न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः॥
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥(गीता)

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्॥
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे (कठोप.)

दादू देखत थिर नहीं, खिण छांहो खिण धूप ॥

जे नांही सो उपजै, है सो उपजै नांहि ॥
अलख आदि अनादि है, उपजै माया मांहि ॥

ऐन्द्रजालिक की माया की तरह प्रपञ्चजननित्री माया भी क्षण भर में उत्पन्न व नष्ट होती रहती है। और सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों की और इनके विकारभूत अन्य गुणों की भी माया में सत्ता है। इसलिये उपर्युक्त साखी के पूर्वार्ध में बतलाया हुआ माया के लक्षण का माया में समन्वय बन जाता है। माया का यही स्वरूप वेदान्त में स्वीकार किया गया है। अन्तर इतना ही है कि वेदान्त में माया को अनादि माना गया है और यहां पर उसकी उत्पत्ति बतलाई है। किन्तु माया के अनादि होने पर भी उत्पत्ति का अर्थ आविर्भाव मानने से उक्त लक्षण में कोई दोष नहीं। अपि च मूलाविद्या के अनादि होने पर भी तूलाविद्या की उत्पत्ति मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

तीसरी बात यह भी है कि यहां उत्पत्ति व विनाश से वास्तविक उत्पत्ति व विनाश ही अभिप्रेत नहीं है, किन्तु उसका अनिर्वचनीयत्व अभिप्रेत है। और विचारदृष्टि से देखा जाय तो वेदान्त में ब्रह्म को छोड़कर शेष अनादि वस्तुओं में प्रवाहनित्यतामूलक ही अनादित्व अभिप्रेत है न कि वास्तविक अनादित्व, क्योंकि वास्तविक अनादिता तो जिसका नाश न हो उसी में बन सकती है अन्य में नहीं, इसीलिये 'तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम' इत्यादि वचनों में उसकी उत्पत्ति बतलाई गई है। और नागोजीभट्ट ने परमलघुमंजूषा में इसमें प्रवाह-नित्यता ही स्वीकार की है।

अर्थात् उसकी शाश्वत सत्ता नहीं है और न वह एकरूपा है, किन्तु क्षण क्षण में उसमें परिवर्तन होता रहता है। इससे अस्थायित्व अभिप्रेत है और इस अस्थायित्व का ही यहां इस लक्षण में दिग्दर्शन किया गया है।

उत्तरार्ध में जो दृष्टान्त दिया है वह इसका सम्यक्रूप से स्पष्टीकरण कर रहा है। जैसे छाया व धूप दोनों में कोई भी अधिक देर तक नहीं रहते किन्तु क्षण क्षण में परिवर्तित होते रहते हैं। यही दशा माया की है। दादूजी ने जो यह

---

१—अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ॥
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय,.................. (गीता)

दृष्टान्त दिया है वह वेदान्त में माया के लिये दिये गये सब दृष्टान्तों से भिन्न है, और वह अपनी स्वतंत्र विशेषता रखता है। क्योंकि दृष्टान्त जिस वस्तु को स्पष्ट करने के लिये दिया जाता है उसका सम्यक् स्पष्टीकरण करने वाला तथा आपामर-प्रसिद्ध होना चाहिये। धूप और छायाका दृष्टान्त ठीक ऐसा ही है। अतः माया की अस्थिरता तथा अनिर्वचनीयता के लिये यह दृष्टान्त अत्यन्त उपयुक्त है। वेदान्तशास्त्र में प्रतिपादित मृगमरीचिकादि दृष्टान्त माया की इतनी प्रतिक्षण बदलने वाली अस्थिरता को बतलाने में समर्थ नहीं हैं जितना कि यह दृष्टान्त।

जीवब्रह्म--भेद——

१—जामे मरै सो जीव है, रमिता राम न होइ ॥

जामण मरण थैं रहित है, मेरा साहिब सोइ ॥

२—दादू बंध्या जीव है, छूटा ब्रह्म समान ॥

३—कर्मों के बसि जीव है, कर्म रहित सो ब्रह्म ॥

१— अन्तःकरण में या अविद्या में आभास ही जीव कहलाता है। जैसा कि ब्रह्मसूत्र[1], पञ्चदशी[2], विचारसागर[3] आदि ग्रन्थों में बतलाया है। और

---

१ आभास एव च। ब्रह्मसूत्र अ. ३ पा. ३, अ. १७ सूत्र ५०

२ कूटस्थे कल्पिता बुद्धिस्तत्र चित्प्रतिबिम्बकः॥
प्राणानां धारणाज्जीवः संसारेण स युज्यते॥ पचदशी
चैतन्यं यदधिष्ठानं, लिंगदेहश्च यः पुनः॥
चिच्छाया लिंगदेहस्था, तत्संघो जीव उच्यते॥ पंचदशी

३ कामकर्मयुत बुद्धि में, जो चेतन प्रतिबिम्ब॥
जीव कहैं विद्वान तिहिं, जल नभ तुल्य सबिम्ब॥ विचारसागर
अथवा व्यष्ठि अज्ञान में, जो चेतन आभास॥
अधिष्ठानकूटस्थयुत, कहैं जीव पद तास॥ विचारसागर

वह आभास अपनी उपाधिभूत अन्तःकरण या अविद्या की उत्पत्ति व नाश के द्वारा उत्पन्न होता व नष्ट होता[1] रहता है। क्योंकि उपाधि के नाश से उपहित वस्तु का भी नाश स्वीकार कर लिया जाता है। जैसे घटरूप उपाधि की उत्पत्ति व नाश से आकाश की उत्पत्ति व नाश मान लिया जाता है। २-इसी तरह बद्ध चेतन की जीव संज्ञा है। क्योंकि जीव संसार के बन्धनों से बंधा रहता है। वह अध्यास के द्वारा उपाधि के धर्मों को अपना धर्म मान कर उनके दुःख से दुःखी व बद्ध रहता है। और जब यह अध्यास छूट जाता है तब वह बन्धनमुक्त होजाता है, तथा उसमें से जीवत्व हट जाता है और ब्रह्म कहलाता है। ३-इसी तरह शुभाशुभ कर्मों से लिप्त चेतन की जीव संज्ञा है और उससे रहित की ब्रह्म संज्ञा है। योगदर्शन[2] में भी यही जीव ईश्वर का भेद बतलाया गया है।

इस तरह ब्रह्म और जीव के स्वरूपबोधक तीनों लक्षण सर्वथा वेदान्तसम्मत हैं। और इन छोटे से लक्षणों में दोनों के स्वरूप तथा भेद का बोधन कर दिया गया है। यह भेद वास्तविक नहीं अपितु काल्पनिक है। क्योंकि मायाकृत काल्पनिक भेद ही वेदान्ती जीव ब्रह्म में मानते हैं वास्तविक नहीं।

---

१ घटादिषु प्रलीनेषु, घटाकाशादयो यथा ॥
आकाशे संप्रलीयन्ते, तद्वज्जीवा इहात्मनि ॥ ( गौडपादकारिका ) ॥
यथा घटाद्युत्पत्या घटाकाशाद्युत्पत्तिः। यथा च घटादिप्रलये घटाकाशादिप्रलयस्तद्वद्देहादिसंघातोत्पत्त्या जीवोत्पत्तिस्तत्प्रलये च जीवानामिहात्मनि प्रलयः ॥ शा. भा.
स वा अयं पुरुषो जायमानः शरीरमभिसंपद्यमानः स उत्क्रामन् म्रियमाणः ॥ (बृ. ४।३।८) ॥
चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात्तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात् ॥ ( ब्र. सू. ३ अ. २ पा. २ अ. १० सू. १६ )

२ क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। ( योगदर्शन )

ब्रह्म व माया का भेद—

माया का गुण बल करै, आपा उपजै आइ ॥
राजस तामस सात्त्विकी, मन चञ्चल ह्वै जाइ ॥
आपा नाहीं बल मिटै, त्रिविध तिमिर नहिं होइ ॥
दादू यहु गुण ब्रह्म का, सुंनि समाना सोइ ॥

ऊपर की साखियों में माया के उदय से तथा ब्रह्मज्ञान के उदय से जो स्थिति होती है उसका वर्णन किया है और उसी स्थिति को उन दोनों का गुण अर्थात् कार्य कहा है। यह सभी स्वीकार करते हैं कि माया का उदय होने पर ही बल की अर्थात् कर्मों की अथवा अध्यासजन्य ग्रन्थि की उत्पत्ति होती है, और माया के द्वारा ही अहंत्वरूपी धर्मी अध्यास तथा ममत्वरूपी धर्माध्यासस्वरूप आपा की उत्पत्ति होती है। इसी माया से ही मनुष्य में राजस, तामस व सात्त्विक भावों का उदय होता है, क्योंकि माया सत्त्वरजस्तमोमयी है। और इसी माया के द्वारा मन में भी चाञ्चल्य अर्थात् नानाविध संकल्पों का तथा रागद्वेषादि का उदय होता है अन्यथा मन शान्त रहता है। अतः उपर्युक्त सभी कार्य माया के हैं। अतः उन्हें माया का गुण बतलाया गया है। इसके विपरीत ज्ञान होते ही अहंत्वममत्वरूप अध्यास जिसे कि चित् व अचेतन की ग्रन्थि (हृदयग्रन्थि) कहा गया है निवृत्त हो जाता है, कर्मबन्धन भी नष्ट हो जाते हैं। तथा सात्त्विक, राजस, तामस भावों का भी नाश हो जाता है, अर्थात् निस्त्रैगुण्य का उदय हो जाता है। ब्रह्मज्ञान से इन सबकी निवृत्ति कठश्रुति भी बतला रही है:—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ कठोपनिषद्

ब्रह्म व माया का यह तात्त्विक भेद अत्यन्त दार्शनिक, सरल, संक्षिप्त व पूर्ण है।

**मन, पवन, प्राण व ब्रह्म का सूत्ररूप से निरूपण:—**

दह दिसि फिरै जु मन है, आवै जाय सो पवन ॥
राखणहारा प्राण है, देखणहारा ब्रह्म ॥

इस एक साखी में एक एक चरण के द्वारा मन, प्रवन, प्राण व ब्रह्म के पूर्ण स्वरूप का बोधन कर दिया है। जैसे-संकल्पविकल्प आदि[1] मन का स्वरूप है। वह संकल्प द्वारा इतस्ततः सर्वत्र भटकता रहता है। यह मन न जाने कहां कहां और किस किस योनि में भटकता रहता है। जैसा कि सूक्ष्म जन्म के अङ्ग में श्री दादूजी ने स्वयं बतलाया है—

निस वासर यहु मन चले, सूक्ष्म जीव संसार ॥
दादू मन थिर कीजिये, आतम लेहु उबारि ॥
कबहूं पावक कबहूं पाणी, धर अम्बर गुण बाइ ॥
कबहूं कुञ्जर कबहूं कीड़ी, नर पसुआ ह्वै जाई ॥

यही मन का स्वरूप "दहदिसि फिरै सु मन है" इस एक चरण से बतला दिया है। दूसरे चरण में मुख्य प्राण का स्वरूप बतलाया है। मुख्य प्राण श्वासप्रश्वासात्मक अथवा प्राणापानाद्यात्मक है। इसका स्वभाव आना जाना ही है। तीसरे चरण में प्राणोपाधिक जीव का स्वरूप बतलाया है अर्थात् राखणहारा प्राण अर्थात् जीव है। यह प्राणोपाधिक जीव ही इस शरीर की व इन्द्रियादिक की चैतन्य द्वारा व प्रेरणा द्वारा रक्षा किया करता है। इसलिये इसीकी संज्ञा जीव हुई है। क्योंकि प्राणधारण अर्थात् रक्षण ही जीव का जीवपना है जैसा कि "जीवत्वं प्राणधारणात्" इत्यादि वचनों से प्रतीत हो रहा है। और 'देखणहारा ब्रह्म' इस चौथे चरण में शुद्ध ब्रह्म व साक्षी का स्वरूप बतलाया गया है। ब्रह्म न कर्ता है, न भोक्ता है, किन्तु कूटस्थ व [2]साक्षीरूप से सब कार्यों का द्रष्टा है। यही भाव चौथे चरण का है। इस तरह एक साखी में चार पदार्थों का स्वरूप स्पष्ट बतला दिया गया है।

## शरीर में आत्मा की व्यापकता—

जीये तेल तिलनि में; जीये गन्ध फुलन्नि।
जीये माखन खीर में; इंये रबु रहन्नि ॥

---

१—उभयात्मकमत्र मनः संकल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात्। ( सां. का. )
२—साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ श्वेता० उप० ।

जैसे तिलों में तेल[1], फूलों में गन्ध, दूध में मक्खन सर्वत्र व्याप्त है उसी प्रकार आत्मा भी शरीर में नखशिखपर्यन्त सर्वत्र व्याप्त है। श्रुति में इन्हीं शब्दों में इसी प्रकार आत्मा की व्यापकता बतलाई गई है।

साक्षिस्वरूप—

सब देखण हारा जगत का; अन्तर पूरै साखि ॥
दादू स्याबति सो सही, दूजा और न राखि ॥
मांही थैं मुझको कहै, अन्तरजामी आप ॥
दादू दूजा धन्ध है, सांचा मेरा जाप ॥

इन दोनों साखियों में साक्षी का स्वरूप बतलाया गया है। जो सारे संसार के शुभाशुभ कृत्यों का द्रष्टा है। और जो हृदयप्रदेश अथवा सब वस्तुओं के अन्दर रहता हुआ साक्षित्व करता है, जो भीतर से प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक कार्य की प्रेरणा देता रहता है, और भीतर रहकर नियमन करता है, वही साक्षी है व अन्तर्यामी है। उपनिषदों में इसे ही अन्तर्यामी अक्षर व परमात्मा भी कहा है। इस साक्षी व अन्तर्यामी का कार्य सब कार्यों से अलिप्त रहते हुए उनका निरीक्षण करना व चैतन्यरूप से प्रेरणा करना व नियमन करना है। इसके निर्लिप्तत्व, सर्वद्रष्टृत्व, हृदयवासित्व, नियन्तृत्व व शुभाशुभकारयितृत्व धर्मों का उल्लेख उपनिषदों में व गीता में भी किया है। जैसे—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते ॥
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति, अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ मु० उ०

---

१—तिलानां तु यथा तैलं, पुष्पे गन्ध इवाश्रितः ॥
पुरुषस्य शरीरे तु, स बाह्याभ्यन्तरं स्थितः ॥
पुष्पमध्ये यथा गन्धः, पयोमध्ये यथा घृतम् ॥
तिलमध्ये यथा तैलं, पाषाणेष्विव कांचनम् ॥
एवं सर्वेषु भूतेषु, आत्मा नित्यं प्रतिष्ठितः ॥ (ध्यानबिन्दु उ.)

उपद्रष्टाऽनुमन्ता च, भर्ता भोक्ता महेश्वरः ॥
परमात्मेति चाप्युक्तो, देहेऽस्मिन् पुरुषः परः ॥
अनादित्वान्निर्गुणत्वात्, परमात्माऽयमव्ययः ॥
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय, न करोति न लिप्यते ॥
यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ॥
सर्वत्रावस्थितो देहे, तथात्मा नोपलिप्यते ॥ गीता १३ अध्याय

उपर्युक्त उपनिषद् मन्त्र व गीतावाक्यों में उस साक्षी ( परमात्मा ) के निर्लिप्तत्व, व सर्वद्रष्टृत्व आदि धर्मों का निरूपण है। एवं निम्नाङ्कित गीतावाक्य में हृदयवासित्व तथा नियन्तृत्व धर्म का वर्णन है:—

ईश्वरः सर्वभूतानां, हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥
भ्रामयन् सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि मायया ॥ गीता १८ अध्याय

**सगुण व निर्गुण ब्रह्म के भेद का निरूपण—**

औगुण छाडै गुण गहै, सोइ सिरोमणि साध ॥
गुण अवगुण थैं रहित है, सो निज ब्रह्म अगाध ॥

दादूजी शिरोमणि साधु को ही साकार व सगुण ईश्वर का रूप मानते हैं, जैसा कि उनने साधु के अङ्ग में प्रारम्भ में ही लिखा है—

निराकार मन सुरति सों, प्रेम प्रीति सों सेव ॥
जे पूजे आकार कौं, तो साधू प्रत्यक्ष देव ॥

किन्तु वह साधु नामधारी साधु ही नहीं होना चाहिये अपितु गुणातीत[1], जीवन्मुक्त व ब्रह्मनिष्ठ साधु होना चाहिये। वह शीत उष्ण, मान अपमान, सुख दुःख, मित्र

---

१—समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ॥
सर्वारम्भपरित्यागी, गुणातीतः स उच्यते ॥ गीता अध्याय १४

शत्रु आदि सब द्वन्द्वों से रहित, अभ्यासविरहित तथा स्वपरभेदवर्जित होना चाहिये। उसका मन निरन्तर ईश्वर में रत होना चाहिये, ऐसा साधु वस्तुतः ईश्वर का रूप है। ऐसे साधु को ही दादूजी शिरोमणि साधु मानते हैं। उनने स्वयं शिरोमणि साधु का लक्षण बताते हुए यही स्वरूप उस साधु का बतलाया है—

सोई साध सिरोमणी, गोबिन्द गुण गावै ॥
राम भजै विषया तजै, आपा न जनावै ॥
मिथ्या मुख बोले नहीं, परनिन्दा नांहीं ॥
औगुण छाडै गुण गहै, मन हरिपद मांहीं ॥

निर्वैरी सब आतमा, पर आतम जानै ॥
सुखदाई समता गहै, आपा नहिं मानैं ॥
आपा पर अन्तर नहीं, निर्मल निज सारा ॥
सतवादी साचा गहै, लै लीन विचारा ॥
निर्भय भजि न्यारा रहै, काहू लिपत न होई ॥
दादू सब संसार में, ऐसा जन कोई ॥

इस शिरोमणि साधु में रज और तम का सर्वथा अभिभव हो जाने से अवगुणों का लेश भी नहीं रहता, और इसी कारण वह अवगुणों की तरफ प्रवृत्त भी नहीं होता किन्तु सत्त्व के प्राबल्य से निर्वैरिता, समता, अमानिता, अदम्भिता आदि गुणों की उसमें आवृत्ति होती ही रहती है। ऐसा साधु वस्तुतः ईश्वर का साकार रूप है। क्योंकि ईश्वर को रामानुज आदि अशेषकल्याणगुणाकर और दोषरहित स्वीकार करते हैं। ऐसी ही स्थिति इस जीवन्मुक्त की भी है। अतः उसे ईश्वर का रूप मानने में कोई आपत्ति नहीं। उसीका दादूजी ने पूर्वार्ध साखी में निरूपण किया है—

औगुण छाडै गुण गहै, सोइ सिरोमणि साध ॥

और उत्तरार्ध में निर्गुण निर्धर्मक ब्रह्म का स्वरूप बतलाया है कि जो गुण व अवगुण सभी से रहित है वह ब्रह्म है। क्योंकि ब्रह्म के बिना सर्वधर्मराहित्य नहीं हो सकता।

### ब्रह्म में जीव के धर्मों की असंक्रान्ति—

दादू जल में गगन गगन में जल है, पुनि वह गगन निरालम् ॥
ब्रह्म जीव इहिं विधि रहैं, ऐसा भेद विचारम् ॥

इस साखी में जीव व ब्रह्म के परस्पर में ओत प्रोत भाव से रहने पर भी ब्रह्म जीव के धर्मों से संक्रान्त नहीं होता, इस बात को आकाश व जल के दृष्टान्त से समझाया है। अर्थात् जैसे आकाश में ही जल की स्थिति होती है और फिर जल के भीतर पुनः आकाश की सर्व व्यापक होने से स्थिति रहती है किन्तु वह आकाश जल में आश्रय व आश्रित रूप से रहने पर भी निर्लिप्त ही रहता है। इसी प्रकार सर्वव्यापक कूटस्थ चैतन्य में अध्यस्त बुद्ध्यादि में चेतनप्रतिबिम्बस्वरूप जीव रहता है और उस जीवमें फिर सर्वव्यापक ब्रह्म की अधिष्ठान व ईश्वर रूप से स्थिति रहती है फिर भी वह क्षेत्रज्ञ परमेश्वर जीव में आश्रय व आश्रित रूप से रहने पर भी उपाधि व उपहित जीव के धर्मों से संयुक्त नहीं होता है। जैसे आकाश प्रतिबिम्ब ही जल के चांचल्यादि से संयुक्त होता है न कि व्यापक आकाश। इसी रहस्य को गीता में भी निम्न श्लोक में स्पष्ट किया है—

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ॥
सर्वत्रावस्थितो देहे, तथात्मा नोपलिप्यते ॥

### अन्तर्मुखी वृत्ति से हृदयस्थ परब्रह्म का दर्शन—

दादू जहां जगत गुरु रहत है, तहां जे सुरति समाइ ॥
तो इनहीं नैनहुं उलटि करि, कौतिग देखै आइ ॥

अर्थात् जहां हृदयप्रदेश में परमात्मा की सत्ता है वहां अपनी मनोवृत्ति को लगा दें तो इन नेत्रों के अन्तर्मुख हो जाने से इन्हीं नेत्रों से ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है। कठश्रुति में भी इसी रहस्य का बोधन किया है—

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ॥
कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत् आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥

**अकर्तृत्वनिरूपण—**

जैसे साक्षी चेतन संनिधि द्वारा प्रेरक होते हुए भी अपने को कर्ता नहीं मानता अर्थात् अपने आप में कर्तृत्व का अध्यास नहीं करता। अतः कर्ता होते हुये भी अकर्ता रहता है उसी प्रकार कोई भी व्यक्ति ईश्वरार्पणबुद्धि से अथवा लोकसंग्रहबुद्धि से आसक्ति व इच्छा को छोड़कर कर्म करता हुआ उनसे बंधता नहीं किन्तु अकर्ता ही रहता है। इसी अकर्तृत्व का गीता में भी निरूपण किया है।

पश्यन्शृण्वन्स्पृशन्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ॥
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ॥
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

अर्थात् देखते सुनते स्पर्श करते सूंघते खाते जागते सोते श्वास लेते हुए एवं तत्तदिन्द्रियों से अपना अपना कार्य करते हुये भी मनुष्य आसक्ति त्याग कर और अकर्तृत्व बुद्धि से यदि कार्य करते हैं तो वे उस कर्मबन्धन से लिप्त नहीं होते और साक्षी की तरह अकर्ता ही रहते हैं। इस तरह कार्य करने की प्रक्रिया भारतवर्ष में प्रारम्भ से प्रचलित है। ऐसे ही अकर्ता व्यक्ति को दादूजी ने साक्षीभूत पद से कहा है और यही तरीका कार्य करने का उनने भी बतलाया है जैसे—

करता है सो करेगा दादू साखीभूत ॥
कौतिगहारा हो रह्या, अनकर्ता अवधूत ॥

अर्थात् साक्षी की तरह अकर्तृत्वबुद्धि से प्रत्येक पुरुष कार्य करता हुआ भी अकर्ता ही रहता है यह इसका सामान्य अभिप्राय है। और जो कर्तृत्वबुद्धि से करता है वह कर्मबन्धन से बंध जाता है। इसका स्पष्ट उल्लेख आगे की साखी में कर दिया है। जैसे—

कर्ता है करि सब कुछ करै, उस मांहि बंधावै ॥
दादू उसको पूछिये, उत्तर नहिं आवै ॥

## सृष्टिप्रयोजननिरूपण—

दार्शनिक प्राय: सभी इस प्रश्न को उठाते हैं कि भगवान् जब निरीह आप्तकाम व दयालु है तब फिर उसने इस सृष्टि को पैदा क्यों किया ? बिना प्रयोजन के सृष्टि-करण में निष्फल प्रवृत्ति होने पर उन्मत्त पुरुष की तरह ईश्वर में अप्रामाणिकता आती है तथा प्रयोजन मानने पर स्वार्थवत्ता आदि दोष आने से अनित्यता दोष आता है, और आप्तकामता का व्याघात होता है। इस विषय में दार्शनिकों के भिन्न भिन्न विचार हैं—

कितने ही पुरुष भोग व अपवर्ग प्रयोजन के लिये, कितने ही लीला[२] के लिये व क्रीडा[३] के लिये, और कितने ही लोकानुग्रह के लिये सृष्टि स्वीकार करते हैं। दादूजी ज्ञानी भक्त थे, अत: उनने उसके अनुकूल लोकानुग्रह को ही सृष्टि का प्रयोजन स्वीकार किया है। निम्नलिखित प्रश्नोत्तर से यह बात स्पष्ट हो जाती है। जैसे—

प्रश्न:—क्यों करि यह जग रच्यो गुसांई,
तेरे कोन विनोद बन्यो मन मांही ॥
कै यहु आपा परगट करना, कै यहु रचि लै जीव उधरना ॥
कै यहु तुमको सेवक जानै, कै यहु रचि लै मनके मानै ॥
कै यहु तुमको सेवक भावै, कै यहु रचि ले खेल दिखावै ॥
कै यहु तुमको खेल पियारा, कै यहु भावै कीन्ह पसारा ॥
यहु सब दादू अकथ कहानी, कहि समझावो सारंगपानी ॥

---

२—लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।

३—इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिरिति सृष्टौ विनिश्चिता।
भोगार्थं सृष्टिरित्यन्ये क्रीडार्थमिति चापरे।
देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा॥ गो. का.

**उत्तरः—**

परमारथ कों सब किया, आप स्वारथ नांहि ॥
परमेश्वर परमार्थी, कै साधू कलिं मांहि ॥
खालिक खेलै खेलकरि, बूंझे बिरला कोइ ॥
लेकर सुखिया ना भया, देकर सुखिया होइ ॥

**सृष्टिक्रमविचार—**

दार्शनिक इस विषय पर भी विचार करते हैं कि सृष्टि का पूर्वापरक्रम क्या है ? सभी दार्शनिकों ने अपनी-२ प्रक्रिया से सृष्टिक्रम बतलाया है। जैसे सांख्य वालों ने प्रकृति[1] महत्तत्वादिक्रम से, वेदान्तियों ने आत्मा से आकाश[2], वायु, तेज आदि क्रम से, नैयायिकों ने अणु, द्व्यणुक, त्र्यणुक आदि क्रम से। किन्तु उपनिषदों में क्रमशः भी सृष्टि का निरूपण मिलता है, जैसे आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधि से अन्न इत्यादि । और बिना क्रम के सीधी अक्षर या ब्रह्म से भी वहां सृष्टि बतलाई गई है। जैसे—इस ब्रह्म[3] से प्राण, मन, इन्द्रिय आदि सभी पदार्थ पैदा होते हैं। यही उभयथा सृष्टिक्रम उपनिषदों में हमें मिलता है, और प्रामाणिक है। दादूजी ने भी दोनों ही प्रकार से सृष्टि की उत्पत्ति बतलाई है। जैसे—

पहिली कीया आप थैं, उत्पत्ति ओंकार ॥
ओंकार थैं ऊपजै, पंच तत्त्व आकार ॥

---

१—प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्ततो गणश्च षोडशकः । सां. का.

२—तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवीत्यादि । तै. उप.

३—एतस्माजायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथ्वी विश्वस्य धारिणी । मु. उ.

भाई रे बाजीगर नट खेला, अैसे आपै रहै अकेला ॥

यहु बाजी खेल पसारा, सब मोहै कौतिगहारा ॥

यहु बाजी खेल दिखावा, बाजीगर किनहुं न पावा ॥

इहिं बाजी जगत भुलाना, बाजीगर किनहुं न जाना ॥

कुछ नाहीं सो पेखा, है सो किनहुं न देखा ॥

कुछ ऐसा चेटक कीन्हां, तन मन सब हर लीन्हा ॥

बाजीगर भुरकी बाही, काहू पै लखी न जाही ॥

बाजीगर परकासा, यहु बाजी झूठ तमासा ॥

दादू पावा सोई, जो इहिं बाजी लिपत न होइ ॥

इस पद में बाजीगर व नट की बाजी के समान उस परमेश्वर की माया से सारा जगत् मोहित हो रहा है और इस बाजीरूपी माया में लिप्त होकर उस परमात्मा-रूपी बाजीगर को देखने में असमर्थ है। यह दर्शकमण्डली माया में ही लिप्त होकर उसके रचने वाले परमात्मारूप बाजीगर की तरफ ध्यान नहीं दे रही है क्योंकि उस मायावी ने ऐसी मायारूपी भुरकी डालदी है जिससे वह उस भुरकी के कारण उनसे अदृश्य होगया है। उसको देखने का उपाय यही है कि हम उसकी भुरकी को शान्त करें और वह शान्त तभी हो सकती है जबकि बाजीगर का प्रकाश या उसकी कृपा हो। यही बात गीता में भगवान् ने भी कही है।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य, योगमायासमावृतः ॥

मूढोऽयं नाभिजानाति, लोको मामजमव्ययम् ॥

दैवी ह्येषा गुणमयी, मम माया दुरत्यया ॥

मामेव ये प्रपद्यन्ते, मायामेतां तरन्ति ते ॥ गीता अध्याय ७

## ( ८ ) साधना—

साध्य अर्थात् उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जो मार्ग व उपाय काम में लाये जाते हैं प्रायः वे ही साधना शब्द से लोक में व्यवहृत होते हैं। उन उपायों के साथ प्रकार-विशेष भी साध्यप्राप्ति में उपायभूत होने से साधना शब्द से कहा जाता है।

यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचार किया जाय तो मीमांसकों के भावना शब्द की तरह साधना शब्द भी अंशत्रय का बोधक है। अर्थात् जैसे भावना में ३ अंश हैं-- भाव्य अर्थात् फलांश, साधनांश तथा प्रकारतांश। उसी तरह साधना भी साध्यांश, साधनांश तथा इतिकर्तव्यतांश ( प्रकारतांश ) इन तीन अंशों से युक्त है। तात्पर्य यह है कि साधना शब्द केवल प्रकारविशेष अथवा साध्यसिद्धि के लिये आवश्यक उपायविशेष का ही बोधक नहीं है, अपितु प्राप्तव्य साध्यांश तथा उसकी प्राप्ति के लिये आवश्यक साधनविशेष तथा प्रकारविशेष का भी बोधक है।

उपर्युक्त तीनों तत्त्वों का साधना शब्द में समावेश मानकर ही इस प्रकरण में दादूजी की साधना का निरूपण किया जा रहा है। उन तीनों अंशों में दादू का साध्य निर्गुण, निरञ्जन, अलख व शुद्ध परब्रह्म है। इस तथ्य का निरूपण निर्गुण राम के प्रकरण में किया जा चुका है। परिशेषात् इस प्रकरण में केवल उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जिन साधनविशेषों को दादूजी ने आवश्यक समझा उनका निरूपण करना है।

दादूजी ने अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जिन साधनों को अपनाया था वे निम्नलिखित हैं—

१–आपा का परित्याग, २–ईश्वरस्मरण, ३–तन मन के विकारों का परिहार, ४–निर्वैरिता, ५–आत्मसमर्पण, ६–प्रेम व अन्तर्ध्यान ( लय )। दादूजी की वाणी में इन साधनों का बार बार उल्लेख किया गया है। उनने साखीभाग व पदभाग दोनों ही में इन साधनों के अपनाने पर पर्याप्त बल दिया है। उन अंशों का नीचे उद्धरण देकर इस तथ्य को स्पष्ट किया जाता है।[१]

### १–आपापरित्याग

दादूजी जितना लक्ष्यप्राप्ति का विरोधी आपा को अर्थात् अहंता को समझते हैं उतना और किसी को नहीं। यदि तात्त्विक दृष्टि से विचार किया जाय तो यह

[१] आपा मेटै हरि भज, तन मन तजै विकार। "निर्वैरी सब जीवसों, दादू यहु मत सार"

संगत भी है। क्योंकि दादूजी, जैसा कि पहिले बार बार कहा जा चुका है, वेदान्ति-सम्मत निर्गुण ब्रह्म को उपास्य मानने वाले हैं, और वेदान्तमत में अध्यासरूप माया ही उस ब्रह्म का आवरक है अन्य वस्तु नहीं। इसीलिये वे इस अहंता ममतारूप अध्यास अर्थात् धर्मी-अध्यास व धर्माध्यास की निवृत्ति आत्मज्ञान के लिये सर्वप्रथम आवश्यक समझते हैं। जब तक वह अध्यासरूप आपा नष्ट न हो जायगा; आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता। दादूजी कहते हैं कि जहां यह (ममता, अध्यास) विद्यमान है वहां 'मैं' परमात्मा नहीं है। और जहां यह अहंता ममताध्यासरूप अहंकार नहीं है वहां 'मैं' परमात्मा की सत्ता है। ये दोनों एक जगह नहीं रह सकते। अतः इस अहंकाररूप 'मैं' का परित्याग कर अहंकाररहित व आपारहित बन जाना आवश्यक है। यह आपा ही द्वैत है, इस आपा के मिटने पर द्वैत स्वतः शान्त हो जाता है, और अद्वैत शेष रह जाता है। जहां यह आपा है, वहाँ द्वैतभाव है, और जहां द्वैतभाव है वहां भय है। इसके मिटने पर मनुष्य अभय बन सकता है।

जहां राम तहं मैं नहीं, मैं तहं नाहीं राम ॥
दादू महल बारीक है, द्वै को नांहीं ठाम ॥
मैं नांहीं तहं मैं गया, एकै दूसर नांहि ॥
नांहीं को ठाहर घणी, दादू निज घर मांहि ॥
दादू आपा जब लगै, तबलग दूजा होय ॥
जब यहु आपा मिटि गया, तब दूजा नाहीं कोय ॥
दादू मैं नांहीं तब एक है, मैं आई तब दोइ ॥
मैं तैं परदा मिटि गया, तब ज्यों था त्यों ही होइ ॥
दादू है को भय घणां, नांहीं को कुछ नांहि ॥
दादू नांहीं होइ रहु, अपने साहिब मांहि ॥
दादू मैं मैं जालि दो, मेरे लागो आगि ॥
मैं मैं मेरा दूरि करि, साहिब के संग लागि ॥

ऊपर की "मैं नांहीं तहं मैं गया" इस साखी में एक 'मैं' पद आपा व अध्यास का वाचक है, तथा दूसरा आत्मा व परमात्मा का। वेदान्तसिद्धान्त में इन दोनों अर्थों में 'अहम्' शब्द का प्रयोग होता है। पञ्चदशीकार[1] ने इस बात को तृप्तिदीप प्रकरण में स्पष्ट कर दिया है कि अहं शब्द का प्रयोग केवल चिदाभास, केवल चिदात्मा तथा परस्पराध्यास द्वारा दोनों का मिला हुआ स्वरूप, इन तीनों अर्थों में होता है। उनमें मिला हुआ स्वरूप उसका मुख्य अर्थ है और शेष दो अमुख्य अर्थ। मुख्य अर्थ में अज्ञानी अहं शब्द का प्रयोग करता है और केवल चिदाभास और केवल चिदात्मा में ज्ञानी। ज्ञानी व्यवहारदशा में केवल चिदाभास में तथा शास्त्रीय दृष्टि से केवल चिदात्मा में अहं शब्द का प्रयोग करता है।

इस आपा का परित्याग मन के निग्रह के विना असंभव है। अतः एतदर्थ मन का निग्रह अत्यावश्यक है। पर जैसा कि भगवान् ने कहा कि मन अत्यन्त[2] चंचल व दुर्निग्रह है। उसको वश में कैसे किया जाय, क्योंकि वह बार बार रोकने पर व आत्मरूपी रज्जु से बांधने पर भी विषयों में चला ही जाता है। इसलिये उसके निग्रह करने का एकमात्र उपाय अभ्यास है। इस अभ्यास का यहां यह अर्थ है कि जब जब

---

१—अन्योन्याध्यासरूपेण, कूटस्थाभासयोर्वपुः ॥
एकीभूय भवेन्मुख्यस्तत्र मूढैः प्रयुज्यते ॥
पृथगाभासकूटस्थावमुख्यौ तत्र तत्त्ववित् ॥
पर्यायेण प्रयुङ्क्तेऽहंशब्दं लोके च वैदिके
लौकिकव्यवहारेऽहं गच्छामीत्यादिके बुधः ॥
विविच्यैव चिदाभासं कूटस्थात्तं विवक्षति ॥
असंगोऽहं, चिदात्माहं इति शास्त्रीयदृष्टितः ॥
अहंशब्दं प्रयुङ्क्तेऽयं कूटस्थे केवले बुधः ॥

२—चंचलं हि मनः कृष्ण, प्रमाथि बलवद् दृढम् ॥
तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम् ॥ गी. ६ अ.
असंशयं महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं चलम ॥

मन आत्मा को छोड़ कर विषयों पर जाता है तब तब उसे रोके और पुनः आत्मा में लगावे। गीता में यही उपाय मनोनिग्रह[1] का भगवान् ने बतलाया है। दादूजी ने भी निम्न साखी में इसी अभ्यास का उल्लेख किया है—

जहां थें मन उठि चले, फेरि तहां ही राखि॥ इति

किन्तु ऐसा अभ्यास बिना धैर्य के नहीं बन सकता। अतः यदि मन बार बार विषयों में जाता है तो साधक का भी यह कर्तव्य है कि वह धैर्यपूर्वक अपने मनोनिग्रह पर लगा ही रहे, कभी भी अधीर नहीं होवे ऐसी यह दृढ़ता भी मनोनिग्रह के लिये आवश्यक है। अतः भगवान् गौडपाद[2] ने इसी दृढ़ता से मनोनिग्रह शक्य बतलाया है। दादूजी ने भी इसी दृढ़ता का अवलम्बन किया है, और उनकी मान्यता है कि इस दृढ़ता वाला शूर ही इस मन को वश में कर सकता है। उनका निम्नलिखित पद इस बात की सत्यता बतला रहा है:—

रहु रे रहु मन मारोंगा, रती रती कर डारोंगा॥ टेक॥
खण्ड खण्ड करि नाखोंगा, जहां राम तहां राखोंगा॥
कह्या न मानै मेरा, सिर भानोंगा तेरा॥
घर में कदे न आवै, बाहरि को उठि धावै॥
आतमराम न जानै, मेरा कह्या न मानै॥
दादू गुरुमुख पूरा, मनसों झूझै सूरा॥

## २—हरिभजन

किन्तु इस मन का निग्रह तभी सम्भव हो सकता है जबकि ... लम्बन के साथ बांधा जाय और यह अवलम्बन आत्मचिन्तन के अतिरिक्त दूसरा

---

१—यतो यतो निश्चरति, मनश्चञ्चलमस्थिरम्॥
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

२—उत्सेक उदधेर्यद्वत् कुशाग्रेणैकबिन्दुना॥
मनसो निग्रहस्तद्वद् भवेदपरिखेदतः॥ गौ. का.

मन निर्मल तन निर्मल भाई, आन उपाय विकार न जाई ॥
जे मन कोयला तो तन कारा, कोटि करै नहिं जाइ विकारा ॥
जो मन विषहर तो तन भवंगा, करै उपाइ विषै पुनि संगा ॥
मन मैला तन उज्वल नाहीं, बहु पचि हारे बिकार न जाइ ॥
मन निर्मल तन निर्मल होई, दादू साच विचारै कोई ॥

## ४—निर्वैरता

चौथा साधन सब प्राणियों में निर्वैरता है—

सब प्राणियों में एक आत्मा व एक ईश्वर की सत्ता व्याप्त है। सब अपने ही स्वरूप हैं अपने से भिन्न कोई भी नहीं है तब फिर वैर किससे किया जाय? क्योंकि वैर पराये से होता है और प्राणियों में यहां पर या गैर कोई है नहीं। इस तरह प्राणिमात्र में आत्मा व एक ईश्वर की सत्ता समझकर किसी से भी वैर न करना ही निर्वैरता तथा विश्वबन्धुत्व है। दादूजी ने अपनी साधना में इसको महत्वपूर्ण स्थान दिया है। यह बात उनकी निम्नलिखित साखियों से व्यक्त हो जाती है। जैसे—

किस सों वैरी ह्वै रह्या, दूजा कोई नांहि ॥
जिसके अंग थैं ऊपजै, सोई है सब मांहि ॥
काहे को दुख दीजिये, साहिब है सब मांहि ॥
दादू एकै आत्मा, दूजा कोई नांहि ॥
निर्वैरी सब जीवसों, सन्तजन सोई ॥
दादू एकै आतमा, वैरी नहिं कोई ॥

## —आत्मसमर्पण

दादूजी ने अपनी साधना में आत्मसमर्पण को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। वे उस परमतत्त्व को प्राप्त करने के लिये सर्वात्मना आत्मसमर्पण करते हैं। वे तन मन, शीश आदि सब निछावर करने को तैयार हैं, और अनन्य गति से उस भगवान् की शरण स्वीकार करते हैं। निम्नलिखित वचनों में इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति है। जैसे—

तन भी तेरा, मन भी तेरा, तेरा पिण्ड प्रान ॥
सब कुछ तेरा, तूं है मेरा, यहु दादू का ज्ञान ॥
हमारे तुमही हो रिछपाल ॥
तुम बिन और नहीं कोइ मेरे भवदु:खमेटणहार । इत्यादि

इसी में दीनता व गरीबी का भी अन्तर्भाव समझना चाहिये । गीता में भी स्थान स्थान पर इस आत्मसमर्पण का उपदेश दिया गया है । जैसे—

यत् करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत् ॥
यत्तपस्यसि कौन्तेय ! तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥
मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसि सत्यं ते, प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज ॥
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ इत्यादि

## ६—अन्तर्ध्यान

इन साधनों के बाद प्रेम व अन्तर्ध्यान रूप सहज समाधि (लय) का स्थान दादूजी की साधना में आता है । दादूजी ने इन साधनों के बाद किसी कष्टतर मार्ग को न अपना कर मन आदि को अन्तर्मुख बनाकर अपनी मनोवृत्ति को निरन्तर आत्मा में लगाने को ही आत्मसाक्षात्कार का प्रधान करण माना है । यही उनकी सहज साधना है । नीचे की साखियों से इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति हो जाती है ।

सुरति अपूठी फेरिकरि, आतम माहैं आन ॥
लागि रहै गुरुदेव सौं, दादू सोइ सयान ॥
जोग समाधि सुख सुरति सौं, सहजैं सहजैं आव ॥
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव ॥
सहज शून्य मन राखिये, इन दोनों के मांहि ॥
लै समाधि रस पीजिये, तहां काल भय नांहि ॥

और इसी अवस्था में वे परमानन्द का अनुभव भी मानते हैं।

दादू सहजैं सुरति समाइ ले, पारब्रह्म के अंग ॥
अरस परस मिलि एक रस, सन्मुख रहिबा संग ॥

किन्तु यह अन्तर्ध्यान या निर्विकल्प समाधि या सहज समाधि इस प्रकार की होनी चाहिये जिसमें वृत्तिरूपी धागे का सम्बन्ध उससे टूटने न पावे। तभी वास्तविक आनन्द की प्राप्ति होती है, और तभी वास्तविक ज्ञान हो चुका है ऐसा जानना चाहिये। जैसे—

जब मन मृतक ह्वै रहै, इन्द्रिय बल भागा ॥
काया के सब गुण तजै, निरंजन लागा ॥
आदि अन्त मध्य एक रस, टूटै नहिं धागा ॥
दादू एकै रहि गया, तब जानी जागा ॥

संक्षेप में दादूजी की साधना में इन्हीं उपर्युक्त तत्त्वों का समावेश था, उनके इन साधनों को बतलाने वाली साखियां ये हैं:—

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार ॥
निर्वैरी सब जीव सौं, दादू यहु मतसार ॥
आपा गर्व गुमान तजि, मद मच्छर अहंकार ॥
गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजनहार ॥
झूठा गर्व गुमान तजि, तजि आपा अभिमान ॥
दादू दीन गरीब ह्वै, पाया पद निर्वान ॥
बाट विरह की सोधि करि, पन्थ प्रेम का लेहु ॥
लै के मारग जाइये, दूसर पांव न देहु ॥

ामान्यतः उपर्युक्त साधनों को ही दादूजी ने अपनी साध्यप्राप्ति के लिये था, जिनका दिग्दर्शन स्थान स्थान पर उनकी वाणी में उपलब्ध होता है।

## ६ — शून्यशब्दार्थविवेचन

सन्तों की वाणी में कुछ शब्द ऐसे हैं जो पूर्व सम्प्रदायों की परम्परा से उन्हें प्राप्त हुए हैं और जिनका उनकी वाणियों में आकर अर्थभेद हो गया है, तथा जिनका अर्थ व्याख्याकार भिन्न भिन्न करते हैं। दादूजी की वाणी में भी वे शब्द परम्परा से आये हुए हैं। वे शब्द शून्य, सुरति, सहज, तथा खसम हैं।

सर्वप्रथम इस शून्य शब्द पर ही विचार किया जाता है जिसका सभी सन्तों ने अपनी वाणियों में प्रायः प्रयोग किया है। शून्य शब्द के मूल की गवेषणा करने पर प्रतीत होता है कि इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग शून्यवादी बौद्धों ने किया है। उस परमात्मतत्त्व की अनिर्वचनीयता बतलाने के लिये ही माध्यमिक सम्प्रदायियों ने शून्य शब्द का प्रयोग किया है, न कि अभावबोधन करने के लिये। बौद्ध ग्रन्थों को देखने से इस अर्थ की स्पष्ट प्रतीति हो जाती है। जैसे—

> न सत् नासन्न सदसन्न चाप्युभयात्मकम् ॥
>
> चतुष्कोटिविनिर्मुक्त तत्वं माध्यमिका विदुः ॥ माध्यमिक कारिका ।१।७।
>
> शून्यमिति न वक्तव्यं, नाशून्यमिति वा भवेत् ॥
>
> उभयं नोभयं नैव, प्रज्ञप्त्यर्थं तु कथ्यते ॥

इस तरह शून्यवादी माध्यमिक बौद्धों ने सब धर्मों से तथा सुखदुःखादि से रहित सर्वव्यवहारातीत चतुष्कोटिविनिर्मुक्त केवल शुद्ध तत्त्व के लिये शून्य शब्द का प्रयोग किया है। यही वेदान्तियों का तुरीयातीत ब्रह्म है। वेदान्तियों ने शून्य शब्द का असत् अर्थ लगाकर तथा शून्य का अभाव अर्थ मानकर इस शून्यवाद का खण्डन किया है वह असंगत ही प्रतीत होता है। उपर्युक्त माध्यमिक कारिकाओं के देखने से किसी भी दशा में शून्य का असत् अर्थ प्रतीत नहीं होता। फिर न मालूम किस कारण से उनने उसका अभाव अर्थ मानकर खण्डन किया। यदि निष्पक्षपात-दृष्टि से विचार किया जाय तो अद्वैत सम्प्रदाय का प्रथम उद्भावक यह शून्यवादी बौद्ध ही है। उसी का शंकराचार्य ने ग्रहण किया है। अन्तर केवल इतना ही है कि माध्यमिक आचार्य शून्याद्वैत को मानने वाले हैं और शंकराचार्य सदद्वैत को स्वीकार करने वाले हैं। केवल नित्यत्व व क्षणिकत्व का मौलिक भेद माध्यमिक बौद्ध व शंकर के मत में है। क्योंकि शंकर परमतत्व को नित्य मानते हैं और बौद्ध क्षणिक व

अनित्या इस भेद को छोड़कर अन्य अंशों में शंकर ने बौद्धों के निर्विशेष व द्वन्द्वातीत परमतत्त्व को स्वीकार किया है व संसार को मिथ्या व मायिक (सांवृतिक) माना है। इसीलिये शंकराचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध कहा जाता है

सन्तों की वाणियों में तथा अन्य शास्त्रों में इस शून्य शब्द का आगम बुद्ध के माध्यमिक सिद्धान्त से हुआ है। उनने परमतत्त्व के लिये इस शून्य का प्रयोग किया है, क्योंकि यह परमतत्व अवाङ्मनसगोचर है तथा इन्द्रियातीत है। किसी भी प्रकार से उसका निर्वचन नहीं किया जा सकता। यदि किसी भी तरह से उसका निर्वचन कर दिया गया तो वह शब्दव्यवहार तथा मन का विषय बन जायगा और उसकी वागाद्यगोचरता नष्ट हो जायगी। इसलिये माध्यमिक आचार्यों ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि न उसे सत् शब्द से कहा जा सकता है न असत् शब्द से और न अनुभयात्मक अर्थात् सदसदभिन्न यां सदसदभावरूप से। वेदान्तियों ने भी उसको इसी प्रकार से अनिर्वचनीय माना है। "नेति नेति" इन श्रुतियों द्वारा निषेध रूप से प्रतीति इसी तथ्य की परिपुष्टि कर रही है।

'यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"

यस्यामतं तस्य मतं मत यस्य न वेद सः ॥

अविज्ञातं विजानतां, विज्ञातमविजानताम् ॥

इत्यादि श्रुतियाँ उसे अवाङ्मनसगोचर सिद्ध कर रही हैं।

उपर्युक्त सन्दर्भ से यह स्पष्ट है कि शून्यशब्द का प्रयोग आरंभ में मूल तत्त्व के लिये हुआ है। वही शून्यशब्द बौद्धों से नाथसम्प्रदायी योगियों में आया। उनने शून्यशब्द का प्रयोग उस परम तत्त्व की उपलब्धि के स्थान शरीरान्तर्वर्ती सहस्रारचक्र किया। नाथपन्थियों के अनुसार मूलाधार चक्र से आरंभ कर भ्रूमध्यवर्ती आज्ञाचक्र तक के ६ चक्रों के उपरिभाग मस्तक में वर्तमान एक सहस्रारचक्र है। इसी चक्र के लिये वे शून्यचक्र शब्द का प्रयोग करते हैं। यही गगनमण्डल व कैलाश भी कहलाता है। यौगिक क्रियाओं द्वारा जीव उस स्थान में जब पहुँच जाता है तब द्वन्द्वातीत और केवलावस्था को प्राप्त कर लेता है। यही शून्यावस्था है। इसमें आत्मा को सुख दुःख, राग, द्वेष, हर्ष, अमर्ष और किसी भी विषय की अनुभूति नहीं होती। यह चक्र चूंकि उस निर्विशेष कैवल्यरूप परमतत्त्व की प्राप्ति का स्थान है इसीसे उस चक्र में नाथपन्थियों ने शून्य शब्द का प्रयोग किया। यहां भी अर्थ प्रायः

वही है जो कि बौद्ध मत में था। नाथपन्थ से इस शून्य शब्द का तदुत्तरवर्ती सन्तों ने ग्रहण किया। उनने भी इसका उसी अर्थ में प्रयोग किया है। जैसे कबीरजी के निम्न पदों के देखने से मालूम पड़ता है—

सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै ॥
उन्मनी रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त्व को ध्यावै ॥

उलटि जाति कुल दोऊ विसारी, सुन्न सहज महिं बुनत हमारी ॥

दादूजी भी ने भी इसी अर्थ में -अर्थात् परमतत्त्व ब्रह्म को बतलाने के लिये इस शब्द का बहुत जगह प्रयोग किया है। जैसे—

सहज सुंनि सब ठौर है, सब घट सबही मांहि ॥
तहां निरंजन रमि रह्या, कोई गुण व्यापै नांहि ॥
शून्य सरोवर हंस मन, मोती आप अनन्त ॥
दादू चुगि चुगि चंच भरि, यों जन जीवें सन्त ॥
तीन शून्य आकार की, चौथी निर्गुण नाम ॥
सहज शून्य में रमि रह्या, जहां तहां सब ठाम ॥

उपर्युक्त साखियों को देखने से प्रतीत होता है कि दादूजी ने भी शून्य शब्द का प्रयोग परमतत्व के निवासस्थान शून्यमण्डल में किया है इसीलिये उनने शून्यरूपी सरोवर में परमेश्वररूपी मोती की स्थिति बतलाई है।

किन्तु दादूजी की वाणी में इस अर्थ को छोड़कर अन्य अर्थ में भी शून्य शब्द का प्रयोग हुआ है। जैसे—

काया शून्य पंचका वासा, आतम शून्य प्राण प्रकासा ॥
परम शून्य ब्रह्म सों मेला, आगे दादू आप अकेला ॥

इस साखी में शून्य शब्द का स्थान व देश अर्थ ही प्रतीत होता है, किन्तु इस अर्थ में शून्य शब्द का प्रयोग कैसे हुआ यह विचारणीय है। इस प्रश्न का समाधान करने के लिये शून्य शब्द के मूलभूत व्युत्पत्ति व आगम पर ध्यान देना पड़ेगा।

शून्य शब्द की व्युत्पत्ति 'शुने हितं शून्यम्' अर्थात् श्वा के लिये हितकर वस्तु शून्य है, इस रूप से मिलती है। इस श्वन् शब्द तथा एतदर्थक शुन[1] शब्द का आदि प्रयोग हमें वेद में मिलता है। सत्यादिभेद से विभिन्न १४ इन्द्रों में एक श्वा नाम का भी इन्द्र है। यह इन्द्र सब जगह व्याप्त है। वह सभी स्थानों में रहता है। "नेन्द्रादृते पवते धाम किञ्चन" यह श्रुतिवचन इस इन्द्र की सर्वत्र सत्ता बोधन कर रहा है। यह इन्द्र वही है जिसे आधुनिक ईथर कहते हैं। यह ईथर आकाश में सर्वत्र व्याप्त है इसलिये आकाश को शून्य कहा जाता है जो आकाश में शून्य शब्द का प्रयोग देखकर उसे अभाव ( खाली वस्तु ) समझते हैं वे सब नितान्त भ्रान्ति में हैं। सभी स्थान जब उस श्वानामक इन्द्र से व्याप्त हैं तब आकाश भी उस तत्व से व्याप्त होने के कारण अभावरूप कैसे होसकता है अतः यह निश्चित है कि उस श्वानाम इन्द्र के रहने के लिये उपयुक्त स्थान व देश शून्य कहलाता है।

यद्यपि इस तरह सभी स्थानों में शून्य शब्द का प्रयोग होना चाहिये, क्योंकि उपर्युक्त श्रुतिवचन के अनुसार श्वानाम इन्द्र की सत्ता सभी स्थानों में व्याप्त है, तथापि जो स्थान अन्य तत्वों से भी अवरुद्ध हैं वहाँ उस तत्व की सत्ता होने पर भी अन्य तत्वों की स्थिति रहने से वह स्थान श्वानाम इन्द्र के लिये उतना उपादेय नहीं जितना अन्य तत्वों की सत्ता से रहित स्थान। इस लिये अन्य पदार्थों की स्थिति से रहित आकाश में ही उस शब्द का प्रयोग होता है अन्यत्र नहीं। क्योंकि आकाश निराकार है। तथा अन्य धामच्छद पदार्थों से रहित है। इसी लिये अभाव, रिक्त स्थान तथा निराकार अर्थ में भी उत्तर काल में लक्षणा वृत्ति से शून्य शब्द का प्रयोग होने लगा है। किन्तु वस्तुतः प्रधानतया इस शब्द का प्रयोग उस श्वानामक इन्द्रशक्ति से युक्त स्थान तथा उस चरम शक्ति में हो होना उपयुक्त है। इसो शून्य शब्द का प्रयोग श्रीदादूजी ने ऊपर की साखियों में किया है। ब्रह्मरन्ध्र भी रिक्त स्थान होने से श्वा इन्द्र के लिये उपयुक्त है, अतः उसे भी शून्यमण्डल कहना उपयुक्त ही है। सामान्यतः यही शून्य शब्द का अर्थ है और यह उपर्युक्त रीति से वर्णित व्युत्पत्ति ही शून्य शब्द की वास्तविक व्युत्पत्ति प्रतीत होती है।

उपर्युक्त प्रकरणों द्वारा दादूजी की वाणी में विद्यमान कुछ सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराया गया है। इनसे व्यतिरिक्त भी शास्त्रीय दृष्टि से व लौकिक दृष्टि से बहुत से सिद्धान्तों का निरूपण करना और आवश्यक था, जैसे अनुभवप्रमाण, सहज,

---

१—शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन भरे नृतमं वाजसातौ। —ऋग्वेद ३ मं०

सुरति तथा खसम आदि शब्दों के सांशयिक अर्थों का स्पष्टीकरण, लोकपक्ष तथा भाषा-समीक्षा आदि । किन्तु यह सब मेरी कार्यव्यस्तता तथा असावधानी के कारण समय पर पूरा न हो सका, और अब मेले का समय अत्यन्त सन्निकट आगया अतः उनका प्रकाशन भी असंभव होगया । यदि यह भूमिका दादूजी के सिद्धान्तों पर कुछ प्रकाश डालने में समर्थ हो सकी और लोकरुचिकर हुई तो शेष प्रकरणों को भी प्रकाशित करने का प्रयास किया जायगा ।

इन प्रकाशित प्रकरणों में भी बहुत त्रुटियां हुई हैं उनका कारण मेरे श्रम तथा अनुसंधान की न्यूनता एवं कुछ आवश्यक पुस्तकों का न मिलना है । अतः चलते फिरते मुझसे जो कुछ हो सका है उसे ही विज्ञ पाठकों के समक्ष उपस्थित करता हुआ त्रुटियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ ।

मुझे 'श्री दादूवाणी' के इस नवीनतम संस्करण के सम्पादक माननीयपूज्यपाद गुरुवर्य, स्वामी श्री मङ्गलदासजी महाराज तथा इसके प्रकाशक माननीय वैद्यराज स्वामी श्री जयरामदासजी आयुर्वेदाचार्य से इस भूमिका को लिखने का आदेश प्राप्त हुआ था किन्तु मैं उनकी इच्छा के अनुरूप न इसकी भूमिका लिख सका और न उसे समय पर पूर्ण ही कर सका इसका मुझे अत्यन्त खेद है । किन्तु यह जितनी और जिस रूप में सम्पन्न हो सकी है उसे ही उनको समर्पण करता हूँ और आशा करता हूँ कि उक्त गुरुवर्य 'गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः' इस नियम के अनुसार मेरी त्रुटियों को ध्यानमें न रखते हुये मेरी तुच्छ भेंट को अवश्यमेव अपनाने की कृपा करेंगे ।

महाशिवरात्रि
संवत् २००८

सुरजनदास स्वामी
श्रीदादूमहाविद्यालय,
जयपुर,

# ❋ सूची पत्र साखी भाग ❋


| विषय | अंग संख्या | साखी संख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| संकलन कर्त्ता का निवेदन | | | |
| भूमिका | | | |
| गुरुदेव का अंग | १ | १५७ | १ से ३१ तक |
| सुमिरण का अंग | २ | १३२ | ३२ से ५४ तक |
| विरह का अंग | ३ | १५९ | ५५ से ८३ तक |
| परचै का अंग | ४ | २५० | ८४ से १५२ तक |
| जरणा का अंग | ५ | ३४ | १५३ से १५९ तक |
| हैरान का अंग | ६ | २७ | १६० से १६४ तक |
| लै का अंग | ७ | ४२ | १६५ से १७२ तक |
| निहकर्मी पतिव्रता का अंग | ८ | ९१ | १७४ से १९० तक |
| चितावणी का अंग | ९ | १५ | १९१ से १९३ तक |
| मन का अंग | १० | १२४ | १९४ से २१६ तक |
| सूक्ष्म जन्म का अंग | ११ | ८ | २१६ से २१८ तक |
| माया का अंग | १२ | १७० | २१८ से २५० तक |
| साच का अंग | १३ | १७६ | २५१ से २८२ तक |
| भेख का अंग | १४ | ४८ | २८३ से २९० तक |
| साधु का अंग | १५ | १२७ | २९१ से ३११ तक |
| मधि का अंग | १६ | ६३ | ३१२ से ३२२ तक |
| सारग्राही का अंग | १७ | २५ | ३२२ से ३२७ तक |
| विचार का अंग | १८ | ४३ | ३२७ से ३३७ तक |
| वेसास का अंग | १९ | ५० | ३३७ से ३४६ तक |
| पीव पिछाण का अंग | २० | ३४ | ३४७ से ३५२ तक |
| समर्थाई का अंग | २१ | ४४ | ३५३ से ३६० तक |
| शब्द का अंग | २२ | २८ | ३६० से ३६५ तक |
| जीवन मृतक का अंग | २३ | ५० | ३६५ से ३७४ तक |
| सूरातन का अंग | २४ | ८३ | ३७५ से ३८८ तक |

| | | | |
|---|---|---|---|
| काल का अंग | २५ | ६० | ३८८ से ४०१ तक |
| सजीवन का अङ्ग | २६ | ६८ | ४०२ से ४०८ तक |
| पारख का अंग | २७ | ३८ | ४१० से ४१८ तक |
| उपजण का अंग | २८ | १० | ४१६ से ४२० तक |
| दया निर्वैरता का अंग | २९ | ३६ | ४२० से ४२६ तक |
| सुन्दरी का अंग | ३० | २७ | ४२६ से ४३१ तक |
| कस्तूरिया मृग का अंग | ३१ | १४ | ४३२ से ४३४ तक |
| निन्दा का अंग | ३२ | १७ | ४३५ से ४३८ तक |
| निगुणा का अंग | ३३ | २८ | ४३८ से ४४३ तक |
| वीनती का अंग | ३४ | ८१ | ४४४ से ४५६ तक |
| साखी भूत का अंग | ३५ | १८ | ४५६ से ४५९ तक |
| बेली का अंग | ३६ | १६ | ४५९ से ४६२ तक |
| अविहड़ का अंग | ३७ | ११ | ४६३ से ४६४ तक |

# —: सूची पत्र पद भाग :—


| विषय | राग संख्या | पद संख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| राग गौड़ी | १ | ७६ | ४६५ से ५०२ तक |
| राग माली गौड़ | २ | १६ | ५०२ से ५१० तक |
| राग कल्याण | ३ | २ | ५११— |
| राग कानड़ो | ४ | ६८ से ११० तक | ५१२ से ५१६ तक |
| राग अडाणो | ५ | १११ से ११६ तक | ५१७ से ५१८ तक |
| राग केदारो | ६ | ११७ से १४२ तक | ५१८ से ५३० तक |
| राग मारू | ७ | १४३ से १६६ तक | ५३१ से ५४२ तक |
| राग रामकली | ८ | १६७ से २१२ तक | ६४३ से ५६७ तक |
| राग आसावरी | ६ | २१३ से २४६ तक | ५६८ से ५८१ तक |
| राग सिंधूड़ो | १० | २४७ से २५४ तक | ५८१ से ५८७ तक |
| राग गूजरी (देव गंधार) | ११ | २५५ से २५७ तक | ५८७ से ५८८ तक |
| राग कल्हेरो | १२ | २५८ से २५६ तक | ५८६— |
| राग परजियो | १३ | २६०— | ५६०— |
| राग भाणमली | १४ | २६१ से २६४ तक | ५६० से ५६२ तक |
| राग सारंग | १५ | २६५ से २६६ तक | ५६२ से ५६४ तक |
| राग टोडी | १६ | २७० से २८६ तक | ५६५ से ६०४ तक |
| राग हुसेनी बंगालो | १७ | २६० से २६१ तक | ६०४ से ६०५ तक |
| राग नट नारायण | १८ | २६२ से २६८ तक | ६०५ से ६०८ तक |
| राग सोरठ | १६ | २६६ से ३१२ तक | ६०६ से ६१६ तक |
| राग गुड़ | २० | ३१३ से ३३३ तक | ६१६ से ६२६ तक |
| राग विलावल | २१ | ३३४ से ३५४ तक | ६२७ से ६३७ तक |
| राग सूहो | २२ | ३५५ से ३६४ तक | ६३७ से ६५७ तक |
| राग बसंत | २३ | ३६५ से ३७३ तक | ६५७ से ६६१ तक |

| | | | |
|---|---|---|---|
| राग भैरूं | २४ | ३७४ से ४०७ तक | ६६१ से ६७६ तक |
| राग ललित | २५ | ४०८ से ४१२ तक | ६७६ से ६७८ तक |
| राग जैतश्री | २६ | ४१३ से ४१४ तक | ६७६— |
| राग धनाश्री | २७ | ४१५ से ४४५ तक | ६८० से ७०० तक |


—:※ पद भाग सम्पूर्ण ※:—

पद संख्या ४४५
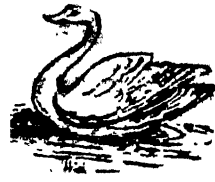
ॐ नमः परब्रह्मणे

अथ

# श्रीस्वामी दादूदयालजी की अनभै वाणी

## प्रथम गुरुदेव को अंग

**दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरु देवतः।**
**वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः॥ १॥**
**परब्रह्म परापरं, सो मम देव निरञ्जनम्।**
**निराकारं निर्मलम्, तस्य दादू वंदनम्॥ २॥**

१—निरंजन—अविद्या के कार्य से रहित शुद्ध चेतन उसको "नमो नमो"—बारम्बार नमस्कार है। दो बार नमो शब्दका प्रयोग अधिक बल देनेका हेतु है। निरंजन लक्ष्य है अतः उसके लिये पुनः पुनः नमस्कार अभिप्रेत है। निरञ्जनकी प्राप्ति गुरुकृपासे साध्य है; गुरुकृपा गुरुकी प्रसन्नता से होती है अतः गुरु वन्दनीय हैं; जैसा श्वेताश्वतर उपनिषद् का कथन है—

*यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ॥*
*तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥ १॥*

उत्तम गुरुकी प्राप्तिका साधन सत्संगति है, सत्संगका आधार है साधु पुरुष, अतः उन सब को "वन्दन"—विनयान्वित प्रणाम करते हैं। सर्वशब्दके प्रयोग में वर्णाश्रम व देशकाल का ग्रहण है। अन्तिम चरण में प्रणाम श्रद्धा सहित नमस्कारका फल बतलाया है। इस तरह जिन्होंने महापुरुषोंकी वन्दना से गुरु प्राप्त कर गुरु-कृपासे शुद्ध स्वरूपकी पहचान की वे "पारंगतः" सुख दुःख के क्लेश से पार चले गये तथा चले जाते हैं। नमः, नमस्कार, वन्दना, आश्रम, वर्ण तथा धर्ममें विशेष प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। नमः संन्यास आश्रमका, नमस्कार ब्राह्मणवर्ण का तथा वन्दना बौद्ध, जैन धर्ममें प्रयुक्त शब्दविशेष हैं। दादूजी महाराज ने तीनों शब्दोंका प्रयोग कर अपनी समत्व-भावना व्यक्त की है।

२—द्वितीय साखी में अपने ध्येय "निरञ्जन" का स्पष्ट निर्देश किया है तथा उनके स्वरूप-ज्ञान के लिये विशेष विशेषण प्रयुक्त किये हैं।

## गुरुप्राप्ति और फल

दादू गैब मांहि गुरुदेव मिल्या, पाया हम परसाद ।
मस्तकि मेरे कर धर्‌या, दष्या अगम अगाध ॥ ३ ॥

दादू सतगुर सहज मैं, कीया बहु उपगार ।
निरधन धनवंत करि लिया, गुरु मिलिया दातार ॥ ४ ॥

दादू सतगुर सूं सहजैं मिल्या, लीया कंठि लगाइ ।
दया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ ॥ ५ ॥

दादू देखु दयाल की, गुरू दिखाई बाट ।
ताला कूंची लाइ करि, खोले सबै कपाट ॥ ६ ॥

---

३—गैव = राहमें, अनायास । मस्तक = अहंकार रूपी शिर । कर = करुणामय हाथ । दष्या = दीक्षा, उपदेश । अगम = छः प्रमाणों से अप्राप्य । अगाध = अथाह, अतलस्पर्शी ।

४—निरधन = दरिद्र, तृष्णामय अन्तःकरण वाला । जैसा कि शङ्कराचार्यने प्रश्नोत्तरीमें निर्देश किया है—"*को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः*" । धनवन्त = धनवान्, सन्तोषमय । इस साखी में मध्यम शिष्य का निरूपण है । मध्यम शिष्य का गुरु-प्राप्तिका मार्ग "विहंगम मार्ग" है । जैसे पक्षी अपने प्रयास से भोजन प्राप्त करता है ऐसे ही शिष्य गुरुकी खोज द्वारा प्राप्ति करे ।

५—सहजैं = क्रमशः, धीरे-२ साधनों द्वारा । लिया कंठ लगाइ = जब शिष्य क्रमागत साधनोंसे उपदेशका अधिकारी हुआ तब गुरुने आत्मोपदेश प्रदान कर अपने समान कर दिया । दीपक = दीवा, ज्ञानप्रदीप । जगाई = सावधान करके । ताला = कर्ममय त्रिविध बन्धनरूप ।

६—बाट = राह, पंथ, सन्मार्ग । कूंची = अलौकिक उपदेश । सबै कपाट = भ्रम, संशय, मिथ्याज्ञान, तर्क, अज्ञानरूपी कपाट ।

### सतगुर बडाई

दादू सतगुरु अंजन बाहि करि, नैन पटल सब खोले ।
बहरे कानौं सुणने लागे, गूंगे मुख सौं बोले ॥ ७ ॥

सतगुरु दाता जीव का, श्रवन सीस कर नैन ।
तन मन सौंज संवारि सब, मुख रसना अरु बैन ॥ ८ ॥

राम नाम उपदेश करि, अगम गवन यहु सैन ।
दादू सतगुरु सब दिया, आप मिलाये अैन ॥ ९ ॥

सतगुरु कीया फेरि करि, मन का औरै रूप ।
दादू पंचौं पलटि करि, कैसे भये अनूप ॥ १० ॥

साचा सतगुर जे मिलै, सब साज संवारै ।
दादू नाव चढ़ाइ करि, ले पार उतारै ॥ ११ ॥

दादू सतगुर पसु मानस करै, मांणस थैं सिध सोइ ।
दादू सिध थैं देवता, देव निरंजन होइ ॥ १२ ॥

---

७—अंजन = ज्ञानोपदेश। नेत्र = बुद्धिकी ज्ञान-विज्ञान प्रवृत्ति। पटल = भ्रम, संशय। बहरे = धन, विद्या, रूप, बल, पद, जातिजन्य मद वाले। गूंगे = हरिस्मरण-विहीन वाणीवाले।

८—दाता = आत्मस्वरूपकी पहिचान कराने वाला दानी। सौंज = सँवारना।

९—अगम गवन यहु सैन = आत्मा तक जानेका संकेत यह है। सैन = संस्कृत मन, शुद्ध मन। अैन = साक्षात्, वही।

१०—औरै = अन्य, दूसरा। पंचौं = पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। अनूप = अतुल।

११—जे = कदाचित्। नाव = सत्सङ्गरूपी नौका, नाम-अभ्यास रूपी नौका।

१२—पशु = पामर। माँणस = मनुष्य। सिद्ध = आत्मनिष्ठ। देवता = दिव्य [illegible]।

दादू काढे काल मुखि, अंधे लोचन देइ ।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, जीव ब्रह्म करि लेइ ॥ १३ ॥
दादू काढे काल मुखि, श्रवनहु सबद सुनाइ ।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, मृतक लिये जिलाइ ॥ १४ ॥
दादू काढे काल मुखि, गूंगे लिये बुलाइ ।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, सुख मैं रहे समाइ ॥ १५ ॥
दादू काढे काल मुखि, मिहरि दया करि आइ ।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, महिमां कही न जाइ ॥ १६ ॥
सतगुरु काढे केस गहि, डूबत इहि संसार ।
दादू नाव चढ़ाइ करि, कीये पैली पार ॥ १७ ॥
भौ सागर मैं डूबतां, सतगुरु काढे आइ ।
दादू खेवट गुरु मिल्या, लीये नाव चढ़ाइ ॥ १८ ॥
दादू उस गुरु देव की, मैं बलिहारी जाउं ।
जहं आसण अमर अलेख था, ले राखे उस ठांउं ॥ १९ ॥

---

१३—काल = वासनामय काल । अन्धे = कामवृत्ति से अन्धे । लोचन = आत्मज्ञान के नेत्र । दृष्टान्त—

*भोज नृपति को देखि के कन्या ढक्यो न शीश ।*
*नृप पूछी गुरु पै गयो नर लक्षण बत्तीस ॥*

१४—कालमुखि = क्रोध की वृत्ति । मृतक = क्रोध के कारण संज्ञाहीन । लिया जिलाइ = क्षमा की शक्ति प्रदान कर क्रोध से उबार लिये ।

१५—कालमुखि = लोभमय वृत्ति । काढे = क्षमाशील बनाकर उबारे ।

१६—कालमुखि = मोहमय वृत्ति । मिहिर दया = अत्यन्त कृपा ।

१८—भौ = जन्म मृत्यु भव । खेवट = खेवैया ।

१९—आसण अमर अलेख था = ब्राह्मी स्थिति ।

ज्ञानोत्पत्ति

आत्म माँहैं ऊपजै, दादू पंगुल ज्ञान ।
कृतम जाइ उलंघि करि, जहां निरंजन थान ॥ २० ॥

आत्मबोध बंझ का बेटा, गुरु मुख उपजै आइ ।
दादू पंगुल, पंच बिन, जहां राम तहं जाइ ॥ २१ ॥

अनहद शब्द

साचा सहजैं ले मिलै, सबद गुरू का ज्ञान ।
दादू हमकूं ले चल्या, जहं प्रीतम का स्थान ॥ २२ ॥

दादू सबद बिचारि करि, लागि रहै मन लाइ ।
ज्ञान गहै गुरुदेव का, दादू सहजि समाइ ॥ २३ ॥

दया बिनती

दादू सतगुरु सबद सुणाइ करि, भावै जीव जगाइ ।
भावै अंतरि आप कहि, अपने अंग लगाइ ॥ २४ ॥

---

२०—आत्म = बुद्धि । पंगुल ज्ञान = निर्गुण ज्ञान, त्रिगुणातीत । कृतम = बनावटी, मायिक । उलंघिकरि = आसक्ति त्याग । निरंजनथान = अद्वैतभावना रूप, अद्वैत-अवस्थान रूप ।

२१—आत्मबोध = स्वरूप ज्ञान । बंझ = निश्चल बुद्धि । गुरुमुखि = गुरु में दृढ़ श्रद्धा-वान् जिज्ञासु । पंगुल = स्थिर बुद्धि । पंचबिन = पांच विषय रहित ।

दृष्टान्त—*क्रिया करत है बहुत विधि, ज्ञान दृष्टि जो नाहि ।*
*अन्ध चले मग जात हैं, परे कूप के माहि ॥ १ ॥*

२२—सहजैं = स्वाभाविक दशा, गुणातीत । प्रीतम = प्रियतम [illegible]

२३—शब्दविचारि = गुरु उपदेश को ध्यान[illegible] घट = शुद्ध अन्तःकरण । को गुरु उपदेश में दृढ़ कर[illegible] अन्तःकरण । दीवा = ज्ञानदीपक । ( निदिध्यासन ) [illegible]जिज्ञासु । मारगि = शमदमादि साधनपथ । जाइ = चलकर

२४—भावै = [illegible] पीवका = अपना पालक आत्मा ।

दादू दीवा है भला, दीवा करौ सब कोइ।
घरमैं धरया न पाइये, जे कर दिया न होइ॥ ३७॥
दादू दीये का गुण ते लहैं, दीया मोटी बात।
दीया जगमैं चांदिणां, दीया चालै साथ॥ ३८॥
निर्मल गुरु का ज्ञान गहि, निर्मल भगति बिचार।
निर्मल पाया प्रेम रस, छूटे सकल विकार॥ ३९॥
निर्मल तन मन आत्मा, निर्मल मनसा सार।
निर्मल प्राणी पंच करि, दादू लंघे पार॥ ४०॥
परापरी पासैं रहै, कोई न जाणैं ताहि।
सतगुर दिया दिखाइ करि, दादू रह्या ल्यौलाइ॥ ४१॥

शिष्य जिज्ञासा

जिन हम सिरजे सो कहां, सतगुरु देहु दिखाइ।
दादू दिल अरवाहका, तहं मालिक ल्यौ लाइ॥ ४२॥
मुझही मैं मेरा धणी, पड़दा खोलि दिखाइ।
आत्मसौं परमात्मा, परगट आणि मिलाइ॥ ४३॥

---

३७—दीवा = दीपक। दीवा = ज्ञानदीप।

३८—दीया = दान।

३९—निर्मल गुरु = जिनकी बुद्धिमें भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, वञ्चना नहीं हो ऐसा गुरु। गहि = ले, प्राप्त करे। निर्मल भक्ति = निष्काम भक्ति, परा भक्ति। निर्मल पाया प्रेमरस = वासना रहित प्रेमकी प्राप्ति। सकल विकार = अहंकारादि दोष।

४०—मनसा = मनीषा बुद्धि।

४१—परा = अविद्या। परी = प्रिय आत्मा। पासे रहैं = अन्तःकरणमें एक ही जगह रहते हैं। कोई = बहिर्मुखी जन। ल्यो = अखण्ड ध्यानवृत्ति।

४२—सिरजे = उत्पन्न किये। दिल = अन्तःकरण। अरवाह = जीवात्मा।

४३—धणी = मालिक, अपनी आत्मा। आणि = लाकर।

भरि भरि प्याला प्रेमरस, अपणे हाथि पिलाइ।
सतगुरु कै सदिकै किया, दादू बलि बलि जाइ॥ ४४॥
सरवर भरिया दह दिसा, पंखी प्यासा जाइ।
दादू गुरुप्रसाद बिन, क्यौं जल पीवै आइ॥ ४५॥
मांन सरोवर मांहि जल, प्यासा पीवै आइ।
दादू दोस न दीजिये, घर घर कहण न जाइ॥ ४६॥

गुरुलक्षण

दादू गुरु गरवा मिल्या, ताथैं सब गमि होइ।
लोहा पारस परसतां, सहजि समानां सोइ॥ ४७॥
दीन गरीबी गहि रह्या, गरवा गुरु गंभीर।
सूषिम सीतल सुरति मति, सहज दया गुरु धीर॥ ४८॥
सो धीदाता पलक मैं, तिरै, तिरावण जोग।
दादू औसा परम गुरु, पाया किहिं संजोग॥ ४९॥
दादू सतगुरु औसा कीजिये, रामरस माता।
पार उतारै पलक मैं, दरसन का दाता॥ ५०॥

---

४४—सिदकै = समर्पण, कुर्वाण।

४५—सरवर = सरोवर, चैतन्यरूपी व्यापक सागर। पंखी = पक्षी, अज्ञ जिज्ञासु।

४७—गरवा = गंभीर ज्ञान वाला। ताथैं = उनसे, ब्रह्मनिष्ठ गुरु से। गमि = मालूम, प्राप्ति।

४८—सूषिम = सूक्ष्म, न दीखने वाली। सूरति = आत्मनिष्ठ वृत्ति। मति = सहज बुद्धि।

४९—सो = जो, ब्रह्मनिष्ठ वे गुरु। धीदाता = आत्म बुद्धि देने वाले। जोग = लायक, योग्य। संयोग = मौके से।

५०—दरसन = आत्मा का परिचय।

देवै किरका दरदका, टूटा जौड़ै तार।
दादू सांधै सुरतिकूं, सो गुरु पीर हमार॥ ५१ ॥
दादू घाइल ह्वै रहै, सतगुरु के मारे।
दादू अंगि लगाय करि, भौसागर तारे॥ ५२ ॥
दादू साचा गुरु मिल्या, साचा दिया दिखाइ।
साचैं कूं साचा मिल्या, साचा रह्या समाइ॥ ५३ ॥
साचा सतगुरु सोधिले, साचे लीजी साध।
साचा साहिब सोधि करि, दादू भगति अगाध॥ ५४ ॥
सनमुख सतगुरु साधसौं, सांई सूं राता।
दादू प्याला प्रेम का, महारसि माता॥ ५५ ॥
सांईं सौं साचा रहै, सतगुरु सौं सूरा।
साधूं सौं सनमुख रहै, सो दादू पूरा॥ ५६ ॥

---

५१—किरका = कण, टुकड़ा। तार = विचारप्रवाह। सांधै = मिलावे, जोड़ दे। "सांधै सुरतिकूं"—प्रमाण, विकल्प, विपर्यय, निद्रा, स्मृति ये पाँच वृत्तिभंग के कारण हैं इनसे आत्मनिष्ठ वृत्ति को बचाकर आत्म से ही जोड़े रखे।

५२—मारे = शब्द बाण से मारे हुये। अंग लगायकरि = अपनी आत्मा में वृत्ति को लगाकर

५३—साचा गुरु = ब्रह्मनिष्ठ गुरु। साचा = अविद्या दोष से रहित चैतन्य।

५४—सोधिले = तलाश करले। साध = साधना, अभ्यास। अगाध = अखंड निर्गुण भक्ति।

५५—सनमुख = सामने, अनुकूल। राता = अनुरक्त, उसी के ध्यान में। महारसि = आत्म आनन्द, स्वरूपपरिचयरूपी रस।

५६—साँई सों साचा रहे = गर्भ के किये हुये कौल करार पूरे करे। सतगुरु सौं सूरा = पारमार्थिक गुरु की श्रद्धा भक्ति में अडिगता। साधु सौं सनमुख रहै = श्रेष्ठ पुरुषों के अनुकूल रहे। सो दादू पूरा = वही साधक ज्ञान ध्यानादि में पूरा = खरा उतरता है।

सतगुरु मिलै त पाइये, भगति मुकति भंडार।
दादू सहजैं देखिये, साहिब का दीदार ॥ ५७ ॥
दादू सांई सतगुरु सेविये, भगति मुकति फल होइ।
अमर अभै पद पाइये, काल न लागै कोइ ॥ ५८ ॥

गुरु बिन ज्ञान नहीं

इक लख चन्दा आणि घरि, सूरज कोटि मिलाय।
दादू गुरु गोब्यन्द बिन, तौभी तिमिर न जाय ॥ ५९ ॥
अनेक चंद उदै करै, असंख सूर प्रकास।
एक निरंजन नांव बिन, दादू नहीं उजास ॥ ६० ॥
दादू कदि यहु आपा जाइगा, कदि यहु बिसरै और।
कदि यहु सूषिम होइगा, कदि यहु पावै ठौर ॥ ६१ ॥
दादू विषम दुहेला जीवकौं, सतगुरु थैं आसान।
जब दरवै तब पाइये, नेड़ा ही असथान ॥ ६२ ॥

५७—भंडार = खजाना, समूह। दीदार = स्वरूप, मुख।

५९—आणि = लाकर। सूरज = सूर्य, ज्ञान कर्म उपदेशमय वाक्य रूपी सूर्य। तिमिर = अज्ञान का अन्धेरा।

६०—असंख = गिनती रहित। उजास = निर्मल प्रकाश।

६१—आपा = विविध अहंकार। बिसरै = भूले, त्यागे। और = अन्य, संसार सुख भोग की वासना।

६२—अज्ञ जीव को आत्मस्वरूप की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। ब्रह्मनिष्ठ गुरु की कृपा हो तो आत्मप्राप्ति अति सरल है। जब गुरु तथा परमेश्वर दया करें तो अपने अन्दर ही अपना स्थान सहज मिल जाता है।
दुहेला = दुर्लभ। आसान = सरल। दरवै = पसीजै, दयार्द्र हो। नेड़ा = पास, अपने आप में ही। असथान = जगह।

गुरुज्ञान

दादू नैन न देखैं नैन कूं, अंतर भी कछु नाहिं।
सतगुरु दर्पण कर दिया, अरस परस मिलि मांहि ॥ ६३ ॥
घटि घटि रामरतन है, दादू लखै न कोइ।
सतगुर सबदौं पाइये, सहजैं ही गम होइ ॥ ६४ ॥
जबही कर दीपक दिया, तब सब सूझन लाग।
यूं दादू गुरु ज्ञान थैं राम कहत जन जाग ॥ ६५ ॥

आत्मार्थी भेष

दादू मनमाला तहं फेरिये, जहं दिवस न परसै रात।
तहां गुरु बानां दिया, सहजैं जपिये तात ॥ ६६ ॥
दादू मन माला तहं फेरिये, जहं प्रीतम बैठे पास।
आगम गुरु थैं गम भया, पाया नूर निवास ॥ ६७ ॥

---

६३—नैनन देखे नैन कूं = दृष्टिगोलक अपने आपको देख नहीं सकता। करि = हाथ में। अरसपरस = एकमेक।
दृष्टान्त—*सन्त वणिक की हाट पर, सहज ही बैठे जाय।*
*के निर्धन तव धन घणों, पारस दिया बताय ॥ १ ॥*

६५—राम कहत जन जाग=गुरु उपदेशसे सजग होकर साधक पुरुष आत्माके चिन्तनमें लगता है
दृष्टान्त—*खाटू मकराणौं विचै, लोग खोदवा धायो।*
*वखना रे गुरु ज्ञानसूं, धन घर ही में पायो ॥ १ ॥*

६६—मनमाला = मानसिक जप, अजपा जाप। बाँना = गुरुदीक्षा का चिह्न। जहँ दिवस रात न परसे = इडा पिंगला को त्याग सुषुम्ना स्वर में अजपा जाप = मानसिक स्मरण करे। इस गुरु के उपदेश के अनुसार सहजैं समाधिस्थ हो हे तात जपिये = ध्यान-मग्न होइये।

६७—आगम = वेदादि शास्त्र ज्ञान। गुरु थैं गमभया = गुरु कृपा से वह ज्ञान सफल हुआ। गम भया = प्राप्त हुआ, सफल हुआ। नूर = शुद्ध चैतन्य।

दादू मन माला तहं फेरिये, जहं आपै येक अनंत ।
सहजैं सो सतगुरु मिल्या, जुगि जुगि फाग बसंत ॥ ६८ ॥

दादू सतगुरु माला मन दिया, पवन सुरति सूं पोइ ।
बिना हाथौं निसदिन जपै, परम जाप यूं होइ ॥ ६९ ॥

दादू मन फकीर माहैं हुवा, भीतरि लीया भेष ।
सबद गहै गुरुदेव का, मांगै भीख अलेष ॥ ७० ॥

दादू मन फकीर सतगुरु किया, कहि समझाया ज्ञान ।
निहचल आसणि बैसि करि, अकल पुरिस का ध्यान ॥ ७१ ॥

दादू मन फकीर जगथैं रह्या, सतगुरु लीया लाइ ।
अहनिसि लागा येक सौं, सहज सुंनिरस खाइ ॥ ७२ ॥

---

६८—अनंत = अगणित, सब में व्यापक ।

६९—सतगुरु ने अजपाजाप रूपी माला मन को दी, जिसको श्वास प्रश्वास के तार में वृत्ति द्वारा पिरोइये । बिना हाथ के वृत्ति द्वारा ही यह जप रात दिन चलता है इसी का नाम परम जाप सर्वोपरि स्मरण है ।

७०—गुरुदेव के आत्मोपदेश को ग्रहण कर–मन ने नाना वासना रूपी संग्रह का त्यागकर निर्विषय रूपी फकीरी का अपने आपमें निश्चय कर लिया है । बिना बाहरी किसी चिह्न के अपने आपका शुद्ध रूप बना भीतर ही भेष बना लिया है । यह भेष बनाने ही से अलेख = नहीं लखने में आनेवाले स्वस्वरूप की अब भीख माँग रहा है, चाह कर रहा है । उसकी प्राप्ति में लग रहा है ।

७१—निहचल आसणि = एकाग्र चित्तवृत्ति । अकलपुरिस = पूर्ण ब्रह्म, शुद्ध चेतना । ध्यान = तदाकारवृत्ति की एकाग्रता ।

७२—जगथैं = संसार से । लियालाइ = अपना लिया । सहज = निर्द्वन्द्व । सुनिरस = निर्विकल्प वृत्ति ।

दादू मन फकीर अैसैं भया, सतगुरु के परसाद।
जहां का था लागा तहां, छूटे बाद बिबाद ॥ ७३ ॥

नां घरि रह्या न बनि गया, नां कुछ किया कलेस।
दादू मनहीं मन मिल्या, सतगुरु के उपदेस ॥ ७४ ॥

भ्रम विध्वंस

दादू यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुरु दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बंदिगी, बाहरि काहे जाइ ॥ ७५ ॥

कस्तूरिया मृग

दादू मंझे चेला मंझि गुरु, मंझे ही उपदेस।
बाहरि ढूंढैं बावरे, जटा बंधाये केस ॥ ७६ ॥

मन का दमन

मन का मस्तक मूंडिये, काम क्रोध के केस।
दादू विषै विकार सब, सतगुरु के उपदेस ॥ ७७ ॥

---

७३—जहां का था = जिस चेतन से मन सक्रिय होता है उसी में लग गया।

७४—कलेस = क्लेश, दुःख। मन ही मन मिल्या = समष्टि मन से व्यष्टि मन मिल गया। मन ने स्वशरीर के अध्यास का परित्याग कर आत्मपरक बन गया तब व्यापक चेतन की सत्ता से स्वयं भी व्यापक हो गया।

७५—यह मसीति यहु देहुरा = शरीर में ही जो चेतन सत्ता है वही उपासना का सच्चा स्थान है। इसलिये यही वस्तुतः मसीत या मन्दिर है। भीतरि सेवा बंदिगी = मनका आत्माभिमुख हो उसीके चिंतन में लगना सच्ची सेवा वंदगी है वह भीतर ही अपने आपमें ही हो सकती है।

७६—मंझे चेला = भीतर ही अपना मन है वही चेला = शिष्य बनाना चाहिये। मंझिगुरु = ज्ञान की उत्पत्ति है वह गुरु है। मंझे ही उपदेस = मन का आत्माभिमुख होने का निश्चय यही उपदेश है जो अपने ही भीतर उत्पन्न होना चाहिये। बावरे = अस्थिर मन वाले

७७—मन का मस्तक = मन में संकल्प विकल्प है वह मन का मस्तक है। काम क्रोधादि, शब्दस्पर्शादि विषय यही केश हैं गुरुउपदेश रूपी उस्तरे से इनका मुण्डन करिये।

भ्रम विध्वंस

दादू पड़दा भरम का, रह्या सकल घटि छाइ।
गुर गोब्यंद कृपा करैं, तौ सहजैं ही मिटि जाइ ॥ ७८ ॥

सूषिम मार्ग

दादू जिहि मत साधू उधरैं, सो मत लीया सोध।
मनलै मारग मूल गहि, यहु सतगुरु का परमोध ॥ ७९ ॥

दादू सोई मारग मनि गह्या, जेंहि मारग मिलिये जाइ।
बेद कुरानूं नां कह्या, सो गुरु दिया दिखाइ ॥ ८० ॥

विचार

दादू मन भुवंग यहु विष भर्या, निरविष क्यौं ही न होइ।
दादू मिल्या गुरु गारड़ी, निरविष कीया सोइ ॥ ८१ ॥

एता कीजै आपथैं, तनमन उनमन लाइ।
पंच समाधी राखिये, दूजा सहज सुभाइ ॥ ८२ ॥

---

७८—पडदा भरमका = मन की विषयभोगप्रवृत्ति शरीर का अध्यास यह पडदा = आवरण है।

पंचविध भ्रम—भेद भ्रम कर्त्तव्य भ्रम, भ्रम है संग विकार।
ब्रह्म इतर जग सत्य भ्रम, भ्रम कल्पित संसार ॥ १ ॥

७९—मत = सिद्धान्त, निश्चय। मन लै = मनको लय अर्थात् अन्तर्मुखी कर। परमोध = शिक्षा, उच्च उपदेश।

८०—सोई = वही, वास्तविक। वेद कुरानूं नां कह्या = वेद और कुरानने जिसका नेति-नेति से वर्णन किया है।

८१—मन भुजंग = विषयासक्त मन सर्पवत् है। विष = जहर—विविध भोगवासना रूपी गरल। गुरु गारडी = विष शमन करने वाले गारडीकी तरह गुरु मिले हैं।

८२—आपथैं = अपनेआप। तन मन = स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर। उनमन = ऊँची दशा, आत्मनिष्ठवृत्ति। पंच = ज्ञानेन्द्रियां। समाधि = एकाग्र। दूजा = शरीरव्यवहार। सहज = सामान्य, प्रारब्धानुसार।

दादू जीव जंजालौं पड़ि गया, उलझ्या नौ मण सूत ।
कोइ एक सुलझै सावधान, गुरु बाइक अवधूत ॥ ८३ ॥

मन का रोकना

चंचल चहुं दिसि जात है, गुरु बाइक सूं बंधि ।
दादू संगति साधकी, पारब्रह्म सूं संधि ॥ ८४ ॥
गुरु अंकुस मानैं नहीं, उदमद माता अंध ।
दादू मन चेतै नहीं, काल न देखै फंध ॥ ८५ ॥
दादू मार्‍यां बिन मानैं नहीं, यह मन हरि की आन ।
ज्ञान खड्ग गुरुदेव का, ता संगि सदा सुजान ॥ ८६ ॥
जहां थैं मन उठि चलै, फेरि तहां ही राखि ।
तहं दादू लैलीन करि, साध कहैं गुरु साखि ॥ ८७ ॥
दादू मनही सूं मल ऊपजै, मन हीं सूं मल धोइ ।
सीख चली गुरु साध की, तौ तूं निरमल होइ ॥ ८८ ॥

---

८३—जंजालौ = कामादि, शब्दस्पर्शादिमें । गुरुबाइक अवधूत = गुरुके सच्चे उपदेशमें अपनेको दृढ़ रखने वाला ।

८४—चंचल = चपल, अन्तःकरण की चतुष्टय वृत्तिसे अस्थिर । बाइक = सच्चा शब्द, निर्गुण उपदेश । बंधि = बांध, एकाग्रकर । संधि = साँध, जोड़ ।

८५—अंकुस = भय, निरोध । उदमदमाता = नाना वासनाओंमें आसक्त । फंध = फन्दा, बन्धन ।

८६—मार्‍यां = निश्चल कियाँ । ता संगि सदा सुजान = गुरुके उपदेशरूपो खड्गको सदा साँधे रहता है वही सावधान चतुर अभ्यासी हैं ।

८७—जहां थैं = जिस जगहसे, आत्मसान्निध्य से । लैलीन = निर्विकल्प ध्यानमें विलय ।

८८—मल = विषयवासनारूपी गन्दगी । सीखचली = उपदेशके अनुसार चलकर ।

दृष्टान्त—दोय सिद्ध रहे बाहर मझ, सेवग दर्शन आय ।
कहे हाल मत जाय तूं, लिप्यो कीच कुल जाय ॥ १ ॥

दादू कछिब अपने करि लिये, मन इंद्री निज ठौर।
नांइ निरंजन लागि रहु, प्राणी परहरि और ॥ ८९ ॥
मनकै मतै सब कोइ खेलै, गुरुमुख बिरला कोइ।
दादू मनकी मानै नहीं, सतगुरु का सिष सोइ ॥ ९० ॥
सब जीवौं कौं मन ठगै, मनकौं बिरला कोइ।
दादू गुरुके ज्ञान सौं, सांई सनमुख होइ ॥ ९१ ॥
दादू येक सूं लैलीन ह्वणां, सबै सयानप येह।
सतगुरु साधू कहत हैं, परमतत्त जपि लेह ॥ ९२ ॥
सतगुरु सबद बमेक बिन, संजमि रह्या न जाइ।
दादू ज्ञान बिचार बिन, विषै हलाहल खाइ ॥ ९३ ॥
घरि घरि घट कोल्हू चलै, अमी महारस जाइ।
दादू गुरुके ज्ञान बिन विषै हलाहल खाइ ॥ ९४ ॥

---

८९—कच्छपकी तरह अपने मन इन्द्रियोंको विषयभोग से हटाकर आत्माकी ओर एकाग्र करले। शुद्ध चेतनमें वृत्तिको लगाये रहो और भोग-वासनारूपी संसार को छोड़दो।

९०—मतै = विचारसे ॥

दृष्टान्त—*गोरख देख्यो जाटको, हल जोतत मग पास।*
*शिष्य कियो मन मारियो, जग सूं कियो उदास ॥ १ ॥*

९१-दृष्टान्त—*मनको ठग्यो सु भरथरी. हठ वा हाल तालाव।*
*मूर्तवन्तो होय मन, संगत दियो न साव ॥ १ ॥*

९२—येकसूं = सब जगह व्यापक राम से। सयानप = होशियारी, सावधानी। परमतत्त जपि लेह = ध्यानवृत्तिसे परमतत्त = निर्गुण चेतनको प्राप्त कर।

९३—बमेक = विशुद्ध ज्ञान। संजमि = संयमी, रुका हुआ। हलाहल = भयंकर विष। विषै हलाहल खाइ = लोकवेदनिंदित विषयभोगरूपी प्रबल जहरको खाता है।

९४—घर घर घट कोल्हू चले = शरीररूपी घर घर में कामवृत्ति, रसनावृत्तिरूप कोल्हू चल रहा है। अभी महारस जाइ = प्राण (श्वास) और वीर्यरूपी महारस का क्षण क्षण विनाश हो रहा है।

गुरु शिष्य प्रबोध

सतगुरु सबद उलंघि करि, जनि कोई सिष जाइ।
दादू पग पग काल है, जहां जाइ तहं खाइ ॥ ९५ ॥

सतगुरु बरजै सिष करै, क्यूं करि बंचै काल।
दह दिसि देखत बहि गया, पाणी फोड़ी पाल ॥ ९६ ॥

दादू सतगुरु कहै सु सिष करै, सब सिधि कारिज होइ।
अमर अभै पद पाइये, काल न लागै कोइ ॥ ९७ ॥

दादू जे साहिब कूं भावै नहीं, सो हम थैं जनि होइ।
सतगुरु लाजै आपनां, साध न मानै कोइ ॥ ९८ ॥

दादू हूंकी ठाहर है कहौ, तनकी ठाहर तूं।
री की ठाहर जी कहौ, ज्ञान गुरूका यौं ॥ ९९ ॥

---

९५—जनि = मत, नहीं।

दृष्टान्त—*केशी सिष खाने गयो, गुरु को वचन निवारि।*
*दब्यो गार तल जाइ के, सन्तन लियो निकार ॥ १ ॥*

९६—बरजै = मना करे। बंचै = टलै। पाणी फोड़ी पाल = मर्यादा और श्रद्धा यह पाल है धर्मरक्षासे यह पाल सुरक्षित रहती है। अवज्ञा, उपेक्षा, अज्ञान तथा मनमतेपनरूपी पाणी से यह पाल टूट जाती है तब फिर उस जन की रक्षा का कोई उपाय नहीं है।

दृष्टान्त—*गुरु वचन नास्तिक करे, सो कुल कंम संग ठौर।*
*जन राघो प्रतीति बिन, भयो शाह तें चोर ॥ १ ॥*

९८—भावै = अच्छा लगे।

९९—हूं की ठाहर है कहो = शरीर के अभिमान की जगह ईश्वर की सत्ता को प्रधानता दी। तन की ठाहर तूं = स्थूल शरीर में भी चेतनामय प्रेरणा है अतः तन में यानी शरीर में भी तू = परमेश्वर ही व्यापक है यह मानो। री की ठाहर जी कहौ = अविद्या अज्ञानरूप मनोदशा का नाम ही है उस मनोदशा में से अज्ञान अविद्या को निकाल उस चेतन की स्थिति को स्थित करो यही जी कहना है। इस तरह स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर में चेतना सत्ता की प्रधानता मानो। यही गुरु का उपदेश है।

गुरुज्ञान

दू पंच सवादी पंच दिसि, पंचे पंचौं बाट।
ब लग कह्या न कीजिये, गहि गुरू दिखाया घाट॥ १००॥

दू पंचूं येक मत, पंचूं पूर्या साथ।
चौं मिलि सनमुख भये, तब पंचौं गुरु की बाट॥ १०१॥

सतगुरु विमुख ज्ञान

दू ताता लोहा तिणे सूं, क्यूं करि पकड्या जाइ।
हण गति सूझै नहीं, गुरु नहिं बूझै आइ॥ १०२॥

गुरुमुख कसौटी

दू औगुण गुण करि मानै गुरुके, सोई सिष सुजाण।
तगुरु औगुण क्यौं करै, समझै सोई सयाण॥ १०३॥

—'पंचसवादी पंचदिसि = पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ अपने अपने विषय में उलझ रही हैं। पंचे पंचौं बाट = पांचों के पांच विषयरूपी द्वार मार्ग हैं। तब लग कह्या न कीजिये = जब तक इन्द्रियें विषयरत हैं तब तक उनकी प्रवृत्ति पर न चलिये। गहि गुरु दिखाया घाट = गुरु ने उपदेश द्वारा बन्धन मुक्ति का घाट = रास्ता दिखाया है उसी को गहि = ग्रहण कर।

—पंचू येकमत = जब ज्ञानेन्द्रियाँ आत्माभिमुख प्रवृत्तिवाली बन गई तो एकमत होगई। पंचू पूर्या साथ = पांचों का साथ ही एक प्रवाह—एक धारा चेतन की ओर होगई। पंचौं मिल सनमुख भई = पांचों की आत्माभिमुख आरुढता यही सनमुख होना है तब समझना कि पांचों ने गुरु उपदेश ग्रहण कर लिया है।

—ताता = गर्म। तिणे = तृण, तिनखे से। गहण गति = पकड़ने का तरीका। बूझै = पूछे। कामादि दोषों से तपा हुआ मनरूपी लोहा, तीर्थ व्रतादि सामान्य कर्म रूपी तृण से नहीं पकड़ा जा सकता। गुरु निर्देश से वैराग्य तथा अभ्यास के द्वारा ही मन से कामादि दोषों का निवारण किया जा सकता है।

—सयाण = सयाना, चतुर।

दृष्टान्त—*रज्जब देख मुरीद कूं, पूछी दुख क्यूं पाय।*
*नही नाथ गुरु ईश है, मैं ही मूर्ख आय॥ १॥*
*कंठ काटत नैना ढके, औगुण ही गुण जान।*
*मन प्रतीति ऐसी धरी, सोई शिष्य सुजान॥ १॥*

सोने सेती बैर क्या, मारै घण के घाइ।
दादू काटि कलंक सब, राखै कंठि लगाइ॥ १०४॥
पांणी मांहैं राखिये, कनक कलंक न जाइ।
दादू गुरुके ज्ञान सौं, ताइ अगनि मैं बाहि॥ १०५॥
दादू मांहैं मीठा हेत करि, ऊपरि कड़वा राखि।
सतगुरु सिषकौं सीख दे, सब साधूं की साखि॥ १०६॥

गुरुशिष प्रमोध

दादू सिष भरोसै आपणै, व्है बोली हुसियार।
कहैगा सो बहैगा, हम पहली करैं पुकार॥ १०७॥
दादू सतगुरु कहै सु कीजिये, जे तूं सिष सुजाण।
जहं लाया तहं लागि रहु, बुझै कहा अजाण॥ १०८॥
गुरु पहली मनसौं कहै, पीछै नैन की सैंन।
दादू सिष समझै नहीं, कहि समझावै बैन॥ १०९॥

---

१०४—घाइ = चोट, प्रहार। सोने को सुनार शुद्ध करने के लिये ही तपाता है तथा चोट देता है। जिससे शुद्ध हुये सोने को सब लोग कंठ लगावे ऐसे ही शिष्य को गुरु भी कसौटी पर कस शुद्ध बनाते हैं।

१०५—ताइ अगनि में वाहि = आग पर धरकर तपावे।

१०७—सिष भरोसे आपणे = हे शिष्य अपने सामर्थ्य पर ही ध्यान देना। व्है बोली हुशियार = सावधानी से शक्ति समझकर ही वर शाप का वचन निकालना। अन्यथा कहेगा वही वहेगा = क्लेश सहेगा।

दृष्टान्त—दो गुरु शिष रु नृपति को, पुनः गुंसाई जान।
दीजे टीला को सुनो, सूत ही पूत वखान॥ १॥

१०८—लाया = लगाया।

१०९—सैन = इशारा।

दृष्टान्त—मनकी जगजीवन लही, नैन सैन गोपाल।
रज्जब बखने बैन गहि, गुरु दादू प्रतिपाल॥ १॥

कहैं लखै सो मानवी, सैंन लखै सो साध।
मनकी लखै सु देवता, दादू अगम अगाध ॥ ११० ॥

कठोरता

दादू कहि कहि मेरी जीभ रही, सुणि सुणि तेरे कान।
सतगुरु बपुरा क्या करै, जो चेला मूढ़ अजाण ॥ १११ ॥

गुरुशिष प्रमोध

एक सबद सबकुछ कह्या, सत गुरु सिष समझाइ।
जहं लाया तहं लागै नहीं, फिर फिर बूझै आइ ॥ ११२ ॥

[illegible] अपलट

ज्ञान लिया सब सीखि सुणि, मनका मैल न जाइ।
गुरु बिचारा क्या करै, सिष विषै हलाहल खाइ ॥ ११३ ॥
सतगुरु की समझै नहीं, अपणै उपजै नांहिं।
तौ दादू क्या कीजिये, बुरी बिथा मन मांहि ॥ ११४ ॥

सत्यासत्य गुरु पारख

गुरु अपंग पग पंख बिन, सिष साखां का भार।
दादू खेवट नाव बिन, क्यूं उतरैंगे पार ॥ ११५ ॥

---

१११—बपुरा = विवेकी। मूढ = दुराग्रही।

११२—एक शब्द = सिद्धान्त उपदेश। जहं लाया = वृत्ति अन्तर्मुखी करनेमें लगाया। बूझै = पूछे।

११३—ज्ञान लिया सब सीखि सुणि = ज्ञान प्राप्तिका सब उपदेश सुन लिया पर धारण नहीं किया। विचारा = विचारवान्। विषै = विषय। लोक वेद विरुद्ध आचरणरूपी हालाहल विष।

११४—बुरी व्यथा = वासनाजन्य पीड़ा।

११५—गुरु अपंग पग पंख बिन = गुरु सत्य और निश्चय रूपी पैरोंके बिना अपङ्ग है पंगुल है।

दादू संसा जीव का, सिष साखां का साल।
दोनौं कौं भारी पड़ी, ह्वैगा कौण हवाल॥ ११६॥
अंधे अंधा मिलि चले, दादू बंधि कतार।
कूप पड़े हम देखतां, अंधे अंधा लार॥ ११७॥

परप्रमोध

सोधी नहीं सरीर की, औरौं को उपदेस।
दादू अचिरज देखिया, ये जांहिगे किस देस॥ ११८॥
दादू सोधी नहीं सरीर की, कहैं अगम की बात।
जान कहावैं बापुड़े, आवध लीये हाथ॥ ११९॥

---

विवेक वैराग्यका पक्ष नहीं है। सिष साखोंका भार = शिष्य और शिष्य शिष्योंका बोझ अपनेपर करलिया है।

दृष्टान्त—*देख कनसलो दुखित अति, चींटी लगीं अनेक।*
*पहिली ये सब शिष्य थे, यह इनका गुरु एक॥*

११६—दादू संसा जीवका = दादूजी कहतेहैं जिस गुरुका संसारके नित्यानित्य का संशय निवृत्त नहीं हुआ है। सिष साखाँ = शिष्यपरम्परा। साल = क्लेशरूप। ह्वैगा = होगा।

११७—अंधे अंधा मिलि चले = जिस गुरु के स्वकीय मल विक्षेप, संशय, विपर्यय मिटे न हों वह अन्धा है, वैराग्य अभ्यास के बिना शिष्य अन्धा है। दोनों अधूरेपन में समान होकर चले।

११८—सोधी नहीं शरीर की = जिसको स्थूल शरीर के क्रिया तथा कर्तव्यकर्म का ही ज्ञान नहीं है। उपदेस = परमार्थतत्व की शिक्षा।

११९—जान कहावे बापुडे = अज्ञ होते हुये भी विज्ञ कहलाने की इच्छा करते हैं। आवध लिये हाथ = मानो अपने ही हाथ से अपना नाश करने के लिये आवध = आयुध, शस्त्र हाथ में लिया है।

सत्यासत्य गुरुपारष लक्षण

दादू माया माँहैं काढि करि, फिर माया मैं दीन्ह।
दोऊ जन समझैं नहीं, येकौ काज न कीन्ह॥ १२०॥
दादू सो गुरु किस कामका, गहि भरमावै आन।
तत्त बतावै निर्मला, सो गुरु साध सुजान॥ १२१॥
तूं मेरा हूं तेरा, गुरु सिष कीया मंत।
दून्यौं भूले जात हैं, दादू विसरऱ्या कंत॥ १२२।
दुहि दुहि पीवै ग्वाल गुरु, सिष हैं छेली गाइ।
यहु औसर यौंही गया, दादू कहि समझाइ॥ १२३॥
सिष गोरू, गुरु ग्वाल है, रष्या करि करि लेइ।
दादू राखै जतन करि, आणि धणी कौं देइ॥ १२४॥
झूठे अंधे गुरु घणें, भरम दिढावैं आइ।
दादू साचा गुरु मिलै, जीव ब्रह्म ह्वै जाइ॥ १२५॥

१२०—माया मांहे काढि करि = संसार के छल, कपट मिथ्या प्रपंचों से निकाल। फिर माया में दीन्ह = फिर वापिस सम्प्रदाय तथा मतमतान्तरों के छल छिद्रों में लगा दिया।

१२१—गहि भरमावे आन = शिष्यरूप से बन्धन में ले आन = संसार की ही उलझनों में भरमावे = फिराता रहे।

१२३—ग्वालरूप स्वार्थी गुरु अजा तथा गाय की तरह अज्ञ शिष्यों से स्वार्थसिद्धिरूपी दूध दुह-२ कर पीता है।

१२५—झूठे अंधे गुरु घणें = अपने कथन में पूरे न उतरने वाले झूँठे = श्रुतिस्मृतिविहीन अंधे; ऐसे गुरु = उपदेष्टा बहुत हैं। भरम दिढावे आन = उपर्युक्त गुरु संकीर्णतारूपी भ्रम को और दृढ कर देते हैं।

झूठे अंधे गुरु घणें, बंधे विषै बिकार।
दादू साचा गुरु मिलै, सनमुख सिरजनहार॥ १२६॥
झूठे अंधे गुरु घणें, भरम दिढावैं कांम।
बंधे माया मोहसौं, दादू मुखसौं राम॥ १२७॥
झूठे अंधे गुरु घणें, भटकैं घर घरबारि।
कारिज को सीझै नहीं, दादू माथै मारि॥ १२८॥

वे खरचबिसनी

दादू भगत कहावैं आपकौं, भगति न जाणैं भेव।
सुपिनै हीं समझैं नहीं, कहां बसै गुरुदेव॥ १२९॥

भ्रम विध्वंस

भरम करम जग बंधिया, पंडित दिया भुलाइ।
दादू सतगुरु ना मिलै, मारग देइ दिखाइ॥ १३०॥
दादू पंथ बतावैं पापका, भर्म कर्म बेसास।
निकट निरंजन जे रहै, क्यौं न बतावैं तास॥ १३१॥

---

१२६—सनमुख सिरजनहार = अन्तःकरणचतुष्टयमें प्रकाश देनेवाला सिरजनहार यदि वास्तविक गुरु मिले तो सनमुख है यानी अन्तर्मुख वृत्तिके समीप ही है।

१२८—सीझै नहीं = सिद्ध नहीं हो। दादू माथै मारि = दादूजी कहते हैं ऐसा गुरु सिरपची-मात्र है अर्थात् परित्याज्य है।

१२९—भगत कहावै आपको = अपनेको नाना प्रपञ्च छल रच कर भगत कहानेकी चेष्टा करते हैं, दिखावटी भक्त बनते हैं। भेव = रहस्य, भेद।

१३०—भरम करम जग बंधिया = संसारको केवल पण्डितों ( वाचक ज्ञानी ) ने सकाम कर्मके भ्रममें जकड़ दिया है।

१३१—पंथ बतावै पापका = सकाम कर्मके भ्रमका विश्वास पक्का कर कर्म-फल-भोग रूपी पापका पंथ बताते रहते हैं। सकाम कर्मका फल भोगना अनिवार्य है फलभोग के लिये जन्मना मरना भी जरूरी है। जन्ममृत्युका क्लेश ही सबसे बड़ा पाप है।

बिचार

**दादू आपा उरझे उरझिया, दीसै सब संसार।**
**आपा सुरझे सुरझिया, यहु गुरुज्ञान बिचार ॥ १३२**

गुरुमुख कसौटी

**साधू का अंग निर्मला, तामैं मल न समाइ।**
**परमगुरू परगट कहै, तार्थैं दादू ताइ ॥ १३३ ॥**

सुमिरण नाम चितावणी

**रांम नांम गुरु सबदसौं, रे मन पेलि भरंम।**
**निह करमी सूं मन मिल्या, दादू काटि करंम ॥ १३४ ॥**

१३२—शरीर, जाति, वर्ण, आश्रम, विद्या, पद, धन, बल, रूप आदि के अहङ्काररूपी आपेमें जो उलझे रहता है वह उलझता ही जाता है। अहंकारसे घृणा राग द्वेष बढ़ते हैं। उस स्थितिमें उसकी मनोवृत्ति नाशवान् संसारके पदार्थोंमें ही लगी रहती है। आपा सुरझै सुरझिया = सब प्रकारके आपे = अहंकारका निवारण कर दिया। स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीरका अध्यास निवृत्त होगया वह व्यक्ति सुरझिया = बन्धनोंसे निकल गया। यही गुरुका तत्वविचाररूपी ज्ञान है जिसको धारण करना चाहिये।

१३३—परम गुरु परगट कहै = पारमार्थिक गुरु साक्षात् निर्देश करते हैं कि "साधु का अन्तःकरण निर्मल होना ही चाहिये"। तार्थैं दादू ताइ = इसीसे साधुपन की सार्थकता के लिये अपने सब मल विक्षेप अभ्यासों को तितिक्षा तथा ज्ञान की अग्नि से तपा तपाकर समाप्त कर दो।

१३४—राम नाम गुरु सबद सौ = अविद्यारहित चेतन के निश्चयरूपी 'राम नाम' स्मरण से तथा पारमार्थिक महावाक्यों से निरूपित गुरुशब्द उपदेश द्वारा। रे मन पेलि भरम = हे मन विविध अध्यास तथा सकाम कर्मरूपी भ्रम को पेलि = दूर भगा दे। दादू काटि करंम = संचित तथा आगामी कर्मों के फन्दे से निकल।

मनुष्य विविध वासना के जाल में कैसे उलझता है तदर्थ रज्जबजी महाराज दादूजी के शिष्य अपने छप्पयमें कैसे सुन्दर विवेचन करते हैं :—

### सूक्ष्म मार्ग

**दादू बिन पाइन का पंथ है, क्यौं करि पहुँचै प्राण।**
**बिकट घाट औघट खरे, मांहि सिखर असमांन ॥ १३५ ॥**
**मन ताजी चेतन चढ़ै, ल्यौ की करै लगांम।**
**सबद गुरू का ताजणां, कोइ पहुंचै साध सुजाण ॥ १३६ ॥**

---

*सारंग सुर सुं विनाश, मीन रसना रस आसा।*
*पावक पेखि पतंग, भंवर नासिक भेदि वासा ॥*
*पटछल वारुण वाघ, मुग्ध मति मर्कट सूवा।*
*मूस चुरावत वाति, पवन पावग जल मूवा ॥*
*श्वान मांच दर्पन महल, मकरी मूंद सुद्वार।*
*रज्जब मरहिं सिंधोर वग, पाया नहीं विचार ॥ १ ॥*

१३५—बिन पाइन का पंथ है = ज्ञान का रास्ता हाड मांस के पैरों का नहीं है। इसके लिये निर्मल बुद्धि तथा स्थिर विचाररूपी पैरों की आवश्यकता है। क्यों कर पहुंचे प्राण = अज्ञान दोष से कलुषित अन्तःकरण आत्माभिमुख कैसे हो, कैसे वहां पहुंचे। मार्ग में काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग द्वेष रूपी अनेकों कठिन घाटियें हैं खान पान अभिमान रूपी विविध वासनाओं के दर्रे हैं। शरीर के मिथ्या अध्यासरूपी आसमान को छूने वाली चोटियें खडी हैं। इस स्थिति में लक्ष्य स्थान पर कैसे जाया जाय ?

१३६—इसमें उपर्युक्त कठिनाई के निवारण का मार्ग बताया है। मन ताजी चेतन चढ़ै = चेतन मन शुद्ध मन वासना रहित मन ताजी चढ़ै = लय, शब्द राजयोगरूपी घोड़े पर सवार हो। ल्यो की करे लगाम = लय = ध्यानमय वृत्ति की लगाम करे। लगाम से घोड़ा रुकता है, मन की चंचलता निवृत्ति का मार्ग है ध्यान। घोडे को चलाने रोकने मोडने के लिये ताजणे की आवश्यकता होती है। यहां—शब्द गुरु का ताजणां = निरपेक्ष उपदेशरूपी ताजणे से कोई पहुँचै साध सुजाण = कोई सुजाण परम सावधान साधक लक्ष्य स्थान तक पहुंच सकता है।

पारष लक्षण

साधौं सुमिरण सो कह्या, जिहिं सुमिरण आपा भूल।
दादू गहि गंभीर गुरु, चेतन आनंद मूल ॥ १३७ ॥

स्वार्थी परमार्थी

दादू आप स्वारथ सब सगे, प्राण सनेही नांहि।
प्राण सनेही राम हैं, कै साधू कलि मांहि ॥ १३८ ॥
सुख का साथी जगत सब, दुख का नाही कोइ।
दुख का साथी सांइयां, दादू सतगुरु होइ ॥ १३९ ॥
सगे हमारे साध हैं, सिर परि सिरजनहार।
दादू सतगुरु सो सगा, दूजा धंध विकार ॥ १४० ॥

दया निर्वैरता

दादू कै दूजा नहीं, एकै आतम राम।
सतगुरु सिर परि साध सब, प्रेम भगति विश्राम ॥ १४१ ॥

उपजनि

दादू सुध बुध आत्मा, सतगुरु परसै आइ।
दादू भृंगी कीट ज्यौं, देखत ही ह्वै जाइ ॥ १४२ ॥
दादू भृंगी कीट ज्यूं, सतगुरु सेती होइ।
आप सरीखे कर लिये, दूजा नांहीं कोइ ॥ १४३ ॥

---

१३७—आपा भूल = सब प्रकार के अहंकार का त्याग। गहि गंभीर गुरु = गुरु के गंभीर उपदेश को दृढ़ निश्चय से अपना।

१४०—सगे हमारे साध हैं = आत्मनिष्ठ महात्मा ही हमारे सगे सम्बन्धी हैं।

दृष्टान्त—दुःखी देख इक वणिक सुत, सन्त दियो उपदेश।
रोग कट्यो मन वाहि को, विरकत कियो विशेष ॥ १ ॥

१४२—सुध = निर्मल। बुध = विचारशील। परसै = स्पर्शकरे, छूवे। ह्वै जाय = हो जाय।

१४३—सेती = द्वारा, से।

दादू कछुब राखै दृष्टि मैं, कुंजौं के मन मांहिं।
सतगुरु राखै आपणां, दूजा कोई नांहिं ॥ १४४ ॥
बचौं के माता पिता, दूजा नांहीं कोइ।
दादू निपजै भावसूं, सतगुरु के घटि होइ ॥ १४५ ॥

वे परवाही

एकै सबद अनंत सिष, जब सतगुरु बोलै।
दादू जड़े कपाट सब, दे कूंची खोलै ॥ १४६ ॥
बिनही कीया होइ सब, सनमुख सिरजनहार।
दादू करि करि को मरै, सिष साखा सिरि भार ॥ १४७ ॥
सूरिज सनमुख आरसी, पावक किया प्रकास।
दादू सांई साध बिचि, सहजैं निपजै दास ॥ १४८ ॥

---

१४४—कच्छप दृष्टि द्वारा, कुंजपक्षी संकल्पद्वारा अपनी संतान का पोषण करते हैं। इसी तरह सतगुरु ही अपने शिष्य की विवेक दृष्टि तथा हित भावना से रक्षा करते रहते हैं। सतगुरु भिन्न स्वार्थी माता पिता भाई बन्धु कोई रक्षक नहीं हैं।

दृष्टान्त—*गुरु सिष के लक्षण कहे, भेज्यो आधी रात।*
*बरज्यो वेश्यां जावतां, आन कही परभात ॥ १ ॥*

१४५—निपजै = उत्पन्न हो। घटि = अन्तःकरण में।

१३६—जडे कपाट सब = अन्तःकरण के भ्रम संशयरूपी किवाड़ बन्ध हैं। दे कूंची खोले = निरपेक्ष निर्मल ज्ञानरूपी कूँची से खोले = मुक्त किये।

दृष्टान्त—*गुरु दादू से माननृप, कही शिष्य किमि कीन्ह।*
*स्वामी कही मैं ना किये, भाव भये लैलीन ॥ १ ॥*

१४७—सिषसाखा = शिष्य परम्परा।

१४८—सूर्यकिरण के सामने सूर्यकान्तमणि हो तो अग्नि की उत्पत्ति हो जाती है। निर्गुण चेतनरूप ब्रह्म सूर्य की तरह सर्वत्र प्रकाश करते हैं पर सूर्यकान्त मणि की तरह निर्मल अन्तःकरण वाले ज्ञानसम्पन्न साधुजनों के बिना शिष्य को वह ज्ञा

मन इन्द्रिय निग्रह

दादू पंचौं ये परमोधि ले, इनहीं कौं उपदेस ।
यहु मन अपणा हाथि कर, तौ चेला सब देस ।। १४६ ।।
अमर भये गुरुज्ञान सौं, केते इहि कलि मांहि ।
दादू गुरु के ज्ञान बिन, केते मरि मरि जांहि ।। १५० ।।
औषधि खाइ न पछि रहै, विषम व्याधि क्यौं जाइ ।
दादू रोगी बावरा, दोस बैद कौं लाइ ।। १५१ ।।
बैद बिथा कहै देखि करि, रोगी रहै रिसाइ ।
मन मांहैं लीये रहै, दादू व्याधि न जाइ ।। १५२ ।।
दादू बैद बिचारा क्या करै, रोगी रहै न साच ।
खाटा मीठा चरपरा, मांगै मेरा बाच ।। १५३ ।।

---

ज्योति प्राप्त नहीं होती, वैसे गुरु प्राप्त होने पर सहज ही शिष्य सच्चा साधक बन जाता है ।

१४६—परमोधि = सुशिक्षित कर, अच्छी तरह समझा ।

१५१—औषधि खाइ न पछि रहे = उपदेश सुने, पर उपदेश को धारण न करे तो संसार के दुःखरूप व्याधि कैसे मिटे ?

१५२—वैद बिथा कहै देखि करि, रोजो रहे रिसाइ = सद्गुरुरूपी वैद्य शिष्य को वासना तथा भ्रम में उलझा देख उससे उत्पन्न होने वाले क्लेश बताता है तथा उन क्लेशों से कैसे बचा जाय उसका मार्ग बतलाता है, पर विषय-वासना में आरूढ़ मन गुरु का उपर्युक्त उपदेश सुन मन ही मन गुरु पर क्रोध करता है । इस स्थिति में उसका दुःखरूपी रोग कभी मिटता नहीं ।

१५३—साच = दृढ़, पक्का । षाटा, मीठा, चरपरा = विविध प्रकार के विषयभोग । वाच = अन्तः करण या मन ।

गुरु उपदेस

दुर्लभ दरसन साध का, दुर्लभ गुरु उपदेस।
दुर्लभ करिबा कठिन है, दुर्लभ परस अलेष ॥ १५४ ॥

दादू अविचल मंत्र, अमर मंत्र, अषै मंत्र,
अभै मंत्र, राममंत्र निजसार।
सजीवन मंत्र, सबीरज मंत्र, सुन्दर मंत्र,
सिरोमणि मंत्र, निर्मलमंत्र, निराकार ॥
अलख मंत्र, अकल मंत्र, अगाध मंत्र,
अपार मंत्र, अनंत मंत्र राया।
नूर मंत्र, तेज मंत्र, जोति मंत्र,
प्रकास मंत्र, परम मंत्र पाया ॥
उपदेस दष्या ( दादू गुरुराया ) ॥ १५५ ॥

---

१५४—लक्ष्यसिद्धि की कठिनाई इस साखी में कही गई है, जैसे सतगुरु की प्राप्ति दुर्लभ प्राप्ति हो तो उनसे उपदेश मिलना दुर्लभ, उपदेश मिले तो तदनुसार साधना करनी कठिन है, साधनों के बाद भी स्वसाक्षात्कार हो जाने में कठिनता है।

१५५—दादू जी महाराज ने निर्गुण चेतन की धारणा के लिये मन्त्ररूप से इस साखी में उन निश्चयों का उल्लेख किया है जिनके धारण से निर्गुणप्राप्ति का परम मन्त्र सिद्ध हुआ या होता है। शक्य हुआ तो इसका विशेष अर्थ परिशिष्ट में दिया जायगा।

१५६—इस साखी में दादूजी महाराज अपने ध्येय के अनुसार अपने उपास्य की व्यापक सत्ता का निरूपण करते हुये दत्तात्रेयजी की तरह जड़ चेतन सबही को गुरु करने का संकेत करते हैं। वे कहते हैं—पशु, पक्षी, वनराइ, बनस्पतियें तथा भूमि पहाड़ आदि सबही गुरु किये अर्थात् इन सभी से विविध उपदेश प्राप्त किया। ये सब त्रिगुणात्मक पञ्चभूतजन्य हैं जिसमें वह षुदाइ = व्यापक परमेश्वर व्याप्त है।

दृष्टान्त—गरीबदास असवार लखि, कारी खेचरी माथ।
अर्थ फेर उत्तर दिये, रहे राम संग साथ ॥ १ ॥

दादू सबही गुरु किये, पसु पंषी बन राइ ।
तीनि लोक गुण पंचसौं, सबही मांहि खुदाइ ॥ १५६ ॥
जे पहली सत गुरु कह्या, सो नैनहुं देख्या आइ ।
अरस परस मिलि एक रस, दादू रहे समाइ ॥ १५७ ॥

इति श्री गुरुदेव को अंग सम्पूर्ण ॥

१५७—गुरु-उपदेशानुरूप आचरण द्वारा जो फल प्राप्त होता है उसका निरूपण इस सा में किया गया है . महाराज कहते हैं—जैसे पहिले पहल उपदेश देते समय सद्गु ने जो कुछ कहा या बताया, वह अब साक्षात् अनुभव से आज प्रत्यक्ष है । गुरुउ देश की कृपा से द्वैत के सब हेतु निवृत्त हो गये हैं इसलिये समष्टि चेतन के सा यह व्यष्टि चेतन एकमेक हो व्यष्टि के सब अहंकार त्याग समष्टि में ही व्यापक गया है । जैसा कि श्रुति निर्देश करती है :—

*तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविश्त्, 'वृहदारण्य'*

# अथ सुमिरण कौ अंग ॥ २ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम् , नमस्कार गुरु देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
एकै अख्खर पीव का, सोई सत करि जाणि ।
राम नाम सतगुरु कह्या, दादू सो परवाणि ॥ २ ॥
पहली श्रवण, दुतिय रसन, तृतीये हिरदै गाइ ।
चतुर्दसी चिंतन भया, तब रोम रोम ल्यौ लाइ ॥ ३ ॥

मन परमोध

दादू नीका नांव है, तीनि लोक ततसार ।
राति दिवस रटिबो करी, रे मन इहै बिचार ॥ ४ ॥
दादू नीका नांव है, हरि हिरदै न बिसारि ।
मूरति मन मांहैं बसै, सासैं सास संभारि ॥ ५ ॥

---

२—पीवका = पालन करने वाले परमेश्वर का । उस परमेश्वर का वाचक प्रणव नाम "ॐ" अक्षर है । इस प्रणव में अर्द्ध चन्द्र है वह रकार है अनुस्वार है वह मकार है । सोई सत करि जाणि = उस पर ब्रह्म के वाचक नाम को व नामी को सत्य समझ, यही सत-गुरु का उपदेश है ।

३—तीसरा साषी में साधक की तीन दशाओं का विवरण है । पहिले नामचिंतन का फल सुनना यह हेतु रूप "प्रवृत्ति" अवस्था है । जीभद्वारा नाम स्मरण का अभ्यास करना यह "स्वरूप" अवस्था है । अन्तःकरण में चिंतन यह तीसरी "फलरूप" अवस्था है, चौथी तुर्यावस्था जिसकी संज्ञा "अवधि" रूप है । इस स्थिति में आने पर साधक व साध्य में अभेद हो जाता है । चतुर्दशी = चौथी अवस्था ।

४—नीका नाव है = सब साधनों में उत्तम साधन है । रटिवो = स्मरण, याद ।

दृष्टान्त—*गुरु दादू पै आइयो, शिष्य होण इक वृद्ध ।*
*यह साषी सुन लग रह्यो, मगन भयो अरु सिद्ध ॥ १ ॥*

५—मूरति मन माँहैं वसै = आकाश की तरह ईश्वर की व्यापकतारूप मूर्ति मन में ह रहे ।

सासैं सास संभालतां, इकदिन मिलि है आइ।
सुमिरण पैंडा सहज का, सतगुरु दिया बताइ ॥ ६ ॥
दादू नीका नांव है, सो तूं हिरदै राखि।
पाखंड प्रपंच दूरि करि, सुनि साधू जनकी साखि ॥ ७ ॥
दादू नीका नांव है, आप कहै समझाइ।
और आरंभ सब छाडि दे, राम नाम ल्यौ लाइ ॥ ८ ॥
राम भजन का सोच क्या, करतां होइ सो होइ।
दादू राम संभालिये, फिर बूझिये न कोइ ॥ ९ ॥

नाम चेतावनी

राम तुम्हारे नांव बिन, जे मुख निकसै और।
तौ इस अपराधी जीवकौं, तीनि लोक कित ठौर ॥ १० ॥

---

६—संभालता = देखते रहना। पैंडा = पथ, साधन का रास्ता।

७—नीका = भला, सबसे उत्तम। पाखंड प्रपञ्च = छल कपट।

दृष्टान्त—*एक देखा तृणधारी, सो तो चोरी शाह की नारी।*
*एक देखा अल्पाहारी, हिंसा कीनी रैण सारी ॥*
*एक देखा शिलधारी, नगरी मूसी रैण सारी।*
*एक देखा राजा ढोर, पकड़ै शाह और छोड़े चोर ॥*

८—आरंभ = व्यावहारिक वासनामय प्रवृत्ति। आप कहै समझाइ = वेदोपनिषद् द्वारा [illegible] स्वयं अवतार धारण कर भगवान् समझाकर या अपने उदाहरण द्वारा यह बात बत[illegible] रहे हैं।

९—बूझिये = पूछिये। रामभजन का सोच क्या = ईश्वरचिंतन के समय अन्य स[illegible] चिंतन त्याग दे।

१०—निकसै = निकले। कित = कहां।

नाम चित्त आवै सो लेय

**दादू सिरजनहार के, केते नांव अनंत।**
**चिति आवै सो लीजिये, यौं साधू सुमिरैं संत॥ २३॥**
**दादू जिन प्रांण पिंड हम कौं दिया, अंतर सेवैं ताहि।**
**जे आवै औसाण सिरि, सोई नांव संबाहि॥ २४॥**

चितावणी

**दादू ऐसा कौण अभागिया, कछू दिढावै और।**
**नांव बिना पग धरनकूं, कहौ कहां है ठौर॥ २५॥**

सुमिरण नाम महिमा माहात्म्य

**दादू निमष न न्यारा कीजिये, अंतर थैं उरि नाम।**
**कोटि पतित पावन भये, केवल कहतां राम॥ २६॥**

मन परमोध

**दादू जे तैं अब जाण्या नहीं, राम नाम निज सार।**
**फिरि पीछैं पछिताहिगा, रे मन मूढ गंवार॥ २७॥**

---

२३—अनन्त = अनेक, अन्त रहित।

२४—प्राण = जीवन। पिंड = शरीर। औसाण = अवसर, मौका। संबाहि = संभाल, धारण कर।

२५—अभागिया = भाग्यहीन, मन्दभागी। दिढावे = निश्चय करावे। और = दूसरा, विपरीत।

२६—निमष = पल भर। अन्तरथैं = अन्तःकरण से, मन से।

२७—जाँण्या = पहिचाना। निजसार = परम तत्व। मूढ = मोह में भूला हुआ। गँवार = पामर, विचारहीन।

दादू राम संभालि ले, जब लग सुखी सरीर।
फिरि पीछै पछिताहिगा, जब तन मन धरै न धीर ॥ २८ ॥
दुख दरिया संसार है, सुख का सागर राम।
सुखसागर चलि जाइये, दादू तजि बेकाम ॥ २९ ॥
दादू दरिया यहु संसार है, राम नाम निज नाव।
दादू ढील न कीजिये, यहु औसर यहु डाव ॥ ३० ॥

सु० नाम निःसंशय

मेरे संसा को नहीं, जीवण मरण का राम।
सुपिनैं ही जनि बीसरै, मुख हिरदै हरि नाम ॥ ३१ ॥

सु० नाम विरह

दादू दुखिया तब लगै, जब लग नांव न लेहि।
तब ही पावन परम सुख, मेरी जीवन येहि ॥ ३२ ॥

सु० नाम पारष लखन

कछु न कहावै आपकौं, सांईकूं सेवै।
दादू दूजा छाडि सब, नांव निज लेवै ॥ ३३ ॥

२८—संभालि ले = तलाश करले।

२९—दादू तजि बेकाम = संसार के सारहीन काम जो क्लेश देने वाले हैं वे वे काम = व्य
के काम हैं उनका परित्याग कर।

३०—निज नाव = खास नौका, विशेष नौका है। ढील = देर, विलम्ब। औसर = समय
डाव = मौका।

३१—संसा = संशय, सन्देह। जीवन मरण का राम = जीते हुये यदि अपने स्वरूप को सम
गया हूँ तो मुझे जीने मरने का फिर कोई संशय शेष नहीं है। जनि बीसरै = मत भू

३३—कछु न कहावे आपकौं = कैसा भी उपयोगी कार्य कर अपनी बड़ाईकी इच्छा न करे
निज लेवे = निष्काम भावसे चिन्तन करे।

दृष्टान्त—जारि महोला देत हैं, करि करि नीचे नैन।
कहो कहांते सीखिया, ऐसी बिधि का देन ॥ १ ॥

सु० नाम निःसंशय

जे चित चहुटै राम सौं, सुमिरण मन लागै।
दादू आतम जीवका, संसा सब भागै॥ ३४॥

सु० नाम चितावणी

दादू पीवका नांवले, तौ मिटैं सिरि साल।
घड़ी महूरत चालणा, कैसी आवै काल्हि॥ ३५॥

सुमिरण बिना सांस न ले

दादू औसरि जीव तैं, कह्या न केवल राम।
अंति कालि हम कहैंगे, जम बैरी सौं काम॥ ३६॥
दादू असे मंहगे मोल का, एक सास जे जाइ।
चौदह लोक समान सो, काहे रेत मिलाइ॥ ३७॥

अनमोल स्वास

सोई सास सुजाण नर, सांई सेती लाइ।
करि साटा सिरजनहार सूं, मंहगे मोलि बिकाइ॥ ३८॥

---

साहब सबमें वसत है, देता है दिन रैन।
नाम हमारा लेत है, ताते नीचे नैन॥ २॥

३४—चहुँटै = चिपटै, लगे। संसा सब भागै = प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता से सम्बन्ध रखने वाले सब सन्देह दूर हो जांय।

३५—साल = घाव, आन्तरिक क्लेश। काल्हि = कल, सबेरे।

३६—दादू औसरि जीव तै = हे जीव, हे मन ! औसरि यानी मनुष्यशरीर प्राप्त हुआ यह सबसे बड़ा मौका तेरेको मिला है।

३७—रेत = मिट्टी, भोगमें वीर्यविनाश।

दृष्टान्त—कस्यप चौदह लोकका, श्वास सरे दे राज।
जाट खेत को दूसरो, लाल गमाये बाज॥ १॥

३८-दृष्टान्त—च्यार हजार कतेब के, च्यार वचन यहि ठौर।
रिजक खाइ मन मुलक तजि, जाने करि सिर और॥ १॥

व्यर्थ जीवन

जतन करै नहिं जीवका, तन मन पवना फेरि।
दादू मंहगे मोलका, द्वै दोवटी इक सेर ॥ ३६ ॥

सफल जीवन

दादू रावत राजा राम का, कदे न बिसारी नांव।
आत्मराम संभालिये, तौ सूबस काया गांव ॥ ४० ॥

निरंतर सुमिरण

दादू अह निसि सदा सरीर मैं, हरि चिंतत दिन जाइ।
प्रेम मगन लै लीन मन, अन्तर गति ल्यौ लाइ ॥ ४१ ॥
निमष एक न्यारा नहीं, तन मन मंझि समाइ।
एक अंगि लागा रहै, ताकौं काल न खाइ ॥ ४२ ॥
दादू पिंजर पिंड सरीर का, सुवटा सहजि समाइ।
रमता सेती रमि रहै, विमलि विमलि जस गाइ ॥ ४३ ॥

---

३९—जतन = रक्षा, उपाय। तन, मन, पवना फेरि = इन्द्रियें, अन्तःकरण और प्राण को आत्माभिमुख करके। मंहगे = कीमती। द्वै दोवटी इकसेर = शरीर के लिये तो अन्न और सामान्य वस्त्र की ही आवश्यकता है।

४०—रावत राजा = सब राजाओं का राजा। आत्म राम = अपनी आत्मा को। सूबस = सफल, सार्थक। आत्म राम संभालिये = आत्मा = अपना अन्तःकरण उसमें, राम = निष्काम चेतन को संभालिये = ध्यान करिये।

४१—अहनिसि = रात दिन। लैलीन = ध्यानमग्न। अन्तरगति = अन्तर्वृत्ति।

४२—मंझि = भीतर। एक अंगि = एक ही निश्चय में।

४३—पिंजर = पींजरा। पिंड सरीर = देह। सुवटा = मनरूपी तोता। रमता सेती = व्यापक चेतन से। रमि रहै = एकमेक हो।

अविनासी सौं एक ह्वै, निमष न इत उत जाइ।
बहुत बिलाई क्या करै, जे हरि हरि सबद सुणाइ॥ ४४॥
दादू जहां रहूं तहं राम सौं, भावै कंदलि जाइ।
भावै गिरि परवति रहूं, भावै ग्रेह बसाइ॥ ४५॥
भावै जाइ जलहरि रहूं, भावै सीस नवाइ।
जहां तहां हरि नांव सौं, हिरदै हेत लगाइ॥ ४६॥

मन परमाध

दादू राम कहे सब रहत है, नख सिख सकल सरीर।
राम कहे बिन जात है, समझी मनवां बीर॥ ४७॥
दादू राम कहे सब रहत है, लाहा मूल सहेत।
राम कहे बिन जात है, मूरख मनवा चेत॥ ४८॥
दादू राम कहे सब रहत है, आदि अंति लौं सोइ।
राम कहे बिन जात है, यहु मन बहुरि न होइ॥ ४९॥
दादू राम कहे सब रहत है, जीव ब्रह्म की लार।
राम कहे बिन जात है, रे मन हो हुसियार॥ ५०॥

---

४४—अविनासी = नित्य रहने वाले से। एक ह्वै = एकता प्राप्त कर। इत = इस लोक व
वासना। उत = स्वर्ग लोक की चाह। बिलाई = विघ्न।

४५—भावै कंदलि जाइ = चाहे कंदरा गुफामें बैठूं। ग्रेह = गेह, घर वसूं।

४६—जलहरि = समुद्रतट, नदीतट पर। भावै सीस नवाइ = चाहे नीचे सिर ऊपर पै
करके तप करूं। जहां तहां = जिस किसी भी अवस्था में।

४७—नख सिष = नख से चोटी तक। समझी = समझ, जान।

४८—लाहा मूल सहेत = लाभ सहित मूल धन की रक्षा होती है।

४९—आदि अन्त लौं सोइ = आदि से अन्त तक जन्म मृत्युपर्यन्त का जीवन सार्थक होता है

५०—लार = साथ। जीव ब्रह्म की लार = ब्रह्म के चिन्तन से जीव भी ब्रह्म के स
ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है।

परोपकार

हरि भजि साफिल जीवना, पर उपगार समाइ।
दादू मरणा तहां भला, जहां पसु पंखी खाइ ॥ ५१ ॥

सुमिरण

दादू राम सबद मुखि ले रहै, पीछै लागा जाइ।
मनसा बाचा करमना, तिहिं तत सहजि समाइ ॥ ५२ ॥
दादू रचिमचि लागे नांव सौं, राते माते होइ।
देखैंगे दीदार कौं, सुख पावैंगे सोइ ॥ ५३ ॥

चेतावनी

दादू सांई सेवैं सब भले, बुरा न कहिये कोइ।
सारौं मांहैं सो बुरा, जिस घटि नांव न होइ ॥ ५४ ॥
दादू जियरा राम बिन, दुखिया इहि संसार।
उपजै बिनसै खपि मरै, सुख दुख बारंबार ॥ ५५ ॥
रामनाम रुचि ऊपजै, लेवै हित चित लाइ।
दादू सोई जीयरा, कांहे जमपुरि जाइ ॥ ५६ ॥
दादू नीकी बरियां आय करि, राम जपि लीन्हां।
आतम साधन सोधि करि, कारिज भल कीन्हां ॥ ५७ ॥

५२—पीछे लागा जाइ = स्मरण के पीछे ही लगा रहे उसका परित्याग कभी न करे। तिहिं-तत = उसी परमार्थ तत्व में।

५३—रचि मचि = अति प्रेन से। राते = आसक्त, अनुरक्त। माते = मस्त, वावले। दीदार = निज रूप।

५४—साँई सेवैं = आत्म चिंतन करैं।

५६—रुचि = चाह, तीव्र इच्छा।

५७—नीकि विरियां = ठीक समय पर।

**दादू अगम बस्त पानैं पड़ी, राखी मंझि छिपाइ।**
**छिन छिन सोइ संभालिये, मति वै बीसरि जाइ॥ ५८॥**

सुमिरण नाम महिमा माहात्म्य

**दादू उजल निर्मला, हरि रंग राता होइ।**
**काहे दादू पचि मरै, पानी सेति धोइ॥ ५६॥**
**सरीर सरोवर राम जल, मांहै संजम सार।**
**दादू सहजैं सब गये, मनके मैले बिकार॥ ६०॥**
**दादू रांम नांम जलं कृत्वा, स्नानं सदाजितः।**
**तन मन आतम निर्मलं, पंच भूपापंगतः॥ ६१॥**
**दादू उत्तम इंद्री निग्रहं, मुच्यते माया मनः।**
**परम पुरुष पुरातनं, चिंतते सदातनः॥ ६२॥**

---

दृष्टान्त—*कोउ जन स्वामी सों कही, और जुग न अवतार।*
*नीको जुग सो जाणिये, दरसण दे करतार॥ १॥*

५८—पानैं पडी = पल्ले पडी, हाथ लगी। राखी मंझि छिपाई = वृत्ति को अन्तमुख कर आत्मनिष्ठ की। मति वै वीसरि जाइ = वै = आत्माकार मति = बुद्धि उसको भूलो मत।

५६—काहे दादू पचि मरे पानी सेती धोइ = नाना तरह के तीर्थ व्रत आदि सकाम कर्म रूपी पानी से या विविध काम क्रोध लोभादि वासना के पानी से धो धोकर जीवन को स्वच्छ बनाने के लिये क्यों पच पच श्रम करके मरते हैं। जीवन तो शुद्ध और निर्मल ईश्वर के नामरूपी पानी से ही हो सकता है अतः उसी में अनुरक्त हो।

६१—सदाजितः = जितेन्द्रिय हो, शील सम्पन्न हो। आत्म = बुद्धि। पंचभूपापं गतः = पञ्च भू स्थूल शरीर की आसक्तिजन्य सब पाप छूट गये।

६२—भावार्थ–इन्द्रियों को वश में कर मन से वासना को निकाल सर्वदा सब काल ध्यान-वृत्ति समाधि स्थिति द्वारा परम पुरुष व्यापक चेतन का चिंतन करना यही सबसे श्रेष्ठ कर्त्तव्य है।

दादू सब जग विष भर्‌या, निर्विष बिरला कोइ ।
सोई निर्विष होयगा, जाके नांव निरंजन होइ ॥ ६३ ॥

दादू निर्विष नांव सौं, तन मन सहजैं होइ ।
राम निरोगा करैगा, दूजा नांही कोइ ॥ ६४ ॥

ब्रह्म भगति जब ऊपजै, तब माया भगति बिलाइ ।
दादू निर्मल मल गया, ज्यूं रवि तिमर नसाइ ॥ ६५ ॥

मनहरि भांवरी

दादू विषै विकार सौं, जब लग मन राता ।
तब लग चीति न आवई, त्रिभुवनपति दाता ॥ ६६ ॥

दादू का जाणौं कब होइगा, हरि सुमिरण इकतार ।
का जाणौं कब छाडिहै, यहु मन विषै बिकार ॥ ६७ ॥

है सो सुमिरण होता नहीं, नहीं सु कीजै काम ।
दादू यहु तन यौं गया, क्यूं करि पइये राम ॥ ६८ ॥

---

६३—विष = जहर, वासना रूपी गरल ।

६४—निर्विष नांव सौं = दादूजी कहते हैं नांव अपना स्वरूप = उसको जानने ही से वासना का जहर निवृत्त होगा । निरोगा = जीवन्मृत्यु की व्याधि से रहित ।

दृष्टान्त—चोर हुरम नृप वैण सुणि, कथा सुनी मन लाइ ।
पुत्री व्याहत नाम तैं, निरवासी भयो आइ ॥ १ ॥
हुरम देखि भंग. [illegible]कल, कह्यो त्रिया समझाइ ।
कियो भजन सब काम व्है, निहकामी व्है जाइ ॥ २ ॥

६५-दृष्टान्त—लक्ष्मी विष्णुभक्त पै, ले गई भेट बनाय ।

सुमिरण नाम महिमा माहात्म्य

दादू राम नाम निज मोहनी, जिनि मोहै करतार ।
सुर नर संकर मुनि जनां, ब्रह्मा सिष्टि बिचार ॥ ६९ ॥
दादू राम नाम निज औषदी, काटै कोटि बिकार ।
विषम व्याधि थैं ऊबरै, काया कंचन सार ॥ ७० ॥
दादू निर्बिकार निज नांव ले, जीवन इहै उपाइ ।
दादू कृतम काल है, ताकै निकटि न जाइ ॥ ७१ ॥

सुमिरण

मन पवना गहि सुरति सौं, दादू पावै स्वाद ।
सुमिरण मांहै सुख घणा, छाडि देहु बकवाद ॥ ७२ ॥
नांव सपीड़ा लीजिये, प्रेम भगति गुण गाइ ।
दादू सुमिरण प्रीतिसौं, हेत सहित ल्यौ लाइ ॥ ७३ ॥
प्राण कवल मुखि राम कहि, मन पवना मुखिराम ।
दादू सुरति मुखि राम कहि, ब्रह्म सुंनि निज ठाम ॥ ७४ ॥

६९—निज = खास, विशेष ।

७०—विषम व्याधि थैं ऊबरै = वासनाजन्य विविध क्लेश, जन्म मृत्युरूप व्याधि से बचे ।

७१—निर्विकार = माया अविद्या से रहित । जीवन इहै उपाय = मनुष्य । जीवन को सफल करने का यही उपाय है । कृतम = बनावटी, पञ्चभूतात्मक पदार्थ ।

७२—मन पवना गहि सुरति सौं दादू पावे स्वाद = मन, प्राण और वृत्ति तीनों स्थिर हों तभी आनन्द की प्राप्ति हो सकती है ।

७३—सपीडा = विरहसहित ।

७४—दादूजी महाराज स्मरण का चर्मस्वरूप इस साखी में बतला रहे हैं वे कहते हैं श्वास-मुख, प्राणमुख, मनमुख तथा वृत्तिमुख अर्थात् श्वास, प्राण, मन वृत्ति से स्मरण चिंतन की दृढ़ता करे। जब वृत्ति में तदाकारता हो जायगी तभी वृत्ति शून्य में निरवलेप अवस्था में ठहर सकेगी यही ब्रह्म की प्राप्ति का निज = वास्तविक स्थान है ।

दादू कहतां सुणातां राम कहि, लेतां देतां राम।
खातां पीतां राम कहि, आत्म कवल बिश्राम ॥ ७५ ॥
ज्यूं जल पैसै दूध मैं, ज्यूं पाणी मैं लूण।
ऐसैं आतमराम सौं, मन हठ साधै कूण ॥ ७६ ॥
दादू राम नाम मैं पैसि करि, राम नाम ल्यौ लाइ।
यहु इकंत त्रिय लोक मैं, अनत काहे कौं जाइ ॥ ७७ ॥

मध्य

ना घर भला न बन भला, जहां नहीं निज नांव।
दादू उनमनी मन रहे, भला त सोई ठांव ॥ ७८ ॥

---

७५—ऊपर वाले भाव को दूसरे शब्दों में दोहराते हैं। आत्म कवल विश्राम = अहर्निस तदाकारवृत्ति बनने से ही स्थितप्रज्ञ दशा प्राप्त होती है इसी का नाम आत्म साक्षात् या आत्म विश्राम है।

७६—पैसे = समावे, मिल जाय। मन हठ साधै कूंण = जब स्मरण चिंतन के द्वारा ही आत्मराम सों एकता हो जाती है तब हठयोग की कठिन क्रियाओं की साधना कौन करे ?

७७—यहु इकन्त त्रियलोक में = साधना के लिये सुदूर जंगल, पहाड़, गुफा, नदीतटकी खोज क्यों की जाय ? महाराज कहते हैं वृत्ति को अन्तर्मुख करिये यही सबसे उत्तम एकान्त स्थान तीन लोक में है। अनत्त = अनेक जगह।

दृष्टान्त—*जगजीवन आमेर में, भूरे बूवे जाय।*
*भजन करत शरियो नहीं, गुरु दादू समझाइ ॥ १ ॥*
*गये भाज वाशिष्ठजी, छोडि यहै ब्रह्माण्ड।*
*रची कुटी संकल्प की, अन्तर हिरदै मांडि ॥ १ ॥*

७८—उनमनी = वृत्ति की लयदशा। ठांव = स्थान, जगह।

नाम महिमा माहात्म्य

दादू निर्गुणं नांमं मई, हृदय भाव प्रवर्ततं।
भरमं करमं कलिविषं, माया मोहं कंपितं ॥ ७९ ॥
कालं जालं सोचितं, भयानक जम किंकरं।
हरिषं मुदितं सतगुरं, दादू अविगत दर्शनं ॥ ८० ॥
दादू सब सुख सरग पयाल के, तोलि तराजू बाहि।
हरि सुख एक पलक का, तासमि कह्या न जाइ ॥ ८१ ॥

सुमिरण नाम पारिष लषन

दादू राम नाम सब को कहै, कहिबे वहुत बमेक।
एक अनेकौं फिरि मिले, एक समाना एक ॥ ८२ ॥
दादू अपणी अपणी हदमैं, सब को लेवै नांउ।
जे लोग बेहद सौं, तिनकी मैं बलि जांउ ॥ ८३ ॥

सुमिरण नाम अगाधता

कौण पटंतर दीजिये, दूजा नांहीं कोइ।
राम सरीखा राम है, सुमिरयां हीं सुख होइ ॥ ८४ ॥

---

७९-८०—निर्गुण नाम में जब हृदय प्रवृत्त होता है, तब भ्रम कर्म और कलिविष (पाप माया मोह की जड़ कटजाती है काल जाल, शोक, भयानक यमदूत कंपायमा होते हैं, और हर्ष, मोद सद्गुरु और परमात्मा के दर्शन प्राप्त होते हैं।

८१—सरग = स्वर्ग। पयाल = पाताल। वाहि = रख।

दृष्टान्त—*विश्वामित्र वशिष्ठ के, अडवी पड़ी विशेष।*
*शिव ब्रह्मा हरि पचि रहे, न्याय निवेड्यो शेष ॥१॥*

८२—कहिबे = कहने में, जपने में। वमेक = विवेक, सावधानी।

८३—इस साखी में सपक्ष धर्म उपासना को ओर इशारा किया गया है। हद = पक्ष, सीम बेहद = धर्म, पंथ, सम्प्रदाय के पक्षपात बिना।

८४—पटंतर = समानता, बराबरी। सरीखा = सदृश, समान।

अपणी जाणै आप गति, और न जाणै कोइ।
सुमिरि सुमिरि रस पीजिये, दादू आनंद होइ ॥ ८५ ॥

करणी बिना कथणी

दादू सबही बेद पुरान पढ़ि, नेटि नांउं निरधार।
सब कुछ इनही मांहि है, क्या करिये बिस्तार ॥ ८६ ॥

नाम अगाध

पढि पढि थाके पंडिता, किनहूँ न पाया पार।
कथि कथि थाके मुनि जना, दादू नाइ अधार ॥ ८७ ॥
निगमहि अगम बिचारिये, तऊ पार न आवै।
ताथैं सेवग क्या करै? सुमिरण ल्यौ लावै ॥ ८८ ॥

कथणी बिना करणी

दादू अलिफ एक अल्लाः का, जे पढि जाणै कोइ।
कुरान कतेबां इलम सब, पढि करि पूरा होइ ॥ ८९ ॥
दादू यहु तन पिंजरा, मांहीं मन सूवा।
एकै नांव अलह का, पढि हाफिज हूवा ॥ ९० ॥

---

८६—नेटि = अन्ततः, आखिर। निरधार = निश्चय किया।

८७—नाइ = नाम, स्वस्वरूप।

दृष्टान्त—*वृहरपति गुरपै इन्द्र पढि, गरव भयो मन मांहि।*
*समद, कुम्भ अरु सींकज्यो, किंचित् तैने पाहि ॥ १ ॥*
*मिश्रकथा वहुतैं करी, रह्यो वार को वार।*
*नाव सुनिश्चय धारि के, गई गूजरी पार ॥ १ ॥*

८८—अगमनिगम = वेद पुराण। ताथैं = तो।

८९—अलिफ = अल्लाह का वाचक अक्षर। कतेब = वेदादि ग्रन्थ। इलम = विद्यायें।

९०—अलह = जिसको लिया नहीं जा सके, पकड़ा नहीं जा सके। हाफिज = कुरानपाठी

सुमिरण नाम पारख लषन

नांव लिया तब जाणिये जेतन मन रहै समाइ ।
आदि अंति मधि एक रस, कबहूं भूलि न जाव ॥ ९१ ॥

बिरह पतिव्रत

दादू एकै दसा अनिनि की, दूजी दसा न जाइ ।
आपा भूलै आन सब, एकै रहै समाइ ॥ ९२ ॥

सुमिरण बिनती

दादू पीवै एक रस, बिसरि जाइ सब और ।
अबिगत यहु गति कीजिये, मन राखौ इहि ठौर ॥ ९३ ॥
आतम चेतनि कीजिये, प्रेमरस पीवै ।
दादू भूलै देह गुण, ऐसैं जन जीवै ॥ ९४ ॥

सुमिरण नाम अगाध

कहि कहि केते थाके दादू, सुणि सुणि कहु क्या लेइ ।
लूंण मिलै गलि पाणियां, तासमि चित यों देइ ॥ ९५ ॥

---

दृष्टान्त—*गुरु दादू अकबर मिले, कही सुवो ले जाह ।*
*हमरे मन तोता पढ़ै, सुनो अकबर शाह ॥ १ ॥*

९२—दशा = अवस्था, भूमिका, मंजिल । आपा भूलै आन सब = सब तरह के अहंकार तथा संसार की मिथ्या आसक्ति को छोडे ।

९३—अविगत यहु गति कीजिये = जो देखने में नहीं आता उसकी प्राप्ति का यही उपाय कीजिये ।

९४—आत्म चेतन कीजिये = आतम = अपना अन्तःकरण उसको चेतनके सन्मुख कीजिये ।

९५—पाणियां = पाणी में ।

दादू हरिरस पीवतां, रती विलम्ब न लाइ ।
बारंबार संभालिये, मति वै बीसरि जाइ ॥ ९६ ॥

सुमिरण नाम बिरह

दादू जागत सुपना ह्वै गया, चिंतामणि जब जाइ ।
तबही साचा होत है, आदि अंति उर लाइ ॥ ९७ ॥

नांव न आवै तब दुखी, आवै सुख संतोष ।
दादू सेवग रामका, दूजा हरष न सोक ॥ ९८ ॥

मिलै तो सब सुख पाइये, बिछुरे बहु दुख होइ ।
दादू सुख दुख रामका, दूजा नाहीं कोइ ॥ ९९ ॥

दादू हरिका नांव जल, मैं मीन ता मांहि ।
संगि सदा आनन्द करै, बिछुरत ही मरि जांहि ॥ १०० ॥

दादू राम बिसारि करि, जीवैं किहिं आधार ।
ज्यूं चातृग जल बूंद कौं, करै पुकार पुकार ॥ १०१ ॥

हम जीवैं इहिं आसरे, सुमिरण के आधार ।
दादू छिटकै हाथथैं, तौ हमकौं वार न पार ॥ १०२ ॥

---

९६--मति वै = उसको, उस अधिष्ठान चेतन को । बीसरि = भूल ।

९७--भावार्थ--यदि हम नामरूप चिंतन को भूलते हैं तो यह मनुष्य-शरीर-रूपी जागृत अवस्था स्वप्नवत् निरर्थक हो जाती है। जब आदि अन्त = जन्म से अन्त समय तक नामरूप चिंतन को उरमें = अन्तःकरण में लिये रहते हैं तभी यह मानव साचा = सार्थक होता है ।

१०२--आसरै = भरोसे व विश्वास पर । दादू छिटकै हाथ थै = यदि वह स्मरण चिन्तन वृत्ति हाथ थै = हेत प्रेममय अन्तःकरण से छिटकै = दूर होती है ।

पतिव्रत निःकाम सुमरण

दादू नांव निमति रामहि भजै, भगति निमति भजि सोइ।
सेवा निमति सांई भजै, सदा सजीवनि होइ॥ १०३॥

नाम सम्पूर्णता

दादू राम रसाइण नित चवै, हरि है हीरा साथ।
सो धन मेरे सांइयां, अलख खजाना हाथ॥ १०४॥
हिरदै राम रहै जा जनकै, ताकौं ऊरा कौण कहै।
अठ सिधि नौ निधि ताकै आगै, सनमुख सदा रहै॥ १०५॥
बंदित तीनौं लोक बापुरा, कैसैं दरस लहै।
नांव निसान सकल जग ऊपरि, दादू देखत है॥ १०६॥
दादू सब जग नीधना, धनवंता नहिं कोइ।
सो धनवंता जाणिये, राम पदारथ होइ॥ १०७॥

---

१०३—सजीवनि = अमर, मुक्त।
१०४—चवै = टपकै, नामरूप चिंतन से स्थिरवृत्ति होने पर आनन्द-प्रवाह की प्राप्ति हो। सोधन = पोरसा।
१०५—ऊरा = अपूर्ण, कमी वाला। अष्टसिद्धि = अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, ऐश्वर्य, वशित्व, प्राप्ति, प्राकाम्य। नवनिधि = कुन्द, पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नील, वर्च।

दृष्टान्त—*वालद ढरि कवीर के, दादू गेटोलाव।*
*भारद्वाज मुनि प्रयाग में, भरथ जिमायो साव॥ १॥*

१०६—इस साखी में नाम का प्रभाव दिखाया है। दादूजी कहते हैं—बापुरा = एक साधारण अकिंचन साधक नामप्रभाव से ऐसा हो जाता है जिसकी तीनों लोक प्रार्थना करते हैं कि उसके दर्शन कैसे पावें?
१०७—पदारथ = बहुमूल्य वस्तु, भावभक्ति रूप।

संगहि लागा सब फिरै, राम नाम कै साथ।
चिंतामणि हिरदै बसै, तौ सकल पदारथ हाथ ॥ १०८ ॥

दादू आनंद आत्मा, अविनासी कै साथ।
प्राणनाथ हिरदै बसै, तौ सकल पदारथ हाथ ॥ १०९ ॥

पुरुष प्रकासित

दादू भावै तहां छिपाइये, साच न छाना होइ।
सेस रसातलि गगनधू, प्रगट कहिये सोइ ॥ ११० ॥

दादू कहां था नारद मुनि जना, कहां भगत प्रहलाद।
परगट तीन्यूं लोक मैं, सकल पुकारैं साध ॥ १११ ॥

दादू कहं सिव बैठा ध्यान धरि, कहां कबीरा नाम।
सो क्यौं छानां होइगा, जे रु कहेगा राम ॥ ११२ ॥

दादू कहां लीन सुखदेव था, कहं पीपा रैदास।
दादू साचा क्यौं छिपै, सकल लोक परकास ॥ ११३ ॥

दादू कहं था गोरख भरथरी, अनंत सिधौं का मंत।
परगट गोपीचंद है, दत्त कहैं सब संत ॥ ११४ ॥

---

१०८—संगहि लागा सब फिरै = सब यानी संसार के सम्पूर्ण पदार्थ = ऋद्धि सिद्धि स्वर्गादि राम के नाम के साथ ही = आत्मचिंतन के साथ ही जुड़े हुए चलते हैं अर्थात् आत्म-चिंतन से सब प्राप्त हो जाते हैं।

१०९—आत्मा = अन्तःकरण।

११०—सेस, रसातलि गगनधू = परमेश्वर के सच्चे भक्त शेष और ध्रुव पाताल तथा स्वर्ग में हैं पर वे भक्तरूप में सबके संमुख प्रगट हैं।

११२—जेरु कहेगा राम = जो स्वस्वरूप के चिंतन में ही लगा रहेगा वह क्यों छिपेगा ?

११४—मंत = पूजनीय। परगट = प्रकट, प्रत्यक्ष।

अगम अगोचर राखिये, करि करि कोटि जतन।
दादू छाना क्यौं रहै, जिस घटि राम रतन॥ ११५॥

दादू अग्र पयाल मैं, साचा लेवै नांव।
सकल लोक सिरि देखिये, परगट सबही ठांव॥ ११६॥

सुमिरण लांबि रस

सुमिरण का संसा रह्या, पछितावा मन मांहि।
दादू मीठा राम रस, सगला पीया नांहि॥ ११७॥

दादू जैसा नांव था, तैसा लीया नांहि।
हौंस रही यहु जीव मैं, पछितावा मन मांहि॥ ११८॥

सुमिरण नाम चितावणी

दादू सिरि करवत वहै, बिसरै आतम राम।
मांहि कलेजा काटिये, जीव नहीं बिश्राम॥ ११९॥

दादू सिरि करवत वहै, राम रिदै थी जाइ।
मांहि कलेजा काटिये, काल दसौं दिसि खाइ॥ १२०॥

---

११५—अगोचर = अलख, इन्द्रियातीत।

दृष्टान्त—*कोल्हू के संघात में, रहे संन्यासी सिद्ध।*
*ताहि मूढ मारण लगे, पेली सिर में खद्ध॥ १॥*

११६—अग = स्वर्ग, गगन लोक। पयाल = पाताल लोक। ठाँव = स्थान, जगह।

११७—संसा = संशय, सन्देह।

११८—हौंस = तीव्र इच्छा, एक चाहना।

११९-१२२—इन चार साखियों में बिना ईश्वरचिंतन के मनुष्यजीवन व्यर्थ है यह प्रतिपादित किया है। ईश्वरचिंतन के बिना सभी प्राणी काल के ग्रास होते हैं अतः आत्मचिंतन को न भूलें यदि जीवन सफल करना है।

दादू सिरि करवत बहै, अंग परस नहिं होइ।
मांहि कलेजा काटिये, यहु बिथा न जाणै कोइ॥ १२१॥

दादू सिरि करवत बहै, नैनहु निरखै नांहि।
मांहि कलेजा काटिये, साल रह्या मन मांहि॥ १२२॥

जेता पाप सब जग करै, तेता नांव बिसारै होइ।
दादू राम संभालिये, तौ येता डारै धोइ॥ १२३॥

दादू जबही राम बिसारिये, तबही मोटी मार।
खंड खंड करि नाखिये, बीज पड़ै तिहिंबार॥ १२४॥

दादू जबही राम बिसारिये, तबही झंपै काल।
सिर ऊपरि करवत बहै, आइ पड़ै जम जाल॥ १२५॥

दादू जबही राम बिसारिये, तबही कंध बिनास।
पग पग परलै पिंड पडै, प्राणी जाइ निरास॥ १२६॥

दादू जबही राम बिसारिये, तबही हांनां होइ।
प्राण पिंड सर्वस गया, सुखी न देख्या कोइ॥ १२७॥

नाम संपूरण

साहिबजी के नांवमा, बिरहा पीड़ पुकार।
तालाबेली रोवणां, दादू है दीदार॥ १२८॥

१२३—सब पाप = सब कुकर्म आत्मस्वरूप को भूलने से होते हैं।

१२४—बीज = बिजली।

१२५—झंपे काल = काल पकड़ लेता है।

१२६—कंध बिनास = शिर कटना।

१२७—हाँना = घाटा, नुकसान।

१२८—साहबजी के नाम में—व्यापक चेतन के चिन्तन के लिये बिरहा = वियोग, पीड़ =

सुमिरण विधि

साहिबजी के नांवमां, भाव भगति बेसास।
लै समाधि लागा रहै, दादू सांई पास॥१२६॥

साहिबजी के नांवमां, मति बुधि ज्ञान विचार।
प्रेम प्रीति सनेह सुख, दादू जोति अपार॥१३०॥

साहिब जी के नांवमां, सब कुछ भरे भंडार।
नूर तेज अनंत है, दादू सिरजनहार॥१३१॥

जिस मैं सब कुछ सो लिया, निरंजन का नांउं।
दादू हिरदै राखिये मैं, बलिहारी जाउं॥१३२॥

॥ इति श्री सुमिरण को अंग संपूर्ण ॥

---

लगन सहित, पुकार = सुमरण, तालाबेली = तड़फन चाह विलाप इन साधनों की आवश्यकता है तभी दीदार = आत्म साक्षात्कार हो सकता है।

१३०—साहिबजी के नांवमां—परम तत्व की प्राप्ति के लिये, मति = मननवृत्ति, बुद्धि = निश्चय-वृत्ति, प्रेम = परमश्रद्धा, प्रीति = सात्विक वृत्ति, स्नेह = रागात्मक राजसीवृत्ति, सुख = निरतिशय स्थिति ये सब साधन पूरे हों तब अपार जोति = अनन्त प्रकाशमय व्यापक ब्रह्म का स्वरूप परिचय हो सकता है।

१३१—सब कुछ = धर्म अर्थ काम मोक्ष, ऋद्धि सिद्धि, स्वर्ग मुक्ति आदि सम्पूर्ण पदार्थ। नूर तेज अनन्त है = उस समष्टि अधिष्ठान रूप अविद्या मायावहित चेतन का विशुद्ध प्रकाश अनंत है = अपार है।

१३२—जिसमें सब कुछ सोलिया = जिस आत्मस्वरूप की प्राप्ति में संसार के अशेष पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं उसको प्राप्त किया। हिरदै राखिये = अनवरत अभ्यास द्वारा अन्तः-करण में वृत्ति को स्थिर करो। ऐसा स्मरण हो तभी मैं वलि जाऊँ = वारणा न्योछावर हो जाऊँ।

सुमरण को अंग सम्पूर्ण

# अथ बिरह को अंग ॥ ३ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
रतिवंती आरति करै, राम सनेही आव ।
दादू औसर अब मिलै, यहु बिरहनि का भाव ॥ २ ॥
पीव पुकारै बिरहनी निस दिन रहै उदास ।
राम राम दादू कहै, तालाबेली प्यास ॥ ३ ॥
मन चित चातृग ज्यूं रटै, पिव पिव लागी प्यास ।
दादू दरसन कारनै, परबहु मेरी आस ॥ ४ ॥

प्रस्तावना—*'साहबजी के नाम में बिरहा पीड पुकार' यह इस अंग का प्रमुख सूत्र है इसी सूत्र की इस अंग में विविध वाक्यों द्वारा व्याख्या की गई है।*

*आत्मपरिचयप्राप्ति के मुख्य तीन साधनमार्ग तीन तरह के साधकों के लिये निर्णीत किये गये हैं। वासनामय साधक के लिये कर्मयोग, वैराग्यवृत्ति वाले साधक के लिये ज्ञानयोग, उभयात्मकवृत्ति वाले साधक के लिये भक्तियोग। भक्तियोग में नामस्मरण तथा चिंतन की प्रधानता है। इससे अन्तःकरण की शुद्धि मानी गई है। चिन्तन द्वारा वृत्ति में स्वस्वरूपपरिचय की आकांक्षा जितनी तीव्र होती है उतना ही तीव्र विरह वियोग उत्पन्न होता है, विरह की चरम सीमा ही भक्तियोग की अन्तिम अवस्था है। दादूजी महाराज ने इस अंग में उसी विरह की साधारण तथा उत्कट दशाओं का स्वानुभव के आधार से निरूपण किया है।*

२—रतिवंती = प्रेमप्रधान वृत्ति वाली बुद्धि। आव = आवो, अज्ञान तथा आवरण दूरकर प्राप्त होवो। विरहनि = साधक सन्तपुरुष।

३—पुकारै = रैनदिन चिंतन करे। विरहनि = साधक की आत्माभिमुख बुद्धि। तालावेली = विरह सहित तड़फन। प्यास = दर्शन की अत्यन्त चाह।

४—चित = शुद्ध बुद्धि। पुरवहु = पूरी करो।

दादू बिरहनि दुख कासनि कहै, कासनि देइ संदेस।
पंथ निहारत पीव का, बिरहनि पलटे केस ॥ ५ ॥
दादू बिरहनि दुख कासनि कहै, जानत है जगदीस।
दादू निसदिन बिरहि है, बिरहा करवत सीस ॥ ६ ॥
सबद तुम्हारा ऊजला, चिरिया क्यौं कारी।
तुंहीं तुंहीं निसदिन करौं, बिरहा की जारी ॥ ७ ॥

बिरह विलाप

बिरहनि रोवै रात दिन, झूरै मनही माहिं।
दादू औसर चलि गया, प्रतीम पाये नाहिं ॥ ८ ॥
दादू बिरहनि कुरलै कुंज ज्यूं, निसदिन तलपत जाइ।
राम सनेही कारणै, रौवत रैनि बिहाइ ॥ ९ ॥
पासैं बैंठा सब सुणै, हम कौं ज्वाब न देइ।
दादू तेरे सिरि चढै, जीव हमारा लेइ ॥ १० ॥
सब कौं सुखिया देखिये, दुखिया नांही कोइ।
दुखिया दादू दास है, ऐंन परस नहिं होइ ॥ ११ ॥

---

५—कासनि = किससे।
७—शब्द = वाचक। ऊजला = अनन्त प्रकाशमय। चिरिया = साधक शरीर। विरहा की जाति = वियोग की अग्नि से जलाई हुई।
८—झूरै = विलाप करै।
९—कुरलै = करुण क्रन्दन करे।
१०—पासै = समीप, शरीर में ही। ज्वाब = जवाब, उत्तर। तेरे सिर चढै = मेरी हत्या तुम्हारे शिर होगी।
११—ऐंन = प्रत्यक्ष, साक्षात्। परस = परिचय।

साहिब मुखि बोलै नहीं, सेवग फिरै उदास।
यहु बेदन जिय मैं रहै, दुखिया दादू दास॥ १२॥

पीव बिन पल पल जुग भया, कठिन दिवस क्यौं जाइ।
दादू दुखिया राम बिन, कालरूप सब खाइ॥ १३॥

दादू इस संसार मैं, मुझसा दुखी न कोइ।
पीव मिलन के कारणै, मैं जल भरिया रोइ॥ १४॥

ना वहु मिलै न मैं सुखी, कहु क्यौं जीवन होइ।
जिन मुझकौं घाइल किया, मेरी दारू सोइ॥ १५॥

दरसन कारनि बिरहनी, बैरागनि होवै।
दादू बिरह बियोगनी, हरि मारग जोवै॥ १६॥

बिरह उपदेस

अति गति आतुर मिलन कौं, जैसैं जल बिन मीन।
सो देखै दीदार कौं, दादू आतम लीन॥ १७॥

राम बिछोही बिरहनी, फिर मिलन न पावै।
दादू तलपै मीन ज्यूं, तुझ दया न आवै॥ १८॥

---

दृष्टान्त—*नृसिंह कही प्रहलाद सौं, बर देहूँ मैं तोहि।*
*जगत सुखी करि ल्याव सब, दुखी मिल्यो नहिं मोहि॥१॥*

१२—वेदन = पीड़ा, चुभन।

१५—वहु = वह, प्रिय आत्मा। दारू = औषध, इलाज।

१७—अतिगति = अत्यन्त, प्रबल। दीदार = दर्शन, स्वरूप।

१८—बिछोही = वियोगिनी। फिरि = फिरभी।

छिन बिछोह

दादू जब लग सुरति सिमटै नहीं, मन निहचल नहिं होइ।
तब लग पिव परसै नहीं, बड़ी बिपति यहु मोहि ॥ १६ ॥
ज्यूं अमली कै चित अमल है, सूरे कै संग्राम।
निर्धन कै चित धन बसै, यौं दादू कै राम ॥ २० ॥
ज्यूं चातृग कै चिति जल बसै, ज्यूं पानी बिन मीन।
जैसे चंद चकोर है, असैं दादू हरिसौं कीन ॥ २१ ॥
ज्यूं कुंजर कै मन बन बसै, अनल पंखी आकास।
यूं दादू का मन रामसौं, ज्यूं बैरागी बन खंडि बास ॥ २२ ॥
भवर लुबधि बासका, मोह्या नाद कुरंग।
यौं दादू का मन रामसौं, ज्यौं दीपक जोति पतंग ॥ २३ ॥
श्रवना राते नाद सौं, नैनां राते रूप।
जिभ्या राती स्वाद सौं, त्यौं दादू एक अनूप ॥ २४ ॥

बिरह उपदेस

देह पियारी जीवकौं, निसदिन सेवा मांहि।
दादू जीवन मरण लौं, कबहूं छाड़ै नांहि ॥ २५ ॥
देह पियारी जीवकौं, जीव पियारा देह।
दादू हरि रस पाइये, जे असा होइ सनेह ॥ २६ ॥

---

१६—सुरति = वृत्ति। सिमटै = स्थिर, एकाग्र। निहचल = अचंचल। परसै = स्पर्श करे।
२०—अमली = व्यसनी। संग्राम = युद्ध।
२३—लुबधी = लोभी। वासका = सुगन्धि का। नाद = शब्द। कुरंग = मृग।
२४—राते = मस्त।
२६—पियारी = प्यारी।

दादू हरदम मांहि दिवान, सेज हमारी पीव है।
देखौं सो सुबहान, ये इश्क हमारा जीव है॥ २७॥
दादू हरदम मांहि दिवान, कहूँ दरूंनैं दरदसौं।
दरद दरूंनै जाइ, जब देखौं दीदार कौं॥ २८॥

बिरह बिनती

दादू दरूनै दरदवंद, यहु दिल दरद न जाइ।
हम दुखिया दीदार के, मिहरबान दिखलाइ॥ २९॥
मूये पीड़ पुकारतां, वैद न मिलिया आइ।
दादू थोड़ी बात थी, जे टुक दरस दिखाइ॥ ३०॥

बिनती

दादू मैं भिखारी मंगिता, दरसन देहु दयाल।
तुम दाता दुख भंजिता, मेरी करहु संभाल॥ ३१॥

---

२७—भावार्थ—हर समय अपने भीतर ही वह दीवान सबसे बड़ा परमेश्वर है। उस पीव = परमेश्वर के लिये हमारी शुद्ध बुद्धि ही सेज = विश्राम करने की शय्या है। उस परम प्यारे परमेश्वर को अपने में ही देखूं यही इश्क = प्रेम मेरा जीवन का लक्ष्य है। दिवान = परमेश्वर। सेज = शय्या, बुद्धिरूपी पलंग। सुबहान = सबसे बड़ा।

२८—दरूनै = अन्दर, भीतर, अन्तःकरण में। दीदार = दर्शन, स्वरूप का साक्षात्। भावार्थ—हर समय वह परमेश्वर मेरे भीतर निवास करता है पर अपने वियोग से मुझे दुःखी कर रहा है। जब उसके दर्शन हों तभी मेरे हृदय की विरहवेदना निवृत्त हो।

२९—दरदवंद = दुखिया, विरही। मिहरवान = दयालु। भावार्थ—विरह वियोगी साधक विरह के कारण अन्तःकरण से दुःखी है उसका यह दिल का दुःख मिटता नहीं। हमारी यह पीड़ा उसके दर्शन की है। हे दयालो ! कृपा कर अब तो आप दर्शन दीजिये।

३०—मूये = मरे। टुक = जरा सा, झलकसी।

३१—भिखारी = भीख मांगने वाला। मंगता = मांग रहा हूँ।

### छिन बिछोह

क्या जीयेमैं जीवणां, बिन दरसन बेहाल।
दादू सोई जीवणां, परगट परसन लाल॥ ३२॥

इहि जगि जीवन सो भला, जब लग हिरदै राम।
राम बिना जे जीवनां, सो दादू बेकाम॥ ३३॥

### बिरह बिनती

दादू कहु दीदार की, सांई सेती बात।
कब हरि दरसन देहुगे, यहु औसर चलि जात॥ ३४॥

बिथा तुम्हारे दरस की, मोहि व्यापै दिन राति।
दुखी न कीजै दीन कौं, दरसन दीजै तात॥ ३५॥

दादू इस हियड़े ये साल, पिव बिन क्योंहि न जाइसी।
जब देखौं मेरा लाल, तब रोम रोम सुख आइसी॥ ३६॥

तूं है तैसा प्रकास करि, अपनां आप दिखाइ।
दादू कौं दीदार दे, बलि जाउं बिलंब न लाइ॥ ३७॥

दादू पीवजी देखै मुझकौं, हूं भी देखौं पीव।
हूं देखौं, देखत मिलै, तो सुख पावै जीव॥ ३८॥

---

३२—बेहाल = वेचैन। परगट = प्रत्यक्ष। परसन = अरसपरस। लाल = सर्वशिरोमणि परमात्मा

३५—बिथा = पीड़ा। व्यापै = मालूम हो।

३६—हियड़े = अन्तःकरण में। साल = घाव। क्योंहि न = कैसे भी नहीं।

३७—अपना आप दिखाइ = अपना जो माया अविद्या रहित स्वरूप है वह दिखाइये।

३८—हूँ देखों देखत मिलै = मैं अपने स्वरूपको देखूं और उसीमें अपनी वृत्तिको देखते-देखते लीन कर दूं।

बिरह कसौटी

दादू तन मन तुम परि वारणैं, करि दीजै कै बार।
जे ऐसी बिधि पाइये, तो लीजै सिरजनहार ॥ ३९ ॥

बि० पतिव्रत

दीन दुनी सदकै करौं, टुक देषण दे दीदार।
तन मन भी छिन छिन करौं, भिस्त दोजग भी वार ॥ ४० ॥

बि० कसौटी

दादू हम दुखिया दीदार के, तूं दिल थैं दूरि न होइ।
भावै हमकौं जालि दे, हूंणां है सो होइ ॥ ४१ ॥

बि० पतिव्रत

दादू जे कुछ दिया हमकौं, सो सब तुम ही लेहु।
तुम बिन मन मानै नहीं, दरस आपणां देहु ॥ ४२ ॥
दूजा कुछ मांगैं नहीं, हम कौं दे दीदार।
तूं है तब लग एक टग, दादू के दिलदार ॥ ४३ ॥

---

३९—कर दीजै कैबार = यदि तुम तन-मन तुम्हारे समर्पित करनेसे ही मिलते हो तो इन्हें चाहे जितने बार समर्पित करावें, मैं तैयार हूं।

४०—दीन = धर्म। दुनी = संसारी। सदकै = निछावर। टुक = थोड़ासा। छिन-छिन = खंड खंड। भिस्त = बहिश्त, स्वर्ग। दोजग = दोजख, नरक। भावार्थ—दुनियावी धर्म का पक्ष आपपर निछावर करता हूँ। थोड़ा सा अपना सच्चा दीदार = दर्शन दिखाइये। इसके लिये स्वर्ग, नरक, तन, मन सब आप पर वार देने को तैयार हूँ।

४१—हूंणा = होना।

४३—दिलदार = इष्ट, मित्र। एकटग = एकरस, स्थिरवृत्ति।

विरह बिनती

दादू तूं है तैसी भगति दे, तूं है तैसा प्रेम।
तूं है तैसी सुरति दे, तूं है तैसा षेम ॥ ४४ ॥

दादू सदिकै करौं सरीर कौं, बेर बेर बहु भंत।
भाव भगति हित प्रेम ल्यौ, खरा पियारा कंत ॥ ४५ ॥

दादू दरसन की रली, हम कौं बहुत अपार।
क्या जाणौं कबही मिलै, मेरा प्राण अधार ॥ ४६ ॥

दादू कारणि कंत के खरा दुखी बेहाल।
मीराँ मेरा मिहर करि, दे दरसन दरहाल ॥ ४७ ॥

तातावेली प्यास बिन, क्यौं रस पीया जाइ।
बिरहा दरसन दरद सौं, हम कौं देहु खुदाइ ॥ ४८ ॥

तालाबेलीं पीड़सौं, बिरहा प्रेम पियास।
दरसन सेती दीजिये, विलसै दादू दास ॥ ४९ ॥

४४—तैसी भगति = अखण्ड भक्ति। तैसा प्रेम = अखण्ड प्रेम। तैसी सुरति = अचंचल वृत्ति। तैसा षेम = नित्य सुख।

४५—सिदकै = निछावर, अर्पण। भंत = नाना रूप से। भाव = श्रद्धा। भगति = अनासक्त प्रेम। हित = स्नेह। प्रेम = पूर्ण विश्वास। षरा = सच्चा, अत्यन्त। पियारा = प्यारा। कंत = पीव।

४६—रली = इच्छा, चाह।

४७—मीराँ = महान्, सर्वोपरि। मिहर = कृपा, करुणा। दरहाल = अभी, इसी समय।

४८—तालावेली = तड़पन सहित विलाप। प्यास = चाह। क्यों रस पीया जाइ = बिना तीव्र चाहके नामस्मरणरूपी रस कैसे पिया जाय?

४९—सेती = साथ। विलसै = विलास करे, अनुभव करे।

दादू हमकौं आपणां आप दे, इश्क मुहब्बति दर्द।
सेज सुहाग सुख प्रेमरस, मिलि खेलैं लापर्द ॥ ५० ॥

प्रेम भगति माता रहै, तालाबेली अंग।
सदा सपीड़ा मन रहै, राम रमैं उन संग ॥ ५१ ॥

प्रेम मगन रस पाइये, भगति हेत रुचि भाव।
बिरह बेसास निज नांवसौं, देव दया करि आव ॥ ५२ ॥

गई दसा सब बाहुड़ै, जै तुम प्रगटहु आइ।
दादू ऊजड़ सब बसै, दरसन देहु दिखाइ ॥ ५३ ॥

हम कसिये क्या होइगा, बिड़द तुम्हारा जाइ।
पीछै ही पछिताहुगे, ताथैं प्रगटहु आइ ॥ ५४ ॥

छिण बिछोह

मींयां मैंडा आव घरि, वांढी वत्तां लोइ।
डुषंडे मुंहिडे गये, मरां बिछोहै रोइ ॥ ५५ ॥

---

५०—इश्क = अनुराग। मुहब्बत = प्यार, प्रेम। लापर्द = बिना पड़दे। भावार्थ—हे परमात्मन् हमें आप अपनी भक्ति अपने प्रेम का बिरहरूपी दर्द दो, वियोग की चाह पैदा करो, जिससे हृदय में तुम्हारी कृपा का तुम्हारे दर्शन का सुख—आनन्द प्राप्त करें और परस्पर मिलकर खेलें।

५१—सपीडा = विरह वेदनामय। रमै = खेले।

५२—मगन = मस्त। भगति = श्रद्धा। हेत = स्नेह। रुचि = चाह। भाव = भावना।

५३—गई दशा सब बाहुडै = बिना आत्मचिंतन में गया हुआ समय भी वापिस मिल जाय। बाहुडै = पीछा आवे। दादू ऊजड़ सब बसे = दादूजी महाराज कहते हैं—आसुरी सम्पत्ति भोग वासना से उजड़ा हुआ अन्तःकरण दैवी सम्पद् व आत्मपरिचय की प्रबल चाह पैदा होने से फिर बस जाता है आबाद हो जाता है।

५४—कसिये = कसौटी में दिये, परीक्षा लिये। बिड़द = यश, तुम्हारी महिमा।

५५—मीयां = मालिक। मैंडा = मेरे। वांटी = दुहागिन। वत्तां = जहां तहां। लोइ = भ्रम

विरह पतिव्रत

है, सो निधि नहीं पाइये, नहीं, सो है भरपूर।
दादू मन मानै नहीं, ताथैं मरिये झूर ॥ ५६ ॥

विरही विरह लक्षण

जिस घटि इश्क अल्लाह का, तिस घटि लोही न मांस।
दादू जियरे जक नहीं, सिसकै सासैं सास ॥ ५७ ॥
रत्ती रब ना बीसरै, मरै संभालि संभालि।
दादू सुहदा थीर है, आसिक अल्लह नाल ॥ ५८ ॥
दादू आसिक रब दा, सिर भी डेवै लाहि।
अल्लह कारणि आप कौं, साड़ै अंदरि भाहि ॥ ५९ ॥

---

रहा है। डुषंडे = दोनों आँखें। मुँहिडे गये = बन्द हो गये। विछोहे = वियोग में।
भावार्थ— दुहागिन वियोगिनी तुम्हारे वियोग में जहां तहां भ्रम रही है, दोनों नेत्र आंसू बहाते-२ बन्द हो गये हैं। हे मियाँ = मेरे मालिक अब तो मेरे हृदय में प्रगट हुइये, नहीं तो वियोग में रो रोकर प्राण निकल जांयगे।

५६—निधि = खजाना, परम धन। झूरि = कलप कलपकर, रो रोकर। है सो निधि नहिं पाइये = अस्ति भाति प्रिय रूप निधि है—खजाना है वह प्राप्त नहीं है। नहीं सो है भरपूर = जो वस्तुतः निधि नहीं है, वह संसार की धनसम्पत्ति नाम रूप प्रपंच सब जगह भरपूर प्रतीत हो रहा है।

५७—घटि = अन्तःकरण में। लोही = लोभरूपी रक्त। माँस = ममतारूपी मांस। जक = शान्ति, चैन।

५८—रब = परमेश्वर। नाल = साथ, संग। सुहदा = साधक, विरही जन। दादू सुहदा थीर है, आशिक अल्लह नाल = दादूजी कहते हैं विरही साधक अल्लह अगह आत्मस्वरूप के साथ सुस्थिर है।

५९—भावार्थ—रबदा आशिक = आत्म जिज्ञासु साधक स्वरूप प्राप्ति के लिये अपना शिर भी उतार देने को उद्यत रहता है। वह साधक अपने प्रिय आत्मा की प्राप्ति के लिये अपने अन्दर की विरहाग्नि में अपना सब आपा जला देता है।

कसौटी

भोरे भोरे तन करै, वंडै करि कुरबाण।
मिट्ठा कौड़ा ना लगै, दादू तौहू साण ॥ ६० ॥

बिरह लक्षण

जब लग सीस न सौंपिये, तब लग इश्क न होइ।
आसिक मरणै नां डरै, पिया पियाला सोइ ॥ ६१ ॥

बिरह पतिव्रत

तैं डीनोंई सभु, जे डीयै दीदार के।
उंजे लहदी अभु, पसाई दो पाण के ॥ ६२ ॥
बिचौं सभो दूरि करि, अंदरि बिया न पाइ।
दादू रता हिकदा, मन मोहब्बत लाइ ॥ ६३ ॥

बिरह उपदेश

इश्क मुहब्बति मस्त मन, तालिब दर दीदार।
दोस्त दिल हरदम हजूर, यादगार हुसियार ॥ ६४ ॥

---

६०—भोरेभोरे = कण कण। वंडै = बांट दे। मिट्ठा = मीठा। कौडा = कडवा। सांण = साथ
भावार्थ—साधक अपने तन को कण कण कर अपने साध्य के लिये अपनी कुर्बानी कर अपने को उसी में मिला देता है। इतने पर भी उस प्रेम परमेश्वर में कडुवापन न कर मीठा ही उसको मानें तब वह प्राप्त होता है।

६२—भावार्थ – तैं = तुमने। डीनोंई सभु = सब कुछ दे दिया। जे = अपने। दीदार = दर्शन। डीयै = दे दिये तो। उंजै = प्यासे को। अभु = पानी। लहदी = प्राप्त हो गया। पाण के = स्वस्वरूप के। पसाई दो = दर्शन करादो।

६३—भावार्थ—भ्रम विक्षेप अध्यास के सब पड़दे बीच से हटादो। अन्तःकरण से भेदभाव द्वैतभाव दूर करदो। मन में अन्तःकरण में असीम प्रेम उत्पन्न कर उसी एक अन्तरात्मा में अनुरक्त हो जावो।

६४—भावार्थ—तालिब = जिज्ञासु उसी के दर्शन के लिये उसीका इश्क प्रेम मुहब्बत

बिरह लक्षण

**दादू आसिक एक अलाह के, फारिक दुनियां दीन।**
**तारिक इस औजूद थैं, दादू पाक यकीन॥ ६५॥**
**आसिकां रह कबज कर्दां, दिल बजां रफतंद।**
**अलह आले नूर दीदम, दिलहि दादू बंद॥ ६६॥**

उत्कट चाह में मन को मस्त = अनुरक्त किये रहे। अपने दोस्त = प्यारे प्रेमी आत्मा के लिये अपना दिल हर समय हाजिर रखे सन्मुख रखे उसकी यादगार = अनवरत चिंतन में हुशियार = सावधान रहे।

दृष्टान्त—*गुरु दादू सो पातशा, पूछी साहब राह।*
*तब इस साखी तैं कही, याही मारग जाहि॥ १॥*

६५—एक अलाह = एक व्यापक आत्मा के आशिक = प्रेमी हैं वे दुनियावी धर्म पन्थ जाति आश्रम के बन्धनों से फारिक = मुक्त होते हैं। वे इस शरीर के अध्यास से भी अपने को अलहदा कर लेते हैं। उन्हीं साधकों का प्रेमियों का यकीन = निश्चय पाक = पवित्र है, सच्चा है।

दृष्टान्त—*पूछी एक फकीर सों, ताज सीस नहिं तोहि।*
*कही सीस मेरे सदा, च्यार तरक का जोहि॥ १॥*

चार तरक = तर्क दुनियां। तर्क उकबा। तर्क भोला। तर्क तर्क।

६६—भावार्थ—आसिक = प्रेमी जनों ने रह = आत्मप्राप्ति का, खुदा मिलने का रास्ता कबज कर्दां = अपने हस्तगत कर लिया है। दिल = अन्तःकरण की सुरति वृत्ति से बजा = चलकर अभ्यास कर। रफतंद = साफ किया अन्तःकरण का दोष। अलह आले = श्रेष्ठ परमात्मा का। नूर = शुद्ध स्वरूप। दीदम = देखकर वे दिलहि = अन्तःकरण में बंद = ध्यान लगा रहे हैं।

दृष्टान्त—*सुन्दरि को दीदार करि, परसन करी नवाब।*
*साहब देहु दिखाइ मुझि, मुख दिखलायो आव॥ १॥*

शब्द

दादू इश्क अवाज सौं, ऐसैं कहै न कोइ।
दर्द मोहब्बति पाइये, साहिब हासिल होइ॥ ६७॥

बिरही बिलाप लक्षण

कहं आसिक अल्लाः के, मारे अपने हाथ।
कहं आलम औजूद सौं, कहै जबां की बात ?॥ ६८॥
दादू इश्क अल्लाःह का, जे कबहूं प्रगटै आइ।
तौ तन मन दिल अरवाह का, सब पड़दा जलि जाइ॥६९॥

बिरह जिज्ञासु उपदेश

अरवाहे सिजदा कुनंद, औजूद रा चिकार।
दादू नूर दादनी, आसिकां दीदार॥ ७०॥

---

६७—भावार्थ—दादूजी कहते हैं नाम चिंतन वैसे अनेकों करते हैं पर इश्क = अत्यन्त प्रेम की लग्न से कोई नही कहता आत्मपरिचय या परमेश्वर की प्राप्ति के लिये पहिले मुहब्बत = तीव्र चाह का दर्द = वियोग प्राप्त करे तभी साहिब परमेश्वर हासिल होइ = प्राप्त हो।

६८—भावार्थ—अल्लाह = परम परमेश्वर के, आसिक = उपासक प्रेमी कहाँ जो अपनी साधना से अपने अहंकार तथा शरीराध्यास को मार देते हैं नष्ट कर देते हैं। और वे नकली दिखावटी आलम = संसारी पुरुष। औजूद = स्थूल शरीर के भरण पोषण में लगे हुये केवल महात्मापने की बात करते हैं उनकी उन सच्चे साधकों से बराबरी कहाँ ?

६९—अरवाह = जीवात्मा। सब पड़दा जलि जाइ = स्थूल सूक्ष्म संघात का तथा ममता वासना का सब पडदा = आवरण जल जाइ = विरहाग्नि में भस्म हो जाय।

७०—भावार्थ—अरवाहे = जीवात्मा अपने व्यापक रूप परमात्मा को सिजदा कुनन्द = नमस्कार करता है। औजूदरा चिकार = शरीर का ध्यान या अध्यास छोड दिया है। प्रेमीजन साधक को नूर जो शुद्ध स्वरूप उसका दादनी = नाम बगसीस या ध्यान उसीसे प्राप्त हो रहा है जिससे प्रेमी अपने प्रेम का दीदार = दर्शन प्राप्त कर रहे हैं।

विरह ज्ञान अग्नि

दादू विरह अग्नि तन जालिये, ज्ञान अग्नि दौं लाइ।
दादू नखसिख परजलै, तब राम बुझावै आइ ॥ ७१ ॥
विरह अगनि मैं जालिबा, दरसन के ताईं।
दादू आतुर रोइबा, दूजा कुछ नांहीं ॥ ७२ ॥

विरह पतिव्रत

साहिब सौं कुछ बल नहीं, जनि हठ साधै कोइ।
दादू पीड़ पुकारिये, रोतां होइ सो होइ ॥ ७३ ॥
ज्ञान ध्यान सब छाडि दे, जप तप साधन जोग।
दादू विरहा ले रहै, छाडि सकल रस भोग ॥ ७४ ॥
जहं विरहा तहं और क्या, सुधि बुधि नांठे ज्ञान।
लोक वेद मारग तजै, दादू एकै ध्यान ॥ ७५ ॥

---

७०—दृष्टान्त—*इब्राहीम फकीर सों, कही सिरै के लोग।*
*करि नमाज करणे लग्यो, उठे न बहुरयों चोग ॥ १ ॥*

७१—भावार्थ—आरम्भ में विरह प्रेमी भक्ति की साधना से तन स्थूल संघात के अध्यास से जलाइये, जब प्रेमी भक्ति अर्थात् विरह वियोग अपनी अन्तिम दशा में पहुंचेगा तब ज्ञानाग्नि प्रज्वलित होगी। ज्ञानाग्नि द्वारा जब सूक्ष्म संघात एकादश इन्द्रियों की वासना जल जायगी तब राम बुझावे आइ = विरह की समाप्ति होगी और वह प्रेम-आत्मा प्राप्त हो जायगा।

७२—जालिबा = जलाना। तांई = लिये। आतुर = व्याकुल।

७३—हठ = आग्रह।

७४—छाड़ि सकल रस भोग = भोगों की वासना के रस का परित्याग कर।

७५—सुधि बुधि = होशहवास। नाठे = दौड़ जाय, भाग जाय। ज्ञान = असत्य में सत्य का का भ्रान्त ज्ञान। लोक वेद मारग तजै = लौकिक मर्यादा तथा वेदादि प्रतिपादित सकाम कर्म का मार्ग वह साधक छोड़ देता है।

विरही बिरह लक्षण

विरही जन जीवै नहीं, जे कोटि कहैं समझाइ।
दादू गहिला ह्वै रहै, कै तलफि तलफि मरि जाइ ॥ ७६ ॥

दादू तलफै पीड़ सौं, विरही जन तेरा।
सिसकै सांई कारणै, मिलि साहिब मेरा ॥ ७७ ॥

पड्या पुकारै पीड़ सौं, दादू विरही जन।
राम सनेही चिति बसै, और न भावै मन ॥ ७८ ॥

जिस घटि बिरहा रामका, उस नींद न आवै।
दादू तलफै बिरहनी, उस पीड़ जगावै ॥ ७९ ॥

सारा सूरा नींद भरि, सब कोई सोवै।
दादू घाइल दरदवंद, जागै अरु रोवै ॥ ८० ॥

पीड़ पुराणीं नां पड़ै, जे अंतर वेध्या होइ।
दादू जीवण मरण लौं, पड्या पुकारै सोइ ॥ ८१ ॥

दादू विरही पीड सूं, पड्या पुकारै मीत।
राम बिना जीवै नहीं, पीव मिलन की चीत ॥ ८२ ॥

जे कबहुं बिरहनि मरै, तौ सुरति बिरहनी होइ।
दादू पिव पिव जीवतां, मुवां भी टेरै सोइ ॥ ८३ ॥

---

७६—विरही जन जीवे नहीं = आत्मजिज्ञासु साधक, जीवे नहीं = संसार के भोग पदार्थों की वासना में प्रेम नहीं करता। गहिला = बावला, अपने में मस्त।

८०—सारा सूरा = परिपूर्ण, निश्चिन्त।

८१—अन्तर वेध्या = भीतरसे घायल।

८३—दृष्टान्त—*दादूजी आमेर में, विरही देखे दोइ।*
*तन छूटे हू सुरति सों, पीव पीव नभ होइ ॥ १ ॥*

दादू अपणी पीड़ पुकारिये, पीड़ पराई नांहिं।
पीड़ पुकारै सो भला, जाके करक कलेजे मांहि ८४ ॥

विरह विलाप

ज्यूं जीवत मृत्तक कारणै, गत करि नाषै आप।
यौं दादू कारणि रामके, बिरही करै बिलाप ॥ ८५ ॥

दादू तलफि तलफि बिरहनि मरै, करि करि बहुत विलाप।
बिरह अगनि में जल गई, पीव न पूछै बात ॥ ८६ ॥

दादू कहां जांव कौण पै पुकारौं, पीव न पूछै बात।
पिव बिन चैन न आवई, क्यौं भरौं दिन रात ॥ ८७ ॥

दादू बिरह बिवोग न सहि सकौं, मो पै सह्या न जाइ।
कोई कहौ मेरे पीव कौं, दरस दिखावै आइ ॥ ८८ ॥

दादू बिरह बिवोग न सहि सकौं, निसदिन सालै मोहि।
कोई कहौ मेरे पीव कौं, कब मुख देखौं तोहि ॥ ८९ ॥

दादू बिरह विवोग न सहि सकौं, तन मन धरै न धीर।
कोई कहौ मेरे पीव कौं, मेटै मेरी पीर ॥ ९० ॥

---

८४—करक = चुभन, रड़क। कलेजे मांहि = अन्तःकरणमें।

८५—ज्यूं जीवत मृतक कारणै, गत करि नाषै आप = आत्मपरिचयप्राप्तिकी भावना वाला साधक अपने लक्ष्यके लिये अपने सब प्रकारके अहंकार को दूर कर अपनेको जीते हुए मृतकवत् निरभिमानी बना लेता है।

दृष्टान्त—*कृष्णगवन अर्जुन कह्यो, हस्तिनापुर में जाइ।*
*तन त्याग्यो कुन्ती तबै, मच्छी ज्यूं विललाइ ॥ १ ॥*

८७—क्यौं भरौं दिन रात ? = बिना उसके साक्षात्कार हुये विरहवेदना में दिन रात कैसे भरे पूरे किये जांय।

दादू साध दुखी संसार मैं, तुम बिन रह्या न जाइ।
औरौं के आनंद है, सुखसौं रैनि बिहाइ॥ ६१॥
दादू लाइक हम नहीं, हरि के दरसन जोग।
बिन देखे मरि जांहिगे, पिवके बिरह बियोग॥ ६२॥

बिरह पतिव्रत

दादू सुख सांईसौं और सबै ही दुख।
देखौं दरसन पीव का, तिसही लागै सुख॥ ६३॥
चंदन सीतल चंद्रमा, जल सीतल सब कोइ।
दादू बिरही राम का, इनसौं कदे न होइ॥ ६४॥

बिरही विरह लक्षण

दादू घाइल दरदवंद, अंतरि करै पुकार।
सांई सुणै सब लोक मैं, दादू यहु अधिकार॥ ६५॥
दादू जागै जगतगुरु, जग सगला सोवै।
बिरही जागै पीड़सौं, जे घाइल होवै॥ ६६॥

बिरहज्ञान अग्नि

बिरह अगनि का दाग दे, जीवत मृत्तक गौर।
दादू पहिली घर किया, आदि हमारी ठौर॥ ६७॥

६१—औरौं को आनन्द है, सुख सों रैन विहाइ = जो आत्मविमुख संसार के भोग विलास में लगे हुवे हैं वे अज्ञान निद्रा में आनन्द से मनुष्य जीवन रूपी रैन व्यतीत कर रहे हैं।

६६—जगसगला = बाह्यवृत्ति वाला सब संसार।

६७—भावार्थ—विरह की तपन में विविध वासना अहंकार तथा शरीर के अध्यास दाग = द संस्कार कर दिया। जीते हुये ही शरीर को मृतमनुष्य की कवर की तरह शान्त ब लिया। जो हमारी वास्तविक जगह है उसी चेतन अधिष्ठान में जीवन समाप्ति पहिले ही निवास कर लिया स्वस्वरूप में मिल गया।

बिरह पतिव्रत

दादू देखे का अचिरज नहीं, अणदेखे का होइ ।
देखे ऊपरि दिल नहीं, अणदेखे कौं रोइ ॥ ९८ ॥

बिरह उपजनी

पहिली आगम बिरह का, पीछै प्रीति प्रकास ।
प्रेम मगन लै लीन मन, तहां मिलन की आस ॥ ९९ ॥
बिरह बियोगी मन भला, सांई का बैराग ।
सहज संतोषी पाइये, दादू मोटे भाग ॥ १०० ॥
दादू तृषा बिना तनि प्रीति न उपजै, सीतल निकट जल धरिया ।
जनम लगैं जिव पुणग न पीवै, निरमल दह दिस भरिया ॥१०१॥
दादू षुध्या बिना तनि प्रीति न उपजै, बहु बिधि भोजन नेरा ।
जनम लगैं जिव रती न चाषै, पाक पूरि बहुतेरा ॥ १०२ ॥

---

९८—देखे का = देखे हुए का, नाम रूपमय संसार का । अणदेखे = बिना देखे का, सत्य स्वरूप स्वात्मा तथा समष्टि आत्मा का ।

दृष्टान्त—*दोय सिद्ध स्वामी पै आये, घोडा देखहु मन मुसकाए ।*
*स्वामी कहै कहां दिल दीया, नीले कान सो आगे कीया ॥ १ ॥*

९९—प्रीति प्रकाश = सात्विक वृत्ति की उत्पत्ति । लैलीन मन = मन की निश्चल ध्यानावस्था ।

१००—सहज संतोषी पाइये = शीतोष्णादि सब द्वन्द्व गुणों पर विजय प्राप्त किये हुये सहज दशा में पहुँचे हुये ऐसे सन्तोषी आत्मनिष्ठ महात्मा की प्राप्ति हो तो भाग मोटे समझने चाहिये ।

१०१—पुणग = फुँहार, लघुबून्द ।

१०२—षुध्या = भूख, चाह । पाकपूरि = विविध पक्वान ।

दादू तपति बिना तनि प्रीति न उपजै, संगही सीतल छाया।
जनम लगैं जिव जाणै नांही, तरवर त्रिभुवन राया ॥ १०३ ॥
दादू चोट बिना तनि प्रीति न उपजै, औषद अंग रहंत।
जनम लगैं जिव पलक न परसै, बूंटी अमर अनंत ॥ १०४ ॥
दादू चोट न लागी बिरह की, पीड़ न उपजी आइ।
जागि न रोवै धाह दे, सोवत गई बिहाइ ॥ १०५ ॥
दादू पीड़ न ऊपजी, ना हम करी पुकार।
तायैं साहिब ना मिल्या, दादू बीती वार ॥ १०६ ॥
अंदरि पीड़ न ऊभरै, बाहिर करै पुकार।
दादू सो क्यौं करि लहै, साहिब का दीदार ॥ १०७ ॥
मन ही मांहै झूरणां, रोवै मन ही मांहिं।
मन ही मांहै धाह दे, दादू बाहरि नांहिं ॥ १०८ ॥
बिन ही नैनहु रोवणां, बिन मुख पीड़ पुकार।
बिन ही हाथौं पीटणां, दादू बारंबार ॥ १०९ ॥
प्रीति न उपजै बिरह बिन, प्रेम भगति क्यौं होइ।
सब झूठे दादू भाव बिन, कोटि करै जे कोइ ॥ ११० ॥

१०३—तरवर = वृक्ष। त्रिभुवनराया = तीनों लोकों के स्वामी।

१०५—धाहदे = जोर की आवाज से।

१०६—वार = समय, मनुष्यजन्म।

१०७—ऊभरै = अंकुरित हो, उत्पन्न हो।

१०९—भावार्थ—विवेक विचाररूपी नेत्रों से रोवणा, विनमुख = अन्तर्वृत्ति द्वारा पीड पुकार = स्मरण करना निग्रह तथा ध्यानरूपी हाथों से मनको पीटणा = स्थिर करना यही साधन बारम्बार = अनवरत करना।

दादू बातौं बिरह न उपजै, बातौं प्रीति न होइ।
बातौं प्रेम न पाइये, जिनि रु पतीजै कोइ॥ १११॥

बिरह उपदेश

दादू तो पिव पाइये, कुसमल है सो जाइ।
निर्मल मन करि आरसी, मूरति मांहि लषाइ॥ ११२

दादू तो पिव पाइये, करि मंझै बिलाप।
सुनिहै कबहूं चित्त धरि, परगट होवै आप॥ ११३॥

दादू तो पिव पाइये, करि सांई की सेव।
काया मांहि लखाइसी, घटही भीतर देव॥ ११४॥

दादू तो पिव पाइये, भावै प्रीति लगाइ।
हेजैं हरि बुलाइये, मोहन मंदिर आइ॥ ११५॥

बिरह उपजनी

दादू जाकै जैसी पीड़ है, सो तैसी करै पुकार।
को सूषिम, को सहज मैं, को मृतक तिहिं बार॥ ११६॥

---

११२—कुसमल = कलुषता, मैलापन, कषाय। आरसी = स्वच्छ दर्पण, हृदयरूपी दर्पण।

११३—मंझै = भीतर, अन्तःकरण में।

११५—भावै = सच्ची भावना से, श्रद्धा से। हेजैं = हेत, प्यार अति अनुराग।

११६—को सूषम, को सहज में, को मृतक तिहिंवार = साधक की साधना के अनुसार कई दशायें होती हैं ऊपर इसी का निर्देश किया गया है। कोई साधक वृत्ति को मन तक ले गया है, कोई सहज दशा अधिष्ठान तक पहुंचता है, कोई विरह की उत्पत्ति से जीवन्मुक्त की दशा में आजाता है। साधना जैसी होती है उसी के अनुरूप उसकी स्थिति बनती है।

बिरह लक्षण

दरद हि बूझै दरदवंद, जाके दिल होवै।
क्या जाणै दादू दरदकी, नींद भरि सोवै॥ ११७॥

करणी बिना कथनी

दादू अच्चर प्रेम का, कोई पढैगा एक।
दादू पुस्तक प्रेम बिन, केते पढैं अनेक॥ ११८॥
दादू पाती प्रेम की, बिरला बांचै कोइ।
वेद पुरान पुस्तक पढैं, प्रेम बिना क्या होइ॥ ११९॥

बिरहबाण

दादू कर बिन सर बिन कमान बिन, मारै खैंचिक सीस।
लागी चोट सरीर मैं, नख सिख सालै सीस॥ १२०॥
दादू भलका मारै भेदसौं, सालै मंझि पराण।
मारण हारा जाणि है, के जिहि लागै बाण॥ १२१॥
दादू सो सर हमकौं मारिले, जिहि सर मिलिये जाइ।
निसदिन मारग देखिये, कबहूं लागै आइ॥ १२२॥

११७—बूझै = कहै, जानें।

११८—दादू अच्छर प्रेम का = परम अनुराग अति श्रद्धा से नामचिंतन कोई ही करता है।

११९—पाती = पत्री, पाना।

१२०—षैंचिक = खेंचकर, तानकर। सालै = चुभै, खटके।

दृष्टान्त—*सालभद्र बत्तीस त्रिय, त्यागी नृपसम जानि।*
*धने सेठ तिहिं त्याग सुनि, षोडश तजी सुजान॥ १॥*

१२१—भलका = भाला। मंझि = भीतर। पराण = प्राण।

१२२—सो सर हमको मारि लै = वह वचन बाण हमें मारिये = लगाइये।

जिहि लागी सो जागि है, वेध्या करै पुकार।
दादू पिंजर पीड़ है, सालै बारंबार॥ १२३॥
बिरहि सिसकै पीड़सौं, ज्यौं घाइल रण मांहि।
प्रीतम मारे बाण भरि, दादू जीवैं नांहि॥ १२४॥
दादू बिरह जगावैं दरद कौं, दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरति कौं, पंच पुकारैं पीव॥ १२५॥
दादू मारे प्रेम सौं, बेधे साध सुजाण।
मारणहारे कौं मिले, दादू बिरही बांण॥ १२६॥
सहजैं मनसा मन सधैं, सहजैं पवना सोइ।
सहजैं पंचौं थिर भये, जे चोट बिरह की होइ॥ १२७॥
मारणहारा रहि गया, जिहिं लागी सो नांहिं।
कबहूं सो दिन होइगा, यहु मेरे मन मांहि॥ १२८॥

१२३—जागि है = सचेत होगा, संसार की अविद्या-निद्रा से जागना। वेध्या = घायल, प्रेम में तत्पर। पिंजर = शरीर में।

१२४—सिसकै = चेतनहीन श्वास ले। प्रीतम = परमेश्वर। दादू जीवे नांहिं = विषय वासना रूपी जीवन अब नहीं है।

१२५—भावार्थ—विरह से वियोग वेदना उत्पन्न हो, वियोग वेदना से जीव=अन्तःकरण जागे विवेक विचारमय हो। अन्तःकरण में स्वस्वरूपप्राप्ति के विचार के उदय होने से सुरतिवृत्ति की जागृति है तब पांचों ज्ञानेन्द्रियां पीव की = अपने स्वरूपप्राप्ति की पुकार में लगती हैं।

१२६—मारणहारे को मिलै, दादू विरही वाण = विरही और विरह दोनों मारने वाले = विरह की पीड पैदा करने वाले परमेश्वर में ही मिल जाते हैं।

१२८—मारणहारा=मारने वाला।

प्रीतम मारे प्रेम सौं, तिनकौं क्या मारै।
दादू जारे बिरह के, तिन कौं क्या जारै॥ १२९॥

छिन बिछोह

दादू पड़दा पलक का, येता अंतर होइ।
दादू बिरही राम बिन, क्यौं करि जीवै सोइ॥ १३०॥

बिरह लक्षण

काया मांहै क्यौं रह्या, बिन देखे दीदार।
दादू बिरही बावरा, मरै नहीं तिहिं बार॥ १३१॥
बिन देखै जीवै नहीं, बिरह का सहिनाण।
दादू जीवै जब लग, तब लग बिरह न जांण॥ १३२॥

बिरह बिनती

रोम रोम रस प्यास है, दादू करहि पुकार।
राम घटा दल उमंगि करि, बरसहु सिरजनहार॥ १३३॥

बिरही बिरह लक्षण

प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहिं।
रोम रोम पिव पिव करै. दादू दूसर नांहिं॥ १३४॥

---

१२९—तिनको क्या मारे = उनको काल क्या मार सकेगा ?

१३१—काया मांहे क्यों रहै = साधक होकर शरीर के ही अध्यास में क्यों लगा रहे ?

दृष्टान्त—देख पतंगा बहु जरे, भूँड मिल्यो इक आइ।
जाहु दीप देष्याइ तूं, गयो देखि उठि जाइ॥ १॥

१३२—सहनाण=चिन्ह, लक्षण।

१३३—रस प्यास=आत्मानन्द रूपी रस की प्यास।

१३४—पैठी = प्रवेश कर गई।

सब घट श्रवनां सुरति सौं, सब घट रसना बैंन।
सब घट नैंना ह्वै रहै, दादू बिरहा अैंन॥ १३५॥

विरही विलाप

राति दिवस का रोवणां, पहर पलक का नांहिं।
रोवत रोवत मिलि गया, दादू साहिब मांहिं॥ १३६॥

दादू नैन हमारे बावरे, रोवैं नहिं दिन राति।
सांईं संग न जागहीं, पीव क्यौं पूछै बात॥ १३७॥

नैनहु नीर न आइया, क्या जाणैं ये रोइ।
तैसें ही करि रोइये, साहिब नैनहु जोइ॥ १३८॥

दादू नैन हमारे ढीठ हैं, नाले नीर न जाहिं।
सूके सरां सहेत वै, करंक भये गलि मांहिं॥ १३९॥

१३५—भावार्थ—सच्चा विरह उत्पन्न होने पर साधक का क्या रूप बनता है उसका वर्णन इस साखी में किया है। सारा स्थूल सूक्ष्म संघात सुरति = वृत्ति से अनहदनाद सुनने को श्रवणसम हो जाता है। सारा स्थूल सूक्ष्म संघात नाम चिन्तन के लिये रसना बन जाता है। सारा स्थूल सूक्ष्म संघात स्वस्वरूप को देखने के लिये नेत्रमय हो जाता है यदि ऐंन = सच्चा विरह उत्पन्न हो जाय तो।

दृष्टान्त—*पृथु नृप श्रवण विष्णुते, मांगे रोम शरीर।*
*कही विष्णु दोइ कान में, व्हैहैं रुच नृप धीर॥ १॥*

१३६—दृष्टान्त—*अजयपाल के रुदन को, पूछ सकत नहिं कोइ।*
*वृद्ध विप्र गयो पूछि कै, तीन सिद्ध कों जोइ॥ १॥*
*तहां च्यारि लग कोटरी, देखण कियो विचार।*
*गज द्विज बांधा देख के, खर चढि रोत अपार॥ २॥*

१३८—तैसें ही करि रोइये=ऐसा रोना रोइये ऐसी साधना करिये कि जिससे साहिब को साक्षात् देख लें।

१३९—भावार्थ—हमारे विरह रूपी नेत्र ढीठ हैं बेशर्म है वे इस तरह नहीं रोते कि आंसुओं के नाले चल पड़ें। साधना या प्रेम तो उन मेंडक मछली जैसा करना चाहिये कि सर = तालाव के सूखने पर वे भी उसी में प्राणपरित्याग कर अपने को गला देते हैं।

विरही विरह लक्षण

दादू बिरह प्रेम की लहरि मैं, यहु मन पंगुल होइ।
राम नाम मैं गलि गया, बूझै बिरला कोइ ॥ १४० ॥

विरह ज्ञानअग्नि

दादू बिरह अगनि में जलि गये, मनके मैल बिकार।
दादू बिरही पीवका, देखेगा दीदार ॥ १४१ ॥
बिरह अगनि मैं जलि गये, मन के विषै विकार।
ताथैं पंगुल ह्वै रह्या, दादू दरि दीदार ॥ १४२ ॥
जब बिरहा आया दरद सौं, मीठा लागा राम।
काया लागी काल ह्वै, कड़वे लागे काम ॥ १४३ ॥

विरह बाण

जब राम अकेला रहि गया, तन मन गया बिलाय।
दादू बिरही तब सुखी, जब दरस परस मिल जाय ॥ १४४ ॥

विरही विरहा लक्षण

जे हम छाड़ैं राम कौं, तौ राम न छाड़ै।
दादू अमली अमल थैं, मन क्यूं करि काढ़ै ॥ १४५ ॥

---

१४०—पंगुल = पांगला, अचंचल।

१४२—ताथैं पंगुल ह्वै रह्या, दादू दरि दीदार = मन के विषय विकार विरहाग्नि में जल जाने से वह दीदार=आत्मस्वरूप के दर=दरवाजे सांनिध्य में पंगुल=गुणातीत होकर ठहर गया।

१४३—दरद=प्रेम विरह की वेदना से। कड़वे=अरुचिकर। काम=वासना।

१४४—जब दरस परस मिल जाय=अभेदवृत्ति से स्वरूपसामान्य से एक हो जाय।

१४५—अमली=व्यसनी।

दृष्टान्त—कोउ अमली मग जात हो, अमल बखत भइ आइ।
गांव दूर दुख अति लह्यो, मूंज नीर पी जाइ ॥ १ ॥

बिरहा पारस जब मिलै, बिरहनि बिरहा होइ।
दादू परसै बिरहनी, पिव पिव टेरै सोइ॥ १४६॥

आसिक मासूक ह्वै गया, इस्क कहावै सोइ।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ॥ १४७॥

राम बिरहनी ह्वै रह्या, बिरहनि ह्वै गई राम।
दादू बिरहा बापुरा, असै करि गया काम॥ १४८॥

बिरह बिचारा लेगया, दादू हम कौं आइ।
जहं अगम अगोचर राम था, बिरह बिना को जाइ॥ १४९॥

बिरह बापुरा आइ करि, सोवत जगावै जीव।
दादू अंगि लगाइ करि, ले पहुंचावे पीव॥ १५०॥

---

१४६—परसै = स्पर्श करे, छूए।

१४७—भावार्थ—वही इश्क साधन सच्चा है जिससे मासूक उपास्य है वह आशिक–उपासक हो जाय। दादूजी कहते हैं उस साधक मासूक का स्वयं अल्लह—चिदात्मा है वह आशिक—अनुरागी बन जाता है।

दृष्टान्त, मनहर—

*ओलिया निजामुदीन बावडी करावे राति नीर दीप जोइकै दिखाई करामात को।*
*आपके कलंदर छीन उठि लेइ गये आवत मुरीद पूछी कही उन रात को॥*
*गावत अनूप नर जायो उस बालक कों देखत अखंड ताहि पावे नित्य स्वांति को।*
*बैठिकै उछंग में मासूक कही दाढि एचें ओलिया निजाम को कहायो बड भांति को॥१॥*

१४९—जहं अगम अगोचर राम था, तहं बिरह बिना को जाइ=जो स्वस्वरूप अगम—बुद्धि से परे थे अगोचर—इंद्रियातीत था वहां बिरह बिना—प्रेमाभक्ति बिना कौन ले जाय अर्थात् अन्य सकाम कर्मसाधन से उसकी प्राप्ति संभव नहीं।

१५०—अंग लगाइ करि=स्वस्वरूप में स्थिर कर।

बिरहा मेरा मीत है, बिरहा बैरी नांहिं।
बिरहा को बैरी कहै, सो दादू किस मांहिं ॥ १५१ ॥
दादू इश्क अल्लह की जाति है, इश्क अल्लह का अंग।
इश्क अल्लह औजूद है, इश्क अल्लह का रंग ॥ १५२ ॥

साधुमहिमा माहात्म्य

दादू प्रीतम के पग परसिये, मुझ देखण का चाव।
तहां ले सीस नवाइये, जहां धरे थे पाव ॥ १५३ ॥

बिरह पतिव्रत

बाट बिरह की सोधि करि, पंथ प्रेम का लेहु।
लै के मारग जाइये, दूसर पाव न देहु ॥ १५४ ॥
बिरहा बेगा भगति सहज मैं, आगै पीछै जाइ।
थोड़े मांहै बहुत है, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ १५५ ॥

---

१५१—मीत = मित्र, सच्चा हितैषी।

१५२—परमेश्वर का स्वरूप, वर्ण, जाति और अंग कैसे है ? इस प्रश्न का प्रत्युत्तर इस साखी में दिया है। दादूजी महाराज ने निर्देश किया कि ईश्वर के स्वरूप, जाति, वर्ण, अंग की अनुभूति का एक ही साधन है और वह है–इश्क यानी सच्चा अनुराग। सच्चा अनुराग ही ईश्वर के अशेष भावों का ज्ञापक है।

दृष्टान्त—*गुरु दादू सों पातसा, बूझी च्यार जु बात।*
*जाति अंग औजूद रंग, साहब के विख्यात ॥ १ ॥*

१५३—चाव = कोड़, उमंग।

दृष्टान्त—*शिव मग जाति निवात शिर, देखि उभै अस्थान।*
*त्यूं गुरु दादू कांकरे, निवत सदा सनमान ॥ १ ॥*

१५४—बाट = मार्ग, रास्ता। इस साखी में बाट, पंथ, मार्ग, तीन शब्द समानार्थक से आये हैं, पर इनके अर्थ में भिन्नता है, बाट = पगडंडी। पथ = रास्ता। मार्ग = राजमार्ग।

बिरह बाण

विरहा बेगा ले मिलै, तालाबेली पीर ।
दादू मन घाइल भया, सालै सकल सरीर ॥ १५६ ॥

आज्ञा अपरंपार की, बसि अंबर भरतार ।
हरे पटंबर पहिरि करि, धरती करै सिंगार ॥ १५७ ॥

बसुधा सब फूलै फलै, पिरथी अनंत अपार ।
गगन गरजि जल थल भरै, दादू जै जै कार ॥ १५८ ॥

---

साधन में बिरह बाट स्थानीय उत्कट प्रेम या प्रेमाभक्ति पथस्थानीय तथा लै = लय-योग-मार्ग-स्थानीय है ।

१५६—विरहा वेगा ले मिलै, ताला वेली पीर = यदि अत्यन्त तीव्र चाह के साथ विरह उत्पन्न हो तो वह शीघ्र ही आत्मसाक्षात् करा देता है ।

१५७—१५८—भावार्थ—अपरंपार व्यापक समष्टि के चेतन की आज्ञा = अनुकम्पा हुई है जिससे वसि = प्राणशक्ति है वही अम्बर इन्द्रियादि सहित मन को भरतार = स्वामी रूप से आत्माभिमुख प्रेरणा कर रहा है, प्राण की इसी प्रेरणा से धरती = धारणा-वती बुद्धि । हरे पटंबर पहिरि = दैवी सम्पत्ति से सज्जित हुई शोभायमान है । वसुधा = वसु-रामरूपी धन की धारक बुद्धि फूलै = भक्ति तथा अनन्य प्रेम से प्रफुल्लित हो फलै = सत्‌ज्ञानरूपी फल को प्राप्त कर रही है । पिरथी = सहनशील बुद्धि उस अनन्त व्यापक अपार असोम आत्मा में स्थिर हो रही है । गगन = अन्तःकरण या हृदयगुहा उसमें ज्ञान की गर्जना हो रही है जिससे थल = शरीर के सम्पूर्ण कोष्ठक, नौ सौ नाडी बहत्तर कोठे हरि दर्शन रूपी जल से भरै = परिपूर्ण हो रहे हैं । दादू जै जैकार = दादूजी महाराज कह रहे हैं ऐसे अपरंपार की अनुकम्पा से स्मरण की सार्थकतारूप जय जयकार = परमानन्द की अनुभूति हो रही है । परमानन्द मंगल की प्राप्ति हो रही है ।

**काला मुंह करि कालका, सांई सदा सुकाल।**
**मेघ तुम्हारे घरि घणां, बरसहु दीन दयाल॥ १५६॥**

**इति श्री बिरह कौ अंग सम्पूर्ण॥**

१५६—भावार्थ—वासना तथा अध्यासरूपी काल का मुंह काला करिये। हे सांई, आपकी कृपा से नामचिंतनरूप सदा सुकाल प्राप्त हो। हे मेघ! हे ज्ञानघन! आपके तो बरसने के लिये—कृपा करने के लिये बहुत घर है। हे दीनदयालो! बरसहु अर्थात् इस अन्तःकरण पर दया की वृष्टि करिये।

दृष्टान्त—*आंधी गाँवहि मांहि, रहे जु दादूदासजी।*
*वर्षा वरसी नांहि, विनती कर वरसाइयो॥ १॥*

*❀ विरह का अंग सम्पूर्ण ❀*

# अथ परचा को अंग ॥ ४ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

दादू निरन्तर पिव पाइया, तहं पंखी उनमन जाइ ।
सप्तौं मंडल भेदिया, अष्टैं रह्या समाइ ॥ २ ॥

दादू निरन्तर पिव पाइया, जहं निगम न पहुंचै वेद ।
तेज सरूपी पिव बसै, बिरला जानै भेद ॥ ३ ॥

दादू निरन्त पिव पाइया, तीनि लोक भरपूरि ।
सब सेजौं सांई बसै, लोक बतावैं दूरि ॥ ४ ॥

दादू निरन्तर पिव पाइया, जहं आनंद बारह मास ।
हंस सौं परमहंस खेलै, तहं सेवग स्वामी पास ॥ ५ ॥

---

२—निरन्तर = परिपूर्ण । हृदय में, अन्तररहित । पंखी = प्राण । उनमन = ऊंची दशा, लयावस्था । सप्तौ मण्डल = सात लोक, सात धातु, सप्तआथिक प्रकाश । देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, बुद्धि, अज्ञान, जीव ये सात । सप्तचैतन्य—शुद्ध, ईश्वर, जीव, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, फल । सप्त आवरण = माया, अहंकार, पंचभूत । सप्त आवरण—अज्ञान, आवरण, परोक्ष भ्रान्ति, अपरोक्ष भ्रान्ति, शोक, नाश, अति हर्ष, आभागनि मान चक्र। अष्टौं = आठवां, स्वस्वरूप, निर्विकल्प अवस्था ।

३—जहं निगम न पहुंचे वेद = निगम स्मृति धर्मशास्त्र तथा वेद उन्हीं वस्तुओं का निरूपण करते हैं जिनमें गुण, क्रिया तथा जाति सम्बन्ध होता है । शुद्ध चैतन्य गुण, क्रिया तथा जाति से रहित है अतः स्मृतिशास्त्र तथा कर्मोपदेशक वेद उसके विषय में कुछ नहीं कह सकते । वहां उनकी पहुँच नहीं अर्थात् वह उनका वर्ण्यविषय नहीं है ।

४—सब सेजों सांई वसै = सब प्राणियों के सेजोंअन्तःकरणरूपी चार पायों वाली सेज में परमेश्वर निवास कर रहा है अर्थात् सब घटों में ईश्वर व्यापक है ।

५—हँस = व्यापक विशुद्ध चेतन । परमहँस = साधक का व्यष्टि चेतन । तँह=पराभक्ति की अवस्था, लयदशा ।

दादू रंग भरि खेलौं पीव सौं, तहं बाजै बैन रसाल।
अकल पाट परि बैठा स्वामी, प्रेम पिलावै लाल ॥ ६ ॥

दादू रंग भरि खेलौं पीव सौं, सेतौ दीन दयाल।
निस बासुरि नहिं तहं वसै, मांनसरोवर पाल ॥ ७ ॥

दादू रंग भरि खेलौं पीव सौं, तहं कबहूं न होइ बिवोग।
आदि पुरुस अंतरि मिल्या, कुछ पूरबले संजोग ॥ ८ ॥

दादू रंग भरि खेलौं पीव सौं, तहं बारह मास बसंत।
सेवग सदा अनंद है, जुगि जुगि देखौं कंत ॥ ९ ॥

दादू काया अंतरि पाइया, त्रिकुटी केरे तीर।
सहजैं आप लखाइया, व्याप्या सकल सरीर ॥ १० ॥

दादू काया अंतरि पाइया, निरन्तर निरधार।
सहजैं आप लखाइया, ऐसा समरथ सार ॥ ११ ॥

---

६—रंगभरि=अतिशय प्रेम कर। तहं=साधक के अन्तःकरण में। रसाल=अनहदशब्द-ध्वनि। अकलपाट=कल=धर्म रागद्वेषादि से रहित हृदय। लाल=स्वस्वरूप।

७—निसि वासर नहिं तहं वसै=ज्ञान अज्ञान वृत्ति वही है रात दिन वे जिस अन्तःकरण में नहीं हैं अर्थात् शुद्ध अन्तःकरण है उसी में उसका वास-निवास दिखाई पड़ता है।

८—रंग भरि खेलौं पीव सौं=प्रेममय भाव से भरपूर हो साक्षात् परचै प्राप्त करूं। तहं कबहू न होय विवोग=उस साक्षात् परचै दशा में फिर कभी वियोग की बाधा नहीं हो सकती।

९—बारह मास बसंत=परम आनन्द की अवस्था है वही बसंतवत् सदा प्रफुल्लित रखती है जुग जुग=अखंड, सर्वदा। कंत=अपना साध्य, अपना उपास्य, अपना स्वरूप।

१०—काया=देह। अन्तरि=शुद्ध अन्तःकरण में। त्रिकुटि केरे तीर=जिस अवस्था में मन, प्राणवृत्ति एक स्थान में स्थित हों वही त्रिकुटीतीर है।

११—निरधार=स्वयं किसी के आधार में नहीं, सर्वाधार।

दादू काया अंतरि पांइयां, अनहद बैन बजाइ।
सहजैं आंप लखाइया, सुन्य मंडलमैं जाइ ॥ १२ ॥
दादू काया अंतरि पाइया, सब देवन का देव।
सहजैं आप लखाइया अैसा अलख अभेव ॥ १३ ॥
दादू भवर कवल रस बेधिया, सुख सरवर रस पीव।
तहं हंसा मोती चुणैं, पीव देखे सुख जीव ॥ १४ ॥
दादू भवर कवल रस बेधिया, गहे चरण कर हेत।
पीवजी परसत ही भया, रोम रोम सब सेत ॥ १५ ॥
दादू भवर कवल रस बेधिया, अनत न भरमैं जाइ।
तहां बास विलंबिया, मगन भया रस खाइ ॥ १६ ॥
दादू भवर कमल रस बेधिया, गही जो पीव की ओट।
तहां दिल भवरा रहै, कौण करै सर चोट ॥ १७ ॥

---

१२—अनहद बैन=सहज शब्द, ध्यानावस्था। सून्यमण्डल = बासनारहित अन्तःकरण, निर्विकल्प समाधिदशा।

१३—सहजैं=निर्विकल्प अवस्था। अलख=स्वयंप्रकाश। अभेव=इयत्ता या विवरण रहित।

१४—भावार्थ—भँवर=साधक का शुद्ध मन केवल रस=स्वस्वरूपप्राप्तिरूपी रस में वेधिया= संलग्न हो गया, लग गया। सरवर=हृदयरूपी सरोवर में परमानन्द प्राप्तिरूप रस पी सुखी हो रहा है। तहं विशुद्ध हृदय में हंसा=साधक सन्तजन मोती=परिचय नाम रूपी मोती चुणै=चुने, लहे, प्राप्तकरे। पिव=अपने साध्यस्वरूप को देख—प्राप्त कर परम सुख का उपयोग कर रहे हैं।

१५—गहे चरण कर हेत=हेत—अति प्रेम कर चेतन आत्मा को ही आधार बना लिया। परसत=तदाकारवृत्ति होते ही। रोम रोम सब सेत=अन्तःकरणचतुष्टय शुद्ध होगया।

१६—अनत न भरमैं जाइ=लोक परलोक के सकाम कर्म न करे। तहां वास विलम्बिया= शुद्ध अन्तःकरण में वास निवास कर वहीं विलंबिया=समाधिस्थ हो गया।

१७—गही=पकडी, धारण की। ओट=आश्रय, शरण। कौंण करे सरचोट=उस स्वस्वरूप-

परचै जिज्ञासु उपदेश

**दादू खोजि तहां पिव पाइये, सबद ऊपनै पास।**
**तहां एक एकांत है, तहां जोति परकास॥ १८॥**
**दादू खोजि तहां पिव पाइये जहं चंद न ऊगै सूर।**
**निरन्तर निरधार है, तेज रह्या भरपूर॥ १९॥**
**दादू खोजि तहां पिव पाइये, जहं बिन जिभ्या गुण गाइ।**
**तहं आदि पुरुस अलेख है, सहजैं रह्या समाइ॥ २०॥**
**दादू खोजि तहां पिव पाइये, जहं अजर अमर उमंग।**
**जरा मरण भै भाजसी, राखै अपणै संग॥ २१॥**
**दादू गाफिल छो वतौं, मंझे रब निहारि।**
**मंझेई पिव पाण जौ, मंझेई बिचार॥ २२॥**

---

स्थित वृत्ति की दशा में वासनामय वाणी की चोट कौन कर सकता है अर्थात् कोई नहीं कर सकता।

१८—खोजि=तलाश कर, अनन्य श्रद्धा से। तहां=विशुद्ध हृदय में ही। शब्द ऊपनै पास=जहां से शब्द की उत्पत्ति होती है अर्थात् नाभिकमल से। एकान्त=ब्रह्मगुहा। जोति=ज्ञानमय चेतन।

१९—जहँ चन्द न ऊगै सूर=जहां सूर्य चन्द्र दीपकादि प्रकाश की गति नहीं।

२०—जहँ बिन जिभ्या गुण गाइ=जहां आत्मनिष्ठवृत्ति की दशा में जीभ के बिना केवल सुरतिवृत्ति से ही गुण गाया जाय—आत्मचिंतन किया जाय। अलेष=अचिन्त्य। सहजैं=स्वाभाविक अवस्था, माया अविद्या से रहित।

२१—उमंग=तीव्र उत्साह। जहं अजर अमर उमंग=आत्मा को जानने से ही जरा मृत्यु भय का निवारण होता है अतः उसी भावना को अति उत्साह से अपनाओ। तभी उस चेतन अधिष्ठान के साथ रह सकोगे।

२२—भावार्थ—हे मानव! तूं अपनी वास्तविकता से क्यूं गाफिल है मंझे=भीतर, रब=

दादू गाफिल छो वतैं, आहे मंझि अल्लाह ।
पिरी पांण जो पाणसैं, लहै सभोई साव ॥ २३ ॥
दादू गाफिल छो वतैं, आहे मंझि मुकाम ।
दरगह मैं दीवाण तत, पसे न बैठो पांण ॥ २४ ॥
दादू गाफिल छो वतैं, अन्दरि पिरी पसु ।
तषत रवाणीं बिच मैं, पेरे तिन्हीं वसु ॥ २५ ॥

पाचै

हरि चिन्तामणि चिंततां, चिन्ता चित की जाइ ।
चिन्तामणि चित मैं मिल्या, तहं दादू रह्या लुभाइ ॥ २६ ॥

---

परमेश्वर या अपना अधिष्ठान निहार=देख । पाण जो=जो आप, पिव=शुद्ध चैतन्य, मंझेई = भीतर ही है । इसलिये भीतर ही उसकी तलाश कर ।

२३—भावार्थ—हे मानव, वतैं=उस आत्मा से, छो=[illegible], गाफिल हो=विमुख हो अल्लह=ईश्वर, मंझे=भीतर ही है । उस परमेश्वर को जो अपने आप में ही मौजूद है सब सुखों का सार वह भीतर ढूंढने ही से प्राप्त हो सकता है ।

२४—हे मानव उस परमानन्द के दाता अपने अधिष्ठान से गाफिल—विमुख क्यों है ? उसका तो भीतर ही निवास' है । दरगह=शुद्धहृदयप्रदेश में वह दीवाण=सब का आधार, पांण=स्वयं बैठा है, स्थित है । उसको पसे = क्यों नहीं देखता ?

२५—हे मानव ! अपने आपको समझने में बेखबर क्यों है ? पिरी = परमात्मा । अन्दर = अन्तःकरण में ही देख । वह रवाणी=विशिष्ट यानी विशुद्ध तषत=अन्तःकरण में प्रकाशित हो रहा है, तूं तिन्हीं=उसीके, पेरे वसु=पास बैठ, उसी में अपनी मनोवृत्ति स्थिर कर ।

२६—हरि=कल्मष, पाप हरने वाला । चिंतामणि=नामचिंतन । चिन्तता=जपतां, स्मरण करतां । चिंतामणि=चिंतन की पूर्ति करने वाला ।

अपने नैनहुँ आपकौं, जब आत्म देखै ।
तहं दादू परआतमा, ता ही कूं पेखै ॥ २७ ॥
दादू बिन रसना जहं बोलिये, तहं अन्तरजामी आप ।
बिन श्रवणहु सांई सुनै, जे कुछ कीजै जाप ॥ २८ ॥

परचै जिज्ञासु उपदेस

ज्ञान लहर जहां थैं उठै, वाणी का परकास ।
अनभै जहां थैं उपजै, सबदैं किया निवास ॥ २९ ॥
सो घर सदा विचार का, तहां निरञ्जन वास ।
तहं तू दादू खोजि ले, ब्रह्म जीव के पास ॥ ३० ॥
जहं तन मन का मूल है, उपजै ओंकार ।
अनहद सेझा सबद का, आतम करै विचार ॥ ३१ ॥
भाव भगति लै उपजै, सो ठाहर निज सार ।
तहं दादू निधि पाइये, निरन्तर निरधार ॥ ३२ ॥

---

२७—नैनहु=ज्ञानरूपी नेत्रों से । पेखे=देखे ।

२८—विन रसना जँह बोलिये=विना जीभ के सुरतिवृत्ति रसना से जँह=अन्तःकरण में बोलिये=ध्यान करें ।

२९—जहां थैं=जिस जगह से, हृदय प्रदेश से । वांणी=परावाणी । अनभै=साक्षात् परिचय । शबदै किया निवास = अनाहतशब्द में वृत्ति को लय करना ।

३०—सो घर=निवासस्थान, अन्तःकरणरूपी घर । तहं तू = उसी अन्तःकरण में ही तूं ।

३१—जहँ=जहां, हृत्प्रदेश, अन्तःकरण में । सेझा=झरना ।

३२—भाव=श्रद्धा । भगति=भजन । लै=कार्यकारण की एकता । सो ठाहर=वह जगह, शुद्ध हृदय प्रदेश । निधि=खजाना, अभीष्ट सम्पद् ।

एक ठौर सूझै सदा, निकुटि निरन्तर ठांउ ।
तहां निरञ्जन पूरि ले, अजरावर तिहि मांउ ॥ ३३ ॥
साधू जन क्रीला करैं, सदा सुखी तिहिं गाँव ।
चलु दादू उस ठौर की, मैं बलिहारी जांव ॥ ३४ ॥
दादू पसु पिरंनि के, पेही मंझि कलूब ।
बैठौ आहे बिच मैं, पाण जो महबूब ॥ ३५ ॥
नैनहु वाला निरखि करि, दादू घालै हाथ ।
तब ही पावै राम धन, निकटि निरञ्जन नाथ ॥ ३६ ॥
नैनहु बिन सूझै नहीं, भूला कतहूं जाइ ।
दादू धन पावै नहीं, आया मूल गंवाइ ॥ ३७ ॥

परचै लै लक्षण

जहां आत्म तहं राम है, सकल रह्या भरपूर ।
अन्तरि गति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवग सूर ॥ ३८ ॥

---

३३—भावार्थ—जो सदा विशुद्ध अन्तःकरण में प्रकाशमान है निकट=अति समीप निरंतर=अपने ही में उसकी ठांऊ=ठहरने की जगह है । वहीं निरंजन पूरले=मल विक्षेप अध्यास से रहित वृत्ति द्वारा शुद्ध स्वरूप को भर ले । इस स्थिति का ही अजरावर नांव है, इस स्थिति में आने पर ही जरा मृत्युभय मिटता है ।

३४—क्रीला=क्रीडा, अहंग्री उपासना, आनन्द प्राप्ति के लिये साधना । तिहि गांव=उस [illegible], शुद्ध अन्तःकरण । उस ठौर=शुद्ध आत्मा ।

३५—भावार्थ—हे साधक, पिरंनि=परमेश्वर व महबूब=अति प्रिय आत्मा । पेही मंझि कलूव = स्थूल शरीर के सूक्ष्म अन्तःकरण में देख । वह आप उसी शुद्ध अन्तःकरण में बैठो आहे=बैठा है, स्थित है ।

३६—नैनहु वाला = ज्ञान सद्‌विचाररूपी नेत्रवाला ।

३७—कतहूँ = किसी ओर, जप तप तीर्थ वृतादि काम्य कर्मों की ओर ।

३८—अन्तरगति = वृत्ति का अन्तः प्रवेश । ल्यौ = ध्यान, लयवृत्ति ।

परचै जिज्ञासु उपदेश

पहले लोचन दीजिये, पीछै ब्रह्म दिखाइ ।
दादू सूझै सार सब, सुख में रहै समाइ ॥ ३९ ॥
आंधी कै आनन्द हुआ, नैंनहुं सूझन लाग ।
दरसन देखै पीव का, दादू मोटे भाग ॥ ४० ॥

उभै असमाव

दादू मिहीं महल बारीक है, गांउं न ठांउं न नांउं ।
तासौं मन लागा रहे, मैं बलिहारी जांउं ॥ ४० ॥
दादू खेल्या चाहै प्रेम रस, आलम अंगि लगाइ ।
दूजे को ठाहर नहीं, पुहुप न गंध समाइ ॥ ४२ ॥
नांहीं ह्वै करि नांउं ले, कुछ न कहाई रे ।
साहिबजी की सेज पर, दादू जाई रे ॥ ४३ ॥

३९—पहिले लोचन दीजिये = साधक सद्गुरु से प्रार्थना करता है कि पहिले विवेक विचार के नेत्र प्रदान कीजिये ।

४०—आंधी के आनन्द हुआ=आंधी=विषयासक्त बुद्धि जब विचार-विवेक से शुद्ध हुई तब आनन्द=हर्ष हुआ ।

४१—मिहीं महल बारीक है = महल अपना आत्मारूपी महल मिही=सूक्ष्म, बारीक=अति सूक्ष्म है ।

४२—भावार्थ—आलम=संसारके भोगों की चाह को उद्देश्य बनाकर उनके लिये प्रयत्नशील हो प्रेमरस=आत्मा के आनन्द की उपलब्धिरूप रस में खेलना चाहे तो नहीं खेल सकता । प्रवृत्ति में निवृत्ति को जगह नहीं मिल सकती । पुष्प में एक ही गंध रहा करती है दूसरी का समावेश उसमें शक्य नहीं ।

४३—नांही ह्वै कर नांउले=सब तरह का अभिमान छोडकर अपने स्वरूप का चिंतन करो । तभी आत्मा के सहज स्वरूप को प्राप्त कर सकोगे ।

जहाँ राम तहं मैं नहीं, मैं तहं नांहीं राम।
दादू महल बारीक है, द्वै को नांहीं ठाम ॥ ४४ ॥
मैं नांहीं तहं मैं गया, एकै दूसर नांहि।
नांही को ठाहर घणी, दादू निज घर मांहि ॥ ४५ ॥
मैं नांहीं तहं मैं गया, आगे एक अलाव।
दादू ऐसी बंदगी, दूजा नांही आव ॥ ४६ ॥
दादू आपा जब लगैं, तब लग दूजा होइ।
जब यहु आपा मिटि गया, तब दूजा नांहीं कोइ ॥ ४७ ॥
दादू मैं नांहीं तब एक है, मैं आई तब दोइ।
मैं तैं पड़दा मिटि गया, तब ज्यूं था त्यूं ही होइ ॥ ३८ ॥
दादू है को भै घणां, नांहीं को कछु नांहि।
दादू नांहीं होइ रहु, अपणे साहिब मांहि ॥ ४९ ॥

---

४४—तहां मैं नहीं = उस जगह मलिन वासना का अहंकार नहीं। महल बारीक है = स्वरूप का स्थान सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। द्वै = द्वैतभाव, भेदवृत्ति। ठाम = जगह।

४५—मैं नांही तहं मैं गया = अहंकार की निवृत्ति होते ही भेदवृत्ति भी चली जाती है। नांहीं को ठाहर घणी = वासना अहंकार से रहित साधक को ठाहण घणी = अपने अन्तःकरण में स्थित होने को बहुत जगह है।

४६—एक अलाव = एक ईश्वर, परावचन।

४७—जब यहु आपा मिट गया = जब यह अनित्य में नित्य प्रतीत होने वाला मिथ्याभिमान नष्ट हो गया।

४९—दादू है को भय घणा = वासना तथा अहंकाररूपी है मौजूद हो तबतक वासना की पूर्ति न होने तथा अभिमान के कारण रागद्वेषजन्य बहुत से भय त्रास दुःख प्राप्त होते ही रहते हैं।

परचै

**दादू तीनि सुंनि आकार की, चौथी निर्गुण नांव।**
**सहज सुंनि मैं रमि रह्या, जहां तहां सब ठांव ॥ ५० ॥**
**पांच तत्त के पांच हैं, आठ तत्त के आठ।**
**आठ तत्त का एक है, तहां निरंजन हाट ॥ ५१ ॥**

५०—भावार्थ—तीनि सुंनि आकार की = आकार की अर्थात् मूलप्रकृति से विकृतिभाव को प्राप्त प्रकृति व चैतन्य का संयोग तज्जन्य त्रिविध शरीर–कारण, सूक्ष्म, स्थूल ये आकृतिमान हैं इनका अध्यास इनमें भ्रान्तिजन्य आसक्ति का परित्याग करना यह इन तीनों की शून्य अर्थात् लय दशा है, इस तरह माया अविद्या का आवरण तथा चैतन्य में द्वैतवृत्ति का परित्याग करना त्रिविध आकार की शून्यावस्था है। तीनों के परित्याग के पश्चात् भेदवृत्ति से रहित स्वस्वरूप में अनवरत स्थिति यानी अभेदज्ञान के परित्याग की अवस्था, वह चौथी अवस्था है। यह अवस्था निर्गुण = सब प्रकार की माया अविद्या भेदवृत्तिजन्य उपाधियों से रहित है, इसीका नाम तुर्यावस्था है। सहज शून्य=समष्टि चेतन में व्यष्टिका विलय करदेना=तदाकार होजाना है। उस परिस्थिति में साधक और साध्यकी भिन्नता नहीं रहती। फिर साधक भी सर्वत्रव्यापक चेतनसे भिन्न नहीं रहता। इसीका नाम जीवन्मुक्तावस्था है।

तीन के और भी कई तरहके विकल्पार्थ किये गए हैं। जैसे तीन अवस्था—जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति। तीन देव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश। तीन ओम् की मात्रा–वर्णके आकारकी। पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी तीन वाणी के आकार। सत्व, रज, तम तीन गुणों के आकार। इन सब को चौथी अवस्था है वह निराकार अवस्था है। जैसे अवस्था की चौथी तुर्यावस्था परावाणी, गुणों की चौथी अवस्था गुणातीत है।

५१—भावार्थ—पांच तत्व पञ्च तन्मात्रा उनके आकाश, वायु, अग्नि, अप, पृथ्वी ये पांच भूत हैं। इससे स्थूल शरीर बनता है, सूक्ष्म पंचभूत, अविद्या, वासना तथा कर्म ये आठ तत्व हैं, इन आठ तत्वों का सूक्ष्म शरीर है। इन स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर का संयोग तज्जन्य यह देह है यही उस निरंजन निर्विकार चेतन आत्मा की हाट=प्राप्ति स्थान है।

जहं मन माया ब्रह्म था, गुण इंद्री आकार।
तहं मन बिरचै सबनि थैं, रचि रहु सिरजनहार ॥ ५२ ॥
काया सुंनि पंचका बासा, आतम सुंनि प्राण प्रकासा।
परम सुंनि ब्रह्म सौं मेला, आगैं दादू आप अकेला ॥ ५३ ॥
दादू जहांथैं सब ऊपजे, चंद सूर आकास।
पानी पवन पावक किये, धरती का परकास ॥ ५४ ॥
काल करम जिव ऊपजे, माया मन घट सास।
तहं रहिता रमिता राम है, सहज सुंनि सब पास ॥ ५५ ॥
सहज सुंनि सब ठौर है, सब घट सबही मांहि।
तहां निरंजन रमि रह्या, कोई गुण व्यापै नांहि ॥ ५६ ॥

---

५२—भावार्थ—जहँ = अज्ञान की दशा में मन भूतों के गुण, इन्द्रियों के व्यापार तथा आकार वाली वस्तुओं को ही ब्रह्म=चेतन समझता रहता है। तहं = अज्ञानदशा को बदलनी हो तो मन को सबनिथै=उन सब अविद्या के आवरण से सत्य प्रतीत होने वाले त्रिगुणात्मक तथा पंचभूतात्मक पदार्थों से मनको विरचै=दूर करें तथा सिरजन-हार = अशेष जडजगत् का आधाररूप चेतन जो सबके अभिव्यक्ति का कारण है उसी में मन को रचि रहु = प्रेम से लगा दे।

५३—भावार्थ—स्थूल शरीर के अध्यास का विचार से परित्याग, यह काया की सून्यावस्था है, मन की संकल्प, संशय, विपर्यय दशा का परित्याग कर मनको विशुद्ध करना, यह आत्मा मन की शून्यावस्था है जिसमें प्राण का प्रकाश प्रारम्भ होता है। मल विक्षेप अध्यास का निवारण हो वृत्ति का चेतन अधिष्ठान में स्थिर होना, यह परम शून्य-दशा है। इसी में स्वस्वरूप का परिचय होता है। भेदनिवृत्ति यह परावस्था है। इस अवस्था में केवल विशुद्ध चेतन ही शेष है।

५५—दृश्य वस्तुएँ जितनी भी उत्पन्न हुई दिखाई देती हैं उन सबमें उनका आधाररूप चेतन व्याप्त है।

५६—सहज सुंनि सब ठौर है=सहज शून्य का अभिप्राय है निर्विकल्प चेतन, वह सब ठौर है=

दादू तिस सरवर के तीर, सो हंसा सो चुणैं।
पीवैं नीझर नीर, सोहै हंसा सो सुणैं॥ ५७॥
दादू तिस सरवर के तीर, जप तप संजम कीजिये।
तहं मनमुख सिरजनहार, प्रेमपिलावै पीजिये॥ ५८॥
दादू तिस सरवर के तीर, संगी सबै सुहावणें।
तहां बिन कर बाजै बेन, जिभ्याहीणे गावणें॥ ५६॥
दादू तिस सरवर के तीर, चरण कवल चित लाइया।
तहं आदि निरंजन पीव, भाग हमारे आइया॥ ६०॥
दादू सहज सरोवर आतमा, हंसा करैं कलोल।
सुख सागर सूभर भरया, मुक्ताहल मन मोल॥ ६१॥

अशेष देश काल में व्याप्त है। प्रकृतिसंयोग विहीन या माया अविद्या रहित चेतन की सहज दशा है यही निरंजन ब्रह्म है जिसमें किसी प्रकार के गुण की व्याप्ति नहीं है।

५७—भावार्थ—तिस=निर्मल दशा को प्राप्त हृदयसरोवर के तीर हंसा = साधक सन्तजन, मोती चुणैं=स्वस्वरूपपरिचय रूप मोती चुणें = चिन्तन करें, प्राप्त करें। नीझर नीर= कभी न सूकने वाला स्वरूपपरिचयरूपी विशुद्ध नीर का पान कर रहे हैं। लयवृत्ति द्वारा अनाहत शब्द का श्रवण कर रहे हैं वे ही साधक शोभनीय हैं।

५८—जप=विचार। तप=इन्द्रियोपरति। संजम = मनोनिग्रह।

५६—संगी सबै सुहावणें=मबसंगी=मन इन्द्रियें सुहावणै = विषयविहीन वासना विहीन होकर सुहावने बन गये हैं। बिनकर बाजै वैण=अन्तरवृत्ति में अखंड ध्वनि होना। जिभ्या हीणे गांवणे=जिह्वा के बिना सुरतिवृत्तिद्वारा प्रणवध्यान।

६०—चरण कँवल चित लाइया = तेजपुंजमय आत्मस्वरूप में मन को लगाया।

६१—सहज सरोवर = निर्विकल्प वृत्ति की दशा। हंसा=साधक सन्त। कलोल करैं = आत्मचिंतन करें। मुक्ताहल=नामपरिचयरूप मोती। मनमोल=मन के मोल में, मन के विषय विकार वासनादि धर्म मोल में दिये।

दादू हरि सरवर पूरण सबै, जित तित पाणी पीव।
जहां तहां जल अंचतां, गई तृषा सुख जीव ॥ ६२ ॥
सुख सागर सूभर भरया, उज्जल निर्मल नीर।
प्यास बिना पीवै नहीं, दादू सागर तीर ॥ ६३ ॥
सुन्य सरोवर हंस मन, मोती आप अनंत।
दादू चुगि चुगि, चंच भरि, यौं जन जीवैं संत ॥ ६४ ॥
सुन्य सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव।
दादू यहु रस बिलसिये, ऐसा अलख अभेव ॥ ६५ ॥
सुन्य सरोवर मन भवर, तहां कवल करतार।
दादू परिमल पीजिये, सनमुख सिरजनहार ॥ ६६ ॥
सुन्य सरोवर सहज का, तहं मरजीवा मन।
दादू चुणि चुणि लेइगा, भीतरि राम रतन ॥ ६७ ॥

६२—जित तित पाणी पीव=जित तित=जिस किसी साधन, भक्ति, योग, वैराग्य, ज्ञान आदि द्वारा आत्मपरिचय रूप विशुद्ध नीर का पान करो। जहां तहां=जिस किसी साधन की दशा में। जल अंचता=आत्मरस पान करता।

६३—उज्जल=माया अविद्या रहित। प्यास बिना=जानने की तीव्र इच्छा बिना।

६४—भावार्थ—सुन्य सरोवर = निर्विकल्प शुद्ध चेतन वही सरोवर है, हंसमन=साधक का शुद्ध मनरूपी हंस है, शुद्ध चेतन के वाच्य जो शब्द हैं वे ही मोती हैं, चुगि चुगि=निरन्तर अभ्यास द्वारा चंचभरि=बुद्धि की स्थिरवृत्ति में स्वस्वरूप को निश्चय कर, यों=इस तरह संतजन-परम जिज्ञासु साधक जीवे=जरा मृत्युभय से मुक्त होवे।

६५-६६-६७—में विभिन्न रूपकों द्वारा वर्णन है, मुख्य अर्थ जो साखी ६४ में है वही इन साषियों का समझना चाहिये इनमें मन को मीन=भंवर, मरजीवा रूप में व्यवहार किया है।

६५—बिलसिये=भोगिये।

६६—परिमल=सुगन्ध, चैतन्यरूपी मकरन्द।

दादू मंझि सरोवर विमल जल, हंसा केलि करांहिं ।
मुकताहल मुकता चुगैं तिहिं हंसा डर नांहिं ॥ ६८ ॥
अखंड सरोवर अथग जल, हंसा सरवर न्हांहिं ।
निर्भय पाया आप घर, इब उड़ि अनत न जांहिं ॥ ६९ ॥
दादू दरियां प्रेम का, तामैं झूलैं दोइ ।
इक आतम परआतमा, एकमेक रस होइ ॥ ७० ॥
दादू हिए दरियाव, माणिक मंझेई ।
टुबी डेई पाण में, डिठो हंझेई ॥ ७१ ॥
परआतम सौं आतमा, ज्यूं हंस सरोवर मांहिं ।
हिलिमिलि खेलैं पीव सौं, दादू दूसर नांहिं ॥ ७२ ॥
दादू सरवर सहज का, तामैं प्रेम तरंग ।
तहं मन झूलै आतमा, अपणे सांई संग ॥ ७३ ॥

---

६८—मंझि=अन्तःकरण में । केलि=क्रीड़ा, अरसपरस । मुकताहल=नामचिंतनरूप मोती । मुकता=बहुत, अपार । डर नांहि=विषयवासना, भेदवृत्तिजन्य मृत्यु, इनका भय नहीं है ।

६९—अखंड = एकरस, अखण्डित । अथग = अथाह । न्हांहिं = स्नान करना, ओतप्रोत होना । इव उड़ि अन्त न जाहिं=अब पुनः वासनाजन्य कर्म कर जन्म मृत्यु के बन्धन में नहीं पड़ेगा ।

७०—झूलै = स्नान करे, अरसपरस होवे ।

७१—इस विशुद्ध हृदय रूपी दरयाव=समुद्र में ही वह चेतन आत्मारूपी माणक = रतन है टूबी = डुबकी लगाइये अपने आपमें ताकि यहां उस अमूल्य रत्न को साक्षात् देख सके ।

७२—दादू दूसर नांहिं = पर आतम और आत्मा क्या इस तरह चेतन दो है आनन्दोपभोग के लिये ही ऐसी भेदवृत्ति हो वस्तुतः इनमें अभेद ही है ।

७३—यहां आतमा शब्द सुरतिवृत्ति का बोधक है ।

दादू देखौं निज पीव कौं, दूसर देखौं नांहिं।
सबै दिसा सौं सोधिकरि, पाया घट ही मांहिं ॥ ७४ ॥

दादू देखौं निज पीवकौं, और न देखौं कोइ।
पूरा देखौं पीव कौं, बाहरि भीतरि सोइ ॥ ७५ ॥

दादू देखौं निज पीवकौं, देखत ही दुख जाइ।
हूं तौ देखौं पीव कौं, सब मैं रह्या समाइ ॥ ७६ ॥

दादू देखौं निज पीव कौं, सोई देखण जोग।
परगट देखौं पीव कौं, कहां बतावैं लोग ॥ ७७ ॥

परचै जिज्ञासु उपदेस

दादू देखु दयाल कौं, सकल रह्या भरपूरि।
रोम रोम में रमि रह्या, तूं जनि जाणै दूरि ॥ ७८ ॥

दादू देखु दयालु कौं, बाहरि भीतरि सोइ।
सब दिसि देखौं पीव कौं, दूसर नांहीं कोइ ॥ ७९ ॥

दादू देखु दयाल कौं, सनमुख सांई सार।
जिधरि देखौं नैन भरि, तिधरि सिरजनहार ॥ ८० ॥

---

७४—सौधिकरि = तलाश कर, मिथ्या में से सत्य को समझ कर।

७५—पीव = पति, स्वामी, साची आत्मारूप पति। पूरा = अखंड, माया अविद्या के आवरण से रहित। बाहिर भीतर = व्यापक, परिपूर्ण।

७७—परगट = प्रत्यक्ष, साक्षात्, निरावरण। कहां बतावें लोग = लो०—सकाम कर्म की प्रवृत्ति वाले जप, तप, तीर्थ, यज्ञ, दान, पुण्य आदि में उसको बताते हैं। पर वस्तुतः वह उनमें नहीं है।

७८—सकल = सर्वत्र, व्यापक, विविध कलामय मानव शरीर में। जनि = मत।

७९—बाहर = ब्रह्माण्ड में। भीतर = हृदय गुहा में।

८०—सनमुख सांई सार = सांई–स्वकीय आत्मा के सम्मुख वृत्ति को रखना यही मानव

**दादू देखु दयाल कौं, रोकि रह्या सब ठौर।**
**घटि घटि मेरा सांईया, तूं जनि जाणै और ॥ ८१ ॥**

उभै असमाव

**तन मन नांहीं मैं नहीं, नहिं माया नहिं जीव।**
**दादू एकै देखिये, दह दिसि मेरा पीव ॥ ८२ ॥**

पति पहिचान

**दादू पाणी मांहै पैसि करि, देखै दिष्टि उघारि।**
**जलबिंब सब भरि रह्या, ऐसा ब्रह्म बिचारि ॥ ८३ ॥**

परचै पतिव्रत

**सदा लीन आनंद मैं, सहज रूप सब ठौर।**
**दादू देखै एक कौं, दूजा नांहीं और ॥ ८४ ॥**
**दादू जहं तहं साथी संग है, मेरे सदा अनंद।**
**नैन बैन हिरदै रहै, पूरण परमानंद ॥ ८५ ॥**

---

जीवन का सार है। जिधर देखों नैन भरि = ज्ञान विज्ञानमय विचारनेत्रों से जिस ओर देखूं, ज्ञान, भक्ति, योग, वैराग्य आदि किसी भी साधन में लगूं।

८२—दादू एकै देखिये = विवेक विचार दृष्टि से विविध मिथ्यात्व का त्याग कर एक ही सत्य चेतन को देखिये।

८३—ऐसा ब्रह्म विचारि = पानी में दृष्टि खोलने से सर्वत्र पानी ही प्रतीत होता है इसी तरह आत्मा में वृत्ति को लयकर विषय—वासनाहीन वृत्ति को आत्माकारवृत्ति कर देना ऐसा ब्रह्म विचार सार्थक है।

दृष्टान्त—*नारद पूछी विष्णु तैं, प्रभु मम ब्रह्म दिखाई।*
*जाहु समुद्र पै गयो, सरकहि मम जल पाइ ॥ १ ॥*

८४—लीन आनन्द में = आनन्दरूपी प्रतिबिंब में विलीन रहे। सब जगह माया अविद्या रहित शुद्ध रूप को देखे।

जागत जगपति देखिये, पूरण परमानंद।
सोवत भी सांई मिलै, दादू अति आनंद ॥ ८६ ॥

दह दिसि दीपक तेज के, बिन बाती बिन तेल।
चहुँ दिसि सूरज देखिये, दादू अदभुत खेल ॥ ८७ ॥

सूरज कोटि प्रकास हैं, रोम रोम की लार।
दादू जोति जगदीस की, अंत न आवै पार ॥ ८८ ॥

ज्यौं रवि एक अकास है, असे सकल भरपूर।
दादू तेज अनंत है, अल्लह आली नूर ॥ ८९ ॥

सूरज नहिं तहं सूरज देखे, चंद नहीं तहं चंदा।
तारे नहिं तहं झिलिमिल देख्या, दादू अति आनंदा ॥ ९० ॥

बादल नहिं तहं बरषत देख्या, सबद नहीं गरजंदा।
बीज नहीं तहं चमकत देख्या, दादू परमानंदा ॥ ९१ ॥

---

८६—सोवत भी सांई मिलै = सुषुप्ति में भी वृत्ति स्वस्वरूप में लीन रहे।

८७—दादू अद्भुत खेल=आत्म साक्षात्कार का ऐसा आश्चर्यमय खेल है।

८८—लार = संग, साथ, पीछे।

८९—अल्लह=अलह; मन, बुद्धि, वाणी से गृहीत न होने वाला। आली नूर=विशुद्ध व्यापक चेतन।

९१—बादल नहिं = विकार रूपी बादल नहीं, तहँ = वहां ही आत्मदर्शनरूपी वर्षा बरसती है, शबद नहीं = वाणी की बाह्य वृत्ति की निवृत्ति होने पर मौनावस्थामय ध्यान में अनाहत ध्वनिरूप गर्जना सुनाई पड़ती है। बीज नहीं=वासनारूपी चांचल्य चपला नहीं, वहीं ब्रह्मज्योति का प्रकाश होता है। इस स्थिति में पहुँचने ही से परमानन्द की प्राप्ति होती है।

आत्मवल्लीतरु

दादू जोति चमकै झिलिमिलै, तेज पुंज परकास।
अमृत झरै रस पीजिये, अमर बेलि आकास॥ ६२॥

परचै

दादू अविनासी अंग तेज का, असा तत्त अनूप।
सो हम देख्या नैन भरि, सुंदर सहज सरूप॥ ६३॥
परम तेज परगट भया, तहं मन रह्या समाइ।
दादू खेलै पीव सौं, नहिं आवै नहिं जाइ॥ ६४॥
निराधार निज देखिये, नैनहुँ लागा बंद।
तहं मन खेलै पीवसौं, दादू सदा अनंद॥ ६५॥

आत्म वल्लीतरु

असा एक अनूप फल, बीज बाकुला नांहिं।
मीठा निर्मल एक रस, दादू नैनहुँ मांहिं॥ ६६॥

---

६२—भावार्थ—स्वस्वरूप की ज्योति प्रकाश प्रतिबिंबित हो प्रकाशित हो तभी सहज अनन्त प्रकाश की ज्योति का पुंज प्राप्त होता है, नामचिंतनरूप अमृत झरता है। उसका पान करिये। इसी तरह ब्रह्मरूपी वृत्त पर स्थितप्रज्ञसाधक की वृत्ति अमर बेल की तरह छा जाती है, वरण करती है।

६३—अविनासी अंग तेज का = शुद्ध व्यापक चेतन का अंग अविनासी है माया अविद्या विकार से रहित है। वही अनूप तत्व है। नैन भरि = ज्ञानविचार विचार से स्थिर कर। सुन्दर=कमनीय। सहज=निर्द्वन्द्व।

६४—परमतेज = विकाररहित चेतन ज्योति।

६५—निज = अपना-साक्षी चेतन। नैंनहु लागा बंद = अन्तर्मुखवृत्ति द्वारा ध्यानावस्था।

६६—भावार्थ—उपमाहीन सजातीय भेदवृत्ति जो अपना चेतन अधिष्ठान है वही अनुपम फल है। उसमें न तो वासनारूपी बीज है, न उसमें वातादि दोषजन्य, सत्व रजआदि

परचै

हीरे हीरे तेज के, सो निरखें त्रिय लोइ।
कोइ इक देखै संतजन, और न देखै कोइ ॥ ९७ ॥
नैन हमारे नूर मां, तहां रहे ल्यौ लाइ।
दादू उस दीदार कौं, निसदिन निरखत जाइ ॥ ९८ ॥
नैनहुँ आगैं देखिये, आत्म अंतरि सोइ।
तेज पुंज सब भरि रह्या, झिलिमिल झिलिमिल होइ ॥ ९९ ॥
अनहद बाजे बाजिये, अमरा पुरी निवास।
जोति सरूपी जगमगै, कोइ निरखै निज दास ॥ १०० ॥
परम तेज तहं मन रहै, परम नूर निज देखै
परम जोति तहं आतम खेलै, दादू जीवन लेखै ॥ १०१ ॥
दादू जरै सु जोति सरूप है, जरै सु तेज अनंत।
जरै सु झिलिमिलि नूर है, जरै सु पुंज रहंत ॥ १०२ ॥

---

गुणजन्य, स्थूल भौतिक आवरणमय वल्कल छाल है। वह फल अविद्या दोषरहित परम मधुर है वही फल हमारे हृदय में ज्ञान विज्ञान नेत्रों द्वारा स्थित है।

९७—हीरे हीरे तेज के=हीरों के ढेर से भी अधिक स्वच्छ प्रकाशमय। निरखे=देखे। त्रिय-लोइ = तीनों लोकों में। संतजन=आत्मजिज्ञासु साधक।

९८—नूरमां=शुद्ध स्वरूप में। नैन=विवेक-विचारमय नेत्र।

१००—अमरा पुरी निवास=निर्विकल्प समाधि में स्थिति। निज दास = निर्वासी, निष्काम साधक।

१०१—लेखै=सफल।

१०२—जरै =जरणा करै, शुद्ध मायांश को लीन कर लेने वाला। झिलमिल नूर=प्रकाशित शुद्ध स्वरूपी। जरै = जरणायुक्त साधक व चेतन। पुंज = समूह। रहंत = सब जगह व्यापक।

परचै पति पहचान

दादू अलख अल्लाह का, कहु कैसा है नूर।
दादू बेहद, हद नहीं, सकल रह्या भरपूर॥ १०३॥

वार पार नहिं नूर का, दादू तेज अनंत।
कीमति नहिं करतार की, ऐसा है भगवंत॥ १०४॥

निरसंध नूर अपार है, तेज पुंज सब मांहिं।
दादू जोति अनंत है, आगौ पीछौ नांहिं॥ १०५॥

खंड खंड निज नां भया, इकलस एकै नूर।
ज्यूं था त्यूं ही तेज है, जोति रही भरपूर॥ १०६॥

---

१०३—बेहद = असीम।

१०४—वारपार=आदि अन्त, कार्यकारणभाव से वह वारपार रहित है। कीमत नहिं=तदाधारजन्य जगत् की वस्तुओं का ही मूल्य नहीं है तब उस कर्ता का मूल्य तो किया ही क्या जा सकता है?

दृष्टान्त इन्दव १—सेठ की जहाज गई सर माँझ, जहां मरजीवन भीतर डारे।
तीन ही बेर न हाथ लग्यो जब, सेठ उदास दुखी मन मारे॥१॥
पुण्य निमित्त धर्यो चवथे इक, संकर लेकर वाँधि पधारे।
लेकर कीमत कीज फिर्यो जग, काबुल को हि अठार वधारे॥२॥

२—च्यार लाल की पारिखा, करवाई पतस्याह।
मुरकी कीमत कर दई, एक रही बिन थाह॥ १॥

१०५—निरसंध=सम्बन्ध रहित।

दृष्टान्त—रामचन्द्र अरु कृष्ण को, वान्दर गोपिन जोइ।
सब सन्मुख बोलत वचन, जानत भये सब कोइ॥ १॥

१०६—निज=असक्त चेतन। इकलस = एकरस।

परम तेज प्रकास है, परम नूर निवास।
परम जोति आनंद मैं, हंसा दादू दास ॥ १०७ ॥
नूर सरीखा नूर है, तेज सरीखा तेज।
जोति सरीखी जोति है, दादू खेलै सेज ॥ १०८ ॥
तेज पुंज की सुंदरी, तेज पुंज का कंत।
तेज पुंज की सेज परि, दादू बन्या बसंत ॥ १०९ ॥
पुहुप प्रेम बरखै सदा, हरिजन खेलैं फाग।
ऐसा कौतिग देखिये, दादू मोटे भाग ॥ ११० ॥

परचै रस

अमृत धारा देखिये, पारब्रह्म बरिखंत।
तेज पुंज झिलिमिलि झरै, को साधू जन पीवंत ॥ १११ ॥
रसही मैं रस बरखि है, धारा कोटि अनंत।
तहं मन निहचल राखिये, दादू सदा बसंत ॥ ११२ ॥

---

१०७—भावार्थ—विशुद्ध चेतन का ही सर्वत्र प्रकाश है उसी शुद्ध स्वरूप अपने में निवास करते हुए साधक सन्त स्वस्वरूप ज्योति का आनन्दोपभोग कर रहा है। नूर, तेज, जोति, यह असंग समष्टि चेतन के अर्थ में प्रयोग किये गये हैं।

१०८—दादू खेलै सेज=अन्तःकरणकी त्रिपुटी रूपी सेज पर सन्तजन साधक खेलते हैं।

१०९—इस साखी में तेजपुंज साध्य, साधक, साधन तीनों के विशेषण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सुन्दरी=साधककी वृत्ति। कंत=साध्य, स्वामी। सेज=अन्तःकरण। तीनों के विशुद्ध संयोग होने पर ही अखण्ड बसन्त का समय बनता है।

११०—कौतिग=आश्चर्य।

११२—रसही में रस बरषि है=आत्मानन्द प्राप्त होने पर ही परमानन्दकी वर्षा होती है।

घन बादल बिन बरषि है, नीझर निर्मल धार।
दादू भीजै आतमा, को साधू पीवनहार॥ ११३॥
अैसा अचिरज देखिया, बिन बादल बरषै मेह।
तहं चित चातृग ह्वै रह्या, दादू अधिक सनेह॥ ११४॥
महारस मीठा पीजिये, अविगत अलख अनंत।
दादू निर्मल देखिये, सहजैं सदा झरंत॥ ११५॥

करता कामधेनु

कामधेनु दुहि पीजिये, अकल अनुपम एक।
दादू पीवै प्रेम सौं, निर्मल धार अनेक॥ ११६॥
कामधेनु दुहि पीजिये, ताकूं लखै न कोइ।
दादू पीवै प्यास सौं, महारस मीठा सोइ॥ ११७॥
कामधेनु दुहि पीजिये, अलख रूप आनंद।
दादू पीवै हेत सौं, सुषमन लागा बंद॥ ११८॥

११३—घन बादल बिन बरषि है=वासना के बादलों के बिना शुद्ध हृदय में मन, प्राण, सुरति की एकता से ज्ञानामृत की वर्षा बरस रही है। साधू=आत्म-अभ्यासी।

११४—बिन बादल=वासना विकार के बादलों के बिना। बरषै मेह=स्वस्वरूपप्राप्तिरूपी मेह बरसता है। चातृग = चातक, ध्यानावस्थित।

११५—अविगत=मन, इन्द्रिय, वाणी से परे। अलख=स्वयंप्रकाश। अनंत=देशकालशून्य।

११६—कामधेनु=कामनाकी पूर्ति करने वाला परमेश्वर। अकल = कलनधर्म से रहित। एक=सजातीय विजातीय भेदहीन। धार अनेक=कई धारायें, ज्ञान, भक्ति, योग वैराग्य आदि विविध साधनरूप धाराएें।

११७—प्यास = तीव्र जिज्ञासा, भावना।

११८—सुषमन लागा बन्द = सुषुम्ना नाड़ी द्वारा प्राण स्थिर कर समाधि में मन को बन्द करना।

कामधेनु दुहि पीजिये, अगम अगोचर जाइ।
दादू पीवै प्रीति सूं, तेज पुंज की गाइ ॥ ११९ ॥
कामधेनु करतार है, अमृत सरवै सोइ।
दादू बछुरा दूध कौं, पीवै तौ सुख होइ ॥ १२० ॥
ऐसी एकै गाइ है, दूझै बारह मास।
सो सदा हमारे संग है, दादू आतम पास ॥ १२१ ॥

परचै आत्मवल्लीतरु

तरवर साखा मूल बिन, धरती पर नांहीं।
अविचल अमर अनंत फल, सो दादू खांहीं ॥ १२२ ॥
तरवर साखा मूल बिन, धर अंबर न्यारा।
अविनासी आनंद फल, दादू का प्यारा ॥ १२३ ॥
तरवर साखा मूल बिन, रज बीरज रहिता।
अजर अमर अतीत फल, सो दादू गहिता ॥ १२४ ॥

११९—अगम अगोचर जाइ = अगम—षट्प्रमाण के विषय रहित। अगोचर=इन्द्रियातीत जो तत्व है उसमें वृत्ति लगा। तेज पुंज की गाइ = शुद्ध चेतनरूपी कामधेनु।

१२०—बछुरा = तीव्र जिज्ञासु साधक।

१२१—आतम = अन्तःकरण।

१२२—भावार्थ—शुद्ध समष्टि व्यापक चेतनरूपी वृक्ष धरती-पंचभूतात्मक स्थूल प्रपञ्च के आश्रित नहीं है। उस वृक्ष के त्रिगुणात्मक प्रकृतिजन्य जड़ नहीं है, न उसके इन्द्रियसमूहरूपी शाखाऐं हैं। उस वृक्ष में ही अमर फल लगता है, जिस को निष्काम साधक खाता है।

१२३—धर अंबर=आकाशादि भूतगण। अविनासी=नित्यस्थायी।

१२४—रज बीरज=स्थूल भौतिक उपादान। अजर = जरारहित। अमर=काल रहित। गहिता=ग्रहण करता।

तरवर साखा मूल बिन, उतपति परलै नांहिं।
रहिता रमिता रामफल, दादू नैनहुं मांहिं ॥ १२५ ॥
प्राण तरवर सुरति जड़, ब्रह्म भूमि ता मांहिं।
रस पीवै फूलै फलै, दादू सूकै नांहिं ॥ १२६ ॥

जिज्ञासु उपदेश प्रश्नोत्तरी

ब्रह्म सुंनि तहं क्या रहै, आतम के अस्थान?
काया असथलि क्या बसै? सतगुरु कहै सुजान ॥ १२७ ॥
काया के असथलि रहैं, मन राजा पंच प्रधान।
पचीस प्रकीरति तीनि गुण, आपा गर्व गुमान ॥ १२८ ॥
आतम के अस्थान हैं, ज्ञान ध्यान विसवास।
सहज सील संतोष सत, भाव भगति निधि पास ॥ १२९ ॥

---

१२५—उतपति=अभिव्यक्ति। परलै=लय, विनाश। रहिता=मायादि उपाधि रहित। रमता=समष्टि व्यापक।

१२६—भावार्थ—प्राण=अन्तःकरणरूपी वृक्ष की सुरतिवृत्ति जड़ है, शुद्ध चेतन उस का आश्रय है; उसी में वृत्ति का विलय होने से आनन्द और अमरतारूपी फल-फूल लगते हैं। इस दशामें पहुंचे हुए साधक फिर सूकै नहीं=जन्ममृत्यु नहीं पाते।

१२७—ब्राह्मी अवस्था वाले जीवन्मुक्त, आत्मनिष्ठवृत्तिवाले साधक तथा देहाभिमानी पुरुष के क्या क्या लक्षण हैं? हे सुजान=विज्ञ सद्गुरु बताइये।

१२८—देहाभिमानी के लक्षण कहे गये हैं।

१२९—इसमें आत्मनिष्ठ साधकके लक्षण कहे गये हैं। सहज=निर्द्वन्द्व, दो दो द्वन्द्वज गुणों का त्याग। सील=अष्टविध मैथुन रहित। संतोष=यथालाभतुष्टि। भाव=श्रद्धा भगति=नवधा, राग रहित दृढ विश्वास।

ब्रह्म सुंनि तहं ब्रह्म है, निरंजन निराकार।
नूर तेज तहं जोति है, दादू देखणहार ॥ १३० ॥

प्रश्न

मौजूद षबर मावूद षबर, अरवाह षबर वजूद।
मुकाम चिः चीज हस्त, दादनी सजूद ॥ १३१ ॥

मौजूद मुक़ाम हस्त ॥

नफ़स ग़ालिब किब्र काबिज़, गुस्सः मनी एस्त।
दुई दरोग हिर्स हुज्जत, नाम नेकी नेस्त ॥ १३२ ॥

---

१३०—इसमें ब्राह्मीभावप्राप्त पुरुष का लक्षण बताया है। सुंनि=अवस्था। दादू देखणहार=इस अवस्था वाला केवल द्रष्टा मात्र है। क्रिया कर्म का अनुबन्ध द्रष्टा में नहीं रहता।

१३१—इसमें मुसलमानी मज़हब के अनुसार चार मंजिल—चार अवस्थाएँ हैं उन्हीके बाबत प्रश्न किया गया है। भावार्थ—मौजूद खबर=वर्तमान की अवस्था। मावूद खबर=ब्रह्मवादी के लक्षण, अरवाहखबर=आत्मवादी के लक्षण, औजूद खबर=देहाध्यासी के लक्षण ज्ञात हैं। मुकाम=मञ्जिल या अवस्था। चिः=क्या चीज हैं। सजूद दादनी=मैं सेवाभावसे आपके समक्ष इनको जानने को उपस्थित हुआ हूँ, आप वखसीस करें=इसके लक्षण समझावें।

१३२—देहाध्यासी के लक्षण—औजूद मुकाम=देहाध्यासी मनुष्य की स्थिति क्या है? नफस=शैतानमन में गालिब=नाना तरह की वासना के विचार। किब्र=चुगली या दूसरे की निन्दा, ये उसके कब्जे में रहते हैं। गुस्सा=क्रोध, मनीयत=अहंकार उपस्थित है। दुई=द्वैतभाव, दरोग=झूठ या द्वेष, हिर्स=चाह, हुज्जत=शैतानी, तथा झगड़ने की प्रवृत्ति चालु रहती है। नाम=खुदाकी याद, नेकी=भलाई ये उसकी नष्ट हो गई हैं।

**अरवाह मुक़ाम अस्त**

**इश्क इबादत बंदगी यगानगी इषलास ।**
**मेहर मुहब्बत खैर खूबी, नाम नेकी खास ॥ १३३ ॥**

**माबूद मुक़ामे हस्त**

**यके नूर खूबे खूबां, दीदनी हैरां ।**
**अजब चीज़ खूरदनी, पियालए मस्तां ॥ १३४ ॥**

**हैवान आलम गुमराह गाफिल, अव्वल शरीयत पंद ।**
**हलाल हराम नेकी बदी, दर्से दानिशमंद ॥ १३५ ॥**

---

१३३—आत्मनिष्ठ की स्थिति—आत्मनिष्ठ पुरुषमें इश्क=प्रेममय सात्विकवृत्ति, इबादत= आत्मचर्चा, बंदगी=भक्तिभाव, यगानगी=एकता, इखलास = सबकेसाथ प्रेम व्यवहार, मेहर=दया, महरवानी, मोहब्बत=रागमय स्नेह, खैर=बाँटकर खाना, खूबी=शोभा, ख्याति, यश, नाम = आत्मचिंतन, नेकी=उपकारमयवृत्ति निवास करती है। अर्थात् आत्मनिष्ठ पुरुष इन गुणों से युक्त होता है।

१३४—ब्रह्मनिष्ठ अवस्था का इसमें वर्णन किया गया है—ब्रह्मनिष्ठ साधक यकेनूर=एक ही शुद्ध स्वरूप जो खूबे खूबां=शोभनीय से भी शोभनीय है जिसके हैरां=हैरान करने वाले आश्चर्यकारक, दादनी=दर्शन कर रहे हैं। अजब = वचनातीत श्रेष्ठ चीज=वस्तु खुरदनी=भज रहे हैं, पारहे हैं। वे इस तरह पियालऐ=आत्मानन्दरूपी प्रेम के प्याले पी, मस्तां=मस्त हैं, मग्न हैं। उन्हें किसी सुख दुःख की भावना नहीं सताती है।

आगे साखी १३५ से १३८ तक सूफी मत से चार मंजिल का विवरण है।

१३५—मौजूद खबर=संसार की सामान्य अवस्था। हैवान आलम गुमराह गाफिल=आलम-दुनियां सामान्यतः गुमराह = ईश्वर की राह से दूर है गाफिल=अचेत है, हैवान है पशुसम वृत्ति वाली है। उन्हें पहिली शरीयत की अवस्था में लाने के लिए ये चार बातें अच्छी तरह समझनी चाहिये। जो मनुष्य हलाल = हकका, हराम = बेहकका, नेकी = भलाई, वदी = बुराई के भेद को ठीक ठीक जान लें वे ही दानिशमंद = बुद्धिमान हैं। यह सरीयत = पहिली अवस्था है।

कुल फारिग़ तर्क दुनियां, हररोज हरदम याद ।
अल्लः आली इश्क आशिक़, दरूने फरियाद ॥ १३६ ॥
आब आतश अर्श कुर्सी, सूरते सुबहां ।
शरर सिफ़त कर्दःबूदन्द, मारफ़त मक़ां ॥ १३७ ॥
हक़ हासिल नूर दीदम, करारे मक़सूद ।
दीदारे यार अरवाहे आदम मौजूदे मौजूद ॥ १३८ ॥
चहार मंजिल बयां गुफतम, दस्त करदः बूद ।
पीरां मुरीदां खबर करदः, जां राहे माबूद ॥ १३९ ॥

---

१३६—तरीकत मंजिल = आत्मनिष्ठ अवस्था। कुल फारिग़ तर्क दुनियां = दुनियावी सब भोग वासनायें त्याग करदे। हररोज हरदम याद = सर्वदा सबकाल श्वास-प्रश्वास में आत्मचिंतन करे। अल्लः आली इश्क आशिक=शुद्ध श्रेष्ठ ब्रह्म के राग रहित प्रेम का आशिक बने। दरूने फरियाद = विशुद्ध अन्तःकरण से वासना रहित वृत्ति द्वारा पुकार करै, ध्यान करे; वही सच्चा आत्मनिष्ठ है।

१३७—मारफत मंजिल=ज्ञान की चतुर्थ भूमिका। आब = पानी, आतश = अग्नि, अर्श= आकाश, कुर्सी=भूमि ये सब सूरतें सुबहां = खुदा की ही, ईश्वर की ही आकृतिये हैं। सब जड़ चेतन सृष्टि में आत्मभाव रखते हुये जो साधक अपने साध्य की सिफत= स्तुति, प्रार्थना। शरर=अनवरत करता है वही साधक मारफत मंजिल में है।

१३८—हकीकत मंजिल=ब्रह्मनिष्ठ की उत्तरदशा। जिस साधक ने नूरदीदम=अपने शुद्ध स्वरूप का दर्शन कर हक=मानव जीवन का फर्ज हासिल किया=अदा किया। जिसने करारे मकसूद=गर्भावस्था की प्रतिज्ञा पूरी कर दी। जिस साधक के अरवाहे आदिम= शुद्ध अन्तःकरण में दीदारे दरिया=समष्टि चेतन का उदय हुआ है। अर्थात् व्यष्टि समष्टि का सजातीय भेद समाप्त हो गया है। वही साधक मौजूदे मौजूद=हकीकत मंजिल को पहुंचा हुआ ब्राह्मी अवस्था वाला समझना चाहिये।

१३९—चहार मंजिल=चारों अवस्था। वयां गुफतम=वर्णन की। दस्त करदः बूद=साधक मानव

पहली प्राण पसू नर कीजै, साच झूठ संसार।
नीति अनीति भला बुरा, सुभ असुभ निर्धार॥ १४०॥
सब तजि देखि, विचारि करि, मेरा नाहीं कोइ।
अनदिन राता राम सौं, भाव भगति रत होइ॥ १४१॥
अंबर धरती सूर ससि, सांई सब ले लावै अंग।
जसु कीरति करुणा करै, तन मन लागा रंग॥ १४२॥
परम तेज तहं मैं गया, नैनहुं देख्या आइ।
सुख संतोष पाया घणां, जोतिहि जोति समाइ॥ १४३॥
अरथ चारि असथान का, गुर सिष कह्या समझाइ।
मारग सिरजनहार का, भाग बड़े सो जाइ॥ १४४॥
आशिकां मस्ताने आलम, खुरदनी दीदार।
चंद दह चिः कार दादू, यारे मा दिलदार॥ १४५॥

---

इस पर ध्यान दें। पीरां=गुरु। मुरीदां = शिष्य। खबर करद:=बतावैं। जां=यह। राहे = रास्ता। साबूद=ब्रह्म का है।

१४०—इस साखी से ४४ की साखी तक सूफीमत की चार मंजिलों का दैशिक भाषा में निरूपण किया गया है। संक्षेप में चार मंजिल का विवरण इस दोहे में है—

*शरीअत सेव शरीर की, तरीकत बेपरवाह।*
*मारफत मांही रहे, हकीकत मिल जाहि॥ १॥*

१४१—अनदिन=तमाम दिन, सर्वदा।

१४२—जसु, कीरति, करुणा करै=उसका सुयश, उसीका गुणगान व उसकी प्रार्थना करे।

१४३—परमतेज = समष्टि चेतन। नैनहु=ज्ञान विचार के नेत्रों से।

४४—असथान=मंजिल, दशा, अवस्था।

४५—भावार्थ—आशिकां मस्ताने आलम=प्रेमी साधक संसार में रहते हुये भी उसी में मस्त रहते हैं। खुरदनी दीदार=उनकी साधना उनका आहार अपने स्वरूप का परिचय ही है। चंद दह चिःकार दादू=चन्द–चार, दह–दश ऐसे चौदह लोक की सम्पत्ति

ब्रह्मसाक्षात्कार धारणा

दादू दया दयाल की, सो क्यौं छानी होइ।
प्रेम पुलक मुलकत रहै, सदा सुहागनि सोइ ॥ १४६ ॥
दादू विगसि विगसि दर्शन करै पुलकि पुलकि रसपान।
मगन गलित माता रहै, अरस परस मिलि प्रान ॥ १४७ ॥
दादू देखि देखि सुमिरण करै, देखि देखि लै लीन।
देखि देखि तन मन विलै, देखि देखि चित दीन ॥ १४८ ॥
दादू निरखि निरखि निज नांव ले, निरखि निरखि रस पीव।
निरखि निरखि पिव कौं मिले, निरखि निरखि सुख जीव ॥१४९॥

आत्म सुमिरण

तन सौं सुमिरण सब करैं, आतम सुमिरण एक।
आतम आगैं एक रस, दादू बड़ा बमेक ॥ १५० ॥
दादू माटी के मुकाम का, सब को जाणैं जाप।
एक आध अरवाह का बिरला आपैं आप ॥ १५१ ॥

---

से उन्हें क्या काम ! यार मा दिलदार=जिसको अपना दिलदार मिल गया है।

दृष्टान्त १ पाद पर—*एक छ्वार हाथ ले, चिलो कियो इक सेष।*
*गर्व दूर कियो तासको, वन्दे देख अनेक ॥ १ ॥*

१४६—पुलक=पुलकित, हर्षित।

१४७—विगसि विगसि=प्रफुल्लित हो हो।

१४८—देखि देखि=विचार के नेत्र से विचार विचार।

१५०—आतम सुमिरण=वृत्तिमय चिन्तन। एकरस=अभेदरूप परिचय। बमेक=ज्ञान।

१५१—माटी के मुकाम का=देह की रक्षा का। अरवाह-प्रतीक, ध्यान। आपैं आप=अहंग्रह ध्यान।

दादू जबलग असथल देह का, तब लग सब व्यापै ।
निर्भै असथल आतमा, आगे रस आपै ॥ १५२ ॥

जब नांहीं सुरति सरीर की, बिसरै सब संसार ।
आतम न जाणै आप कौं, तब एक रह्या निरधार ॥ १५३ ॥

तनसौं सुमिरण कीजिये, जब लग तन नीका ।
आतम सुमिरण ऊपजै, तब लागै फीका ।
आगैं आपै आप है, तहां क्या जीवका ।
दादू दूजा कहन को, नाहीं लघु टीका ॥ १५४ ॥

परचै

चर्म दृष्टि देखै बहुत, आतम दृष्टी एक ।
ब्रह्मदृष्टि परचै भया, तब दादू बैठा देख ॥ १५५ ॥

येई नैंनां देहके, येई आतम होइ ।
येई नैंना ब्रह्म के, दादू पलटे दोइ ॥ १५६ ॥

१५२—असथल=अध्यास। सब व्यापै=वासना विकारजन्य प्रवृत्तियें । आगे रस आपै= आत्मनिष्ठा के आगे एक स्वस्वरूप का आनन्दरस ही शेष रहता है ।

१५३—सुरति=ध्यान, खयाल । विसरै=भूल जाय, त्याग दे ।

१५४—नीका=भला, अच्छा । फीका=नीरस, सारहीन ।

१५५—चर्मदृष्टि=नानाभाव से संसार को देखना । आतम दृष्टि=सात्विक ज्ञान, जड़ चेतन सबमें आत्मभाव रखे । परचै=साक्षात् ।

१५६—दादू पलटे दोइ=देहदृष्टि तथा आत्मदृष्टि दोनों में पलटाव हो जाता है । ब्रह्म-दृष्टि ही अपरिवर्तनीय है ।

त्रिविध दृष्टि के दो वचन द्रष्टव्य हैं—

चर्मदृष्टि सब जगत है, आत्मदृष्टि दास ।
ब्रह्मदृष्टि जीवनमुकत, भई वासना नाश ॥ १ ॥
लुब्धाः धनमयं विश्वं, कामुका कामनीयम् ।
नारायणमयं धीराः, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ॥

**घट परचै सब घट लखै, प्राण परचै प्राण।**
**ब्रह्म परचै पाइये, दादू है हैरान॥ १५७॥**

सुषिम सौज अरचा बंदगी

**दादू जल पाषाण ज्यूं, सेवै सब संसार।**
**दादू पाणी लूण ज्यूं, कोइ बिरला पूजणहार॥ १५८॥**
**अलख नांव अंतरि कहै, सब घटि हरि हरि होइ।**
**दादू पाणी लूण ज्यूं, नांव कहीजै सोइ॥ १५९॥**

**१५७—भावार्थ—**

जिस साधक को घट परिचय=धारणा द्वारा पञ्चभूत परिचय सम्यक् होजाता है वह अपने शरीर के सुखदुःखादिकों की तरह अन्य शरीरों के सुख दुःख जानने लगता है। जिस साधक के प्राणसिद्धि होजाती है वह अपनी भूख प्यास आदि की तरह अन्य शरीरोंके भूख प्यास भी जानने लगता है। जिस साधक को ब्रह्मपरिचय=आत्म-साक्षात्कार होजाता है वह औरों को भी आत्मपरिचय कराने में समर्थ होजाता है। ये तीनों स्थितियें आश्चर्यकारक हैं।

**दृष्टान्त**—*वाणियो भयो दिवान, जोधाण का नृपति को।*
*सुख दुख कियो प्रमाण, शीश पोटली ढाँण को॥ १॥*
*साधुजी के देखताँ, दई भैंस के चोट।*
*सवन दिखाई देहु मति, दिया वारणे वोट॥ १॥*
*सन्त चले मग जात हो, परचै ब्रह्म स्वरूप।*
*राक्षस काट्यो पीठ में, ब्रह्म कियो तद्रूप॥ १॥*

**१५८—जल पाषाण ज्यूं**=भेदवृत्ति के साथ। **पाणी लूंण ज्यूं**=एक रूप, तादात्म्य भावसे।

**१५९—अलख नांव अंतर कहै**=बिना जीभ के सुरति वृत्ति द्वारा वृत्ति में ही आत्मचिन्तन करे।

*सिवली ज्यूं रस पीजिये, जानि सके नहिं कोइ।*
*प्रगट करे मन सूर ज्यूं, सब जग बैरी होई॥ १॥*

छाडै सुरति सरीर कूं, तेज पुंज मैं आइ।
दादू असैं मिलि रहै, ज्यूं जल जलहि समाइ ॥ १६० ॥
सुरति रूप सरीर का, पीव के परसैं होइ।
दादू तन मन एक रस, सुमिरण कहिये सोइ ॥ १६१ ॥
राम कहत रामहि रह्या, आप विसर्जन होइ।
मन पवना पंचौं विलै, दादू सुमिरण सोइ ॥ १६२ ॥
जहं आतमराम संभालिये, तहं दूजा नांहीं और।
देही आगैं अगम है, दादू सूषिम ठौर १६३ ॥
परआतम सौं आतमा, ज्यौं पाणी मैं लूंण।
दादू तन मन एक रस, तब दूजा कहिये कूंण ॥ १६४ ॥
तन मन विलै यौं कीजिये, ज्यौं पाणी मैं लूंण।
जीव ब्रह्म एकै भया, तब दूजा कहिये कूंण ॥ १६५ ॥

---

१६०—छाडैं सुरति शरीर कूं = वृत्ति देहाध्यास का तथा वासना का परित्याग करे।

१६१—पीव के परसें होइ=पीव साध्य या स्वस्वरूप का साक्षात्कार होजाने पर सुरति वृ[त्ति] का शरीर भी स्वस्वरूपमय बन जाता है अर्थात् वृत्ति तदाकार होजाती है। ज[ब] इन्द्रियाँ और मन एक दशा में स्थिर होजाते हैं वही सच्चा सुस्मरण समझिये।

*दादू दास कबीरजी, पीपोजी पुनि सोइ।*
*जहाज तरी पंडों जियो, चंदवो प्रत्यक्ष जोइ ॥ १ ॥*

१६२—आप विसर्जन होइ=देहाध्यास, वासना तथा अहंकार का निवारण होजाय मन सवना पांचौं विलै=मन,-प्राण, इन्द्रियां, चञ्चलता, स्वासोछ्वास, शब्दादिविष[यों] का विसर्जन करदे।

१६३—जहँ=शुद्ध अन्तःकरण में। अगम = मन वाणी इन्द्रियातीत। सूषिम = सूक्ष्म।

१६४—कूंण=कौन।

१६५—विलै = लीन।

तन मन विलै यौं कीजिये, ज्यौं घृत लागै घाम ।
आत्म कवल तहं बंदगी, जहं दादू परगट राम ॥ १६६ ॥

नखसिख सुमिरण

कोमल कवल तहं पैसि करि, जहां न देखै कोइ ।
मन थिर सुमिरण कीजिये, तब दादू दर्सन होइ ॥ १६७ ॥
नखसिख सब सुमिरण करै, असा कहिये जाप ।
अंतरि विगसै आतमा, तब दादू प्रगटै आप ॥ १६८ ॥
अंतरि गति हरि हरि करै, तब मुख की हाजति नांहिं ।
सहजै धुनि लागी रहै, दादू मनही मांहिं ॥ १६९ ॥
दादू सहजैं सुमिरण होत है, रोम रोम रमि राम ।
चित्त चहुंट्या चित्त सौं, यौं लीजै हरि नाम ॥ १७० ॥
दादू सुमिरण सहज का, दीन्हा आप अनंत ।
अरस परस उस एक सौं, खेलैं सदा बसंत ॥ १७१ ॥

---

१६६—तनमन = इन्द्रियें अन्तः करण । आत्म कँवल=शुद्ध अन्तःकरण । बंदगी = सेवा, साधना ।

१६७—कोमल कँवल=शुद्ध हृदय कमल । पैसि करि=वृत्ति द्वारा मन का प्रवेश कर ।

१६८—नखसिख सब सुमरण करे=अन्तर्निष्ठ वृत्ति द्वारा चिन्तन का अभ्यास पूर्ण होजाय तब सम्पूर्ण शरीर स्मरण करने की अवस्था में आजाता है । अर्थात् वृत्तिद्वारा अनवरत आत्मचिन्तन होता रहता है यही नखसिख चिन्तन है । बिगसै=प्रसन्न हो ।

दृष्टान्त—*बैरागी लख नाव ले, कह मैं परगट देश ।*
*तुम प्रकट सब लोक में, कह्यो दादू उपदेश ॥ १ ॥*

१६९—अंतरगति=अन्तर्मुखवृत्ति । हाज़ति=चाह ।

१७०—सहजै = निर्विकल्पवृत्ति से । चित्त=व्यष्टि अन्तःकरण । चित्त = समष्टि अन्तःकरण ।

१७१—आप अनंत = उस व्यापक चेतन ने । सदा बसंत=परमानन्द ।

दादू सबद अनहद हम सुन्या, नखसिख सकल सरीर।
सब घटि हरि हरि होत है, सहजैं ही मन थीर ॥१७२॥

हुण दिल लगा हिकसां, मे कूं ये हा ताति।
दादू कंमि खुदाय दे, बैठा डीहैं राति ॥१७३॥

दादू माला सब आकार की, कोइ साधू सुमिरै राम।
करणीगर तैं क्या किया, असा तेरा नाम ॥ १७४ ॥

सब घट मुख रसना करै, रटै राम का नाम।
दादू पीवै राम रस, अगम अगोचर ठांव ॥ १७५ ॥

दादू मन चित अस्थिर कीजिये, तौ नखसिख सुमिरण होय।
श्रवण नेत्र मुख नासिका, पंचौं पूरे सोइ ॥ १७६ ॥

---

१७२—सबद अनहद हम सुन्या = वृत्ति और प्राण की स्थिरता द्वारा अनहद शब्द को हमने सुना।

१७३—भावार्थ—अब एक व्यापक चेतन में मन लग गया। हमारी यही चाहथी। खुदा के काम के लिये ही यानी उस व्यापक चेतन की प्राप्ति के लिये ही दिन रात ध्यान में लगे हुए हैं।

१७४—माला सब आकार की = व्यापक समष्टि चेतन की माला ध्यान जप कोई तीव्र जिज्ञासु ही करता है। करणीगर = कर्ता पुरुष।

१७५—सब घट मुख रसना करै = सम्पूर्ण शरीर को रसना करले--मन प्राण इन्द्रियें सब अन्तर्मुख कर वृति को स्थिर करले। अगम = मन वाणी से परे। अगोचर=इन्द्रियातीत। ठांव = स्थान, जगह।

१७६—अस्थिर = स्थिर; निर्विकल्प। पंचौं पूरे सोइ = इन्द्रियों को विषय विरत कर स्वस्वरूप की ओर लगाओ।

साधु महिमा

आत्म आसण राम का, तहां बसै भगवान ।
दादू दोन्यूं परसपर, हरि आतम का थान ॥ १७७ ॥
राम जपै रुचि साधु कौं, साधु जपै रुचि राम ।
दादू दोन्यूं एक टग, यहु आरंभ यहु काम ॥ १७८ ॥
जहां राम तहं सन्त जन, जहं साधु तहं राम ।
दादू दोन्यूं एकठे, अरस परस विश्राम ॥ १७९ ॥
दादू हरि साधू यौं पाइये, अविगत के आराध ।
साधू संगति हरि मिलैं, हरि संगति थैं साध ॥ १८० ॥

---

१७७—आत्म आसण राम का = अन्तःकरण विशुद्ध कर राम = स्वस्वरूप का। उसको आसन बनावैं। तभी हरि आतम का थान=परमेश्वर समष्टि चेतन उस अन्तःकरण में प्राप्त होते हैं।

१७८—यहु आरंभ यहु काम=साधक स्वस्वरूप या चेतन द्वारा वृत्ति स्थिर करे यही उसका काम है। समष्टि चेतन व्यष्टि के भ्रम अध्यास वासना की समाप्ति करे यह उसका काम है।

१७९—अरस परस विश्राम=एक की एक में स्थिति।

दृष्टान्त—नारद पूछी विष्णुजी, आप भजत हैं काह ।
जती सती मम भक्त बलि, मोह मरद असि आहि ॥

१८०—अविगत के आराध=उस मन, वाणी, इन्द्रियातीत की आराधना से ही साधुजन अपने आपकी अनुभूति करते हैं।

दृष्टान्त—अविगत के आराधक—परीक्षित शुक आराध के, मुक्त भये तत्काल ।
भक्तरामजी टूक के उदेपुर भये निहाल ॥

दादू राम नाम सौं मिलि रहै, मन के छाडि विकार ।
तौ दिलही मांहै देखिये, दोन्यूं का दीदार ॥ १८१ ॥
साधु समाना राम मैं, राम रह्या भरपूर ।
दादू दोन्यूं एक रस, क्यौं करि कीजै दूर ॥ १८२ ॥
दादू सेवग सांई का भया, तब सेवग का सब कोइ ।
सेवग सांई कौं मिल्या, तब सांई सरीषा होइ ॥ १८३ ॥

सत्संग महिमा

मिश्री मांहैं मेल करि, मोल बिकाना बंस ।
यौं दादू महिंगा भया, पारब्रह्म मिलि हंस ॥ १८४ ॥
मीठे मांहैं राखिये, सो काहे न मीठा होइ ।
दादू मीठा हाथ ले, रस पीवै सब कोइ ॥ १८५ ॥

संगति कुसंगति

मीठे सौं मीठा भया, खारे सौं खारा ।
दादू ऐसा जीव है, यहु रंग हमारा ॥ १८६ ॥

---

१—दीदार = एकत्वभावरूप ।

२—साधु समाना राम में=साधक का व्यष्टि समष्टि में समा गया ।

१८३—सेवग = साधक । सांई = परमेश्वर, स्वामी । सरीषा = समान ।

१८४—हंस = सन्त साधक ।

१८५—दादू मीठा हाथ ले=हृदय में अति स्नेह सहित ईश्वरचिन्तन कर ।

१८६—मीठा = विषयवासना विहीन । खारे = विषय वासना ।

साधु महिमा माहात्म्य

मीठे मीठे करि लिये, मीठा मांहै बाहि ।
दादू मीठा ह्वै रह्या, मीठे मांहिं समाइ ॥ १८७ ॥
राम बिना किस काम का, नहिं कौड़ी का जीव ।
सांई सरीषा ह्वै गया, दादू परसै पीव ॥ १८८ ॥

पारिष अपारिष

हीरा कौडी ना लहै, मूरख हाथि गंवार ।
पाया पारिष जौंहरी, दादू मोल अपार ॥ १८९ ॥
अंधे हीरा परखिया, कीया कौड़ी मोल ।
दादू साधू जौंहरी, हीरे मोल न तोल ॥ १९० ॥

साधु महिमा माहात्म्य

मीरां किया मेहर सौं, परदे थैं लापर्द ।
राखि लिया दीदार मैं, दादू भूला दर्द ॥ १९१ ॥

---

१८७—मीठै मीठे कर लिये = निरुपाधिक साध्यने साधक के मन इन्द्रिय प्राण को उनकी चंचलता विषय चाह गति रूप कडवापन दूर कर मीठे बना लिये । मीठा मांहै बाहि=ये सब शुद्ध बने हुये, इन्हें अन्तमु ख करो । इस तरह शुद्ध वृत्ति से स्थिरता प्राप्त कर उस अखण्ड मीठे में मिल जाओ ।

१८८—परसे = स्पर्श करे, तादात्म्य हो ।

१८९— हीरा = मनुष्यशरीररूपी रतन । पारिष = परीक्षक, विचारशील ।

१९०— अंधे = विषय विकार से ज्ञाननेत्र रहित ।

१९१— मीरां= समष्टि व्यापक शुद्ध चेतन । मेहर = करुणा, दया । परदे=अज्ञान, अध्यास के आवरण से । लापर्द = अज्ञान अविचार के परदे से रहित । दीदार=स्वस्वरूप । दर्द = वेदना, जन्म मृत्युजन्य पीड़ा ।

दादू नैन बिन देखिबा, अंग बिन पेखिबा।
रसन बिन बोलिबा, ब्रह्म सेती।
श्रवण बिन सुणिबा, चरण बिन चालिबा,
चित्त बिन चित्तबा, सहज एती ॥ १६२ ॥

पतिव्रत

दादू देख्या एक मन, सो मन सबही मांहिं।
तिहि मनसौं मन मानिया, दूजा भावै नांहिं ॥ १६३ ॥

पुरुष प्रकासी

दादू जिहिं घटि दीपक रामका, तिहिं घटि तिमिर न होइ।
उस उजियारे जोति के, सब जग देखै सोइ ॥ १६४ ॥

पतिव्रत

दादू दिल अरवाह का, सो अपणा ईमान।
सोई स्याबति राखिये, जहं देखै रहिमान ॥ १६५ ॥

---

१६२— भावार्थ—स्थूल नेत्रों के बिना ज्ञान विज्ञान के नेत्रों से देखना। बिना स्थूल शरीर वाले उस अधिष्ठान चेतन को देखना। जिन्हा बिना सुरति द्वारा स्मरण करना। समाधिस्थ हो बिना कान के अनहद नाद सुनना। ध्यानवृत्ति द्वारा बिना पैरों की सहायताके अधिष्ठान में पहुंचना। चित्त=अन्तःकरण उसका स्वकीय अध्यास त्याग कर स्वस्वरूपनिष्ठासे चिन्तन करना। ये सब सहज=सत्य साधकके लिये सुगम हैं।

१६३— एक मन=समष्टि व्यापक मन।

१६४— तिमिर=अज्ञानजन्य अन्धकार। सब जग देखे सोइ=वही सब संसार को आत्म-रूप से देखने में सफल होता है।

१६५— अरवाह=साधक। ईमान=विश्वास की जगह। स्याबति=अखंड, एकाग्र। रहिमान=अपना रूप।

अल्लः आप ईमान है, दादू के दिल मांहिं।
सोई स्याबति राखिये, दूजा कोई नांहिं ॥ १९६ ॥

अध्यात्म

प्राण पवन ज्यौं पतला, काया करै कमाइ।
दादू सब संसार में, क्यों ही गह्या न जाइ ॥ १९७ ॥
नूर तेज ज्यों जोति है, प्राण पिंड यौं होइ।
दृष्टि मुष्टि आवै नहीं, साहिब के बसि सोइ ॥ १९८ ॥
काया सूषिम करि मिलै, ऐसा कोइ एक।
दादू आतम ले मिलै, ऐसे बहुत अनेक ॥ १९९ ॥

सुन्दरी सुहाग

आडा आतम तन धरै, आप रहै ता मांहिं।
आपण खेलै आप सौं, जीवन सेती नांहिं ॥ २०० ॥

---

१९६—अल्लः आप ईमान है=वह सर्वव्यापक चेतनाशक्ति जो भगवान् है वह हमारे ईमान=दृढ विश्वास में है।

१९७—प्राण पवन ज्यूँ पतला=प्राण की क्रिया को प्राणायाम की साधना द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म बनाना अर्थात् कुंभक की स्थिरता की साधना कर समाधि में निरत होना। क्यों ही गह्या न जाइ=जब प्राण समाधि में स्थिर हो जांय तो फिर संसार की किसी वासनासे गृहीत न हो सकेगा।

दृष्टान्त—गुरु दादू पै सिद्ध द्वै, आए लघु करि देह।
उपदेशत भये तिन्हों को, कहा सिधाई एह ॥ १ ॥

१९८—नूरतेज=परम ज्योति। दृष्टि=काल की दृष्टि में। मुष्टि=माया के बन्धन में।

१९९—भावार्थ—उपर्युक्त साधना द्वारा सर्वात्मना एकभाव का ब्रह्मीभाव को प्राप्त होने वाले कोइ विरले हैं। भेदवृत्ति से सूक्ष्म शरीर को साथ लेकर मिलने वाले बहुत हैं।

२००—भावार्थ—शरीर का अध्यास, अन्तःकरण की वासनावृत्ति इनको आडे लगा रखे हैं। आप शुद्ध चेतन वहीं—उन आवरण करने वाले शरीर तथा अन्तः करण में ही

अध्यात्म

दादू अनभै थैं आनन्द भया, पाया निर्भय नांव।
निहचल निर्मल निर्वाण पद, अगम अगोचर ठांव ॥ २०१ ॥
दादू अनभै वाणी अगम कौं, ले गई संग लगाइ।
अगह गहै अकह कहै, अभेद भेद लहाइ ॥ २०२ ॥
जे कुछ वेद कुरान थैं, अगम अगोचर बात।
सो अनभै साचा कहै, यहु दादू अकह कहात ॥ २०३ ॥
दादू जब घटि अनभै उपजै, तब किया करम का नास।
भै भ्रम भागे सबै, पूरण ब्रह्म प्रकास ॥ २०४ ॥

---

निवास करता है। जो सच्चे साधक शरीराध्यास तथा वासना का परित्याग कर अन्तःकरण शुद्ध कर लेते हैं उनसे आप = स्वसाक्षी चेतन खेलता है। जो शरीराध्यासी पुरुष साधारण जीव है उनको प्राप्त नहीं होता।

२०१—अनभै=स्वसाक्षात्कार। निहचल=चल-स्वभाव रहित। निर्मल=अविद्यादि मल रहित। निर्वाण=काल कर्मादि प्रहार रहित। अगम= षट् प्रमासे अज्ञात। अगोचर=इन्द्रियातीत। ठांव = उस निर्भय नाम के ये स्थान हैं।

२०२—अनभै वाणी=ब्रह्म वाणी, परिचय=साक्षात्। अगह गहै=जो अगह है उसको उसी रूपमें गहै=समझे। अकह कहै=जो अनिर्वचनीय है उसका उसी रूप में चिन्तन करे। अभेदभेद=अभेद के निश्चयरूप भेद को पाना।

२०३—अकह कहात = अनुभव में स्वस्वरूप का निश्चय प्राप्त कर लेना यही अकह—अकथनीय बात कही जाती है।

२०४—भै=सप्त प्रकार के भय। भ्रम=पांच तरह की भ्रान्ति।

सप्तविध भय—इहलोक परलोकभय, मरण वेदना घात।
अणरक्षा अस गुप्तभय, अकस्मात् भय सात ॥ १ ॥

दादू अनभै काटे रोग कौं, अनहद उपजै आइ।
सेझे का जल निर्मला, पीवै रुचि ल्यौ लाइ॥ २०५॥

दादू वाणी ब्रह्मकी, अनभै घटि परकास।
राम अकेला रहि गया, सबद निरंजन पास॥ २०६॥

जे कबहूं समझै आतमा, तौ दिढ गहि राखै मूल।
दादू सेझा राम रस, अमृत काया कूल॥ २०७॥

परचै जिज्ञासु उपदेस

दादू मुझही माहैं मैं रहूं, मैं मेरा घरबार।
मुझही मांहैं मैं बसूं, आप कहै करतार॥ २०८॥

दादू मैं ही मेरा अरस मैं, मैं ही मेरा थान।
मैं ही मेरी ठौर मैं, आप कहै रहिमान॥ २०९॥

---

पंचविध भ्रम—भेदभ्रम कर्तृत्व भ्रम, पुनि भ्रम संग विकार।
ब्रह्म इतर जग सत्य भ्रम, पंचम भ्रम संसार॥ १॥

२०५—अनभै = साक्षात् परिचय।

२०६—वाणी ब्रह्मकी=परा वाणी। राम अकेला रह गया=अभेद निश्चय ज्ञान होनेपर साधक और साधन दोनों समाप्त हो गये। जो स्वस्वरूपरूपी साध्य राम था वही रह गया।

२०७—आतमा = जिज्ञासुजन। राखै मूल=मानव शरीररूपी मूल व नामचिंतनरूपी मूल की रक्षा करे। कायाकूल = अन्तःकरणरूपी सरोवर के तट पर।

२०८—विवर्त्तवाद का निरूपण है। साखी के तीन चरण परावचन हैं चौथा दादूजी का।

२०९—अरस=आकाश, शून्य। मैं ही मेरा थान = मेरा आश्रय मैं ही हूं।

दादू मैं ही मेरे आसिरे, मैं मेरे आधार।
मेरे तकिये मैं रहूं, कहै सिरजनहार ॥ २१० ॥

दादू मैं ही मेरी जाति मैं, मैं ही मेरा अंग।
मैं ही मेरा जीव मैं, आप कहै परसंग ॥ २११ ॥

दादू सबै दिसा सो सारिखा, सबै दिसा मुख बैन।
सबै दिसा श्रवणहु सुणै, सबै दिसा कर नैन ॥ २१२ ॥

सबै दिसा पग सीस हैं, सबै दिसा मन चैन।
सबै दिसा सनमुख रहै, सबै दिसा अंग ऐन ॥ २१३ ॥

बिन श्रवणहु सब कुछ सुणै, बिन नैनहु सब देखै।
बिन रसना मुख सब कुछ बोलै, यहु दादू अचिरज पेखै ॥ २१४ ॥

सब अंग सब ही ठौर सब, सर्वंगी सब सार।
कहै गहै देखै सुनै, दादू सब दीदार ॥ २१५ ॥

---

२१०—मेरे तकिये = मेरे अधिष्ठान।

२११—मेरी जाति=जाति तथा जातित्व। अंग=अंगांगी। परसंग=प्रसङ्ग, प्रकरण, सम्वाद।

२१२—साखी २१४ से २२० तक में समष्टि चेतन के स्वरूप का दिग्दर्शन है। सब दिशाओं में, सब लोकों में, सब भूतों में, जड़ चेतन में अर्थात् सब जगह सब स्थितियों में उसी व्यापक शक्ति की सत्ता है। सारिषा=एकसा, समान।

दृष्टान्त—सबै दिशाकर नैन—*बालखिल्य डूबत गहे, करि भुज साठ हजार*
*बेर लिए सबरी दिए, अंगद को नगधार ॥ १ ॥*

२१३—चैन=शान्ति। ऐन=प्रत्यक्ष स्वरूप है।

२१५—सर्वंगी=सबका आधारभूत।

कहै सब ठौर, गहै सब ठौर, रहै सब ठौर, जोति प्रवानै ।
नैन सब ठौर, बैन सब ठौर, अैन सब ठौर, सोई भल जानै ।
सीस सब ठौर, श्रवण सब ठौर, चरण सब ठौर, कोई यहु मानै ।
अंग सब ठौर, संग सब ठौर, सबै सब ठौर, दादू ध्यानै ॥२१६॥
तेज ही कहणा, तेज ही गहणा, तेज ही रहणा सारे ।
तेज ही बैना, तेज ही नैना, तेज ही अैन हमारे ॥
तेज ही मेला, तेज ही खेला, तेज अकेला, तेज ही तेज संवारे ।
तेज ही लेवै, तेज ही देवै, तेज ही खेवै, तेज ही दादू तारे ॥२१७
नूरहि का घर, नूरहि का घर, नूरहि का वरु मेरा ।
नूरहि मेला, नूरहि खेला, नूर अकेला, नूरहि मंझि बसेरा ॥
नूरहि का अंग, नूरहि का संग, नूरहि का रंग मेरा ।
नूरहि राता, नूरहि माता, नूरहि खाता दादू तेरा ॥ २१८ ॥

२१६—जोति प्रवानै = चेतन का प्रकाश ही प्रामाणिक है। अैन=स्वयं, साक्षात् । सोई भल जाने=वही समझदार है,जानकार है जो उस व्यापक शक्ति को इस रूप में जानता है। कोई यहु माने = कोई सच्चा साधक ही यह समष्टिस्वरूप का परिचय प्राप्त करता है। दादू ध्यानै=दादूजी कहते है स्वस्वरूप का समष्टि के साथ इस तरह सम्बन्ध मान इसी भावना में निर्भर होता है वही सच्चा ध्यान है ।

२१७—गहणा = ग्रहण करना । सारे=श्रेष्ठ, सारभूत । अैन हमारे=वाह्याभ्यन्तर । संवारे = शृंगार करे, सजावे । खेवे = खेवट, निर्वाहक ।

२१८—वरु = पति, स्वामी, साध्य, उपास्य । मंझि = उसी में । वसेरा = निवास । नूर ही खाता दादू तेरा=सच्चा साधक इस तरह समष्टि में आपके स्वरूप को समझ शुद्ध चेतन की ही उपासना में लगता है वही उसकी खुराक है ।

सूखिम सौंज अरचा बंदगी

दादू नूरी दिल अरवाह का, तहां बसै माबूदं ।
तंह बन्दे की बन्दगी, जहां रहै मौजूदं ॥ २१९ ॥
दादू नूरी दिल अरवाह का, तहं खालिक भरपूरं ।
आली नूर अल्लाह का, खिदमतगार हजूरं ॥ २२० ॥
दादू नूरी दिल अरवाह का, तहं देख्या करतारं ।
तहं सेवग सेवा करै, अनन्त कला रवि सारं ॥ २२१ ॥
दादू नूरी दिल अरवाह का, तहां निरंजन बासं ।
तहं जन तेरा एक पग, तेज पुंज परकासं ॥ २२२ ॥
दादू तेज कवल दिल नूर का, तहां राम रहिमानं ।
तहं कर सेवा बन्दगी, जे तूं चतुर सयानं ॥ २२३ ॥
तहां हजूरी बंदगी, नूरी दिल मैं होइ ।
तहं दादू सिजदा करै, जहां न देखै कोइ ॥२२४॥

---

२१९—नूरी = शुद्ध । अरवाह = साधक । माबूदं = शुद्ध चेतन, परमेश्वर ।

दृष्टान्त—नूरी दिल अरवाह का—*बाल्मीकि वन के हते, मानुष किते हजार ।*
*उलट नाम दियो सप्त ऋषि, जपत नूर होइ पार ॥*

२२०—तहं=उस शुद्ध साधक के हृदय में । खालिक = विशुद्ध समष्टि चेतन । खिदमतगार= विरही साधक, सेवग । हजूरं = हाजिर, सतत अभ्यासरत ।

२२२—एक पग = एक रस, स्थिरवृत्ति ।

२२३—तेज = सत्वप्रधान । कवल = कोमल, करुणापूर्ण । दिल = अन्तःकरण । रहिमान= दयालु परमेश्वर । सयानं = समझदार ।

२२४—तहँ = शुद्ध हृदय में । हजूरी=खवासी । सिजदा = प्रणाम, विनय ।

दादू देही मांहै दोइ दिल, इक खाकी इक नूर।
खाकी दिल सूझै नहीं, नूरी मंझि हजूर ॥२२५॥

निमाज सिजदा

दादू हौज हजूरी दिलही भीतरि, गुसल हमारा सारं।
उजू साजि अलह के आगे, तहां निमांज गुजारं ॥ २२६ ॥
दादू काया मसीति करि, पंच जमाती मनही मुलां इमामं।
आप अलेख इलाही आगै, तहं सिजदा करै सलामं ॥ २२७ ॥
दादू सब तन तसबी कहै करीमं, ऐसा करले जापं।
रोजा एक दूरि करि दूजा, कलमां आपै आपं ॥ २२८ ॥
दादू अठे पहर अलह के आगे, इकटग रहिबा ध्यानं।
आपै आप अरस के ऊपर, जहां रहै रहिमानं ॥ २२९ ॥
अठे पहर इबादती, जीवन मरण नेबाहि।
साहिब दर सेवै खड़ा दादू छाडि न जाइ ॥ २३० ॥

---

२२५—खाकी=अज्ञान, विषय विकार से मलिन। नूर = विशुद्ध दिल। मंझि=भीतर।

२२६—हौद = आनन्दरस का स्थान। गुसल=स्नान। उजू=पंच अवयव, पांचों ज्ञानेन्द्रियों को विषयविरत करना यही उजू है। निमाज = निवेदन, प्रार्थना।

२२७—पंच जमाती = पांच ज्ञानेन्द्रियां, ये ही जमाती=नमाज पढ़ने वालों का समूह है। सिजदा=नमस्कार। तहं=शुद्ध अन्तःकरण में।

२२८—तसबी=माला। रोजा = व्रत। एक=एकत्वभाव। आपै आपं=अपने स्वरूप में अपनी स्थिति।

२२९—अठे = आठों, सब समय। इक टग=निश्चल। अरस = हृदय प्रदेश।

२३०—इबादती = पूजा। नेबाहि=निभाना, पूर्ति करना।

साधु महिमा माहात्म्य

**अठे पहर अरस मैं, ऊभो ई आहे।**
**दादू पसे तिन के, अला गाल्हाये ॥ २३१ ॥**
**अठे पहर अरस मैं, बैठा पिरी पसंनि।**
**दादू पसे तिन के, जे दीदार लहंनि ॥ २३२ ॥**
**अठे पहर अरस मैं, जिन्हीं रूह रहंनि।**
**दादू पसे तिन के, गुझ्यूं गाल्ही कंनि ॥ २३३ ॥**
**अठे पहर अरस मैं, लुडींदा आहीन।**
**दादू पसे तिनके, असां खवरि डीन्ह ॥ २३४ ॥**

---

२३१—भावार्थ—शुद्ध हृदय में आठों पहर अन्तर्मुख वृत्ति से स्थिर रहना। वे ही साधक अपने स्वरूप को देखते हैं तथा वे ही उस स्वस्वरूप से गाल्हायें=बातचीत करते हैं।

२३२—अरस=शुद्ध दिल में। पिरी पसंनि = अपने प्रिय आत्मा को देखता है। पसे=दर्शन। लहंनि = ले रहे हैं।

२३३—जिन्ही=जिनकी। रूह = आत्मा। रहंनि=रह रहा है। पसे तिनके=उनके दर्शन करने चाहिये। गुझ्यूं गाल्ही कंनि=जो गुप्त अदृश्य आत्मा की बात करते हैं अर्थात् अदृश्य आत्मा को प्राप्त करते हैं।

दृष्टान्त—गुझ्यूं गाल्ही कंनि—*भयो प्रश्न इक जाट पै, पातशाह सब सीस।*
*एकबार तुम्हि कान लगि, औरन बिसवा बीस ॥१॥*

२३४—भावार्थ—जो साधक आठों पहर अपने अन्तःकरण में अपने स्वरूप को देखने की चाह में लगे हैं। आसां खवरि डीन्ह = जिन्होंने हमें उस आत्मस्वरूप की खबर यानी उपदेश दिया है। दादू पसे तिनके=दादूजी कहते हैं उन्हीं के दर्शन करने चाहिये।

अठे पहर अरस मैं, वजी जे गाहीन।
दादू पसे तिनके, किते ई आहींन॥ २३७॥

रस ( प्रेम पियाला )

प्रेम पियाला नूर का, आसिक भरि दीया।
दादू दर दीदार मैं, मतिवाला कीया॥ २३६॥
इश्क सलूनां आसिकां, दरगह थैं दीया।
दर्द मौहब्बति प्रेम रस, प्याला भरि पीया॥ २३७॥
दादू दिल दीदार दे, मतिवाला कीया।
जहां अरस इलाही आप था, अपना करि लीया॥ २३८॥
दादू प्याला नूरदा, आसिक अरसि पिवन्नि।
अठे पहर अल्लाह दा, मुंह दिट्ठे जीवंनि॥ २३९॥

---

२३५—भावार्थ—सब समय अपने शुद्ध दिल में वजीजेगाहीन=वृत्ति को लगाकर अपना अवगाहन कर रहे हैं, उन्हीं के दर्शन करने चाहिये। कितेई आहीन=और दिखावटी साधक तो न मालूम कितने है।

२३६—प्रेम=आसक्ति रहित स्नेह। दर=सत्संग या दर=हृदय में। दीदार=दर्शन दे।

२३७—भावार्थ—दरगाह, सत्संग, आत्मशास्त्र, योगभक्ति, आदि साधनों द्वारा सलूना=रस, इश्क=अनासक्त प्रेम, आसिकां=साधक जिज्ञासु को दिया। दर्द=तडफन सहित मोहब्बत=स्वस्वरूप की तीव्र चाह वही है प्रेम रस उसका प्याला-हृदयरूपी प्याला भरकर पीया=पान किया।

२३८—जहां = मस्त अवस्था।

२३९—भावार्थ—आसिक जिज्ञासु साधक अरस शुद्ध दिल में शुद्ध स्वरूप का प्याला पी रहे हैं। वे सब समय अल्लाहदा=अपने स्वरूप का मुंह देख जीते हैं अर्थात् सर्वदा अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा आत्मनिष्ठ रहते हैं।

आशिक अमली साध सब, अलख दरीबे जाइ।
साहिब दर दीदार मैं, सब मिलि बैठे आइ ॥ २४० ॥
राते माते प्रेमरस, भरि भरि देइ खुदाइ।
मस्तान मालिक करि लिये, दादू रहे ल्यौ लाइ ॥ २४१ ॥

सांबी ( भक्ति अगाध )

दादू भगति निरंजन राम की, अविचल अविनासी।
सदा सजीवनि आतमा, सहजैं परकासी ॥ २४२ ॥
दादू जैसा राम अपार है, तैसी भगति अगाध।
इन दोन्यूं की मित नहीं, सकल पुकारैं साध ॥ २४३ ॥
दादू जैसा अविगत राम हे, तैसी भगति अलेष।
इन दोन्यूं की मति नहीं, सहस मुखां कहै सेस ॥ २४४ ॥

---

२४०—अमली = साधना के व्यसन वाले। अलख=विशुद्ध व्यापक चेतन। दरीबे=दरबार, कचहरी में।

दृष्टान्त—अलख दरीबे जाइ—*गुरु दादू आमेर में, ठहरै माधोदास।*
*भेजी भेंट जुआर की, अलख दरीबै वास ॥१॥*

२४१—राते = अनुरक्त। माते=मस्त, दिवाने। ल्यौ लाइ=वृत्ति को लय कर समाधि-अवस्था में।

२४२—अविचल अविनासी यहां भक्ति के विशेषण हैं। परकासी = प्रगटी, उत्पन्न हुई।

२४३—मित=पार।

२४४—अविगत=लेखे रहित। सहस=हजार। मुखा=मुंह से।

दादू जैसा निर्गुण राम है, तैसी भगति निरंजन जाणि।
इन दोन्यूं की मित नहीं, संत कहैं परवाणि ॥ २४५ ॥
दादू जैसा पूरा राम है, तैसी पूरण भगति समान।
इन दोन्यूं की मित नहीं, दादू नाहीं आन ॥ २४६ ॥

सेवा अखंडित

दादू जब लग राम है, तब लग सेवग होइ।
अखंडित सेवा एक रस, दादू सेवग सोइ ॥ २४७ ॥
दादू जैसा राम है, तैसी सेवा जाणि।
पावैगा तब करैगा, दादू सो परिवांण ॥ २४८ ॥
सांई सरीखा सुमिरण कीजै, सांई सरीखा गावै।
सांई सरीखी सेवा कीजै, तब सेवग सुख पावै ॥ २४९ ॥

परचै करुणा बीनती

दादू सेवग सेवा करि डरै, हम थैं कछू न होइ।
तूं है तैसी बंदगी, करि नहिं जाणै कोइ ॥ २५० ॥
दादू जे साहिब मानै नहीं, तऊ न छाडौ सेव।
इहि अवलंबनि जीजिये, साहिब अलख अभेव ॥ २५१ ॥

---

२४५—निर्गुण = माया अविद्या अंश रहित। परवाणि=प्रमाण। संत=नारद, दत्तात्रेय, जड़भरतादि।

२४९—सुख = निरतिशय सुख।

२५१—अवलम्बनि=आधार, आश्रय।

सूषिम सौंज अरचा बंदगी

आदि अंति आगै रहै, एक अनूपम देव।
निराकार निज निर्मला, कोई न जाणै भेव ॥ २५२ ॥
अविनासी अपरंपरा, वार पार नहिं छेव।
सो तूं दादू देखिले, उर अंतरि करि सेव ॥ २५३ ॥
दादू भीतरि पैसि करि, घट के जड़ै कपाट।
सांई की सेवा करै, दादू अविगत घाट ॥ २५४ ॥
घट परचै सेवा करै, प्रत्तषि देखै देव।
अविनासी दरसन करै, दादू पूरी सेव ॥ २५५ ॥

भरम विधूसण

पूजणहारे पासि है, देही मांहैं देव।
दादू ताकौं छाडि करि, बाहरि मांडी सेव ॥ २५६ ॥

---

२५२—आदि अंत = जन्म, मृत्यु, वृत्ति के उदयकाल में, वृत्ति के लयकाल में। एक= भेद रहित। निज=साक्षी, चेतन। भेव = भेद, खबर।

दृष्टान्त—आदि अन्त आगे रहै—*रामचन्द्र बालक थकाँ, काकभुसुण्ड गह सीत।*
*भाज्यो जहं तहं लारं करि, पार न है भैभीत ॥*

२५३—अपरम्परा = जिससे भिन्न दूसरा कोई नहीं। वार पार=आदि अंत। छेव=किनारा।

२५४—भीतर पैसकरि=वृत्ति अन्तर्मुख कर। घट के जड़ै=इन्द्रियों की प्रवृत्ति रोके। अविगत घाट=परमात्मा या स्वस्वरूप की प्राप्ति का यही रास्ता है।

२५५—घट=शुद्ध अन्तःकरण।

२५६—पूजणहारे=पूजनीय, उपास्य। मांडी=आरम्भ की।

परचय

दादू रमिता राम सौं, खेलौ अंतरि मांहि।
उलटि समाना आप मैं, सौ सुख कतहूं नांहि ॥ २५७ ॥
दादू जे जन बेधे प्रीति सौं, सो जन सदा सजीव।
उलटि समाने आप मैं, अंतर नांही पीव ॥ २५८ ॥
परगट खेलैं पीव सौं, अगम अगोचर ठांव।
एक पलक का देखणां, जीवन मरण का नांव ॥ २५९ ॥

सूखिम सौंज अरचा बंदगी

आतम मांहैं राम है, पूजा ताकी होइ।
सेवा वंदन आरती, साध करैं सब कोइ ॥ २६० ॥
परचै सेवा आरती, परचै भोग लगाइ।
दादू उस परसाद की, महिमा कही न जाइ ॥ २६१ ॥
मांहिं निरंजन देव है, मांहैं सेवा होइ।
मांहिं उतारै आरती, दादू सेवग सोइ ॥ २६२ ॥

२५७—उलटि समाना आपमें=मन प्राण इन्द्रियों को विलय कर स्वस्वरूप में स्थित हुवा।

२५८—बेधे=घायल हुये, विरहयुक्त हुए।

२५९—अगम अगोचर ठांव=जहां पहुंच नहीं, इन्द्रियों का विषय नहीं, ऐसे ठांव–शुद्ध अन्तःकरण में। जनम मरण का नॉव=इस स्थिति में पहुंच जाने पर जन्म मृत्यु नाम शेष ही रहती है।

२६१—परचै=साक्षात् स्वस्वरूप।

दृष्टान्त—दादू उस परसाद की—*कवरी तैं कवरा भयो, लेत प्रसादा सीत।*
*राघो भिन्न न कीजिये, पारस रूप अतीत ॥१॥*

दादू मांहैं कीजै आरती, मांहैं पूजा होइ।
मांहैं सतगुरु सेविये, बूझै बिरला कोइ ॥ २६३ ॥
संत उतारैं आरती, तन मन मंगल चार।
दादू बलि बलि वारणै, तुम परि सिरजनहार ॥ २६४ ॥
दादू अविचल आरती, जुगि जुगि देव अनंत।
सदा अखंडित एकरस, सकल उतारैं संत ॥ २६५ ॥

सौंज

सत्यराम, आत्मा वैश्नौं, सुबुधि भोमि, संतोष थान, मूल मंत्र, मन माला, गुरु तिलक, सति संजम, सील सुच्या, ध्यान धोवती, काया कलस, प्रेम जल, मनसा मंदिर, निरंजन देव, आत्मा पाती, पुहुप प्रीति, चेतना चंदन, नवधा नांव, भाव पूजा, मति पात्र, सहज समर्पण, सबद घंटा, आनंद आरती, दया प्रसाद, अननि एकदसा, तीर्थ सतसंग, दान उपदेस, व्रत सुमिरण, षट गुण ज्ञान, अजपा जाप, अनभै आचार, मरजादा राम, फ़ल दरसन, अभिअन्तरि सदा निरन्तर, सति सौंज दादू वर्तते, आत्मा उपदेस, अंतरगति पूजा ॥ २६६ ॥

---

६३—बूझै=जाने, समझे। विरला=कोइ एक।

६६—सत्यराम=निर्गुण ब्रह्म है वही सत्य है। जिसका अन्तःकरण स्वस्वरूप की ओर लगा है वही साधक वैष्णव है। सुबुद्धि भौम, स्थितप्रज्ञ-बुद्धि है वह शुद्ध भूमि है। सन्तोष थान=वासनारहित वृत्ति की दशा वही स्थान-घर है। मूलमन्त्र=समष्टि का आधारचेतन जो मूल सबका आधार है उसका चिंतन ही मन्त्र है।

## पिवसौं खेलौं प्रेमरस, तो जियरे जक होइ ।

मनमाला=शुद्ध मन का अन्तःप्रवाह वही माला है। गुरु तिलक=सतगुरु का सत्य उपदेश वही तिलक है। सति संजम = साधक सत्य का आश्रय कभी न त्यागे वही संयम है। शील शुच्या=अखंड ब्रह्मचर्य की रक्षा यही पवित्रता है। ध्यान धोवती= वृत्ति की एकाग्रतारूपी धोती धारण करना। काया कलश=मानव-शरीर है यही पूजा के जल का कलश है। प्रेम जल=इस कलश में आसक्ति रहित शुद्ध प्रेमरूपी जल भरना। मनसा मन्दिर = वृत्ति में सत्वोद्रेक स्थिर करना यही मन्दिर बनाना है। निरंजन देव=इस मन्दिर में माया अविद्या उपाधि रहित शुद्ध चेतन की प्रतिष्ठा करना। आत्म पाती=इन्द्रियों को अन्तर्मुख करना यही तुलसी दल चढ़ाना है। पहुप प्रीति = अनन्य प्रेम यही पुष्प चढाना हैं। चेतना चन्दन=चित्त की सचेष्टता यही चन्दन है। नवधा नाँव = नौ प्रकार की भक्ति यही नाँव है। भाव पूजा= अगाध श्रद्धा द्वारा पूजा करना। मति=संकल्प रहित बुद्धि है वही पूजा के पात्र हैं। सहज समर्पण=वृत्तियों को निर्द्वन्द्व करना यही समर्पण है। सबद घंटा=प्रणव-ध्वनिरूप घंटा है। आनन्द आरती=आनन्द की अनुभूति ही आरती है। दया प्रसाद=स्वस्वरूप का परिचय प्राप्त होने की दया यही प्रसाद है। अननि एकदशा= लयवृत्ति की स्थिरता अर्थात् समाधि दशा यही एक दशा है। तीर्थ सत्संग = इस साधक के सन्तसमागम ही तीर्थ है। दान उपदेश=आत्मोपदेश ही यहां दान है। व्रत सुमरण, = आत्मचिन्तन यही इस साधक के लिये व्रत है। षट्गुण ज्ञान = अध्ययनाध्यापन दान देना लेना यज्ञ करना कराना इन षट् गुणों की जगह सत्य ज्ञान ही षट्गुण स्थानीय है। भक्तिके भी षड् अंग कहे हैं—

*नमस्तुति अरु कर्म समर्पण, पूजा चरण ध्यान पुनि जान।*
*कथाश्रवण षट् अंग भक्ति के, नीके हेतु इन्हें पहिचान॥*

अजपाजाप=अचञ्चलवृत्ति में स्वरूपस्थिति यही अजपाजाप है। अनभै आचार= स्वरूपनिश्चय साक्षात् परिचयरूप अनुभव यही साधक के आचार हैं। मर्यादा राम= सार्वभौम आत्मा की उपादेयता से भिन्न किसी कर्म का व्यापार न करना यही मर्यादा है। फलदरसन=इस पूजाका परिणाम है अपना साक्षात्कार। अभि अन्तर

**दादू पावै सेज सुख, पड़दा नांहीं कोइ ॥ २६७ ॥**

सूषिम सौंज

**सेवग बिसरै आप कौं, सेवा बिसरि न जाइ ।**
**दादू पूछै राम कौं, सो तत कहि समझाइ ॥ २६८ ॥**
**ज्यौं रसिया रस पीवतां, आपा भूलै और ।**
**यौं दादू रहि गया एक रस, पीवत पीवत ठौर ॥ २६९ ॥**
**जहं सेवग तहं साहिब बैठा, सेवग सेवा मांहि ।**
**दादू सांई सब करै, कोई जाणै नांहि ॥ २७० ॥**
**दादू सेवग सांई बस किया, सौंप्या सब परिवार ।**
**तब साहिब सेवा करै, सेवग के दरबार ॥ २७१ ॥**

---

सदा निरन्तर=अन्तःकरण में सर्वदा सब काल । सति सौंज दादू वर्तते = दादूजी महाराज कहते हैं-जो सच्चे साधक हैं उनके यही सच्ची सौंज सामग्री पूजा की है जिसको सन्तजन उपजाते हैं। अन्तरगति पूजा = अन्तःकरण में पूजा करने की विधि का आत्मा उपदेश; साधक के लिये यही वास्तविक उपदेश है ।

२६७—जक=आनन्द । सेज=हृदय में । पड़दा=अन्तराय, आवरण ।

२६८—सेवग बिसरे आपको=साधक अपने कर्तृत्व भोक्तृत्वपनेको भूल जाय, तत=तत्व ।

२६९—रसिया = अमली, व्यसनी । एकरस = एकाग्रचित्त, समाधिस्थ ।

२७०—जहं सेवग तहं साहिब बैठा = सेवक साधक अपनी साधना में निरन्तर लगजाता है तब उस सेवकके अन्तःकरणमें साहब साध्यस्वरूप आ बैठता है, प्रगट होजाता है ।

दृष्टान्त—जहं सेवग तहं—*सांभर नूंता सात को, भोगे दादू होइ ।*
*एक दिवाले भाषसी, दादू देखै दोइ ॥*

२७१—सौंप्या सब परिवार = पांचों ज्ञानेन्द्रियां चारों अन्तःकरण और प्राणरूपी परिवार उसी के समर्पण कर दिया ।

तेज पुञ्ज कौं विलसणा, मिलि खेलैं इक ठांव ।
भरि भरि पीवै रामरस, सेवा इसका नांव ॥ २७२ ॥
अरस परस मिलि खेलिये, तब सुख आनंद होइ ।
तन मन मंगल चहुं दिसि भये, दादू देखै सोइ ॥ २७३ ॥

सुन्दर सुहाग

मस्तकि मेरे पांव धरि, मंदिर मांहै आव ।
संइयां सोवै सेज परि, दादू चंपै पांव ॥ २७४ ॥
ये चार्यूं पद पलिंग के, सांई की सुख सेज ।
दादू इन पर बैसि करि, सांई सेती हेज ॥ २७५ ॥
प्रेम लहरि की पालकी, आतम बैसै आइ ।
दादू खेलै पीव सौं, यहु सुख कह्या न जाइ ॥ २७६ ॥

पूजा—भक्ति सूषिम सौंज

दादू देव निरंजन पूजिये, पाती पंच चढाइ ।
तन मन चंदन चरचिये, सेवा सुरति लगाइ ॥ २७७ ॥

---

२७२—विलसणा = भोगना, सहवास में आना। इक ठाँव = शुद्ध हृदयकमल में।

२७३—मंगल चहुंदिसि=चौदह त्रिपुटी, दश इन्द्रियां, चतुर्विध अन्तःकरण।

२७४—मस्तक मेरे पाँव धरि = मेरे विविध प्रकार के अहङ्काररूपी मस्तक पर पाँव रख उन्हें दूर कर।

२७५—ये चार्यूं पद पलंग के = अहंकार की निवृत्ति, अन्तःकरण की शुद्धि, वृत्ति का तादात्म्य और स्व स्वरूप ये उस पलंग के चार पाये हैं। हेज = अति अनुराग।

२७६—आतम = साधक।

२७७—पंच चढाई = पंचेन्द्रियों को अन्तर्मुख कर। तन मन चंदन = शुद्ध शरीर शुद्ध मन-रूपी चन्दन।

भगति भगति सब को कहै, भगति न जाणै कोइ ।
दादू भक्ति भगवंत की देह निरंतर होइ ॥ २७८ ॥
देही मांहै देव है, सब गुण थैं न्यारा ।
सकल निरंतर भरि रह्या, दादू का प्यारा ॥ २७९ ॥
जीव पियारे राम कौं, पाती पंच चढ़ाइ ।
तन मन मनसा सौंपि सब, दादू बिलम न जाइ ॥ २८० ॥

ध्यान—अध्यात्म

सबद सुरति लै सानि चित, तन मन मनसा मांहि ।
मति बुधि पंचौं आत्मा, दादू अनत न जांहि ॥ २८१ ॥
दादू तन मन पवना पंच गहि, ले राखै निज ठौर ।
जहां अकेला आप है, दूजा नांही और ॥ २८२ ॥
दादू यहु मन सुरति समेटि करि, पंच अपूठे आणि ।
निकटि निरंजन लागि रहु, संगि सनेही जाणि ॥ २८३ ॥

---

२७८—देह निरन्तर होइ = शरीर ही में सब काल की जा सकती है ।

२७९—सब गुण = सत्व रज तम से । निरन्तर=व्यापक ।

२८०—पियारे राम = परम प्रिय आत्मा को । विलम=देर, विलम्ब । तन मन मनसा सौंपि सब=रज तमादि गुणमय शरीर, कामादि विकार युक्त मन, अस्थिर मनसा बुद्धि इन सबके दोष दूर कर उस आत्मा को समर्पित कर ।

२८१—सानि=मिला, एक कर । मति बुद्धि पंचों आतमा=मननवृत्ति निश्चयवृत्ति तथा पांचों ज्ञानेन्द्रियां ।

२८२—पवना = प्राण । पंच=पंच ज्ञानेन्द्रियां । अकेला=असंग । दूजा = द्वैत, भेद वृत्ति ।

२८३—समेटि करि=अंतर्मुख कर । अपूठे=पीछे-भीतर । आणि=लाओ । संगी=सखा साथी ।

मन चित मनसा आतमा, सहज सुरति ता मांहि ।
दादू पंचौं पूरिले, जहं धरती अंबर नांहि ॥ २८४ ॥

दादू भीगे प्रेम रस, मन पंचौं का साथ ।
मगन भये रस मैं रहे, तब सनमुख त्रिभुवननाथ ॥ २८५ ॥

दादू सबदैं सबद समाइ ले, पर आतम सौं प्राण ।
यहु मन मन सौं बंधि ले, चित्तैं चित्त सुजाण ॥ २८६ ॥

दादू सहजैं सहज समाइ ले, ज्ञानैं बंध्या ज्ञान ।
सुत्रैं सुत्र समाइ ले, ध्यानैं बंध्या ध्यान ॥ २८७ ॥

दादू दृष्टैं दृष्टि समाइ ले, सुरतैं सुरति समाइ ।
समझैं समझ समाइ ले लै सौं लै ले लाइ ॥ २८८ ॥

दादू भावैं भाव समाइ ले, भगतैं भगति समान ।
प्रेमैं प्रेम समाइ ले, प्रीतैं प्रीति रसपान ॥ २८९ ॥

---

२८४—मनचित मनसा आतमा = मन, चित, प्राण में जो चिदाभास है वही आत्मा है, अपना रूप है, उसी में सहज सुरति=स्थिर वृत्ति करिये । पूरिले=भरले, व्याप्त करले । धरती अंबर=पंचभूतात्मक विकार ।

२८५—भागे=तर हो, सराबोर हो ।

२८६—समाइले=विलय करले । बंधि लै=लगा लै । इस साषी से २९३ की साषी तक समष्टि में व्यष्टि को विलय करने का वर्णन है ।

२८७—सहजैं सहज समाइ लै = सहज समष्टि चेतन में अपना वासना विकार के अनुबन्ध से रहित हुआ सहज चेतन सम्मिलित करले । ज्ञानैं न्ध्या ज्ञान = बन्ध्या विकल्प रहित बुद्धिजन्य स्वस्वरूप ज्ञान को समष्टि ज्ञान में सम्मिलित करले । सूत्रैं सूत्र समाइ ले=समष्टि व्यष्टि के स्वभाव में केस्वभाव को मिला ले ।

दादू सुरतैं सुरति समाइ रहु, अरु बैनहुँ सौं बैन।
मनही सौं मन लाइ रहु, अरु नैनहुं सौं नैन॥ २६०॥
जहां राम तहं मन गया, मन तहं नैनां जाइ।
जहं नैना तहं आतमा, दादू सहजि समाइ॥ २६१॥

जीवन्मुक्ति ( विषयवासनानिवृत्ति )

प्राण न खेलै प्राण सौं, मन ना खेलै मन।
सबद न खेलै सबद सौं, दादू राम रतन॥ २६२॥
चित्त न खेलै चित्त सौं, बैन न खेलै बैन।
नैन न खेलै नैन सौं, दादू परगट अैन॥ २६३॥
पाक न खेलै पाक सौं, सार न खेलै सार।
खूब न खेलै खूब सौं, दादू अंग अपार॥ २६४॥
नूर न खेलै नूर सौं, तेज न खेलै तेज।
जोति न खेलै जोति सौं, दादू एकै सेज॥ २६५॥

---

२६१—मन तहं नैनां जाइ = शुद्ध अन्तःकरण है वहीं विवेक विचार के नेत्र जाते हैं। आतमा=वृत्ति।

२६२—इस साखी में समाधि अवस्था का दिग्दर्शन है—जब वृत्ति अन्तर्मुख हो प्राण के साथ स्थिर होजाती है तब मन प्राण वाणी के व्यापार रुक जाते हैं उस स्थिति में एक राम रतन=स्वस्वरूपध्यान ही शेष रहता है।

२६३—दादू परगट अैन = जब स्वस्वरूप का प्रत्यक्ष परिचय होजाता है तब स्थूल सूक्ष्म प्रपंच के अन्य सब व्यापार रुक जाते हैं।

२६४—दादू अंग अपार=दादूजी कहते हैं इस दृश्य अंग से आगे जो अपना अपार अंग व्यापक चेतन है उसको जान लिया प्राप्त कर लिया तब और सब वासनायें निःशेष हो जाती हैं।

पंच पदारथ मन रतन, पवना माणिक होइ।
आत्म हीरा सुरति सौं, मनसा मोती पोइ ॥ २९६ ॥
अजब अनुपम हार है, सांई सरीखा सोइ।
दादू आत्म राम गलि, जहां न देखै कोइ ॥ २९७ ॥
दादू पंचौं संगी संगि ले, आये आकासा।
आसण अमर अलेख का, निर्गुण नित बासा ॥ २९८ ॥
प्राण पवन मन मगन ह्वै, संगि सदा निवासा।
परचा परम दयाल सौं, सहजैं सुख दासा ॥ २९९ ॥
दादू प्राण पवन मन मणि बसै, त्रिकुटी केरे संधि।
पांचौं इंद्री पीव सौं, ले चरणौं मैं बंधि ॥ ३०० ॥

---

२९६—९७—भावार्थ—अन्तर्मुख पांचों ज्ञानेन्द्रिय पदार्थ रूप हैं, शुद्ध अन्तःकरण रत्न रूप हैं, समाधिस्थ प्राण माणिक सम हैं, स्थिर बुद्धिवृत्ति हीरा है। उस वृत्ति में स्वस्वरूप की वासना मोती है। यह हार अद्भुत और निरुपम है। यह सोई—अपने उपास्य के लायक है दादूजी महाराज कहते हैं अपने अधिष्ठान चेतन रूपी राम के गले में यह हार पहनाइये जहां=जिसको इन्द्रिय दृष्टि वाला विकारी देख न सके।

दृष्टान्त—*एक पुरुष को पुरस लै, हरि ही समरप्यो आइ।*
*ता पुन के परभाव तें, इन्द्र होइ नृप जाइ ॥१॥*

२९८-२९९—भावार्थ—पांचो ज्ञानेन्द्रियों को अन्तर्मुख कर अन्तःकरण में लाइये जहां अमर अलख=निर्गुण शुद्ध चेतन का आसन तथा नित्यवासा है। यही अर्थात् जहां अपने आराध्य के अधिष्ठान का निवास है वहीं अन्तःकरण में प्राण पवन का अवरोध कर समाधिस्थ दशा में मग्न हो इस तरह परम कारुणिक उस समष्टि अधिष्ठान का=परचा साक्षात् अनुभव कर साधक सहज सुख को प्राप्त करे।

३००—भावार्थ—मन, प्राण, बुद्धि वृत्ति की त्रिपुटी की सन्धि में एकाग्रता में ही उस आत्मा रूपी मणि=विशिष्ट रत्न का निवास है। वही पांचों इन्द्रियों को अन्तर्वृत्तिकर मन प्राण, बुद्धि की स्थिरता कर उसी के चरणों में बांध दे=लगादे।

प्राण हमारा पीव सौं, यौं लागा सहिये।
पुहुपवास, घृत दूध मैं, अब कासौं कहिये ॥ ३०१ ॥
पाहण लोह बिच वासदेव, अैसैं मिलि रहिये।
दादू दीन दयाल सौं, संगहि सुख लहिये ॥ ३०२ ॥
दादू अैसा बड़ा अगाध है, सुषिम जैसा अंग।
पुहुपवास थैं पतला, सो सदा हमारे संग ॥ ३०३ ॥
दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब अंतर कुछ नांहीं।
ज्यौं पाला पांणी कौं मिल्या, त्यौं हरिजन हरि मांहीं ॥३०४॥
दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब सब पड़दा दूरि।
अैसैं मिलि ऐकै भया, बहु दीपक पावक पूरि ॥ ३०५ ॥
दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब अन्तर नांहीं रेख।
नाना विधि बहु भूषणां, कनक कसौटी एक।
दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब पलक न पड़दा कोइ।
डाल मूल फल बीज मैं, सब मिलि एकै होइ ॥ ३०७ ॥

---

३०१—यौं लागा सहिये = ऐसे लग जाना चाहिये।

३०२—पाहण = चकमक पत्थर। वासदेव=अग्नि।

३०३—अगाध=अथाह। अंग=जीवात्मा का स्वरूप।

३०४—पाला=बर्फ।

३०५—पड़दा=आड़, आवरण, द्वैतभ्रमजन्य पड़दा।

३०६—रेष=रेखा, लकीर। कनक = सोना।

फल पाका बेली तजी, छिटकाया मुख मांहिं।
सांई अपणा करि लिया, सो फिरि ऊगै नांहिं॥ ३०८॥
दादू काया कटोरा, दूध मन, प्रेम प्रीति सौं पाइ।
हरि साहिब इहि विधि अंचवै, बेगा वार न लाइ॥ ३०६॥
टगाटगी जीवण मरण, ब्रह्म बराबरि होइ।
परगट खेलै पीव सौं, दादू बिरला कोइ॥ ३१०॥
दादू निवारा ना रहै, ब्रह्म सरीखा होइ।
लै समाधि रस पीजिये, दादू जब लग दोइ॥ ३११॥
बेखुद खबर होशियार बाशद, खुदखबर पामाल।
बेक़ीमती मस्तानः गलतां, नूरे प्यालये ख्याल॥ ३१२॥

३०८—भावार्थ—जैसे पके हुए फल का आहार करलेने पर उसका बीज फिर उत्पन्न नहीं होता, ऐसे ही साधक पुरुष को आत्मपरिचय होजाना यही फल है, शरीरके अध्यास का परित्याग होजाना यही बेल को छोड़ना है, व्यष्टि को समष्टि में एक करदेना यही मुखमें छिटकाना है—ऐसा साधक फिर जन्म मृत्यु को प्राप्त नहीं होता।

३०९—भावार्थ—मानवशरीर है यही कटोरा है, शुद्ध अन्तःकरण रूपी दूध इस कटोरेमें भर प्रेमप्रीति सौं=अशान्ति रहित स्नेह व अनन्य श्रद्धा से उस समष्टि हरि परमेश्वर को यह दूध पिलावे देर न करे।

३१०—टगाटगी=समाधिस्थवृत्ति। जीवण मरण=जन्मपर्यन्त। ब्रह्म बराबर होइ=साधक तब निर्गुण स्वरूप की प्राप्ति कर सकता है।

३११—निवारा = निकम्मा। दादू जबलग दोइ = जबतक द्वैतभाव का अंश है तब तक लय समाधिकी साधना में लगा ही रहे।

दृष्टान्त—न्यारै नें हीरो लह्यो, तोपर हेरत ठौर।
बहुरी बूझी पातशाह, अब क्यूं ढूंढत और॥

३१२—बेखुद खबर होशयार बाशद = वे खुद परमेश्वर या स्वस्वरूप की यादमें बाशद

दादू माता प्रेम का, रस मैं रह्या समाइ।
अंत न आवै जब लग, तब लग पीवत जाइ॥ ३१३ ॥
पीया तेता सुख भया, बाकी बहु बैराग।
अैसैं जन थाकै नहीं, दादू उनमन लाग॥ ३१४ ॥
राम रटणि छाडै नहीं, हरि लै लागा जाइ।
बीचैं ही अटकै नहीं, कला कोटि दिखलाइ॥ ३१५ ॥
दादू हरि रस पीवतां, कबहूं अरुचि न होइ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवण हारा सोइ॥ ३१६ ॥
दादू जैसे श्रवणां दोइ हैं, अैसे हूंहि अपार।
राम कथा रस पीजिये, दादू बारंबार॥ ३१७ ॥

---

रात दिन होशियार=तत्पर रहे। खुद खबर पामाल=अपनी देह का अध्यास व विषयवासना की याद को पामाल=समाप्त करदे। बेकीमती=अनमोल नूरे=शुद्ध आत्मस्वरूप—परिचयप्राप्ति के प्यालये=प्याले का ख्याल=ध्यान उसीमें मस्तानः गलतां = गलतान, डूबा हुवा मस्त रहे।

दृष्टान्त—*या साखी सुण ओलिया, चल आयो आमेरि।*
*कथा करत गुरुदेव कै, मुंह चालन लियो फेरि॥*

३१३—अन्त न आवै जब लगै = द्वैत भावना जब तक अन्त=समाप्त न होजाय।

३१४—बाकी बहु वैराग=नाम स्मरण व स्वस्वरूप चिंतनका विशेष राग बाकी रह रहा है। थाकै नहीं=थके नहीं, सुस्त न हो।

३१५—रामरटण छांडे नहीं=स्वस्वरूप का चिन्तन ध्यान स्मरण छोड़े नहीं। अटकै नहीं= रुके नहीं।

३१६—हरिरस = आत्मचिन्तनरूपी ध्यानरस। अरुचि = अनिच्छा।

दृष्टान्त—*वरुण मित्र कियो बाट को, आइयो मेरे गेह।*
*गयो निमायो पिवन भौ, अमृत कर अति नेह॥*

३१७—श्रवणाँ=कान। अपार=अगणित।

जैसे नैनां दोइ हैं, ऐसे हूंहि अनंत।
दादू चंद चकोर ज्यौं, रस पीवैं भगवंत॥ ३१८॥
ज्यौं रसना मुख एक है, ऐसे हूंहि अनेक।
तौ रस पीवै सेस ज्यौ, यौं मुख मीठा एक॥ ३१९॥
ज्यौं घटि आतम एक है, ऐसे हूंहि असंख।
भरि भरि राखै राम रस, दादू एकै अंक॥ ३२०॥
ज्यौं ज्यौं पीवै राम रस, त्यौं त्यौं बढ़ै पियास।
ऐसा कोई एक है, विरला दादू दास॥ ३२१॥
राता माता राम का, मतिवाला मैमंत।
दादू पीवत क्यौं रहै, जे जुग जांहिं अनंत॥ ३२२॥
दादू निर्मल जोति जल, वरिखा बारहमास।
तिहिं रसि राता प्राणिया, माता प्रेम पियास॥ ३२३॥
रोम रोम रस पीजिये, एती रसना होइ।
दादू प्यासा प्रेम का, यौं बिन तृप्ति न होइ॥ ३२४॥
तन गृह छाड़ै लाज पति, जब रसि माता होइ।
जब लग दादू सावधान, कदे न छाड़ै कोइ॥ ३२५॥

---

३२०—घटि=अन्तःकरण।

३२१—पियास=प्यास, चाह।

३२२—मैमंत=मस्त हाथी की तरह।

३२३—निर्मल जोति जल, वरिषा बारहमास=माया अविद्यादिदोष रहित निर्मल शुद्ध चेतन रूपी जल, जिसकी वर्षा बारहमास अनवरत होती ही रहती है। राता=अनुरक्त, हुआ। माता=मस्त।

३२५—भावार्थ—जब साधक आत्मानन्दरस की प्राप्ति के लिये दीवाना हो उठता है तभी

आंगणि एक कलाल के, मतिवाला रस मांहिं ।
दादू देख्या नैन भरि, ताकै दुविधा नांहिं ॥ ३२६ ॥
पीवत चेतन जब लग, तब लग लेवै आइ ।
जब माता दादू प्रेम रस, तब काहे कौं जाइ ॥ ३२७ ॥
दादू अंतरि आतमा, पीवै हरिजल नीर ।
सौंज सकल ले उद्धरै, निर्मल होइ सरीर ॥ ३२८ ॥
दादू मीठा राम रस, एक घूंट करि जांउं ।
पुगण न पीछै कौं रहै, सब हिरदै मांहिं समांउं ॥ ३२९ ॥

---

संसार को लाज व शरीर के स्वामित्वरूपी अध्यास का परित्याग करता है। जब तक शरीर के अध्यास तथा संसार की लाज की ओर सावधान है उधर वृत्ति लगाये हुये हैं तबतक शरीर का अध्यास व लोकव्यवहार का परित्याग कभी संभव नहीं है।

३२६—भावार्थ—जैसे कलाल=मद्य बेचने वाले के आंगण=घर में मद्य पीनेवाले सभी जाति के एकत्रित होजाते हैं, उनमें उस समय भिन्नभाव नहीं होता, इसी तरह ब्रह्म व्यापक चेतनरूपी कलाल या स्वस्वरूपरूपी कलाल के आंगण अन्तःकरण में स्वरूपपरिचयरूपी रस पान कर मन, इन्द्रियें, अन्तःकरणचतुष्टय सब तृप्त होजाते हैं। इस तरह जो साधक अपने स्वरूप को नैन भरि=तृप्त हो देखलेता है उसके फिर दुविधा=द्वैतवृत्ति नहीं रहती।

३२७—भावार्थ—जब तक स्वस्वरूप की रसपान के अवलोकन की कुछवासना है तब तक उसीकी साधना में लगा रहे जब उसी में मतवाला होजाय—अपना अस्तित्व भूल जाय तब फिर वृत्ति को कहां आना जाना है ?

३२८—सौंज सकल ले उधरै, निर्मल होइ शरीर = बाह्य आभ्यन्तर इन्द्रियसमूह अन्तःकरण उनको अन्तमु ख व समाधिस्थ कर, उनको वासनारहित बना उनका उद्धार कर लेता है तथा शरीर—स्थूलसूक्ष्म निर्मल होता है।

३२९—पुगण=फुंहार, लघु बूंद।

चिड़ी चंच भरि ले गई, नीर निघटि नहिं जाइ।
अैसा वासण नां किया, सब दरिया मांहिं समाइ ॥ ३३० ॥

दादू अमली राम का, रस बिन रह्या न जाइ।
पलक एक पावै नहीं, तबहि तलफि मरि जाइ ॥ ३३१ ॥

दादू राता रामका, पीवै प्रेम अघाइ।
मतिवाला दीदार का, मांगै मुक्ति बलाइ ॥ ३३२ ॥

उज्जल भवरा हरि कवल, रस रुचि बारह मास।
पीवै निर्मल बासना, सो दादू निज दास ॥ ३३३ ॥

नैनहुं सौं रस पीजिये, दादू सुरति सहेत।
तन मन मंगल होत है, हरि सौं लागा हेत ॥ ३३४ ॥

पीवै पिलावै राम रस, माता है हुसियार।
दादू रस पीवै घणा, औरूं कूं उपगार ॥ ३३५ ॥

---

३३०—दरिया = समुद्र। निघटि=कम, थोड़ा।

दृष्टान्त—*गुरु दादू को दरस करि, अकबर कियो सम्वाद।*
*साख सुनाइ कबीर की, ब्रह्म सु अगम अगाध ॥*

३३१—अमली=व्यसनी। रस बिन = परिचयरूपी रस बिना। तलफि=तड़फ।

३३२—अघाइ=तृप्त होकर।

३३३—उजल भंवरा=शुद्ध हृदय। हरि कवल रस=स्वस्वरूपी कँवल रस। निर्मल वासना = निष्काम भावना से।

३३४—नैनहु सो रस पीजिये = विवेक विचार-रूपी नेत्रों से आत्मरस का पान करिये। सुरति सहित=प्रेम श्रद्धामय वृत्ति द्वारा। इसी से तन मन का मंगल उद्धार है।

नाना विधि पिया राम रस, केती भांति अनेक।
दादू बहुत बमेक सौं, आतम अविगत एक ॥ ३३६ ॥
परचै का पै प्रेमरस, जे कोई पीवै।
मतिवाला माता रहै, यौं दादू जीवै ॥ ३३७ ॥
परचै का पै प्रेमरस, पीवै हित चित लाइ।
मनसा वाचा करमना, दादू काल न खाय ॥ ३३८ ॥
परचै पीवै राम रस, जुगि जुगि अस्थिर होइ।
दादू अविचल आतमा, काल न लागै कोइ ॥ ३३९ ॥
परचै पीवै रामरस, सो अविनासी अंग।
काल मीच लागै नहीं, दादू सांई संग ॥ ३४० ॥
परचै पीवै रामरस, सुख मैं रहै समाइ।
मनसा वाचा करमना, दादू काल न खाइ ॥ ३४१ ॥
परचै पीवै राम रस, राता सिरजन हार।
दादू कुछ व्यापै नहीं, ते छूटे संसार ॥ ३४२ ॥

---

३३६—नानाविधि पिया राम रस = योग, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि विविध साधनों से आत्मरस का पान किया। बहुत बमेक सों, आतम अविगत एक = अनेक साधनों द्वारा उस अविगत एक आत्मा का निश्चय किया।

३३७—पै = पय। जीवै = जीवनमुक्त के सुख का अनुभव करे।

३३८—दादू काल न खाइ = काल के अंगी कामादि तथा स्वयं कृतान्त उसको नहीं खा सकते हैं।

३३९—दादू अविचल आत्मा, काल न लागे कोइ = अन्तःकरण की स्थिरवृत्ति से जिसने परचै का रसपान किया है उसको फिर किसी प्रकार के काल का डर नहीं है।

३४२—व्यापै = असर न करे, प्राप्त न हो।

अमृत भोजन राम रस, काहे न बिलसै खाइ ।
काल बिचारा क्या करै, रमि रमि राम समाइ ॥ ३४३ ॥

सजीवन

दादू जीव अजा बिघ काल है, छेली जाया सोइ ।
जब कुछ बस नहिं कालका, तब मीनी का मुख होइ ॥ ३४४ ॥
मन लौरू के पंख है, उनमन चढै अकास ।
पगरहि पूरे साच के, रोपि रह्या हरि पास ॥ ३४५ ॥
तन मन बिरख बबूल का, कांटे लागे सूल ।
दादू माषण ह्वै गया, काहू का अस्थूल ॥ ३४६ ॥

३४३—अमृत भोजन रामरस=मानव जीवन में स्वस्वरूपरूपी रामरस उसका अनुभव करना यही अमृतभोजन है । विलसै खाइ = उपभोग करे, अंगीकर करे, पचावे । इस तरह जो साधक परिचय प्राप्त कर लेता है उसको फिर कोई काल कृतान्त रूप, काम क्रोधादि रूप, वासना रूप नहीं खा सकता ।

३४४—भावार्थ—अविद्यायुक्त जीव बकरीसम है, मृत्यु व्याघ्ररूप है । वह व्याघ्ररूप काल छेली=जीव के पूर्वजन्म के विविध कर्मों से ही बना है, अर्थात् अविद्याबद्ध जीव से ही काल उत्पन्न हुआ है । जब जीव मल विक्षेप आवरण के बन्धनों से मुक्त हो जाय, शुद्धस्वरूप में आजाय तब उस काल का कोई बस नहीं चलता ।

३४५—भावार्थ—लोरु=ऊंट उसके पंख जैसे अक्रिय हैं उसी तरह जिसका मन वासना के चांचल्य से सर्वथा मुक्त हो गया स्थिर हो गया तब वह मन उन्मनीवृत्ति द्वारा आकाशवत् व्यापक ब्रह्म के स्थान तक चढ जाता है चला जाता है । सत्य की प्राप्ति के दृढ़ निश्चयरूप पैर हरि के पास रोपकर स्थिर हो जाता है ।

३४६—भावार्थ—स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर का संघात है ये ही बबूल के वृक्ष के समान है । उसमें सकाम कर्म तथा संशयरूपी अनन्त कांटे हैं । किसी साधकविशेष ने ही

दादू संखा सबद है सुनहा संसा मारि।
मन मींडक सूं मारिये, संका सरप निवारि ॥ ३४७ ॥
दादू गांभी ज्ञान है, भंजन है सब लोक।
राम दूध सब भरि रह्या, ऐसा अमृत पोष ॥ ३४८ ॥
दादू झूठा जीव है, गढिया गोविंद बैन।
मनसा मूंगी पंख सौं, सूरज सरीखे नैन ॥ ३४९ ॥

साधना द्वारा इस स्थूल संघात का अध्यास परित्याग कर तथा मनका चांचल्य निवारण कर इनको भाषणवत् निर्द्वन्द्वरूप में बदल लिया वे ही उनके कंटकों के क्लेश से मुक्त हुए हैं।

३४७—भावार्थ—संषा सुशा शब्द है संशयरूपी श्वान को यह मार देता है, यहां विरोधी रूपक है। आत्मपरिचयपरक शब्द हैं; वे संशयरूप मिथ्याज्ञान का निवारण करते हैं। इसी तरह दूसरा विरोधाभास कह रहे हैं–शंकारूपी सर्प को शुद्ध स्थिर मनरूपी मींढक से मार देना चाहिये।

३४८—शुद्ध आत्मज्ञान है वह भेड है; चतुर्दश लोक हैं वे वर्तन हैं; रामभक्ति, आत्मचिन्तन रूपी दूध उस भेड से दूह कर सब लोकका=अशेष शरीर ग्राम का अमृतवत पोषण किया।

३४९—जीव संज्ञा चेतन को यह झूठ है या गर्भ में किये हुये कोल को पूरा न करने से यह देहधारी झूठा है। गोविन्द बैन=महावाक्यादि उपदेशवाक्य हैं वह गढ है। म सा=वृत्ति है वही कीड़ी है। सत्यनिश्चय ही इस कीडी के पंख हैं वृत्ति में आत्मा का ज्ञान विज्ञान वही इस कीडी के सूर्य सदृश नैन है जिससे वह उस आत्मारूपी गढ में प्रवेश पाता है।

**साँई दीया दत घणां, तिस का वार न पार ।**
**दादू पाया राम धन, भाव भगति दीदार ॥ ३५० ॥**

**इति परचै कौ अंग संपूर्ण ॥ ४ ॥**

३५०—साँई दिया दत्त घणा = आत्मनिश्चय प्राप्त हुआ तब शील, सन्तोष, सत्य, दया, स्नेह आदि अनेक तरह दत्त धन घणा=मुकता प्राप्त हुआ । दादूजी महाराज कहते हैं, परिचय द्वारा अखूट आत्मधन की प्राप्ति हुई उसी से भाव भक्ति तथा दर्शन का फल मिल रहा है ।

❀ इति परचै को अंग सम्पूर्ण ❀

# अथ जरणा को अङ्ग ॥ ५ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
को साधू राखै रामधन, गुर वाइक बचन बिचार ।
गहिला दादू क्यौं रहै, मरकत हाथ गंवार ॥ २ ॥
दादू मनही मांहीं समझि करि, मनहीं मांहि समाइ ।
मनहीं मांहैं राखिये, बाहरि कहि न जणाइ ॥ ३ ॥
दादू समझि समाइ रहु, बाहरि कहि न जणाइ ।
दादू अद्भुत देखिया, तहं नां को आवै जाइ ॥ ४ ॥
कहि कहि क्या दिखलाइये, सांई सब जाणै ।
दादू प्रगट का कहै, कुछ समझि सयाणै ॥ ५ ॥

---

२—गुरू वाइक वचन विचार=सद्गुरु के आत्मोपदेशरूपी वचनों को कोई एक साधु पुरुष ही धारण कर तज्जन्य प्राप्त रामधन को रक्षित रख सकता है । गंवार= मूर्ख के हाथ में गहिला=गई हुई मरकत मणि कैसे सुरक्षित रह सकती है ।

दृष्टान्त—को साधू राखै रामधन—*नृप को चाकर खागयो, टांग सुसा की एक ।*
*त्रास दई सुनस्यो नहीं, साध लियो सुठ देख ॥ १ ॥*
गहिला दादू क्यूं रहै—*साध वस्त दई जाट को, हुकामें करि प्यारि ।*
*जरी नहीं वकणै लग्यो, और न लई उतारि ॥ १ ॥*

४—समझि समाइ रहु=समझमें ही विचार में समझे हुये उस उपदेश को रखे, धारण करे ।

५—सयाणै=चतुर, सावधान ।

दृष्टान्त—कहि० कहि०—*देखत वकली संत कों, मैं किमि होहुं प्रसिद्ध ।*
*लुक्यो जाइ आये प्रभु, तव खंखारो किद्ध ॥ १ ॥*

**दादू मन ही माँहैं ऊपजै, मनही माँहिं समाइ ।**
**मनही माँहैं राखिये, बाहरि कहि न जणाइ ॥ ६ ॥**
**लै विचार लागा रहै, दादू जरता जाइ ।**
**कबहूं पेट न आफरै, भावै तेता खाइ ॥ ७ ॥**
**जनि खोवै दादू रामधन, हिरद राखि, जिनि जाइ ।**
**रतन जतन करि राखिये, चिंतामणि चित लाइ ॥ ८ ॥**
**सोइ सेवग सब जरै, जेती उपजै आइ ।**
**कहि न जणावै और कौं, दादू माँहि समाइ ॥ ९ ॥**

---

६—मनही मांहि ऊपजै = अपने आत्मस्वरूप की अनुभूति शुद्ध मन में उत्पन्न होती है ।

*मुहमदजी अरु आइसा, रहे वणिक गृह हेठ ।*
*अशुच रूई दई कातकै, नेम निभायो ठेढ ॥ १ ॥*

७—लै = ध्यानवृत्ति से । जरता जाइ = साधन की प्राप्त सफलता को आत्मसात् करता जाय । उसके अहंकार को उत्पन्न न होने दे । कबहूं पेट न आफरै=उस साधक के जो जरणा करता है कभी अहंकार रूपी आफरे से पेट नहीं आफरता ।

दृष्टान्त—*सींग नृपति के सीसपै, और न जाणे कोइ ।*
*नाई पाना मैं कही, खाना में धुनि होइ ॥ १ ॥*

८—जिन खोवै=मत नष्ट करे । रिदै राख = अन्तःकरण में ही स्थिर कर । जतन=उपाय ।

दृष्टान्त—*रतन मुस्यो बहु मौल को, लुक्यो जु मरदा माँहिं ।*
*चोट सहारी सेलकी, तोपरि कसक्यो नाँहिं ॥ १ ॥*

९—सोई सेवग सब जरै = साधना कालकी सिद्धि को वही सेवग सबकी सब पचा सकता है जो कभी तज्जन्य अहंकार की वृत्ति उत्पन्न न होने दे । ये छः पदार्थ महात्माओं ने झरणा करने अर्थात् पचाने को कहे है । १ धन, २ आनन्द, ३ प्रकाश आत्मज्ञान, ४ प्रेम रस, ५ गुण कर्म शुभ कर्म, ६ परचै आत्मसाक्षात्कार । 'सब जरै' से ये छहों समझने चाहिये ।

सोई सेवग सब जरै, जेता रस पीया।
दादू गूझ गंभीर का, परकास न कीया ॥ १० ॥
सोई सेवग सब जरै, जे अलख लखावा।
दादू राखै रामधन, जेता कुछ पावा ॥ ११ ॥
सोई सेवग सब जरै, प्रेम रस खेला।
दादू सो सुख कस कहै, जहं आप अकेला ॥ १२ ॥
सोई सेवग सब जरै, जेता घटि परकास।
दादू सेवग सब लखै, कहि न जणावै दास ॥ १३ ॥
अजर जरै रस ना झरै, घटि मांहिं समावै।
दादू सेवग सो भला, जे कहि न जणावै ॥ १४ ॥
अजर जरै रसना झरै, घट अपना भरि लेइ।
दादू सेवग सो भला, जारै जाण न देइ ॥ १५ ॥

---

१०—रस = नामस्मरण, स्वरूपचिन्तन। गूंझ गंभीर का=गुह्य अन्तःकरणनिष्ठ वृत्तिका। परकास = व्यक्त, प्रगट।

११—अलख लखावा=अदृश्य अगोचर आत्मस्वरूप का अनुभव किया।

१२—सो सुख कस कहै=स्वानुभूति का सुख कहे किससे जब कि एक भिन्न दूसरे की सत्ता नहीं है।

१३—जेता घट परकास=अन्तःकरण में जितना सतोगुण उत्पन्न हो सब जरा जाय। उपर्युक्त साखी ८ में धन की ९ में गुण कर्म की, १० में प्रेम रस की, ११ में परचै अनुभव की, १२ में प्रकाश आत्मज्ञान की जरणा का निर्देश किया है।

१४—गुह्य जरणा—अजर जरै रस ना झरै, घट मांहि समावे=अजर आत्म परिचय रस तथा शरीर का शुक्रधातु उन दोनों को धैर्य तथा योगसाधन द्वारार जरै=पचावै। शुक्र को स्खलित न होने दे परिचयजन्म रस का अहंकार न आने दे।

१५—अजर=शुक्रधातु व आत्मपरिचय। जरै = जीरण करै, पचावे। जारै=आत्मसात् करले।

अजर जरै रस ना झरै, जेता सब पीवै।
दादू सेवग सो भला, राखै रस, जीवै॥ १६॥
अजर जरै रस ना झरै, पीवत थाकै नाहिं।
दादू सेवग सो भला, भरि राखै घट माँहिं॥ १७॥

साधु महिमा

जरणा जोगी जुगि जुगि जीवै, झरणा मरि मरि जाइ।
दादू जोगी गुरमुखी, सहजैं रहै समाइ॥ १८॥
जरणा जोगी जगि रहै, झरणा परलै होइ।
दादू जोगी गुरुमुखी, सहजि समाना सोइ॥ १९॥
जरणा जोगी थिर रहै, झरणा घटि फूटै।
दादू जोगी गुरमुखी, काल थैं छूटै॥ २०॥

---

१६—राखै रस = आत्मसाक्षात्कार व नामस्मरणरूप रस की रक्षा करे उसके साधन-क्रम को शिथिल व भंग न होने दे, इसी तरह शुक्रधातु की साधना द्वारा ऊर्ध्वरेतस् रूप में रक्षा करे उसे पुनः अधोरेतस की सूरत में न बदलने दे।

१८—जरणा जोगी जुग जुग जीवै=जो साधक उपर्युक्त षट् प्रकार की जरणा कर लेता है वह जुगि जुगि जीवै=मुक्त होजाता है, झरणा मरि मरि जाय=जो साधक उपर्युक्त षट् प्रकार की जरणा नहीं कर सकता, उनके अहंकार से मुक्त हो जाता है उसके वासनामय कर्मों से जीवन मरण का अनुबन्ध चलता ही रहता है।

१९—जोगी जग रहै=जरणा की चाहवाला साधक सावधान रह अपनी जरणा को स्खलित नहीं होने देता। झरणा परलै होइ=अहंकारी साधक की साधना का परलै=विनाश होजाता है।

२०—थिर=स्थिर, टिकाऊ। कलथैं छूटै = जन्म मृत्यु काम क्रोधादिकाल से छुटकारा पावे।

जरणा जोगी जगपती, अविनासी अवधूत।
दादू जोगी गुरमुखी, निरंजन का पूत ॥ २१ ॥
जरै सु नाथ निरंजन बाबा, जरै सु अलख अभेव।
जरै सु जोगी सबकी जीवनि, जरै सु जगमैं देव ॥ २२ ॥
जरै सु आप उपावन हारा, जरै सु जगपति सांई।
जरै सु अलख अनूप है, जरै सु मरणा नांहीं ॥ २३ ॥
जरै सु अविचल राम है, जरै सु अमर अलेख।
जरै सु अविगत आप है, जरै सु जग में एक ॥ २४ ॥
जरै सु अविगत आप है, जरै सु अपरंपार।
जरै सु अगम अगाध है, जरै सु सिरजनहार ॥ २५ ॥
जरै सु निज निराकार है, जरै सु निज निराधार।
जरै सु निज निर्गुण मई, जरै सु निज तत सार ॥ २६ ॥
जरै सु पूरण ब्रह्म है, जरै सु पूरण हार।
जरै सु पूरण परम गुरु, जरै सु प्राण हमार ॥ २७ ॥

---

२१—जरणा जोगी जगपति=षट् प्रकार की जरणा वाला साधक जगपति=ईश्वर के समान है।

२२—जरै सु नाथ निरंजन बाबा=जो उक्त षड्विध जरणासम्पन्न साधक है वह नाथ—सबका स्वामी है, वह निरंजनसम् है। वह बाबा=व्यापक अधिष्ठान के समान है। इस साखी से ३० वीं साखी तक जरणा का महत्व व्यक्त किया है जरणाजन्य ब्राह्मीभाव का इनमें विशद् निरूपण है।

२३—उपावनहारा = रचने वाला। अनूप=अद्भुत, असदृश, निरुपम।

२४—अविचल=माया अविद्यासंग के चांचल्य से रहित। अविगत=विगत विवरण रहित, अवर्णनीय।

दादू जरै सु जोति सरूप है, जरै सु तेज अनंत।
जरै सु झिलिमिलि नूर है, जरै सु पुंज रहंत ॥२८॥
दादू जरै सु परम प्रकाश है, जरै सु परम उजास।
जरै सु परम उदीत है, जरै सु परम विलास ॥२९॥
दादू जरै सु परम पगार है, जरै सु परम विगास।
जरै सु परम प्रभास है, जरै सु परम निवास ॥३०॥

परमेश्वर की दयालुता

दादू एक बोल भूले हरी, सु कोई न जाणै प्राण।
औगुण मनि आणै नहीं, और सब जाणै हरि जाण ॥३१॥
दादू तुम जीवों के औगुण तजे, सु कारण कौंण अगाध।
मेरी जरणा देखि करि, मति को सीखै साध ॥३२॥

२८—पुंजरहंत=सर्वदा रहने वाला प्रकाशसमूह, ज्योतियों की ज्योति।

२९—परम उजास=अति निर्मल, अति स्वच्छ ज्योति। उदीत=उजाला।

३०—पगार, विगास, प्रभास, ये तीनों दिव्य ज्योति के लिये प्रयुक्त हैं।

३१—भावार्थ—एक बोल–एक बात परमेश्वर भूले हैं उसको सामान्य जीव नहीं जानते, नहीं देखते। वह कौनसी बात है? परमेश्वर प्राणी के अवगुण=दोष अपराध हैं उनको मनमें आणै नहीं=रखता नहीं। वह ऐसा न जानने के कारण से करता हो सो बात नहीं, वह हमारी सब भूलों, सब दोषों, सब अपराधों को जानता देखता है फिर भी वह हमारे सब दोषों को जरा जाता है यह जरणा उसी में है।

दृष्टान्त—मूसे साहब सों कही, अनपूर्ण व्रत लेऊं।
मईन्द्रिय संग देखिके, कही याहि नहिं देऊं ॥ १ ॥

३२—पूर्वार्ध में भक्त या साधक परमेश्वर से पूछते हैं कि आपने जीवों के अवगुण पचाये यह क्यों? किस कारण से? उत्तरार्ध में उत्तर देते हैं–मेरी जरणा को देख मेरी इस

धारणा

**पवना पानी सब पिया, धरती अरु आकास।**
**चंद सूर पावक मिले, पंचौं एक गरास ॥ ३३ ॥**
**चौदह तीन्यूं लोक सब, ठूंगे सासैं सास।**
**दादू साधू सब जरैं, सतगुर के बेसास ॥ ३४ ॥**

**इति श्री जरणा को अङ्ग सम्पूर्ण ॥**

---

मति=बुद्धि का साध=साधु साधक भी अनुकरण करे, इसलिये मैंने जीवों के अवगुण पचाये हैं अर्थात् साधक या श्रेष्ठ पुरुषों को भी दूसरों के अवगुणों को पचाना चाहिये।

३३-३४—भावार्थ—पवन की अनासक्ति, पानी की शीतलता, पृथ्वी की क्षमता, आकाश का असंगपन, चन्द्रमा की सौम्यता, सूर्य का सौर्य, अग्नि की तेजस्विता ये सब गुण हमने जरा लिये हैं। पंचों एके गरास=पाचों भौतिक इन्द्रिय विषयों को भी हमने अन्तर्वृत्ति से एक ही ग्रास कर लिया है तीन लोक चौदह भवनों के गुणों को तथा उनकी वासनाओं को प्राण का स्थैर्य कर ठूंगे=जारण कर लिये हैं। इस तरह सद्गुरु के उपदेश के दृढ विश्वासी साधक सबकी जरणा करने में समर्थ होते हैं। अतः गुरु-उपदेश में दृढ विश्वास कर उनके बताये साधनमार्ग द्वारा जरणा-शक्ति उत्पन्न की जाय।

*इति जरणा को अंग संपूर्ण*
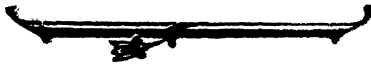
# अथ हैरान को अङ्ग ॥ ६ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरुदेवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
रतन एक बहु पारिखू, सब मिलि करैं विचार ।
गूंगे गहिले बावरे, दादू वार न पार ॥ २ ॥
केते पारिख जौहरी, पंडित ज्ञाता ध्यान ।
जाण्या जाइ न जाणिये, का कहि कथिये ज्ञान ॥ ३ ॥
केते पारिख पचि मुये, कीमति कही न जाइ ।
दादू सब हैरान हैं, गूंगे का गुड़ खाइ ॥ ४ ॥
सबही ज्ञानी पंडिता, सुरनर रहे उरझाइ ।
दादू गति गोविंद की, क्यौं ही लखी न जाइ ॥ ५ ॥

---

२—रतन एक बहु पारिखू = आत्मपरिचय या सत्य ज्ञानरूपी रत्न एक है पर उसकी परीक्षा करने वाले नाना मतवादी हैं, वे विभिन्न मतवादी उसकी यथार्थ स्थिति को न समझ गूंगे हो रहे हैं उसके वारपार को ठीक नहीं समझ सके हैं ।

३—जाण्या जाइ न जाणिये = जानने में साधन द्वारा सामर्थ्यवान है उन से भी सम्यक्तवा जाना नहीं जाता । का कहि कथिये ज्ञान=योग भक्ति, वैराग्य, ज्ञान, आदि में से इसके द्वारा आत्मोपलब्धि होती है यह निश्चय नहीं कहा जाता अर्थात् ये सभी साधन उसकी प्राप्ति के हैं ।

४—पचिमुये = कह कह थके । कीमत = मूल्य, इयत्ता । हैरान=स्तंभित, चकितगति । गूंगे का गुड़ खाइ=अभिप्राव यह है कि आत्मानुभूति कहने की बात नहीं है वह केवल अनुभूति की ही बात है जैसे गूंगे के— गुड़ का स्वाद शब्द द्वारा व्यक्त नहीं किया जाता ।

५—सबही ज्ञानी पंडिता = केवल शास्त्रीय विषयों के ज्ञाता पंडित तथा अविद्यालेशांस व आवरणदोषयुक्त ज्ञानी ये सब ।

जैसा है तैसा नांउ तुम्हारा, ज्यौं है त्यौं कहि सांई।
तूं आपै जाणै आपकौं, तहं मेरी गमि नांहीं ॥ ६ ॥

केते पारिख अंत न पावैं, अगम अगोचर मांहीं।
दादू कीमति कोइ न जाणै, खीर नीर की नांई ॥ ७ ॥

जीव ब्रह्म सेवा करै, ब्रह्म बराबरि होइ।
दादू जाणै ब्रह्म को, ब्रह्म सरीखा सोइ ॥ ८ ॥

वार पार को ना लहै, कीमति लेखा नांहिं।
दादू एकै नूर है, तेज पुंज सब मांहि ॥ ९ ॥

पीव पिछान

हस्त पांव नहिं सीस मुख, श्रवण नेत्र कहु कैसा।
दादू सब देखै सुणै, कहै गहै है ऐसा ॥१०॥

पाया पाया सब कहैं, केतक देहुं दिखाइ।
कीमति किनहूं ना कही, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥११॥

---

६—तहं मेरा गम नांहीं=जहां इन्द्रिय अन्तःकरणादि की पहुंच नहीं है वहां अहंकारादि वृत्ति से युक्त मेरी भी पहुंच नहीं है।

७—केते पारिष = अपूर्ण पारषी। मांहीं = अन्तःकरण में ही है।

८—जीव ब्रह्म सेवा करे=जीव आवरण, मल, विक्षेप से आवृत है, उसको अपने इन दोषों की निवृत्ति के लिये प्रयास करना चाहिये, यह प्रयास ही ब्रह्म की सच्ची सेवा है जो साधक को कर्त्तव्य है।

९—एके नूर है = व्यापक समष्टि चेतन शुद्ध है, एक है।

११—केतक देहु दिखाइ=कई कहते हैं हम उसको दिखा सकते हैं।

अपना भंजन भरि लिया, उहां उता ही जाणि ।
अपणी अपणी सब कहैं, दादू विड़द बखाणि ॥१२॥
पार न देवै आपणा, गोप गूझ मन मांहिं ।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जांहिं ॥१३॥
गूंगे का गुड़ का कहूं, मन जानत है खाइ ।
त्यौं राम रसाइण पीवतां, सो सुख कह्या न जाइ ॥१४॥
दादू एक जीभ केता कहूं, पूरण ब्रह्म अगाध ।
वेद कतेबां मित नहीं, थकित भये सब साध ॥१५॥
दादू मेरा एक मुख, कीरति अनंत अपार ।
गुण केते परिमित नहीं, रहे विचारि विचारि ॥१६॥
सकल सिरोमणि नांउ है, तूं है तैसा नांहिं ।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जांहिं ॥१७॥
दादू केते कहि गये, अंत न आवै ओर ।
हमहूं कहते जात हैं, केते कहसी और ॥१८॥
दादू मैं का जानूं का कहूं, उस बलिये की बात ।
क्या जानूं क्यौं ही रहै, मो पै लख्या न जात ॥१९॥

---

१२—भंजन भरिलिया=अपना अपना जिसने अन्तःकरण में दृढ़ निश्चय कर लिया । उहां=वहां । उता ही = उतना ही, वैसा ही । विड़द=प्रशंसा ।

१३—पार=अन्त । गूझ=गुह्य ।

१५—वेद कतेबा मित नहिं=वेद कुरान आदि से जिनका पार नहीं पाया गया । थकित=थक गये ।

१६—परिमित = सीमा, वार पार ।

१९—वलिये = जिसकी बलिहारी जाय उस परमेश्वर की ।

दादू किते चलि गये, थाके बहुत सुजान।
बातौं नांव न नीकलै, दादू सब हैरान ॥२०॥
ना कहिं दिट्ठा ना सुण्या, ना कोइ आषणहार।
ना कोइ उत्तौं थी फिर्‍या, नां उर वार न पार ॥२१॥
नहिं मृतक नहिं जीवता, नहिं आवै नहिं जाइ।
नहिं सूता नहिं जागता, नहिं भूखा नहिं खाइ ॥२२॥
न तहां चुप ना बोलणां, मैं तैं नाहीं कोइ।
दादू आपा पर नहीं, न तहां एक न दोइ ॥२३॥
एक कहूं तो दोइ हैं, दोइ कहूं तो एक।
यौं दादू हैरान है, ज्यौं है त्यौंहीं देख ॥२४॥

दृष्टान्त—*देख गर्व प्रहलाद को, हरि मेट्यो द्विज होइ।*
*डारि डाग पृथ्वी परै, वलि हर लीन्हो सोइ ॥ १ ॥*
*इन्द्रादिक गर्वे अमर, तब हरि धरि नष रूप।*
*वायु अग्नि गये देखने, लजत भये सुर भूप ॥ २ ॥*

२०—बातौं नाव न नीकलै=केवल वाचिक पद्धति से उसका यथार्थ कथन नहीं किया जा सकता।

२१—भावार्थ—उसको स्थूल वस्तु की तरह कहीं नहीं देखा, न उसकी इयत्ता सुनी, न उसका यथार्थ कहने वाला है। जो साधक तद्रूप की प्राप्ति को पहुंचे वे वापिस कथन करने की स्थिति में नहीं लौटते। न उसका वार है न उसका पार है।

२३—न तहां चुप न बोलणां=जहां आन्तरिक प्रवृत्तियों का अभाव न होते हुये भी मौन धारण नहीं है। न वहां साधनाविहीन साक्षात् अनुभव रहित या बहिः साधनों का प्रधान प्रवृत्ति रूप उपदेश का कथन होता है। अथवा—मौन व प्रवचन इन्द्रिय-व्यापार है ब्रह्म निरिन्द्रिय है अतः वहां यह व्यापार साध्य नहीं है। आपा पर नहीं= अहंकार तथा तदुत्पन्न मैं तैं वृत्ति वहां नहीं है।

२४—भावार्थ—एक कहूं यानी यदि उसका मैं निरूपण करता हूं तो मैं तथा वह दो प्रतीत

**देखि दिवाने ह्वै गये, दादू खरे सयान।**
**वार पार कोइ ना लहै, दादू है हैरान ॥२५॥**

पतिव्रत निष्काम

**दादू करणहार जे कुछ किया, सोई हूं करि जाणि।**
**जे तूं चतुर सयानां जानराइ, तौ याही परवाणि ॥२६॥**
**दादू जिन मोहनि बाजी रची, सो तुम्ह पूछौ जाइ।**
**अनेक एकथैं क्यौं किये, साहिब कहि समझाइ ॥२७॥**

**इति हैरान को अंग सम्पूर्ण ॥ ६ ॥**

---

होते हैं। चेतन सामान्य की स्थिति से समष्टि व्यष्टि का कथन किया जाय तो दो के कथन में एकत्व का निरूपण होता है। ऐसे कथन में अदोषता नहीं आती। अतः वह जैसा है उसी रूप में अपने को विलय कर देना।

२५—दादू खरे सयान=जो अपने को खरे=पूरे, सयान=सावधान समझे हुये हैं वे भी दीवाने हो रहे हैं।

२६—२७—किसीके प्रश्नोत्तर में कही गई हैं। पहली साखी दादूजी से तुम कौन हो, इस प्रश्न के उत्तर में तथा दूसरी साखी ब्रह्म एक है तो अनेकों रूपों में व्यक्त क्यों हुवा इसके उत्तर में कही गई है। अर्थ दोनों के स्पष्ट हैं।

२६—हूं करि=स्वीकार कर, मान। जानराइ=जानने जैसा है तो। परवाणि=प्रमाण है, पर्याप्त है।

दृष्टान्त—*वादी पूछी कौण हो, गुरु दादू को आइ।*
*या साखी उत्तर दियो, समझि गयो सुख पाइ ॥ १ ॥*

२७—दृष्टान्त—*एक वादी संसार की, उत्पति पूछी आइ।*
*जांत उत्तर वाको दियो, या साखी समझाइ ॥ १ ॥*

❀ हैरान को अंग सम्पूर्ण ६ ❀

# अथ लै को अङ्ग ॥ ७ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरुदेवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

दादू लै लागी तब जाणिये, जे कबहूं छूटि न जाइ ।
जीवत यौं लागी रहै, मूवां मंझि समाइ ॥२॥

दादू जे नर प्राणी लैगता, सोई गत ह्वै जाइ ।
जे नर प्राणी लैरता, सो सहजैं रहै समाइ ॥३॥

सब तजि गुण आकार के, निहचल मन ल्यौ लाइ ।
आत्म चेतन प्रेम रस, दादू रहै समाइ ॥४॥

तन मन पवना पंच गहि, निरंजन ल्यौ लाइ ।
जहं आत्म तहं परआत्मा, दादू सहजि समाइ ॥५॥

अर्थ अनुपम आप है, और अनरथ भाई ।
दादू ऐसी जानि कर, तासौं ल्यौ लाई ॥६॥

---

२—लै=अखंडाकार वृत्ति एक रस रहे । मूंवा मंझि समाई = शरीर की परिसमाप्तिपर व्यष्टि का समष्टि में विलय होजाय ।

३—लैगता = जिनकी वृत्ति लय रहित है, बाह्य विषयोन्मुख है । लैरता=लय वृत्ति की साधना में लगे हुये हैं ।

४—आकार = देह इन्द्रियादिक । आत्म=अन्तःकरण । चेतन = व्यष्टिगत चेतन ।

५—तन = शरीर । मन=अन्तःकरण चतुष्टय । पवना = प्राण । पंच=पाचों ज्ञानेन्द्रियां । गहि = स्थिर कर । जहं आत्म तहं परमात्मा=जहं शुद्ध अन्तःकरण में चिदाभास है वहीं परमात्मा चेतन का स्वरूप है ।

६—अर्थ=परम पुरुषार्थ । अनुपम=उपमा रहित । और अनर्थ भाई = और संसार के पदार्थों की प्राप्ति के लिये जो प्रयास किया जारहा है, वह बन्धन का कारण होने से सब अनर्थ है ।

ज्ञान भगति मन मूल गहि, सहज प्रेम ल्यौ लाइ ।
दादू सब आरंभ तजि, जनि काहू संगि जाइ ॥७॥

अगम संसार

पहली था सो अब भया, अब सो आगे होइ ।
दादू तीनौं ठौर की, बूझै बिरला कोइ ॥८॥

अध्यात्म

जोग समाधि सुख सुरति सौं, सहजैं सहजैं आव ।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव ॥९॥

---

७—ज्ञान भगति मन मूल गहि=अन्तःकरण शुद्ध कर सत्यासत्य का ज्ञान समझ दृढ़ भक्ति, दृढ़ निश्चय से मूल जो सत्य पदार्थ है उसको गहि—प्राप्त करने के लिये पूर्ण प्रयास कर। या ईश्वरप्राप्ति का मूल मन है अतः ज्ञान भक्ति से युक्त मनको गहि—स्थिर कर। आरंभ=सकाम कर्म तथा वासना। जनि=मत।

दृष्टान्त—*फकीरसौं औरति कह्यो, मोहि चूरी पहराइ ॥*
*सती करे संकल्प बहु, प्रातः दई कुतकाइ ॥ १ ॥*

८—पहली था सो अब भया=जिन वासनाओं के वशीभूत हो पिछले जन्म में जैसे काम किये उनके फलानुसार तो अब जन्म हुआ तथा फल भोग रहा है। अब सो आगे होइ=अब जिस तरह के कर्म में लगेगा उसके फलानुसार आगे फल भोगेगा। तीनों ठौर=भूत, वर्तमान, भविष्य। बूझै=जाने।

दृष्टान्त—*कही पातस्याह बीरबल, च्यार चीज दिखलाइ ॥*
*इत उत कहुँ हेरूं नहीं, जन वेश्या कठ शाह ॥१॥*

९—भावार्थ—योग की क्रियाओं से समाधिदशा तक धीरे-२ साधन सिद्धि से पहुंचा जाता है। ज्ञान से भी बाह्याभ्यन्तर साधनों के सफल होने में अन्तःकरण-शुद्धि, बुद्धिस्थैर्य तथा स्वरूपनिश्चय में समय लगता है। इहै भगति का=यही निष्काम प्रेमाभक्ति का रास्ता है वह मुक्ता—खुला हुआ द्वारा=दरवाजा है जिससे सहज ही आत्मा के महल में पहुंचा जा सकता है।

सहज सुंनि मन राखिये, इन दोन्यूं के मांहिं।
लै सुमाधि रस पीजिये, तहां काल भै नांहिं ॥१०॥

सुषिम मार्ग

किहिं मारग ह्वै आइया, किहिं मारग ह्वै जाइ।
दादू कोई नां लहै, केते करैं उपाइ ॥११॥

सून्यहि मारग आइया, सून्यहि मारग जाइ।
चेतन पैंडा सुरति का, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥१२॥

दादू पारब्रह्म पैंडा दिया, सहज सुरति लै सार।
मन का मारग मांहिं घर, संगी सिरजनहार ॥१३॥

---

१०—सुंनि=निर्विकल्प। सहज=निर्द्वन्द्व। इन दोनों अवस्थाओं में मन को लगावे। लै समाधि रस पीजिये=लयवृत्ति द्वारा समाधिस्थ हो आत्मरस का पान करिये।

११—इस साखी में प्रश्न है। गर्भ में चेतनकी स्थिति क्यों, और कैसे होती है इसमें शास्त्रीय विभिन्न मत हैं। विविध उपाय से भी इस भेद को वे समझ नहीं पाये हैं।

१२—इस साषी में ऊपर के प्रश्न का उत्तर दिया है। संसार के मानव अज्ञानावस्था में आते ही इसी अवस्था में जाते हैं। कोई सावधान साधक ही सुरतिवृत्ति द्वारा चेतन के ठीक मार्ग में प्रवृत्त होता है। यही मार्ग ठीक है। इसमें ध्यानावस्थित हो जिससे रास्ता तय हो।

दृष्टान्त—*एक फकीर रु पातशाह, सुरति हिये व्है जाय॥*
*हेठ पड़े अरु अधर के, बेर दिखाये आय॥१॥*

१३—भावार्थ—यह आत्मप्राप्ति का मार्ग उसीका दिखाया हुआ है सहज निर्विकल्प अवस्था में वृत्तिका स्थिर रहना यही सार है। यही मनका मार्ग है=मनकी स्थिर करने का रास्ता है। उसकी प्राप्ति का घर अपने ही भीतर है, उपर्युक्त रूप से स्थिरवृत्ति द्वारा चिन्तन करने ही से वह सिरजनहार साथी बनता है।

लै

राम कहै जिस ज्ञान सौं, अमृत रस पीवै।
दादू दूजा छाडि सब, लै लागी जीवै ॥१४॥
राम रसाइन पीवतां, जीव ब्रह्म ह्वै जाइ।
दादू आत्मराम सौं, सदा रहै ल्यौं लाइ ॥१५॥
सुरति समाइ सनमुख रहै, जुगि जुगि जन पूरा।
दादू प्यासा प्रेम का, रस पीवै सूरा ॥१६॥

अध्यात्म

दादू जहां जगत गुरु रहत है, तहां जे सुरति समाइ।
तो इनहीं नैनहुं उलटि करि, कौतिग देखै साइ ॥१७॥
अष्यूं पसए के पिरी, भिरे उल थौं मंझ।
जिते बेठो मां पिरी, निहारी दौ हंझ ॥१८॥

१४—राम कहैं जिस ज्ञान सौं=जिस ज्ञान विचार से आत्मप्राप्ति की चाह पैदा हो वहीं ज्ञान उत्तम है।

१५—रसांयन=नवीन जीवन बनाने वाली औषध। आत्मराम=अपने अधिष्ठान में। ल्यौं=अखंडाकारवृत्ति।

१७—समाइ=विलीन कर, स्थिर कर। सनमुख=सामने, उसी में। जुग जुग=जन्म जन्म, सतयुगादि। सूरा=इन्द्रिय मन निग्रह करने में सौर्य पौरुष दिखाने वाला।

१८—नैनहु=ज्ञान विचार के नेत्र। उलटि=आत्माभिमुखकर। कौतिग=व्यष्टि समष्टि-संयोग को।

१६—भावार्थ—नेत्र उस अपने स्वरूप को देखने के लिये आत्माभिमुख हो उसीकी ओर लग गये। जहां भीतर अपना अधिष्ठान चेतन है वहीं इन दो ज्ञान विचार के नेत्रों से उसका साक्षात्कार हो रहा है।

दादू उलटि अपूठा आप मैं, अंतरि सोधि सुजाण।
सो ढिग तेरी बावरे, तजि बाहेर की बाणि ॥१६॥
सुरति अपूठी फेरि करि, आतम मांहै आण।
लागि रहै गुरुदेव सौं, दादू सोइ सयांण ॥२०॥
जहां आत्म तहं राम है, सकल रह्या भरपूर।
अंतरि गति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवग सूर ॥२१॥

सूक्ष्म सौंज अरचा वंदगी

दादू अंतरि गति ल्यौ लाइ रहु, सदा सुरति सौं गाइ।
यहु मन नाचै मगन ह्वै, भावै ताल बजाइ ॥२२॥
दादू गावै सुरति सौं, बाणी बाजै ताल।
यहु मन नाचै प्रेम सौं, आगै दीन दयाल ॥२३॥

विरक्तता

दादू सब बातन की एक है, दुनियां तैं रहि दूरि।
सांई सेती संग करि, सहज सुरति लै पूरि ॥२४॥

---

१६—अपूठा=पीछा, उलटा। सोधि=तलाशकर, चिन्तनकर। ढिग=समीप, पास बावरे=बेजान। बांणि=आदत।

२०—आंण=लावो. लगाओ। गुरुदेव सौं=गुरुदेव के उपदेश से। सयांण=विचारशील।

२१—जँह आत्म=जहां शुद्ध अन्तःकरण है।

२२—सुरति=अखंडवृत्ति। गाइ=चिन्तनकर, ध्यान कर। भावै=भावनारूपी, श्रद्धारूपी

२२—सुरतिसौं=अखंडवृत्ति से। गावै=चिन्तन करे। बाणी=पराबाणी।

२३—सहज सुरति लै पूरि=निर्द्वन्द्व धारणवृत्ति में उसीको परिपूर्ण करके भरले।

दृष्टान्त—*साध रह्यो नृप बागमें, वतकां चुग गई हार॥*
*खर चढि के हेलो दियो, इनसों मिल है ख्वार ॥१॥*

अध्यात्म

दादू एक सुरति सौं सब रहैं, पंचौं उनमन लाग ।
यहु अनभै उपदेस यहु, यहु परम जोग वैराग ॥२५॥
दादू सहजैं सुरति समाइ ले, पारब्रह्म के अंग ।
अरस परस मिलि एक ह्वै, सनमुख रहिबा संग ॥२६॥

लय

सुरति सदा सनमुख रहै, जहां तहां लै लीन ।
सहज रूप सुमिरण करै, निहकर्मी दादू दीन ॥२७॥
सुरति सदा स्याबति रहै, तिन के मोटे भाग ।
दादू पीवै राम रस, रहै निरंजन लाग ॥२८॥

सूक्ष्म सौंज

दादू सेवा सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं लाइ ।
जहं अविनासी देव है, तहं सुरति बिना को जाइ ॥२९॥

विनती

दादू ज्यौं वै बरत गगन थैं टूटै, कहाँ धरणि कहां ठाम ।
लागी सुरति अंगथैं छूटै, सो कत जीवै राम ॥३०॥

---

२५—एक सुरति=ब्रह्माकारवृत्ति । यहु अनभै=यही अनुभूति है, परिचय है ।

२६—अंग=व्यापकतारूपी शरीर । सनमुख रहिवा=तन्निष्ठवृत्ति विचार ।

२७—जहाँ जहाँ लैलीन=जहाँ स्वस्वरूप प्रतिविम्बित है वहीं लववृत्ति से लीन होना ।

२८—स्यावति=अखंडित, निर्द्वन्द्व, निर्विकल्प । मोटे भाग=महान् प्रारब्ध ।

३०—वरत=नट की आकाशीय रस्सी । अंगथैं=चेतन अधिष्ठान से । छूटै=च्युत हो जाय, दूर होजाय ।

अध्यात्म

सहज जोग सुख मैं रहै, दादू निर्गुण जाणि।
गंगा उलटि फेरि करि, जमुना मांहैं आणि ॥३१॥

लय

परआत्म सो आतमा, ज्यौं जल उदकि समान।
तन मन पाणी लौंण ज्यौं, पावै पद निर्वाण ॥३२॥

मनही सौं मन सेविये, ज्यौं जल जलहि समाइ।
आत्म चेतन प्रेम रस, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥३३॥

यौं मन तजै सरीर कौं, ज्यौं जागत सो जाइ।
दादू बिसरै देखतां, सहजि सदा ल्यौ लाइ ॥३४॥

जिहि आसणि पहिली प्राण था, तिहि आसणि ल्यौ लाइ।
जे कुछ था सोई भया, कछू न व्यापै आइ ॥३५॥

---

३१—सहज जोग=राजयोग। निर्गुण जाणि=माया अविद्या अंशरहित चेतन को समझ। गंगा=किसी वासना से तरंगित हुई वृत्ति। जमुना माहैं=स्थिर अन्तःकरण की दिशा में।

३२—तनमन पाणी लूंण ज्यौं=सेन्द्रिय शरीर व अन्तःकरण चतुष्टय को पानी लूंण की तरह आत्मरूप में लय कर देना।

३३—मन ही सूं मन सेविये=कल्मष मन को विचार द्वारा शुद्ध कर।

३४—बिसरे=भूले, त्याग करदे।

३५—आसणि=अवस्था, सहज दशा। चतुर्विध अवस्था बताई गई हैं गर्भावस्था, ब्रह्मावस्था, उपजन, सत्संग,। इन चारों को सम्यक्तया समझे रहे। कछू न व्यापे=सांसा-

तन मन अपणा हाथि करि, ताही सौं ल्यौ लाइ।
दादू निर्गुण राम सौं, ज्यौं जल जलहि समाइ ॥३६॥

उपजणि

एक मना लागा रहै, अंति मिलैगा सोइ।
दादू जाकै मनि बसैं, ताकौं दर्सन होइ ॥३७॥
दादू निबहै त्यूं चलै, धीरैं धीरज मांहिं।
परसैगा पिव एक दिन, दादू थाकै नांहिं ॥३८॥

लय

जब मन मृतक ह्वै रहै, इंद्रिय बल भागा।
काया के सब गुण तजै, निरंजग लागा ॥३९॥
आदि अंति मधि एक रस, टूटै नहिं धागा।
दादू एकै रहि गया, तब जाणी जागा ॥४०॥

---

रिक वासनादि उत्पन्न न हो।

दृष्टान्त—*इक बणियो दीवान व्है, धरि राखि पोसाष ॥*
*तांहि देख गरवै नहीं, रीझ नृपति कियो नाक ॥१॥*

३६—हाथिकरि=वश कर, अधीन कर।

३७—एकमना=अनन्यमन, एकवृत्ति से।

दृष्टान्त—*टीटोडी अंडा धरे, सागर लिये डुबाइ ॥*
*सरधा कर थाकी नहीं, समदर दीन्हे लाइ ॥१॥*

३८—निबहै=निर्वाह हो, होसके जितना। परसेगा=प्राप्त होगा। थाके=थके नहीं, उपराम न हो।

३९—मृतक=वासनारहित, निर्वासी षट्ऊर्मीरहित। काया के सब गुण=इन्द्रियों की विषय-वासना।

४०—मन के संकल्पादि, अहंकार देहाध्यास आदि सब का परित्याग कर दिया। टूटे-

**जब लग सेवग तन धरै, तबलग दूसर आइ ।**
**एकमेक ह्वै मिलि रहै, तौ रस पीवन थैं जाइ ॥ ४१॥**
**ये दोन्यूं ऐसी कहैं, कीजै कौंण उपाय ।**
**नां मैं एक न दूसरा, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥४२॥**

**इति लै को अंग सम्पूर्ण ॥ ७ ॥**

---

नहिं धागा=वृत्तिका तादात्म्य भंग न हो, चिन्तनरूप तागा टूटे नहीं। जाणी=पहिचानी। जागा=अपना असली स्थान।

४१—जबलग सेवग तन धरै=सेवक-साधक जब तक सेव्य-सेवक भाव से रहे तब तक तन धारण करता है। एक मेक ह्वै मिल रहे=निर्गुण उपासना में एकमेक हो जाता है, अतः शरीरानुबन्ध की आवश्यकता नहीं रहती।

४२—ये दोन्यूं ऐसी कहैं=सगुणनिर्गुण उपासक का उपर्युक्त कथन है। उत्तर देते हैं—नां मैं एक न दूसरा=मेरेलिये एकत्व और अन्यत्व की धारणा की आवश्यकता नहीं। दादू रहु ल्यो लाइ=मेरे में ध्यान लगाइये।

॥ इति लय को अंग ॥

# अथ निहकर्मी पतिव्रता को अङ्ग ॥ ८ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

एक तुम्हारे आसिरै, दादू इहि बेसास ।
राम भरोसा तोर है, नहिं करणी की आस ॥ २ ॥

रहणी राजस ऊपजै, करणी आपा होइ ।
सब थैं दादू निर्मला, सुमिरण लागा सोइ ॥ ३ ॥

दादू मन अपणा लै लीन करि, करणी सब जंजाल ।
दादू सहजैं निर्मला, आपा मेटि संभाल ॥ ४ ॥

दादू सिधि हमारे सांइयां, करामाति करतार ।
रिधि हमारे राम है, आगम अलख अपार ॥५॥

गोविंद गोसांई, तुम्हीं आमुचे गुरू, तुम्हीं आमुचे ज्ञान ।
तुम्हीं आमुचे देव, तुम्हीं आमुचे ध्यान ॥६॥

तुम्हीं आमुची पूजा, तुम्हीं आमुची पाती ।
तुम्हीं आमचे तीर्थ, तुम्हीं आमुचे जाती ॥७॥

---

२—आसरे = आधार । इहि वेसास=इसी भरोसे । करणी=अपने काम ।

३—रहणी = ब्रह्मचर्यादि । राजस = रजोगुण, अहंकार । करणी = दान, पुण्य तीर्थ व्रतादि । आपा = अभिमान ।

४—लैलीन = वासनारहित, स्थिर । जंजाल = उलझन, । आपामेटि = अध्यास दूर कर । संभाल = ध्यान दे ।

५—सिद्धि = आठ प्रकार की । करामाति = परचै दिखाना । रिधि=वैभव भण्डार । आगम = पौरुष, गुप्त धन ।

६—तुम्हीं = आप । आमुचे = हमारे ।

७—पाती=तुलसीदल, पत्र पुष्प । जाती=यात्री, तीर्थ जाने वाला ।

तुम्हीं आमुचे नाद, तुम्हीं आमुचे भेद।
तुम्हीं आमुचे पुराण, तुम्हीं आमुचे वेद ॥८॥
तुम्हीं आमुची जुगत, तुम्हीं आमुचा जोग।
तुम्हीं आमुचे वैराग्य, तुम्हीं आमुचा भोग ॥९॥
तुम्हीं आमुची जीवनि, तुम्हीं आमुचा जप।
तुम्हीं आमुचा साधन, तुम्हीं आमुचा तप ॥१०॥
तुम्हीं आमुचा सील, तुम्हीं आमुचा संतोष।
तुम्हीं आमुची मुकति, तुम्हीं आमुचा मोष ॥११॥
तुम्हीं आमुचा सिव, तुम्हीं आमुची सकति।
तुम्हीं आमुचा आगम, तुम्हीं आमुची उकति ॥१२॥
तूं सति, तूं अवगति, तूं अपरंपार, तूं निराकार, असे तुमचे नाम।
दादू चा बिश्राम देहु, देहु अवलंबन राम ॥१३॥
दादू राम कहूं ते जोड़िबा, राम कहूं ते साखि।
राम कहूं ते गाइबा, राम कहूं ते राखि ॥१४॥

---

८—नाद=अन्तर्ध्वनि। भेद=रहस्य। वेद=ज्ञान।

९—जुगत=साधनप्रक्रिया। जोग=योग, निरोध। भोग=उपास्य वस्तु।

१०—जीवनी=जीवनशक्ति।

११—सील=अष्टविध ब्रह्मचर्यरक्षा। संतोष=तुष्टि। मोष=मोक्ष, मृत्यु, जन्मनिवृत्ति, निरतिशय सुख।

१२—सिव=कल्याण, श्रेय। सकति=प्रत्युत्पन्न मति, बुद्धिबल। आगम=स्मृति वेदादि, आत्मोपदेश। उकति=सत्य कथन।

१४—जोडिबा=मनको स्वस्वरूप में लगाना। राखि=मनुष्यजन्म की टेक रखना।

दादू कुल हमारे केसवा, सगा तो सिरजनहार।
जाति हमारी जगतगुरु, परमेसुर परिवार ॥१५॥

दादू एक सगा संसार मैं, जिन हम सिरजे सोइ।
मनसा वाचा कर्मनां, और न दूजा कोइ ॥१६॥

स्मरण नाम निःसंसै

सांई सनमुख जीवतां, मरतां सनमुख होइ।
दादू जीवण मरण का, सोच करै जनि कोइ ॥१७॥

पतिव्रत

साहिब मिल्या तो सब मिले, भेटैं भेटा होइ।
साहिब रह्या तौ सब रहे, नहिं तो नाहीं कोइ ॥१८॥

सब सुख मेरे सांइयां मंगल अति आनंद।
दादू सजन सब मिले, जब भेंटे परमानंद ॥१९॥

दादू रीझै राम परि, अनत न रीझै मन।
मीठा भावै एक रस, दादू सोई जन ॥२०॥

---

१५—केसवा = क्लेशनाशक। सगा = साथी। सिरजनहार=सबको व्यक्त करनेवाला।

१६—सिरजे = पैदा किये, व्यक्त किये।

१७—सनमुख=आत्माभिमुख।

१८—भेटैंभेटा होइ=आत्मस्वरूप परिचयप्राप्ति से ही उससे मिलना होता है।

१९—अतिमंगल = अतिशुभ। भेटैं = प्राप्त हो।

२० = रीझै = आसक्त हो, मोहित हो। अनत=दूसरी जगह। मीठा भावै=अति मधुर भावना से। सोइ जन=वही सच्चा मनुष्य है।

दृष्टान्त गुरु दादू आमेर में, तहां गया वाजिन्द ॥
फूल सराह्यो देषके, ये सब माया न्यंद ॥१॥

दादू मेरे हिरदै हरि बसै, दूजा नांही और।
कहौ कहां धौं राखिये, नहीं आन कौं ठौर ॥२१॥
दादू नाराइण नैनां बसै, मनही मोहनराइ।
हिरदा मांहैं हरि बसै, आत्म एक समाइ ॥२२॥
दादू तन मन मेरा पीवसौं, एक सेज सुख सोइ।
गहिला लोग न जाणही, पचि पचि आपा खोइ ॥२३॥
दादू एक हमारे उरि बसै, दूजा मेल्या दूरि।
दूजा देखत जाइगा, एक रह्या भरपूरि ॥२४॥
निहचल का निहचल रहै, चंचल का चलि जाइ।
दादू चंचल छाडि सब, निहचल सौं ल्यौ लाइ ॥२५॥
साहिब रहतां सब रह्या, साहिब जातां जाइ।
दादू साहिब राखिये, दूजा सहज सुभाइ ॥२६॥

---

२१—दृष्टान्त—*बीबी बिसरे राबिया, महमद कही जनाइ ॥*
*राबि रिदै दोसत हमें, दूजा नाहिं समाइ ॥१॥*

२३—एकसेज = ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयकी त्रिपुटि वृत्ति में। गहिला = इन्द्रियभोगों में पागल। आपा = मनुष्यजन्म।

दृष्टान्त—*चोखो एक चमार, पंडरपुर वीठल हरी ॥*
*दोनों जीमत लार, मूढ न जानत तास गति ॥१॥*

२४—एक=स्वजातीय विजातीय भेद रहित।

२५—निहचल = ब्रह्म का उपासक। निहचल=स्थिर। चंचल = मायिक पदार्थों के उपासक।

२६—साहिब राखिये=अभेद चेतन की उपासना है वही रखे, उसमें लगे।

मन चित मनसा पलक मैं, सांई दूरि न होइ।
निहकामी निरखै सदा, दादू जीवनि सोइ ॥२७॥

कथनी बिना करणी

जहां नांव तहां नीति चाहिये, सदा राम का राज।
निर्विकार तन मन भया, दादू सीझै काज ॥२८॥

सुन्दरी विलाप

जिस की खूबी खूब सब, सोई खूब संभारि।
दादू सुंदरि खूब सौं, नखसिख साज संवारि ॥२९॥
दादू पंच अभूषण पीव करि, सोलह सबही ठांव।
सुंदरि यहु सिंगार करि, लै लै पीव का नांव ॥३०॥
यहु व्रत सुंदरि ले रहै, तौ सदा सुहागनि होइ।
दादू भावै पीव कौं, तासमि और न कोइ ॥३१॥

---

२७—मन, बुद्धि, वृत्ति पलभर भी आत्मचिन्तन से हटे नहीं। निष्कामभाव से ही चिन्तन में लगा रहे।

२८—नीति=धर्माचरण, इन्द्रियनिग्रह। सदा राम का राज=हृदय में अन्तःकरण में सर्वदा आत्मा का ही ध्यानरूपी राज रहना चाहिये। सीझै काज = तभी अपना कार्य सिद्ध होगा।

२९—खूबी = चमत्कार, अच्छाई। संभारि=ध्यान में ला। सुन्दरि = सन्तबुद्धि। नषसिष = तन मन शुद्ध कर। साज सवारि = हृदय की शुद्धि वृत्ति के चांचल्य का निवारण यह साज सज।

३०—पंच अभूषण=पांचों इन्द्रियों की विषयनिवृत्ति। सोलह=षोडश कलामय मनकी शुद्धि। सब ही ठांव=सब समय।

३१—वृत = प्रण। सुन्दरि = साधक की शुद्ध बुद्धि। सुहागनि = स्वरूपपरिचयरूप सुहागयुक्त। भावै = अच्छा लगे।

मन हरि भावरि

साहिबजीका भावता, कोई करै कलि मांहिं।
मनसा वाचा कर्मना, दादू घटि घटि मांहिं ॥३२॥

पतिव्रता निष्काम

आज्ञा माहैं बैसै ऊठै, आज्ञा आवै जाइ।
आज्ञा माहैं लेवै देवै, आज्ञा पहरै खाइ ॥३३॥
आज्ञा माहैं बाहरि भीतरि, आज्ञा रहै समाइ।
आज्ञा माहैं तन मन राखै, दादू रह ल्यौ लाइ ॥३४॥
पतिव्रता गृह आपणै, करै खसम की सेव।
ज्यौं राखै त्यौं ही रहै, आज्ञाकारी टेव ॥३५॥

---

३२—कोई करै = कोई विरले साधक ही। घट घट = हर मनुष्य।

३३—३४–इन दो साखियों में साधक के आत्मसमर्पण का वर्णन है। परिचयप्राप्ति के इच्छुक साधक को अपना सब व्यवहार ईश्वरानुबन्ध पर ही छोड देना चाहिये। यही इन दो साखियों का भाव है।

दृष्टान्त-३३-*बैठे है नराणे स्वामी ऊठे हैं आमेर तै जूं, आये सीकरी तै अरु गये उत जानिये,*
*आल्हणै कामर लई गुरु आज्ञा सुन-भारी, जल दीयो पादू मांहे सांची मन आनिये।*
*चोलो गुजरात सौ आयुसु पहर्यो आज्ञा मान आयो परसाद जौ सरूँज को जु मानिये,*
*बाहर गुफासों आये भीतर उथो ही गये स्वामी ऐसे रहैं तैसे और सब ठानिये ॥१॥*

३५—पतिवृता = पतिपरायणा। गृह = घर। षसम = स्वामी ही की। आज्ञाकारी टेव = आज्ञामें रहने का प्रण।

दृष्टान्त-३५—*पतिव्रता खाती तिया, कोउ जन देखण आइ ॥*
*घृत छाणत हेलो दियो, ज्यूं ठाढी भई जाइ ॥१॥*

सुंदरी विलाप

दादू नीच ऊंच कुल सुंदरी, सेवा सारी होइ।
सोई सुहागनि कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥३६॥

दादू जब तन मन सौंप्या राम कौं, तासनि का विभचार।
सहज सील संतोष सत. प्रेम भगति लै सार ॥३७॥

पतिव्रत

जिस का तिस कौं दीजिये, सांई सनमुख आइ।
दादू नखसिख सौंपि सब, जिनि यहु बंट्या जाइ ॥३८॥

सारा दिल सांई सौं राखै, दादू सोई सयान।
जे दिल बंटै आपणा, सो सब मूढ़ अयान ॥३९॥

---

३६—सेवा सारी = सेवामें निपुण। सुहागिन = पतिवाली।

दृष्टान्त ३६—*सदना अरु रैदास को, कुल कारण नहिं कोइ॥*
*प्रभु आये सब छोड़िके, विप्र वैष्णव रोइ॥१॥*

३७—तासन = उसके साथ।

३८—सनमुख = सामने, आराधना में। नखसिख = शरीर मन वाणी। जिनहु बंट्या जाइ = यह मानव-जीवन अनात्म पदार्थ धन, मकान, जमीन, जगह शरीर खान पान आदि में ही बंट कर समाप्त न होजाय।

३९—सारा दिल = पूरा मन, विषयभोग में बंटाहुआ न हो। बंटै = विभक्त करै, खंड-२ करे। अयान = बेसमझी।

दृष्टान्त—*सुलतानी गोवलख तजि, रह्यो इकेत ही जाइ॥*
*सुत तिय गये दीदार को, नैंन मून्दि विन चाइ॥१॥*

विरक्तता

दादू सारौं सौं दिल तोरि करि, सांई सौं जोरै।
सांई सेती जोड़ि करि, काहे कौं तोरै ॥४०॥

आनलगनि विभिचार

साहिब देवै राखणा, सेवग दिल चोरै।
दादू सब धन साह का, भूला मन थोरै ॥४१॥

पतिव्रत

दादू मनसा वाचा करमना, अंतरि आवै एक।
ताकौं प्रत्तषि रामजी, बातैं और अनेक ॥४२॥
दादू मनसा वाचा करमनां हिरदै हरि का भाव।
अलख पुरिष आगै खड़ा, ताकै त्रिभुवन राव॥४३॥

---

४०—सारौं सौं दिल तोरि करि = संसार के विविध भोग वासना कुटुम्ब का मोह, शरीर का अध्यास, अनित्य पदार्थों को सत्य समझना इन सब से मन को हटाइये। जोरै = साँधे, लगावे।

४१—राखणा = रखने के लिये, धरोहररूप में। चोरै = चुरावे। सब धन साह का = मानवशरीररूपी शाह=साहूकार का मानवजीवनरूपी सब धन। भूला मन थोरै = हे मन! थोडेसे में विषय वासना में ही गंवा दिया।

दृष्टान्त—*गोद लियो सुत सेठ, सर्वस सौंप्यौ तासकौ ॥*
*करी मूढमति नेठ, थैली ले न्यारी धरी ॥१॥*

४२—प्रत्तष = प्रत्यक्ष, साक्षात्।

४३—भाव = परम श्रद्धा। राव = राजा।

दृष्टान्त—*ग्राम मीरखुसरो रहे, बाहर और फकीर ॥*
*ताको परचो ना भयो, मेह बरसायो नीर ॥१॥*

दादू मनसा वाचा करमनां, हरिजी सौं हित होइ ।
साहिब सनमुख संगी है, आदि निरंजन सोइ ॥४४॥

दादू मनसा वाचा करमनां, आतुर कारणि राम ।
समरथ सांई सब करै, परगट पूरै काम ॥४५॥

नारी पुरिषा देखि कर, पुरिषा नारी होइ ।
दादू सेवग रामका, सीलवंत है सोइ ॥४६॥

आनलगनि विभिचार

पर पुरिषा रत बांझणी, जाणै जे फल होइ ।
जन्म बिगोवै आपणा, दादू निरफल सोइ ॥४७॥

दादू तजि भर्तारकौं, पर पुरिषा रत होइ ।
ऐसी सेवा सब करैं, राम न जाणैं सोइ ॥४८॥

---

४५—आतुर कारण राम=स्वस्वरूपप्राप्ति के लिये सब में व्यापक रमनेवाले राम के लिये ही सर्वदा आतुर रहे । परगट=सामने आकर ।

४६—नारी पुरिषा देख करि पुरिषा नारी होइ = स्त्री का अपने पति से भिन्न और किसी पुरुष में पुरुषभाव न रहे, ऐसे ही पुरुष का अपनी स्त्री से भिन्न अन्य स्त्री में स्त्री-भाव न रहे । एक पतिव्रत एक पतिव्रत इसी का नाम शील है इसी तरह साधक एक आत्मा या व्यापक चेतन से भिन्न अन्य किसी वस्तु में अपनी वृत्ति को न जाने दे ।

दृष्टान्त—*सुणि के बंदी राविये, जन चल आये चार ।*
*शील, एकता, सवर, सम, बाँवी कह्या विचार ॥ १॥*

४७—रत=आसक्त, लगी हुई । बाँझणी=बाँझ स्त्री । बिगोवे=डुबोवे । निरफल=बेकाम ।
४८—ऐसी सेवा सब करैं=मनको विभिन्न वासना में लगाये हुये मंदिर जाना, कथा सुनना आदि सेवा सभी करते हैं पर वैसी सेवा फलहीन है ।

पतिव्रत

नारी सेवग तब लगै, जब लग सांई पास।
दादू परसै आन कौं, ताकी कैसी आस ॥४६॥

आनलगनी बिभिचार

दादू नारी पुरिष कौं, जाणै जे बसि होइ।
पीव की सेवा ना करै, कामणिगारी सोइ ॥५०॥

करुणा

कीया मन का भावता, मेटी आग्याकार।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥५१॥

आनलगनि बिभिचार

करामाति कलंक है, जाकै हिरदै एक।
अति आनंद बिभिचारणि, जाकै षसम अनेक ॥५२॥

---

४६—तब लगै=तभी तक। परसै आन कौं=ईश्वरविमुख अन्य भोग पदार्थों तथा वासनाओं में लगे।

५०—वसि होइ=अधीन हो। कामणिगारी = छलिया, धोखा देने वाली।

दृष्टान्त—हुरम जू गई फकीर पै, मो को जंतर देहु।
होत पातशाह मोर बस. साखी लिख दई लेहु ॥ १ ॥
टामण टूमण हे सखी, भूल करो मत कोइ।
पीव कहे त्यूं कीजिये, आपै ही बस होइ ॥ २ ॥

५१—भावता=चाहा, अच्छा लगा। आग्याकार = उपदेश, निर्देश।

५२—भावार्थ—जिस साधक का लक्ष्य आत्मपरिचय है उसके लिये करामात=परचे दिखाना कलंक है। जिसके नानाविध भोग वासना की इच्छा है वैसे व्यभिचारी मनवाले बनावटी साधक के लिये करामात अति आनंददायिनी है।

दृष्टान्त—करामात—साध एक सिष सो कही, तो पति परसौ आइ।
आयो उछव देखि कै, घोडा खेटि चराइ ॥ १ ॥

दादू पतिब्रता कै एक है, बिभिचारणि कै दोइ ।
पतिब्रता विभिचारणी, मेला क्यौं करि होइ ॥५३॥
पतिब्रता कै एक है, दूजा नांहीं आंन ।
बिभिचारणि कै दोइ हैं, पर घर एक समान ॥५४॥

सुन्दरी सुहाग

दादू पुरिष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग ।
जे जे जैसी ताहि सौं, खेलैं तिसही (सं) रंग ॥५५॥

पतिवृत

दादू रहता राखिये, बहता देइ बहाइ ।
बहते संगि न जाइये, रहते सौं ल्यौ लाइ ॥५६॥
जिनि बाझै काहू कर्म सौं, दूजै आरंभ जाइ ।
दादू एकै मूल गहि, दूजा देइ बहाइ ॥५७॥

---

अति आनन्द—*भोज मँगायो वृछहित, पतिव्रता को खीर ।*
*गयो राव घरि पूछियो, एक घटै धर धीर ॥ २ ॥*

५३—पतिवृता = पतिवृतावत् साधक । मेला=एकता ।
दृष्टान्त—*सूया अनुसूया बहन द्वै, इक काशी इक अन्य गाम ।*
*घर राख्यो रविरथ थक्यो, पतिव्रत के बल राम ॥ १ ॥*

५४—एक=एकही आत्मपरिचय लक्ष्य है । आन = अन्य, दूसरा । पर घर = पराया व घरका ।

५५—पुरिष हमारा एक है–हमारा ध्येय या लक्ष्य सब साधकों का एक ही है । हम नारी बहु अंग=विविध साधक योग, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि वाले वे सब भिन्न भिन्न नारीरूप हैं ।

५६—रहता=अविनाशी । वहता=बदलने वाला, विनासी ।

५७—जनि = मत । बाँझै=बन्धे । काहू कर्म=काम्य कर्म । आरंभ = शुरूआत, फलमय कामों की प्रवृत्ति ।

बावैं देखि न दाहिणैं, तन मन सनमुख राखि।
दादू निर्मल तत्त गहि, सत्य सबद यहु साखि ॥५८॥
दादू दूजा नैन न देखिये, श्रवण हुं सुनै न जाइ।
जिभ्या आन न बोलिये, अंगि न और सुहाइ ॥५९॥
चरणहु अनत न जाइये, सब उलटा मांहि समाइ।
उलटि अपूठा आप मैं, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥६०॥
दादू दूजै अंतर होत है, जनि आणै मन मांहिं।
तहं ले मन को राखिये, जहं कुछ दूजा नांहिं ॥६१॥

भरम बिधूंसण

भरम तिमिर भाजै नहीं, रे जिय आन उपाइ।
दादू दीपक साजि ले, सहजैं ही मिटि जाइ ॥६२॥

---

५८—बावै देखि न दाहिणै=भोग तथा सम्पत्ति की ओर प्रवृत्त मत हो। शरीर और अन्तःकरण सन्मुख=आत्माभिमुख ही रख। साखि=उपदेश। तत्त=तत्व, असलियत। गहि=पकड़, धारण कर।

५९—६०—इन दो साखियों में चकोर, मृग, पपीहा, मच्छी, हरिण, कछवे की विशेष वृत्ति का उदाहरण दे साधक को तद्वत् साधना करने का निर्देश है। उपर्युक्त पक्षी तथा पशुओं की विशेष वृत्ति का अनुसरण कर साधक अपनी उपासना में अनन्यता लाये।

६१—दूजै=दूसरे। अंतर=फर्क, भेद। आणै=लावे।

दृष्टान्त—*सन्त जुडे परब्रह्म सूँ, नृप आयो दीदार।*
*पूछी प्रभु क्यूं एकले, अब लहि हैं वट पार ॥१॥*

६२—भरम=भ्रम। तिमिर=अन्धकार। भाजै=दूर न जाय। दीपक=ज्ञान का आलोक। साजि ले=संजोले, प्रदीप्त कर।

दादू सो वेदन नहिं, आन किये जे जाइ ।
सब दुखभंजन सांईया, ताही सौं ल्यौ लाइ ॥६३॥
दादू औषदि मूली कुछ नहीं, ये सब झूठी बात ।
जे औषदि ही जीवियै, तौ काहे कौं मरि जात ॥६४॥

पतिव्रत

मूल गहै सो निहचल बैठा, सुख मैं रहै समाइ ।
डाल पान भरमत फिरै, वेदौं दिया बहाइ ॥ ६५ ॥
सौ धक्का सुनहां कौ देवै, घर बाहरि काढै ।
दादू सेवग राम का, दरबार न छाड़ै ॥ ६६ ॥
साहिब का दर छाडि करि, सेवग कहीं न जाइ ।
दादू बैठा मूल गहि, डालौं फिरै बलाइ ॥६७॥
दादू जब लग मूल न सींचिये, तब लग हर्‍या न होइ ।
सेवा निरफल सब गई, फिरि पछिताना सोइ ॥६८॥

---

६३—वेदन=पीडा ।

६४—दृष्टान्त—*पातस्याह मरती समै, सब ठाढे किये ल्याय ।*
*वैद शूर धन लोगकुल, सबही देखते जाय ॥१॥*

६५—मूल = सब का कारण । गहै = धारण करे । निहचल=स्थिरवृत्ति । डालपान भरमत फिरै=सकाम कर्मरूपी विविध डालपात में भ्रान्त हो रहा है । वेदौं दिया बहाई=यज्ञादि कर्मविशेष का निर्देश कर वेदों ने मानव के मन को बहा दिया, चल विचल कर दिया ।

६६—सुनहा=कुत्ता । काढै=निकाले ।

६७—दर=दरवाजा, आधार ।

६८—निरफल = परिणाम रहित ।

दादू सींचे मूल के, सब सींच्या विस्तार।
दादू सींचे मूल बिन, बादि गई बेगार ॥६९॥
सब आया उस एक मैं, डाल पांन फल फूल।
दादू पीछै क्या रह्या, जब निज पकड्या मूल ॥७०॥
खेत न निपजै बीज बिन, जल सींचे क्या होइ।
सब निरफल दादू राम बिन, जांनत है सब कोइ ॥७१॥
दादू जब मुख माहैं मेलिये, सबही तृपता होई।
मुख बिन मेले आन दिस, तृपति न मानै कोइ ॥७२॥
जब देव निरंजन पूजिये, सब आया उस मांहिं।
डाल पांन फल फूल सब, दादू न्यारे नांहिं ॥७३॥
दादू टीका राम कौं, दूसर दीजै नांहिं।
ग्यान ध्यान तप भेष पख, सब आये उस मांहिं ॥७४॥
साधू राखै राम कौं, संसारी माया।
संसारी पालव गहै, मूल साधू पाया ॥७५॥

आनलगनि बिभिचार

दादू जे कुछ कीजिये, अविगत बिन आराध।
कहिबा सुणिबा देखिबा, करिबा सब अपराध ॥७६॥

---

६९—विस्तार = डाल, पात आदि सब। वादि=व्यर्थ। बेगार=श्रम।

७२—तृपता = तृप्त, तुष्ट। आन दिसि=दूसरी जगह।

७३—डाल, पान, फल, फूल सब = जप, तप, दान, तीर्थ, वृत आदि सब।

७४—टीका = प्रधानता, श्रेय। पख = सपत्त धर्म।

७५—माया=अनित्य पदार्थ। पालव = पान, पत्ते।

७६—अविगत=ईश्वर। आराध=उपासना। अपराध=कसूर, गुनाह।

सब चतुराई देखिये, जे कुछ कीजै आन।
दादू आपा सौंपि सब, पीव कौं लेहु पिछान ॥७७॥

पतिव्रत

दादू दूजा कुछ नहीं, एक सत्ति करि जाणि।
दादू दूजा क्या करै, जिन एक लिया पहिचाणि ॥७८॥
दादू कोई बांछै मुकति फल, कोई अमरापुरी वास।
कोई वांछै परम गति, दादू राम मिलन की प्यास ॥७९॥
तुम हरि हिरदै हेत सौं, प्रगटहु परमानंद।
दादू देखै नैंन भरि, तब केता होइ अनंद ॥८०॥
प्रेम पियाला राम रस, हमकौं भावै येह।
रिधि सिधि मागैं मुकति फल, चाहैं तिनकौं देह ॥८१॥
कोटि वरस क्या जीवणां, अमर भये क्या होइ।
प्रेम भगति रस राम बिन, का दादू जीवनि सोइ ॥८२॥
कछू न कीजै कामनां, सगुण निर्गुण होइ।
पलटि जीवतैं ब्रह्म गति, सब मिलि मानैं मोहि ॥८३॥

---

७७—चतुराई देखिये=जालसाजी समझिये। कीजै आन=दूसरा करना—विषय वासना में उलझना। पिछान=पहचान। आपा=अहंकार, सर्वस्व।

७९—वांछै=चाहे। अमरापुरी=स्वर्गादि। परमगति=वैकुण्ठलोक।

८०—हेतसौं=अति प्रेम से। प्रगटहु=पैदा करो। केता=कितना, अपार।

८१—प्रेम पियाला=अनन्य अनासक्त प्रेमरूपी प्याला।

८२—का = क्या।

८३—भावार्थ—किसी तरह के काम्यकर्मों की इच्छा न करे। यदि निष्काम भावना से वृत्ति स्थिर कर साधक साधना में लगा रहे तो धीरे-२ वृत्ति सगुण=संग दोष को

अजरावर ह्वै रहै, बंधन नांहीं कोइ।
ता चौरासी मिटै, दादू संसै सोइ ॥८४॥

लांबि रस

ाटि निरंजन लागि रहु, जब लग अलख अभेव।
पीवै राम रस, निहकामी निज सेव ॥८५॥

परचै पतिवृत

ोक संगति रहै, सामीप सन्मुख सोइ।
ाप सारीखा भया, साजोज एकै होइ ॥८६॥

---

ुंण=असंग हो जायगा। साधना का दार्ढ्य होने पर जीवभावना बदल
ाना हो जायगी। यदि मन बुद्धि प्राण निर्गुण मुझ में ही तल्लीन हो

*-करडाले स्वामी रह्या, तँह इक आवत प्रेत।*
*पूछी प्रभु मैं ग्वाल हूं, बड़ी आयु वर लेत॥*

उपर्युक्त रूपसे साधन में लगे तो साधक जरा-मृत्यु के भय से मुक्त तथा
ार की कामना के बन्धन से छूट जाता है। चौरासी लाख योनियों का
ाय ही निवृत्त होजाता है।

'जन लागि रहु, जब लगि अलख अभेव=माया अविद्या से रहित जो
ात्मा, वह जब तक अभेदरूपमें निश्चय न होजाय तब तक साधक उसीमें
ये रहे। निहकामी=निष्काम भावना से की गई उपासना से ही रामरस=
की प्राप्ति हुआ करती है।

में चतुर्विध भक्ति का निरूपण है। अपने अहं के अस्तित्व सहित
ै उससे सालोक मुक्ति मिलती है। महत्तत्व की उपासना से सामीप्य,
अभेदवृत्ति से उपासना से सारूप्य मुक्ति तथा विराट् की उपासना से
ुक्ति प्राप्त होती है।

राम रसिक बांछै नहीं, परम पदारथ चार।
अठ सिधि नव निधि का करै, राता सिरजनहार ॥८७॥

आनलगनि बिभिचार

स्वारथ सेवा कीजिये, ताथैं भला न होइ।
दादू ऊसर बाहि करि, कोठा भरै न कोइ ॥८८॥
सुत बिन मांगैं बावरे, साहिब सी निधिमेलि।
दादू वै निरफल गये, जैसे नागर बेलि ॥८९॥
दादू सांई कौं संभालतां, कोटि विघन टलि जांहिं।
राई मांन बसंदरा, केते काठ जलांहिं ॥९०॥

करतूति करम

कर्मैं कर्म काटै नहीं, कर्मैं कर्म न जाइ।
कर्मैं कर्म छूटै नहीं, कर्मैं कर्म बंधाइ ॥९१॥

इति निहकर्मी पतिव्रता को अंग संपूर्ण ॥ ८ ॥

---

८७—रसिक=प्रेमी। बाँछ=चाहे।

८८—ताथैं = उससे। भला = अच्छा। ऊसर=खारी। वाहिकर=जोतकर।

८९—सुत वित=पुत्र, धन। निधि=सम्पत्ति।

९०—संभालतां=याद रखते हुये, ध्यान करते हुये। बसंदरा=अग्नि।

९१—कर्मैं कर्म काटै नहीं=सकामकर्म से कर्म बन्धन नहीं छूटता। कर्मैं कर्म बँधाइ=वासनामय कर्म से बन्धन ही बढ़ता है।

❀ निहकर्मी पतिव्रता को अंग समाप्त ❀

# अथ चितावणी को अंग ॥ ९ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम् , नमस्कार गुरुदेवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

दादू जे साहिब को भावै नहीं, सो हम थैं जनि होइ ।
सतगुरु लाजै आपणा, साध न मानैं कोइ ॥ २ ॥

दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो सब परिहरि प्राण ।
मनसा वाचा करमना, जे तूं चतुर सुजाण ॥ ३ ॥

दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो जीव न कीजी रे ।
परहरि विषै विकार सब, अमृत रस पीजी रे ॥ ४ ॥

दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो बाट न बूझी रे ।
सांई सौं सनमुख रही, इस मन सौं झूझी रे ॥ ५ ॥

दादू अचेत न होइये, चेतन सौं चित लाइ ।
मनवा सूता नींद भरि, सांई संग जगाइ ॥ ६ ॥

---

२—लाजै=अपमानित हो ।

दृष्टान्त—*इक वंदे किये तीन सों, ग्रन्थ रामगुण गाथ ।*
*परा शब्द ऐसे भयो, इनसे मोहि न पात ॥*

३—परिहरि = छोड़, त्याग ।

४—कीजीरे=करना । पीजीरे=पीना ।

५—बाट = रास्ता । बूझीरे = पूछना । झूझीरे=झूझना, सङ्घर्ष करना, वैराग्य अभ्यास से मनोनिग्रह करना ।

६—अचेत=असावधान । नींदभरि=अज्ञानजन्य घोर निद्रा में । जगाइ = जागृत कर, सचेष्ट कर ।

दादू अचेत न होइये चेतन सौं करि चित्त ।
ये अनहद जहां थैं ऊपजै, खोजौ तहां ही नित्त ॥ ७ ॥
दादू, जन ! कुछ चेत करि, सौदा लीजी सार ।
निखर कमाई न छूटणा, अपणे जीव विचार ॥ ८ ॥
दादू कर सांई की चाकरी, ये हरि नाव न छोड़ ।
जाणा है उस देसकौं, प्रीति पिया सौं जोड़ ॥ ९ ॥
आपा पर सब दूरि कर, राम नाम रस लाग ।
दादू औसर जात है, जागि सकै तौ जाग ॥ १० ॥
बारबार यहु तन नहीं, नर नाराइण देह ।
दादू बहुरि न पाइये, जनम अमोलिक येह ॥११॥
एकाएकी राम सौं, कै साधू का संग ।
दादू अनत न जाइये, और काल का अंग ॥ १२ ॥

---

७—अनहद=सहज शब्द ।

८—चेतकरि = सावधान हो । सार = सार्थक, फलदायी । निषर कमाई न छूटणां = निषिद्ध कमाई–सकाम उपासना से बन्धनमुक्त नहीं होसकेगा ।

दृष्टान्त—इव फकीर घर गार के, बेचत लह परलोक ।
सेठ मर्‌यो सकृत मिल्यो, देखै सारै थोक ॥

९—चाकरी=निष्काम सेवा । हरिनाव = आत्मचिंतन ।

१०—आपापर=रागद्वेष, मैं तैं भेदवृत्ति । औसर=मानव-जीवन । जाग=साधन में लग ।

दृष्टान्त—वणिक चल्यो सुत मिलन को, मिले बीच इक गांव ।
राति दरद सुत के चल्यो, रात न लीन्हीं नाँव ॥

११—बहुरि = पुनः, फिर । अमोलिक=अमूल्य ।

१२—एकाएकी=केवल निर्गुण । अनत = अन्यत्र, दूसरी जगह । और काल का अंग= सकाम उपासना जन्म मरण का निमित्त है ।

दादू तन मन के गुण छाड़ि सब, जब होइ नियारा।
तब अपने नैनहुं देखिये, परगट पीव प्यारा॥ १३॥
दादू झांती पाये पसु पिरी, अंदरि सो आहे।
होणी पाणे बिच मैं; मिहर न लाहे॥ १४॥
दादू झांती पाये पसु पिरी, होंणी लाइम बेर।
साथ सभोई हालियौ, पोइ पसंदो केर॥ १५॥

इति चितावणी कौ अंग सम्पूर्ण॥ ६॥

१३—तन मन के गुण = विषय वासना काम क्रोधादि। नियारा=निस्संग, निष्काम।

१४—झांती=देहरूपी झरोखा मिला है उसी में अपनी आत्मा को देख। होंणी=अब, पाणे बिच में = अपने बीच में, मिहर न लाहे=उसकी कृपा न छोड़े।

१५—मनुष्य की देह मिली है अतः परमेश्वर के दर्शन कर देर मत लगा। सब साथी चले गये हैं तू पीछे रहा क्या देख रहा है ?

❀ चितावणी अंग सम्पूर्ण ❀

# अथ मन कौ अङ्ग ॥ १० ॥
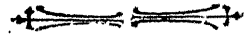
दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

दादू यहु मन वरजी बावरे, घट मैं राखी घेरि ।
मन हस्ती माता बहै, अंकुस दे दे फेरि ॥ २ ॥

हस्ती छूटा मन फिरै, क्यूं ही बंध्या न जाइ ।
बहुत महावत पचि गये, दादू कछु न बसाई ॥ ३ ॥

जहां थैं मन उठि चलै, फेरि तहां ही राखि ।
तहं दादू लै लीन करि साध कहैं गुरु साखि ॥ ४ ॥

थौरे थौरे अटकिये, रहैगा ल्यौ लाइ ।
जब लागा उनमन सौं, तब मन कहीं न जाइ ॥ ५ ॥

आडा दे दे राम कौं, दादू राखै मन ।
साखी दे सुथिर करै, सोई साधू जन ॥ ६ ॥

सोई सूर जे मन गहै, निमख न चलने देइ ।
जबही दादू पग भरै, तबही पाकड़ि लेइ ॥ ७ ॥

---

२—वरजी = रोक । घेरि=सीमित कर । माता = उन्मत्त ।

३—बहुत महावत = दायरे में बंधे हुए अनेक साधक ।

५—थोरैं थोरैं अटकिये = धीरे धीरे अभ्यास से रोकिये । उनमन = चेतन की सहज अवस्था, ब्रह्मभाव ।

६—आडा दे दे राम कौं=वृत्तिको आत्मचिंतनकी ओर पुनः पुनः लगाकर । साखी दे = गुरु-उपदेश । सुथिर = बिलकुल अचल ।

७—निमष=पल । पगभरै = विषयवासना की ओर चले ।

दृष्टान्त—*इक कन्या यह नेम कियो, मोहि परणै व्है सूर ।*
*सिह हतै गजअरि हतै, तिय तज भाज्यो दूर ॥*

जेति लहरि समंद की, तेते मनह मनोरथ मारि।
बैसै सब संतोष करि, गहि आत्म एक विचारि ॥ ८ ॥
दादू जे मुख मांहैं बोलतां, श्रवणहु सुणतां आइ।
नैनहुं मांहैं देखतां, सो अंतरि उरझाइ ॥ ९ ॥
दादू चम्बक देखि करि, लोहा लागै आइ।
यौं मन गुण इन्द्रिय एक सौं, दादू लीजै लाइ ॥ १० ॥
मन का आसण जे जिव जाणै, तौ ठौर ठौर सब सूझै।
पंचौं आणि एक घरि राखै, तब आगम निगम सब बूझै ॥११॥
बैठे सदा एक रस पीवै, निरबैरी कत झूझै।
आत्मराम मिलै जब दादू, तब अंगि न लागै दूजै ॥ १२ ॥
जब लग यहु मन थिर नहीं तब लग परस न होइ।
दादू मनवा थिर भया, सहजि मिलैगा सोइ ॥ १३ ॥

---

८—मनोरथ = वासनाजन्य संकल्प। बैसे=स्थिर हो।

९—यहां प्रतिबिम्बित मन को द्रष्टा श्रोता वक्ता कह कर उसको अंतर ही उरझाइ=अन्तर्मुख कर वहीं स्थिर किया जाय।

१०—मनगुण=मन के संकल्प वासना अध्यास। इन्द्रिय=ज्ञानेन्द्रियों के विषय।

११—मन का आसण=मन का संकल्प व वासना। ठौर ठौर=जड़ चेतन में, समष्टि व्यष्टि में। सूझे=दीखे। आँणि = पलट, फेर। एक घरि=एक ही निज चेतन में।

दृष्टान्त—*जसवन्त नृप प्रश्न कियो, आसण आछो कौण।*
*दास नारायणजी कह्यो, गुरु दादू कह्यो सो जांण ॥*

१२—एकरस=आत्मानुभूति रस। निरवैरी = राग द्वेष रहित। कत झूझै = कहां जाय। अंगि = साथ।

१३—परस = साक्षात्, प्रत्यक्ष।

दादू बिन अवलंबन क्यूं रहै, मन चंचल चलि जाइ ।
सुथिर मनवां तौ रहै, सुमिरण सेती लाइ ॥ १४ ॥

सतगुरु चरण शरण चलि जाहीं, नितप्रति रहिये ताकी छांहीं ।
मन सुथिर करि लीजै नाम, दादू कहै तहां ही राम ॥ १५ ॥

हरि सुम्रिरण सौं हेत करि, तब मन निह्चल होइ ।
दादू वेध्या प्रेमरस, बीख न चालै सोइ ॥ १६ ॥

जब अंतरि उरभ्या एक सौं, तब थाके सकल उपाइ ।
दादू निह्चल थिर भया, तब चलि कहीं न जाइ ॥ १७ ॥

दादू कउवा बोहिथ बैसि करि, मंझि समंदां जाइ ।
उड़ि उड़ि थाका देखि तब, निह्चल बैठा आइ ॥ १८ ॥

यहु मन कागद की गुड़ी, उड़ि चढ़ी आकास ।
दादू भीगै प्रेमजल, तब आइ रहै हम पास ॥ १९ ॥

---

१४—अवलंबन = आधार । लाइ = लगा ।

दृष्टान्त—*साध भूत दियो सेठ को, टेल करण के काज ।*
*बांस मंगाइ गडाइ कहि, बडो काज यह आज ॥*

१६—वेध्या=वेधित किया, वासना संकल्प से रहित किया । वीष=एक सी तेज चाल, वासनामय दौड़ में ।

१७—उरभ्या = संलग्न हुआ, लग गया । थाके = थकित हुये ।

१८—बोहिथ=जहाज । उड़ि उड़ि थाका देखि तब=कौवा जब जहाज से उड उड कर समुद्र में थक जाता है तब निराश हो उसी जहाज पर स्थिर बैठ जाता है । ऐसे ही चंचल मन को संसार की अनित्य वासना से मोड़ मोड़ निश्चल करना चाहिये ।

दादू खीला गारि का, निहचल थिर न रहाइ।
दादू पग नहीं साच के, भरमैं दह दिसि जाइ ॥ २० ॥
तब सुख आनंद आत्मा, जे मन थिर मेरा होइ।
दादू निहचल राम सौं, जे करि जाणैं कोइ ॥ २१ ॥
मन निर्मल थिर होत है, राम नाम आनंद।
दादू दरसन पाइये, पूरण परमानंद ॥ २२ ॥

विषया विरक्त

दादू यौं फूटे थैं सारा भया, संधे संधि मिलाइ।
बाहुड़ि विषै न भूंचिये, तौ कबहूं फूटि न जाइ ॥ २३ ॥
दादू यहु मन भूला सो गली, नरक जाण के घाट।
अब मन अविगत नाथ सौं, गुरू दिखाई बाट ॥ २४ ॥
दादू मन सुध स्याबत आपणां, निहचल होवै हाथि।
तौ इहां ही आनंद है, सदा निरंजन साथि ॥ २५ ॥

---

२०—जैसे गारे में दिया हुवा कीला मजबूत नहीं होता, वैसे ही भोगवासनामें लगा मन भी स्थिर नहीं होता। बिना निश्चल आत्मा का आश्रय लिये नित्य विनाशी संसार के भोगपदार्थों की ओर प्रवृत्त मनमें स्थिरता नहीं आसकती।

२३—फूटे थै सारा भया=विविध वासनाओं की आसक्ति से भग्न मन आत्माभिमुख होने पर साबत होगया। संधे संधि मिलाइ=व्यष्टि को समष्टि में, कार्यरूप स्थूल मन को कारणरूप चेतन में मिलाइये। बाहुडि विषै न भूंचिये=मनको वापिस विषयवासना में न आने दे।

२४—सो गली = विषयवासना की आसक्तिरूप गली। अविगतनाथ = परिपूर्ण ब्रह्म। बाट=राह, मार्ग।

२५—स्याबत = एकरस, आत्मनिष्ठ। निहचल होवे हाथ=विषयरहित हो आत्मनिष्ठ रहे।

जब मन लागै राम सौं, तब अनत काहे को जाइ।
दादू पाणी लूंण ज्यूं, असैं रहै समाइ॥ २६॥

करुणा

सो कुछ हमथैं ना भया, जापरि रीझै राम।
दादू इस संसार मैं, हम आये बेकाम॥ २७॥
क्या मुंह ले हंसि बोलिये, दादू दीजै रोइ।
जनम अमोलिक आपणा, चले अकारथ खोइ॥ २८॥
जा करणि जगि जीजिये, सो पद हिरदै नांहिं।
दादू हरि की भगति बिन, धिग जीवन कलि मांहिं॥ २९॥
कीया मन का भावता, मेटी आग्याकार।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार॥ ३०॥
इंद्रिय स्वारथ सब किया, मन मांगै सो दीन्ह।
जा कारणि जगि सिरजिया, सो दादू कछू न कीन्ह॥ ३१॥
कीया था इस काम कौं, सेवा कारणि साज।
दादू भूला, बंदगी, सरचा न एकौ काज॥ ३२॥

---

२६—अनत = बाह्य साधन, सकाम कर्म।

२७—सो कुछ=मानवजीवन की सफलता।

२९—जीजिये = जीवत रहे, मृत्युभय से मुक्त हो। धिग = निन्द्य, फालतू।

३०—भरतार = भरण पोषण करने वाला।

३१—सिरजिया = पैदा किया।

३२—साज=शृङ्गार। बंदगी=सेवा। सरचा=सिद्ध हुआ।

मन प्रमोध

बादिहि जनम गंवाइया, कीया बहुत विकार।
यहु मन सुथिर ना भया, जहं दादू निजसार ॥ ३३ ॥

विषया अतृपति

दादू जनि विष पीवै बावरे, दिन दिन बाढै रोग।
देखत ही मरि जाइगा, तज विषिया रस भोग ॥ ३४ ॥

मनहरि भावरि

दादू सब कुछ विलसतां, खातां पीतां होइ।
दादू मन का भावता, कहि समझावै कोइ ॥ ३५ ॥
दादू मन का भावता, मेरी कहै बलाइ।
साच राम का भावता, दादू कहै सुणि आइ ॥ ३६ ॥
ये सब मन का भावता, जे कुछ कीजै आन।
मन गहि राखै एक सौं, दादू साधु सुजान ॥ ३७ ॥

---

३३—बादिहि = फालतू, निरर्थक। जहं दादू निज सार = जहां अपना सारभूत चेतन स्थित है।

३४—विष पीवै=विषय वासना का जहर। बाढै = अधिक हो।

३५—विलसतां = भोगते हुये। सब कुछ=लीन अलीन, उचित अनुचित, विहित निषिद्ध। भावता=चाहता।

३६—मनका भावता, मेरी कहै बलाइ=मन जैसी इच्छा करे उस तरह मैं मनको छूट नहीं देसकता।

३७—जे कुछ कीजै आन=आत्मचिंतनको त्याग और जो कुछ किया जाता है वह सब मन की इच्छा के अनुकूल है।

जे कुछ भावै राम कौं, सो तत कहि समझाइ।
दादू मन का भावता, सब को कहै बनाइ ॥ ३८ ॥

चानक उपदेश

पैंडे पग चालै नहीं, होइ रह्या गलियार।
राम रथि निबहै नहीं, खैबे कौं हुसियार ॥ ३९ ॥

पर परमोध

दादू का परमोधै आन कौं, आपण बहिया जात।
औरौं को अमृत कहै, आपण ही विष खात ॥ ४० ॥

दादू पंचौं का मुख मूल है, मुख का मनवां होइ।
यहु मन राखै जतन करि, साध कहावै सोइ ॥ ४१ ॥

दादू जब लग मन के दोइ गुण, तब लग निपनां नांहिं।
द्वै गुण मन के मिटि गये, तब निपनां मिलि मांहिं ॥ ४२ ॥

---

३८—सो तत कहि समझाइ=वही तत्व वास्तविक सत्य समझाइये।

दृष्टान्त—*सब सों पूछी पातशाह, भिश्ती हूं कै नांहिं।*
*सवन कही रुख राखि के, फकर कही तब जाहिं ॥*

३९—भावार्थ—पैंडे=सही रास्ते आत्मचिन्तन में लगता नहीं, विषयविकारों में दौड रहा है। आत्मनिष्ठ हो नामचिन्तनरूप रथ में जुड़ता नहीं, विषयभोगरूपी दांणा रातब खाने में हुशियार है।

४०—परमोधै=उपदेश दे। आन=और। बहिया जात=फिसल रहा है।

दृष्टान्त—*मिश्र कथा दिनकै करै, मांस दोष कहे नांहिं।*
*एक दिवस सुत कह दई, नरक जांहि जे खांहिं ॥*

४१—पंचों का मुख मूल है=पांचों ज्ञानेन्द्रियों का मूल मुख है।

४२—दोइ गुण=मोह तथा आसक्ति। निपनां=शुद्ध, बीजानुकूल।

काचा पाका जब लगै, तब लग अंतर होइ।
काचा पाका दूरि करि, दादू एकै सोइ॥ ४३॥

मधि निरपष

सहज रूप मन का भया, तब द्वै द्वै मिटी तरंग।
ताता सीला समि भया, तब दादू एकै अंग॥ ४४॥

मन

दादू बहु रूपी मन तब लगै, जब लग माया रंग।
जब मन लागा राम सौं, तब दादू एकै अंग॥ ४५॥
हीरा मन परि राखिये, तब दूजा चढै न रंग।
दादू यौं मन थिर भया, अविनासी के संग॥ ४६॥
सुख दुख सब झाँई पड़ै, तब लग काचा मन।
दादू कुछ व्यापै नहीं, तब मन भया रतन॥ ४७॥
पाका मन डोलै नहीं, निहचल रहै समाइ।
काचा मन दह दिसि फिरै, चंचल चहुं दिसि जाइ॥ ४८॥

---

४३—काचापाका=मोह आसक्ति। अन्तर=भेदभाव, द्वैतवृत्ति।

४४—सहज=स्वाभाविक। द्वै द्वै=राग द्वेष, काम क्रोध, लोभलाभ आदि। तातासीला=रज सत्व गुणादि से युक्त। समिभया=गुण रहित हुआ।

४६—हीरा मन पर राखिये=हीरे की तरह शुद्ध आत्मज्योति है वही मन में राखिये, स्थिर करिये।

४७—सब झाँई परै=प्रतिबिम्बित हो, प्रतीत हो।

४८—पाका मन=समाधि द्वारा स्थिरता प्राप्त। काचा मन=चंचल मन। चहुँदिशि=अन्तःकरण चतुष्टय में।

विरक्तता

सीप सुधा रस ले रहै, पिवै न खारा नीर।
माहैं मोती नीपजै, दादू बंद सरीर ॥ ४९ ॥

मन

दादू मन पंगुल भया सब गुण गये बिलाइ।
है काया नौ जौवनी, मन बूढा ह्वै जाइ ॥ ५० ॥

जाचक

मन इन्द्रिय आंधा किया, घट मैं लहरि उठाइ।
सांई सतगुरु छाड़ि करि, देखि दिवानां जाइ ॥ ५१ ॥
दादू राम बिना मन रंक है, जाचै तीन्यूं लोक।
जब मन लागा राम सों, तब भागे दालिद दोष ॥ ५२ ॥
इन्द्रिय का आधीन मन, जीव जंत सब जाचै।
तिणें तिणें के आगै दादू, तिहूं लोक फिरि नांचै ॥ ५३ ॥

---

४९—सीप सुधा रस ले रहै=जैसें खारे समुद्र में रहकर भी सीप स्वातिबूंद को ग्रहण कर अपने अन्दर समाहित करलेती हैं। दादू बंद शरीर=दादूजी कहते हैं हे साधक, सीपी की तरह मन को आत्मा के अधिष्ठान में विलय करने का अभ्यास कर।

५०—पंगुल भया=राग और वासना के पैर रहित। नौजौवनी=युवा।

५१—आंधा किया=ज्ञानविचार के नेत्र ढक भोग के व्यामोह में अन्धा बनाया। देखि दिवाना जाइ=पागल हुवा दान, व्रत, तीर्थादि में भाग रहा है।

५२—रंक=दरिद्री, कंगाल। जाँचै=याचना करै, मांगता फिरै। दालिद दोष=वासना की अपूर्तिजन्य दरिद्रता के दोष।

५३—जीव जन्त सब जाचै=खर, कुत्ते, भैरूं, महामाया, पीपल, तुलसी आदि सबसे मांगनी करता है। तिणे तिणे के=छोटे से छोटे, नाकुछ के आगे।

इन्द्रिय आपणै बसि करै, सो काहे जाचण जाइ ।
दादू सुस्थिर आत्मा, आसणि बैसै आइ ॥ ५४ ॥
मन मनसा दोन्यौं मिले, तब जीव कीया भांड ।
पंचौं का फेरया फिरै, माया नचावै रांड ॥ ५५ ॥
नकटी आगै नकटा नाचै, नकटी ताल बजावै ।
नकटी आगै नकटा गावै, नकटी नकटा भावै ॥ ५६ ॥

आनलकनि बिभिचार

पांचौं इन्द्रिय भूत हैं, मनवा खेतरपाल ।
मनसा देवी पूजिये, दादू तीन्यौं काल ॥ ५७ ॥
जीवत लूटै जगत सब, मृत्तक लूटैं देव ।
दादू कहां पुकारिये, करि करि मूये सेव ॥ ५८ ॥

---

५४—सुस्थिर आत्मा = स्थितप्रज्ञ । आसण = हृदय में, स्वस्वरूप में ।
दृष्टान्त—*अली पास गये पातशाह, लीन्हे हाथ समेट ।*
*अरु जैसिंह द्वि सैन है, जलपत्त्री सुचि पेठ ॥*

५५—मन मनसा=संकल्प और वासना ।

५६—भावार्थ—नकटी=मलिन वासना से प्रेरित, नकटा=वासनामय मन नाच रहा है । नकटी=माया ताल बजा रही है ।

५७—भावार्थ—सामान्य संसारी भूत, देवों, खेतरपालों की पूजा करता है और उसीमें अपना जीवन खोता है, ऐसे ही अज्ञानियों के लिये पांच इन्द्रियां, चंचल विषयाभिमुख मन, मलिन वासना ये भूत, क्षेत्रपाल तथा देवीरूपी आराध्य हो उनके जीवन को समाप्त करते हैं ।

५८—भावार्थ—मन की लूट का आलंकारिक चित्रण है । इन्द्रिय मन मनसा जीते हुये जगत के सब प्राणियों को लूटते हैं मरने पर यज्ञादि कर्मान्य देवता के भोगों में बंटवारा कराते हैं या पित्र आदि बन कर लूट करते हैं ।

मन

अगनि धूम ज्यौं नीकलै, देखत सबै बिलाइ।
त्यौं मन बिछुट्या रामसौं, दह दिसि बीखरि जाइ ॥ ५९

घर छाडे जब का गया, मन बहुरि न आया।
दादू अगनि के धूम ज्यौं, खुर खोज न पाया ॥ ६० ॥

सब काहू के होत है, तन मन पसरैं जाइ।
ऐसा कोई एक है, उलटा मांहि समाइ ॥ ६१ ॥

क्यौं करि उलटा आणिये, पसरि गया मन फेरि।
दादू डोरी सहज की, यौं आणै घरि घेरि ॥ ६२ ॥

दादू साध सबद सौं मिलि रहै, मन राखै बिलमाइ।
साध सबद बिन क्यौं रहै, तबही बीखरि जाइ ॥ ६३ ॥

एक निरंजन नांव सौं, कै साधू संगति मांहिं।
दादू मन बिलमाइये, दूजा कोई नांहिं ॥ ६४ ॥

---

५९—बिछुट्या=दूर हुवा। बीखरि जाइ=विविध वासना में फैल जाय।

६०—घर छाड़े=चेतनप्रतिबिम्बित हृदयरूपी घर।

६१—तन मन पसरें=तन क्रिया द्वारा, मन वृत्ति द्वारा पसरें=फैले।

६२—डोरी सहज की=समाधि द्वारा, स्थितप्रज्ञरूपी डोरी से। आणै=लावे।

६३—साध शब्द=हरि गुरु सन्त वचन। बिलमाइ=भुलाय। बीखरि जाय=अनात्माकार होजाय।

दृष्टान्त—*शाहपुत्र मदनवस नारी, नग परखत अवस्था गुदारी।*
*यौं जो साध शब्द मन लावै, तो पति परमेश्वर सहजैं पावै॥*

तन मैं मन आवै नहीं, निस दिन बाहरि जाइ।
दादू मेरा जिव दुखी, रहै नहीं ल्यौ लाइ ॥ ६५ ॥
तन मैं मन आवै नहीं, चंचल चहुं दिसि जाइ।
दादू मेरा जिव दुखी रहै, न राम समाइ ॥ ६६ ॥
कोटि जतन करि करि मुये, यहु मन दह दिसि जाइ।
राम नाम रोक्या रहै, नांहीं आन उपाइ ॥ ६७ ॥
यहु मन बहु बकवाद सौं, बाइ भूत ह्वै जाइ।
दादू बहुत न बोलिये, सहजैं रहै समाइ ॥ ६८ ॥

सुमिरण नाम चितावनी

भूला भौंदू फेरि मन, मूरिख मुग्ध गंवार।
सुमिरि सनेही आपणा, आत्म का आधार ॥ ६९ ॥
मन माणिक मूरिख राखिरे, जण जण हाथि न देहु।
दादू पारिख जौहरी राम साध दोइ लेहु ॥ ७० ॥

मन

मन मृगा मारै सदा, ताका मीठा मांस।
दादू खाइबे कौं हिल्या, तातैं आन उदास ॥ ७१ ॥

---

६५—तनमैं=हृदयप्रदेश में। बाहरि=विषयाभिमुख।

६६—चहुंदिसि=अन्तःकरण चतुष्टय।

६८—बहु बकवादि=अति कथन, नानाविध वासना।

६९—फेरि मन=मन को पलट, अन्तर्मुख कर।

७०—जण जण हाथ न देहु=नाना प्रकार की विषयवासना में मत उलझने दो।

७१—भावार्थ—चंचल मन इन्द्रियरूपी मृगों को सदा मारता है, विषयों में प्रवृत्त करता है क्योंकि विषय प्रवृत्तिजन्य अनुकूलता है वह मीठा मांस है, मन इसमें हिल गया है

मन प्रमोध

कह्या हमारा मानि मन, पापी परहरि काम।
विषिया का संग छाडि दे, दादू कहि रे राम॥ ७२॥
केता कहि समझाइये, मानै नहीं निलज्ज।
मूरख मन समझै नहीं, कीये काज अकज्ज॥ ७३॥

साच

मनही मंजन कीजिये, दादू दरपण देह।
माँहैं मूरति देखिये, इहिं औसरि करि लेह॥ ७४॥

आनलगनि बिभिचार

तबही कारा होत है, हरि बिन चितवत आन।
क्या कहिये समझै नहीं, दादू सिखवत ज्ञान॥ ७५॥

साच

दादू पाणी धोवैं बावरे, मन का मैल न जाइ।
मन निर्मल तब होइगा, जब हरि के गुण गाइ॥ ७६॥

---

जिससे आत्मचिंतन से उदास है।

अन्य अर्थ—मनरूपी मृग को सदा मारै=अभ्यास से स्थिर करे, मन को स्थिर करने में जो आनन्द आता है वह मीठे मांस की तरह सुस्वादु है। साधक इस तरह मनोनिग्रह का व्यसनी हो गया है, इस सांसारिक प्रवृत्तियों से उदासीन रहता है।

७२—परिहरि = छोड़; दूर कर। काम=वाह्य विषय संकल्प।

७३—निलज=बेशर्म। अकज्ज=अनीति के काम।

७४—मनही मंजन कीजिये, दादू दरपण देह=मन को ही विषयवासना से रहित कर शुद्ध करिये जिससे शुद्ध अन्तःकरण दर्पणवत् हो जाय। इहि औसरि=इसी मनुष्य जन्ममें।

७५—कारा = सदोष, मैला। सिखवत् = सिखाते हुए भी।

७६—पाणी धोवे = तीर्थादि के जल से धोवे।

दादू ध्यान धरें का होत है; जे मन नहिं निर्मल होइ।
तौ बग सबहीं ऊधरैं, जे इहि बिधि सीझै कोइ ॥ ७७ ॥
दादू ध्यान धरें का होत है, जे मन का मैल न जाइ।
बग मीनी का ध्यान धरि, पसू बिचारे खाइ ॥ ७८ ॥
दादू काले थैं धौला भया, दिल दरिया मैं धोइ।
मालिक सेती मिलि रह्या, सहजैं निर्मल होइ ॥ ७९ ॥
दादू जिसका दर्पण ऊजला, सो दर्सण देखै मांहिं।
जिस की मैली आरसी, सो मुख देखै नांहिं ॥ ८० ॥
दादू निर्मल सुध मन, हरि रंगि राता होइ।
दादू कंचन करि लिया, काच कहे नहिं कोइ ॥ ८१ ॥
यहु मन अपना थिर नहीं, करि नहिं जाणैं कोइ।
दादू निर्मल देव की, सेवा क्यौं करि होइ ॥ ८२ ॥

---

७७—ध्यान धरे=चिंतवन किये। बग=बगुला। उधरै=उद्धार को प्राप्त हो। सीझै कोइ=कार्यसिद्ध हो।

दृष्टान्त—चार ठगोरे भेख धरि, गांव खिनायो एक।
सेट लाइक के खो कह्यो, धनक वनक जानैक ॥

दृष्टान्त—७८—राम लषण पैंया गये, बग मच्छी सम्वाद।
मीनी गल गिरग्यो पसी, मूसा खारा स्वाद ॥

७९—काले थैं=मैले से। धोला=विशुद्ध, निर्मल। दिल दरिया में धोइ=दिल को आत्म-चिंतनरूपी दरिया में धो।

८०—दर्पण ऊजला=मन शुद्ध हो। मैली आरसी=मन रूपी आरसी विषयवासना से मैली है।

८१—रंगिराता=प्रेम में मस्त। कंचन=शुद्ध स्वर्णवत् निर्मल।

दादू यहु मन तीन्यूं लोक मैं, अरस परस सब होइ ।
देही की रष्या करै, हम जिनि भीटै कोइ ॥ ८३ ॥
दादू देह जतन करि राखिये, मन राख्या नहिं जाइ ।
उत्तम मध्यम बासना, भला बुरा सब खाइ ॥ ८४ ॥
दादू हाडौं मुख भर्‌या, चाम रह्‌या लपटाइ ।
मांहै जिभ्या मांस की, ताही सेती खाइ ॥ ८५ ॥
नवौं दुवारे नरक के, निसदिन बहै बलाइ ।
सुचि कहां लौं कीजिये, राम सुमिरि गुण गाइ ॥ ८६ ॥
प्राणी तन मन मिलि रह्‌या, इन्द्रिय सकल बिकार ।
दादू ब्रह्मा सुद्र घरि, कहां रहै आचार ॥ ८७ ॥

---

८३—अरस परस=एकमेक । भीटै = छूवे, स्पर्श करे ।

८४—जतन = उपाय, छूआछूत आदि ।

दृष्टान्त—*सूरसेन पूजा करे, पीये पूर्छी आइ ।*
*जीन करावत मूढ़ वै, मोची के घर आइ ॥*

८५—हाडौं मुख भर्‌या=मुंह दांतों से भरा है । जीभ मांस की है उसीसे सब कुछ खाया जाता है ।

८६—नवों दुवारे = कान, आंख, नाक, मुंह मलमूत्रेन्द्रिय । वहै बलाइ=मैला झरता रहता है । सुचि=पवित्र ।

८७—साखी ८३ से इस साखी तक विचारहीन आचार की निरर्थकता का कथन किया गया है । साखी ८७ में इसका स्पष्ट निर्देश किया गया है । भावार्थ—मनुष्य का मन विषय से चंचल हो कहां का कहां जाता रहता है । इन्द्रियों की प्रवृत्ति विकारों में है ही मानसिक दशा में जब मन शूद्र चाण्डाल आदि के स्त्री सहवासादि में चला जाता है तब केवल स्थूल शरीर के आचार से छूआछूत से क्या सिद्धि है ?

दादू जीवै पलक मैं, मरतां कल्प विहाइ।
दादू यहु मन मसकरा, जिनि कोई पतियाइ॥ ८८॥
दादू मूवा मन हम जीवत देख्या, जैसे मड़हट भूत।
मूवां पीछै उठि उठि लागै, ऐसा मेरा पूत॥ ८९॥
निह्चल करतां जुग गये, चंचल तबही होइ।
दादू पसरै पलक मैं, यहु मन मारै मोहिं॥ ९०॥
दादू यहु मन मींडका, जल सौं जीवै सोइ।
दादू यहु मन रिंद है, जनि रु पतीजै कोइ॥ ९१॥
माँहैं सूखिम ह्वै रहै, बाहरि पसारै अंग।
पवन लागि पौढा भया, काला नाग भुवंग॥ ९२॥

---

८८—दादू जीवै पलक में=विषय की अनुकूलता मिलते ही मन पलभर में उसकी ओर खिंच जाता है। मरतां कल्प विहाइ=मनको वश में करने में कल्प के कल्प बीत जाते हैं। पतियाइ=भरोसा करे।

८९—मूवा=मरा। मड़हट=मरघट, श्मशान।

९०—यहु मन मारै मोहि=साधना में या साधना के परिपाक के पश्चात् भी यदि मनको विषय से दूर रखने की सावधानी न रक्खे तो मन साधकको मार लेता है, पुनः विषयासक्त कर देता है।

९१—रिंद है=जिंद है, राक्षस है। जनि रु पतीजै कोइ=यह निग्रह में आगया है इस तरह का भरोसा न करे अपितु मनोनिग्रह के पश्चात् भी मन की स्थिति के बारे में सजग रहे।

९२—माँहै सूषिम ह्वै रहे=मनकी वासना बाहर से निवृत्त हो जाने पर भी अन्तःकरण में अति सूक्ष्म रूप में छिपी रहती है। पवन लाग पोढा भया=जैसे शिथिल सर्प मृतवत् घायल किया हुआ सर्प पवन=परवाई हवा लगते ही पोढा=युवा की तरह

आसै बिश्राम

**सुपना तब लग देखिये, जब लग चंचल होइ।**
**जब निहचल लागा नांवसौं, तब सुपना नांहीं कोइ॥ ९३॥**
**जागत जहं जहं मन रहै, सोवत तहं तहं जाइ।**
**दादू जे जे मनि बसै, सोइ सोइ देखै आइ॥ ९४॥**
**दादू जे जे चित बसै, सोइ सोइ आवै चीति।**
**बाहर भीतर देखिये, जाही सेती प्रीति॥ ९५॥**

---

सबल हो जाता है. इसी तरह निग्रहीत मन भी विषय अनुकूलता से तुरन्त विषयासक्त होने की ओर दौड़ पड़ता है।

दृष्टान्त—*द्वै करसा हल छोड कै, बैठे तरु तल जाय॥*
*डरयो एक को मूँ दियो, वरस गये दरसाइ॥१॥*

९३—सुपना तब लग देखिये=स्वप्न जैसे मिथ्या है उसी तरह विषयभोग भी मिथ्या है क्यों कि उनसे कभी तृप्ति नहीं होती। यदि विषयभोग वस्तुतः सच्चे हो तो उनकी प्राप्ति के पश्चात् उपरति हो जानी चाहिये पर होती नहीं अतः जब तक मन विषयभोग में लगा हुआ है तब तक उन मिथ्या भोगों में लगा रहता है।

दृष्टान्त—*सिष हरख्यो स्वप्नो निरखि, मकै गयो मैं पीर॥*
*मूढ रोय आधो नहीं, ले जासी विष तीर॥१॥*

९४—से १०२ तक मनकी वासनारूप दशा का वर्णन है। मन में जैसी वासनायें घर किये रहती हैं वैसे ही स्वप्न आते हैं वैसी ही क्रिया तथा कर्म बनते हैं।

दृष्टान्त—*बनियो एक वजाज, जाग्रत में सौदो कियो।*
*बन्यो न स्वप्न समाज, फाड्यो चीर चटाक दे॥*

९५—जाही सेती प्रीति = मन वासनाभिमुख है तो भोगविषयों में प्रीति करेगा, मन अन्तर्मुख है तो आत्मचिंतन में लगेगा।

दृष्टान्त—९६—*गोपीचन्द वर्ष सहस में, गुरु संग आयो गांव।*
*मोह उदै भयो देख सब, वाय आदि बहु ठांव॥*

सावण हरिया देखिये, मन चित ध्यान लगाइ ।
दादू केते जुग गये, तौभी हर्‌या न जाइ ॥ ९६ ॥

जिसकी सुरति जहां रहै, तिस का तहं विश्राम ।
भावै माया मोह मैं, भावै आतम राम ॥ ९७ ॥

जहं मन राखै जीवतां, मरतां तिस घरि जाइ ।
दादू बासा प्राण का, जहं पहली रह्‌या समाइ ॥ ९८ ॥

जहां सुरति तहं जीव है, जहं नांहीं तहं नांहिं ।
गुण निर्गुण जहं राखिये, दादू घर वन मांहिं ॥ ९९ ॥

जहां सुरति तहं जीव है, आदि अंत अस्थान ।
माया ब्रह्म जहं राखिये, दादू तहं बिश्राम ॥ १०० ॥

जहां सुरति तहं जीव है, जीवन मरण जिस ठौर ।
विष अमृत जहं राखिये, दादू नांही और ॥ १०१ ॥

---

९७—सुरती=वृत्ति ।

९८—जहां पहिली रहा समाई=जीवतकाल में मन की वासना जैसे काम में प्रबल थी, मरने पर प्राण का निवास प्रायः वैसे ही काम की प्रवृत्ति वाले शरीर में होता है ।

दृष्टान्त—*गये द्वारिका दोय जन, वस्तु निराणे राख ।*
*एक मुंवो इक आइयो, साप हुवों कहि भाखि ॥*

१००—आदि अन्त अस्थान = आदि से अन्त तक मन की वृत्ति जिस ओर प्रबल रहती है, वही मनोवृत्ति का आधारस्थान है ।

दृष्टान्त—*ऊर्ध्व बाहु द्वै के विचे, बणिये राखी म्होर ।*
*लातन तें दोनों लडें, आइ लई उंहि ठोर ॥*

जहां सुरति तहं जीव है, जहं जाणै तहं जाइ ।
गम अगम जहं राखियै, दादू तहां समाइ ॥ १०२ ॥

मन मनसा का भाव है, अन्त फलैगा सोई ।
जब दादू बाणक बण्या, तब आसै आसण होइ ॥ १०३ ॥

जप तप करणी करि गये, सरग पहूंचे जाइ ।
दादू मन की बासना, नरक पड़े फिरि आइ ॥ १०४ ॥

पाका काचा ह्वै गया, जीत्या हारै डाव ।
अंत काल गाफिल भया, दादू फिसले पांव ॥ १०५ ॥

दादू यहु मन पंगुल पंचदिन, सब काहू का होइ ।
दादू उतरि अकास थैं, धरती आया सोइ ॥ १०६ ॥

---

१०२—जहं जांणै तंह जाइ=जिसमें आसक्ति है, अनुराग है, मनोवृत्ति उसी ओर जाती है ।

१०३—जब दादू बाणक बण्या=जब कार्यसिद्धि का संयोग बैठने को होता है, तब आसै आसण होइ=तब मन का आसन=बैठना उचित स्थान पर आत्माभिमुख होता है ।

१०४—सरग=स्वर्ग, परलोक ।

दृष्टान्त—*वणिक वाम गौणे लियां, आयो जल अस्थान ।*
*जल पीवत तपसी गही, अदल बदल दिये दान ॥*

१०५—डाव=दाव । गाफिल=असावधान । दादू फिसले पांव=अपने लक्ष्य से च्युत हो गया ।

१०६—पंगुल=पांगला, विरक्त । अकास=ब्रह्मभूमि, आत्मनिष्ठा से । धरती आया=नीचे आया, विषयभूमि में ।

ऐसा कोई एक मन, मरै सो जीवै नांहिं।
दादू ऐसे बहुत हैं, फिरि आवैं कलि मांहिं ॥ १०७ ॥

जगजन विदित

बरतण एकै भांति सब, दादू संत असंत।
भिन्न भाव अंतर घणा, मनसा तहं गच्छन्त ॥ १०८ ॥
यहु मन मारै मोमिनां, यहु मन मारै मीर।
यहु मन मारै साधिकां, यहु मन मारै पीर ॥ १०९ ॥
दादू मन मारे मुनियर मुये, सुर नर किये संहार।
ब्रह्मा विष्णु महेश सब, राखै सिरजनहार ॥ ११० ॥
मन बाहे मुनियर बहे, ब्रह्मा विष्णु महेस।
सिध साधक जोगी जती, दादू देश विदेश ॥ १११

मनमुखी मान

पूजा मान बड़ाइयां, आदर मांगै मन।
राम गहै, सब परहरै, सोई साधू जन ॥ ११२ ॥

---

१०७—फिर आवे कलि मांहिं=वापिस काम्य कर्मों की कलन में आ रुपता है।

१०८—बरतण=देहरूपी भांड। एकै भांति=एकसा, पंचभूतात्मक। भिन्नभाव=भेद-भाव।

१०९—मोमिनां=त्यागी, फकीर। मीर=समृद्धिशाली। साधिकों=अच्छे अच्छे साधक। पीर=पहुंचे हुये।

दृष्टान्त—*वाजिंद के शिष वचन को, रहस्य लह्यो नहिं कोइ ॥*
*मनको मान उतार तू, अपणी गति कह सोइ ॥१॥*

११०—मुनियर=बडे-बडे मुनि, विश्वामित्रादि। सुरनर=इन्द्रादि।

१११—सिध=गोरखनाथ। योगी=मच्छेन्द्रनाथ। जती=सोमकार्तिक। बहे=चलाये, डिगाये।

११२—पूजा=सेवा। मान=प्रतिष्ठा। बडाइयां=प्रशंसा। आदर=सत्कार। परहरै=त्यागै, छोडे।

जहां जहां आदर पाइये, तहां तहां जिव जाइ।
बिन आदर दीजै राम रस, छाडि हलाहल खाइ ॥ ११३ ॥

करणी बिना कथणी

करणी [किरका को नहीं, कथणी अनंत अपार।
दादू यूं क्यूं पाइये, रे मन मूढ गंवार ॥ ११४ ॥

मन

अब मन निरभै घरि नहीं, भै मैं बैठा आइ।
निरभै संग थैं बीछुट्या, तब काइर ह्वै जाइ ॥ ११५ ॥
जब मन मृत्तक ह्वै रहै, इन्द्रिय बल भागा।
काया के सब गुण तजै, निरंजन लागा ॥ ११६ ॥
आदि अन्त मधि एक रस, टूटै नहिं धागा।
दादू एकै रह गया, तब जाणी जागा ॥ ११७ ॥

---

११३—हलाहल=कामक्रोधादि विषयरूपी जहर।

दृष्टान्त—गुरुदादू की कथा में. आवत इक रजपूत ॥
बोले आरो पावणू, सो उठ गयो कपूत ॥१॥

११४—करणी=व्यावहारिक काम। किरका=कण, रंच, लेश। कथणी=कहनी।

११५—निरभै घर नहीं=भयरहित आत्माभिमुख स्थिति में नहीं है। भैमें=विषयभोग में।
विछुट्या=अलग हुआ। कायर=डरपोक।

११६—सब गुण तजै=विषयवासना, अहंकार, देहाध्यास।

११७—टूटै नहिं धागा=वृत्तिका प्रवाहरूप धागा आत्मा की ओर से कभी टूटे नहीं।

दादू मन के शीष मुख, हस्त पांव हैं जीव ।
श्रवण नेत्र रसना रटै, दादू पाया पीव ॥ ११८ ॥
जा के नवाये सब नवैं, सोई सिर करि जाणि ।
जा के बुलाये बोलिये, सोई मुख परवाणि ॥ ११९ ॥
जा के सुणाये सब सुणैं, सोई श्रवण सयान ।
जा के दिखाये देखिये, सोई नैन सुजान ॥ १२० ॥
दादू मन ही माया ऊपजै, मन ही माया जाइ ।
मन ही राता राम सौं, मन ही रह्या समाइ ॥ १२१ ॥
दादू मन ही मरणा ऊपजै, मन ही मरणा खाइ ।
मन अविनासी ह्वै रह्या, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ १२२ ॥
मनही सनमुख नूर है, मन ही सनमुख तेज ।
मन ही सनमुख जोति है, मन ही सनमुख सेज ॥ १२३ ॥

---

११८—इस साषी में मन को आत्माभिमुख किस तरह होना चाहिए उसका दिग्दर्शन है । इन्द्रिय सहित मन एकरस=आर चिन्तन में लगता है तभी अपने लक्ष्य की=पीव की प्राप्ति होती है ।

११९—१२०—इन दो साखियों में व्यापकचेतन से अभेद होने की स्थिति का निरूपण किया है । परवाणि=प्रामाणिक ।

१२१ से १२४ तक—मन की दो दशाओं की स्थिति दिखाई है । मलिन मन है उसी में विषयवासना पनपती है, उसी में भ्रान्ति को आश्रय मिलता है, उसी में जन्म मृत्यु भय बन्धन के कारण बनते रहते हैं । मनकी पवित्रता से ही मनकी मलिनता निवृत्त होती है, अध्यास रहित मनकी दशा ही माया रहित स्थिति है, मन की स्थिरता से ही जन्म-मृत्युकारक कर्ममय बन्धनों से मुक्ति मिलती है ।

**मन ही सौं मन थिर भया, मन ही सौं मन लाइ ।**
**मन ही सौं मन मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ ॥ १२४ ॥**

**इति मन को अंग सम्पूर्ण ॥**

# अथ सूक्ष्मजन्म को अङ्ग ॥ ११ ॥

**दादू नमो नमो निरंजनम् , नमस्कार गुरु देवतः ।**
**वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारं गतः ॥ १ ॥**
**दादू चौरासी लख जीव की, प्रकृति या घट मांहिं ।**
**अनेक जन्म दिन में करै, कोई जाणै नांहिं ॥ २ ॥**

---

मनकी साधना ही मनको स्थिर बनाती है, इस तरह मन को शुद्ध आत्मनिष्ठ स्थिर कर लिया जाय तो मनका जो चांचल्य है वह मन ही में विलीन हो जाता है। यही आत्मस्थिति की दशा है, इस अवस्था में पहुंच जाने पर ही मनकी दौड़-भाग समाप्त होती है।

❀ मनको अंग सम्पूर्ण ❀

२— घटमांहिं=घटमें। अनेक जन्म दिन में करै=विविध प्रकार की वासना में मनका आना यही विविध जन्म है। कोई=नहि मूर्खवृत्ति वाला।

दृष्टान्त—*सन्त सुनी ले आइयो, पुनि मंजारी सूर ॥*
*काया ले नृप घर गयो, देख चरित गुरु सूर ॥*

दादू जेते गुण व्यापै जीव कौ, ते ते ही अवतार।
आवागमन यहु दूरि करि, समरथ सिरजनहार ॥ ३ ॥

सब गुण सब ही जीव के, दादू व्यापै आइ।
घट माँहैं जामैं मरै, कोइ न जाणै ताहि ॥ ४ ॥

जीव जन्म जाणै नहीं, पलक पलक में होइ।
चौरासी लख भोगवै, दादू लखै न कोइ ॥ ५ ॥

अनेक रूप दिन के करै, यहु मन आवै जाइ।
आवागमन मन का मिटै, तब दादू रहै समाइ ॥ ६ ॥

निसवासरि यहु मन चलै, सूक्ष्म जीव संहार।
दादू मन थिर कीजिये, आतम लेहु उबारि ॥ ७ ॥

---

३—गुण=प्रवृत्ति। व्यापै=उत्पन्न हो। आवागवन=वृत्ति का व्यवहार।

४—सब गुण=सब तरह के स्वभाव। घट माँहैं जामैं मरै=अन्तःकरण में ही वासना की उत्पत्ति=जन्म, निवृत्ति=मृत्यु होती रहती है। कोइ न जाणै=वासना में उलझा हुआ मनुष्य।

५—भोगवै=भोगे।

६—रूप = आकृति, जन्म।

७—निसवासर=रातदिन, अनवरत। सूक्ष्मजीव संहार=संकल्पमय मन की भावना है वही जीवरूप है उसका बार बार बदलते जाना यह उसका संहार है।

दृष्टान्त—*यह साखी चरचा समय, दूंढ्या प्रति कहि नाखि ॥*
*गुरुदादू के वचन सुनि, मस्तक चरणों राखि ॥१॥*

कबहूँ पावक कबहूँ पाणी, धर अम्बर गुण बाइ ।
कबहूँ कुंजर कबहूँ कीड़ी, नर पसुवा ह्वै जाइ ॥ ८ ॥

इति सूक्ष्मजन्म को अंग सम्पूर्ण ॥

---

# अथ माया को अङ्ग ॥ १२ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवतः ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

साहिब है पर हम नहीं, सब जग आवै जाइ ।
दादू सुपिना देखिये, जागत गया बिलाइ ॥ २ ॥

---

८—भावार्थ—मनमें कभी पावक=क्रोध की वृत्ति, कभी पाणी=काम की वृत्ति, कभी धरती=जड़ता की वृत्ति, कभी अंबर=शून्यतावत् विचारहीनता की स्थिति, कभी वाइ=वायु की तरह बोलने का बवंडर, कभी कुंजर=काममय वृत्ति, कभी कीडी की तरह छिद्रान्वेषण की भावना ऐसे वासना के बदलाव से विविध, पशुतुल्य आचरण करने की वृत्तियें उत्पन्न होती रहती हैं, इसी से मनुष्य पशुवत् हो जाता है ।

❀ *सूक्ष्मजन्म को अंग सम्पूर्ण* ❀

---

२—साहिब है पर हम नहीं=अस्ति भाति निजरूप ब्रह्म है, प्रकृति व उसका कार्य अनित्य है ।

दादू माया का सुख पंच दिन, गर्ब्यों कहा गंवार ।
सुपिनै पायौ राजधन, जात न लागै बार ॥ ३ ॥
दादू सुपिनैं सूता प्राणिया, कीये भोग विलास ।
जागत झूठा ह्वै गया, ताकी कैसी आस ॥ ४ ॥
यौं माया का सुख मन करै, सेजाँ सुन्दरि पास ।
अंति काल आया गया, दादू होहु उदास ॥ ५ ॥
जे नांहीं सो देखिये, सूता सुपिनै मांहिं ।
दादू झूठा ह्वै गया, जागै तौ कुछ नांहिं ॥ ६ ॥
यहु सब माया मृग जल, झूठा झिलिमिलि होइ ।
दादू चिलका देखि करि, सत करि जाना सोइ ॥ ७ ॥
झूठा झिलिमिलि मृग जल, पाणी करि लीया ।
दादू जग प्यासा मरै, पशु प्राणी पीया ॥ ८ ॥

---

३—पंच दिन=थोडे से जीवन में । गर्ब्यों=अभिमान किया ।

दृष्टांत—*स्वप्ना केरी सुन्दरी, नाख्यो कूवा माँहि ॥*
*जैमल प्रत्यक्ष भोगवे. क्यू न नरक गति जाहि ॥१॥*

५—अन्तकाल आया गया=देह के विनाश के साथ ही सब धन आया गया हो जाता है ।

६—जे नांहीं सो देखिये=जिसकी स्थिति नहीं जो वस्तुतः नहीं है, उसको सच समझ रहे हैं ।

दृष्टान्त—*कोउक जन पकवान दे, सुपने भरे भंडार ॥*
*न्यूँति बुलायो नगर सब, सोइ देख हूँ बार ॥१॥*

७—मृगजल=मृगमरीचिका, बालू में पानी की तरह की चमक । चिलका=प्रतिबिम्ब ।

८—जगप्यासा मरे पशु प्राणी पीया=पशुवत् विषयप्रवृत्ति वाले पामर प्राणी विषयवारि पीकर भी प्यासे मरते रहते हैं वासना नित्य नई जगती रहती है ।

पति पहचान

छुलावा छुलि जाइगा, सुपिना बाजी सोइ।
दादू देखि न भूलिये, यहु निज रूप न होइ॥ ९॥

माया

सुपिनै सब कुछ देखिये, जागै तो कुछ नांहिं।
अैसा यहु संसार है, समझि देखि मन मांहिं॥ १०॥
दादू ज्यौं कुछ सुपिनै देखिये, तैसा यहु संसार।
अैसा आपा जाणिये, फूल्यो कहा गंवार॥ ११॥
दादू जतन जतन करि राखिये, दिढ गहि आतम मूल।
दूजा दृष्टि न देखिये, सबही सेमल फूल॥ १२॥
दादू नैनहुं भरि नहिं देखिये, सब माया का रूप।
तहं ले नैना राखिये, जहां है तत्त अनूप॥ १३॥
हस्ती, हयवर, धन देखि करि, फूल्यौ अंग न माइ।
भेरि दमामा एक दिन, सबही छोडे जाइ॥ १४॥

९—छुलावा=भूत की कल्पना। सुपना=स्वप्न। वाजी=वाजीगरी। इनके भुलावे में नहीं आना।

दृष्टान्त—*गांव वासि इक ठौर लांख, सावां संध्या कीन॥*
*भूत कपट भोजन धर्‍यो, ताला पांटत चीन्ह॥१॥*

११—ऐसा आपा जाणिये=आप-जिन वस्तुओं में अभिमान किया है उन्हें स्वप्नवत् मिथ्या जानिये।

१२—दिढगहि=मजबूती से ग्रहण कर। आतम मूल=अपने प्राप्त करने का कारण।

१३—नैनहु भरि नहिं देखिये=[illegible] प्रवृत्ति से स्त्री व सम्पत्ति को न देखे।

१४—हयवर=घोड़े। दमामा=नगारा।

दादू माया बिहड़ै देखतां, काया संगि न जाइ।
कृतिम बिहड़ै बावरे, अजरावर ल्यौ लाइ ॥ १५ ॥
दादू माया का बल देखि करि, आया अति अहंकार।
अंध भया सूझै नहीं, का करिहै सिरजनहार ॥ १६ ॥

विरक्तता

मन मनसा माया रती, पंच तत्त परकास।
चौदह तीन्यूं लोक सब, दादू होइ उदास ॥ १७ ॥
माया देखे मन खुसी, हिरदै होइ विकास।
दादू यह गति जीव की, अंत न पूगै आस ॥ १८ ॥
मन की मूठि न मांडिये, माया के नीसाण।
पीछै ही पछिताहुगे, दादू खूटे बाण ॥ १९ ॥

---

१५—बिहडे=बदले, परिवर्तन हो। अजरावर=जन्म मृत्यु रहित है।

१६—दृष्टान्त—*गूजर सूं गूजरि कहे, पुत्तरि मम सुत ब्याहि ॥*
*काढ लई माया जबै, बहुरिन भाख्यो ताहि ॥१*

१७—मन मनसा माया रति=मनकी नाना मनसा=लालसा है उसी की माया व्यामोह में रति=आसक्ति है। माया के पश्चात्, पंच तत्त परकास=पंचभूतात्मक स्थूल शरीर है उसका अध्यास हो जाता है। इन दोनों का परित्याग कर चौदह-भवन, तीनों लोक की सम्पदा से उदासीन हो तभी सच्चा वैराग्य होता है।

१८—विकास=अति प्रसन्नता। अन्त न पूगै आस=इस दशा से अन्तिम इच्छा=सुख शांति उसकी आशा पूरी नहीं होती।

१९—भावार्थ—मन को माया की लालसा में ही दृढ न करिये, उसी को जीवन का निसाण=चिन्ह या लक्ष्य बना लोगे तो श्वास रूपी बाण खतम हो जाने पर पछताने के सिवाय और कुछ हाथ न लगेगा।

### शिश्न स्वाद

कुछ खातां कुछ खेलतां, कुछ सोवत दिन जाइ ।
कुछ विषिया रस विलसतां, दादू गये बिलाइ ॥ २० ॥

### संगति कुसंगति

माखण मन पाहण भया, माया रस पीया ।
पाहण मन माखण भया, राम रस लीया ॥ २१ ॥
दादू माया सौं मन बीगड़्या, ज्यौं कांजी करि दूध ।
है कोई संसार मैं, मन करि देवै सूध ॥ २२ ॥
गंदी सौं गंदा भया, यौं गंदा सब कोइ ।
दादू लागै खूब सौं, तो खूब सरीखा होइ ॥ २३ ॥
दादू माया सौं मन रत भया, विषै रसि माता ।
दादू सांचा छाडि करि झूठे रंगि राता ॥ २४ ॥
माया के संगि जे गये, ते बहुरि न आये ।
दादू माया डाकणी, इन केते खाये ॥ २५ ॥

---

२१—माखण=दया करुणा प्रेम से कोमल मन । पाहण=कठोर, दुराग्रही ।

२२—बीगड़्या=खराब हुआ । सुध=शुद्ध, स्वच्छ ।

२३—खूबसौं=सबसे श्रेष्ठ, सबका कारणरूप ईश्वर ।

दृष्टान्त—*लाहौर मियां मीर के, पातशाह गयो पास ॥*
*रामदास जी देख धन, भ्रष्टा कही रु उदास ॥१॥*

२४—रत = आसक्त ।

२५—ते बहुरि न आये = वे पलट कर सत्सङ्ग में न आ सके । केते= अनन्त,बेशुमार ।

दृष्टान्त—*फकीर माया देख के, हेला दिये हजार ॥*
*या डाकरण खा जायगी, दोडा नाखे मारि ॥१॥*

दादू माया मोट विकार की, कोइ न सकई डारि ।
बहि बहि मूये बापुरे, गये बहुत पचि हारि ॥ २६ ॥

दादू रूप राग गुण आणसरे, जहं माया तहं जाइ ।
विद्या अक्षर पंडिता, तहां रहे घर छाइ ॥ २७ ॥

साध न कोई पग भरै, कबहूं राज दुवारि ।
दादू उलटा आप मैं, बैठा ब्रह्म बिचारि ॥ २८ ॥

आसै विश्राम

दादू अपणे अपणे घरि गये, आपा अंग बिचारि ।
सहकामी माया मिले, निहकामी ब्रह्म संभारि ॥ २९ ॥

माया

दादू माया मगन जु ह्वै रहे, हम से जीव अपार ।
माया मोहै ले रही, डूबे काली धार ॥ ३० ॥

---

२६—मोट=भारी बोझ । बहि बहि = उस बोझ को उठा उठा ।

२७—रूप, राग, गुण, अणसरे=सामान्यतः पंडित, अपठित, मायाजन्य रूप, राग=शब्द व वाणी तथा गुणों के अनुसार ही वर्ताव करते हैं। विद्वान है तो, निरक्षर है तो, तहां रहे घर छाइ=उस माया ही की प्राप्ति के लिये नाना प्रकार के उपाय में लगे हुये हैं ।

दृष्टांत—*सूरदास गुण चार ले, गये पातशाह पास ॥*
*अश्व सजा भोजन रु नर, करी परीक्षा जास ॥१॥*

२८—पगभरै=कदम उठावें, माया की ओर देखता तक नहीं ।

२९—अपणे अपणे घर गये=जैसी प्रवृत्ति थी उसी के अनुसार माया चाहने वाले उसी के लिये जन्म खोकर चले गये, आत्मपरिचय के जिज्ञासु साधना कर जन्म सफल कर चले ।

३०—माया मोहै ले रही = माया ने अपनी चाह में ही उनको लगाये रखा । उसका

शिश्न स्वाद

दादू विषै के कारणैं रूप राते रहैं, नैंन नापाक यौं कीन्ह भाई।
बदीकी बात सुणत सारा दिन, श्रवण नापाक यौं कीन्ह जाई ॥३१॥
स्वाद के कारणैं लुब्धि लागी रहै, जिभ्या नापाक यौं कीन्ह खाई।
भोग के कारणैं भूख लागी रहै, अंग नापाक यौं कीन्ह लाई ॥३२॥

माया

दादू नगरी चैन तब, जब इकराजी होइ।
दोइ राजी दुख दुंद मैं, सुखी न बैसे कोइ ॥ ३३ ॥
इकराजी आनंद है, नगरी निहचल बास।
राजा परजा सुखि बसैं, दादू जोति प्रकास ॥ ३४ ॥

शिश्न स्वाद

जैसे कुंजर काम बस, आप बंधाणा आइ।
ऐसै दादू हम भये, क्यौं करि निकस्या जाइ ॥ ३५ ॥

---

परिणाम हुआ, डुबे काली धार = सर्वथा जन्म को व्यर्थ खोकर जाना पड़ा यही कालीधार है।

३१—३२—रूपरति = सुन्दर रूप पर रीझे रहे। नापाक = गन्दे। बदीकी=दूसरे की अपकीर्ति। लुब्धि=लोभ। भूख=वासना या चाह।

दृष्टान्त—*गंधारी सुत वज्र करि, अमी नैन की डारि ॥*
*जल्लण जट कंचन की, वाट वनक के सार ॥१॥*

३३—चैन=सुख। इकराजी = एक ही का राज्य। बैसे=बैठे।

३४—निहचल वास = शान्ति का स्थान। राजा=मन, अन्तःकरण। परजा = इन्द्रियें तथा तीन गुण।

३५—कुंजर = हाथी। बंधाणा=बन्धन में आया। निकस्या = निकला।

जैसै मर्कट जीभ रस, आप बंधाणा अंध।
ऐसै दादू हम भये, क्यौं करि छूटै फंध ॥ ३६ ॥
ज्यौं सूवा सुख कारणै, बंध्या मूरिख मांहिं।
ऐसे दादू हम भये, क्यौं ही निकसै नाहिं ॥ ३७ ॥
जैसे अंध अज्ञान गृह, बंध्या मूरख स्वादि।
ऐसै दादू हम भये, जन्म गंवाया बादि ॥ ३८ ॥
दादू बूड़ि रह्या रे बापुरे, माया गृह के कूप।
मोह्या कनक अरु कामिनी, नाना विधि के रूप ॥ ३९ ॥

शिश्न स्वाद

दादू स्वादि लागि संसार सब, देखत परलै जाइ।
इन्द्रिय स्वारथ सांच तजि, सबै बंधाणे आइ ॥ ४० ॥
विष सुख मांहैं रमि रहै, माया हित चित लाइ।
सोई संत जन ऊबरै, स्वाद छाडि गुण गाइ ॥ ४१ ॥

---

३६—मर्कट=बंदर। फंध=फंदा, फांसी।

३७—सूवा=तोता। बंध्या=पींजरे में आया। क्यौंही=कैसे ही। निकसै=निकले।

३८—अंध=विवेक विचार के नेत्र रहित। अज्ञानगृह=अज्ञान के मोह में। बादि=व्यर्थ, फालतू।

३९—बूड़िरह्या=डूबा हुआ, अतिलिप्त।

४०—परलै जाइ=विनाश को प्राप्त होता जाता है। इन्द्रिय स्वारथ=इन्द्रियों की विषय वृत्ति में।

दृष्टांत—*बुध कर चारों बस किये, धर्म धजा बल जास ॥*
*साह रीझ सर्वस दियो, सु कहि जगजीवणदास ॥१॥*

४१—विष सुख=विषय जन्य झूठे सुख में। रमिरहे=भूल रहे। ऊबरै=तिरै, बचे।

आसक्तता मोह

दादू झूठी काया झूठा घर, झूठा यहु परिवार।
झूठी माया देखि करि, फूल्यौ कहा गंवार ॥ ४२ ॥

विरक्तता

दादू झूठा संसार, झूठा परिवार।
झूठा घरबार झूठा नरनारि, तहां मन मानैं ॥
झूठा कुल जात, झूठा पितु मात।
झूठा बंधु भ्रात, झूठा तन गात, सति करि जानैं ॥
झूठा सब धंध, झूठा सब फंध।
झूठा सब अंध, झूठा जाचंद, कहा मधु छानैं ॥
दादू भागि, झूठ सब घर त्यागि।
जागिरे जागि, देखि दिवानैं ॥ ४३ ॥

आसक्तता

दादू झूठे तन कै कारनै, कीये बहुत विकार।
गृह दारा धन संपदा, पूत कुटुंब परिवार ॥ ४४ ॥

---

स्वाद छाडि=विषयभोग की चाह को त्याग कर।

४२—फूल्यो कहा=क्यों गर्व कर रहा है।

४३—मनमानैं = मन उन्हीं में लगा है। धंध = दुनिया का व्यवहार। फंध = जातिकुल कुटुम्ब के नाना सम्बन्ध। अंध = ज्ञान, विचारनेत्र हीन। जाचंद = जन्म से ही अंध। मधु=मग, रास्ता। छानैं=छाँट रहा है। दिवानैं=झूठे को सच समझने वाले पागल।

४४—विकार = विकृतिमें। गृह=घर। दारा=स्त्री।

ता कारण हति आतमा, झूट कपट अहंकार।
सो माटी मिल जाइगा, बिसर्‌या सिरजनहार ॥ ४५ ॥

विरक्तता

दादू जन्म गया सब देखतां, झूठी के संगि लागि।
साचे प्रीतम कौं मिलै, भागि सकै तौ भागि ॥ ४६ ॥

दादू गतं गृहं गतं धनं, गतं दारा सुत जोबनं।
गतं माता गतं पिता, गतं बंधु सज्जनं ॥
गतं आपा, गतं परा, गतं संसार कत रंजनं।
भजसि भजसि रे मन, परब्रह्म निरंजनं ॥ ४७ ॥

आसक्तता मोह

जीवौं माहैं जीव रहैं, ऐसा माया मोह।
सांई सूधा सब गया, दादू नहिं अन्दोह ॥ ४८ ॥

विरक्तता

माया मगहर खेत खर, सदगति कदे न होई।
जे बंचे ते देवता, राम सरीखे सोइ ॥ ४९ ॥

---

४५—ता कारण = उनके लिये। हति आतमा = अपना विनाश किया। बिसर्‌या=भूला।

४६—झूठी के=असत्य माया के। भागि सकै = दूर हो सके।

४७—गतं=नाशवान। दारा = स्त्री। सुत = पुत्र। जोबनं = जवानी। आपा=अहंकार। परा=परभेद वृत्ति। कत रंजनं=कहां आसक्त हो रहा है। भजसि=चिन्तन कर।

४८—जीवौं मांहीं जीव रहैं=जिन मनुष्यों का मन सुत, स्त्री, बन्धुबान्धवादि में ही रहता है। सांई सूधा सब गया=उनका परमेश्वर प्राप्ति के मौके सहित सब कुछ चला गया। अंदोह=शंका।

४९—माया मगहर खेत खर = माया है वह मगहर की भूमि की तरह है उसी में उलझ

दादू इस संसार सौं, निमख न कीजै नेह।
जामण मरण आवटणा, छिन छिन दाझै देह ॥ ५० ॥

आसक्तता मोह

दादू मोह संसार कौ, विहरै तन मन प्राण।
दादू छूटै ग्यान करि, को साधू सन्त सुजाण ॥ ५१ ॥
मन हस्ती माया हस्तिनी, सघन बन संसार।
तामै निभैं ह्वै रह्या, दादू मुग्ध गंवार ॥ ५२ ॥

काम

दादू काम कठिन घटि चोर है, घर फोड़ै दिन रात।
सोवत साह न जागई, तत्त वस्तु ले जात ॥ ५३ ॥

---

मरने वाले खर बनते हैं। सद्गति = उत्तमगति, स्वस्वरूप प्राप्ति। वंचे=बच जाय। सरीखे=समान।

५०—निमख = पलभर जामण मरण आवटणां=जन्म मृत्यु की आग में झुलसना। दाझै= दग्ध हो, सन्तप्त हो।

दृष्टान्त—*सेवग द्वारे साध रहे, ता रज में भयो भूत ॥*
*दूजा सेती आ कही, छाडि चल्यो अवधूत ॥१॥*

५१—विहरै=बेर दे, चीर देता है।

५२—सघन वन = बीहड़ जंगल। मुग्ध=मोहान्ध मनुष्य। गंवार = मूढ, मूर्ख।

५३—घटि=अन्तःकरण में। घरफौड़े = वृत्तिको भंग करता है। सोवत साह = मनुष्य संसार की मोहनिद्रा में सोरहा है। तत्त वस्तु ले जात = मानव जीवनरूप तत्व वस्तु है उसको खतम कर देता है, अथवा काम रूपी चोर, तत्व वस्तु = मनुष्यका शील तथा ब्रह्मचर्य है उसका विनाश कर देता है।

दृष्टान्त—*अरहा सरहा अश्व को, अगम ले गयो चोर।*
*कह जगजीवण रामजी, पड्यो नगर में सोर ॥१॥*

काम कठिन घटि चोर है, मूसै भरे भंडार।
सोवत ही ले जाइगा, चेतनि पहरे चार॥ ५४॥
ज्यौं घुन लागै काठ कौं, लोहै लागै काट।
काम किया घट जाजरा, दादू बारह बाट॥ ५५॥

करतूति कर्म

राहु गिलै ज्यौं चन्द कौं, गहण गिलै ज्यौं सूर।
कर्म गिलै यौं जीव कौं, नखसिख लागै पूर॥ ५६॥
दादू चन्द गिलै जब राहु कौं, गहण गिलै जब सूर।
जीव गिलै जब कर्म कौं, राम रह्या भरपूर॥ ५७॥
कर्म कुहाड़ा, अंग बन, काटत बारंबार।
अपने हाथौं आप कौं, काटत है संसार॥ ५८॥

---

४—काम कठिन=काम रूपी प्रबल। मूसै=छीन.ले। भरे भंडार=मानव जीवन विविध साधनों का-ज्ञान, वैराग्य, योग, भक्ति आदि का भंडार है। चेतनी=चैतन्य हो, सावधान हो। पहरै चार=सब समय, चारों पहर।

५—दादू बारह बाट=कामजन्य भोग की वासना से मनोवृत्ति विविध कामनाओं द्वारा अनेक प्रकार की होजाती है, यही बारह बाट है।

६—गिलै=ग्रासे, निगल जाय। कर्म गिलै=सकाम कर्म इसी तरह मनुष्यको निगल जाता है।

७—भावार्थ--यदि मनोवृत्ति आत्माभिमुख बना लीजाय तो उपर्युक्त स्थिति उलट जायगी। तब जीव कर्म को सकाम वासनामय कर्म को निगल जायगा=भोग वृत्ति से विरक्त होगा, तभी राम आत्मराम से भरपूर बनेगा।

८—कर्म कुहाड़ा=वासनामय कर्म कुहाड़े के समान हैं। अंगवन=मनुष्यजन्मरूपी शरीर वन है।

स्वकीय मित्रसत्रुता

आपै मारै आपकौं, यहु जीव बिचारा।
साहिब राखणहार है, सो हितू हमारा ॥ ५९ ॥
आपै मारै आप कौं, आप आपकौं खाइ।
आपै अपणा काल है, दादू कहि समझाइ ॥ ६० ॥

करतूति कर्म

मरिबे की सब ऊपजै, जीवे की कुछ नांहिं।
जीबे की जाणै नहीं, मरिबे की मन मांहिं ॥ ६१ ॥
बंध्या बहुत विकार सौं, सर्व पाप का मूल।
ढाहै सब आकार कौं, दादू यहु अस्थूल ॥ ६२ ॥

काम

दादू यहु तौ दोजग देखिये, काम क्रोध अहंकार।
राति दिवस जरिबौ करै आपा अगनि विकार ॥ ६३ ॥
विषै हलाहल खाइ करि, सब जग मरि मरि जाइ।
दादू मुहरा नांव ले, रिदै राखि ल्यौ लाइ ॥ ६४ ॥

---

५९—आपे मारे आप को = यह मन आपही अनेक वासनाओं में पड़ अपना नाश करता है।

६१—सब ऊपजै = नाना भोग की वासना पैदा होती रहती है।

६२—भावार्थ—काम की प्रवृत्ति के साथ और अनेक विकार अनुबन्धी रहते हैं, इससे काम सब पाप की जड़ है। यह इस स्थूल शरीर के आकार का विनाशकारी है।

६३—यहु तौ = यही तो। दोजग = दोजख, नरक। आपा = अभिमान।

६४—विषै हलाहल = काम, क्रोध, लोभादि प्रवृत्तिजन्य विषयभोग ही हलाहल जहर है। मुहरा = जहर मोरा, विष उतारने वाला। रिदै = हृदय में, अन्तःकरण में।

जेती विषिया विलसिये, तेती हत्या होइ।
प्रत्तषि मांणस मारिये, सकल सिरोमणि सोइ ॥ ६५ ॥

विषिया का रस मद भया, नर नारी का मास।
माया माते मद पिया, किया जन्म का नाश ॥ ६६ ॥

खाडा बूजी भगति है, लोहरवाडा मांहिं।
परगट पैड़ाइत बसैं, तहं संत काहे कौं जांहिं ॥ ६७ ॥

माया

सांपणि एक सब जीव कौं, आगै पीछै खाइ।
दादू कहि उपगार करि, कोइ जन ऊबरि जाइ ॥ ६८ ॥

---

६५—जेती विषया विलसिये=जितना विषयभोग में वीर्य विनाश करेंगे। प्रत्तषि=प्रत्यक्ष। मांणस=मानव। सकल सिरोमणि सोइ=मानव जीवन सबसे शिरोमणि है वह वीर्य से पैदा होता है। वैसे वीर्य अनवरत भोग में प्रवृत्त हो नष्ट करना अनन्त मानव मारने का कारण बनना है।

६६—विषिया का रस मद भया=विषयभोग की प्रवृत्ति उसका परिणाम वही मद है। नरनारी का मास=नरनारी का संयोग है यह मांससदृश है। जो विषय रत होते हैं वे इस मद मांस का सेवन कर जन्म को नष्ट करते हैं।

६७—भावार्थ—स्त्री संभोग की आसक्ति बहुत बुरी है स्त्री का अपत्यमार्ग जिसमें रक्त झरता रहता है पैंडायत धाडेती के सदृश है जो पुरुषके वीर्यरूपी धन को खोसना लूटता रहता है। ऐसे मार्ग=इस आसक्ति में तेरे सन्तजन= तेरे साधक उपासक काहेको जाँय ?

६८—सांपणी=स्त्री रूपी सांपणी, माया रूपी सांपणी। कहि उपगार करि=किसी सद्गुरु के कथन के उपकार से।

दादू खाये सांपणी, क्यौं करि जीवैं लोग ।
राम मन्त्र जन गारड़ी, जीवै इहि संजोग ॥ ६९ ॥
दादू माया कारणि जग मरै, पीव के कारण कोइ ।
देखौ ज्यौं जग परजलै, निमख न न्यारा होइ ॥ ७० ॥

जाया माया मोहनी

काल कनक अरु कामिनी, परहरि इन का संग ।
दादू सब जग जलि मुवा, ज्यौं दीपक ज्योति पतंग ॥ ७१ ॥
दादू जहां कनक अरु कामिनी, तहं जीव पतंगे जांहिं ।
आगि अनन्त सूझै नहीं, जलि जलि मूये मांहिं ॥ ७२ ॥

चितकपटी

घट मांहैं माया घणी, बाहरि त्यागी होइ ।
फाटी कंथा पहरि करि, चिह्न करै सब कोइ ॥ ७३ ॥

---

६९—राम मंत्र जन गारडी=सांप-विष उतारने वालेके सदृश सद्गुरु गारड़ी = राम मंत्र आत्मचिंतनरूपी स्मरण उपदेश से उस विष का निवारण कर देते हैं। ऐसा संयोग बने तो कोई जीव जीवित हो।

७०—पीवके=परमेश्वर के, स्वस्वरूप की प्राप्ति के लिये। परजलै = प्रज्वलित होरहा है।

७१—परिहरि = दूरकरि।

दृष्टान्त—*सुमनि सुमनि असुर व्है, मरे न काहूं भांति।*
*ब्रह्मा तिलतलि रूप लै, तिलोत्तमा कियो अंति॥*

७२—आगि अनंत = काम, लोभ, राग, द्वेष आदि की तरह-तरह की आग जलती रहती है।

७३—घणी = बहुत, नानाविध वासना। बाहरि = दिखावे में। चिन्ह = सांग।

**काया राखै बंद दे, मन दह दिसि खेलै।**
**दादू कनक अरु कामिनी, माया नहिं मेलै॥ ७४॥**
**दर्शन पहरै मूंड मुंडावै, दुनियां दीन त्याग दिखलावै।**
**दादू मनसौं मीठी मुखसौं खारी, माया त्यागी कहैं बजारी।७५।**

माया

**माया मन्दिर मीच का, तामैं पैठा धाइ।**
**अंध भया सूझै नहीं, साध कहैं समझाइ॥ ७६॥**

विरक्तता

**दादू केते जलि मुये, इस जोगी की आगि।**
**दादू दूरै बंचिये, जोगी के संगि लागि॥ ७७॥**

---

७४—काया राखै बन्द दे=शरीर का तो नेति, धोती आसनादि द्वारा, पञ्चधूणी, पञ्चधारा आदि से निग्रह करता है। माया न हे मेलै=ऐसे बाहरी दिखावे वाले की माया निवृत्त नहीं होती। बजारी=शहरी लोक।

दृष्टान्त—*जैसे नर आवते चरस को धकाय दूरि ऐंच के चरण में सर्वस ले निवारि है।*
*जैसे जोगी मन्त्री ते ऊखालि कै कढाइ हार वाड़ लेत आप मूंदि कैसी भांति जारि है॥*
*जैसे द्रुम पातझर होत है वसन्त काल दूने फल-फूल लेन काज निज डारि हैं।*
*तैसी विधि जग को दिढाइ त्याग पहली मूढ लेन आप दाइ ऐसे त्याग काज मारि है॥*

*ज्यों मीढा हटि दूर लगि, पुनः फेट ले आइ।*
*तैसे त्याग दिखाइ के, मूढ सर्वस ले जाइ॥*

७६—मन्दिर = घर। मीचका=मौत का। पैठा=प्रवेश किया।

दृष्टान्त—*रची कोटड़ी सीत की, शिष्य परीक्षा काज।*
*मरं मर गये सु मूढ नर, एक न लख्यो इलाज॥*

७७—इस जोगी की आगि = इस परमेश्वर की मायारूप अग्नि में। दूरै बंचिये = दूर से ही रहिये। जोगी के संग लागि=ईश्वरचिन्तन में या आत्मपरिचय में लग कर।

माया

ज्यौं जल मैंणी माछली, तैसा यहु संसार।
माया माते जीव सब, दादू मरत न बार ॥ ७८ ॥
दादू माया फोड़े नैन दोइ, राम न सूझै काल।
साध पुकारे मेर चढ़ि, देखि अग्नि की झाल ॥ ७९ ॥

जाया माया मोहनी

बिना भुवंगम हम डसे, बिन जल डूबे जाइ।
बिनहीं पावक ज्यौं जले, दादू कुछ न बसाइ ॥ ८० ॥

विषय अतृप्ति

दादू अमृतरूपी आप है, और सबै विष झाल।
राषणहारा राम है, दादू दूजा काल ॥ ८१ ॥

जग भुलावनि

बाजी चिहर रचाइ करि, रह्या अपरछन होइ।
माया पट पड़दा दिया, तार्थे लखै न कोइ ॥ ८२ ॥

---

७८—ज्यों जल मैंणी माछली = जैसे जल में रहने वाली मछली उसी में रहना चाहती है।

७९—नैनदोइ=वाह्य, आभ्यन्तर। मेरचढ़ि=माया की मर्यादा को लांघकर। झाल=झल या ज्वाला।

८०—विना भुवंगम हम डसे = बिना सांप के जायामाया से या काम रूपी सर्प से हम डसे गये। बिनजल=विषय रूप जल में। विनही पावक = शोकाग्नि, चिंताग्नि। बसाइ=बस नहीं।

८२—बाजी चिहर रचाय करि = संसार रूप अद्भुत बाजीगरी फैलाकर। अपरछन=अदृश्य, ओझल। पट = अज्ञानरूपी पट।

दादू बाहे देखतां, ढिगही ढोरी लाइ।
पिव पिव करते सब गये, आपा दे न दिखाइ॥ ८३॥
मैं चाहूं सो ना मिलै, साहिब का दीदार।
दादू बाजी बहुत है, नाना रंग अपार॥ ८४॥
हम चाहैं सो ना मिलै, औ बहुतेरा आहि।
दादू मन माने नहीं, केता आवै जांहि॥ ८५॥
बाजी मोहे जीव सब, हम कौं भुरकी बाहि।
दादू कैसी करि गया, आपण रह्या छिपाइ॥ ८६॥
दादू सांई सति है, दूजा भरम विकार।
नांव निरंजन निर्मला, दूजा घोर अंधार॥ ८७॥
दादू सो धन लीजिये, जे तुम्ह सेती होइ।
माया बांधे केई मुये, पूरा पड़्या न कोइ॥ ८८॥

---

८३—दादू बाहे देखतां=देखते २ माया ने बहका दिये। ढिगही ढोरी लाइ=अपने ही लिये आकर्षित करके। पिव पिव करते=माया के लिये ही पुकारते पुकारते। आपा दे न दिखाइ=आपा=अपना सच्चा स्वरूप उनको दिखाता नहीं।

८४—बाजी बहुत है=माया रचित भुलावा अपार है।

८५—औ बहुतेरा आहि=नामरूप प्रपंच बहुत ही बेशुमार हैं। केता आवे जांहि=कितने संकल्प मायिक प्रवृत्ति से आते हैं और कितने जाते रहते हैं।

८६—बाजी=बाजीगरी, माया। भुरकी बाहि=भुरकी डाल वशमें कर।

८७—दूजा=नामरूप वस्तु। अंधार=अन्धकार, अविद्याजन्य अज्ञान।

८८—सोधन=आत्मपरिचय रूप धन। माया बांधे=माया में लिप्त हुए। पूरा पड़्या=सफल हुआ।

दादू जे हम छाड़ैं हाथ थैं, सो तुम लिया पसारि।
जे हम लेवैं प्रीति सौं, सो तुम दीया डारि॥ ८९॥

दादू हीरा पग सौं ठेलि करि, कंकर को कर लीन्ह।
पारब्रह्म को छाड़ि करि, जीवन सौं हित कीन्ह॥ ९०॥

दादू सब को बणिजै खारखलि, हीरा कोई न ले।
हीरा लेगा जौहरी, जो मांगै सो दे॥ ९१॥

माया

दड़ी दोट ज्यौं मारिये, तिहूं लोक मैं फेरि।
धुरि पहुँचे संतोष है, दादू चढिबा मेरि॥ ९२॥

---

८९—भावार्थ—दादूजी महाराज कहते हैं कि सन्त=साधक जन, जिस माया का परित्याग करते हैं, उसी को तुम अज्ञान व्यावृत बुद्धि वाले हाथ पसार–पसार लेते हो अत्यन्त तीव्र चाह से ग्रहण करते हो। हम जिस स्वस्वरुप को निरतिशय प्रेम से ग्रहण करते हैं तुम उसको भ्रांति से उपेक्षा कर छोड़ देते हो।

९०—हीरा = हरिनाम व स्वस्वरूप। कंकर = अनात्मपदार्थ रूपी पत्थर के टुकड़े। जीवन सौं = सम्बन्धियों से।

९१—बणिजै = व्यापार करे, लाभ प्राप्ति का कार्य। खारखलि = विषय, भोग। हीरा = निर्गुणनाम। जौहरी=सन्तजिज्ञासु, रतन परीक्षक।

९२—भावार्थ—जैसे गेंद दोच=चोट या प्रहार से इधर उधर घुमाई जाती है वैसे ही माया अपने में आसक्त मनुष्यों को नाना विषयवासना के प्रहार कर, इधर उधर घुमाती रहती है। जैसे गेंद को पाले के=लक्ष स्थान पर पहुंचने से कुछ विश्राम मिलता है, वैसे ही प्राणी आत्म पदार्थ की पहिचान कर उसमें अपनी वृत्ति को स्थिर करे तभी शान्ति मिल सकती है। ऐसी शांति तभी मिल पाती है, जब कि गुणात्मक माया के मेरू को उलंघन किया जाय।

अनल पंखि आकास कौं, माया मेर उलंघि ।
दादू उलटे पंथ चढि, जाइ विलंबे अंगि ॥ ९३ ॥
दादू माया आगै जीव सब, ठाढे रहे कर जोड़ि ।
जिन सिरजे जल बून्द सौं, तासौं बैठे तोड़ि ॥ ९४ ॥
सुर नर मुनियर बसि किये, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सकल लोक के सिर खड़ी, साधू के पग हेठ ॥ ९५ ॥
दादू माया चेरी संत की, दासी उस दरबार ।
ठकुराणी सब जगत की, तीन्यूं लोक मंझार ॥ ९६ ॥
दादू माया दासी संत की, साकत की सिरताज ।
साकत सेती भांडणी, संतौं सेती लाज ॥ ९७ ॥
चारि पदारथ मुक्ति बापुरी, अठ सिधि नौ निधि चेरी ।
माया दासी ताकै आगै, जहं भक्ति निरंजन तेरी ॥ ९८ ॥
दादू ज्यौं आवै त्यौं जाइ विचारी ।
विलसी वितड़ी न माथै मारी ॥ ९९ ॥

९३—भावार्थ—जैसे अनल पत्ती आकाश से उतर, इधर उधर घूम पुनः आकाश में स्वस्थान पर पहुंच कर ही विश्राम पाता है, वैसे ही त्रिगुणात्मक माया के मेरु को उल्लंघन कर मन इन्द्रियों को आत्माभिमुख उलट, अपने अधिष्ठान चेतन में वृत्ति स्थिर कर उसीमें लगना सार्थक है ।

९५—सुर=इन्द्रादि तथा दिक्पाल । नर=मनुष्य । मुनिवर=अगस्त्यादि । हेट=नीचे ।

९६—चेरी=दासी, वशवर्ती । दासी=सतोगुण द्वारा संतों की सेवा करने वाली । ठकुराणी=मालकिन, रज तमःप्रवृत्ति द्वारा प्रेरक ।

९७—साकत=फलविशेष की प्राप्ति वाले साधक ।

९८—चारि पदारथ=धर्म, अर्थ, काम, मोत्त । मुक्ति=निरन्तर सुखानुबन्ध ।

दादू माया सब गहले किये, चौरासी लख जीव ।
ताका चेरी क्या करै, जे रंगि राते पीव ॥ १०० ॥

विरक्तता

दादू माया वैरिणि जीव की, जनि कौ लावै प्रीति ।
माया देखै नरक करि, यहु संतन की रीति ॥ १०१ ॥

माया

माया मति चकचाल करि, चंचल कीये जीव ।
माया माते मद पिया, दादू विसरया पीव ॥ १०२ ॥

आन लगनि विभिचार

जणे जणे की राम की, घर घर की नारी ।
पतिव्रता नहिं पीव की, सो माथै मारी ॥ १०३ ॥

विलसी=भोगी, सदुपयोग में ली। वितड़ी=वितीर्ण की, दानादि द्वारा बांटी। न माथै मारी=आसक्ति नहीं की।

१००—गहले=पागल, उन्मत्त ।

दृष्टान्त—मियां मीर के पातशाह, दर्शन आयो डेर ॥
च्यार सिद्ध धन देखके, उठे तुरत मुंह फेर ॥१॥

१०१—जनि कौ=कोई नहीं। नरककरि=दुखरूप नरक की दाता।

१०२—मति=बुद्धि। चकचाल=चंचल, भ्रान्त मदपिया=विषयभोगरूपी वारुणी का पान किया।

दृष्टांत—बन्दे सर्बत पीवता, सुमरे मुंहमद वाक्य ॥
तू निकस्यो मम फंदते, पिछले मारो ताक ॥१॥

१०३—सो माथै मारी=संत साधकों ने उस माया का-जिसकी स्थिति पिछले तीन चरणों में दिखाई है-माथैमारी=सर्वथा परित्याग किया।

जण जण के उठि पीछै लागै, घरि घरि भरमत डोलै।
ताथैं दादू खाइ तमाचे, मांदल दुहु मुखि बोलै ॥ १०४ ॥

विषय विरक्तता

जे नर कामिनि परिहरैं, ते छूटैं गर्भवास।
दादू ऊंधे मुख नहीं, रहै निरंजन पास ॥ १०५ ॥
रोक न राखै झूठ न भाखै, दादू खरचै खाइ।
नदी पूर प्रवाह ज्यों, माया आवै जाइ ॥ १०६ ॥
सदिका सिरजनहार का, केता आवै जाइ।
दादू धन संचै नहीं, बैठा खुलावै खाइ ॥ १०७ ॥

माया

जोगणि ह्वै जोगी गहे, सोफणि व्है करि सेख।
भगतणि ह्वै भगता गहे, करि करि नाना भेख ॥ १०८ ॥

---

१०४—भावार्थ—स्त्रीवशवर्त्ती मनुष्य मृदंग की तरह दोनों ओर थप्पड़ खाकर बोलते हैं अर्थात् उसके कथन तथा संसर्ग से विविध दुःखों के तमाचे खाते रहते हैं। उसीकी प्रेरणापूर्ति के लिये मनुष्य जणे-जणे की गुलामी करता है और दर-दर भ्रान्त हुआ डोलता रहता है।

दृष्टान्त—*वणिये को माया दई, फकीर कृपानिधान ॥*
*कलम करत सुपनो दियो, मारत तोहि बंधान ॥१॥*
*माया जाती देख मग, सन्ता पूछ्या घाव ॥*
*पावर लूरी पीठ मम, छाती त्यागी पाव ॥१॥*

१०५—परिहरैं=त्यागदें, सम्बन्ध न करें। गर्भवास=जन्मजन्य दुःख।

१०६—रोक न राखे=संग्रह कर धरे नहीं।

१०७—सदिका सिरजनहार का=परमेश्वर का दिया हुआ जो धन प्राप्त हुआ है, वह केता आवे जाइ=कितना अदलबदल होता ही रहता है।

१०८—१११—इन चार साखियों में माया द्वारा प्राणियों को विविध रूपसे ठगने का

बुधि विवेक बलहारिणी, तन त्रय ताप उपावनी ।
अंगि अगनि प्रजालिनी, जीव घरबारि नचावनी ॥ १०६ ॥
नाना विधि के रूप धरि, सब बांधे भामिनी ।
जग विटंब परलै किया, हरिनाम भुलावनी ॥ ११० ॥
बाजीगर की पूतली, ज्यौं मर्कट मोह्या ।
दादू माया राम की, सब जगत बिगोया ॥ १११ ॥

शिश्न स्वाद

मोरा मोरी देखि करि, नाचै पंख पसारि ।
यौं दादू घर आंगणै, हम नाचैं कै बारि ॥ ११२ ॥

माया

दादू जेहि घट ब्रह्म न प्रगटै, तहं माया मंगल गाइ ।
दादू जागै जोति जब, तब माया भरम बिलाइ ॥ ११३ ॥

पतिपहिचान

दादू जोति चमकै तिरवरै, दीपक देखै लोइ ।
चंद सूर का चांदणा, पगार छलावा होइ ॥ ११४ ॥

---

उल्लेख है । गहे=पकड़े, कब्जे में करे । त्रय=तीन, आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक क्लेश । उपावनी = उत्पन्न करने वाली । अंग अगनि=भोग-वासना की चिन्तामय अग्नि । भामिनी = स्त्रीरूपधर । विटंब=विटप, संसाररूपी वृक्ष । परलै किया = डिगादिया । विगोया=डुबो दिया ।

११२—घर आंगणै = घर के चौक में गृहणी द्वारा नचाने पर ।

११३—माया मंगल गाइ=माया अपना साम्राज्य बनाती है ।

११४—भावार्थ—साधक को अन्तर्मुखध्यान द्वारा साधनकाल में आत्मज्योति के प्रकाश की कितनी तरह प्रतीति होती है । तिरवरै=झिलमिल । कभी दीपकवत्

माया

दादू दीपक देह का, माया परगट होइ।
चौरासी लख पंखियां, तहां परै सब कोइ॥ ११५॥

पुरुष प्रकाशी

दादू मन मृत्तक भया, इन्द्रिय अपणै हाथि।
तौ भी कदे न कीजिये, कनक कामिनी साथि॥ ११६॥

विषिया विरक्तता ( पुरुष नारि संबंध )

जाणै बूझै जीव सब, त्रिया पुरुष का अंग।
आपा पर भूला नहीं, दादू कैसा संग॥ ११७॥
माया के घट साजि द्वै, त्रिया पुरुष धरि नांव।
दोन्यूं सुन्दर खेलै दादू, राखि लेहु बलि जांव॥ ११८॥
बहण बीर सब देखिये, नारी अरु भर्तार।
परमेश्वर के पेट के, दादू सब परिवार॥ ११९॥

---

कभी चन्द्र सूर्य प्रकाशवत्, कभी अरुणोदय तथा कभी भूताग्नि के = छलावे के रूप में। ये सब साधनकालमें बाधारूप में उपस्थित होते हैं।

११५—दादू दीपक देहका = देहाध्यासी का दीपक रजोगुण तमोगुण मय प्रवृत्ति जन्य है। पंखियां=जुगनुवत् जीव, प्राणी।

११७—त्रिया पुरुष का अंग=पुरुष स्त्री के अंग = शरीर का निर्माण एक ही भौतिक संघात होते हैं, यह सभी जानते हैं फिर भी, आपा पर भूला नहीं=भोगवासना में फसा, लिंगभेद से स्त्री को भोगसामग्री के रूप में ही देखता है।

११८—माया के घट साज द्वै=अविद्या रचित स्थूल शरीर उनको अंगभेद से दो रूप में (स्त्री पुरुष) सजाया गया है।

११९—भावार्थ—सच्चे साधक स्त्री-पुरुष के लिंगभेद का परित्याग कर एक ही चेतन

पर घर परहरि आपणी, सब एकै उणहार।
पसु प्राणी समझै नहीं, दादू मुग्ध गंवार॥ १२० ॥
पुरुष पलटि बेटा भया, नारी माता होइ।
दादू को समझै नहीं, बड़ा अचम्भा मोहि॥ १२१ ॥
माता नारी पुरुष की, पुरुष नारि का पूत।
दादू ज्ञान विचारि करि, छाड़ि गये अवधूत॥ १२२ ॥

विषय अतृप्ति

ब्रह्मा विष्णु महेश लौं, सुर नर उरझाया।
विष का अमृत नांव धरि, सब किनहूँ खाया॥ १२३ ॥

---

अधिष्ठान में उत्पन्न हुए सब शरीरों को एक परिवार के रूप में देखता है। उसमें लिंगभेद की वृत्ति बहन भाई रहती हैं न कि स्त्री पति की।

दृष्टान्त—*नानक के सिख गर्व करि, कहि मोसम सिख नांहि॥*
*और दिखायो जाट इक, और गांव के मांहि॥१॥*

१२०—घर घर परिहरि आपणी=यह पराई=दूसरे पुरुष की और यह अपनी स्त्री है, इस भाव को त्यागो। मुग्ध=मोहित।

दृष्टान्त—*पुरुष गयो त्रिय त्याग द्वै, भोली परणी और॥*
*चील्ह होइ दोनों गई, बाज होय हति ढोर॥१॥*

दृष्टान्त—*गुरू दादू रामत करत, देख्यो अचरज एक॥*
*पुत्र खिलावत जाटणी, पति प्रिय ममत विसेक॥१॥*

१२२—अवधूत=कर्दमादि ऋषि।

दृष्टान्त—*साध जिमावण कारणे, वनिक लेचल्यो भौन॥*
*तीन ढौर हंसके कही, भैंसो अनत्रिय मौन॥१॥*

१२३—विषका अमृत नांव धरि=भोजन की वासना विषवत् है उसको अमृतवत् मान सबने=अज्ञानाधीन जनों ने खाया।

अध्यात्म

दादू माया का जल पीवतां, व्याधी होइ विकार ।
सेभे का जल पीवतां, प्राण सुखी सुधसार ॥ १२४ ॥

विषिया अतृप्ति

जीव गहिला जीव बावला, जीव दिवाना होइ ।
दादू अमृत छाडि करि, विष पीवै सब कोइ ॥ १२५ ॥

माया

माया मैली गुण मई, धरि धरि उज्जल नांव ।
दादू मोहै सबन कौ, सुर नर सबही ठांव ॥ १२६ ॥

विषया अतृप्ति

विष का अमृत नांव धरि, सब कोई खावै ।
दादू खारा ना कहै, यहु अचिरज आवै ॥ १२७ ॥
दादू जे विष जारै खाइ करि, जनि मुख मैं मेलै ।
आदि अन्त परलै गये, जे विख सौं खेले ॥ १२८ ॥

---

१२४—व्याधी=विविध रोग । विकार=मानसिक बिगाड़ ।

१२६—जीव = विषयप्रवृत्त प्राणी ।

१२६—मैली=मलिन । गुणमई=त्रिगुणात्मक ।

१२७—खावै=भोगे ।

१२८—जे विष जारै खाय करि=जो व्यक्ति वज्रोली आदि क्रिया से शुक्र, आर्तव का पान करते है वह विषका पान कर जराना है पर इसको सन्त साधन व आत्म योगी अच्छा नहीं समझते, इसलिये महात्मा कहते हैं, जनिमुख मैं मेलै = विष को खाकर पचाने की क्रिया आते हुए भी विषको खोया ही क्यों जाय ?

नारी नैन न देखिये, मुख सौं नांव न लेइ ।
कानौं कामणि जनि सुणै, यहु मन जाण न देइ ॥ १५७ ॥

सुंदर खाये सांपणी, केते इहि कलि मांहिं ।
आदि अंति इन सब डसे, दादू चेते नांहिं ॥ १५८ ॥

दादू पैसे पेट मैं, नारी नागणि होइ ।
दादू प्राणी सब डसे, काढ़ि सकै ना कोइ ॥ १५९ ॥

माया सांपणि सब डसै, कनक कामणी होइ ।
ब्रह्मा बिष्णु महेश लौं, दादू बचै न कोइ ॥ १६० ॥

माया मारै जीव सब, खंड खंड करि खाइ ।
दादू घट का नाश करि, रोवै जग पतियाइ ॥ १६१ ॥

बाबा बाबा कहि गिलै, भाई कहि कहि खाइ ।
पूत पूत कहि पी गई, पुरुषा जनि पतियाइ ॥ १६२ ॥

ब्रह्मा बिष्णु महेश की, नारी माता होइ ।
दादू खाये जीव सब, जनि रू पतीजै कोइ ॥ १६३ ॥

माया रूपी नटणी नाचै, सुर नर मुनि को मोहै ।
ब्रह्मा विष्णु महादेव बाहै, दादू बपुरा को है ॥ १६४ ॥

---

१५८—आदि=ब्रह्मा से लेकर । अंति=वीरुधादि, वृक्ष वनस्पति आदि तक ।

१५९—पैसे=प्रवेश करे, वासना के रूप में ।

१६१—रोवे जग पतियाइ=वासना के परिणाम से विविध दुःख पा रोते हैं फिर भी उसी वासना का पल्ला पकड़ते हैं !

१६३—नारी माता होइ=प्रकृतिरूप से, स्त्रीरूप से ।

माया पासी हाथि ले, बैठी गोप छिपाइ ।
जे कोइ धीजै प्राणियां, ताही के गलि बाहि ॥ १६५ ॥
पुरुषा पासी हाथि करि, कामणि के गलि बाहि ।
कामणि कटारी कर गहै, मारि पुरिष कौ खाइ ॥ १६६ ॥
नारि बैरणि पुरुष की, पुरिषा बैरी नारि ।
अंत कालि दोन्यूं मुये, दादू देखि विचारि ॥ १६७ ॥
नारि पुरिष कौ ले मुई, पुरिषा नारी साथ ।
दादू दोन्यूं पचि मुये, कछू न आया हाथ ॥ १६८ ॥
भंवरा लुब्धी बास का, कंवल बंधाना आइ ।
दिन दस मांहैं देखतां, दोन्यौं गये बिलाइ ॥ १६९ ॥
नारी पीवै पुरुष कौ पुरुष नारि कौ खाइ ।
दादू गुरु के ज्ञान बिन, दोन्यौं गये बिलाइ ॥ १७० ॥

इति मायाको अंग सम्पूर्ण ॥ १२ ॥

१६५—गोप=गुप्त हो, अदृश्य हो । छिपाइ=छाने, छिपकर । धीजै=विश्वास करे ।

१६६—पासी=फांसी, विषयवासना की रस्सी । कामणि=स्त्री । गलबाहि=गले में डालते हैं ! कटारी=कटाक्ष रूपी कटार । करगहै=हाथमें ले, साधन बना ।

१६९—भँवरा=भोगी पुरुष । बास=भोग का, वासनारूपी गन्ध का । कंवल बँधाना आइ= नारी की कमल सदृश मुखाकृति में आ बन्धा ।

❀ इति माया का अङ्ग समाप्त ❀
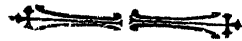
# अथ साच को अंग ॥ १३ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम् , नमस्कार गुरुदेवतः ।
बन्दनं सर्वं साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

अदया, हिंसा

दादू दया जिन्हौं के दिल नहीं, बहुरि कहावै साध ।
जे मुख उनका देखिये, तौ लागै बहु अपराध ॥ २ ॥

दादू मिहर मोहब्बत मन नहीं, दिल के बज्र कठोर ।
काले काफिर ते कहिय, मोमिन मालिक और ॥ ३ ॥

दादू कोई काहू जीव की, करै आत्मा घात ।
साच कहूं संसा नहीं, सो प्राणी दोजख जात ॥ ४ ॥

दादू नाहर सिंह सियाल सब, केते मूसलमान ।
मांस खाइ मोमिन भये, वड़े मियां का ज्ञान ॥ ५ ॥

---

२—दृष्टान्त—चौंड़ै चुगत कबूतरीं, कुतको दियो फकीर ॥
जाय पुकारी राज दर, भेष उतार्‌यो चीर ॥१॥

३—मिहर=दया, करुणा । मोहब्बत=स्नेह, प्रेम । बज्र=बज्रवत् । काले=कलुषित, मैले । मोमिन=महरबान ।

४—संसा=संशय, सन्देह । दोजख=नर्क, दुःखावस्था ।

५—नाहर सिंह सियाल सब=इन पशुओं की समान प्रकृति वाले । बडे मियां का ज्ञान=मुहम्मदसाहब की कुरान से, अपने मांस खाने का समर्थन करते हैं ।

साच

छलि करि बलि करि, धाइ करि, मारै जिंहिं तिंहिं फेरि।
दादू ताहि न धीजिये, परणी सगी पतेरिं ॥ १२ ॥

अदया-हिंसा

दादू दुनियां सौं दिल बांधि करि, बैठे दीन गंवाइ।
नेकी नांव बिसारि करि, करद कमाया खाइ ॥ १३ ॥
दादू गल काटै कलमा भरै, अया विचारा दीन।
पांचौं वखत निमाज गुजारै, स्याबत नहीं अकीन ॥ १४ ॥
दुनियां के पीछै पड़्या, दौड़्या दौड़्या जाइ।
दादू जिन पैदा किया, ता साहिब कौ छिटकाइ ॥ १५ ॥
कुफर जे के मन मैं, मीयां मुसलमान।
दादू पेया अंग मैं, विसारे रहिमान ॥ १६ ॥
आपस कौ मारै नहीं, पर कौ मारन जाइ।
दादू आपा मारे बिना, कैसै मिलै खुदाइ ॥ १७ ॥

१३—दीन गंवाइ=सच्चा धर्म खोकर। नेकी नांव=भलाई और आत्मचिन्तन। बिसारि=भूलकर। करद=छुरी, घातक शस्त्र।

१४—गल काटै=हिंसा करे। अया=ऐसा। स्याबत=सही, सच्चा। यकीन=विश्वास।

१५—दुनिया के पीछे पड़्या=कुर्बानी आदि झूठे दुनियावी काम के ही पीछे पड़ा हुवा है।

१६—कुफर जे के मनमें=काम, क्रोध, हिंसा आदि मन में भरे हैं। दादू पेया अंग में=बहुत दुनियावी झगड़ों में पैदा हुवा है।

१७—आपसको=अपने अहंकार को।

भीतरि दुंदर भरि रहे, तिनकौ मारै नांहिं ।
साहिब की अरवाह कौ, ताकौ मारन जांहिं ॥ १८ ॥
दादू मूये कौ क्या मारिये, मीयां मूई मार ।
आपस कौ मारै नहीं, औरों कौ हुसियार ॥ १९ ॥

साच

जिसका था तिसका हुआ, तौ काहे का दोस ।
दादू बंदा बन्दगी, मींयां ना कर रोस ॥ २० ॥
सेवग सिरजनहार का, साहिब का बंदा ।
दादू सेवा बंदगी, दूजा क्या धंधा ॥ २१ ॥
सो काफिर जे बोलै काफ, दिल अपणा नहिं राखै साफ ।
सांई कौ पहिचानै नांहिं, कूड़ कपट सब उनहीं मांहीं ॥२२॥
सांई का फुरमान न मानैं, कहां पीव ऐसे करि जानैं ।
मन अपणै मैं समझत नांहीं, निरखत चलै आपनी छांहीं ॥२३॥

---

१८—दुंदर=द्वन्द, काम-क्रोध, लोभ-मोह, राग-द्वेषादि । साहबकी=परमेश्वरकी । अरवाह= आत्मा. जीव ।

१९—मीयां मुई मार=उन निरीह, गरीब पशु-पक्षियों को क्यों ? मारना ।

२०—बंदा बंदगी=सच्ची सेवा में लगने वाला ही सच्चा बन्दा है । रोस=क्रोध, गुस्सा ।

२१—दूजा क्या धंधा=उस व्यापक परमेश्वर की सेवा त्याग, मन्दिर=पूजा, बांग, कलमा= निवाज आदि अन्य धन्धा क्यों ? किया जाय ।

२२—काफिर=पापी, झूंठा / काफ=झूंठ ।

२३—फुरमान=आज्ञा, हुक्म ।

जोर करै मसकीन सतावै, दिल उसकी मैं दर्द न आवै।
सांई सेती नांहीं नेह, गर्व करै अति अपनी देह ॥ २४ ॥
इन बातन क्यौं पावै पीव, परधन ऊपरि राखै जीव।
जोरजुलम करि कुटम्ब सूं खाइ, सो काफिर दोजग मैं जाइ ।२५

अदया–हिंसा

दादू जाकौ मारण जाइये, सोई फिरि मारै।
जाकौ तारन जाइये, सोई फिरि तारै ॥ २६ ॥
दादू नफस नांवसौं मारिये, गोसमाल दे पंद।
दूई है सो दूरि करि, तब घर मैं आनन्द ॥ २७ ॥

साच ( मुसलमान के लक्षण )

मुसलमान जु राखै मान, सांई का मानै फुरमान।
सारौं कौ सुखदाई होइ, मुसलमान करि जानूं सोइ ॥२८॥

---

२४—मसकीन=गरीब।

२५—सो काफिर=वह पापी है। दोजख में=नर्क में, दुखावस्था में।

२६—इसमें कुरान के सरेका कथन किया गया है।

दृष्टान्त—सांभर स्वामी पै गये, गुरु चेला धर ध्यान ।।
उलट पड़ी गुरु कोहत्यो, रोवत मंडत हाथ ।।१।।
गाय कसाई ले चल्यो, दीन्हो चोर छुडाइ ।।
गल दीयो तब वह गई, काढ्यो गल मुकलाई ।।१।।

२७—भावार्थ—शैतान मन को नामचिंतन से रोकिये। गोसमाल = इन्द्रियों को संभाल कर सद्वृत्ति, सद्भावना का बन्ध लगा। दुई=द्वैतभाव को दूर कर। तब घर में= अपने अन्तःकरण में ही परम आनन्द प्राप्त होगा।

२८—मान=ईमान, सच्चाई।

दादू मुसलमान मिहर गहि रहै, सब कौ सुख किसही नहिं दहै
मुवा न खाइ जिवत नहिं मारै, करै बंदगी राह संवारै ॥२६॥

सो मोमिन मनमैं करि जाणि, सत्ति सबूरी बैसै आणि।
चलै साच संवारै बाट, तिनकूं खुले भिस्त के पाट ॥ ३० ॥

सो मोमिन मोम दिल होइ, सांई कौ पहिचानै सोइ।
जोर न करै हराम न खाइ, सो मोमिन भिस्त मैं जाइ ॥३१॥

जैसा करना वैसा भरना

जो हम नहीं गुजारते, तुम्ह कौ क्या भाई।
सीर नहीं कुछ बंदगी, कहु क्यूं फुरमाई ॥ ३२ ॥

अपने अमलौं छूटिये, काहू के नांहीं।
सोई पीड़ पुकारसी, जा दूखै मांहीं ॥ ३३ ॥

कोई खाइ अघाइ करि, भूखे क्यौं भरिये।
खूटी पूगी आन की, आपण क्यौं मरिये ॥ ३४ ॥

---

२९—मिहर = दया, करुणा। गहि = धारण कर। दहै=जलन पैदा करे, कष्ट दे। मुआ = मृतक। राह=मनुष्यजीवन का रास्ता। संवारे = सज्जित करे, सफल करे।

३०—सो मोमिन = वही मोमिन दयालु समझ। सतिसबूरी बैसे आणि = सत्य, सन्तोष को लेकर उसी का आधार रखे, उसी पर दृढ़ रहे। भिस्त के=स्वर्ग के। पाट = किंवाड़।

३२—गुजारते=करते। कहु क्युं फुरमाई = क्या खुदा ने या कुरान ने बंदगी = सेवा सीर में = साझे में करने की कही है।

३३—अमलों=कामों, कर्तव्यों।

३४—अघाइ=अति तृप्त होकर। खूटी=खतम हुई। पूगी=पहुंची, समाप्त हुई। आन=औरकी।

फूटी नाव समंद मैं, सब डूबण लागे।
अपणां अपणां जीव ले, सब कोई भागे ॥ ३५ ॥
दादू सिर सिर लागी आपणे, कहु कौण बुझावै।
अपणां अपणां साच दे, सांई कौ भावै ॥ ३६ ॥

सुमिरण चितावणी

साचा नांव अल्लाह का, सोई सति करि जाणि।
निहचल करिले बंदगी, दादू सो परिवाणि ॥ ३७ ॥
आवटकूटा होत है, औसर बीता जाइ।
दादू करले बंदगी, राखणहार खुदाइ ॥ ३८ ॥
इस कलि केते व्है गये, हिंदू मूसलमान।
दादू साची बंदगी, झूठा सब अभिमान ॥ ३९ ॥

कथणी बिना करणी

पोथी अपणा प्यंड करि, हरि जस मांहैं लेख।
पंडित अपणां प्राण करि, दादू कथहु अलेख ॥ ४० ॥

---

३६—दृष्टान्त—*तीन पुरुष गृह में रुके, मात पिता पयपाइ।*
*म्हैनत दई वधाय इक, इक त्रिय काल कटाइ ॥१॥*
३७—निहचल = स्थिर मन से। परवाणि=प्रामाणिक, सही।
३८—आवटकूटा = विविध सन्ताप, वासना क्लेश।
४०—प्यंड=शरीर। पोथी=पुस्तक बना। पंडित अपणा प्राण करि = अपना प्राण है उसी को समाधि में पंडित बनाओ=प्रवीण करो। इस तरह अलेख जो लिखा नहीं जाय उसका वर्णन करो। अभिप्राय है वेद, कुरान को पुस्तक इस कथन वाली होनी चाहिये।
दृष्टान्त—*राम चरित द्विज वांचियो, राम हनु सुन नेम ॥*
*द्रव्य दियो दर्शन दियो, द्विज के उपज्यो प्रेम ॥१॥*

काया कतेब बोलिये, लिखि राखूं रहिमान।
मनवां मुल्लां बोलिये, सुरता है सुबहान ॥ ४१ ॥
दादू काया महल मैं निमाज गुजारूं, तहं और न आवन पावै।
मन मणके करि तसबी फेरूं, तब साहिब के मन भावै ॥४२॥
दिल दरिया मैं गुसल हमारा, ऊजू करि चित लाऊं।
साहिब आगै करूं बंदगी, बेर बेर बलि जाऊं ॥ ४३ ॥
दादू पंचौं संगि संभालूं सांई, तन मन तब सुख पाऊं।
प्रेम पियाला पिवजी देवै, कलमा ये लै जाऊं ॥ ४४ ॥
सोभा कारण सब करै, रोजा बांग निमाज।
मुवा न एकौ आह सौं, जे तुझ साहिब सेती काज ॥ ४५ ॥
हर रोज हजूरी होइ रहु, काहे करै कलाप।
मुल्लां तहां पुकारिये, जहं अरस इलाही आप ॥ ४६ ॥
हरदम हाजिर होणा बाबा, जब लग जीवै बंदा।
दाइम दिल सांई सौं साबित, पंच वखत क्या धंधा ॥ ४७ ॥

---

४१—कतेब=कुरान। सुरता=श्रोता। सुबहान=पवित्र परमेश्वर।

४३—गुसल=स्नान। ऊजू=हाथ पैर मुंह पांच अंग धोना।

४४—पंचौं संग=पांचों इन्द्रियों के साथ।

४५—मुवा न एको आह सों = विरह की एक ही आह में मर नहीं सका।

४६—हररोज = सारे ही समय। कलाप=पांच समय नमाज का कष्ट क्यों करे? अरस=हृदयाकाश।

४७—दाइमदिल=शुद्ध हृदय। साबित=अखंडित। धंधा = काम।

हिंदू मुसलमानों का भ्रम

दादू हिंदू मारग कहै हमारा, तुरक कहै रह मेरी ।
कहां पंथ है कहौ अलह का, तुम तौ ऐसी हेरी ॥ ४८ ॥
दादू दुई दरोग लोग कौ भावै, सांई साच पियारा ।
कौण पंथि हम चलैं कहौ धू, साधौ करौ बिचारा ॥ ४९ ॥
खंड खंड करि ब्रह्म कौ, पखि पखि लीया बांटि ।
दादू पूरण ब्रह्म तजि, बंधे भरम की गांठि ॥ ५० ॥

मन विकार औषधि

जीवत दीसै रोगिया, कहै मूवां पीछै जाइ ।
दादू दुंह के पाढ मैं, ऐसी दारू लाइ ॥५१॥

४८—दृष्टान्त—एक सन्त इक ओलिया, दोऊं हो गलतान ॥
जलमिल जन फोहा भरे, तुरक तऊ अभिमान ॥१॥

४९—दुइ दरोग = द्वैतभाव, भेद बुद्धि । कहोधू=किस ओर ।

५०—पखपख लिया बांटि=व्यापक परब्रह्म को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्धों, जैन आदि विविध धर्मों के अनुयायियों ने अपनी२ तरह से बांट लिया है ।

५१—भावार्थ—जीते हुए वासनाजन्य विविध क्लेशों में घिरा रहता है पर कहता ऐसे है कि मरने पर मुक्त हो जायेंगे अर्थात् इस समय जिन क्लेशों में घिरा दीख पडता है, उन क्लेशों का उस पर कोई प्रभाव नहीं है । दादूजी कहते हैं, इस तरह की भ्रान्त धारणा से कोई लाभ नहीं । साधना तो ऐसी ही करनी चाहिये, जो जीते हुए क्लेश से मुक्त रखे और जीवन के पश्चात् क्लेश का अनुबन्ध न होने दे ।

काया कतेब बोलिये, लिखि राखूं रहिमान।
मनवां मुल्लां बोलिये, सुरता है सुबहान ॥ ४१ ॥
दादू काया महल मैं निमाज गुजारूं, तहं और न आवन पावै।
मन मणके करि तसबी फेरूं, तब साहिब के मन भावै ॥४२॥
दिल दरिया मैं गुसल हमारा, ऊजू करि चित लाऊं।
साहिब आगै करूं बंदगी, बेर बेर बलि जाऊं ॥ ४३ ॥
दादू पंचौं संगि संभालूं सांई, तन मन तब सुख पाऊं।
प्रेम पियाला पिवजी देवै, कलमा ये लै जाऊं ॥ ४४ ॥
सोभा कारण सब करै, रोजा बांग निमाज।
मुवा न एकौ आह सौं, जे तुझ साहिब सेती काज ॥ ४५ ॥
हर रोज हजूरी होइ रहु, काहे करै कलाप।
मुल्लां तहां पुकारिये, जहं अरस इलाही आप ॥ ४६ ॥
हरदम हाजिर होणा बाबा, जब लग जीवै बंदा।
दाइम दिल सांई सौं साबित, पंच वखत क्या धंधा ॥ ४७ ॥

४१—कतेब=कुरान। सुरता=श्रोता। सुबहान=पवित्र परमेश्वर।

४३—गुसल=स्नान। ऊजू=हाथ पैर मुंह पांच अंग धोना।

४४—पंचौं संग=पांचों इन्द्रियों के साथ।

४५—मुवा न एको आह सों = विरह की एक ही आह में मर नहीं सका।

४६—हररोज = सारे ही समय। कलाप=पांच समय नमाज का कष्ट क्यों करे? अरस=हृदयाकाश।

४७—दाइमदिल=शुद्ध हृदय। साबित=अखंडित। धंधा = काम।

हिंदू मुसलमानों का भ्रम

दादू हिंदू मारग कहै हमारा, तुरक कहै रह मेरी ।
कहां पंथ है कहौ अलह का, तुम तौ ऐसी हेरी ॥ ४८ ॥
दादू दुई दरोग लोग कौ भावै, सांई साच पियारा ।
कौण पंथि हम चलैं कहौ धू , साधौ करौ बिचारा ॥ ४६ ॥
खंड खंड करि ब्रह्म कौ, पखि पखि लीया बांटि ।
दादू पूरण ब्रह्म तजि, बंधे भरम की गांठि ॥ ५० ॥

मन विकार औषधि

जीवत दीसै रोगिया, कहै मूवां पीछै जाइ ।
दादू दुंह के पाढ मैं, ऐसी दारू लाइ ॥५१॥

४८—दृष्टान्त—*एक सन्त इक ओलिया, दोउ हो गलतान ॥*
*जलमिल जल फोहा भरे, तुरक तउ अभिमान ॥१॥*

४६—दुइ दरोग = द्वैतभाव, भेद बुद्धि । कहोधू=किस ओर ।

५०—पखपख लिया वांटि=व्यापक परब्रह्म को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्धों, जैन आदि विविध धर्मों के अनुयायियों ने अपनी२ तरह से बांट लिया है ।

५१—भावार्थ—जीते हुए वासनाजन्य विविध क्लेशों में घिरा रहता है पर कहता ऐसे है कि मरने पर मुक्त हो जांयेंगे अर्थात् इस समय जिन क्लेशों में घिरा दीख पडता है, उन क्लेशों का उस पर कोई प्रभाव नहीं है । दादूजी कहते हैं, इस तरह की भ्रान्त धारणा से कोई लाभ नहीं । साधना तो ऐसी ही करनी चाहिये, जो जीते हुए क्लेश से मुक्त रखे और जीवन के पश्चात् क्लेश का अनुबन्ध न होने दे ।

सो दारू किस काम की, जाथैं दरद न जाइ।
दादू काटै रोग कौं, सो दारु ले लाइ ॥ ५२ ॥

चानक उपदेश

एक सेर का ठांवड़ा, क्यौंही भरथा न जाइ।
भूख न भागी जीव की, दादू केता खाइ ॥ ५३ ॥
पसुवां की नाईं भरि भरि खाइ, व्याधि घणेरी बधती जाइ।
पसुवां की नाईं करै अहार, दादू बाढै रोग अपार ॥
संयम सदा न व्याधी, रहै निरोगी लगै समाधि।
राम रसाइण भरि भरि पीवै, दादू जोगी जुगि जुगि जीवै॥५४॥
दादू चारै चित दिया, चिंतामणि कौं भूलि।
जन्म अमोलिक जात है, बैठे मांझी फूलि ॥ ५५ ॥
भरी अधौड़ी भावठी, बैठा पेट फुलाइ।
दादू सूकर स्वान ज्यों, ज्यों आवै त्यों खाइ ॥ ५६ ॥

शिश्न स्वाद

दादू खाटा मीठा खाइ करि, स्वादि चित दीया।
इन मैं जीव बिलंबिया, हरि नांव न लीया ॥ ५७ ॥

---

५२—दारू=ओषध, इलाज।

५३—ठांवड़ा=वर्तन। भूख न भागी = लालसा नहीं मिटी। खाइ = उपभोग करे।

५५—चारै=खाने की चीजों पर, भोग विषयों पर। चिन्तामणि=नामचिन्तनरूप चिन्तामणि। मांझी=विषय वासना के बीच में।

५६—भरी अधोड़ी भावटी=चमार के घर कच्ची खाल वायु से भरी रहती है, वैसे। सूकर स्वानज्यों=सूअर, श्वान की वृत्ति से, खानेपर ही वृत्ति रखने वाला।

५७—स्वादि चित दिया=स्वाद में ही भोग में ही चित्त लगाये रहे। विलंबिया=उलझा।

भगति न जाणै रामकी, इन्द्रिय के आधीन।
दादू बंध्या स्वाद सौं, ताथैं नांव न लीन ॥ ५७ ॥

साच

दादू अपणा नीका राखिये, मैं मेरा दिया बहाइ।
तुझ अपणे सेती काज, मैं मेरा भावै तिधरि जाइ ॥ ५९ ॥
जे हम जाण्या एक करि, तौ काहे लोक रिसाइ।
मेरा था सो मैं लिया, लोगौं क्या जाइ ॥ ६० ॥

करणी बिना कथणी

दादू द्वै द्वै पद किये, साखी भी द्वै चार।
हम कौं अनभै ऊपजी, हम ज्ञानी संसार ॥ ६१ ॥
सुनि सुनि पर्चे ज्ञान के, साखी सबदी होइ।
तबही आपा ऊपजै, हम सा और न कोइ ॥ ६२ ॥
सो उपज किस काम की, जे जण जण करै कलेस।
साखी सुनि समझै साध की, ज्यौं रसना रस सेस ॥ ६३ ॥

---

५९—अपणा=व्यापक परमेश्वर, अपना साध्य। नीका=ठीक तरह। मैं मेरा=अहंकार और भेदभाव।

६०—जाण्या=समझा। रिसाइ=गुस्से हों।

६१—६२—इन दो साखियों में वाचक ज्ञानियों की स्थिति बतलाई है। वाचक ज्ञानी साखी शब्द बनाते हैं, लोगों को सुनाते हैं, आत्मानुभूति का ढोल पीटते हैं, अपने को प्राप्त ज्ञान का परचै निरूपण करते हैं, इस तरह वे अपने अहंकार में अधिकाधिक बंधते जाते हैं।

६३—उपज=उपजन, अनुभूति। जणजण=हर मनुष्य को। ज्यौं रसना रस सेस=जैसे शेष सहस्र जिह्वा से नामचिन्तन का आनंद लेता है, वैसे ही विवेकी साधक सच्चे महात्मा के उपदेश सुन, उसके रास्ते चल, आनन्द का रस लेता है।

दादू पद जोड़ै साखी कहै, विषै न छाड़ै जीव।
पानी घालि बिलोइये, तौ क्यौं करि निकसै घीव ॥ ६४ ॥

दादू पद जोड़े का पाइये, साखी कहे का कोइ।
सत्ति सिरोमणि सांइयां, तत्त न चीन्हां सोइ ॥ ६५ ॥

कहिबे सुनिबे मन खुसी, करिबा औरै खेल।
बातौं तिमर न भाजई, दीवा बाती तेल ॥ ६६ ॥

दादू करिबे वाले हम नहीं, कहिबे को हम सूर।
कहिबा हम थैं निकट है, करिबा हम थैं दूर ॥ ६७ ॥

कहे कहे का होत है, कहे न सीझै काम।
कहे कहे का पाइये, जब लग रिदै न आवै राम ॥ ६८ ॥

चौंप ( चाह ) बिन चौंप चर्चा

दादू सुरता घर नहीं, बकता बकै सु बादि।
बकता सुरता एक रस, कथा कहावै आदि ॥ ६९ ॥

---

६५—सति=सत्य, वास्तविक । तत्तन चिन्हा सोइ=केवल कथनी की. वस्तुतः उस तात्त्विक परमेश्वर को करणी द्वारा, चीन्हा=जाना नहीं।

६६—६७—६८—इन साखियों में करणीविहीन कथनी का निरूपण किया है। विना करणी के कथनी है वह फालतू है।

६९—सुरता=मनोवृत्ति, पाठान्तर-स्रोता=सुननेवाला । घरनहीं=अन्तःकरण में स्थिर नहीं। बादि=व्यर्थ, फालतू । वकता सुरता=कथन करणो । एक रस=समान हो। आदि=असल ।

दृष्टान्त—*वक्ता सोता मिल चले, कथा करी वन आइ ॥*
*मोक्ष भये त्रय दउन की, अस्त परष जलजाइ ॥१॥*

बकता सुरता घरि नहीं, कहै सुनै कौ राम।
दादू यहु मन थिर नहीं, बादि बकै बेकाम ॥ ७० ॥

विचार दृढ़ज्ञान

देखा देखी सब चले, पारि न पहुंच्या जाइ।
दादू आसण पहल के, फिरि फिरि बैठे आइ ॥ ७१ ॥
अंतरि सुरझै समझि करि, फिर न अरूझै जाइ।
बाहरि सुरझै देखतां, बहुरि अरूझै आइ ॥ ७२ ॥

झूठे गुरु

आतम लावै आप सौं, साहिब सेती नांहिं।
दादू को निपजै नहीं, दोन्यों निरफल जांहिं ॥ ७३ ॥
तूं मुझकौ मोटा कहै, हौं तुझे बड़ाई मान।
सांई कौ समझै नहीं, दादू झूठा ज्ञान ॥ ७४ ॥

---

७०—सुरता=पाठान्तर—स्रोता=सुननेवाला।

७१—दादू आसण पहल का=पहले की जो वासनामय वृत्ति है, मन फिर-फिर वहीं आता है।

दृष्टान्त—*द्वै अहदी को देखि कै, पड़े वहुत उत आइ ॥*
*करी परीक्षा पातशाह, वाड़ कूद गये धाइ ॥१॥*

७२—भावार्थ-अंतर सुरझै समझि कर=गुरू उपदेश को समझकर, धारण कर, अंतर सुरझै=भीतर=अंतःकरण की विषमता को सुलझावे। बाहरि सुरझै=केवल बाहरी दिखावे में जो सुलझे हुए से दीखते हैं, वे पुनः देखते२ उलझे हुए दिखाई पड़ने लगते हैं।

७३—आतम=अन्तःकरण। आप=आपा, अभिमान। निपजै नहीं=फलीभूत नहीं हो।

७४—मोटा=बड़ा, महान्। झूठाज्ञान=बनावटी, दिखाऊ ढोंग।

कस्तूरिया मृग

सदा समीप रहै संगि सनमुख, दादू लखै न गूझ।
सुपिनै ही समझै नहीं, क्यों करि लहै अबूझ ॥ ७५ ॥

वे खरच बिसनी

दादू सेवग नांव बोलाइये, सेवा सुपिनै नांहिं।
नांव धराये का भया, जे एक नहीं मन मांहिं ॥ ७६ ॥
नांव धरावै दास का, दासातन थैं दूरि।
दादू कारिज क्यौं सरै, हरि सौं नहीं हजूरि ॥ ७७ ॥
भगत न होवे भगति बिन, दासातन बिन दास।
बिन सेवा सेवग नहीं, दादू झूठी आस ॥ ७८ ॥
राम भगति भावै नहीं, अपनी भगति का भाव।
राम भगति मुख सौं कहै, खेलै अपना डाव ॥ ७९ ॥
भगति निराली रहि गई, हम भूलि पड़े वन मांहिं।
भगति निरंजन राम की, दादू पावै नांहिं ॥ ८० ॥

---

७५—भावार्थ—वह परमात्मा अपना स्वरूप सदा साथ व हृदय प्रदेश के सम्मुख रहता है। गूझ = उस अदृश्य को अज्ञान तथा भ्रान्ति से देख नहीं पाना। विना भ्रान्ति तथा अज्ञान का निवारण किये उस अबूझ=बेजाने आत्मा को कैसे प्राप्त किया जाय।

७६—सेवग नांव बुलाइये=केवल दिखावटी भक्ति से भक्त कहलाने से कोई लाभ नहीं है।

७७—दासातन = सच्चे सेवक भाव से। हजूरि=सन्मुख।

७९—अपनी भगती का भाव=अपनी प्रसिद्धि अपने महात्मापन की चाह है। डाव = दाव, मौका।

८०—निराली=एक ओर, दूर। वनमांहिं=विषय व्यामोह के वन में।

सो दशा कतहूँ रही, जिंहिं दिशि पहुँचै साध।
मैं तैं मूरख गहि रहे, लोभ बड़ाई बाद ॥ ८१ ॥
दादू राम बिसारि करि, कीये बहु अपराध।
लाजौं मारे संत सब, नांव हमारा साध ॥ ८२ ॥

करणी बिना कथनी

मनसा के पकवान सौं, क्यौं पेट भरावै।
ज्यौं कहिये त्यौं कीजिये, तबही बनि आवै ॥ ८३ ॥
दादू मिश्री मिश्री कीजिये, मुख मीठा नांहीं।
मीठा तबही होइगा, छिटकावै मांहीं ॥ ८४ ॥
दादू बातौं ही पहुंचै नहीं, घर दूरि पयाना।
मारग पंथी उठि चलै, दादू सोई सयाना ॥ ८५ ॥
बातौं सब कुछ कीजिये अन्त कछू नहिं देखै।
मनसा वाचा करमणा, तब लागै लेखै ॥ ८६ ॥

---

८१—सो दशा=वह साधनावस्था। लोभ बड़ाई। बाद=वासना, अहंकार तथा मैं तैं के विवाद को नकली साधकों ने पकड़ रखा है।

८२—इस साखी में नकली साधुपने की निन्दा की गई है।

८३ से ८७ तक पुनः करणीविहीन कथनी करने वाले ढोंगियों का वर्णन है।

८३—मनसा=लालसा। बनिआवे=सफलता हो।

८४—दृष्टान्त—*मनसों खाई चीज बहु, हलवाई की हाट ॥*
*फकीर सो मांगे रुपे, यह ले पहले साठ ॥१॥*

८५—पयाना = चलना। पंथी=साधक, पथिक।

८६—मनसा वाचा कर्मणा तब लागै लेखै=मन वचन कर्म से एकरस अपनी साधना में लगे तभी लेखे लागे=ठीक फल प्राप्त करे।

समझ सुजानता—सब जीवौं में ज्ञान

दादू कासौं कहि समझाइये, सबको चतुर सुजान ।
कीड़ी कुंजर आदि दे, नांहिन कोई अजान ॥ ८७ ॥

करणी बिना कथनी

सूकर श्वान सियाल सिंह, सर्प रहै घट मांहिं ।
कुंजर कीड़ी जीव सब, पांडे जाणै नांहिं ॥ ८८ ॥

दादू सूना घट सोधी नहीं, पण्डित ब्रह्मा पूत ।
आगम निगम सब कथैं, घर में नाचै भूत ॥ ८९ ॥

पढ़े न पावै परमगति, पढ़े न लंघै पार ।
पढ़े न पहुँचै प्राणिया, दादू पीड़ पुकार ॥ ९० ॥

---

८७—नाहिन=नहीं है । अजान=बेसमझ ।

८८—भावार्थ—मनमें ही सूकर=अलीनवृत्ति, श्वान=क्रूरवृत्ति, सियाल=भयातुरवृत्ति, सिंह=हिंसकवृत्ति, सर्प=संशयवृत्ति, कुँजर=कामवृत्ति, कीडी=छिद्रान्वेषणवृत्ति उत्पन्न होती रहती है । इस तरह विविध पशुवृत्ति में उलझता हुआ भी अज्ञानी पुरुष अपनी इस [illegible] को पहिचान नहीं पाता ।

८९—सूना घट=अन्तःकरण आत्मनिष्टवृत्ति बिना सूना है=खाली है । सोधी नहीं=समझ नहीं, ज्ञान नहीं । पंडित ब्रह्मा पूत=अपने को वशिष्ठादि का वंशज व पण्डित माने हुए हैं । आगमनिगम=आर्ष वेद, स्मृति । नाचे भूत=अन्तःकरण में वासना-रूपी भूत नाच रहे हैं ।

९०—पढै=केवल पढने से । दादू पीड़पुकार=अतिनिष्ठा से विरह की पीड़ से उसकी पुकार ।

दादू निवरे नांव बिन, झूठा कथैं गियान।
बैठे सिर खाली करैं, पंडित वेद पुरान॥ ६१॥

दादू केते पुस्तक पढ़ि मुये, पण्डित वेद पुरान।
केते ब्रह्मा कहि गये, नांहिं न राम समान॥ ६२॥

सब हम देख्या सोधि करि, वेद कुरानौं मांहिं।
जहां निरंजन पाइये, सो देस दूरि इत नांहिं॥ ६३॥

काजी कजा न जानहीं, कागद हाथ कतेब।
पढतां पढतां दिन गये, भीतरि नांहीं भेद॥ ६४॥

मसि कागद के आसिरे, क्यौं छूटै संसार।
राम बिना छूटै नहीं, दादू भर्म विकार॥ ६५॥

कागद काले करि मुये, केते वेद पुरान।
एकै अखिर पीव का, दादू पढै सुजान॥ ६६॥

---

६१—निवरे=खाली, अकर्मण्य।

६३—सोधि करि = छानबीन कर, तलाश कर।

६४—कजा = मृत्यु। कतेब=कुरान। भेद = रहस्य, जानकारी।

दृष्टान्त—*काग हंस का न्याव को, अरु तेली को बैल॥*
*तीजो घेली कौंस को, मिल्यो पातसा सैल॥१॥*

६५—मसि कागद = स्याही और पन्ने।

६६—कागदकाले करि मुये=केवल कल्पनावाले पंडित कागज़ काले कर विविध शास्त्र रचकर चले गये। एकै अखिर पीवका=एक व्यापक परमात्मा का पाठ पढ़े, वही सुजान=चतुर है।

दादू कहतां कहतां दिन गये, सुणतां सुणतां जाइ।
दादू ऐसा को नहीं, कहि सुणि राम समाइ॥ ९७॥

मध्य निरपख

मौन गहैं ते बावरे, बोलैं खरे अयान।
सहजैं राते राम सौं, दादू सोई सयान॥ ९८॥

करुणा

कहता सुणतां दिन गये, ह्वै कछू न आवा।
दादू हरि की भगति बिन, प्राणी पछितावा॥ ९९॥

सज्जन दुर्जन

दादू कथणी और कुछ, करणी करैं कुछ और।
तिन थैं मेरा जीव डरै, जिन कै ठीक न ठौर॥ १००॥
अंतरगति औरै कछू, मुख रसना कुछ और।
दादू करणी और कछु, तिनकौं नांहीं ठौर॥ १०१॥

मन परमोध

राम मिलन की कहत हैं, करते कछु औरे।
ऐसै पीव क्यौं पाइये, समझि मन बौरे॥ १०२॥

---

९७—कहि सुणि राम समाई=कह कर या सुन कर जो स्वयं, राम में=राम की प्राप्ति के साधन में लग गया।

९८—भावार्थ-बिना दृढ़ निश्चय के केवल वाणी के व्यापार को रोकने के लिये मौन धारण करें वे बावरे=पागल हैं, जो केवल ब्रह्मज्ञान की खाली बातें कहते रहते हैं, उपदेश देते हैं वे बोलने वाले भी अयान=अनजान हैं।

९९—ह्वै कछू न आवा=कुछ बन नहीं पाया।

१००—जिनकै ठीक न ठौर=जिनका दृढ निश्चय से कोई साधन नहीं है।

१०१—अंतरगति=मनकी भावना। मुख रसना=कहने की बात।

१०२—समझि मन बौरे=पागल मन केवल कहने से राम नहीं मिलता, यह समझ।

दादू ये सब किस के ह्वै रहे, यहु मेरे मन मांहिं ।
अलख इलाही जगत गुरु, दूजा कोई नांहिं ॥ १०८ ॥

पतिव्रत व्यभिचार

दादू औरैं ही औला तकै, थीयां सदै वियंनि ।
सो तू मीयां नां घुरै, जो मीयां मीयंनि ॥ १०९ ॥

सत असत गुरु पारस लक्षण

आई रोजी ज्यौं गई, साहिब का दीदार ।
गहला लोगौं कारणै, देखै नहीं गंवार ॥ ११० ॥

फल कारनि सेवा करै, जाचै त्रिभुवन राव ।
दादू सो सेवग नहीं, खेलै अपणा डाव ॥ १११ ॥

सकामी सेवा करैं, मांगैं मुगध गंवार ।
दादू ऐसे बहुत हैं, फलके भूंचनहार ॥ ११२ ॥

---

१०९—भावार्थ—औरैं ही औला तके = अज्ञान भ्रांति के वश एक ईश्वर को छोड़ विविध सकाम = साकार वासना की ओर क्यों तक रहे हो ? जो मीयां मियंनि=जो मुहम्मद का भी मालिक है, जो सदा स्थिर रहता है, हे धर्मविशेष के साधक ! तू उस सच्चे निरपेक्ष उपास्य को क्यों नहीं भजता ।

११०—आई रोजी ज्यौं गई=जिस कठिनाई से यह मानवशरीररूपी रोजी मिली थी, वह बिना सही उपयोग के जैसे आई वैसे ही चली गई । इस रोजी को मनुष्य ने धन पुत्रादि के कारण खो दिया, विचार के देखा नहीं ।

दृष्टान्त—*मुहम्मद गयो न भिस्तको, कुमति बिना लंगार ॥*
*स्वान्यौं साहब तास को, यौं जग लगि व्है ख्वार ॥*

१११—फलकारनि=फल की इच्छा से । जाचै= याचना करे, मांगे । डाव=मौका, अवसर ।

११२—सहकामी = सकाम । मुगध=अति मोहमय । गंवार = पामर । भूंचनहार = खोसने वाले, चाहने वाले ।

सुमिरण नाम महात्म्य

तन मन लै लागा रहै, राता सिरजनहार।
दादू कुछ मांगै नहीं, ते बिरला संसार ॥ ११३ ॥

पतिव्रत निहकाम

दादू सोई सेवग राम का, जिसे न दूजी चिंत।
दूजा को भावै नहीं, एक पियारा मिंत ॥ ११४ ॥

( जाति पांति ) भ्रम विधूसण

अपनी अपनी जाति सौं, सब को बैसै पांति।
दादू सेवग राम का, ताकै नहीं भरांति ॥ ११५ ॥
चोर अन्याई मसकरा, सब मिलि बैसैं पांति।
दादू सेवग राम का, तिनि सौं करैं भरांति ॥ ११६ ॥
दादू सूप बजायां क्यौं टलै, घरमैं बड़ी बलाइ।
काल झाल इस जीव का, बातन ही क्यौं जाइ ॥ ११७ ॥

---

११४—चिंत = विचार, चिन्तन। मिंत=मित्र, सच्चा दोस्त।

११५—पांति=पंक्ति। भरांति=भेद, अलगाव।

११६— दृष्टान्त—*धाम सौंप सेख को गयो, तीर्थ बद्रीदास ॥*
*फिर आये बहु काल में, रोटी देत उदास ॥*

११७—सूप बजायां=छाज को पीटने से, केवल जातीय पक्षपात से, पक्षमय धर्म की उपासना से। बड़ी बलाइ=अन्तःकरण में रागद्वेषादि की बड़ी बलाय बैठी है। काल=क्रोध। झाल = मोह।

दृष्टान्त—*जान दरिद्रपन घर तज्यो, फिरचो शैल के काज ॥*
*जोडी चुपड़त देख उत, पूछ्यो कित जइ भाज ॥*

**सांप गया सहनाण कौ, सब मिलि मारैं लोक।**
**दादू ऐसा देखिये, कुल का डगरा फोक॥ ११८॥**

**दादू दोन्यूं भरम हैं, हिंदू तुरक गंवार।**
**जे दुहुवां थैं रहित है, सो गहि तत्त विचार॥ ११९॥**

**अपना अपना करि लिया, भंजन माहैं बाहि।**
**दादू एकै कूप जल, मन का भरम उठाइ॥ १२०॥**

**दादू पानी के बहु नांव धरि, नाना विधि की जाति।**
**बोलणहारा कौन है, कहौ धौं कहां समाति॥ १२१॥**

---

११८—भावार्थ—जातीय पक्ष कैसा व्यर्थ है जैसे सांप की लकीर को पीटना। सांप की लकीर को पीटने से सांप नहीं मरता है, वैसे जातीयपक्ष के कारण मन का भेद-बुद्धिमय सांप नहीं मरता।

दृष्टान्त—*गया पिंड धोती खुली, सुत फुनते सहि धार॥*
*मीर जडूला तीरतै, बालक कोज उतार॥*

११९—दोन्यूं भरम हैं=जातीय पक्ष से बनाया हिन्दू और मुसलमान का मजहब या धर्म दोनों भ्रम हैं। वास्तविक सत्यधर्म दोनों से न्यारा है उसको समझकर ग्रहण करो।

१२०—भंजन=वर्तन में। बाहि = भर।

१२१—पानी के बहु नांव धरि=एक ही कूपजल भिन्न-२ गति वाले तथा भिन्न मजहब वाले लेकर उसका नाम अपनी कल्पना से हिन्दूजल, मुसलमान का जल, ब्राह्मण का जल ऐसे धरते हैं। इस तरह सब शरीर में एकही चेतनाशक्ति है जो जाति-धर्म से रहित है। शरीरसम्बन्ध से तथा विचार सम्बन्ध से फिर उसकी भिन्न-२ संज्ञायें की जाती हैं, वे सब महत्वहीन हैं।

जब पूरण ब्रह्म बिचारिये, तब सकल आतमा एक।
काया के गुण देखिये, तौ नाना वरण अनेक॥ १२२॥

अमिट पाप प्रचंड

अपणा पराया खाइ विष, देखत ही मरि जाइ।
दादू को जीवै नहीं, इहिं भोरे जनि खाइ॥ १२३॥
भाव भगति उपजै नहीं, साहिब का परसंग।
विषै विकार छूटै नहीं, सो कैसा सतसंग॥ १२४॥
बासन विषै विकार के, तिनकौ आदर मान।
संगी सिरजनहार के, तिनसौं गर्व गुमान॥ १२५॥

---

१२२—भावार्थ—जब आत्मसम्बन्ध से विचारें तो सभी जातिधर्म के मानव एक हैं काया शरीर के गुणावगुण भावाभाव से विचारें तो फिर प्रत्येक व्यक्ति की भिन्नता है। फिर चार ही वर्ण तथा चार पांच ही धर्म हों, यह बात नहीं है।

१२३—अपणा पराया खाइ विष=यहां स्त्री सम्बन्ध का लक्ष्य है, महात्मा कहते हैं अपनी स्त्री मानकर उससे संसर्ग करना, वह विषयभोग भी अन्त=परिणाम में हानिकारक ही है, अतः इहिं भौरे जनि खाइ=इस भरोसे से भी विषयभोग में प्रवृत्त न हुआ जाय।

१२४—परसंग=सम्बन्ध, संयोग। सतसंग=सन्तजनों का संग।

१२५—वासन=बरतन। आदरमान=सत्कार, प्रतिष्ठा। गर्व गुमान=उनसे गर्व-अभिमान करना।

दृष्टान्त—कूवा की तिय भात हित, खीर करी मतिहीन।
सन्तन कौ करि राबड़ी, कूवे लईजू चीन॥

सांप गया सहनाण कौ, सब मिलि मारैं लोक।
दादू ऐसा देखिये, कुल का डगरा फोक॥ ११८॥

दादू दोन्यूं भरम हैं, हिंदू तुरक गंवार।
जे दुहुवां थैं रहित है, सो गहि तत्त विचार॥ ११९॥

अपना अपना करि लिया, भंजन मांहैं बाहि।
दादू एकै कूप जल, मन का भरम उठाइ॥ १२०॥

दादू पानी के बहु नांव धरि, नाना विधि की जाति।
बोलणहारा कौन है, कहौ धौं कहां समाति॥ १२१॥

---

११८—भावार्थ—जातीय पक्ष कैसा व्यर्थ है जैसे सांप की लकीर को पीटना। सांप की लकीर को पीटने से सांप नहीं मरता है, वैसे जातीयपक्ष के कारण मन का भेद-बुद्धिमय सांप नहीं मरता।

दृष्टान्त—*गया पिंड धोती खुली, सुत फुनते सहि धार॥*
*मीर जडूला तीरतै, बालक कोज उतार॥*

११९—दोन्यूं भरम हैं=जातीय पक्ष से बनाया हिन्दू और मुसलमान का मजहब या धर्म दोनों भ्रम हैं। वास्तविक सत्यधर्म दोनों से न्यारा है उसको समझकर ग्रहण करो।

१२०—भंजन=वर्तन में। बाहि=भर।

१२१—पानी के बहु नांव धरि=एक ही कूपजल भिन्न-२ गति वाले तथा भिन्न मजहब वाले लेकर उसका नाम अपनी कल्पना से हिन्दूजल, मुसलमान का जल, ब्राह्मण का जल ऐसे धरते हैं। इस तरह सब शरीर में एकही चेतनाशक्ति है जो जाति-धर्म से रहित है। शरीरसम्बन्ध से तथा विचार सम्बन्ध से फिर उसकी भिन्न-२ संज्ञायें की जाती हैं, वे सब महत्वहीन हैं।

**जब पूरण ब्रह्म बिचारिये, तब सकल आतमा एक।**
**काया के गुण देखिये, तौ नाना वरण अनेक॥ १२२॥**

अमिट पाप प्रचंड

**अपणा पराया खाइ विष, देखत ही मरि जाइ।**
**दादू को जीवै नहीं, इहिं भोरे जनि खाइ॥ १२३॥**

**भाव भगति उपजै नहीं, साहिब का परसंग।**
**विषै विकार छूटै नहीं, सो कैसा सतसंग॥ १२४॥**

**बासन बिषै विकार के, तिनकौ आदर मान।**
**संगी सिरजनहार के, तिनसौ गर्व गुमान॥ १२५॥**

---

१२२—भावार्थ—जब आत्मसम्बन्ध से विचारें तो सभी जातिधर्म के मानव एक हैं। काया शरीर के गुणावगुण भावाभाव से विचारें तो फिर प्रत्येक व्यक्ति की भिन्नता है। फिर चार ही वर्ण तथा चार पांच ही धर्म हों, यह बात नहीं है।

१२३—अपणा पराया खाइ विष=यहां स्त्री सम्बन्ध का लक्ष्य है, महात्मा कहते हैं अपनी स्त्री मानकर उससे संसर्ग करना, वह विषयभोग भी अन्त=परिणाम में हानिकारक ही है, अतः इहिं भौरे जनि खाइ=इस भरोसे से भी विषयभोग में प्रवृत्त न हुआ जाय।

१२४—परसंग=सम्बन्ध, संयोग। सतसंग=सन्तजनों का संग।

१२५—वासन=वरतन। आदरमान=सत्कार, प्रतिष्ठा। गर्व गुमान=उनसे गर्व-अभिमान करना।

दृष्टान्त—*कूवा की तिय भ्रात हित, खीर करी मतिहीन।*
*सन्तन कौ करि राबड़ी, कूवे लईजू चीन॥*

अज्ञ स्वभाव अपलट

अंधे कौ दीपक दिया, तौभी तिमर न जाइ।
सोधी नहीं शरीर की, तासनि का समझाइ ॥ १२६ ॥

सगुना निगुना कृतघ्नी

दादू कहिये कुछ उपकार को, मानैं अवगुण दोष।
अंधे कूप बताइया, सत्त न मानैं लोक ॥ १२७ ॥
कालर खेत न नीपजै, जे बाहै सौ बार।
दादू हानी बीज की, क्यों पचि मरै गंवार ॥ १२८ ॥

कृत्तम कर्ता—( मूर्ति पूजन की निंदा )

दादू जिन कंकर पत्थर सेविया, सो अपना मूल गंवाइ।
अलख देव अंतरि बसै, क्या दूजी जागह जाइ ॥ १२९ ॥

---

१२६—भावार्थ—वासना की आसक्ति से ज्ञान विचारहीन नेत्ररहित अंधे को दीपक-आत्मोपदेशरूपी दीपक दे, तो भी उसका अज्ञानान्धकार नहीं हटेगा। जिसको स्वशरीर का ही ज्ञान नहीं, उसको आत्मज्ञान कैसे समझ में आवे।

१२७—अन्ध कूप बताइया = वासना-मोह से अन्धे मनुष्य को, विषय प्रवृत्ति को कूप को बताया जाय तो भी वह उसको सत्य नहीं मानता।

१२८—कालर खेतन नीपजै=कालर लगी हुई खारड़ेवाली जमीन में खेती उत्पन्न नहीं होती जे बाहै सौ बार = जो ऐसा जमीन में बीज बोते हैं वे व्यर्थ जाते हैं।

१२८—भावार्थ—जिसने सकाम साकार उपासना में अपने को लगाया, उसने अपना मूल= मनुष्य तन व्यर्थ खो दिया।

१२९—भावार्थ—केवल मूर्ति में ही ईश्वर को बांधकर उसकी पूजा में अपने को लगाये रहता है, ईश्वर की व्यापकता को समझता नहीं, उसके रागद्वेष तथा भेदवृत्ति निवृत्त नहीं होते वे अन्त काल तक उसी मूर्ति में अपने को बद्ध कर, इस अज्ञान में डूबे जाते हैं-अपना जन्म व्यर्थ खो देते हैं।

पत्थर पीवैं धोइ करि, पत्थर पूजै प्राण।
अन्ति काल पत्थर भये, बहु बूड़े इहि ज्ञान॥ १३०॥
कंकर बंध्या गांठड़ी, हीरे के बेसास।
अंतिकाल हरि जौहरी, दादू सूत कपास॥ १३१॥

संस्कार आगम

दादू पहली पूजे ढूंढसी, अब भी ढूंढस बाणि।
आगे ढूंढस होइगा, दादू सति करि जाणि॥ १३२॥

अमिट पाप प्रचंड

दादू पैंडे पाप के, कदे न दीजै पांव।
जिहिं पैंडे मेरा पिव मिलै, तिहिं पैंडे का चाव॥ १३३॥
दादू सुकृत मारग चालतां, बुरा न कबहूँ होइ।
अमृत खातां प्राणिया, मुवा न सुनिये कोइ॥ १३४॥

भ्रम बिधूसण

कुछ नांही का नांव क्या, जे धरिये सो झूठ।
सुर नर मुनि जन बंधिया, लोका आवटकूट॥ १३५॥

---

१३०—दृष्टान्त—*पति तिय सौंप कपास, आप गयो परदेस को॥*
*कात्यो नांहि उदास, पति आवत परपञ्च रचि॥*

१३२—ढूंढसी = आत्मा को छोड़ अन्य भैरवादि देव पूजे। बाणि=आदत, स्वभाव।

१३३—पैंडे=मार्ग, रास्ते, साधनपथ में। चाव=चाह, उमंग।

१३३—भावार्थ—आत्मा नाम-रूप-गुण से रहित है, उसमें नाम-रूप-गुण कहना व आरोपित करना मिथ्या है। आवटकूट=अरहट की तरह जीवन-मरण के चक्कर देवादि तथा सब प्राणी जगत घूम रहा है, आत्मा को जाने बिना।

कुछ नाहीं का नांव धरि, भरम्या सब संसार।
साच झूठ समझै नहीं, ना कुछ किया बिचार॥ १३६॥

कस्तूरिया मृग

दादू केई दौड़े द्वारिका, केई काशी जांहिं।
केई मथुरा कौ चले, साहिब घटही मांहिं॥ १३७॥

भ्रम बिधौंसण

ऊपरि आलम सब करै, साधू जन घट मांहिं।
दादू एता अंतरा, ताथै बनती नांहिं॥ १३८॥
दादू सब थे एक के, सो एक न जाना।
जणे जणे का ह्वै गया, यहु जगत दिवाना॥ १३९॥

साच

झूठा साचा करि लिया, विष अमृत जाना।
दुख कौ सुख सब को कहै, ऐसा जगत दिवाना॥ १४०॥

---

१३८—ऊपरि आलम सब करै=बाहर दिखावे की पूजा संसार के अधिकांश प्राणी करते हैं।

दृष्टान्त—*सेख सन्यासी देहुरे, बैठो बोले मूढ॥*
*करि डंडोत मूरत फरी, तब तत् समझ्यो गूढ॥*

१३९—दादू सब थे एकके=संसार के सभी प्राणी उसी एक चेतना शक्ति से चेतन है उसी को नहीं समझा।

दृष्टान्त—*संख पंचानन ना बज्यो, पांडव के यज्ञ मांहिं॥*
*सब मिल पूछी कृष्ण सों, मम जन जीम्यों नांहिं॥*

१४०—झूठा साचा कर लिया=अनित्य विषयभोग के पदार्थ, दुनियां के नकली सम्बन्ध उनको सत्य मान कर संसार के प्राणी दिवाने हो रहे हैं।

सूधा मारग साच का, साचा होइ सो जाइ।
झूठा कोई ना चलै, दादू दिया दिखाइ॥ १४१॥

साहिब सौं साचा नहीं, यहु मन झूठा होइ।
दादू झूठे बहुत हैं, साचा बिरला कोइ॥ १४२॥

दादू साचा अंग न ठेलिये, साहिब मानै नांहि।
साचा सिर परि राखिये, मिलि रहिये ता मांहिं॥ १४३॥

जे कोइ ठेलै साच कौ, तौ साचा रहै समाइ।
कौड़ी बर क्यौं दीजिये, रत्न अमोलिक जाइ॥ १४४॥

साचे साहिब कौ मिलै, साचे मारगि जाइ।
साचे सौं साचा भया, तब साचे लिये बुलाइ॥ १४५॥

दादू साचा साहिब सेविये, साची सेवा होइ।
साचा दर्शन पाइये, साचा सेवग सोइ॥ १४६॥

साचे का साहिब धणी, समर्थ सिरजनहार।
पाखंड की यहु पृथ्वी, परपंच का संसार॥ १४७॥

---

१४१—सूधा = सीधा, ठीक।

१४२—साचा नहीं=आत्माभिमुख नहीं। झूठा=झूठे पदार्थों में लगा स्वयं झूठा हो रहा है।

१४३—साचा अंग न ठेलिये=जो सत्य है उसको अपनी समझ से ओझल न करे।

१४४—भावार्थ—यदि कोई तांत्रिक या सिद्धियों का चाहने वाला अपने को आत्मचिन्तन के सही मार्ग से विचलित करे तो आत्मचिन्तन करने वाला साधक उसके बहकावे में न बहे अपनी साधना में ही लगा रहे। कौड़ी की तरह सामान्य सिद्धियों की चाह में अपना आत्मचिन्तन रूप अमूल्य साधन क्यों? छोड़ा जाय।

१४७—धणी=मालिक, स्वामी। पाखंड की यहु पृथ्वी=यह जगत पाखंड को मान्यता देने वाला है, वह वास्तविकता तक न पहुँच जो कुछ देखता है उसी की मान्यताकरता है।

दादू देद कहो चाहे साधुमुख, साच न ठेल्या जाय।
सांचे सूं मन मानियां, सो तत देहु दिखाय ॥ १४८ ॥
झूठा परगट साचा छानै, तिन की दादू राम न मानै ॥१४६॥
दादू पाखंडी पीव न पाइये, जे अंतरि साच न होइ।
ऊपरि थै क्यूं ही रहौ, भीतरि के मल धोइ ॥ १५० ॥
साच अमर जुगि जुगि रहै, दादू बिरला कोइ।
झूठ बहुत संसार मैं, उतपति परलै होइ ॥ १५१ ॥
दादू झूठा बदलिये, साच न बदल्या जाइ।
साचा सिर पर राखिये, साधु कहै समझाइ ॥ १५२ ॥
साच न सूझै जब लगै, तब लग लोचन अंध।
दादू मुकता छाडि करि, गल मैं घाल्या फंद ॥ १५३ ॥
साच न सूझै जब लगै, तब लग लोचन नांहिं।
दादू निरबँध छाडि करि, बंध्या द्वै पख मांहिं ॥ १५४ ॥

---

१४८—ठेल्या जाय=बदला जाय, अन्यथा किया जाय।

१४६—झूठा परगट=झूठा-मिथ्या संसार व संसार के पदार्थ तथा सम्बन्ध उसको परगट-सच्चे समझता है। साचाछानै=जो परमेश्वर-समष्टिचेतन सब में व्याप रहा है, उसको छिपा हुआ समझता है।

१५०—पाखंडि = छल, बनावट। ऊपरथी क्यूं ही रहो=ऊपरी दिखावे में कैसा ही क्यों ? न हो।

१५१—उतपति परलै होइ=जन्म मृत्यु की उलझन लगी रहती है।

१५३—लोचन = ज्ञान-विचार-मय नेत्र। अंध=आवृत्त। मुकता=आत्मचिन्तन रूपी रत्न। फंद = फंदा।

१५४—निरबंध=नाम रूपादि बन्धन रहित व्यापक ब्रह्म। द्वैपख = सगुण-निर्गुण रूप।

एक साच सौं गहगही, जीवन मरण निबाहि।
दादू दुखिया राम बिन, भावै तीधरि जाहि ॥ १५५ ॥

कामी नर

दादू छानै छानै कीजिये, चौड़ै परगट होइ।
दादू पैसि पयाल मैं, बुरा करै जनि कोइ ॥ १५६ ॥

अदया हिंसा

अनकीया लागै नहीं, कीया लागै आइ।
साहिब कै दरि न्याव है, जे कुछ राम रजाइ ॥ १५७ ॥

आत्मार्थि भेख

सोइ जन साधू सिद्ध सो, सोइ सतवादी सूर।
सोइ मुनियर दादू बड़े, सन्मुख रहणि हजूर ॥ १५८ ॥
सोइ जन साचे सो सती, सोइ साधक सूजान।
सोइ ज्ञानी सोइ पंडिता, जे राते भगवान ॥ १५९ ॥
दादू सोइ जोगी सोइ जंगमा, सोइ सोफी सोइ सेख।
सोइ सन्यासी सेवड़े, दादू एक अलेख ॥ १६० ॥

---

१५५—गहगही=गहरी प्रीति। निबाहि=निर्वाह करे, निभावे।

१५६—पयाल=पाताल में, अति एकान्त में।

दृष्टान्त—*पुतरी पै संकल्प लियो, नृप को बाज्यो ढोल ॥*
*फिर सुनियो शोभा भई, सब जग सुलटो बोल ॥*

१५७—दृष्टान्त—*इक कावड़िया विप्र का, काट्या हाथ कुम्हार ॥*
*पुनिजन तसकर वीसको, पाडा वीसहि मार ॥*

१५८—मुनियर=मुनिवर, मुनियों में श्रेष्ठ। सन्मुख रहणि हजूर=जिनकी निश्चलवृत्ति सदा आत्माभिमुख लगी रहे।

सोई काजी, सोई मुल्लां, सोइ मोमिन मूसलमान ।
सोई सयाने सब भले, जे राते रहिमान ॥ १६१ ॥

राम नाम कौ बणिजन बैठे, ताथैं मांड्या हाट ।
सांई सौं सौदा करै, दादू खोल कपाट ॥ १६२ ॥

सज्जन दुर्जन

बिच के सिर खाली करैं, पूरे सुख संतोष ।
दादू सुध बुध आतमा, ताहि न दीजै दोष ॥ १६३ ॥

सुध बुध सूं सुख पाइये, कै साधु विवेकी होइ ।
दादू ये बिच के बुरे, दाधे रीगे सोइ ॥ १६४ ॥

जनि कोई हरिनांव मैं, हम कौ हाना बाहि ।
ताथैं तुम थैं डरत हूं, क्यौंहीं टलै बलाइ ॥ १६५ ॥

---

१६२—भावार्थ—सन्त महात्मा—जिन्होंने स्वस्वरूप पहिचान लिया है—वे राम नाम का—आत्मचिन्तन का ही व्यापार करते हैं, उन्होंने अपनी हाट-दुकान इसीलिये लगाई है । वे साधक जिज्ञासु, आसक्ति और मोह के किंवाडों से बन्द अन्तःकरण का दरवाजा खोल, सांई से—अपने अधिष्ठानचेतन से सौदा करा देते हैं = साक्षात् परिचय करा देते हैं ।

१६३—विच के=अनिश्चयी, संसार और ईश्वर दोनों की ओर झपटने वाले । पूरे=आत्म-निश्चयी । सुधबुध=निर्दोष, भोले ।

१६४—दाधे रीगे सोइ = जिनके हृदय मात्सर्य की आग से जल रहे हैं । जो दूसरों में विविध अवगुणों का आरोप कर कलपते हों या अपनी मिथ्या सिद्धियों को जचाने का यत्न करते हों ।

१६५—हानावाहि=बाधा उपस्थित करे, विघ्न डाले । क्यौंही=कैसे ही । बलाइ=आफत ।

परमार्थी

जे हम छाडैं राम कौ, तौ कौन गहैगा।
दादू हम नहिं उचरैं, तौ कौन कहैगा॥ १६६॥

कामी नर

एक राम छाड़ै नहीं, छाड़ै सकल बिकार।
दूजा सहजैं होइ सब, दादू का मत सार॥ १६७॥
जे तू चाहै राम कौ, तौ एक मना आराध।
दादू दूजा दूरि कर, मन इन्द्रिय कर साध॥ १६८॥

विरक्तता

कबीर बिचारा कहि गया, बहुत भांति समझाइ।
दादू दुनिया बावरी, ताके संग न जाइ॥ १६९॥

सूखिम मारग

पावैंगे उस ठौर को, लंघैंगे यहु घाट।
दादू क्या कहि बोलिये, अजहूं बिच ही बाट॥ १७०॥

साच

साचा राता साच सौं, झूठा राता झूठ।
दादू न्याव नबेरिये, सब साधौं कौ पूछ॥ १७१॥

---

१६६—दृष्टान्त—*गुरू दादू आमेर तैं, चले सीकरी जाइ॥*
*मग चालत कहि सिखन सों, तब यह साख सुनाइ॥*

१६८—एक मना आराध = एकाग्रचित्त से साधना में लगा, मन इन्द्रिय कर साध = मन-इन्द्रियों को रोक।

१७०—लंघैंगे यहु घाट=यह वासनामय संसार का विकट घाट कब पार कर सकेंगे।
दृष्टान्त—*तपसी सों वेश्या कहे, जनन हो कि जवान॥*
*त्यागो तन पूछत भई, मर्द मर्द परवान॥*

१७१—सब साधौं कौ पूछ=सब श्रेष्ठ साधक जिनने सही मार्ग पा लिया है, उनसे पूछ कर।

सज्जन दुर्जन

जे पहुंचे ते कहि गये, तिन की एकै बात।
सबैं सयाने एकमत, उनकी एकै जात॥ १७२॥
जे पहुंचे ते पूछिये, तिन की एकै घाट।
सब साधौं का एकमत, ये बिच के बारह बाट॥ १७३॥
सूरज साखी-भूत है, साच करै परकास।
चोर डरै चोरी करै, रैन तिमिर का नास॥ १७४॥
चोर न भावै चांदिणां, जनि उजियारा होइ।
सूते का सब धन हरौं, मुझै न देखै कोइ॥ १७५॥

संस्कार आगम

घटि घटि दादू कहि समझावै, जैसा करै सो तैसा पावै।
को घट पापी को घट पुण्य, को घट चेतन, को घट शून्य।
को काहू का सीरी नांहीं, साहिब देखै सब घट मांहीं॥१७६॥

॥ इति साच को अंग सम्पूर्ण॥ १३॥

---

१७२—सयाने = जानकार, समझदार। विचके=संदिग्ध अवस्था वाले।
दृष्टान्त—*दूध मंगायो बीरबल, कुंड भरायो रात॥*
*रैन सकल जन जल भर्यो, लख्यो पातसा प्रात॥*

१७४—साखी भूत है = साक्षी रूप है।

१७६—चोर न भावै चांदणा=चोर को प्रकाश अच्छा नहीं लगता, इसी तरह बिषयरत पुरुष को आध्यात्मिक प्रवृत्ति अच्छी नहीं लगती है।

१७७—घटिघटि=प्राणी प्राणी। सीरी=साझीदार, भागीदार। साहिब=व्यापक-ईश्वर। सब घटमांहि=सब प्राणियों में अवलोकन करे—यही सत्य है।
दृष्टान्त—*जैसा करे सो तैसा पावे, जोगी को गुड मंडा भावे॥*
*जो न पतीजो तो कर देखो, यामें रती मीन नहि मेखो॥*

❀ *इति सांच को अङ्ग समाप्त* ❀

# अथ भेष को अङ्ग ॥ १४ ॥
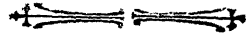
दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरुदेवतः।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

पतिव्रत निहकाम

दादू बूड़ै ज्ञान सब, चतुराई जलि जाइ।
अंजन मंजन फूंकि दे, रहै राम ल्यौ लाइ ॥ २ ॥

राम बिना सब फीके लागैं, करणी कथा गियान।
सकल अविर्था कोटि करि, दादू जोग धियान ॥ ३ ॥

इंद्रियार्थी भेष

ज्ञानी पंडित बहुत हैं, दाता सूर अनेक।
दादू भेष अनंत हैं, लागि रह्या सो एक ॥ ४ ॥

कोरा कलस अवाह का, ऊपरि चित्र अनेक।
क्या कीजै दादू वस्तु बिन, ऐसे नाना भेष ॥ ५ ॥

बाहरि दादू भेष बिन, भीतरि वस्तु अगाध।
सो ले हृदय राखिये, दादू सनमुख साध ॥ ६ ॥

---

२—बूड़ै=डूब जाय। ज्ञान=लौकिक ज्ञान की प्रवृत्ति। अंजन मंजन=साज शृङ्गार।

३—फीकै=असार। अविर्था=व्यर्थ, निःसार। धियान=ध्यान।

४—ज्ञानी पंडित=शास्त्र संस्कारी विद्वान्। लागि रह्या=लय ध्यान में संलग्न।

५—अवाह=कुम्हार का वर्तन पकाने का आवा। वस्तु बिन=सार्थक वस्तु हीन।

६—भीतर=अंतःकरण में। वस्त=आत्मोपलब्धि का अनुभव। अगाध=अथाह।
सनमुख साध=उपर्युक्त श्रेष्ठ महात्माओं के सन्मुख अनुकूल रहना।

दादू भांडा भरि धरि वस्तु सूं, ज्यौं महिंगे मोल बिकाइ।
खाली भांडा वस्तु बिन, कौड़ी बदलै जाइ॥ ७॥
दादू कनक कलस विष सूं भरया, सो किस आवै काम।
सो धनि कूटा चाम का, जामैं अमृत राम॥ ८॥
दादू देखै वस्तु कौ, वासन देखै नांहिं।
दादू भीतरि भरि धरया, सो मेरे मन मांहिं॥ ९॥
दादू जे तूं समझै तौ कहूँ, साचा एक अलेख।
डाल पान तजि मूल गहि, क्या दिखलावै भेष॥ १०॥
दादू सब दिखलावैं आपकूं, नाना भेष बणाइ।
जहं आपा मेटन हरि भजन, तिहिं दिसि कोइ न जाइ॥११॥
दादू भेष बहुत संसार मैं, हरिजन विरला कोइ।
हरिजन राता राम सं, दादू एकै होइ॥ १२॥

---

—भांडा भर धरि वस्तु सूं=हृदयरूपी वर्तन को नाम चिन्तन रूप वस्तु से भरे रखे। भेषरूपी भांडे को साधु के यथार्थ लक्षण वाले गुणों से भर रखे। मंहिगे=अधिक।

—कनक कलश=सोने का घड़ा, सुन्दर, रूपवान-मानवतन। विष सूं=जहर से, विषय-भोग की वासना से। धनि=धन्य, सराहनीय। कूटा चाम का=चमड़े का सौंधड़ा, कुरुप, काला मानव तन।

—वस्तु=वस्तु, गुण, वास्तविकता। वासन=वर्तन, केवल बाहरी रूप।

०—डाल पान तजि=सकाम सपक्ष साधना को त्याग। मूल गहि=सब धर्मों तथा सब साधनों का मूल ग्रहण कर।

२—भेष बहुत=नाना भेष है।

दृष्टान्त—*माला मुद्रा मेषला, जटा जनेऊ टोप।*
*अज्ञानी के इष्ट है, ज्ञानी के आरोप॥*

हीरै रीझै जौहरी, खलि रीझै संसार।
स्वांगि साधु बहु अन्तरा, दादू सत्ति विचार॥ १३॥
स्वांगि साध बहु अंतरा, जेता धरणि अकास।
साधू राता राम सौं, स्वांगि जगत की आस॥ १४॥
दादू स्वांगी सब संसार है, साधू विरला कोइ।
जैसे चन्दन बावना, वन वन कहीं न होइ॥ १५॥
दादू स्वांगी सब संसार है, साधू कोइ एक।
हीरा दूरि दिसंतरा, कंकर और अनेक॥ १६॥
दादू स्वांगी सब संसार है, साधू सोधि सुजाण।
पारस परदेसौं भया, दादू बहुत पषाण॥ १७॥
दादू स्वांगी सब संसार है, साधु समंदा पार।
अनल पंखि कहं पाइये, पंखी कोटि हजार॥ १८॥
दादू चन्दन वन नहीं, सूरन के दल नांहि।
सकल खानि हीरा नहीं, त्यौं साधू जग मांहि॥ १९॥
जे सांई का ह्वै रहै, सांई तिसका होइ।
दादू दूजी बात सब, भेष न पावै कोइ॥ २०॥

---

१३—हीरैं=सच्चे सन्त साधक। रीझै=लालायित, अति प्रसन्न। खल=सारहीन, ढोंगी भेष वाले। स्वांगि=बनावटी भेष वाले।

१६—हीरा दूर दिसंतरा=सत्य की शोध में लगे साधु पुरुष कहीं किसी एकान्त देश में प्राप्त होते हैं।

१७—सोधि=तलाश कर। परदेशों=दूर देश में। पषाण=पत्थर, बनावटी भेषधारी।

१८—कंह पाइये=कहीं ही मिल सकता है।

२०—जे सांई का ह्वै रहे=जो अहंकार, वासना तथा देहाध्यास त्याग सर्वात्मना सांई का हो जाय।

दादू स्वांग सगाई कुछ नहीं, राम सगाई साच ।
दादू नाता नांव का, दूजै अंगि न राच ॥ २१ ॥
दादू एकै आतमा, साहिब है सब मांहिं ।
साहिब के नाते मिलै, भेष पंथ के नांहिं ॥ २३ ॥
दादू माला तिलक सूं कुछ नही, काहू सेती काम ।
अंतरि मेरे एक है, अहि निशि उस का नाम ॥ २३ ॥

अमिट पाप प्रचंड

भगत भेष धरि मिथ्या बोलै, निंदा पर अपवाद ।
साचे कौ झूठा कहै, लागै बहु अपराध ॥ २४ ॥
दादू कबहूं कोई जनि मिलै भगत भेष सूं जाइ ।
जीव जन्म का नाश है, कहै अमृत विष खाइ ॥ २५ ॥

चित कपटी

दादू पहुँचे पूत बटाऊ होइ करि, नट ज्यूं काछ्या भेष ।
खबरि न पाई खोज की, हम कूं मिल्या अलेख ॥ २६ ॥
दादू माया कारण मूंड मुंडाया, यहु तौ जोग न होइ ।
पारब्रह्म सूं पर्चा नांहीं, कपट न सीझै कोइ ॥ २७ ॥

अनलगनि विभिचार

पीव न पावै बावरी, रचि रचि करै सिंगार ।
दादू फिरि फिरि जगत सूं, करैगी विभिचार ॥ २८ ॥

---

२१—स्वांग सगाई=बनावटी भेष का नाता । राच=रीझ, आसक्त हो ।

२४—भगत भेष=साधु का पहनावा पहन । पर अपवाद=और की बुराई ।

२५—भगत भेष सूं जाइ = बनावटी भगत से कोई भी जाकर नाता न जोड़े ।

२६—बटाऊ=राहगीर, पथिक । काछ्या=पहना, बनाया ।

२७—कपट न सीझै कोइ=कपटी भेष बनाने से कोई परमार्थ को प्राप्त नहीं कर पाता है ।

२८—पीव न पावे बावरी=इस तरह बनावटी ढोंग से अपने स्वामी को नहीं प्राप्त किया जा सकता ।

प्रेम प्रीति सनेह बिन, सब झूठे सिंगार।
दादू आतम रत नहीं, क्यूं मानै भर्तार॥ २९॥

दादू जग दिखलावै बावरी, षोड़स करै सिंगार।
तहं न संवारै आप कूं, जहं भीतरि भर्तार॥ ३०॥

इंद्रियार्थी भेष

सुध बुध जीव धिजाइ करि, माला संकल बाहि।
दादू माया ज्ञान सूं, स्वामी बैठा खाइ॥ ३१॥

जोगी जंगम सेवड़े, बोध सन्यासी सेख।
षट दर्शन दादू राम बिन, सबै कपट के भेष॥ ३२॥

दादू सेख मसाइक औलिया, पैगंबर सब पीर।
दर्शन सूं पर्सन नहीं, अजहूं वैली तीर॥ ३३॥

दादू नाना भेख बनाइ करि, आपा देखि दिखाइ।
दादू दूजा दूरि करि, साहिब सूं ल्यौ लाइ॥ ३४॥

---

३०—तहं न संवारे आपको=उस निर्द्वन्द्व आत्मा की प्राप्ति की ओर अपने को क्यों ? नहीं तत्पर करता।

३१—सुध बुध= सीधे साधे, भोले। धिजाइ=विश्वास में ला। माला संकल बाहि=माला रूपी सांकल उनके गले में डाल। स्वांगी=बनावटी भेषधारी।

३३—दर्शन सूं=केवल रूप बनाने से। परसन=प्रसन्न। वैली तीर=ऊले किनारे, संसार के चक्कर में

३४—आपा देख दिखाइ=अपने बनावटी भेष को स्वयं देख राजी होता है तथा औरों को दिखा उन्हें धोका देने का प्रयास करता है।

दादू देखा देखी लोक सब, केते आवै जांहिं ।
राम सनेही ना मिलै, जे निज देखै मांहिं ॥ ३५ ॥
दादू सब देखै अस्थूल कौं, यहु ऐसा आकार ।
सूखिम सहज न सूझई, निराकार निर्धार ॥ ३६ ॥

पारिख अपारिख

दादू बाहरि का सब देखिये, भीतरि लख्या न जाइ ।
बाहरि दिखावा लोक का, भीतरि राम दिखाइ ॥ ३७ ॥
दादू यहु परिख सराफी ऊपली, भीतरि की यहु नांहिं ।
अंतरि की जानै नहीं, तार्थै खोटा खांहिं ॥ ३८ ॥
दादू झूठा राता झूठ सूं, साचा राता साच ।
एता अंध न जानहीं, कहं कंचन कहं काच ॥ ३९ ॥

इंद्रियार्थी भेष

दादू सचु बिन सांई ना मिलै, भावै भेष बनाइ ।
भावै करवत उरध मुखि, भावै तीरथ जाइ ॥ ४० ॥
दादू साचा हरि का नांव है, सो ले हिरदै राखि ।
पाखंड प्रपंच दूरि करि, सब साधौं की साखि ॥ ४१ ॥

---

३५—जे निज देखे मांहि = जो अपने में अपने को प्राप्त करते हैं।

३६—अस्थूल = शरीर को। सूखिम सहज = सूक्ष्म वास्तविक आत्मा।

३८—परिष = परीक्षा, जानकारी। सराफी=जांच। ऊपली=ऊपरी, बाहरी। खोटा खांहि= धोखा खाते, ठगे जाते।

४०—भावे=चाहे। करवत उरध मुखि=काशी करवत लेना।

आपा निरद्वेष

हिरदै की हरि लेइगा, अंतरजामी राइ।
साच पियारा राम कूं, कोटिक करि दिखलाइ ॥ ४३ ॥
दादू मुख की ना गहै, हिरदै की हरि लेइ।
अंतरि सूधा एक सूं, तौ बोल्यां दोष न देइ ॥ ४४ ॥

इंद्रियार्थी भेष

सब चतुराई देखिये, जे कुछ कीजै आन।
मन गहि राखै एक सूं, दादू साधु सुजान ॥ ४५ ॥

आत्मार्थी भेष

शबद सुई सूरति धागा, काया कंथा लाइ।
दादू जोगी जुग जुग पहिरै, कबहूं फाटि न जाइ ॥ ४६ ॥

---

४३—लेइगा=स्वीकार करेगा।

४४—अन्तर सूधा एक सूं=जो हृदय से उस एकही व्यापक-परमेश्वर के सनमुख है। बोल्यां=केवल कथनी।

दृष्टान्त—*सन्त दोय इक ठोड़ रहे, इक कपटी इक सुद्ध।*
*सुद्ध राम को गाल दे, कपटी स्तुति अबुद्ध ॥*

४५—सब चतुराई देखिये, जे कुछ कीजै आन=उस एक ईश्वर की आराधना को छोड़ जो विविध दिखावटी, तप, भजन, पूजा, त्याग, भेष आदि किये जाते हैं, वे रूप दिखाने की चतुराई मात्र है।

४६—भावार्थ—प्रणव शब्द है वही सूई है, अन्तःकरण की शुद्ध-वृत्ति है वही तागा है, काया अंतःकरण है वही कन्था गूदड़ी है, इस गूदड़ी को प्रणव-जापमय सूई में वृत्तिस्थैर्य रूप धागा पिरो कर जो सीं लेते हैं वे फिर जुग-जुग = अनन्त समय तक उसको पहनते रहते हैं। वह कंथा फिर कभी जन्म-मृत्यु से फटती नहीं है।

ज्ञान गुरू का गूदड़ी, शबद गुरू का भेष।
अतीत हमारी आत्मा, दादू पंथ अलेष ॥ ४७ ॥
इशक अजब अबदाल है, दरदवंद दरवेस।
दादू सिक्का सबुर है, अकलि पीर उपदेश ॥ ४८ ॥

इति भेष को अंग सम्पूर्ण।

४७—भावार्थ—वास्तविक भेष ऐसा होना चाहिए। गुरू का आत्मपरिचयार्थ जो उपदेश है वही गूदड़ी धारण करना। नामचिन्तन रूप शब्द है वही भेष बाना है। हमारा आत्मा है वही अतीत है इस तरह अलेख न लखे जाने वाले व्यापक ब्रह्म का यह पंथ है=मार्ग है।

४८—भावार्थ—ईश्वर का अनन्य अनुराग है वही करामात है, विरह युक्त साधक ही दरवेस साधु हैं। सन्तोष है वही सिक्का बाना है, जो कलन रहित वासना मोह से निकले हुए महात्मा हैं वे ही पीर=गुरु स्थानीय हैं, उन्हीं का कथन है वह सच्चा उपदेश है।

❀ इति भेष का अंग सम्पूर्ण ❀

# अथ साधु को अङ्ग ॥ १५ ॥

दादू नमो नमो नमो निरंजनम् , नमस्कार गुरुदेवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

साधु महिमा

दादू निराकार मन सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं सेव ।
जे पूजै आकार कौ, तौ साधू प्रत्तष देव ॥ २ ॥
दादू भोजन दीजै देह कौ, लीया मन विश्राम ।
साधू के मुख बोलिये, पाया आतमराम ॥ ३ ॥
ज्यौं यहु काया जीव की, त्यौं सांई के साध ।
दादू सब संतोषिये, माँहैं आप अगाध ॥ ४ ॥

॥ सत्संग माहात्म्य ॥

साधू जन संसार मैं, भव जल बोहित अङ्ग ।
दादू केते ऊधरे, जेते बैठे संग ॥ ५ ॥
साधू जन संसार में, शीतल चंदन वास ।
दादू केते उधरे, जे आये उन पास ॥ ६ ॥
साधू जन संसार में, हीरे जैसा होइ ।
दादू केते ऊधरे, संगति आये सोइ ॥ ७ ॥

---

२—निराकार=रूप रहित । सेव = आराधना कर ।

४—संतोषिये = सन्तुष्ट करिये । माँहैं=उनमें । आप=स्वयं परमेश्वर ।

५—भव-जल=संसार सागर । बोहित=जहाज ।

साधू जन संसार मैं, पारस परगट गाइ।
दादू केते ऊधरे, जेते परसे आइ ॥ ८ ॥
रूंख विरख वनराइ सब, चंदन पासै होइ।
दादू वास लगाइ करि, किये सुगंधे सोइ ॥ ९ ॥
जहां अरंड अरु आक थे, तहं चंदन ऊग्या मांहिं।
दादू चंदन करि लिया, आक कहे को नांहिं ॥ १० ॥
साधु नदी जल रामरस, तहां पखाले अंग।
दादू निर्मल मल गया, साधू जन के संग ॥ ११ ॥

॥ परमार्थी ॥

साधू बरखै राम रस, अमृत बाणी आइ।
दादू दर्शन देखतां, त्रिविध ताप तन जाइ ॥ १२ ॥
ब्रह्माण्ड हंड चढाइया, मानो ऊरै अन्न।
कोई गुरू कृपा तै ऊबरे, दादू साधू जन्न ॥ १३ ॥

॥ साधु संग महिमा ॥

संसार बिचारा जात है, बहिया लहरि तरंग।
भेरै बैठा ऊबरै, सत साधू के संग ॥ १४ ॥

---

८—परसे = सहवास में आये।

९—बिरख=वृक्ष। वनराइ=उपवन, जंगल। वास=गन्ध।

११—पखाले = धोवे।

१२—त्रिविध=आध्यात्मिक, आधि-भौतिक, आधि-दैविक। ताप=सन्ताप।

१४—बहिया = बहता हुआ। लहरि तरंग=विषयवासना व तृष्णा की तरंगो में। भैरे=नौका। ऊबरै=बचे।

दादू नेड़ा परम पद, साधू संगति मांहिं।
दादू सहजैं पाइये, कबहूं निर्फल नांहिं॥ १५॥
दादू नेड़ा परम पद, करि साधू का संग।
दादू सहजैं पाइये, तन मन लागे रंग॥ १६॥
दादू नेड़ा परम पद, साधू संगति होइ।
दादू सहजे पाइये, स्याबत सनमुख सोइ॥ १७॥
दादू नेड़ा परम पद, साधू जन के साथ।
दादू सहजैं पाइये, परम पदारथ हाथ॥ १८॥
साधु मिले तब ऊपजै, हिरदै हरि का भाव।
दादू संगति साधु की, जब हरि करे पसाव॥ १९॥
साधु मिलै तब ऊपजै, हिरदै हरिका हेत।
दादू संगति साधु की, कृपा करे तब देत॥ २०॥
साधु मिलै तब ऊपजै, प्रेम भगति रुचि होइ।
दादू संगति साधु की, दया करि देवे सोइ॥ २१॥
साधु मिलै तब ऊपजै, हिरदै हरि की प्यास।
दादू संगति साधु की, अविगत पुरवै आस॥ २२॥

---

१५—नेड़ा=समीप, अपने ही भीतर।

१७—स्याबत सनमुख होइ=निश्चल अखंड वृत्ति से आत्मा के आराधन में लगने से।

१९—पसाव=अतिक्रिया।

दृष्टान्त—*तस्कर सुत गयो तेल को, हरिजन हाट्यों मांहि॥*
*राघो चरचा यों सुनी, सुरकै छाया नांहि॥*

२२—प्यास=तीव्रचाह। अविगत=बेहिसाब। पुरवै=पूरी करे।

साधु मिलै तब हरि मिलै, सब सुख आनंद मूर ।
दादू संगति साधु की, राम रह्या भरपूर ॥ २३ ॥

॥ चौप चर्चा ॥

परम कथा उस एक की, दूजा नांहीं आन ।
दादू तन मन लाइ करि, सदा सुरति रस पान ॥ २४ ॥

॥ साधु सपरस ( स्पर्श ) विनती ॥

प्रेम कथा हरि की कहै, करै भगति ल्यौ लाइ ।
पिवै पिलावै राम रस, सो जन मिलवौ आइ ॥ २५ ॥
दादू पिवै पिलावै रामरस, प्रेम भगति गुणगाइ ।
नितप्रति कथा हरि की करै, हेत सहित ल्यौ लाइ ॥ २६ ॥
आन कथा संसार की, हमहिं सुणावै आइ ।
तिस का मुख दादू कहै, दई न दिखाई ताहि ॥ २७ ॥
दादू मुख दिखलाई साधु का, जे तुमहीं मिलवै आइ ।
तुम मांहीं अन्तर करै, दई न दिखाई ताहि ॥ २८ ॥
जब दरवौ तब दीजियौ, तुम पै मांगौं येहु ।
दिन प्रति दर्शन साधु का, प्रेम भगति दिढ देहु ॥ २९ ॥

---

२३—आनन्द मूर=आनन्द का, प्रसन्नता का मूल ।

२४—सुरति रसपान=सुरति वृत्ति की स्वस्वरूप में स्थिरताजन्य आनन्द रस पान करे ।

२५—सो जन मिलवो आइ=ऐसे महात्मा पुरुष आकर मिले ।

२७—आन कथा=संसार के सुखभोग की प्रवृत्ति वाला उपदेश । दई=विधाता ।

२८—जे तुमहीं मिलवै आइ=जो महात्मा अपने सहवास से आप-परमेश्वर की प्राप्ति करा सके ।

२९—दरवौ=करुणा करे, दया करे । दिनप्रति=नित्य-नित्य । दिढ=दृढ, स्थिर ।

साधु सपीड़ा मन करै, सतगुर शबद सुणाइ ।
मीरां मेरा मिहरि करि, अन्तर विरह उपाइ ॥ ३० ॥

सज्जन

ज्यौं ज्यौं होवै त्यौं कहै, घटि बधि कहै न जाइ ।
दादू सो सुध आतमा, साधू परसै आइ ॥ ३१ ॥

सतसंग महिमा

साहिब सौं सनमुख रहै, सतसंगति मैं आइ ।
दादू साधू सब कहैं, सो निरफल क्यूं जाइ ॥ ३२ ॥
ब्रह्म गाइ त्रिय लोक मैं, साधू अस्थन पान ।
मुख मारग अमृत झरै, कत ढूंढै दादू आन ॥ ३३ ॥
दादू पाया प्रेम रस, साधु संगति मांहिं ।
फिरि फिरि देखै लोक सब, यहु रस कतहूं नांहिं ॥ ३४ ॥
दादू जिस रस कूं मुनियर मरैं, सुरनर करैं कलाप ।
सो रस सहजैं पाइये, साधु संगति आप ॥ ३५ ॥

---

३०—सपीड़ा=पीड़ासहित, विरह युक्त । मीरां=सबसे महान् । मिहरि=अति दया । उपाइ=उत्पन्न कर ।

३१—घटि बधि=कम ज्यादा । सुध = निर्मल । परसै=मिलै ।

दृष्टान्त—*नृप नाभाग सु पुत्र लघु, यज्ञ जु पूरण कीन्ह ॥*
*दियो वसू अवसेष सब, पुनि सब शिव जी दीन्ह ॥*

३३—ब्रह्म गाइ—व्यापक-चेतन हैं वही गाय है । अस्थन=स्तन, थण । आन=और स्थान पर ।

३५—मुनिवर=बडे-२ श्रेष्ठ मुनिजन । कलाप = तड़फैं ।

संगति बिन सीझै नहीं, कोटि करै जे कोइ ।
दादू सतगुरु साधु बिन, कबहूं सूध न होइ ॥ ३६ ॥

दादू नेड़ा दूर थैं, अविगत का आराध ।
मनसा वाचा करमणा, दादू संगति साध ॥ ३७ ॥

सर्ग न शीतल होइ मन, चंद न चन्दन पास ।
शीतल संगति साधु की, कीजै दादू दास ॥ ३८ ॥

दादू शीतल जल नहीं, हेम न शीतल होइ ।
दादू शीतल संत जन, राम सनेही सोइ ॥ ३९ ॥

॥ साधु बेपरवाही ॥

दादू चंदन कदि कह्या, अपना प्रेम प्रकास ।
दह दिसि परगट ह्वै रह्या, शीतल गंध सुवास ॥ ४० ॥

दादू पारस कदि कह्या, मुझ थी कंचन होइ ।
पारस परगट ह्वै रह्या, साच कहै सब कोइ ॥ ४१ ॥

॥ नर बिडरूप (हठीजन) ॥

तन नहि भूला मन नहिं भूला, पंच न भूला प्राण ।
साधु शबद क्यूं भूलिये, रे मन मूढ अजाण ॥ ४२ ॥

---

३६—सीझै = सार्थक । सूध=सीधा, वास्तविक ।

३७—नेड़ा=समीप, हृदय देशमें ही । अविगत=अवर्णनीय । आराध=आराधना, उपासना ।

३८—सर्ग न=न तो स्वर्ग में । चंद न=न चन्द्रमा के पास । न चन्दन=न चन्दन से ।

३९—हेम=हिम, बर्फ ।

साधु महिमा

रत्न पदारथ माणिक मोती, हीरौं का दरिया।
चिंतामणि चित राम धन, घट अमृत भरिया ॥ ४३ ॥
समर्थ सूरा साधु सो, मन मस्तक धरिया।
दादू दर्शन देखतां, सब कारिज सरिया ॥ ४४ ॥
धरती अंबर राति दिन, रवि ससि नावैं सीस।
दादू बलि बलि वारणे, जे सुमिरैं जगदीस ॥ ४५ ॥
चंद सूर सिजदा करैं, नाव अलह का लेइ।
दादू जिमीं असमान सब, उन पावौं सिर देइ ॥ ४६ ॥
जे जन राते राम सों, तिन की मैं बलि जांव।
दादू उन पर वारणे, जे लागि रहे हरि नांव ॥ ४७ ॥

साधु पारिख लक्षण

जे जन हरि के रंगि रंगे, सो रंग कदे न जाइ।
सदा सुरंगे संत जन, रंग में रहे समाइ ॥ ४८ ॥

---

४३—४४—इन दो साखियों में सच्चे साधु का वर्णन है। दरिया=समुद्र। समर्थ=शक्तिशाली। मन मस्तक धरिया = मन के चांचल्यरूप मस्तक को काबू में कर लिया। सरिया = सिद्ध हो गया।

४५—दृष्टान्त—ब्रह्मचारी रामत चले, सिख परमानन्द साथ।
*रैन बसेऊ सीसोदियो, पृथ्वी अपने हाथ ॥*

४६—सिजदा=नमस्कार, नमन। जिमीं=धरती।

दृष्टान्त—*बडा अवलिया अलस में, नाम समसत ब्रेज।*
*कहीं सूर सों सेक दे, गोरत करि अति तेज ॥*

दादू राता राम का, अविनासी रंग मांहिं ।
सब जग धोबी धोय मरै, तो भी खूटै नांहिं ॥ ४९ ॥

साहिब किया सो क्यों मिटै, सुन्दर सोभा रंग ।
दादू धोवें बावरे, दिन दिन होइ सुरंग ॥ ५० ॥

साधु परमार्थी ( परोपकारी )

परमारथ कौं सब किया, आप सवारथ नांहिं ।
परमेसुर परमारथी, कै साधू कलि मांहिं ॥ ५१ ॥

पर उपकारी संत सब, आये इहि कलि मांहिं ।
पिवै पिलावै रामरस, आप सवारथ नांहिं ॥ ५२ ॥

पर उपकारी संत जन, साहिब जी तेरे ।
जाती देखी आत्मा, राम कही टेरे ॥ ५३ ॥

चंद सूर पावक पवन, पाणी का मत सार ।
धरती अंबर राति दिन, तरुवर फलै अपार ॥ ५४ ॥

छाजन भोजन परमारथी, आत्म देव अधार ।
साधू सेवग राम के, दादू पर उपगार ॥ ५५ ॥

---

४९—खूटै = खतम, उडे ।

५०—सवारथ = स्वार्थ, अपने मतलब को ।

५३—जाती देखी आत्मा = संसार के विषय वासना में बहती हुई । टेरे = बुलावे ।

दृष्टान्त—फकीर दुख सबको हरे, पातशाह को प्रेरि ॥
कही पातशाह अब कहे, नाक कटाऊँ फेरि ॥
तपड़ दियो विछावणो, मान महाजन सीख ॥

साधु साखीभूत

जिस का तिस कौ दीजिये, सुकृत परउपगार ।
दादू सेवग सो भला, सिर नहिं लेवै भार ॥ ५६ ॥

परमारथ कूं राखिये, कीजै परउपगार ।
दादू सेवग सो भला, निरंजन निराकार ॥ ५७ ॥

सेवा सुकृत सब गया, मैं मेरा मन मांहिं ।
दादू आपा जब लगै, साहिब मानै नांहिं ॥ ५८ ॥

साधु पारस लक्षण

साधु सिरोमणि सोधिले, नदी पूरि परि आइ ।
सजीवनी साम्हां चढै, दूजा बहिया जाइ ॥ ५९ ॥

सज्जन दुर्जन

जिन के मस्तक मणि बसै, सो सकल सिरोमणि अंग ।
जिन के मस्तक मणि नहीं, ते विष भरे भुवंग ॥ ६० ॥

---

५६—सिर नहिं लेवै भार=अपने में कुछ करने का अहंकार न आने दे।

५७—परमारथ को राखिये=परमारथ करने की प्रवृत्ति न छोड़िये।

दृष्टान्त—*गोरख ग्यारह बर बिक्यो, परमारथ के काज ॥*
*बिक्यौ सुरत जाली मरद, बार अठारह साज ॥*

५८—मैं मेरामन मांहिं=जब मैं-अपने अहंकार को बुद्धि मौजूद है तो उस दशा में सब सुकृत किया हुआ निष्फल जाता है।

५९—नदी पूरि परि आइ=संसार के विषय-प्रवाह रूप नदी पर आकर तलाश करिये। संजीवन साम्हा चढे=जो आत्मसेवी साधक हैं वे ही उस प्रवाह में स्थिर रहते हैं।

६०—मणि बसे=आत्म प्राप्ति रूप मणि जिनको प्राप्त है।

दृष्टान्त—*ढढा भर खर सों चली, भाई दरसण काज ॥*
*यह साखी तासूं कही, गुरु दादू सिरताज ॥*

साधु महिमा

दादू इस संसार मैं, ये द्वै रतन अमोल।
इक साईं अरु संतजन, इन का मौल न तोल॥ ६१॥

दादू इस संसार मैं, ये द्वै रहे लुकाइ।
राम सनेही संतजन, औ बहुतेरा आइ॥ ६२॥

साधु पारिख लक्षण

जिन के हिरदै हरि बसै, सदा निरंतर नांउं।
दादू साचे साधु की, मैं बलिहारी जांउं॥ ६३॥

साचा साधु दयाल घट, साहिब का प्यारा।
राता माता रामरस, सो प्राण हमारा॥ ६४॥

सज्जन विपरीत ( संसार से )

दादू फिरता चाक कुंभार का, यूं दीसै संसार।
साधू जन निहचल भये, जिन के राम अधार॥ ६५॥

सतसंग महिमा

जलती बलती आत्मा, साधु सरोवर जाइ।
दादू पीवै रामरस, सुख मैं रहै समाइ॥ ६६॥

कृत्तम कर्त्ता

कांजी मांहैं मेलि करि, पीवै सब संसार।
कर्त्ता केवल निर्मला, को साधू पीवणहार॥ ६७॥

२—लुकाइ=छिपे हुए। बहुतेरा=बहुत से।

६—जलती=संताप से तपी हुई। बलती=क्रोध से दग्ध।

दृष्टान्त—*दत्तात्रय मुनि पै गयो, अलरक जलतो मांन॥*
*ताको गुरु शीतल कियो, दे दे सुन्दर ज्ञान॥*

७—अधिकांश संसारी ईश्वरीय सत्ता को संसार के भोगों के साथ साधना चाहते हैं, वे

संगति कुसंगति फल

दादू असाधु मिलै अंतर पड़ै, भाव भगति रस जाइ।
साधु मिलै सुख ऊपजै, आनन्द अंगि न माइ ॥ ६८ ॥
दादू साधु संगति पाइये, राम अमी फल होइ।
संसारी संगति पाइये, विष फल देवै सोइ ॥ ६९ ॥
दादू सभा संत की, सुमित उपजै आइ।
साकत की सभा बैसतां, ज्ञान काया थैं जाइ ॥ ७० ॥

जगजन विपरीत

दादू सब जग दीसै एकला, सेवग स्वामी दोइ।
जगत दुहागी रामबिन, साधु सुहागी सोइ ॥ ७१ ॥
दादू साधु जन सुखिया भये, दुनिया कूं बहु दंद।
दुनी दुखी हम देखतां, साधुन सदा अनंद ॥ ७२ ॥

---

दूध को कांजी में मिला कर पीते हैं। कोई साधु जन ही ऐसे हैं जो एकाकी ईश्वरा-राधना का आनन्द लेते हैं।

दृष्टान्त—*एक तुर्क हिन्दू इकै, दोइ जन नै (नदी) के पार ॥*
*हिन्दू डूब्यों बहुत लगि, तुर्क एक दमदार ॥*

६८—असाध=दुष्ट, असज्जन। अंतर पड़े=अध्यात्मवृत्ति में बाधा आये।

दृष्टान्त—*इक वन में दो सूवटा, इक तपसी इक व्याध ॥*
*ज्यूं पाले त्यूं ही पडे, दुती अजामल साध ॥*

६९—अमी=अमृत। विषफल=संसार के भोगों की मलिन वासना।

७०—साकत = स्त्रीवशवर्ती। बैसतां=बैठतां। कायाथैं=अन्तःकरण से।

७१—दुहागी=पतिरहित, स्वामीहीन। सुहागी = पति सहित, सस्वामी।

७२—दृष्टान्त—*देख मातली हरख में, तोकूं पूछी साध ॥*
*तू सुखियारी डोकरी, मो को दुःख अगाध ॥*

दादू देखत हम सुखी, सांई के संगि लागि।
यौं सो सुखिया होइगा, जाके पूरे भाग ॥ ७३ ॥

रस

दादू मीठा पीवै रामरस, सो भी मीठा होइ।
सहजैं कड़वा मिटि गया, दादू निर्विष सोइ ॥ ७४ ॥

साधु पारस लक्षण

दादू अंतरि एक अनंत सूं सदा निरंतर प्रीति।
जिहिं प्राणी प्रीतम बसै, सो बैठा त्रिभवन जीति ॥ ७५ ॥

साधु महिमा माहात्म्य

दादू मैं दासी तिहिं दास की, जिहिं संगि खेलै पीव।
बहुत भांति करि वारणै, तापरि दीजै जीव ॥ ७६ ॥

भरम विधूसण

दादू लीला राजा राम की, खेलैं सब ही संत।
आपा पर एकै भया, छूटी सबै भरंत ॥ ७७ ॥

---

७४—सो भी=साधुसमागमी जन।

७५—अंतर=हृदय में। निरन्तर=सर्वदा, सब काल। बसै=निवास करै।

७६—दृष्टान्त—*साध एक चौपाल में, उतर्यो लोक समाज ॥*
*मारन उठ्यो असुर ह्वै, मै नृसिंह तव काज ॥*
*सालोरी तनमन तज्यों, हर संतन को भांइ ॥*
*ताथें भई मंदोदरी, लंकापति कै जाइ ॥*

७७—लीला=रचना। आपा पर एकै भया = मैं तैं का भेद निवृत हो एक ही आत्म-सम्बन्ध की भावना व्याप गई। भरंत=भ्रांतियें, शंकायें।

दृष्टान्त—*टोंक पधारे महोछै, आप लगाए भोग ॥*
*तब सिख पूछी तब कही, या साखी या जोग ॥*

जगजन विपरीत

दादू आनंद सदा अडोल सूं, राम सनेही साध ।
प्रेमी प्रीतम कूं मिलै, यहु सुख अगम अगाध ॥ ७८ ॥

पुरुष प्रकाशी

यहु घट दीपक साधु का, ब्रह्म जोति परकास ।
दादू पंषी संत जन, तहां परै निजदास ॥ ७९ ॥

घर बन माँहैं राखिये, दीपक जोति जगाइ ।
दादू प्राण पतंग सब, जहं दीपक तहं जाइ ॥ ८० ॥

घर बन माँहैं राखिये, दीपक जलता होइ ।
दादू प्राण पतंग सब, जाइ मिलै सब कोइ ॥ ८१ ॥

घर बन माँहैं राखिये, दीपक प्रगट प्रकास ।
दादू प्राण पतंग सब, आइ मिलै उस पास ॥ ८२

घर बन माँहैं राखिये, दीपक जोति सहेत ।
दादू प्राण पतंग सब, आइ मिलैं उस हेत ॥ ८३ ॥

---

७८—अडोल=अचल, स्थिर ।

७९—पूर्वार्द्ध का भावार्थ—यह सच्चे साधक साधु पुरुष का शरीर है, जिसमें ब्रह्मज्योति का दीपक प्रकाशित है ।

८०—घर बन माँहैं राखिये=उपर्युक्त ब्रह्मज्योतिमय दीपक जलाने के पश्चात् साधक चाहे घरमें रहे चाहे वनमें रहे ।

८३—सहेत=सहित या अतिहेत से । हेत=परमप्रेम ।

जिहिं घटि परगट राम है, सो घट तज्या न जाइ ।
नैनहुँ मांहैं राखिये, दादू आप नसाइ ॥ ८४ ॥

साधु अविहड़

कबहु न बिहड़ै सो भला, साधु दिढ मति होइ ।
दादू हीरा एक रस, बांधि गांठड़ी सोइ ॥ ८५ ॥

साधु पारख लक्षण

गरथ न बांधे गांठड़ी, नहिं नारी सों नेह ।
मन इन्द्रिय सुस्थिर करे, छांडि सकल गुण देह ॥ ८६ ॥
निराकार सौं मिलि रहै, अखंड भगति कर लेह ।
दादू क्योंकर पाइये, उन चरणों की खेह ॥ ८७ ॥
साधु सदा संजमि रहै, मैला कदे न होइ ।
दादू पंक परसै नहीं, कर्म न लागै कोइ ॥ ८८ ॥
साधु सदा संजमि रहै, मैला कदे न होइ ।
सुंनि सरोवर हंसला, दादू बिरला कोइ ॥ ८९ ॥

---

८४—दादू आप नसाइ=आपा—अहंकार उसको सर्वथा दूर कर । नैनहुँ मांहि = ज्ञान-विचार के नेत्रों में ।

८५—बिहड़ै = पलटे, बदले । दिढमति=स्थितप्रज्ञ । हीरा एक रस=वृत्तिलय से एक रस, आत्मचिंतनरूपी हीरा । बाँधि=स्थिर कर ।

८६—गरथ = संग्रह कर ।

दृष्टान्त—*गलमें पहरे गूदडी, गांठ न बांधे दाम ॥*
*सेख भावदी यूं कहे, मैं तिसको करौं सलाम ॥*

८८—संजमि=संयम में, शीलव्रत से । पंक=पापपंक । कर्म=निषिद्ध कर्म ।

८९—सुंनि सरोवर हँसला = अन्तःकरण रूपी सरोवर में समाधिस्थ हो अपनी वृत्ति को स्थिर रखने वाले साधक हँस कोई विरले ही हैं ।

साहिब का उनहार सब, सेवग माँहैं होइ।
दादू सेवग साधु सो, दूजा नाहीं कोइ ॥ ६० ॥
जब लग नैन न देखिये, साध कहैं ते अंग।
तब लग क्यौं करि मानिये, साहिब का परसंग ॥ ६१ ॥
दादू सोइ जन साधु सिध सो, सोइ सकल सिरमौर।
जिहिं कै हिरदै हरि बसै, दूजा नांहीं और ॥ ६२ ॥
दादू औगुण छाडै गुण गहै, सोई सिरोमणि साध।
गुण औगुण थैं रहित है, सो निज ब्रह्म अगाध ॥ ६३ ॥

जगजन विपरीत

दादू सींधव फटक पषाण का, ऊपरि एकै रंग।
पानी माँहैं देखिये, न्यारा न्यारा अंग ॥ ६४ ॥

---

६०—उनहार=समान आकृति, तत्सम।

दृष्टान्त—मारवाड़ मध कोउ नृप, बांध्यो सबको त्याग ॥
तासों इक चारण कही, नर नारी सुत भाग ॥
पगां जताई पाण, पुनि पाणी पहिले पिवे ॥
पंगु ज तेही ढाण, पापो चाहे माल वणि ॥
बेटो बाप तंणेह, चीला जे चाले नहीं ॥
जननी ताहि जणे है, बुरी कहावे वैर [illegible] ॥

६१—साधु कहै ते अंग=जिन लक्षणों को पहुंचे हुए साधुजन बतलाते हैं वे लक्षण साधक में जब तक न घटित हों।

६२—दृष्टान्त—गुणग्राही इक नृपति हो, औगुण लेतो नांहि ॥
मरचा श्वान को देख के, दान्त सराहे ढाह ॥

६४—ऊपर एकै रंग = ऊपरी रूप सैन्धव तथा स्फटिक का एकसा है। इसी तरह ऊपरी ढंग नकली साधक व असली साधक का एकसा होसकता है।

दादू सींधव कै आपा नहीं, नीर खीर परसंग ।
आपा फटक पषाण कै, मिलै न जल कै संग ॥ ९५ ॥
दादू सब जग फटक पषाण है, साधू सींधव होइ ।
सींधव एकै ह्वै रह्या, पानी पत्थर दोइ ॥ ९६ ॥

साधु परमार्थी

को साधू जन उस देस का, आया इहि संसार ।
दादू उस कौ पूछिये, प्रीतम के समाचार ॥ ९७ ॥
समाचार सति पीव के, को साधु कहैगा आइ ।
दादू सीतल आतमा, सुख मैं रहै समाइ ॥ ९८ ॥
साधु सबद सुख बरषि हैं, सीतल होइ सरीर ।
दादू अंतरि आत्मा, पीवै हरि जल नीर ॥ ९९ ॥
दादू दत दरबार का, को साधू बांटै आइ ।
तहां रामरस पाइये, जहं साधू तहं जाइ ॥ १०० ॥

चौप चर्चा

दादू सुरता सनेही राम का, सो मुझ मिलवहु आणि ।
तिस आगैं हरिगुण कथूं, सुनत न करई काणि ॥ १०१ ॥

---

९६—जग=वर्णाश्रम अभिमानी, ईसाई, मुसलमान, हिन्दू धर्माभिमानी ।

९७—उस देश का = ब्रह्म या समाधिदेश का । प्रीतम=प्रिय, आत्मस्वरूप ।

९८—सति = सत्य ।

९९—नीर = निर्मल नामरूप ।

१००—दत=परम धन । दरबार का=भगवत समारोह का ।

१०१—सुरता = श्रोता, सुनने वाला । मिलवहु=मिलाइये । आणि = लाय । काणि=उपेक्षा, लापरवाही ।

साधु परमार्थी

दादू सबही मृतक समान हैं, जीया तबही जाणि ।
दादू छांटा अमी का, को साधू बाहै आणि ॥ १०२ ॥
सबही मृतक व्है रहे, जीवैं कौन उपाइ ।
दादू अमृत रामरस, को साधू सींचै आइ ॥ १०३ ॥
सबही मृतक मांहि हैं, क्यौं करि जीवैं सोइ ।
दादू साधू प्रेमरस, आणि पिलावै कोइ ॥ १०४ ॥
सबही मृतक देखिये किहिं विधि जीवै जीव ।
साधु सुधारस आणि करि, दादू वरिषै पीव ॥ १०५ ॥
हरिजल वरिषे बाहिरा, सूके काया खेत ।
दादू हरिया होइगा, सींचणहार सुचेत ॥ १०६ ॥

कुसंगति

गंगा जमुना सरस्वती, मिलैं जब सागर मांहिं ।
खारा पानी ह्वै गया, दादू मीठा नांहिं ॥ १०७ ॥
दादू राम न छाड़िये, गहिला तजि संसार ।
साधू संगति सोधि ले, कुसंगति संग निवार ॥ १०८ ॥

---

१०२—छांटा अमी का=तत्वोपदेश । बाहै आग=लाकर डालै ।

१०५—मृतव=वासना में लिप्त, मृतवत् । सुधारस=नामचिन्तनरूपी अमृत । आणिकरि= लाय करि ।

१०६—हरि जल वरषे = आत्मचिन्तन के आनन्द रस की वर्षा होने पर । बाहिरा=तेज हवा से, वासनारूपी बवंडर से । सूके काया खेत = सूखा हुआ यह नरजन्मरूपी खेत ।

१०८—दृष्टान्त—*निहकाम सेवग कहीं, दुख सुख सुनियो नांहिं ।*
*मोडे घोडी के कन्हे, धोती दई सुकाहि ॥*

**दादू कुसंगति सब परहरी, मात पिता कुल कोइ ।**
**सजन सनेही बंधवा, भावै आपा होइ ॥ १०६ ॥**

**अज्ञान मूर्ख हितकारी, सज्जन समो रिपुः ।**
**ज्ञात्वा त्यजंति ते, तिरामयी मनोजितः ॥ ११० ॥**

**कुसंगति केते गये, तिन का नांव न ठांव ।**
**दादू ते क्यौं ऊधरैं, साधु नहीं जिस गांव ॥ १११ ॥**

**भाव भगति का भंग करि, बटपारे मारहिं बाट ।**
**दादू द्वारा मुकति का, खोलैं जड़ैं कपाट ॥ ११२॥**

---

**१०६—भावार्थ**—माता, पिता, कुल, जाति, भाई बान्धव कोई क्यों न हो ? यदि इनका संग कुसंग के रूप का हो तो इनका परित्याग कर देना चाहिये। भरत, प्रल्हाद, गोपियां, विभीषण के उदाहरण मौजूद हैं।

**दृष्टान्त**—*भरत मात को तज दई, पिता तज्यो पहलाद ।*
*गोप्यां पति तज लंकपति, अज आयो तजि साद ॥*

**११०—दृष्टान्त**—*इक नृप वान्दर को कियो, मनमें अति विश्वास ॥*
*चोर विप्र रक्षा करी, वाहि कियो विनश्वास ॥*

**१११—दृष्टान्त**—*नारद कोप्यो सन्त विन, कोपि कह्यो इक बैन ॥*
*नगरी उबरी सन्त सरणि, वज्र सिला सौं चैन ॥*
*पर उपकारी साध हो, गांव तज्यो करि छोह ॥*
*तीन ताप पुरको भई, पुनि ल्याये जन मोह ॥*

**११२—बटपारे**=बाट मारने वाले, धाड़ेती, ठग, । मारहि बाट=सही मार्ग छुडायेंगे ।

**दृष्टान्त**—*जसवन्त नृप साध सब, मुरधर मैं तैं भेष ॥*
*बहुरै दास निराण जब, थैली नांणा पेख ॥*

सत्संग महिमा माहात्म्य

**साधु संगति अंतर पड़ै तौ, भागैगा किस ठौर ।**
**प्रेम भगति भावै नहीं, यहु मन का मत और ॥ ११३ ॥**

**दादू राम मिलन के कारणै, जे तूं खरा उदास ।**
**साधु संगति सोधि ले, राम उन्हौं के पास ॥ ११४ ॥**

**साधु दिवानी राम के, इनतैं सब कुछ होय ।**
**ये जु मिलावैं राम कूं, इनही मिलै जे कोय ॥ ११५ ॥**

पुरुष प्रकासी ( संतमहिमा )

**ब्रह्मा संकर सेस मुनि, नारद ध्रू सुखदेव ।**
**सकल साधु दादू सही, जे लागे हरि सेव ॥ ११६ ॥**

**साधु कँवल हरि बासनां, संत भँवर संग आइ ।**
**दादू परिमल ले चले, मिले राम कौं जाइ ॥ ११७ ॥**

साधु सजन

**दादू सहजैं मेला होइगा, हम तुम हरि के दास ।**
**अंतरगति तौ मिलि रहे, पुनि परगट परकास ॥ ११८ ॥**

---

११३—मत और=दूसरा विचार है, उसकी चाह संसारी पदार्थों की है ।

११४—खरा=सच्चा ।

११६—सकल साधु=ये सब सच्चे साधु-साधक हैं ।

११७—भावार्थ—साधु-जिन्होंने आत्मनिश्चय कर लिया वे कमलवत् हैं, उनको प्राप्त ईश्वरोपलब्धि वह उस कमल में सुवास है । खेत जिज्ञासु-साधक भँवरसम है वे उन सन्तरूप कमल के पास आ, आत्मोपलब्धि रूप परिमल सुगन्ध को प्राप्त कर अपने आप में-आत्मराम में मिल गये ।

११८—दृष्टान्त—*जग जीवण जी टहलडी, आंधी थे गुरु देव ॥*
*ताहि समै साखी लिखी, जगजीवण प्रतिमेव ॥*

साधु महिमा

दादू मम सिर मोटे भाग, साधूं का दर्सन किया।
कहा करे जम काल, राम रसाइण भरि पिया॥ ११९॥

साधु समर्थता

दादू एता अविगत आप थैं, साधूं का अधिकार।
चौरासी लख जीव का, तन मन फेरि संवार॥ १२०॥
विष का अमृत करि लिया, पावक का पाणी।
बांका सूधा करलिया, सो साधु बिनाणीं॥ १२१॥
दादू ऊरा पूरा करि लिया, खारा मीठा होइ।
फूटा सारा करि लिया, साधु बमेकी सोइ॥ १२२॥
बंध्या मुक्ता करि लिया, उरझ्या सुरझि समान।
वैरी मिंता कर लिया, दादू उत्तिम ज्ञान॥ १२३॥

---

११९—दृष्टान्त—*आप निराणे गुहा में, सन्त दियो दीदार॥*
*तब या साखी पद कह्यो, राम कली मधसार॥*

१२०—ऐता=इतना। अविगत=बेलेखे। अधिकार=हक, सत्ता।

१२१—विष=मलिन वासना से विषाक्त अन्तःकरण। अमृत=शुद्ध अन्तःकरण आत्माभिमुख कर अमर कर दिया। पावक का पाणी=वासना की आग की जगह सन्तोष का शीतल पानी कर दिया। बांका सूधा कर लिया=विषयासक्त अहंकार से टेढे मन का आपा छुडा विषयवासना निवारण कर सूधा-सरल निर्मल बना लिया। सो साधु विनाणी=वही साधु=वही महात्मा विनाणी=काल कर्म की आणि से रहित है।

१२४—तक में पुनः पुनः इस आशय को दोहराया है।

१२३—मिंता=मित्र। उत्तिम=अति पवित्र, श्रेष्ठ।

झूठा साचा करि लिया, काचा कंचनसार ।
मैला निर्मल करि लिया, दादू ज्ञान विचार ॥ १२४ ॥

अमिट पाप

काया कर्म लगाइ करि, तीरथ धोवै आइ ।
तीर्थ मांहैं कीजिये, सो कैसैं करि जाय ॥ १२५ ॥

जहं तिरिये तहं डूबिये, मन मैं मैला होइ ।
जहं छूटै तहं बंधिये, कपटि न सीझै कोइ ॥ १२६ ॥

सत्संग महिमा

दादू जब लग जीविये, सुमिरण संगति साध ।
दादू साधू राम बिन, दूजा सब अपराध ॥ १२७ ॥

इति साधु कौ अंग संपूर्ण ॥ १५ ॥

---

१२४—काचा=अस्थिर, बार बार बदलने वाला । कंचनसार=एक रस निर्मल स्थिर ।

१२५—काया=शरीर के । कर्म=निकृष्ट कर्मजन्य पाप ।

१२६—मनमें मैला होय=जब तक मन शुद्ध नहीं है उसमें वासना तृष्णा का मैल है, तब तक तीर्थस्नान का कोई फल नहीं है ।

१२७—सुमिरण=नामचिन्तन । संगति साध=आध्यात्मिक जनों का संग । दूजा सब=और सब भौतिक व काम्य कर्म । अपराध=दोष, पाप, कसूर ।

❀ साधु को अंग समाप्त ❀

# अथ माधि को अङ्ग ॥ १६ ॥
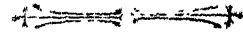
दादू नमो नमो निरंजनम् , नमस्कार गुरुदेवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

दादू द्वै पख रहिता सहज सो, सुख दुख एक समान ।
मरै न जीवै सहज सो, पूरा पद निर्वाण ॥ २ ॥

सुख दुख मनि मानै नहीं, राम रंगि राता ।
दादू दोन्यूं छाडि सब, प्रेम रसि माता ॥ ३ ॥

मति मोटी उस साधु की, द्वै पख रहित समान ।
दादू आपा मेटि करि, सेवा करै सुजान ॥ ४ ॥

कछू न कहावै आप कौं, काहू संगि न जाइ ।
दादू निरपख ह्वै रहै, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ ५ ॥

सुख दुख मनि माने नहीं, आपा पर सम भाइ ।
सो मन मन करि सेविये, सब पूरण ल्यौ लाइ ॥ ६ ॥

---

२—भावार्थ—जातिवर्ण आश्रम, सम्प्रदाय, पन्थजन्य द्वैतभाव से सन्त साधक रहित होते हैं। अथवा व्यापक परब्रह्म है वह सब द्वैतभावों से सुख दुःख शीतोष्णादि व प्रकृतिजन्य गुणधर्मों से रहित है। वही परब्रह्म का सहज स्वाभाविक स्वरूप है वह कालप्रभाव से रहित है। इस स्थिति को ही निर्वाण पद कहा जाता है।

३—दोन्यूं = वासना तथा अहंकार। प्रेमरस=अनन्यभावमय श्रद्धा।

४—मोटी=महान्, स्थिरवृत्ति। पख=पक्ष, द्वैत भाव रहित।

दृष्टान्त—*तुलाकार द्वै पख तजी, समता ज्ञान जु धारि।*
*मध मार्ग दादू गह्यो, जाजल जनक उतार ॥*

५—कछु न कहावै=किसी प्रकार के आपे अहंकार का अनुबन्ध न रहै। काहू संग=किसी विषय प्रवृत्ति में प्रवृत्त न हो।

६—सो मन = वही शुद्ध मन है। सब पूरण=सब प्राप्तिकी।

नां हम छाड़ैं ना गहैं, ऐसा ज्ञान विचार ।
मधि भाइ सेवैं सदा, दादू मुकति दुवार ॥ ७ ॥
आपा मेटै मृत्तिका, आप धरै आकास ।
दादू जहं जहं द्वै नहीं, मधि निरंतरि बास ॥ ८ ॥

ध्येय-परमस्थान निरूपण

दादू इस आकार थैं, दूजा सुखिम लोक ।
ताथैं आगे और है, तहंवा हरष न सोक ॥ ९ ॥
दादू हद छाडि बेहद मैं, निर्भै निरपख होइ ।
लागि रहै उस एकसौं, जहां न दूजा कोइ ॥ १० ॥
निराधार घर कीजिये, जहं नाहीं धरणि अकास ।
दादू निहचल मन रहै, निर्गुण के बेसास ॥ ११ ॥

७—नां हम छांडैं ना गहैं=विविध सपक्ष धर्म हैं महात्मा उनको न तो ग्रहण करते न छोडते तटस्थ वृत्ति से रहते हैं । अथवा—सन्त साधक स्वरूप-चिन्तन व अद्वैतभावना त्यागते नहीं, मायिक पदार्थ व सकाम कर्ममय उपासना को ग्रहण नहीं करते । मधिभाई=मध्यभाव से, तटस्थ वृत्ति से ।

८—आपा मेटे मृतिका=स्थूल देह से सम्बन्ध रखने वाले मन से सम्बन्ध रखने वाले अहंकार का निवारण करे । आपा धरे अकाश=आकाशवत् शून्य ब्रह्म का व्यापक रूप उसके ध्यान का आपा धारण करे । द्वै=द्वैत, पक्षपात । मधि=वही मध्यमार्ग है ।

९—इस आकार=इस स्थूल शरीर से । सूषम लोक=लिंग शरीर । और है=कारण शरीर तहंवा=उस जगह ।

१०—हद छाड बेहद में=जाति, वर्ण, आश्रम, सपक्ष धर्म, पन्थ आदि का दायरा त्याग दिया वही निष्पक्ष दशा है । निर्भै निरपख होइ=निष्पक्ष दशा में पहुंचने से ही कालादि भय का निवारण होता है ।

११—निराधार=पक्षरहित । घर=वृत्तिका निवास । बेसास=अनन्य श्रद्धा में ।

अधर चाल कबीर की, आसंघी नहिं जाइ ।
दादू डाकै मृग ज्यूं, उलटि पड़ै भुइ आइ ॥ १२ ॥

दादू रहणि कबीर की, कठिन विषम यहु चाल ।
अधर एकसौं मिलि रह्या, जहां न झंपै काल ॥ १३ ॥

निरधार निज भगति करि, निराधार निज सार ।
निराधार निज नांव ले, निराधार निराकार ॥ १४ ॥

निराधार निज रामरस, को साधू पीवणहार ।
निराधार निर्मल रहै, दादू ज्ञान विचार ॥ १५ ॥

जब निराधार मन रहि गया, आतम के आनंद ।
दादू पीवै राम रस, भेटै परमानंद ॥ १६ ॥

माया

दुह बिचि राम अकेला आपै, आवण जाण न देइ ।
जहं तहं सब राखे दादू, पारि पहूंते सेई ॥ १७ ॥

---

१२—अधर=गुणों से रहित । चाल=साधना । आसंघी=अपनाई, स्वीकारी । डाके मृगज्यूं=मृग की तरह उनकी चालका पूरी साधना बिना अनुकरण करते हैं वे उछाल मारते हैं ।

दृष्टांत—*कोउ भेखधारी कही, चले कबीर जु चाल ॥*
*तब साखी स्वामी कही, मूढ बसे क्यूं ताल ॥*

१३—रहणी=साधना । अधर = त्रिगुण रहित ब्रह्म । झंपे=पकड़े ।

१४—निराधार=निर्वासी, आश्रय रहित । निज भगति=पराभक्ति ।

१५—निराधार=निश्चल वृत्ति । निज=स्वस्वरूप । निराधार निर्मल=वासना अहंकार रहित शुद्ध अन्तःकरण ।

१७—भावार्थ—दुह बीचि=अन्तःकरण तथा वृत्ति दोनों आप एक चेतन रूप राम ही शेष रहे–न अन्तःकरण में वासना अहंकार पुनः आने दे, न वृत्ति को वाह्य विषयों की ओर जाने दे । चेतन तथा त्रिगुण को अपनी अपनी स्थिति में देखने से ही साधक

मधि निरपख

चलु दादू तहं जाइये, जहं मरै न जीवै कोइ ।
आवागमन भै को नहीं, सदा एक रस होइ ॥ १८ ॥
चलु दादू तहं जाइये, जहं चंद सूर नहिं जाइ ।
रातिदिवस की गमि नहीं, सहजै रह्या समाइ ॥ १९ ॥
चलु दादू तहं जाइये, माया मोह थैं दूरि ।
सुख दुख को व्यापै नहीं, अविनासी घर पूरि ॥ २० ॥
चलु दादू तहं जाइये, जहं जम जौरा को नांहिं ।
काल मीच लागै नहीं, मिलि रहिये ता मांहिं ॥ २१ ॥
एक देस हम देखिया, तहं रुति नहिं पलटै कोइ ।
हम दादू उस देस के, जहं सदा एक रस होइ ॥ २२ ॥
एक देस हम देखिया, जहं बस्ती ऊजड़ नांहिं ।
हम दादू उस देश के, सहज रूप ता मांहिं ॥ २३ ॥

---

पार पहुँचते हैं, लक्ष्य प्राप्त करते हैं ।

दृष्टान्त—*गुरू दादू गये सीकरी, परचा लिया न दीन्ह ॥*
*राम बीच दुहुं के रहे, चरचा ही में चीन्ह ॥*
*माया जन कै बीच हरि, भिन्न भिन्न गुण चीन्ह ॥*
*जगजीवन सोइ ऊबरै, जिन पर कृपा कीन्ह ॥*

१८—तहं=निर्विकल्प समाधि अवस्था में ।

१९—गम नहिं=पहुंच नहीं । सहजै=सहज दशा, त्रिगुणातीत अवस्था ।

२०—व्यापै=आवै, प्रतीत । घरपूरि = अन्तःकरण अविनाशी चेतन से परिपूर्ण हो ।

२१—जमजौरा=मृत्यु का बल ।

२२—एक देश=ब्रह्मदेश । रुति=मौसम, अवस्था, दशा ।

२३—बस्ती=वासना विकार का फैलाव । ऊजड़=तमोजन्य जड़ता ।

एक देस हम देखिया, नहिं नेड़े नहिं दूरि ।
हम दादू उस देस के, रहे निरंतर पूरि ॥ २४ ॥
एक देस हम देखिया, जहं निस दिन नाहीं घाम ।
हम दादू उस देस के, जहं निकट निरंजन राम ॥ २५ ॥
बारह मासी नीपजै, तहां किया परवेस ।
दादू सूका ना पड़ै, हम आये उस देस ॥ २६ ॥
जहं वेद कुरान की गमि नहीं, तहां किया परवेस ।
तहं कछु अचिरज देखिया, यहु कुछ औरै देस ॥ २७ ॥

घर बन

काहे दादू घरि रहै, काहे वन खंडि जाइ ।
घर वन रहिता राम है, ताही सौं ल्यौ लाइ ॥ २८ ॥
दादू जिनि प्राणी करि जाणिया, घर वन एक समान ।
घर मांहैं वन ज्यौं रहै, सोई साधु सुजान ॥ २९ ॥
सब जग मांहैं एकला, देह निरंतर बास ।
दादू कारणि राम के, घर वन मांहिं उदास ॥ ३० ॥

---

२४—नहिं नेड़े नहिं दूर=अज्ञान अवस्था में नेड़े=समीप नहीं, परिपक्व ज्ञानावस्था में दूर नहीं ।

२५—निसदिन नांहीं घाम=कालकर्मजन्य दिन रात नहीं, वासनाजन्य घाम=तपत नहीं ।

२६—नीपजै=उत्पन्न हो, फलदायी हो । तहां=निर्विकल्प समाधि दशा । सूका ना पड़ै= अनात्मपदार्थों की चाहरूपकाल जहां नहीं पड़ता ।

२७—तँह=आत्मनिष्ठवृत्तिकाल में ।

२९—जिनि=जिसने । वन ज्यों=उदासीन अवस्था में ।

३०—जग=संसार की भोगवासना । एकला=जुदा । देह=शुद्ध अन्तःकरण में ।

घर वन मांहैं सुख नहीं, सुख है सांई पास।
दादू तासौं मन मिल्या, इन थैं भया उदास ॥ ३१ ॥
वैरागी वन मैं बसै घरबारी घर मांहिं।
राम निराला रहि गया, दादू इन मैं नांहिं ॥ ३२ ॥

सुमिरण नाम निरसंसै

दादू जीवन मरण का, मुझ पछितावा नांहिं।
मुझ पछितावा पीव का, रह्या न नैनहुँ मांहिं ॥ ३३ ॥
सुरग नरक संसै नहीं, जीवन मरण भै नांहिं।
राम विमुख जे दिन गये, सो सालै मन मांहिं ॥ ३४ ॥
सुरग नरक सुख दुख तजे, जीवन मरण नसाइ।
दादू लोभी रामका, को आवै को जाइ ॥ ३५ ॥

मधि निरपख

दादू हिंदू तुरक न होइबा, साहिब सेती काम।
षट दर्सन के संगि न जाइबा, निरपख कहिबा राम ॥ ३६ ॥
षट दर्सन दोन्यूं नहीं, निरालंब निज बाट।
दादू एकै आसिरै लंघै औघट घाट ॥ ३७ ॥
दादू ना हम हिंदू हौहिंगे, ना हम मूसलमान।
षट दर्सन में हम नहीं, हम राते रहिमान ॥ ३८ ॥

३४—संसै=संशय, सन्देह। भै=भय। सालै=गडै, खटकै।
३७—दोन्यूं=हिन्दू मुसलमान, शैव वैष्णव। निज बाट=सहज पथ। औघट घाट=राजस तामस वृत्तिसमूहजन्य ऊबड़ खाबड़ अवस्था।

दादू अलह राम का, द्वै पख थैं न्यारा।
रहिता गुण आकार का, सो गुरू हमारा ॥ ३९ ॥

उभै असमाव

दादू मेरा तेरा बावरे, मैं तैं की तजि बाणि।
जिन यहु सब कुछ सिरजिया, करि ताही का जाणि ॥४०॥
दादू करणी हिंदू तुरक की, अपणी अपणी ठौर।
दुहुं बिचि मारग साधु का, यहु संतौं की रह और ॥४१॥
दादू हिंदू तुरक का, द्वै पख पंथ निवारि।
संगति साचे साधु की, सांई कौं संभारि ॥ ४२ ॥
दादू हिंदू लागे देहुरै, मुसलमान मसीति।
हम लागे एक अलेख सौं, सदा निरंतर प्रीति ॥ ४३ ॥
न तहां हिंदू देहुरा, न तहां तुरक मसीति।
दादू आपै आप है, नहीं तहां रह रीति ॥ ४४ ॥
दोन्यूं हाथी ह्वै रहै, मिलि रस पिया न जाइ।
दादू आपा मेटि करि, दोन्यूं रहैं समाइ ॥ ४५ ॥

---

३९—अलह=परब्रह्म। राम=सन्तजन। द्वै पख थैं न्यारा=ब्रह्म और सन्त ये दोनों पखापखी से रहित रहते हैं। रहिता गुण आकार का=नामरूप गुण से रहित।

४०—बाणि= आदत, अभ्यास। सिरजिया=पैदा किया, व्यक्त किया।

४१—यहु सन्तौं की रह और=यह सन्त साधकों का मध्यम मार्ग स्वतंत्र है।

४४—तहाँ=उस व्यापक शुद्ध स्वरूप में। रहरीति=किसी मतवाद की वहाँ पद्धति या चलन नहीं है।

४५—दोन्यूं हाथी ह्वै रहे=पखधर्मी हिन्दू मुसलमान, शैववैष्णवादि हाथी की तरह भेदवादी होकर लड़ते हैं। आपा=पखधर्म का अहंकार।

भै भीत भयानक ह्वै रहे, देख्या निरपख अंग ।
दादू, एकै लेरह्या, दूजा चढ़ै न रंग ॥ ४६ ॥
जाणै बूझै साच है, सब को देखण धाइ ।
चाल नहीं संसार की, दादू गह्या न जाइ ॥ ४७ ॥
दादू पख काहू के ना मिलै, निरपख निर्मल नांव ।
सांई सौं सनमुख सदा, मुकता सबही ठांव ॥ ४८ ॥
दादू जब थैं हम निरपख भये, सबै रिसाने लोक ।
सतगुरु के परसाद थैं, मेरे हरष न सोक ॥ ४९ ॥
निरपख ह्वै करि पख गहै, नरक पड़ैगा सोइ ।
हम निरपख लागे नांव सौं, कर्ता करै सो होइ ॥ ५० ॥

हरि भरोसा

दादू पख काहू के नां मिलै, निहकामी निरपख साध ।
एक भरोसे राम के, खेलै खेल अगाध ॥ ५१ ॥

मधि

दादू पखापखी संसार सब, निरपख बिरला कोइ ।
सोई निरपख होइगा, जाकै नांव निरंजन होइ ॥ ५२ ॥

---

४६—पूर्वार्द्ध का भावार्थ=दादूजी कहते हैं मेरे निष्पक्ष विचार व व्यवहार को देख दोनों हिन्दू मुसलमान भयभीत व उत्तेजित हो रहे हैं ।

४७—जाणै बूझै=जानते देखते समझते हैं । चाल नहीं=साच को ग्रहण करने की पद्धति नहीं।

४८—मुकता सबही ठाँव=दादूजी महाराज कहते हैं कि किसी के पक्ष में न होने से दोनों धर्म वाले हिन्दू मुसलमान अप्रसन्न हों तो कोई बात नहीं, अपनी निरपेक्षता नहीं छोडनी । यदि इससे एक स्थान के व्यक्ति अधिक विरोधी हों तो दूसरे स्थान बहुत हैं ।

५१—निहकामी=निष्कामवृत्तिवाले ।

अपने अपने पंथ की, सब को कहै बढ़ाइ।
ताथैं दादू एक सौं, अंतरगति ल्यौ लाइ ॥ ५३ ॥
दादू द्वै पख दूरि करि, निरपख निर्मल नांव।
आपा मेटै हरि भजै, ताकी मैं बलि जांव ॥ ५४ ॥

संजीवन

दादू तजि संसार सब, रहै निराला होइ।
अविनासी के आसरै, काल न लागै कोइ ॥ ५५ ॥

मच्छर ईर्षा

कलिजुग कूकर कलि मुहां, उठि उठि लागै धाइ।
दादू क्यूं करि छूटिये, कलिजुग बड़ी बलाइ ॥ ५६ ॥

निंदा

काला मुंह संसार का, नीले कीये पांव।
दादू तीनि तलाक दे, भावै तीधर जाव ॥ ५७ ॥

---

५३—दृष्टान्त—*षटदर्शन खोजे सबै, वान्दी उपावण काज।*
*सबन कही आप आपणी, वान्दी ज्यांऊ आज ॥*

५४—द्वै पख=भेदवादवाले धर्म।

५५—दादू तजि संसार सब = संसार के विविध मतवाद वाले धर्म त्याग दे। अथवा संसार के विविध अनात्म पदार्थों की चाह का सब का परित्याग करदे।

५६—कलिजुग कूकर कलिमुंहा=मायिक पदार्थों की वासना की प्रधानतारूपी कलियुग श्वानवत् है। उठि उठि लागै धाइ=वे वासनायें विफल होते हुये भी पुनः पुनः उत्पन्न हो प्राणी को प्रवृत्त करती हैं, लगती हैं।

दृष्टान्त—*कलजुग साधू रूप धरि, किये उपद्रव तीन।*
*जन राघो ता नगर के, धर्म लेगयो छीन ॥*

५७—संसारका = संसारी मनुष्यों का, विचार वृत्ति हीन मनुष्यों का।
दृष्टान्त—*आंधी में चौमासे रहे, गुरु वरसायो नीर।*
*ताहि समय साखी कही, दुनियां पूज्यो पीर ॥*

दादू भावहीन जे पृथवी, दया विहूणा देस ।
भगति नहीं भगवंत की, तहं कैसा परवेस ॥ ५८ ॥
जे बोलौं तौ चुप कहैं, चुप तौ कहैं पुकार ।
दादू क्यूं करि छूटिये, असा है संसार ॥ ५९ ॥

मध्य

न जाणौं, हांजी, चुप गहि, मेटि अग्नि की झाल ।
सदा सजीवनि सुमरिये, दादू बंचै काल ॥ ६० ॥

पंथा पंथी

पंथि चलैं ते प्राणिया, तेता कुल व्यौहार ।
निरपख साधू सो सही, जिन कै एक आधार ॥ ६१ ॥
दादू पंथौं परि गये, बपुरे बारह बाट ।
इन के संगि न जाइये, उलटा अविगत घाट ॥ ६२ ॥

---

५८—भावहीन=वास्तविक विचार रहित । विहूँणा = विहीन, रहित ।

६०—न जाणौं हांजी चुप गहि=दादूजी महाराज कहते हैं दुनियांवी लोग अपने-२ स्वार्थ के लिए सच्चे साधक को हैरान करते हैं उनकी हैरानी से बचने के तीन रास्ते हैं, दुनियावी मनुष्यों के प्रश्नों से बेजानकारी बतानी-उदासीन वृत्ति । या दुनियावी प्रश्न वालों की भावना का समर्थन कर देना या उनकी झंझट से बचने के लिए मौन रहना । इस तरह उनकी विक्षेपजन्य ज्वाला से बचना ।

६१—पंथ चलैं ते प्राणिया=जो विभिन्न पंथों में आसक्त हैं वे सामान्य प्राणी हैं बन्धन वाले जीव हैं । तेता कुल व्यौहार=जितने पंथ उतने ही विभिन्न व्यवहार होते हैं ।

६२—दादू पंथों परि गये=जो अपनी दुर्बल वासनावस या अन्य किसी ज्ञानविचार की न्यूनता से विविध पंथों में उलझ गये । बपुरे बारह बाट=वे बिचारे दर दर के राहगीर हैं । सच्चे सन्त साधक को इनका संग नहीं करना चाहिये—ये संसार के मायिक पदार्थों की चाह वाले ऊबड खाबड़ खड्डों में उलझाने वाले हैं ।

आशय विश्राम

दादू जागे कौं आया कहैं, सूते कौं कहैं जाइ।
आवण जाणा झूठ है, जहं का तहां समाइ॥ ६३॥

इति मधि को अंग संपूर्ण॥ १६॥

---

# अथ सारग्राही को अङ्ग॥ १७॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवतः।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः॥ १॥

दादू साधू गुण गहै, औगुण तजै विकार।
मान सरोवर हंस ज्यूं, छाडि नीर गहि सार॥ २॥

हंस गियानी सो भला, अंतरि राखै एक।
विष मैं अमृत काढि ले, दादू बड़ा बमेक॥ ३॥

---

६३—जागे को=निष्पक्ष राह वाले को या जागृत अवस्था वाले को आया कहते हैं अर्थात् चेत होगया कहते हैं। सूते को सुषुप्ति अवस्था में चेतना का जाना कहते हैं। ये दोनों ही दशायें मिथ्या हैं, चेतन सर्वदा एकरूप रहता है, उसी एक दशा में ही अपनी वृत्ति को समाइ = लगाइए।

❀ मधि को अङ्ग समाप्त ❀

२—गुण गहै=दैवी सम्पदा के गुण ग्रहण करे। औगुण=आसुरी सम्पदा।

३—विष में अमृत काढले=संसार के मायिक पदार्थ विषमय हैं उनकी प्रवृत्ति छोड़ संसार की समष्टि में समत्वभावरूपी सार अमृत ग्रहण करे।

पहिली न्यारा मन करै, पीछै सहज सरीर ।
दादू हंस विचार सौं, न्यारा कीया नीर ॥ ४ ॥

आपै आप प्रकासिया, निर्मल ज्ञान अनन्त ।
खीर नीर न्यारा किया, दादू भजि भगवंत ॥ ५ ॥

षीर नीर का संत जन, न्याव नबेरै आइ ।
दादू साधू हंस बिन, भेल सभेलै जाइ ॥ ६ ॥

दादू मन हंसा मोती चुणै, कंकर दीया डार ।
सतगुरु कहि समझाइया, पाया भेद विचार ॥ ७ ॥

दादू हंस मोती चुणैं, मानसरोवर जाइ ।
बगुला छीलरी बापुड़ा, चुणि चुणि मछली खाइ ॥ ८ ॥

---

४—न्यारा मन करे=मनकी वासना पहिले दूर करे । पीछै सहज शरीर = शरीर का सहज स्वाभाविक अध्यास तथा अहंभावना इसको दूर करे । हंस विचार सूं=इस तरह हंस विचार से वासना अहंकार अध्यासरूपी नीर न्यारा करले ।

५—आपै आप=अपनी ही साधना से, अन्तःकरण की निर्मलता से । प्रकाशिया=व्यक्त हुआ ।

६—साधू हंस बिन=आत्मसिद्धिसाधना वाले हंस रूपी साधु के सहवास बिना । भेल-सभेले जाइ=संसार के चालू प्रवाह में सकाम कर्म सपक्ष भक्ति में हिलता मिलता चला जाता है ।

७—मन हंसा=निर्मल शुद्ध हंस मन । मोती चुणै=नामपरिचय रूप मोती चुगता है । कंकर=संसार के नाशवान पदार्थरूपी कंकर ।

८—मान सरोवर जाइ = हृदय सरोवर में समाधिस्थ हो । बगुला = विषयी मन । मछली = विषयभोग रूपी मछलियें ।

दादू हंस मोती चुगैं, मानसरोवर न्हाइ।
फिरि फिरि बैसैं बापुड़ा, काग करंकां आइ ॥ ९ ॥
दादू हंस परखिये, उत्तिम करणी चाल।
बगुला बैसै ध्यान धरि, परतषि कहिये काल ॥ १० ॥
उजल करणी हंस है, मैली करणी काग।
मधिम करणी छाडि सब, दादू उत्तम भाग ॥ ११ ॥
दादू निर्मल करणी साध की, मैली सब संसार।
मैली मधिम ह्वै गये, निर्मल सिरजनहार ॥ १२ ॥
दादू करणी ऊपरि जाति है, दूजा सोच निवारि।
मैली मधिम ह्वै गये, उजल ऊंच 'विचारि ॥ १३ ॥
उजल करणी राम है, दादू दूजा धंध।
का कहिये समझै नहीं, चारौं लोचन अंध ॥ १४ ॥

---

९—काग करंका आइ=विषयासक्त मन पुनः पुनः विषयरूपी सूखे हाडों पर पड़ता है।
दृष्टान्त—*हंस काग के संग लगि, थलियाँ आयो भूल।*
*तृषित देख्यो करंकजल, दुखी भयो गयो डूल ॥*

१०—परखिये = पहिचानिये। उत्तम करणी=सच्ची साधना से।

११—उजल करणी=आध्यात्मिक प्रवृत्ति। मैली करणी=विषयप्रवृत्ति। मधिम=नीची। उत्तम=श्रेष्ठ, ऊँची।

१३—करणी ऊपर जाति है=मनुष्य की मनुष्यत्व जाति करणी से सम्बन्धित है। जैसा भगवान् ने गीता में कहा—चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
दृष्टान्त—*इक नृप के कर में उग्यो, नाम चंडाल जू वाल।*
*मिटि हैं खावे तास कण, वामण मिल्यो चंडाल ॥*

१४—उजलकरणी राम है=व्यापक राम की ओर ही लगना ऊजल करणी है। दूजा धंध=

दादू गऊ बच्छ का ज्ञान गहि, दूध रहै ल्यौ लाइ ।
सींग पूंछ पग परहरै, अस्थन लागै धाइ ॥ १५ ॥
दादू काम गाइ के दूध सौं, हाड़ चाम सौं नांहिं ।
इहि विधि अमृत पीजिये, साधू के मुख मांहिं ॥ १६ ॥

स्मरण नाम

दादू काम धणी के नांव सौं, लोगन सूं कुछ नांहिं ।
लोगन सौं मन ऊपली, मन की मन ही मांहिं ॥ १७ ॥
जाकै हिरदै जैसी होइगी, सो तैसी ले जाइ ।
दादू तूं निर्दोष रहु, नांव निरन्तर गाइ ॥ १८ ॥
दादू साध सबै करि देखणां, असाध न दीसै कोइ ।
जिहिं के हिरदै हरि नहीं, तिहिं तनि टोटा होइ ॥१९॥

---

मायिक पदार्थों में लगना व्यर्थ का धंधा है। चारों लोचन अन्ध=दो चर्म चक्षु, दो ज्ञान विचार के नेत्र ।

१५—गऊ बच्छ का ज्ञान गहि=गऊ बच्छ के उदाहरण से सारपदार्थ ग्रहण करनेकी ही ओर लगना ।

१६—इहिं विधि=आत्मचिन्तन रूप साधना से ।

१७—लोगन सौं मन ऊपली=सांसारिक पुरुषों से ऊपरी व्यवहार तक ही सीमित रहे । मन की मन ही मांहिं=अपनी अन्तरभावना जो आत्मा की ओर लगी है उसको वैसे ही बनाये रहना ।

१८—दृष्टान्त—*इक कोली इक बाणियों, साध सेइ दे गालि ।*
*वणिक तिरयो कोली बह्यो, दुवै भुज सिर लखवाल ॥*

१९—दृष्टान्त—*कांगो पूज्यो संघ करि, परचा तें भई मान ।*
*नृप पूज्यो लारे लग्यो, करक चूम भयौ ज्ञान ॥*

साधू संगति पाइये, तब दूंदर दूरि नसाइ ।
दादू बोहिथ बैसि करि, डूंडे निकटि न जाइ ॥ २० ॥
जब परम पदारथ पाइये, तब कंकर दीया डारि ।
दादू साचा सो मिलै, तब कूड़ा काच निवारि ॥ २१ ॥
जब जीवनमूरी पाइये, तब मरिबा कौण बिसाहि ।
दादू अमृत छाडि करि, कौण हलाहल खाइ ॥ २२ ॥
जब मानसरोवर पाइये, तब छीलर कूं छिटकाइ ।
दादू हंसा हरि मिले, तब कागा गये बिलाइ ॥ २३ ॥

उभै असमाव

जहं दिनकर तहं निस नहीं, निस तहं दिनकर नांहिं ।
दादू एकै द्वै नहीं, साधन के मत मांहिं ॥ २४ ॥
दादू एकै घोड़ै चढि चलै, दूजा कोतिल होइ ।

२०—तब दूंदर दूर नसाइ=कामादि द्वंद्व, वासना अहंकारादि सब दूर हो जाते हैं । बोहिथ=जहाज पर । डूंडे=डोंगी, छोटी नाव ।

२१—परम पदारथ=आत्मपरिचय । ककर=मायिक पदार्थों की चाह रूप कंकरियें । साचा=परम तत्व । कूड़ा काच=विनाशी पदार्थ ।

२२—जीवनमूरि=जीवनजड़ी । बिसाहि=चाहे ।

२३—छीलर=छोटी तलाई ।

२४—दिनकर=ज्ञानभानु । निस=अज्ञान-अन्धकार । एकै द्वै नहीं=एक ही व्यापक सत्य वस्तु है । द्वै नहीं=दूसरा असत्य संसार नहीं है ।

२५—भावार्थ—इस साखी में महाराज द्योतन करते हैं कि प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों का निर्वाह एक साथ नहीं किया जा सकता । सवार जैसे एक घोड़े पर बैठ दूसरे को खाली रखकर चला करता है इस तरह अन्तःकरण में एक ही वृत्ति को स्थिर कर उसी की साधना की जानी चाहिए । दोनों घोड़ों पर सवारी करने वाले सवार का अपने ठिकाने पहुंचना कठिन है इसी तरह वासना तथा त्याग को साथ साथ नहीं

दुहु घोड़ौं चढि बैसतां, पारि न पहुँचा कोइ ॥ २५ ॥

इति सारग्राही को अङ्ग सम्पूर्ण ॥ १७ ॥

---

# अथ विचार को अङ्ग ॥ १८ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

प्रज्ञान परचै

दादू जल मैं गगन, गगन मैं जल है, पुनि वै गगन निरालं ।
ब्रह्म जीव इंहिं विधि रहै, ऐसा भेद विचारं ॥ २ ॥

---

निभाया जा सकता । अभिप्राय यह है कि साधक आत्माभिमुख हो उसी में निरन्तर लगा रहे तभी वह आत्मसाक्षात् कर सकेगा ।

*सारग्राही का अङ्ग समाप्त*

---

२—भावार्थ—घट देश में भरा हुआ जल उसमें नक्षत्रादि सहित आकाश रहता है, आकाश देशमें जल आश्रय लिये रहता है उभय स्थानों में गगन निर्लिप्त है, इसी तरह कूटस्थ ब्रह्म के आश्रित अन्तःकरण बुद्धि वृत्ति आदि जल रूप हैं, अन्तःकरणादि में क्रिया की उत्पत्ति है वह उसी व्यापक चेतन सम्बन्ध से है, समष्टि व्यष्टि चेतन उभय स्थानों में निर्लिप्त है इसीका भेद रहस्य विचारना चाहिये ।

ज्यूं दर्पन मैं मुख देषिये, पानी मैं प्रतिबिंब ।
ऐसैं आत्मराम है, दादू सब ही संग ॥ ३ ॥

साच

जब दर्पन माँहैं देषिये, तब अपना सूझै आप ।
दर्पन बिन सूझै नहीं, दादू पुन्य रु पाप ॥ ४ ॥

ज्ञान परचै

जीये तेल तिलंनि मैं, जीये गंध फुलंन्न ।
जीये माषण षीर मैं, ईयें रबु रूहंनि ॥ ५ ॥
ईये रबु रूहंनि मैं, जीये रूह रगंनि ।
जीये जेरौ सूर मां, ठंढो चंद्र बसंनि ॥ ६ ॥
दादू जिन यहु दिल मंदिर किया, दिल मंदिर मैं सोइ ।
दिल माँहैं दिलदार है, और न दूजा कोइ ॥ ७ ॥
मीत तुम्हारा तुम्ह कने, तुमहीं लेहु पिछाणि ।
दादू दूरि न देषिये, प्रतिबिंब ज्यूं जाणि ॥ ८ ॥

---

३—प्रतिबिम्ब= प्रतिच्छाया. । ऐसे आत्मराम है= इसी तरह चिदाभासरूप आत्माका सब प्राणियों में प्रतिबिम्ब व्यापक है ।

४—दर्पन विन सूझै नहीं= अन्तःकरण रूपी आरसी के बिना चिदाभास का ग्रहण संभव नहीं । कर्म फलाफल की प्रतीति भी अन्तःकरण से ही होती है ।

५—जीये= जैसे । फुलंन्न= फूलों में । षीरमें=दूधमें । ईये=ऐसे । रबु=व्यापक परमात्मा । रूहंनि=सब प्राणियों में ।

६—जीये=जैसे । रूह=आत्मा, चिदाभास । रगंनि=सब सुषुम्नाओं में । जेरो=प्रकाश । ठंढो= शीतलता । बसंनि=निवास करती है ।

७—जिन यहु=जिस चेतन अधिष्ठानने ॥

८—मीत=परमस्नेही । पिछाणि=पहिचानले ।

विरक्तता

दादू नाल कवल जल ऊपजै, क्यूं जुदा जल मांहिं।
चंदहि हित चित प्रीतड़ी, यौं जल सेती नांहिं ॥ ६ ॥
दादू एक विचार सौं, सब थैं न्यारा होइ।
मांहैं है पर मन नहीं, सहज निरंजन सोइ ॥ १० ॥
दादू गुण निर्गुण मन मिलि रह्या, क्यूं बेगर ह्वै जाइ।
जहं मन नाहीं सो नहीं, जहां मन चेतन सो आहि ॥ ११ ॥

विचार

दादू सबही व्याधि की, औषधि एक विचार।
समझे थैं सुख पाइये, कोइ कुछ कहौ गंवार ॥ १२ ॥

---

६—भावार्थ—सन्तजन संसारमें ही उत्पन्न होते हैं पर उनका प्रेम अपने मूल परमेश्वर से होता है, इसी से वे संसार में रहते हुये भी कमलनालवत् संसार से विरक्त रहते हैं। अथवा परमेश्वररूपी जलसे ही कमलनालवत् जीव उत्पन्न होता है पर चंदा=चौदह भवनों की सुखवासना—का अनुबन्ध उसके अन्तःकरण में होता है अतः उसका स्नेह उस ओर ही होता है अपने आधार परमेश्वर रूपी जल से नहीं रहता।

१०—एक विचारसों = एकत्व प्राप्ति की तीव्र भावनाके विचारसे। मांहैं है पर मन नहीं= वह चेतन अधिष्ठान हृत् प्रदेश में ही है पर मन उसके सम्मुख नहीं है यदि मन उसके उन्मुख हो तो उस सहज चेतन को प्राप्त करलेता है।

११—वेगर=जुदा, दूर। जँह मन नहीं सो नहीं = मन की चाह जिस वस्तु में नहीं होती उस स्थिति में मन के लिये वह वस्तु भी नहीं होती। जहां मन चेतन सो आहि=जिस वस्तु के लिये मन चेतन है—अनुरक्त है वह वस्तु भी उसके लिये है। अर्थात् वस्तुतः वस्तु की वास्तविकता या अवास्तविकता का निर्णय किये मन की प्रवृत्ति निवृत्ति ही वस्तु के भावाभावका आधार बन जाती है।

१२—व्याधि=विषय विकार जनित रोग। औषधि=एक सत्य का निश्चय यही वि

दादू इक निर्गुण इक गुण मई, सब घटि ये द्वै ज्ञान।
काया का माया मिलै, आत्म ब्रह्म समान॥ १३॥
दादू कोटि अचारिन एक विचारी, तऊ न सरभरि होइ।
आचारी सब जग भरया, बिचारी बिरला कोइ॥ १४॥
दादू घट मैं सुष आनंद है, तब सब ठाहर होइ।
घट मैं सुख आनंद बिन, सुखी न देख्या कोइ॥ १५॥

विरक्तता

काया लोक अनंत सब, घट मैं भारी भीर।
जहां जाइ तहं संगि सब, दरिया पैली तीर॥ १६॥
काया माया ह्वै रही, जोधा बहु बलिवंत।
दादू दुस्तर क्यूं तिरै, काया लोक अनंत॥ १७॥
मोटी माया तजि गये, सूषिम लीये जाँइ।
दादू को छूटै नहीं, माया बड़ी बलाइ॥ १८॥

---

औषध है। कोई कुछ कहो गँवार=धर्म तथा पन्थ विशेष का अभिमानी गँवार=अज्ञानी कुछ ही क्यों न कहता रहे उस पर ध्यान न दिया जाय।

१३—निर्गुण=गुणातीत ब्रह्म। गुणमई=त्रिगुणात्मक प्रकृति। काया का माया मिलै=शरीर अध्यास की भावना वाले माया में मिलते हैं।

१४—तऊन=तौ भी। सरभर=समानता।

१५—सब ठाहर= चतुष्टय अन्तःकरण में वृत्ति सहित।

१६—काया=स्थूल देह। लोक=योनियें। अंनत=चौरासी लाख। घट में=प्रत्येक योनि के शरीर में। भारी भीर=कामक्रोधादि का समूह। दरिया पैली तीर=इस संसार के अनन्त योनियों वाले समुद्र के परले तीर कैसे पहुंचा जाय?

१७—काया=विविध शरीर। जोधा=कामक्रोधादि प्रबल शक्तिशाली। दुस्तर=अलंघनीय।

१८—मोटी=स्थूल-घरसम्पत्ति आदि। सूषिम=सूक्ष्म, पूजाप्रतिष्ठा आदि। को=कोई।

दादू सूषिम मांहिं ले, तिन का कीजै त्याग ।
सब तजि राता राम सौं, दादू यहु वैराग ॥ १९ ॥
गुणातीत सो दरसनी, आपा धरै उठाइ ।
दादू निर्गुण राम गहि, डोरी लागा जाइ ॥ २० ॥
पिंड मुक्ति सब को करै, प्राण मुक्ति नहिं होइ ।
प्राण मुक्ति सतगुरु करै, दादू बिरला कोइ ॥ २१ ॥

शिष्य जिज्ञासा—प्रश्न

दादू षुध्या त्रिषा क्यूं भूलिये, सीत तपति क्यूं जाइ ।
क्यूं सब छूटै देह गुण, सतगुरु कहि समझाइ ॥ २२ ॥

उत्तर

मांहीं थैं मन काढ़ि करि, ले राखै निज ठौर ।
दादू भूलै देह गुण, विसरि जाइ सब और ॥ २३ ॥

दृष्टान्त —*सत्तरहसहस खाखी रहे, शेष भावदी लार ।*
*गर्व देख नभ शब्दभो, दाँवण गहि तो पार ॥ १ ॥*

१९—सूषिम माँहि ले=मानसिक प्रदेश में अहंकार समन्वित बडाई, प्रतिष्ठा, ईर्षा, द्वेष आदि । सब तजि=वासना, विकार, अहंकार, अध्यास, सबको छोड ।

२०—गुणातीत=जिसने त्रिविध गुणों के सब धर्म त्यागदिये । सो दरसनी=वह दर्सन के योग्य महात्मा है । डोरी लागा जाइ =वृत्ति के आत्मानुबन्धी अभ्यास रूप डोरी से लक्ष्य स्थान तक चला जाता है ।

२१—पिंड मुक्ति=स्थूल देहके भरण पोषण का प्रयास ।

२२—षुध्या = भूख, वासनामय चाह । त्रिषा=प्यास, तृष्णा । सीत तपत=देह गुण, जड़ता, ईर्षादि मानस गुण ।

२३—मांहीं थैं मन काढिकरि = संसार के मायिक पदार्थों में से मनको निकाल कर । निज-ठौर=कूटस्थ स्वस्वरूप में ।

नांव भुलावै देह गुण, जीव दसा सब जाइ।
दादू छाडै नांव कौं, तो फिरि लागै आइ॥ २४॥

दादू दिन दिन राता राम सौं, दिन दिन अधिक सनेह।
दिन दिन पीवै रामरस, दिन दिन दर्पण देह॥ २५॥

दादू दिन दिन भूले देह गुण, दिन दिन इन्द्रिय नास।
दिन दिन मन मनसा मरै, दिन दिन होइ प्रकास॥ २६।

संजीवन

देह रहै संसार मैं, जीव राम के पास।
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुख त्रास॥ २७॥

काया की संगति तजै, बैठा हरिपद मांहिं।
दादू निर्भै ह्वै रहै, कोइ गुण व्यापै नांहिं॥ २८॥

काया मांहैं भै घणा, सब गुण व्यापैं आइ।
दादू निरभै घर किया, रहै नूर मैं जाइ॥ २९॥

---

२४—नांव=नाम चिंतन। जीव दसा=अज्ञान दशा। तौ फिर लागे आइ=तो फिर देह गुण व जीव दसा वापिस आजाती है।

२७—देह रहे संसार में=केवल देहका अनुबन्ध ही संसार से रहे। काल झल=काल की ज्वाला।

२८—काया की संगति=देह का अध्यास।

२९—काया मांहैं=देहकी सत्य-प्रतीतिरूप अध्यास में। भै घणा=काम क्रोधादि लोभ मोहादि जनित विविध भय हैं। निरभै घर किया=शुद्ध अन्तःकरण में आत्मनिष्ठ वृत्ति स्थैर्य रूप घर बनाया।

खड्ग धार विष ना मरै, कोइ गुण व्यापै नांहिं ।
राम रहै त्यूं जन रहै, काल झाल जल मांहिं ॥ ३० ॥

विचार

सहज विचार सुख मैं रहै, दादू बड़ा बमेक ।
मन इन्द्रिय पसरैं नहीं, अंतरि राखै एक ॥ ३१ ॥

मन इन्द्रिय पसरैं नहीं, अहनिसि एकै ध्यान ।
पर उपगारी प्राणिया, दादू उत्तम ज्ञान ॥ ३२ ॥

दादू मैं नाहीं तब नांव क्या, कहा कहावै आप ।
साधौ कहौ विचारि करि, मेटहु तन की ताप ॥ ३३ ॥

जब समझ्या तब सुरझिया, उलटि समाना सोइ ।
कछू कहावै जब लगैं, तब लग समझि न होइ ॥ ३४ ॥

---

३०—खड्ग धार विष ना मरै=विषय वासना की तेज धार वाली तलवार से अहंकार रूपी विषसे वह साधक नहीं मरता अर्थात् उनका आत्मनिष्ठ निश्चयवाले साधक पर कोई असर नहीं होता ।

*नांव लेत तुहि तुहि करे, फिर हूं हि हूं कह पीर ।*
*सिप सतर दई ताड़ना, कट्यो न तास सरीर ॥*

३१—सहज विचार = आसक्ति वासना विहीन निर्मल विचार । पसरैं नहीं = भोग विषयों की ओर प्रवृत्त न हो ।

३२—अहनिसि=सर्वकाल । एकै=आत्मचिन्तनमय ।

३३—मैं नांहीं = अहंकार नहीं ।

३४—समझ्या=आत्मा ही सत्य है यह निश्चय किया । कछू कहावे=अहंकार का अनुबंध बनाये रक्खे ।

जब समझ्या तब सुरझिया, गुरमुखि ज्ञान अलेख।
ऊर्ध्व कवल मैं आरसी, फिरि करि आपा देख ॥ ३५ ॥
प्रेम भगति दिन दिन बधै, सोई ज्ञान विचार।
दादू आत्म सोधि करि, मथि करि काढ्या सार ॥ ३६ ॥
जिहिं बिरियां यहु सब कुछ भया, सो कुछ करौ बिचार।
काजी पंडित बावरे, क्या लिखि बंधे भार ॥ ३७ ॥
जब यहु मन ही मन मिल्या, तब कुछ पाया भेद।
दादू ले करि लाइये, क्या पढि मरिये बेद ॥ ३८ ॥
पाणी पावक पावक पाणी, जाणै नहीं अजाण।
आदि अंत बिचार करि, दादू जांण सुजांण ॥ ३९ ॥

---

३५—गुरुमुख ज्ञान अलेष=अलेष अगोचर आत्मा का ज्ञान गुरु उपदेश से समझा। ऊर्ध कमल में=विशुद्ध हृदय प्रदेश में। आरसी=चिदाभास। फिरि करि=पलटकरि, आत्माभिमुख होकर। आपा देख=अपना स्वस्वरुप देख।

३७—जिहिं विरिया = जिस समय। यहु सब कुछ भया = माया अविद्याका विस्तार हुवा।

दृष्टान्त—*गुरु दादू गये सीकरी, तहां सो साखी भाखि।*
*उत्तर भयो नहिं किसी ते, बखनै उत्तर आखि ॥१॥*

प्रश्न—*काजी पंडित बूझिया, किन ज्वाब न दिया।*
*बखनां विरिया कौन थी, जब सब कुछ कीया ॥१॥*

उत्तर—*जिहिं विरिया यहु सब भया, सो हम किया विचार।*
*बखनां विरियां खुसी की, कर्त्ता सिरजनहार ॥१॥*

३८—मन ही मन मिल्या = मन को ही मन की विशुद्धि का मार्ग मिला। लेकर लाइये= मन को अन्तर्मुख कर वृत्ति सहित आत्मनिष्ठ करिये।

३९—पाणी पावक = जल में दावाग्नि रहती है। पावक पाणी=अग्नितत्व से वारितत्व का उद्भव। आदि अन्त=सबका आदि अन्त एक है, व्यापक चेतन अधिष्टान है उसी

**सुख माँहैं दुख बहुत हैं, दुख माँहैं सुख होइ।**
**दादू देखि बिचारि करि, आदि अंति फल दोइ॥ ४०॥**
**मीठा खारा, खारा मीठा, जाणै नहीं गंवार।**
**आदि अंति गुण देखि करि, दादू किया विचार॥ ४१॥**
**कोमल कठिन कठिन है कोमल, मूरिख मर्म न बूझै।**
**आदि अंति बिचारि करि, दादू सब कुछ सूझै॥ ४२॥**
**पहली प्राण बिचार करि, पीछै पग दीजै।**
**आदि अंति गुण देखि करि, दादू कुछ कीजै॥ ४३॥**
**पहली प्राण बिचार करि, पीछै चलिये साथ।**
**आदि अंति गुण देखि करि, दादू घाली हाथ॥ ४४॥**

---

को है सुजांण=चतुर, जांण=पहिचान।

४०—सुख माँहैं=विषय वासना के कल्पित सुखों में। दुख माँहैं=मनोनिरोधजन्य साधन दुःखमें।

दृष्टान्त—*करहा कर कर क्यूं करे, भार घणों घर दूर।*
*मेव रजत तें क्यूं लियो, गहणा गलते सूर॥ १॥*

४१—मीठा=विषयभोग वह परिणाम में खारा है। खारा मीठा=अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा साधना का कडुवापन परिणाम में मीठा है।

४२—कोमल कठिन=इन्द्रियों के विषयभोग की कोमलता परिणाम में अति कठिन=कठोर है। कठिन है कोमल=मन वृत्ति निग्रह की साधना कठिन है पर उसका परिणाम आत्मप्राप्ति अति कोमल है।

दृष्टान्त—*खाती महलां तल खड़ी, देखी नानक नैन।*
*पातस्याह की हुर्म थी, कहै सिखत सो वैन॥ १॥*

४३—प्राण=मनमें भली प्रकार। पग दीजै=प्रवृत्त हुइये।

४४—घाले हाथ=कर्ममें प्रवृत्त हो।

पहली प्राण विचार करि, पीछैं कुछ कहिये।
आदि अंति गुण देखि करि, दादू निज गहिये ॥ ४५ ॥
पहली प्राण बिचार करि, पीछैं आवै जाइ।
आदि अंति गुण देखि करि, दादू रहै समाइ ॥ ४६ ॥
दादू सोचि करै सो सूरिवां, करि सोचै सो कूर।
करि सोच्यां मुख स्याम ह्वै, सोचि कियां मुख नूर ॥४७॥
जे मति पीछैं ऊपजै, सो मति पहिली होइ।
कबहुँ न होवै जी दुखी, दादू सुखिया सोइ ॥ ४८ ॥

---

दृष्टान्त—*कोई बांदी घर ते नसी, साधु सु ते मग जांहि।*
*लख कुसंग मग तजि रहे, आण गही मग मांहि ॥ १ ॥*

४५—निज गहिये = सार ग्रहण करिये।

४६—पीछैं आवे जाइ=विचार द्वारा सम्यक् समझ लेने पर ही किसी काम में लगा जाय या नहीं यह निश्चय करना।

दृष्टान्त—*चिर काली गौतम सुवन, तात कही हत माइ।*
*मात देख गुण पितु वचन, संशय रह्यो समाइ ॥ १ ॥*
*सेठ गया हरि द्वारिका, लाख रुप्या धर तीर।*
*संकल्पे नहीं ढील करि, मघ लेगयो नीर ॥ २ ॥*

४७—सोचि करे सो सूरिवां=जो मनुष्य लौकिक या पारमार्थिक किसी भी कामका शुभाशुभ परिणाम सम्यग् समझ फिर काम करता है वही सूरवां है वही प्रशस्त है। करि सोचे सो कूर=काम कर चुकने के बाद उसके अनिष्ट फल का उसकी अनुपादेयता का विचार करता है वह कूर=हिंसक मनुष्य है। करने के बाद सोचने से मुख स्याम होता है-उसकी अनिष्टता या व्यर्थता का खेद होता है। सोचकर करनेसे परिणामकी अनुकूलता से मनुष्य के मुंह पर सफलता की प्रसन्नता जन्य हर्ष का नूर=प्रकाश होता है।

४८—जे मति पीछें ऊपजै, सो मति पहिले होइ = जिस कार्य का औचित्य अनौचित्य काम

**आदि अंति गाहन किया, माया ब्रह्म विचार ।**
**जहं का तहं ले दे धरया, दादू देत न बार ॥ ४६ ॥**

**इति बिचार कौ अंग संपूर्ण ॥ १८ ॥**

# अथ बेसास को अङ्ग ॥ १९ ॥

**दादू नमो नमो निरंजनम् , नमस्कार गुरु देवतः ।**
**बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥**

**दादू सहजैं सहजैं होइगा, जे कुछ रचिया राम ।**
**काहे कौं कलपै मरै, दुखी होत बे काम ॥ २ ॥**

---

काम करने के बाद समझ में आता है वह पहिले समझ में आजाय तो कभी सन्तप्त न होना पड़े, दादूजी कहते हैं सदा सोच समझकर चलनेवाला ही सुखी होता है ।

४६—भावार्थ—दादूजी महाराज कहते हैं इस विचार के अंग में सत्य असत्य नित्य अनित्य श्रेय हेय का आदि अन्त से मन्थन किया है, अनित्य मायिक पदार्थ व सत्य व्यापक ब्रह्म की वास्तविकता जैसी है वैसी व्यक्त को की गई है । इस तरह वास्तविकता को ग्रहण कर अपने जीवन को उसमें लगाते हैं, उन्हें वह ब्रह्म अपने स्वरूप बोध कराने में कुछ देर नहीं करता ।

❀ इति विचार का अंग समाप्त ❀

---

२—सहजैं=स्वभावतः, दैवगति से । रचिया=बनाया । कलपै=झूरे, चिन्तन करे ।

साँई किया सो ह्वै रह्या, जे कुछ करै सो होइ।
कर्ता करै सो होत है, काहे कलपै कोइ ॥ ३ ॥
दादू जे तैं किया सो ह्वै रह्या, जे तूं करै सो होइ।
करण करावण एक तूं, दूजा नांहीं कोइ ॥ ४ ॥
दादू सोइ हमारा सांईयां, जे सबका पूरणहार।
दादू जीवण मरण का, जाकै हाथ विचार ॥ ५ ॥
दादू सर्ग भवन पाताल मधि, आदि अन्त सब सिष्ट।
सिरजि सबनि कौं देत है, सोई हमारा इष्ट ॥ ६ ॥
दादू करणहार कर्ता पुरिष, हम कौं कैसी चिंत।
सब काहू की करत है, सो दादू का मिंत ॥ ७ ॥
दादू मनसा वाचा कर्मणा, साहिब का बेसास।
सेवग सिरजनहार का, करै कौन की आस ॥ ८ ॥
सुरम न आवै जीव कूं अणकीया सब होइ।
दादू मारग मिहर का, बिरला बूझै कोइ ॥ ९ ॥

---

४—जे तैं किया=जैसा तुमने किया है। जे कुछ करै=अब जो कुछ कर रहे हो।

६—सर्ग=स्वर्ग। भवन=चौदह लोक। सब सिष्ट=सब जड़ चेतनमय दृश्य अदृश्य। सिरजि=रच; व्यक्त।

७—चिंत=चिन्ता। करत है=पूर्ति करता है, संभाल करता है। मिंत=प्यारा मित्र है।

८—साहिब का बेसास=उसी अपने आधार ही का भरोसा रखे।

दृष्टान्त—*लही मृग के सींग पर, रोटी जुत बेसास।*
*जब रोटी आई नहीं, त्याग दियो बेसास ॥*

९—सुरम=श्रम, मेहनत। अण कीया=बिना किये। मिहर का=उस दयालु का। बूझै=समझै, पहिचाने।

दादू उदिम ओगुण को नहीं, जे करि जाणै कोइ।
उदिम मैं आनंद है, जे सांई सेती होइ ॥ १० ॥
दादू पूरणहारा पूरसी, जो चित रहसी ठांम।
अन्तर थैं हरि उमंगसी, सकल निरंतर राम ॥ ११ ॥
पूरिक पूरा पासि है, नांहीं दूरि गंवार।
सब जानत है बावरे, देबे कौं हुसियार ॥ १२ ॥
दादू चिन्ता राम कौं, समरथ सब जाणै।
दादू राम संभालि ले, चिन्ता जनि आणै ॥ १३ ॥
दादू चिन्ता कीया कुछ नहीं, चिन्ता जीव कूं खाइ।
हूंणा था सो ह्वै रह्या, जाणा है सो जाइ ॥ १४ ॥

पोष प्रतिपाल रक्षक

दादू जिन पहुंचाया प्राण कौं, उदर ऊर्ध मुख खीर।
जठर अगनि मैं राखिया, कोमल काया सरीर ॥ १५ ॥

---

१०—उदिम=पुरुषार्थ, परिश्रम।

दृष्टान्त—*इक उद्यम विश्वास इक, राखे एकस स्थान।*
*द्वै मोदक खाली भरे, लहे उद्यमी आन ॥*

११—ठांम=जगह पर। उमंगसी=उल्लसित करेगा, उत्साह पैदा करेगा।

दृष्टान्त—*वन्दे जल तट बैठ के, कीन्हीं गाढ विश्वास।*
*लहूँ मतीरा गोद में, प्रभु भेजे लख दास ॥*

१२—पूरिकपूरा=सब प्रकार की पूर्ति करने वाला। हुसियार=सावधान है, सजग है।

१३—समरथ=वह सब सामर्थ्य वाला है।

१३—दृष्टान्त—*देख कठार अश्व को, रातब आप रुचि खात।*
*जाय लुक्यो विश्वास गहि, हस्यो देत मुख हाथ ॥*

१४—हूँणाथा=होना था।

१५—ऊर्धमुख खीर=नीचे मुंह गर्भ में जिसने पोषण पहुंचाया। विकट घाट घट भीर=

सो समरथ संगी संगि रहै, विकट घाट घट भीर ।
सो सांई सूं गह गही, जिनि भूलै मन वीर ॥ १६ ॥
गोविंद के गुण चीति करि; नैन बैन पग सीस ।
जिन मुख दीया कान कर, प्राणनाथ जगदीस ॥ १७ ॥
तन मन सौंज संवारि सब, राखै विसवा बीस ।
सो साहिब सुमिरै नहीं, दादू भानि हदीस ॥ १८ ॥
दादू सो साहिब जनि वीसरै, जिन घट दीया जीव ।
गर्भवास मैं राखिया, पालै पोषै पीव ॥ १९ ॥
दादू राजिक रिजक लीये खड़ा, देवै हाथों हाथ ।
पूरिक पूरा पासि है, सदा हमारे साथ ॥ २० ॥
हिरदै राम संभालि ले, मन राखै बेसास ।
दादू समरथ सांईयां, सब की पूरै आस ॥ २१ ॥
दादू सांई सबन कौं, सेवक ह्वै सुख देइ ।
अया मूढ मति जीव की, तौभी नांव न लेइ ॥ २२ ॥

---

देह के अति दुःख के समय वही मदद पर रहता है ।

१६—सो सांई सो गह गही=उस परमेश्वर से गहरी प्रीति कर ।

१७—भावार्थ—जिसने आंख, वाणी, कान, शिर, हाथ, पैर दिये हैं इन सबसे उसी को याद कर, उसी की सेवा में मन को लगा ।

१८—सौंज सँवारि=सजावट कर । राखै=रक्षा करे । भाँनि=तोड़, भंग कर । हदीस=मर्यादा

१९—जनि वीसरै=मत भूले ।

२०—राजिक=रोजी देने वाला । रिजक=काम, दाम ।

२१—हृदय=शुद्ध मन में । राम संभालि=अपना आत्मराम देख ।

२२—सेवग ह्वै सुख देइ=वह परमात्मा सब का सेवक होकर सब को सुख पहुंचाता है ।

दादू सिरजनहारा सबन का, ऐसा है सामर्थ।
सोई सेवग ह्वै रह्या, जहं सकल पसारैं हथ ॥ २३ ॥
धनि धनि साहिब तू बड़ा, कौन अनुपम रीति।
सकल लोक सिर सांईयां, ह्वै करि रह्या अतीत ॥ २४ ॥
दादू हूँ बलिहारी सुरति की, सब की करै संभाल।
कीड़ी कुंजर पलक मैं, करता है प्रतिपाल ॥ २५ ॥

छाजन भोजन

दादू छाजन भोजन सहज मैं, संइयां देइ सो लेइ।
तार्थैं अधिका और कुछ, सो तूं कांइ करेइ ॥ २६ ॥
दादू टूका सहज का, संतोषी जन खाइ।
मृतक भोजन गुरुमुखी, काहे कलपै जाइ ॥ २७ ॥

---

अथा मूढमति जीव को=इस जीव की बुद्धि कैसी खराब है कि वह फिर भी उसका नाम नहीं लेता।

२४ - अनुपम=उपमा रहित। रीति=रिवाज, पद्धति। अतीत=अकिंचन, अति लघु।

२५—सुरति=संभाल, स्मृति।

दृष्टान्त—*रुकमणि संपट में धरे, चावल चींटी लार।*
*असम त्रास लखि कीट मुख, पृथ्वीराज विचार ॥*
*एक तवो पाषाण को, अग्नि चढ्यो बहु काल।*
*कीट तहां काची रखे, रोटी राम दयाल ॥*

२६—छाजन=छाने को, ढकने को। कांई करेइ = क्या करेगा।

दृष्टान्त—*गयो रसायण लेन को, द्विज ज्योतिष बल जाण।*
*भाग बिना क्यूं पाइये, प्रत्यक्ष लई पिछाण ॥*

२७—टूका=टुकड़ा, अल्पांश। मृतक भोजन=याचना से प्राप्त। गुरुमुखी=गुरु उपदेश को मानने वाला।

दादू भाड़ा देह का, तेता सहजि बिचारि।
जेता हरि बिचि अंतरा, तेता सबै निवारि॥ २८॥
दादू जल दल राम का, हम लेवैं परसाद।
संसार का समझैं नहीं, अविगत भाव अगाध॥ २९॥
परमेसुर के भाव का, एक कणूं का खाइ।
दादू जेता पाप था, भरम करम सब जाइ॥ ३०॥
दादू कौण पकावै कौण पीसै, जहां तहां सीधा ही दीसै।३१
दादू जे कुछ खुसी खुदाइ की, होवेगा सोई।
पचि पचि कोई जनि मरै, सुणि लीज्यौ लोई॥ ३२॥
दादू छूटि खुदाइ, कहीं को नाहीं, फिरिहौ पिरथी सारी।
दूजी दहणि दूरि करि बौरे, साधु सब्द बिचारी॥ ३३॥

---

दृष्टान्त—*निर्धन पर धामो मिल्यो, संतोषी हो माग।*
*ताती पाणी पी चल्यो, बरस्यो द्रव्य अगाध॥*

२८—भाड़ा देह का=शरीर की जरूरत।

दृष्टान्त—*तिय लंपट जन सभा मे, ल्याइ धर्यो परसाद।*
*पावत ही चंचल भयो, काम बिकल मन माध॥*

२९—जल दल राम का=अन्न पाणी यह सब परमेश्वर का पैदा किया हुआ समझ उपयोग में ले।

३०—भावका=दृढ विश्वास का। कणूं का=कण।

दृष्टान्त—*जन पातिल लइ ऊंटड़ी, कछु उण को लिय काग।*
*तातें द्विज द्विजनी भये, ज्ञान सहित बड़भाग॥*

३२—लोई=सब लोग।

दृष्टान्त—*इक बुढिया अति प्रीति सूं, जाय धर्यो परसाद।*
*बन्दे लियो न तर्क करि, लुटी बेदगी बाद॥*

३३—छूटि खुदाइ=परमेश्वर को छोड़। दहणि=सन्ताप, चिन्ता। बौरे=भोले, बेखबर।

दादू बिना राम कहीं को नांहीं, फिरिहौ देस विदेसा।
दूजी दहणि दूरि करि बौरे, सुणि यहु साधु संदेसा ॥ ३४॥
दादू सिदक सबूरी साच गहि, सावति राखी यकीन।
साहिब सौं दिल लाइ रहु, मुरदा ह्वै मसकीन ॥ ३५ ॥
दादू अणवंछित टूका खात हैं, मर्महि लागा मन।
नांव निरंजन लेत हैं, यौं निर्मल साधु जन ॥ ३६ ॥
अणवंछ्या आगैं पड़ै, खिरया विचारि रु खाइ।
दादू फिरै न तोड़ता, तरवर ताकि न जाइ॥ ३७ ॥
अणवंछ्या आगैं पड़ै, पीछै लेइ उठाइ।
दादू के सिरि दोस यहु, जे कुछ राम रजाइ॥ ३८ ॥
अणवंछी अजगैब की, रोजी गगन गिरास।
दादू सति करि लीजिये, सो सांई के पास ॥ ३६ ॥

---

दृष्टान्त—*कावल मेघा खाण को, गयो फकीर चलाइ।*
*अति आदर आगे धरे, कान्दा रोटी ल्याइ॥*

३४—सुण यहु साधु सदेस=सिवाय ईश्वर के और कोई नहीं है यह श्रेष्ठ पुरुषों का संदेश-सुन।

३५—सिदक=यकीन। सबूरी=सन्तोष। सावति=पूरा। यकीन=भरोसा, विश्वास। मुरदा ह्वै मसकीन=दृढता से अहंकार रहित हो।

३६—अणवंछित=अयाचित, स्वतः प्राप्त। मर्महि=असली जगह।

३७—खिरया=बिखरा, अनायास मिला।

३६—अणवंछी=बिनाचाही। अजगैब=अनायास, सहज। गगनगिरास=आकाश वृत्ति से प्राप्त। सतिकरि=सोच समझ कर।

कर्ता कसौटी

मीठे का सब मीठा लागै, भावै विष भरि देइ।
दादू कड़वा ना कहै, अमृत करि करि लेइ ॥ ४० ॥
विपति भली हरि नांव सौं, काया कसौटी दुक्ख।
राम बिना किस काम का, दादू संपति सुख ॥ ४१ ॥

बेसास, संतोष

दादू एक बेसास बिन, जियरा डांवां डोल।
निकटि निधि दुख पाइये, चिंतामणी अमोल ॥ ४२ ॥
दादू बिन बेसासी जीयरा, चंचल नाहीं ठौर।
निहचै निहचल ना रहै, कछू और की और ॥ ४३ ॥
दादू होणा था सो ह्वै रह्या, सर्ग न वांछी धाइ।
नरक कने थी ना डरी, हुवा सो होसी आइ ॥ ४४ ॥
दादू होणा था सो ह्वै रह्या, जिनि वांछै सुख दुक्ख।
सुख मांगैं दुख आइसी, पै पिव न विसारी मुख ॥ ४५ ॥
दादू होणा था सो ह्वै रह्या, जे कुछ कीया पीव।
पल बधै न छिन घटै, ऐसी जाणी जीव ॥ ४६ ॥

---

४०—मीठेका=ईश्वर भरोसे वाले का।

४१—विपत=विपत्ति, दुःख।

४२—डांवांडोल=अस्थिर। निकट निधि=सब सम्पत्ति पास होते हुए भी।

४३—बिन बेसासी=बिना भरोसे वाला। निहचै निहचल ना रहे=ईश्वर के निश्चय पर स्थिर नहीं है।

४४—वाँछी=चाहना। धाइ=दौड़। कनेथी=ओर से। हुवा सो होसी आइ=अपने से जो भला बुरा हुवा है वह होने वाला है।

दादू होणा था सो ह्वै रह्या, और न होवै आइ ।
लेणा था सो ले रहे, और न लीया जाइ ॥ ४७

ज्यूं रचिया त्यूं होइगा, काहे कौं सिरि लेह ।
साहिब ऊपरि राखिये, देखि तमासा येह ॥ ४८

पतिव्रत निःकाम

ज्यूं जाणौ त्यूं राखियौ, तुम सिरि ढाली राइ ।
दूजा को देखौं नहीं, दादू अनत न जाइ ॥ ४९ ॥

ज्यूं तुम भावै त्यूं खुसी, हम राजी उस बात ।
दादू के दिल सिदक सूं, भावै दिन कूं रात ॥ ५० ॥

दादू करणहार जे कुछ किया, सो बुरा न कहणा जाइ ।
सोई सेवग संत जन, रहिबा राम रजाइ ॥ ५१ ॥

---

४७—लेणा था=नामचिन्तन लेना था । ले रहे=उसको लिए रह ।

४८—सिरलेह=अपने जिम्मे क्यों ले ।

४९—ज्यूं जाणौं=जैसामुझे समझो । ढाली=भरोसे रखी । राइ=सबके राजा–हे परमात्मन्
अनत = और जगह ।

५०—तुम भावै = तुम्हें अच्छा लगे । सिदक = यकीन, दृढ़ विश्वास ।

५१—राम रजाइ=ईश्वर की इच्छा पर निर्भर

दृष्टान्त—*सन्त चार अति तप करे, एक भिक्षा को जाइ ।*
*चून उडत आन्धी रखी, रजा मेटि दुख पाइ ॥१॥*
*सुलतानी सरबस लखे, बरजी आज्ञा मेटि ।*
*सीय तृषित भूखी मरी, वेहु भूखो रहि नेटि ॥२॥*
*पोल ढई खांडा मुस्या, बन्धु मरे भई हाणि ।*
*शाहपुत्र सोयो कहै, कुछ आछा ही जाणि ॥ ३ ॥*

बेसास संतोष

दादू कर्ता हम नहीं, कर्ता औरै कोइ ।
कर्ता है सो करैगा, तूं जनि कर्ता होइ ॥ ५२ ।

हरि भरोसा

कासी तजि मगहर गया, कबीर भरोसै राम ।
सैंदेही सांई मिल्या, दादू पूरे काम ॥ ५३ ॥

दादू रोजी राम है, राजिक रिजक हमार ।
दादू उस परसाद सौं, पोष्या सब परिवार ॥ ५४ ।

पंच संतोषे एक सौं, मन मतिवाला मांहिं ।
दादू भागी भूख सब, दूजा भावै नांहिं ॥ ५५

दादू साहिब मेरे कपड़े, साहिब मेरा खाण ।
साहिब सिर का ताज है, साहिब पिंड पराण ॥ ५६

सांई सत संतोष दे, भाव भगति वेसास ।
सिदक सबूरी साच दे, मांगै दादू दास ॥ ५

इति बेसास को अंग संपूर्ण समाप्त ॥ १६ ॥

---

५३—सैंदेही=देह सहित, साक्षात् ।

५४—पोष्या = पोषण किया, सन्तुष्ट किया । परिवार = मन इन्द्रियें ।

५५—पंच संतोषे एक सों=एक परमेश्वर से जुड़ने पर पांचों इन्द्रियां सन्तुष्ट हो गईं हो गईं । मतिवाला=विषय चंचल । भूख सब=सम्पूर्ण चाह, सब तृष्णायें । संसार के भोग पदार्थ ।

५७—सत=निश्चय, अडिगता । सिदक=ईश्वर का दृढ़ भरोसा । सबूरी=सन्तोष । दायिक विचार से इस साखी में आठ सिद्धियें मांगी गई हैं. वे इस तरह हैं बांट कर खाना । संतोष=सत्कार्य की प्रवृत्ति । भाव=श्रद्धा । भगति=अन वेसास=दृढ़ भरोसा । सिदक=ईश्वरेच्छा । सबूरी=कारणज्ञान । सांच= इन आठों सिद्धियों की याचना है ।

❀ वेसास का अंग समाप्त ❀

# अथ पीव पिछाण को अङ्ग ॥ २० ॥
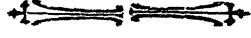
दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

सारौं के सिरि देखिये, उस परि कोई नांहिं ।
दादू ज्ञान विचारि करि, सो राख्या मन मांहिं ॥ २ ॥

सब लालौं सिरि लाल है, सब खूबौं सिरि खूब ।
सब पाकौं सिरि पाक है, दादू का महबूब ॥ ३ ॥

एक तत्त ता ऊपरि इतनी, तीनि लोक ब्रह्मंडा ।
धरती गगन पवन अरु पानी, सप्त दीप नौ खंडा ॥ ४ ॥

चंद सूर चौरासी लख, दिन अरु रैंणी, रचिले सप्त समंदा ।
सवा लाख मेर गिर पर्वत, अठार भार तीर्थ व्रत, ता ऊपर मंडा ।
चौदह लोक रहैं सब रचनां, दादू दास तास घरि बंदा ॥ ५ ॥

---

२—सारों के सिर=सर्वोपरि । राख्या=धारण किया ।

दृष्टान्त—*नेम लियो रजपूत इक, सब सिर होइ तिहिं सेउँ ।*
*नृप तज त्याग्यो पातशा, साहब से नहिं लेउँ ॥*

३—लालों=रत्नों में श्रेष्ठ रत्न । सिरखूब=सब श्रेष्ठताओं में श्रेष्ठ । सिर पाक=पवित्रताओं में परम पवित्र । महबूब=प्यारा मित्र ।

४-५—ये साखियें तुम किसके वन्दे हो ? इस प्रश्न के उत्तर में कही गईं हैं । एक तत्त=चेतन तत्व । नौ खंडा=नौखंड, १. उत्कल खंड, २. हिरण्यमय खंड, ३. भद्रश्व खंड-४. केतुमाल खंड । ५. इक्याबृत्त खंड ६. नाभिखंड, किमूपुरुष खंड ८. भरत खंड, ९. नरहरि खंड । तास घर बन्दा=ये सब रचना जिसके आश्रित है, दादूजी कहते हैं हम उसी घर के स्वामी के वन्दे=सेवक हैं ।

दादू जिनि यहु एती करि धरी, थंभ विन राखी ।
सो हम कौं क्यूं वीसरै, संत जन साखी ॥ ६ ॥
दादू जिन मुझ कौं पैदा किया, मेरा साहिब सोइ ।
मैं बंदा उस राम का, जिनि सिरज्या सब कोइ ॥ ७ ॥
दादू एक सगा संसार मैं, जिनि हम सिरजे सोइ ।
मनसा वाचा कर्मना, और न दूजा कोइ ॥ ८ ॥
जे था कंत कवीर का, सोई वर वरि हूं ।
मनसा वाचा कर्मना, मैं और न करि हूं ॥ ९ ॥
दादू सब का साहिब एक है, जाका परगट नांव ।
दादू सांई सोधि ले, ताकी मैं वलि जांव ॥ १० ॥
साचा सांई सोधि करि, साचा राखी भाव ।
दादू साचा नांव ले, साचे मारग आव ॥ ११ ॥
जामैं मरै से जीव है, रमता राम न होइ ।
जामण मरण थैं रहित है, मेरा साहिब सोइ ॥ १२ ॥

---

६—करि धरि=बनाई, व्यक्त की । थंभ विन=विना किसी अन्य स्थूल आश्रय के ।

९—वर वरिहूं = उसी स्वामी को मैं स्वीकार करूंगा ।

दृष्टान्त—नृप बूझी आमेर के, बायाँ को द्यौ व्याह ।
जो पत वर्‌यो कवीरजी, सो कर वियोनि चाह ॥

१०—सबका = नाना धर्म पंथ वालों का । सोधिले=तलाश करले ।

११—साचे मारग आव=आत्मपरिचय के सही रास्ते आ ।

१२—जीव=आभास सहित अंत:करण ।

उठै न बैसै एक रस, जागै सोवै नांहिं ।
मरै न जीवै जगत गुरु, सब उपजि खपै उस मांहिं ॥ १३ ॥

नां वहु जामै नां मरै, ना आवै गर्भवास ।
दादू ऊंधे मुख नहीं, नरक कुंड दस मास ॥ १४ ॥

कृतम नहीं सो ब्रह्म है, घटै बधै नहिं जाइ ।
पूरण निहचल एक रस, जगति न नाचे आइ ॥ १५ ॥

उपजै बिनसै गुण धरै, यहु माया का रूप ।
दादू देखत थिर नहीं, खिण छांहीं खिण धूप ॥ १६ ॥

जे नाहीं सो ऊपजै, है सो उपजै नांहिं ।
अलख आदि अनादि है, उपजै माया मांहिं ॥ १७ ॥

प्रश्न

जे यहु करता जीव था, संकट क्यूं आया ?
कर्मों के बसि क्यूं भया, क्यूं आप बंधाया ॥ १८ ॥

क्यूं सब जोनी जगत मैं, घर बार नचाया ।
क्यूं यह कर्ता जीव ह्वै, पर हाथि बिकाया ॥ १९ ॥

१३—उठै न बैसे = उत्थान जड़ता रहित । जागे सोवे नाहिं=जागृत सुषुप्ति से अनावृत । उपजि खपे=उत्पन्न विलय ।

१४—वहु=वह ।

१५—कृतम=रचित, गुण विकार मय । घटे बधे=क्षय वृद्धि रहित । नाचै=विशृङ्खलित ।

१७—जे नांहीं सो ऊपजे=जिसका नाश है विलय है वह ऊपजे=पैदा होता है, व्यक्त होता है । उपजे माया मांहि=जो कुछ दृश्य जगत दिखाई दे रहा है, वह सब मायाजन्य है ।

उत्तर—जीव लक्ष।

दादू कृतम काल बसि, बंध्या गुण मांहीं।
उपजै विनसै देखतां, यहु कर्ता नांहीं ॥ २० ॥
जाती नूर अल्लाह का, सिफाती अरवाह।
सिफाती सिजदा करै, जाती बेपरवाह ॥ २१ ॥
परम तेज परापरं, परम जोती परमेसुरं।
सुयं ब्रह्म सदई सदा, दादू अविचल अस्थिरं ॥ २२ ॥
अविनासी साहिब सति है, जे उपजै विनसै नांहिं।
जेता कहिये काल मुख, सो साहिब किस मांहिं ॥ २३ ॥
सांई मेरा सति है, निरंजन निराकार।
दादू विनसै देखतां, झूठा सब आकार ॥२४ ॥
राम रटणि छाडै नहीं, हरि लै लागा जाइ।
बीचैं ही अटकै नहीं, कला कोटि दिखलाइ ॥ २५ ॥

---

२०—कृतम=कृत्रिम। गुण=सुख दुःखादि, काम क्रोधादि।

२१—भावार्थ—अल्लाह माया अविद्या रहित शुद्ध ब्रह्म का नूररूप जाति=पूज्य है। अरवाह=अविद्या आवृत जीव, सिफाती=पूजक है। सिफाती=पूजक, सिजदा करै=पूजा करै। जाती=पूज्य, बेपरवाह है अर्थात् शुद्ध ब्रह्म स्वतंत्र है, अविद्याग्रहीत जीव परतन्त्र है।

दृष्टान्त—*गये एलची ओर के, और पातशा पास।*
*कर बैठे इक सारिखे, लखे नृपत अरु दास ॥*

२२—सुयं=स्वयं, आप। सदई=सत्य रूप। अविचल=अक्रिय। अस्थिरं=स्थिर, निश्चल।

२३—अविनाशी=कालातीत। जेता कहिये काल मुख=जो विनाशी हैं वे कर्ता नहीं कहे जा सकते।

२४—निरंजन=मायारहित। सब आकार=नाम रूपवाली सब वस्तुयें।

२५—राम रटण=नाम चिन्तन। लै=लय वृत्ति में लगा हुआ। कला कोटि दिखलाइ=माया

उरैं ही अटकै नहीं, जहां राम तहं जाइ।
दादू पावै परम सुख, विलसै वस्तु अघाइ॥ २६॥
दादू उरैं ही उरझे घणे, मूये गल दे पास।
अैन अंग जहं आप था, तहां गये निज दास॥ २७॥

जगत भुलावन

सेवा का सुख प्रेमरस, सेज सुहाग न देइ।
दादू बाहै दास कौं, कह दूजा सब लेइ॥ २८॥
पर पुरुषा सब परिहरैं, सुन्दर देखै जाग।
अपणा पीव पिछान करि, दादू रहिये लाग॥ २९॥
आन पुरुष हूँ वहनड़ी, परम पुरुष भर्तार।
हूँ अबला समझों नहीं, तूं जानैं कर्तार॥ ३०॥

पतिपहचान

लोहा माटी मिलि रह्या, दिन दिन काई खाइ।
दादू पारस राम बिन, कतहूं गया बिलाइ॥ ३१॥

---

के पदार्थ चाहे जितना आकर्षण करें उनकी आसक्ति में प्रवृत्त न हो।

दृष्टान्त—चल्यो मिले मग ओर, पीर तिये कर ईस सब।
तज पहुंच्यो निज ठौर, .........................

२६—उरैं ही=सांसारिक भोगों में ही। विलसै=भोगे। अघाइ=परिपूर्ण हो।

२७—उरैं ही=संसार के विषय भोगों में ही। गल दे पास=अपने ही हाथों गले में विषय भोगों का फन्दा डाल। एन=स्वयं।

२८—सेज सुहाग न देइ=हृदय में अपनी स्थिति रूप सौभाग्य प्रदान न कर। बाहै=बहकावे, भ्रमित करे। कह दूजा सब लेइ = नाना प्रकार के मायिक पदार्थों की चाह जगाकर।

३१—लोहा = मानव जीवन। माटी मिल रह्या=विषय भोग में विनष्ट हो रहा है। पारस राम बिन = आत्म परिचय रूप पारस के बिना।

लोहा पारस परसि करि, पलटै अपना अंग ।
दादू कंचन ह्वै रहै, अपने सांई संग ॥ ३२ ॥

दादू जिहिं परसें पलटै प्राणिया, सोई निज करि लेह ।
लोहा कंचन ह्वै गया, पारस का गुण येह ॥ ३३ ॥

परचै जिज्ञासा उपदेश

दह दिसि फिरै सो मन है, आवै जाइ सो पवन ।
राखणहारा प्राण है, देखणहारा ब्रह्म ॥ ३४ ॥

इति पीव पिछाण कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २० ॥

---

३२—परसैं = मिलै । पलटै=बदले । निज करि लेह=अपना लक्ष्य करले ।

३४—दह दिसि फिरै=अनवरत भ्रमित रहे । आवै जाइ=गति युक्त हो । राखण हारा=जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति में रक्षा करने वाला । देखण हारा=साक्षी चेतन ( जीव )

❀ इति पीव पिछाण को अंग सम्पूर्ण ❀
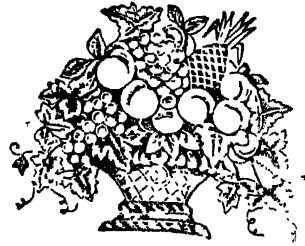
# अथ समर्थाई को अङ्ग ॥ २१ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू कर्ता करै तो निमष मैं, कीड़ी कुंजर होइ ।
कुंजर थैं कीड़ी करै, मेटि सकै नहिं कोइ ॥ २ ॥
दादू कर्ता करै तो निमष मैं, राई मेरु समान ।
मेरु कौं राई करै, तो को मेटै फुरमान ॥ ३ ॥
दादू कर्ता करै तो निमष मैं, जल माँहैं थल थाप ।
थल माँहैं जलहर करै, ऐसा समर्थ आप ॥ ४ ॥
दादू कर्ता करै तो निमख मैं, ठाली भरै भंडार ।
भरिया गहि ठाली करै, ऐसा सिरजनहार ॥ ५ ॥

---

२—निमष=पल में ।

दृष्टान्त—*मैरु साह को नाम हो, राई दासी भौन ।*
*विषो पड़्यो वान्दी वदी, साह गयो करि गौन ॥*

३—को मेटै फुरमान=उसकी आज्ञा को कौन मेट सकता है ।

४—थलथाप=भूमि की स्थापना करदे । जलहर=समुद्र ।

दृष्टान्त—*वणजारे के संग मे, सन्त हँसे दोय ठौर ।*
*पूछी अचरज सब कह्यो, उत जल थल इत ओर ॥*

५—ठाली=रीते, खाली ।

दृष्टान्त—*पार्वती शिव सों कह्यो, या निर्धन धन देहु ।*
*सेठ सुनत साठो कर्‌यो, तब गृह दे मम लेहु ॥*

दृष्टान्त २—*फौज सीख दई पातशा, द्रव्य पेश तां ढोइ ।*
*बूझ्यो को तुम ले चले, थैली गहि दो दोइ ॥*
*एक पातशा के चले, ऊँट चतुर्दश सहस ।*
*तऊ ववरची ना चले, समय श्वान मुख ग्रंश ॥*

दादू धरती कौं अंबर करै, अंबर धरती होइ।
निस अंधियारी दिन करै, दिन कौं रजनी सोइ ॥ ६ ॥

मृतक काढि मसाण थैं, कहु कौन चलावै।
अविगत गति नहिं जाणिये, जगि आणि दिखावै ॥ ७ ॥

दादू गुप्त गुण परगट करै, परगट गुप्त समाइ।
पलक मांहिं भानै घड़ै, ताकी लखी न जाइ ॥ ८ ॥

पोष पाल रचक

दादू सोई सही साबित हुवा, जा मस्तकि कर देइ।
गरीब निवाजै देखतां, हरि अपणा करि लेइ ॥ ९ ॥

सूक्ष्म मार्ग

दादू सब ही मारग सांइयां, आगैं एक मुकाम।
सोई सनमुख करि लिया, जाही सेती काम ॥ १० ॥

पोष प्रतिपाल रचक

मीरां मुझ सौं मिहर करि, सिर पर दीया हाथ।
दादू कलिजुग क्या करै, सांई मेरा साथ ॥ ११ ॥

---

६—अंबर—आसमान। निस अंधियारी=काली रात को।

७—काढि=निकाल। अविगत गति=उस बिना विवरण वाले की गति को।

८— गुप्त=छिपे हुये।

९—सोई सही साबित हुआ=वही सकल परिपूर्ण कामना वाला हो जाता है। निवाजै=कृपा करे, पाले, प्रसन्न होवे।

१०—सब ही मार्ग=साधना के योगादि सभी रास्ते।

इश्वर समर्थाई

दादू समरथ सब विधि सांइयां, ताकी मैं बलि जांउं।
अंतर एक जु सो बसै, औरां चित्त न लांउं॥ १२॥
दादू मारग मेहर का, सुखी सहज सौं जाइ।
भौ सागर थैं काढ़ि करि, अपणै लिये बुलाइ॥ १३॥
दादू जे हम चितवैं, सौ कछू न होवै आइ।
सोई कर्ता सति है, कुछ औरै करि जाइ॥ १४॥
एकूं लेइ बुलाइ करि, एकूं देइ पठाइ।
दादू अद्भुत साहिबी, क्यौं ही लखी न जाइ॥ १५॥
ज्यूं राखै त्यूं रहैंगे, अपणै बलि नांहीं।
सबै तुम्हारै हाथि है, भाजि कत जाहीं॥ १६॥
दादू डोरी हरि कै हाथि है, गल मांहै मेरै।
बाजीगर का बांदरा, भावै तहां फेरै॥ १७॥

१२—औरां चित्त न लांउं=और जो संसार के अनित्य पदार्थ हैं उनको चित्त में स्थान नहीं देता।

दृष्टान्त—*एक पातसा को मिली, फरद च्यार उपदेश।*
*भाग अकल माया बड़ी, समर्थता क्या नेश॥*

१३—मारग मिहर का=उसकी दया का मार्ग मिलते ही। अपणै लिये बुलाइ=अपनी ओर लगे हुये को अपना लिया।

१४—चितवैं=विचारे, चाहे। औरै करि जाइ=जो कुछ और ही कर जाता है वही सच्चा कर्ता है।

१५—पूर्वार्ध-भावार्थ—एक को अपनी ओर प्रवृत्त कर अपने में मिला लेता है, एक को अपने पथ से हटा संसार के मायिक पदार्थों की ओर लगा देता है।

दादू धरती कौं अंबर करै, अंबर धरती होइ।
निस अंधियारी दिन करै, दिन कौं रजनी सोइ ॥ ६ ॥
मृतक काढि मसाण थैं, कहु कौन चलावै।
अविगत गति नहिं जाणिये, जगि आणि दिखावै ॥ ७ ॥
दादू गुप्त गुण परगट करै, परगट गुप्त समाइ।
पलक मांहिं भानै घड़ै, ताकी लखी न जाइ ॥ ८ ॥

पोष पाल रक्षक

दादू सोई सही साबित हुवा, जा मस्तकि कर देइ।
गरीब निवाजै देखतां, हरि अपणा करि लेइ ॥ ६ ॥

सूक्ष्म मार्ग

दादू सब ही मारग सांइयां, आगैं एक मुकाम।
सोई सनमुख करि लिया, जाही सेती काम ॥ १० ॥

पोष प्रतिपाल रक्षक

मीरां मुझ सौं मिहर करि, सिर पर दीया हाथ।
दादू कलिजुग क्या करै, सांई मेरा साथ ॥ ११ ॥

---

६—अंबर=आसमान। निस अंधियारी=काली रात को।

७—काढि=निकाल। अविगत गति=उस विना विवरण वाले की गति को।

८—गुप्त=छिपे हुये।

६—सोई सही साबित हुआ=वही सकल परिपूर्ण कामना वाला हो जाता है। निवाजै=कृपा करे, पाले, प्रसन्न होवे।

१०—सब ही मार्ग=साधना के योगादि सभी रास्ते।

इश्वर समर्थाई

दादू समरथ सब विधि सांइयां, ताकी मैं बलि जांउं।
अंतर एक जु सो बसै, औरां चित्त न लांउं॥ १२॥
दादू मारग मेहर का, सुखी सहज सौं जाइ।
भौ सागर थैं काढ़ि करि, अपणै लिये बुलाइ॥ १३॥
दादू जे हम चितवैं, सौ कछू न होवै आइ।
सोई कर्ता सति है, कुछ औरै करि जाइ॥ १४॥
एकूं लेइ बुलाइ करि, एकूं देइ पठाइ।
दादू अद्भुत साहिबी, क्यौं ही लखी न जाइ॥ १५॥
ज्यूं राखै त्यूं रहैंगे, अपणै बलि नांहीं।
सबै तुम्हारै हाथि है, भाजि कत जाहीं॥ १६॥
दादू डोरी हरि कै हाथि है, गल मांहै मेरै।
बाजीगर का बांदरा, भावै तहां फेरै॥ १७॥

---

१२—औरां चित्त न लांउं=और जो संसार के अनित्य पदार्थ हैं उनको चित्त में स्थान नहीं देता।

दृष्टान्त—*एक पातसा को मिली, फरद च्यार उपदेश।*
*भाग अकल माया बड़ी, समर्थता क्या नेश॥*

१३—मारग मिहर का=उसकी दया का मार्ग मिलते ही। अपणै लिये बुलाइ=अपनी ओर लगे हुये को अपना लिया।

१४—चितवैं=विचारे, चाहे। औरै करि जाइ=जो कुछ और ही कर जाता है वही सच्चा कर्ता है।

१५—पूर्वार्ध-भावार्थ—एक को अपनी ओर प्रवृत्त कर अपने में मिला लेता है, एक को अपने पथ से हटा संसार के मायिक पदार्थों की ओर लगा देता है।

ज्यूं राखै त्यूं रहैगें, मेरा क्या सारा।
हुक्मी सेवग राम का, वंदा बेचारा ॥ १८ ॥
साहिब राखै तौ रहै, काया मांहै जीव।
हुक्मी वंदा उठि चलै, जबहिं बुलावै पीव ॥ १९ ॥

पति पहिचान

खंड खंड परकास है, जहां तहां भरपूर।
दादू कर्ता करि रह्या, अनहद बाजैं तूर ॥ २० ॥

ईश्वर समर्थाई

दादू दादू कहत है, आपै सब घट मांहिं।
अपणी रुचि आपै कहै, दादू थैं कुछ नांहिं ॥ २१ ॥
हम थैं हुवा न होइगा, ना हम करणे जोग।
ज्यूं हरि भावै त्यूं करै, दादू कहैं सब लोग ॥ २२ ॥

पतिव्रत निहकाम

दादू दूजा क्यूं कहै, सिर परि साहेब एक।
सो हम कौं क्यूं वीसरै, जे जुग जाहिं अनेक ॥ २३ ॥

---

१८—हुक्मी = आज्ञा में चलने वाला। वंदा = सेवक।

२०—खंड खंड = नौ खंडों में। परकास है=उसकी ही ज्योति है। तूर=शब्द।

२१—इस साखी का सम्बन्ध है कि करौली में दादूजी महाराज पधारे तब दादूजी महाराज ने राम जप का उपदेश दिया, उधर परमेश्वर की प्रेरणा से लोग दादू-२ करने लगे। उसी भावना को इसमें व्यक्त किया है।

दृष्टान्त—*रामत करतां बालकां, दादू दादू भाषि।*
*हरि प्रगट कियो भक्त को, सदन सवारे साषि॥*

२३—दूजा क्यूं कहै=आत्मचिंतन को त्याग और किसी में क्यों लगा जाय ? वीसरे=भूले

समर्थ साखीभूत

आप अकेला सब करै, औरौं के सिर देइ।
दादू सोभा दास कौं, अपना नांव न लेइ ॥ २४ ॥
आप अकेला सब करै, घट मैं लहरि उठाइ।
दादू सिरि दे जीव के, यौं न्यारा ह्वै जाइ ॥ २५ ॥

ईश्वर समर्थाई

ज्यूं यहु समझै त्यूं कहौ, यहु जीव अज्ञानी।
जेती बाबा तैं कही, इन एक न मानी ॥ २६ ॥
दादू पर्चा मांगै लोग सब, हम कौ कुछ दिखलाइ।
समरथ मेरा सांइयां, ज्यूं समझै त्यूं समझाइ ॥ २७ ॥
दादू तन मन लाइ करि, सेवा दिढ़ करि लेइ।
ऐसा समरथ राम है, जे मांगै सो देइ ॥ २८ ॥

समर्थ साखीभूत

समरथ सौ सेरी समझाइनैं, करि अणकरता होइ।
घटि घटि व्यापक पूरि सब, रहै निरन्तर सोइ ॥ २९ ॥

---

२५—घट में लहर उठाइ=मानव के हृदय में प्रेरणा पैदा करके।

२६—दृष्टान्त—*साहपुरे दादू गये, ले गयो साह तिलोक।*
*परचा की मन में रहे, चलत दिखाये दोक ॥*

२७—पर्चा=चमत्कार।

दृष्टान्त—*परचो मांग्यो रांगडे, साध उदक लइ जाट।*
*उडे छान अरु झूंपडे, गाव भयो ओचाट ॥*

२८—दृष्टान्त—*को पठांण गयै पीरपै, पुत्र दियो नहिं कोइ।*
*दयो फकीर लिख्यो नहीं, अब लिख ल्यो दे दोइ ॥*

२९—सेरी=रास्ता। समझाइनैं=समझाइये। अणकरता=निर्लिप्त।

रहै नियारा सब करै काहू लिप्त न होइ ।
आदि अंत भानै घड़ै, ऐसा समरथ सोइ ॥ ३० ॥

कर्ता साखीभूत

सुरम नहीं सब कुछ करै, यौं कल धरी बणाइ ।
कौतिगहारा ह्वै रह्या, सब कुछ होता जाइ ॥ ३१ ॥
लिपै छिपै नहिं सब करै, गुण नहिं व्यापै कोइ ।
दादू निहचल एकरस, सहजैं सब कुछ होइ ॥ ३२ ॥
बिन गुण व्यापे सब किया, समरथ आपै आप ।
निराकार न्यारा रहै, दादू पुन्य न पाप ॥ ३३ ॥

ईश्वर समर्थाई

समिता के घरि सहज मैं, दादू दुविध्या नांहिं ।
सांई समरथ सब किया, समझि देखि मन मांहिं ॥ ३४ ॥
पैदा कीया घाट घड़ि, आपै आप उपाइ ।
हिकमत हुनर कारीगरी, दादू लखी न जाइ ॥ ३५ ॥
जंत्र बजाया साजि करि, कारीगर करतार ।
पंचौं का रस नाद है, दादू बोलणहार ॥ ३६ ॥

---

३१—सुरम=श्रम, थकावट । कलि=त्रिगुणात्मक प्रकृतिरूप कल ।

३२—लिपै=लिप्त न हो । सब करै=सब का प्रतीति कराने वाला, जिसके आश्रय ही सबकी अभिव्यक्ति है ।

३३—विन गुण = सत्वादि गुण विना । व्यापे = सब में समाया रहे ।

३४—दृष्टान्त—*मूसे साहब सों कही, आलम सम करि देहु ।*
*घर ढह गयो मिल्यो नहीं, चुण ले धन क्या लेहु ॥*

३६—जंत्र बजाया साजि करि=पंचभूतात्मक जड़पदार्थों से शरीररूपी यंत्र बना उसको बोलने वाला बनाया । पंचों का रस नाद है=भूतोत्पत्ति में पंच भूतों में प्रथम आकाश है ।

**पंच ऊपना सबद थैं, सबद पंच सौं होइ।**
**सांई मेरे सब किया, बूझै बिरला कोइ ॥ ३७ ॥**
**है, तौ रती, नहीं, तौ नाहीं, सब कुछ उतपति होइ।**
**हुक्मैं हाजिर सब किया, बूझै बिरला कोइ ॥ ३८ ॥**
**नहीं तहां थैं सब किया, आपै आप उपाइ।**
**निज तत न्यारा ना किया, दूजा आवै जाइ ॥ ३६ ॥**
**नहीं तहा थैं सब किया, फिर नांहीं ह्वै जाइ।**
**दादू नांहीं होइ रहु, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ ४० ॥**
**दादू खालिक खेलै खेल करि, बूझै बिरला कोइ।**
**लेकरि सुखिया ना भया, देकरि सुखिया होइ ॥ ४१ ॥**
**देवे की सब भूख है, लेवे की कुछ नांहिं।**
**सांई मेरे सब किया, समझि देखि मन मांहिं ॥ ४२ ॥**

---

३७—पंच ऊपना=पंचभूत व्यक्त हुये। सबद थैं=आकाश से। सबद पंच सों होइ=पंचीकृत पंच तत्वों से ही आकाश उत्पन्न होता है।

३८—है तो रती=अस्तित्व है तो उसी का है। हुकमैं=संकल्प मात्र से, आज्ञा से ही।

दृष्टान्त—*देख पातसा दक्षिण दिश, फेरचो मूंछन हाथ।*
*लखि भंगी डेरा तणौ, सब ताणो तिहि साथ॥*
*वाल समदपुर चोधरी, अजब दलै सुत दीन्ह।*
*तिमि गुरु दादूजी कही, धर्म मंडो रहै चीन्ह॥*

३६—निज तत्त न्यारा ना किया=दृश्यमान सब पदार्थों से आप न्यारा है उसको किसी ने किया नहीं है।

४०—नहीं=जिसको किसी ने किया नहीं, जो किया हुवा नहीं। तहां थैं सब किया=वहीं से उसी के आश्रय सब कुछ होता है।

४१—खालिक=खलक-संसार का मालिक।

४२—भूख है=इच्छा है। लेवे की कुछ नांहिं=लेने जैसी किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है।

दादू जे साहिब सिरजै नहीं, तौ आपै क्यूं करि होइ।
जे आपै ही ऊपजै, तो मरि करि जीवै कोइ॥ ४३॥

करतूत कर्म

कर्म फिरावै जीव कौ, कर्मों कौ करतार।
करतार कौ कोई नहीं दादू फेरनहार॥ ४४॥

इति समर्थाई को अङ्ग सम्पूर्ण॥ २१॥

## अथ सबद को अंग॥ २२॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवतः।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः॥ १॥
दादू सबदैं बंध्या सब रहै, सबदैं ही सबै जाइ।
सबदैं ही सब ऊपजै, सबदैं सब समाइ॥ २॥

---

४४—भावार्थ—कर्मानुबन्ध से जीव अविद्या प्रेरित फिरता प्रतीत होता हैं, कर्मों को परिवर्तित वह व्यापक सृष्ट कर सकता है। स्रष्टा से आगे और कोई शक्ति नहीं है जो उसको भी परिवर्तित कर सके।

❀ समर्थाई को अंग समाप्त ❀

२—४—इन चार साखियों में आत्माबोधक गुरु उपदेशशब्दों की महिमा कही है। यदि गुरु उपदेश के शब्द धारण कर अन्तःकरण बुद्धि वृत्ति को शब्द के आधार से स्थिर कर हृदयाकाश में विलीन करले तो इन साखियों में कही स्थिति की पूर्ति होती है।

२—सब ऊपजै=सब भौतिक सामग्री की उत्पत्ति-अभिव्यक्ति आकाश में हैं, विलय भी सबका आकाश में होता है।

दादू सबदैं ही सचु पाइये, सबदैं ही संतोष।
सबदैं ही सुथिर भया, सबदैं भागा सोक॥ ३॥

दादू सबदैं ही सुखिम भया, सबदैं सहज समान।
सबदैं ही निर्गुण मिलै, सबदैं निर्मल ज्ञान॥ ४॥

दादू सबदैं ही मुक्ता भया, सबदैं समझै प्राण।
सबदैं ही सूझै सबै, सबदैं सुरझै जाण॥ ५॥

सृष्टि क्रम

दादू ओंकार थैं ऊपजै, अरस परस संजोग।
अंकुर द्वै पाप पुण्य, इहि विधि जोग रु भोग॥ ६॥

ओंकार थैं ऊपजै, बिनसै बहुत विकार।
भाव भगति लै थिर रहै, दादू आत्मसार॥ ७॥

---

३—दृष्टान्त—*सतसंगी तिय पुरुष द्वै, पुत्र मुवो पति नाँहिं।*
*पति आयो कहि सुक्ति सो, वस्तु पराई माँहि॥*

४—सबदैं ही सुखिम भया=नामचिन्तन साधना द्वारा वृत्ति स्थिर कर वृत्ति का विलय कर सूक्ष्म में मिलता है। सहज=निर्द्वन्द्व।

५—मुक्ता भया=संसार के बन्धन से रहित। शब्दैं ही सूझै सबै=गुरु उपदेश शब्द द्वारा ही सत्य मिथ्या सब सूझने लगता है।

६—पूर्वार्ध—प्रणव ध्यान से वृत्ति स्थिर कर समाधिस्थ दशा में पहुँच एकत्वभाव को प्राप्त किया जाता है। उत्तरार्ध—द्विविध जोग भोग रूप बीज से द्विविध पाप-पुण्य रूप अंकुर उत्पन्न होते हैं।

७—प्रणव जप की साधना से समाधि दशा तक पहुंच भाव-भक्ति से-लय वृत्ति से आत्म स्वरूप में स्थिर हो सब विकार से छुटकारा पा आत्म तत्व की प्राप्ति होती है।

पहली कीया आप थैं, उतपति ओंकार।
ओंकार थैं ऊपजे, पंच तत्त आकार ॥ ८ ॥
पंच तत्त थैं घट भया, बहु बिधि सब बिस्तार।
दादू घट थैं उपजै, मैं तैं बरण विचार ॥ ९ ॥
एक सबद सब कुछ किया, ऐसा समरथ सोइ।
आगै पीछै तौ करै, जे बल हीणा होइ ॥ १० ॥
निरंजन निराकार है, ओंकार आकार।
दादू सब रंग रूप सब, सब बिधि सब विस्तार ॥ ११ ॥
आदि सबद ओंकार है, बोलै सब घट मांहिं।
दादू माया विस्तरी, परम तत्त यहु नांहिं ॥ १२ ॥

ईश्वर समर्थाई

एक सबद सौं ऊनवै, वर्षन लागै आइ।
एक सबद सौं बीखरै, आप आप कौं जाइ ॥ १३ ॥
दादू साधु सबद सौं मिलि रहै, मन राखै विलमाइ।
साधु सबद बिन क्यूं रहै, तबहीं बीखरि जाइ ॥ १४ ॥

---

८—९—इन दो साखियों में प्रकृति तथा प्रकृति-जन्य स्थूल प्रपंच रूप कार्य का वर्णन किया है।

८—आपथैं=अपने आधार से। ओंकार=त्रिगुणात्मक प्रकृति रूप, त्रिवर्णात्मक प्रणव शब्द। पंचतत आकार=पंचभूत।

१०—यह साषी अकबर के इस प्रश्न पर कि:-पहिले आसमान हुआ या जमीन-कही गई है। एक शब्द=शून्य, प्रकृति, प्रणव ये सब एक शब्द से गृहीत हैं। नाद विंदु द्विविध सृष्टि मानी गई है, नाद सृष्टि का मूल प्रणव है। प्रणव शब्द जगत् मूल है ब्रह्म का भी वह वाचक है।

दृष्टान्त - अकबर बूझी बात बहु, गुरु दादू ढिग आइ।
सृष्टि हुई कैसे कहो, तब या साषी समझाइ ॥

१४—शब्द सों मिल रहे=साधक नाम चिन्तन प्रणवशब्द सौं मिल मन को उसमें

दादू सबद जरै सो मिलि रहै, एक रस पूरा ।
काइर भाजै जीव ले, पग मांडे सूरा ॥ १५ ॥
सबद विचारै करणी करै, राम नाम निज हिरदै धरै ।
काया मांहैं सोधै सार, दादू कहै लहै सो पार ॥ १६ ॥
दादू काहे कौड़ी खरचिये, जे पैकै सीझै काम ।
सबदौं कारज सिध भया, तौ सुरम न दीजै राम ॥ १७ ॥
दादू राम रिदै रस भेलि करि, को साधू सबद सुणाइ ।
जाणौ कर दीपक दिया, भरम तिमर सब जाइ ॥ १८ ॥
दादू वाणी प्रेम की, कंवल बिगासै होइ ।
साधु सबद माता कहै, तिन सबदौं मोह्या मोहि ॥१९॥

---

लगाये रखते हैं । तब ही बीखरजाइ=यदि वृत्ति को नाम चिन्तन का अवलम्बन न हो तो वह पुनः मन के संकल्प से प्रेरित विविध वासनाओं में फैल जाती है ।

१५—सबद जरै=शब्द में वृत्ति को तद्रूप करले । काइर=विषयी । मांडै=रोपे । सूरा= दृढ़ साधक ।

१६—शब्द विचारै=गुरु उपदेश के शब्द का श्रवण मनन करे । करणी करै=तदनुरूप साधना में लगे । काया माहैं=शुद्ध अन्तःकरण में । सोधे सार=मूल तत्व प्राप्त करे ।

१७—जे पै के सीझै काम=बिना पाई खर्चे कार्य सिद्ध हो । सुरम=श्रम, तकलीफ ।

दृष्टान्त—*साधो पूछी हे गुरो, अकबर अति हि कराल ।*
*तन परचा मांगे नहीं, तुमन दिये ततकाल ॥*

१८—पूर्वार्ध—अपने हृदय में रामरस की अनुभूति कर कोई महात्मा पुरुष ही आत्मबोध के शब्द सुनाते हैं ।

१९—वाणी प्रेम की=असर करने वाली स्नेह की वाणी । कंवल बिगासे होइ=हृदय कमल आत्मानुभूति होने पर प्रफुल्लित होती है । साध सबद माता कहे=आत्मानुभूति में मस्त हुवा जब साधु पुरुष सबद कहता है=उपदेश वाक्य सुनाता है । तिन शब्दों मोह्या मोहि=उन शब्दों ने मुझे मोह लिया ।

दादू हरि भुरकी वाणी साधु की, सो परियौ मेरे सीस।
छूटै माया मोह थैं, प्रेम भजन जगदीस॥ २०॥
दादू भुरकी राम है, सबद कहै गुरु ज्ञान।
तिन सबदौं मन मोहिया उन मन लागा ध्यान॥ २१॥
सबदौं मांहे राम धन, जे कोइ लेइ विचारि।
दादू इस संसार मैं, कबहूं न आवै हारि॥ २२॥
दादू राम रसाइन भरि धरऱ्या, साधन सब मंझारि।
कोइ पारिख पीवै प्रीति सौं, समझै सबद विचारि॥ २३॥
सबद सरोवर सूभर भरऱ्या, हरिजल निर्मल नीर।
दादू पीवै प्रीति सौं, तिन के अखिल सरीर॥ २४॥
सबदौं मांहैं राम रस, साधौ भरि दीया।
आदि अंत सब संत मिलि, यौं दादू पीया॥ २५॥

गुरुमुख कसौटी

कारिज को सीझै नहीं, मीठा बोलै वीर।
दादू साँचे सबद बिन, कटै न तन की पीर॥ ३६॥

---

२०—भुरकी=सिद्धिकारक चुटकी।

२१—शब्द कहै गुरु ज्ञान=गुरु के उपदेशमय शब्द हैं वे हो सत्यज्ञान के बताने वाले है।

२२—शब्दों मांहै=गुरु उपदेश के वाक्यों में।

२३—पूर्वार्द्ध—स धुजन जो लक्ष्य प्राप्ति कर चुके उन्हीं के शब्दों में रामरूपी रसायन जन्म मृत्यु भय निवारक भरा हुआ है। पारिख=परीक्षक, साधक जिज्ञासु।

२४—भावार्थ—अनुभव शब्द सरोवर हरिनामरूपी जल से लबालब भरा है, जो निष्काम स्नेह से आसक्ति रहित प्रेम से उसका पान करते हैं उनके शरीर उस समष्टि में समा जाते हैं।

२६—भावार्थ—सांसारिक वासना के समर्थक एकपक्षीय धर्मोपदेश वाले मीठे शब्दों से

सबद

दादू गुण तजि निर्गुण बोलिये, तेता बोल अबोल।
गुण गहि आपा बोलिये, तेता कहिये बोल ॥ २७ ॥
साचा सबद कबीर का, मीठा लागै मोहिं।
दादू सुनतां परम सुख, केता आनंद होइ ॥ २८ ॥
इति सबद कौ अंग संपूर्ण ॥ २२ ॥

---

# अथ जीवत मृतक को अंग ॥ २३ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवतः।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
धरती मत आकास का, चंद सूर का लेइ।
दादू पानी पवन का, राम नाम कहि देइ ॥ २ ॥

---

किसी यथार्थ कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती, विना अनुभूत सत्य शब्दोपदेश के तन की कालमय पीड़ा निवृत्त नहीं हो सकती।

२७—भावार्थ—गुण व अहकार तथा पक्ष का त्याग कर निर्गुण आत्मा के समर्थक वचन हैं वे ही न चुभने वाले, न खटकने वाले, न किसी बन्ध तथा सुख दुःख के देने वाले होते हैं। गुण, अहंकार, सपक्षता को लेकर कहे जाने वाले बोल हैं, वे ही चुभनेवाले सुख दुःख के बोधक बनते हैं।

❀ शब्द का अंग समाप्त ❀

---

२—भावार्थ—धरती, आकाश, चन्द, सूर, पानी, पवन इनके गुण क्षमा, निर्लेपता, शीतलता, तेजस्विता, निर्मलता और अनासक्ति को धारण कर साधक नाम चिन्तन में लगे।

दादू धरती ह्वै रहै, तजि कूड़ कपट अहंकार ।
सांई कारण सिरि सहै, ताकौं परतखि सिरजनहार ॥ ३ ॥
जीवत माटी मिलि रहै, सांई सनमुख होइ ।
दादू पहली मरि रहै, पीछै तौ सब कोइ ॥ ४ ॥

दीनता गरीबी

आपा गर्व गुमान तजि, मद मच्छर अहंकार ।
गहै गरीबी वंदगी, सेवा सिरजनहार ॥ ५ ॥
मद मच्छर आपा नहीं, कैसा गर्व गुमान ।
सुपिनै ही समझै नहीं, दादू क्या अभिमान ॥ ६ ॥
झूठा गर्व गुमान तजि, तजि आपा अभिमान ।
दादू दीन गरीब ह्वै, पाया पद निर्वाण ॥ ७ ॥

जीवत मृतक

दादू भाव भगति दीनता अंग, प्रेम प्रीति सदा तिहि संग ॥८॥

---

३—धरती ह्वै रहै=धरती की तरह सहनशील हो । साँई कारण सिर सहै=आत्मा को प्राप्त करने के लिए साधन काल की सब कठिनाइयें सहर्ष सहन करे ।

दृष्टान्त—*हरिचन्द नृप मोरधज पुनः, इक भगत बेकाल ।*
*दई कसौटी अति घनी, प्रगट भए तत काल ॥*

४—माटी मिल रहै=मिट्टी की तरह सब तरह के आपे निकाल दे । पहिली मर रहे= साधन काल में ही अहंकार रहित हो वासना रहित हो ।

५—जाति, वर्ण, विद्या, रूप, बल, धन इन सबके अहंकार को छोड़ गरीबी=निरभिमानता ग्रहण कर आत्मप्राप्ति की साधना में लगे ।

८—भाव=श्रद्धा । भगति=परम प्रेम । दीनता=निरभिमानता ।

राव रंक सब मरहिंगे, जीवै नांहीं कोइ।
सोई कहिये जीवता, जे मरि जीवा होइ ॥ ९ ॥
दादू मेरा वैरी मैं मुवा, मुझै न मारै कोइ।
मैं ही मुझ कौं मारता, मैं मरजीवा होइ ॥ १० ॥
वैरी मारे मरि गये, चित थैं विसरे नांहिं।
दादू अजहूँ साल है, समझि देख मन मांहि ॥ ११ ॥

उभै असमाव

दादू तौ तूं पावै पीव कौं, जे जीवत मृतक होइ।
आप गंवाये पीव मिलै, जानत है सब कोइ ॥ १२ ॥
दादू तौ तूं पावै पीव कौं, आपा कछू न जान।
आपा जिस थैं ऊपजै, सोई सहज पिछान ॥ १३ ॥

---

९—रावरंक=राजा गरीब। मरि जीवा=अहंकार त्याग आत्म स्वरूप का परिचय प्राप्त करे।

१०—मेरा वैरी मैं मूवा=सबसे प्रबल शत्रु अपना अहंकार है वह मार लिया। मैं ही मुझको मारतां=अहंकार है वही जन्म मृत्यु का कारण है, अहंकार से राग द्वेष, राग द्वेष से पाप पुण्य, पाप पुण्य फलभोग के लिये जन्म मरण।

११—वैरी मारे मर गये=काम क्रोधादि षड् रिपु जीत लिये। चित थैं विसरे नाहीं=यदि उनके अन्तःकरण में अहंकार शेष है तो, अजहूँ साल है=वह अहंकार फिर भी दुःखदायी हो सकता है अतः उसका निवारण कर।

दृष्टान्त—*नृपति भानु परताप, नृपति हने बहु युद्ध में।*
*कपट मुनि अर ताप, छल कर नृप कुल सब हन्यो ॥*

१२—आप गँवाये=अहंकार त्यागे। पीव मिलै=आत्म परिचय हो।

१३—आपा जिस थैं ऊपजै=जिन सम्बन्धों, जाति धन रूप आदि से अहंकार आता है उनको समझकर दूर करिये।

दादू तौ तूं पावै पीव कौं, आपा कछू न जान।
मैं मेरा सहजैं गया, तब निर्मल दर्सन होइ ॥ १४ ॥
मैं ही मेरे पोट सिरि, मरिये ताके भार।
दादू गुरु परसाद सौं, सिर थैं धरी उतार ॥ १५ ॥
मेरे आगै मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाइ।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा जाइ ॥ १६ ॥

सूखिम मार्ग

दादू जीवत मृतक होइ करि, मारग माँहैं आव।
पहली सीस उतारि करि, पीछे धरिये पांव ॥ १७ ॥
दादू मारग साधु का, खरा दुहेला जाण।
जीवत मृतक ह्वै चलै, राम नाम नीसाण ॥ १८ ॥
दादू मारग कठिन है, जीवत चलै न कोइ।
सोई चले है बापुरा, जे जीवत मृतक होइ ॥ १९ ॥

---

दृष्टान्त—*वधिक धनुष सर म्है।ल धर, जल ढिग पींवण जात।*
*रिष सुत कर गहि सांधियो, लड़ें सीत कहि बात ॥*

१४—मैं मेरा सब खोई=अहंकार और ममत्व का अध्यास दूर कर।

१५—मैं ही मेरे पोट सिरि = अपना अहंकार ही नाना प्रकार के दुःखों की पोट सिर पर लेने का कारण है। गुरु परसाद=सद्गुरु के उपदेश से।

१६—मेरे आगे मैं खड़ा=अपने अन्तःकरण में चिदाभास के आड़ा अपना अहंकार आया हुआ है।

१७—जीवत्त मृतक=अभिमान रहित हो। मारग मांहैं=आत्मपरिचयप्राप्ति के रास्ते पर आव।

१८—खरा दुहेला जाण=सही और कठिन है। नीसाण=लक्ष्यपर।

१९—बापुरा=वपुधारी, शरीर वाला।

मृतक होवै सो चलै, निरंजन की बाट।
दादू पावै पीव कौं, लंघे औघट घाट॥ २०॥

जीवत मृतक

दादू मृतक तबहीं जाणिये, जब गुण इंन्द्रिय नांहिं।
जब मन आपा मिटि गया, तब ब्रह्म समाना मांहिं॥२१॥
दादू जीवत हीं मरि जाइये, मरि मांहै मिलि जाइ।
सांई का संग छाडि करि, कौण सहै दुख आइ॥ २२॥

उभै असमाव

दादू आपा कहा दिखाइये, जे कुछ आपा होइ।
यहु तो जाता देखिये, रहता चीन्हौं सोइ॥ २३॥
दादू आप छिपाइये, जहां न देखै कोइ।
पिव कौं देखि दिखाइये, त्यौं त्यौं आनंद होइ॥ २४॥

---

न की बाट=निर्द्वन्द्व परमात्मा के मार्ग पर। लंघै औघट घाट=रज तममय न्य ऊबड़ खाबड़ घाट को पार कर जाय।

इन्द्रिय नांहि=अन्तःकरण के सुख दुःखादि धर्म, रज तम की चांचल्य जड़ता धर्म तथा इन्द्रियों के रूप रसादि गुण न रहैं।

ा—*लेन परीक्षा कारणैं, तपसी के ढिग जाइ।*
*राख पुसेरी आग लगि, मार दई यह पाइ॥*

ांहैं मिल जाय=अहंकार वासना अध्यास को त्याग निष्क्रिय अन्तःकरण तथा ो उसी लक्ष्य चेतन में विलीन करदे।

: आपा होइ=यदि सचमुच ही कोई ऐसी चीज हो जो सर्वदा बनी रहे उसका र भी किया जाय तो ठीक। हम जिन जाति, कुल, रूप, विद्या, धन, बल, ा अभिमान करते हैं वे तो स्वयं सब खतम होने वाले हैं, इनका अहंकार क्या जाय।

—अपने आपे को ऐसा त्यागिये, दूर करिये, छिपाइये कि फिर वह कभी दिखाई

आपा निर्दोष

दादू अंतर गति आपा नहीं, मुख सौं मैं तैं होइ ।
दादू दोस न दीजिये, यौं मिलि खेलैं दोइ ॥ २५ ॥
जे जन आपा मेटि करि, रहैं राम ल्यौ लाइ ।
दादू सब ही देखतां, साहिब सौं मिलि जाइ ॥ २६ ॥

दीनता गरीबी

गरीब गरीबी गहि रह्या, मसकीनी मसकीन ।
दादू आपा मेटि करि, होइ रह्या लै लीन ॥ २७॥

उभै असमाव

मैं हौं मेरी जब लगै, तब लग विलसै खाइ ।
मैं नाहीं मेरी मिटै, तब दादू निकटि न जाइ ॥ २८ ॥
दादू मना मनी सब ले रहे, मनी न मेटी जाइ ।
मना मनी जब मिटि गई, तबही मिलै खुदाइ ॥ २९ ॥

---

न दे सके । अथवा अपने स्वरूप को अन्तःकरण में गोपनीय करिये जहां और वासना अहंकारादि फटक तक न सकें ।

२५—पूर्वार्ध—शरीर के रहते हुये मैं तैं के व्यवहार को देख आपा न समझना । साधक की अन्तरगति अन्तःकरण वृत्ति में आपा नहीं रहना चाहिये ।

२७—यह साखी, कहते हैं मानसिंह महाराज के प्रश्नोत्तर में कही गई है । उन्होंने गरीबदासजी, मसकीन दास जी के विषय में प्रश्न किया तब इस साखी से उत्तर दिया गया बताते हैं ।

२८—पूर्वार्ध—जबतक अहंकार है अध्यास है तब तक विषयभोग में वृत्ति रहती है । अहंकार की निवृत्ति हो जाने पर फिर विषयवासना के समीप नही जाता ।

२९—मनामनी' सब ले रहे=वासना तथा अहंकार सब लिये हुये हैं । मनी=अहंकार ।

दृष्टान्त—*बंदों के दरसण गयो, महमद मनी फकीर ।*
*प्रत्यख लखै मार्ग नहीं, व्हाल करी क्यों पीर ॥*

दादू मैं मैं जालि दे, मेरे लागौ आगि।
मैं मैं मेरा दूरि करि, साहिब के संगि लागि॥ ३०॥

मन मुखी (यथेष्ट) मान

दादू खोई आपणी, लज्जा कुल की कार।
मान बड़ाई पति गई, तब सनमुख सिरजनहार॥ ३१॥

उभै असमाव

दादू मैं नाहीं तब एक है, मैं आई तब दोइ।
मैं तैं पड़दा मिटि गया, तब ज्यौं था त्यौं ही होइ॥ ३२॥

परचै करुणा विनती

नूर सरीषा करि लिया, वंदा का वंदा।
दादू दूजा को नहीं, मुझ सरीषा गंदा॥ ३३॥

जीवत मृतक

दादू सीख्यूं प्रेम न पाइये, सीख्यूं प्रीति न होइ।
सीख्यूं दर्द न ऊपजै, जब लग आप न खोइ॥ ३४॥

---

३०—मैं मैं=वासना और अहंकार।

३१—दादू खोइ आपणी=अपना मन खतम कर दिया। लज्जा कुल की कार=जाति वर्ण-कुलाभिमान त्यागा।

दृष्टान्त—*तुम संगति में बहु करी, रहस्य लियो नहिं जाइ।*
*मूंड मुंडा खर पर चढ्यो, मैं पुनि करी उपाइ॥*

३२—मैं आई=अहंकार आया। तब दोइ=तब भेदवृत्ति द्वैतभावना होती है।

३३—वंदों का वंदा=परमात्मा के साधकों का सेवक।

३४—सीख्यूं=केवल सीख से, कहने से। जब लग आप न खोई=जब तक सब तरह का अभिमान नष्ट न हो जाय।

कहिबा सुणिबा गत भया, आपा पर का नास ।
दादू मैं तैं मिटि गया, पूरण ब्रह्म परकास ॥ ३५ ॥
दादू सांई कारण मांस का, लोही पानी होइ ।
सूकै आटा अस्थि का, दादू पावै सोइ ॥ ३६ ॥
तन मन मैदा पीसि करि, छांणि छांणि ल्यौ लाइ ।
यौं बिन दादू जीव का, कबहूँ साल न जाइ ॥ ३७ ॥
पीसे ऊपरि पीसिये, छांणे ऊपरि छांणि ।
तौ आतम कण ऊबरै, दादू ऐसी जाणि ॥ ३८ ॥
पहली तन मन मारिये, इन का मर्दै मान ।
दादू काढ़ै जंत्र मैं, पीछै सहज समान ॥ ३९ ॥
काटे ऊपरि काटिये, दाधे कौं दौं लाइ ।
दादू नीर न सींचिये, तौ तरवर बधता जाइ ॥ ४० ॥

---

३५—गत भया =गतार्थ हुआ, सफल हुआ । आपा पर=अहंकार तथा भेदवृत्ति ।

३६—इस साखी में साधना की तीव्रतम अवस्था का निरूपण किया है ।

दृष्टान्त—*मैं कण ऋषि के जल भयो, नाच्यो शिव समझाइ ।*
*त्यूं रज्जब जू नै कही, गुरु आग्या इक पाइ ॥*

३७—भावार्थ—शरीर के अध्यास तथा मन के संकल्प वासना व अहंकार को सूक्ष्म से सूक्ष्म अंश तक मैदे की तरह निकाल दे, पुनः पुनः ध्यान देकर छांण छांण कर अन्तःकरण में उसका किंचित् अंश शेष न रहने दे । साल=क्लेश ।

३८—पूर्वार्ध—वासना और अहंकार को निवारण कर देने पर भी सचेष्ट रह उन्हें पुनः न आने दे । यह चेष्टा रखना यही पीसे पर पीसना और छाणे को छाणना है ।

३९—मर्दै = मर्दन करे, विगलित करे । काढै जंत्र मैं=त्याग और निरभिमानता की कसौटी में से निकालता रहे ।

४०— भावार्थ—वासना का मूल काट देने पर भी उसको काटते ही रहना दग्ध किये

दादू सबकौ संकट एक दिन, काल गहैगा आइ।
जीवत मृतक ह्वै रहै, ताके निकटि न जाइ ॥ ४१ ॥
दादू जीवत मृतक ह्वै रहै, सब को विरकत होइ।
काढो काढो सब कहैं, नांव न लेवै कोइ ॥ ४२ ॥

जरना

सारा गहिला ह्वै रहै, अंतरजामी जाणि।
तौ छूटै संसार थैं, रस पीवै सारंगपाणि ॥ ४३ ॥
गूंगा गहिला बावरा, सांई कारण होइ।
दादू दिवाना ह्वै रहै, ताको लखै न कोइ ॥ ४४ ॥

जीवत मृतक

जीवत मृतक साधुकी, वाणी का परकास।
दादू मोहै रामजी, लीन भये सब दास ॥ ४५ ॥

---

हुये अहंकार को पुनरपि दग्ध करते रहना वासना और अहंकार रूपी पानी अन्तः-करण में न आने देंगे तभी आत्मपरिचय-प्राप्तिरूप तरवर बढेगा।

४१—सबको संकट एक दिन=अनात्म पदार्थ जितने हैं सबको एक दिन नष्ट होना होगा।

४२—भावार्थ—अहंकार वासना को त्याग ऐसी उदासीन वृत्ति ग्रहण करे जिससे संसारी सम्बन्ध वाले सभी दूर होजाय—कोई आकर नाम भी न ले।

दृष्टान्त—*रूप सनातन भ्रात द्वै, वैभव भूप परमाण।*
*त्यागो कागद कपट करि, किनहूँ न पूछे आँण ॥*

४३—सारा गहिला ह्वै रहे=अपने आत्मचिंतन में पूरा सावधान और संसार के पदार्थों से उदासीन होकर रहे।

४४—अपनी इष्टसिद्धि के लिये वाणी, चेष्टा तथा संकल्प का संसारी जनों से व्यवहार न करे, इस तरह आत्मदिवाना हो कि कोई जान ही नहीं पावे।

दृष्टान्त—*असमंजस नृप को तनय, जोग भ्रष्ट सोइ आहि।*
*बाल अयोध्या के किते, सरयू डूबे जाहि ॥*

४५—वाणी का परकाश=सिद्ध साधक की अनुभव वाणी में ही ज्ञान का सच्चा प्रकाश

उभै असमाव

दादू जे तूं मोटा मीर है, सब जीवौं मैं जीव।
आपा देखि न भूलिये, खरा दुहेला पीव ॥ ४६ ॥

आपा मेटि समाइ रहु, दूजा धंधा बादि।
दादू काहे पचि मरै, सहजैं सुमिरण साधि ॥ ४७ ॥

दादू आपा मेटे एक रस, मन सुस्थिर लै लीन।
अरस परस आनंद करै, सदा सुखी सो दीन ॥ ४८ ॥

सुमिरण नाम निःशय

हमौं हमारा करि लिया, जीवत करणी सार।
पीछै संसा को नहीं, दादू अगम अपार ॥ ४९ ॥

मधि निरपख

माटी मांहै ठौर करि, माटी माटी मांहिं।
दादू समि करि राखिये, द्वै पख दुविधा नांहिं ॥ ५० ॥

इति जीवत मृतक कौ अंग सम्पूर्ण ॥ २३ ॥

---

रहता है।

४६—मोटा मीर=बडा महात्मा। सब जीवों में=सब प्राणियोंमें गणनीय है। दुहेला=कठिन, कठिनाई से प्राप्य।

४७—दूजा धंधा बादि=मायिक पदार्थों की प्राप्ति का प्रयास फालतू है।

४८—सो दीन=वह निरभिमानी साधक सेवक।

४९—हमौं=हमीने, स्वयं ही। जीवत करणी सार=जीते हुये जीवन में ही जीवन का सार=फलस्वरूप परिचय है वह प्राप्त कर लिया। संसा=संशय, भ्रान्ति।

५०—मांटी=पति, स्वामी, अपना मालिक। मांहै ठौर करि=उस मालिक में अपनी जगह बना। सम करि=मल विक्षेप रहित, स्वाभाविक स्थिति में। द्वै पख दुविधा नांहि=तब भेदभावनाजन्य दुविधा नहीं रहेगी।

❀ जीवत मृतक अंग समाप्त ❀

# अथ सूरातन को अङ्ग ॥ २४ ॥
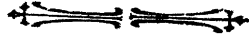
दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

सूर सती साधु निर्णय

साचा सिर सौं खेल है, यह साधु जन का काम ।
दादू मरणा आसंघै सोई कहेगा राम ॥ २ ॥

राम कहैं ते मरि कहैं, जीवत कह्या न जाइ ।
दादू ऐसैं राम कहि, सती सूर सम भाइ ॥ ३ ॥

जब दादू मरिबा गहै, तब लोगौं की क्या लाज ।
सती राम साचा कहै, सब तजि पति सौं काज ॥ ४ ॥

सूरवीर कायर

दादू हम काइर कड़वा करि रहे, सूर निराला होइ ।
निकसि खड़ा मैदान मैं, ता सम और न कोइ ॥ ५ ॥

---

२—साचा=दृढ़ निश्चयी साधक । सिर सौं खेलि है=अहंकाररूपी मस्तिष्क को काटने का उद्योग करेगा । आसंघै=स्वीकार करे, अपनावे ।

३—सती सूर समभाइ=सती की तरह सर्वस्व होम कर, सूर की तरह प्राण देने को उद्यत होकर आत्मचिन्तन की साधना में लगे ।

४—लोगौं की=संसारी संबंधियों की ।

५—हम काइर=हम डरपोक हैं, असमर्थ हैं । कड़वा करि रहे=अभी तैयारी ही कर रहे हैं । निराला=संसार के बन्धनों से निकला ।

सूर सती सार निरनय

मडा न जीवै तो संगि जलै, जीवै तो घर आण।
जीवण मरणा मरणा राम सौं, सोई सती करि जाण ॥६॥
जन्म लगै विभिचारणी, नख सिख भरी कलंक।
पलक एक सनमुख जली, दादू धोये अंक ॥ ७ ॥
स्वांग सती का पहरि करि, करै कुटुम्ब का सोच।
बाहरि सूरा देखिये, दादू भीतरि पोच ॥ ८ ॥
दादू सती तो सिरजनहार सौं, जलै विरह की झाल।
ना वहु मरै न जलि बुझै, ऐसैं संगि दयाल ॥ ९ ॥
जे मुझ होते लाख सिर, सोई सौंपै नारि।
सह मुझ दीया एक सिर, सोई सौंपे नारि ॥ १० ॥
सती जलि कोइला भई, मुये मड़े की लार।
यौं जे जलती राम सौं, साचे संगि भरतार ॥ ११ ॥

६—मडा=मुरदा, असमर्थ साधक।

दृष्टान्त—*तिय पति दोउ घरि पंजरे. जात कामरू देश।*
*जे. जीवे तो आइ घर. नहिं तो अग्निप्रवेश॥*

७—जन्म लगे=जीवन भर। नखसिख=सम्पूर्णतया। धोये अंक=कलंक के अंक धो लिये।

८—स्वांग=बनाव, प्रतिरूप। सतीका=सच्चे साधक का। पोच=असमर्थ, डरपोक।

९—विरह की झाल=विरह की तीव्र आंच में।

१०—सोई सौंपे नारि=पतिव्रता नारी की तरह साधक आत्मसमर्पण करे।

११—मुये मडे की लार=मृत मुरदे शरीर के साथ।

मुये मड़े सौं हेत क्या, जे जीव की जाणै नांहिं ।
हेत हरि सौं कीजिये, अंतरजामी मांहिं ॥ १२ ॥

सूरवीर—काइर

सूरा चढ़ि संग्राम कौं, पाछा पग क्यौं देइ ।
साहिब लाजै भाजतां, धिग जीवन दादू तेइ ॥ १३ ॥
सेवग सूरा राम का, सोई कहेगा राम ।
दादू सूर सनमुख रहै, नहिं काइर का काम ॥ १४ ॥
काइर कामि न आवई, यहु सूरे का खेत ।
तन मन सौंपै राम कौं, दादू सीस सहेत ॥ १५ ॥
जब लग लालच जीव का, निर्भै हुवा न जाइ ।
काया माया मन तजै, तब चौड़ै रहै बजाइ ॥ १६ ॥
दादू चौड़ै मैं आनंद है, नांव धर्‌या रणजीत ।
साहिब अपना करि लिया, अंतर गति की प्रीति ॥ १७ ॥
दादू जे तुझ काम करीम सौं, चौहटै चढि करि नाच ।
झूठा है सो जाइगा, निहचै रहसी साच ॥ १८ ॥

---

१२—मुंये मडे से हेत क्या = मृत मुरदे से स्नेह क्या ? अर्थात् संसार के सब पदार्थ व सम्बन्ध नष्ट होने वाले हैं, मृतवत् हैं तब उनसे प्रेम क्यों करना ?

१३—पूर्वार्ध—सच्चा साधक आत्मानुभूति की साधना में लग फिर पीछे संसार के मायिक पदार्थों में पैर नहीं दे सकता।

१५—काइर काम न आवइ=विषयी अहंकारी पुरुष इस साधनाक्षेत्र के काम के नहीं हैं।

१६—लालच जीवका=अहंकार सहित अन्तःकरण का लोभ है। कायामाया=शरीर का अध्यास मन की वासना।

१७—चौड़े में=खुले में, द्वैत रहित, भेद रहित निर्मल वृत्ति में।

१८—चौहटे चढ करि नाच=अन्तःकरण को समष्टि चेतन से मिला वृत्ति में स्वस्वरूप को

जीवत मृतक

राग कहैगा एक कोइ, जे जीवत मृतक होइ ।
दादू ढूंढे पाइये, कोटी मध्ये कोइ ॥ १६ ॥

सूर सती साधु निर्णय

सूरा पूरा संत जन, सांई कौं सेवै ।
दादू साहिब कारणै, सिर अपणां देवै ॥ २० ॥
सूरा झूझै खेत मैं, सांई सनमुख आइ ।
सूरे कौं सांई मिलै, तब दादू काल न खाइ ॥ २१ ॥
मरिबे ऊपरि एक पग, करता करै सो होइ ।
दादू साहिब कारणै, तालाबेली मोहि ॥ २२ ॥

हरि भरोसा

दादू अंग न खैंचिये, कहि समझाऊं तोहि ।
मोहिं भरोसा राम का, बंका बाल न होइ ॥ २३ ॥
बहुत गया थोड़ा रह्या, अब जिव सोच निवार ।
दादू मरणा मांडि रहु, साहिब के दरबार ॥ २४ ॥

---

चढा कर, नाच=अति स्नेह से ध्यान कर ।
दृष्टान्त—*पीपा के तिय दोइ दश, चली वरजते लार ।*
*मधि बजार अर्ध को मरी, सब गई सीता धार ॥*
२१—झूझै=लड़े, संघर्ष करे । खेत में = साधना के मैदान में ।
२२—एक पग=दृढ़ निश्चय । ताला वेली=तड़फन-अति विलाप ।
२३—अंग न खैंचिये=साधन पथ से विचलित न होइये ।
२४—बहुत गया = अति काल चला गया है ।
दृष्टान्त—*रैन अचंगल मन अथिर, थके जू पिंजर पांव ।*
*पातर कहे पखावजी, मधुरो मधुरो वाव ॥*

सूरवीर—काइर

जीवूं का संसा पड़्या, को का कौं तारै ।
दादू सोई सूरिवां, जे आप उवारै ॥ २५ ॥
जे निकसै संसार थैं, सांई की दिसि धाइ ।
जे कबहूं दादू बाहुड़ै, तौ पीछै मार्‌या जाइ ॥ २६ ॥
दादू कोइ पीछै हेला जनि करै, आगै हेला आव ।
आगै एक अनूप है, नहिं पीछे का भाव ॥ २७ ॥
पीछैं कौं पग ना भरै, आगै कौं पग देइ ।
दादू यहु मत सूर का, अगम ठौर कौं लेइ ॥ २८ ॥
आगा चलि पीछा फिरै, ताका मुंह मदीठ ।
दादू देखै दोइ दल, भागै देकर पीठ ॥ २९ ॥
दादू मरणां मांडि करि, रहै नहीं ल्यौ लाइ ।
काइर भाजै जीव ले, आरणि छांडे जाइ ॥ ३० ॥
सूरा होइ सुमेर उलंघे, सब गुण बंध्या छूटै ।
दादू निर्भै ह्वै रहै, काइर तिणा न टूटै ॥ ३१ ॥

---

२४—जीवों का=विषयी पुरुषों का । संसा=संशय । को काकों=कौन किसको ।

२६—दिसि धाई=आत्मचिंतन की ओर प्रबल वेग से साधन में लगे । बाहुडै = बदले,फिरे ।

२७—पीछे हेला=विषय वासनामय पदार्थों की पुकार । आगे हेला=आत्मपरिचय की पुकार ।

२८—अगम ठौर=अगम्य स्थान ।

२९—पीछा फिरै =पुनः विषय वासना में उलझे । मदीठ=मत देखे ।

३०—आरण छांडे जाइ=साधन क्षेत्र का मैदान छोड़ जाता है ।

३१—सुमेर उलंघै=वासनाजन्य भोगों का सुमेरु लांघ जाय । गुण बंध्या=गुणों के बन्धनों से । काइर=विषयी जन से । तिणा न टूटै = सामान्य भोग पदार्थ का त्याग भी न हो

सूर सती साधु निर्णय

**सरप केसरि काल कुंजर, बहु जोध मारग मांहिं।**
**कोटि मैं कोइ एक ऐसा, मरण आसंधि जांहि॥ ३२॥**
**दादू जब जागै तब मारिये, बैरी जिय के साल।**
**मनसा डायनि काम रिपु, क्रोध महाबलि काल॥ ३३॥**
**पंच चोर चितवत रहीं, माया मोह विषझाल।**
**चेतन पहरै आपणै, कर गहि खड़ग संभाल॥ ३४॥**
**काया कबज कमान करि, सार सबद करि तीर।**
**दादू यहु सर सांधि करि, मारै मोटे मीर॥ ३५॥**
**काया कठिन कमान है, खाँचै बिरला कोइ।**
**मारै पंचौ मृगला, दादू सूरा सोइ॥ ३६॥**

---

दृष्टान्त—*शालभद्रता बहिनपति, पुनि द्रिज तुलसीदास।*
*सोझों सुलतानी किते, गृह तज भये उदास॥*

३२—सरप = संशय रूपी सर्प। केसरी=क्रूरता रूपी सिंह। काल=क्रोधरूपी काल। कुंजर=काम रूपी हाथी। बहु जोध=यह जोधा-शूरों के द्वन्द्व पड़े हैं।

३३—जब जागै=वासना का जब भी उदय हो। मनसा=वासना। डायनि=डाकणी।

३४—पंच चोर चितवत = पांचों ज्ञानेन्द्रियों के विषय चोर की तरह ताक लगाये हैं। वासना रूपी माया अपनी विषाग्नि लिये तैयार रहती है। हे साधक, चेतन पहरै आपणै=सावधानी से अपनी रक्षा में तत्पर रह, ज्ञान खडग को संभाले रह, हाथ में लिये रह।

३५—भावार्थ—अन्तःकरण वश में करना यही कमान है, नामचिंतन शब्द है वही तीर है, इन सरों से मोटे मीर=बड़े-२ काम क्रोधादि द्वन्द्वों को मार।

३६—काया=अन्तःकरण। पंचो मृगला=पांचों ज्ञानेन्द्रियां, पंच विषयवृत्ति।

जे हरि कोप करै इन ऊपरि, तौ काम कटक दल जाहिं कहां ।
लालच लोभ क्रोध कन भाजैं, प्रगट रहे हरि जहां तहां ॥३७॥

जीवत मृतक

तब साहिब कौं सिजदा किया, जब सिर धरया उतारि ।
यौं दादू जीवत मरै, हिरस हवा कौं मारि ॥ ३८ ॥

सूरातन

दादू तन मन काम करीम के, आवै तौ नीका ।
जिसका तिसकौं सौंपिये, सोच क्या जी का ॥ ३९ ॥
जे सिर सौंप्या रामकौं, सो सिर भया सनाथ ।
दादू दे उरण भया, जिसका तिसकै हाथ ॥ ४० ॥
जिसका है तिससौं चढ़ै, दादू ऊरण होइ ।
पहली देवे सो भला, पीछे तौ सब कोइ ॥ ४१ ॥
सांई तेरे नांव परि, सिर जीव करूं कुरबान ।
तन मन तुम परि वारणैं, दादू पिंड पराण ॥ ४२ ॥
अपणे सांई कारणैं, क्या क्या नहीं कीजै ।
दादू सब आरंभ तजि, अपणा सिर दीजै ॥ ४३ ॥

३८—दृष्टान्त—*इब्राहीम जु हिरसतैं, दाउच्यूं हत दइ डारि ।*
*पुनि इक बंदो हवा को, कहत ही देहुं निवारि ॥*

३९—तन मन=इन्द्रियां अन्तःकरण । करीम = व्यापक परमात्मा ।

४०—उरण=कृतज्ञ, ऋण रहित ।

४१—चढ़ै=समर्पित हो ।

४३—आरंभ तजि=वासना, कल्पना त्याग ।

सिर कै साटै लीजिये, साहिबजी का नांव।
खेलै सीस उतारि करि, दादू मैं बलि जांव॥ ४४॥
खेलै सीस उतारि करि, अधर एक सौं आइ।
दादू पावै प्रेम रस, सुख मैं रहै समाइ॥ ४५॥

मरण भय निवारण

दादू मरणैं थीं तूं मति डरै, सब जग मरता जोइ।
मिलि करि मरणा राम सौं, तो कलि अजरामर होइ॥४६॥
दादू मरणैं थीं तूं मति डरै, मरणां अंति निदान।
रे मन मरणा सिरजिया, कहिले केवल राम॥ ४७॥
दादू मरणैं थीं तूं मति डरै, मरणा पहूंच्या आइ।
रे मन मेरा राम कहि, वेगा बार न लाइ॥ ४८॥
दादू मरणे थी तूं मति डरै, मरणा आजि कि काल्हि।
मरणा मरणा क्या करै, बेगा राम संभालि॥ ४९॥
दादू मरणा खूब है, निपट बुरा विभचार।
दादू पति कौं छाड़ि करि, आन भजै भर्तार॥ ५०॥

---

४४—साटै = बदले।

४५—अधर=गुणातीत।

४६—मिलि करि मरणा राम सौं=आत्मराम को ज्ञात कर उसी में अपने आपको खपा देना। कलि=ससार।

४७—मरणैं थी=मृत्यु से, स्थूल प्रपंच के विनाश से। अंति = आखिर। मरणा सिरजिया=मरने वाली वस्तु का विनाश बनाया हुआ है। केवल=असंग।

४९—मरणा आज कि काल्हि=स्थूल शरीर का नाश आज या कल होना है।

५०—मरणा खूब है=वस्तुत: मरना यानी वासना से रहित होना उत्तम है। निपट = निश्चय ही। विभिचार=आत्मा को छोड़ आन भावना में लगना।

दादू तन थैं कहा डराइये, जे विनसि जाइ पल बार।
काइर हुवा न छूटिये, रे मन हो हुसियार ॥ ५१ ॥
दादू मरणा खूब है, मरि माँहैं मिलि जाइ।
साहिब का संग छाडि करि, कौन सहै दुख आइ ॥ ५२ ॥

शूरातन

दादू माँहैं मन सौं झूझ करि, ऐसा सूरा वीर।
इन्द्रिय अरि दल भानि सब, यौं कलि हुवा कबीर ॥ ५३ ॥
सांई कारण सीस दे, तन मन सकल सरीर।
दादू प्राणी पंच दे, यौं हरि मिल्या कबीर ॥ ५४ ॥
सबै कसौटी सिर सहै, सेवग सांई काज।
दादू जीवनि क्यौं तजै, भाजै हरि कौं लाज ॥ ५५ ॥
सांई कारण सब तजै, जन का ऐसा भाव।
दादू राम न छाडिये, भावै तन मन जाव ॥ ५६ ॥

पतिव्रत निष्काम

दादू सेवग सो भला, सेवै तन मन लाइ।
दादू साहिब छाडि करि, काहू संगि न जाइ ॥ ५७ ॥
पतिव्रता पति पीवकौं, सेवै दिन अरु राति।
दादू पतिकूं छाडि करि, काहू संगि न जाति ॥ ५८ ॥

---

५१—काइर हुवा न छूटिये=कायर होकर विषयों की—संसार के मायिक पदार्थों की हाय हाय के साथ लग अपने लक्ष्य से अलहदा न हुइये।

५३—मांहैं=भीतर ही। झूझ=संघर्ष कर। भानि = तोड़, छिन्न भिन्न कर।

५५—कसौटी=कसनी, परीक्षा।

सूरातन

दादू मरिबो एकजु बार, अमर झुकेड़े मारिये ।
तौ तिरिये संसार, आतम कारिज सारिये ॥ ५९ ॥

दादू जे तूं प्यासा प्रेमका, तौ जीवन की क्या आस ।
सिरकै साटै पाइये, तौ भरि भरि पीवै दास ॥ ६० ॥

काइर

मन मनसा जीते नहीं, पंच न जीते प्राण ।
दादू रिपु जीते नहीं, कहैं हम सूर सुजाण ॥ ६१ ॥

मन मनसा मारैं नहीं, काया मारण जाँहिं ।
दादू बांबी मारिये, सरप मरै क्यौं मांहिं ॥ ६२ ॥

सूरातन

दादू पाखर पहरि करि, सबको झूझण जाइ ।
अंगि उघाड़ै सूरिवां, चोट मुहैं मुंह खाइ ॥ ४३ ॥

---

५९—अमर झुकेडे मारिये=मरना ऐसा ही ठीक है जिसमें अमर होना अनिवार्य हो, अर्थात शरीर की मृत्यु तो अवश्यंभावी है फिर क्यों न आत्मानुसंधान में लग, मृत्यु भय से निरत हुआ जाय ?

६०—प्यासा=जिज्ञासा वाला । साटै=बदले में ।

६१—रिपु=शत्रु, षड्‌रिपु मोहादि ।

६२—काया मरण जांहि = पंचाग्नि, पंचधारा, ऊर्ध्वबाहु आदि शारीरिक तप द्वारा केवल काया मारने से क्या लाभ ?

६३—पाखर = कवच । झूझण=लड़ने, युद्ध करने । यहां अभिप्राय है—सकाम—भक्ति का आधार लेकर प्रतिमा पूजा, माला, जप आदि के आधार के साथ जीवन साफल्य का संग्राम कई साधक लड़ते हैं, पर निरालम्ब हो जो साधक बुद्धि विचार को विजय करने रूपी संग्राम में लड़ते हैं वे ही सच्चे सूर हैं ।

जब झूझै तब जाणिये, काछि खड़े क्या होइ ।
चोट मुहैं मुंह खाइगा, दादू सूरा सोइ ॥ ६४ ॥

सूरातन सहजैं सदा, साच सेल हथियार ।
साहिब कै बल झूझतां, केते किये सुमार ॥ ६५ ॥

दादू जब लग जिय लागैं नहीं, प्रेम प्रीति के सेल ।
तब लग पिव क्यौं पाइये, नहिं बाजीगर का खेल ॥ ६६ ॥

दादू जे तू प्यासा प्रेम का, तौ किस कौं सैंतैं जीव ।
सिर कै साटै लीजिये, जे तुझ प्यारा पीव ॥ ६७ ॥

दादू महा जोध मोटा बली, सो सदा हमारी भीर ।
सब जग रूठा क्या करै, जहां तहां रणधीर ॥ ६८ ॥

दादू रहते पहते रामजन, तिन भी मांड्या झूझ ।
साचा मुंह मोड़ै नहीं, अर्थ इताही बूझ ॥ ६९ ॥

---

६४—काछि खड़े = केवल कछनी पहिने ।

६५—सहजै=निरालम्ब दशा । साचसेल = सत्यरूपी सेल-भाला । केते किये सुमार = कितने ही कामादि शत्रु मार गिराये ।

६६—जिय=अन्त:करण में ।

६७—सैंतैं = सतावे, दुःखी करे ।

६८—महा जोध = सर्व व्यापी परमात्मा । रूठा = अप्रसन्न हुआ ।

६९—रहते पहते = राते माते । बूझ = समझ ।

दृष्टान्त—*स्वामीजी सांभर हुते, आये च्यार अतीत ॥*

*वचन कहें कटु कुशल जिमि, तहँ कहिं साखी नीति ॥*

हरि भरोसा

दादू कांधै सबल के, निर्वाहैगा और।
आसणि अपनै ले चल्या, दादू निहचल ठौर ॥ ७० ॥

सूरातन

दादू क्या बल कहा पतंग का, जलत न लागै बार।
बल तौ हरि बलवंत का, जीवै जिहिं आधार ॥ ७१ ॥
राखणहारा राम है, सिर ऊपरि मेरे।
दादू केते पचि गये, बैरी बहुतेरे ॥ ७२ ॥

सूरातन विनती

दादू बलि तुम्हारे बापजी, गिणत न राणा राव।
मीर मलिक प्रधान पति, तुम बिन सबही बाव ॥ ७३ ॥
दादू राखी राम पर, अपणी आप संबाहि।
दूजा को देखूं नहीं, ज्यौं जाणैं त्यौं निर्वाहि ॥ ७४ ॥
तुम बिन मेरे को नहिं, हमकौं राखनहार।
जे तूं राखै सांईया, तौ कोई न सकै मार ॥ ७५ ॥
सब जग छाडै हाथ थैं, तुम जनि छाडहु राम।
नहिं कुछ करिज जगत सौं, तुमही सेती काम ॥ ७६ ॥

---

७०—कांधै = सहारे। निर्वाहैगा=निभायेगा। और=अन्त तक।
७२—वैरी बहुतेरे=काम क्रोधादि अनेक शत्रु।
७३—बलि = आधार, आश्रय। मीर = महान्। वाव=थोथे हैं।
७४—संवाहि = संभाल करेंगे।
दृष्टान्त—गरीबदासजी पूछियो, गुरु दादू सौं अन्त।
तब या साषी से कह्यो, खुसी रहो सब सन्त ॥
७६—दृष्टान्त—इक नृप यज्ञ वलि देन कूं, द्विज सुत लीयो मोल।
च्यार लीक लखि मुरि हनै, एक निवावत मोल ॥

सूरातन

दादू जाते जिवथैं तौ डरूं, जे जिव मेरा होइ।
जिन यहु जीव उपाइया, सार करैगा सोइ ॥ ७७ ॥

दादू जिनकौं सांई पधरा, तिन बंका नाहीं कोइ।
सब जग रूठा क्या करै, राखणहारा सोइ ॥ ७८ ॥

दादू साचा साहिब सिर ऊपरै, तती न लागै बाव।
चरण कवल की छाया रहै, कीया बहुत पसाव ॥ ७९ ॥

विनती

दादू जे तूं राखै सांइया, तौ मारि सकै ना कोइ।
बाल न बांका करि सकै, जे जग बैरी होइ ॥ ८० ॥

दादू राखणहारा राखै, तिसै कौन मारै।
उसे कौन डुबोवै, जिसै सांई तारै ॥
कहे दादू सो कबहूं न हारै, जे जन सांई संभारै ॥ ८१ ॥

निर्भै बैठा राम जपि, कबहूँ काल न खाइ।
जब दादू कुंजर चढै, तब सुनहां झखि जाइ ॥ ८२ ॥

---

७७—जाते जीवथैं=जाते हुये प्राणों से, शरीर से। उपाइया = उत्पन्न किया, पैदा किया। सार करेगा=सहायता करेगा।

७८—पधरा=सीधा, सहायक है। बंका=टेढा।

७९—तती न लागे वाव=कामादिजन्य संताप की गर्म हवा नहीं लगती। पसाव = अनुग्रह, अपनापन।

८२—निरभै=काल कर्म भयरहित। कुंजर=हस्ती पर। सुनहा = कुत्ते। झखि=चिल्ला चिल्ला कर।

काइर कूकर कोटि मिलि, भौंकैं अरु भागैं।
दादू गरवा गुरुमुखी, हस्ती नहिं लागै ॥ ८३ ॥

इति सूरातन कौ अंग संपूर्ण ॥ २४ ॥

---

# अथ काल को अङ्ग ॥ २५ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम् , नमस्कार गुरु देवतः।
वदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

काल न सूझै कंध पर, मन चितवै बहु आस।
दादू जीव जाणै नहीं, कठिन काल की पास ॥ २ ॥

दादू काल हमारे कंध चढ़ि, सदा बजावै तूर।
काल हरण करता पुरिख, क्यौं न संभालै सूर ॥ ३ ॥

---

८३—भावार्थ---सच्चे साधक की निन्दा कर कर अनेकों संसारी पुरुष श्वानवत भौंक भौंक कर बक बक कर चले जाते हैं, गरवा=गंभीर, गुरुमुखी=गुरु के उपदेश मर्यादा में चलने वाला साधक हस्ती की तरह मस्त रह उन संसारी पुरुषों की ओर देखता तक नहीं।

❀ सूरातन को अंग समाप्त ❀

---

२—कंध पर=गर्दन पर। चितवै=संकल्प करता रहता है।

३—बजावे तूर=तुर्रही बजाता रहता है, अर्थात् हमें सचेत करता रहता है।

जहं जहं दादू पग धरै, तहां काल का फंध।
सिर ऊपर सांधे खड़ा, अजहुँ न चेतै अंध ॥ ४ ॥

दादू काल गिरासन का कहिये, काल रहित कहि सोइ।
काल रहित सुमिरण सदा, बिना गिरासन होइ ॥ ५ ॥

दादू मरिये राम बिन, जीजै राम संभाल।
अमृत पीवै आत्मा, यौं साधू वंचै काल ॥ ६ ॥

दादू यहु घट काचा जलभरया, विनसत नांहीं बार।
यहु घट फूटा जल गया, समझत नहीं गंवार ॥ ७ ॥

फूटी काया जाजरी, नव ठाहर काणी।
तामैं दादू क्यौं रहै, जीव सरीषा पाणी ॥ ८ ॥

बाव भरी इस खाल का, झूठा गर्व गुमान।
दादू विनसै देखतां, तिस का क्या अभिमान ॥ ९ ॥

दादू हम तौ मूये मांहिं हैं, जीवण कार भरंम।
झूठे क्या गरबवा, पाया मुझ मरंम ॥ १० ॥

---

४—पगधरे=मायिक पदार्थों की चाह करे। तहां=उन सब मायिक पदार्थों पर। फंध=फंदा।

५—काल गिरासन=काल के ग्रास है। काल रहित=परमात्मा।

७—घट काचा=यह शरीर कच्चे मटकेकी तरह है। जल भरया = जीवनरूपी जल भरा है।

८—फूटी काया=शरीर कई जगह से फूटा हुवा है। नव ठाहर=नौ द्वार इसके बने हुए हैं। कान, आंख, नाक, मुख, मलमूत्र द्वार, इन सब द्वारों से वृत्ति का क्षय होता जारहा है।

९—बावभरी=श्वास उच्छ्वास वाली। खाल= त्वचामय शरीर।

दृष्टान्त—*पेट बंध भये बादशाह, बाव सरे द्यों राज।*
*पकड़ छुडाया तीन विर, छुरा लेहुँ क्या काज ॥*

१०—हम तो=आत्माभिमानी शरीर। मूये मांहि हैं=मरे हुये ही हैं। गरबवा=अभिमान करना। मरंम=मर्म, भेद।

यहु वन हरिया देखि करि, फूल्यौ फिरै गंवार।
दादू यहु मन मृगला, काल अहेड़ी लार॥ ११॥
सबही दीसै काल मुखि, आपै गहि करि दीन्ह।
विनसै घट आकार का, दादू जे कुछ कीन्ह॥ १२॥
काल कीट तन काठ कौ, जरा जनम कूं खाइ।
दादू दिन दिन जीवकी, आव घटंती जाइ॥ १३॥
काल गिरासै जीव कौं, पम पल सासैं सास।
पग पग माँहैं दिन घड़ी, दादू लखै न तास॥ १४॥
पग पलक की सुधि नहीं, सास सबद क्या होइ।
कर मुख माँहैं मेल्हतां, दादू लखै न कोइ॥ १५॥
दादू काया कारवी, देखत ही चलि जाइ।
जब लग सास सरीर मैं, राम नाम ल्यौ लाइ॥ १६॥

---

११—यहु वन=संसार रूपी कानन। हरिया=नाना कल्पित वस्तुमय। मन=अन्तःकरण। मृगला=मृग की तरह इन मायिक पदार्थों के पीछे दौड़ रहा है। काल अहेड़ी=काल रूप शिकारी इसके पीछे लगा हुवा है।

१२—आपे गहि कर दीन्हि=अपने द्वारा पाप पुण्यमय कर्मों का बन्धन पैदा कर काल के हाथ में दे दिया गया है।

१३—कीट=दीवल की तरह। तन काठ=देहरूपी काठ को। आव=आयु।

१४—गिरासै=ग्रसित करे, अपने में समाहित करे। लखै न तास=उस काल को कोई लखता नहीं, देखता नहीं।

१५—पग पलक=पैर उठाते, पलक खोलते क्या हो जाय यह पता नहीं।
१६—कारवी=कच्चे घड़े की तरह।

दादू काया कारवी, देखत ही चलि जाइ।
आसण कुंजर सिरि छत्र, विनसि जांहिं खिण मांहिं ॥१७

दादू काया कारवी, पड़त न लागै बार।
बोलणहारा महल मैं, सो भी चालणहार ॥ १८ ॥

दादू काया कारवी, कदे न चालै संग।
कोटि बरस जे जीवणा, तऊ होइला भंग ॥ १९ ॥

कहतां सुनतां देखतां, लेतां देतां प्राण।
दादू सो कहतहूँ गया, माटी धरी मसाण ॥ २० ॥

सींगी नाद न बाजही, कत गये सो जौगी।
दादू रहते मढी मैं, करते रस भोगी ॥ २१ ॥

दादू जियरा जाइगा, यहु तन माटी होइ।
जे उपज्या सो विनसि है, अमर नहीं कलि कोइ ॥ २२ ॥

---

१७—आसण कुञ्जर=बैठने को हाथी। सिर छत्र=सिर पर छत्र है।

१९—चाले संग=चेतन के साथ नहीं चल सकती। तऊ=तोभी। भंग=खतम।

दृष्टान्त—*च्यार पुरुष भाड़े लिये, वणिक कोटड़ी च्यार।*
*कह भाड़ो हमरो यहै, कबही देऊं निकार॥*

२०—पूर्वार्ध—जो जीवात्मा बोलता सुनता देखता लेता देता था वह न मालूम कब किधर निकल गया?

दृष्टान्त—*चले जात वाजिंद मग, ऊंट पड्या इक देखि।*
*कही उठावो को उठे, चेतन गया अलेख॥*

२१—सींगी=श्वास, प्रश्वास, सींग का वाद्य जो नाथ रखते हैं। नाद=शब्द।

दृष्टान्त—*गुरु दादू आमेर थे, ढिग जोगी को थान।*
*इक दिन सींगी ना बजी, मरिगो जोगी जान।*

दादू देही देखतां, सब किस ही की जाइ।
जब लग सास सरीर मैं गोविंद के गुण गाइ ॥ २३ ॥
दादू देही पाहुणी, हंस बटाऊ मांहिं।
का जाणौं कब चालिसी, मोहिं भरोसा नांहिं ॥ २४ ॥
दादू सब को पाहुणां, दिवस चारि संसार।
अवसर अवसर सब चले, हम भी इहै विचार ॥ २५ ॥

भयमई—पंथ विषमता

सब को बैठे पंथ सिरि, रहे बटाऊ होइ।
जे आये ते जाहिंगे, इस मारग सब कोइ ॥ २६ ॥
वेग बटाऊ पंथ सिरि, अब विलंब न कीजै।
दादू बैठा क्या करै, राम जपि लीजै ॥ २७ ॥
संझ्या चलै उतावला, बटाऊ वनखंड मांहिं।
विरियां नाहीं ढील की, दादू वेगि घरि जांहिं ॥ २८ ॥
दादू करह पलाणि करि, को चेतन चढ़ि जाइ।
मिलि साहिब दिन देखतां, सांझ पड़ै जनि आइ ॥२६॥

---

२५—पाहुंणा = अतिथिरूप। अवसर अवसर = समय समय पर।

२६—पंथ सिर=जाने की राह पर। रहे बटाऊ होइ=राहगीर की तरह रह रहे हैं।

२८—संझ्या = आयु का उत्तर काल। बिरियां=समय, अवसर।

२९—भावार्थ—करहा=ऊंट रूपी मानव देहमें वैराग्य रूपी पिलाणकर कोई सावधान जिज्ञासु साधक चढ़ जाय = साधना में लग जाय तो वह दिन दिन में ही=आयु रहते ही, साहिब = परमात्मा से मिल लेता है, वह वृद्धावस्थारूपी सांझ नहीं पड़ने देता।

दृष्टान्त—वणिक पुत्र ठग वश पर्यो, दिये च्यार दृष्टान्त।
मूवो बाज कुत्तो रु मृग, करहैं चढ गयो कन्त ॥

पंथ दुहेला दूरि घर, संग न साथी कोइ।
उस मारग हम जाहिंगे, दादू क्यौं सुख सोइ ॥ ३० ॥
लंघण के लकु घणा, कपर चाट डीन्ह।
अला पांधी पंध में, विहंदा आहीन ॥ ३१ ॥

काल चितावणी

दादू हंसतां रोवतां पाहुणा, काहू छाडि न जाइ।
काल खड़ा सिर ऊपरै, आवणहारा आइ ॥ ३२ ॥
दादू जोरा बैरी काल है, सो जीव न जानै।
सब जग सूता नींदड़ी, इस तानै बानै ॥ ३३ ॥
दादू करणी काल की, सब जग परलै होइ।
राम विमुख सब मरि गये, चेति न देखै कोइ ॥ ३४ ॥
साहिब कौं सुमरै नहीं, बहुत उठावै भार।
दादू करणी काल की, सब परलै संसार ॥ ३५ ॥

३०—पंथ दुहेला=मार्ग कठिन। घरदूरि=लक्ष्य दूर है, दीर्घ साधन साध्य है।

३१—भावार्थ—लंघण=संसार समुद्र का, लकु घणा=पाट चौड़ा है। कपर चाट दीन्ह=नौका चाकू रहित है। अला पांधी पंथ में=परमात्मा के पथिक पथ में। वेहंदा आहीन=उड़ रहे हैं।

३२—भावार्थ—जैसे अपनी पुत्री का पति पाहुंणा आता है वह चाहे लड़की रोये या हंसे वह छोड कर नहीं जाता, लेकर जाता है। ऐसे ही काल भी सिर सवार है, वह किसी को छोड़ेगा नहीं।

३३—जोरा वैरी=प्रबल शत्रु। तानैबानै=अपनी लेनदेन में गाफिल है।

३५—बहुत उठावे भार=नानाविध अकर्म कर उनका पाप बोझ उठाता है। काल की करणी=वासनमय कर्म।

सूता काल जगाइ करि, सब पैसैं मुख मांहिं ।
दादू अचिरज देखिया, कोई चेतै नांहिं ॥ ३६ ॥
सब जीव विसाहैं काल कौं, करि करि कोटि उपाइ ।
साहिब कौं समझैं नहीं, यौं परलै ह्वै जाइ ॥ ३७ ॥
दादू कारण काल के, सकल संवारै आप ।
मीच विसाहै मरण कौं, दादू सोग संताप ॥ ३८ ॥
दादू अमृत छाडि करि, विषै हलाहल खाइ ।
जीव बिसाहै काल कौं, मूढा मरि मरि जाइ ॥ ३९ ॥
निर्मल नांव विसारि करि, दादू जीव जंजाल ।
नहीं तहां थैं करि लिया, मनसा मांहैं काल ॥ ४० ॥
सब जग छेली, काल कसाई, कर्द लिये कंठ काटै ।
पंच तत्त की पंच पंखरी, खंड खंड करि बांटै ॥ ४१ ॥

---

३६—पूर्वार्ध—अपने ही सकाम कर्मों से पाप पुण्य फल-भोग के बन्धन में उलझ काल के मुख में काल को जगा कर हम जाते हैं ।

दृष्टान्त—*दोय पुरुष मग जात ही, देख्यो सोवत नाग ।*
*एक बरजते लात दी, खात मर्‌यो उहि जाग ॥*

३७—विसाहैं=बसावे, प्राप्त करे । कोटि उपाइ=अनेक वासनाजन्य कर्मों द्वारा ।

३८—कारण काल के=काल के मुख में जाने के लिए । सकल संवारे आप=अपने आप को अभिमान मे उलझा कर काल के लिये सज्जित करते हैं ।

दृष्टान्त—*पढतो कोकिला वरजतां, मुहम्मद को जामात ।*
*ऊंट बेच घोड़ो दियो, मीच लई पछितात ॥*

३९—विषै हलाहल खाइ=निषिद्ध कर्म करते हुये ।

४०—दृष्टान्त—*विद्या पढी संजीवणी, काल वंचनी नाहिं ।*
*जगजीवण गुरु ज्ञानबिन, पड्या सिंध मुख माहिं ॥*

४१—छेली=बकरीवत् है । कर्दलिये=कर्म फल का छुरा लिये ।

काल झाल में जग जलै, भाजि न निकसै कोइ।
दादू सरणैं साच कै, अभै अमर पद होइ ॥ ४२ ॥
सब जग सूता नींद भरि, जागै नांहीं कोइ।
आगै पीछै देखिये, प्रतषि परलै होइ ॥ ४३ ॥

आसक्ति मोह

ये सज्जन दुर्जन भये, अंति काल की बार।
दादू इन मैं को नहीं, विपति बटावणहार ॥ ४४ ॥
संगी सजण आपणां, साथी सिरजनहार।
दादू दूजा को नहीं, इहि कलि इहि संसार ॥ ४५ ॥

काल चितावणी

ए दिन बीते चलि गये, वै दिन आये धाइ।
राम नाम बिन जीव कौं, काल गरासै जाइ ॥ ४६ ॥
जे उपज्या सो विनसि है, जे दीसै सो जाइ।
दादू निर्गुण राम जप, निहचल चित्त लगाइ ॥ ४७ ॥
जे उपज्या सो विनसि है, कोई थिर न रहाइ।
दादू वारी आपणी, जे दीसै सो जाइ ॥ ४८ ॥
दादू सब जग मरि मरि जात है, अमर उपावणहार।
रहता रमता राम है, बहता सब संसार ॥ ४९ ॥

४४— ये सज्जन=कुटुम्बी।

दृष्टान्त—*सासू गहणैं बहुन कौं, दिये बांटि अंग च्यारि।*
*अन्त काल रसना थकी, मांगत सैंनहिं टारि॥*

४६—ये दिन=मानव जीवन के नये दिन। वे दिन=चलने के दिन।

४८—थिर न रहाइ=विनाशी पदार्थ कोई स्थिर नहीं रह सकता।

सजीवन

दादू कोई थिर नहीं, यहु सब आवै जाइ।
अमर पुरिस आपै रहै, कै साधू ल्यौ लाइ ॥ ५० ॥

काल चितावणी

यहु जग जाता देखि करि, दादू करी पुकार।
घड़ी महूरत चालनां, राखै सिरजनहार ॥ ५१ ॥

दादू विष सुख मांहैं खेलतां, काल पहूँच्या आइ।
उपजै विनसै देखतां, यहु जग यौं ही जाइ ॥ ५२ ॥

राम नाम बिन जीव जे, केते मुये अकाल।
मीच बिना जे मरत हैं, तार्थैं दादू साल ॥ ५३ ॥

कठोरता

सरप सिंह हस्ती घणां राकस भूत परेत।
तिस वनमैं दादू पड़्या, चेतै नहीं अचेत ॥ ५४ ॥

पूत पिता थैं वीछुड़्या, भूलि पड़्या किस ठौर।
मरै नहीं उर फाटि करि, दादू बड़ा कठोर ॥ ५५ ॥

काल चितावणी

जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै, आव घटै तन छीज।
अन्तकाल दिन आइ पहूंता, दादू ढील न कीजै ॥ ५६ ॥

---

५२—विषसुख=विषय सुख में।

५४—भावार्थ—संशय, क्रूरता, काम, मन, इन्द्रियें, प्रकृति आदि तिस वन में=शरीर रूपी कानन में लूटने को पड़े हुए हैं। फिर भी अचेत चेतता नहीं है।

दृष्टान्त—*रंगड़ बन मारग डुल्यो, रपटत लाग्यो कीच।*
*राक्षस पूछ्यो सारथी, बाघ चहै ल्यो नीच ॥*

५५—पूत पिता थैं वीछुड़्या=ब्रह्मरूपी पिता से अविद्या भ्रमित जीव बिछुड़ गया, अल-

दादू अवसर चलि गया, बिरियां गई बिहाय ।
कर छिटके कहं पाइये, जन्म अमोलिक जाइ ॥ ५७ ॥

दादू गाफिल ह्वै रह्या, गहिला हुआ गंवार ।
सो दिन चीति न आवई, सोवै पांव पसार ॥ ५८ ॥

दादू काल हमारा कर गहै, तिन दिन खैंचत आइ ।
अजहुँ जीव जागै नहीं, सोवत गई बिहाइ ॥ ५६ ॥

सूता आवै सूता जाइ, सूता खेलै सूता खाइ ।
सूता लेवै सूता देवै, दादू सूता जाइ ॥ ६० ॥

दादू देखत ही भया, स्याम वर्ण थैं सेत ।
तन मन जोवन सब गया, अजहुँ न हरि सों हेत ॥६१॥

दादू झूठे के घर देखि करि, झूठे पूछे जाइ ।
झूठे झूठा बोलते, रहे मसाणौं जाइ ॥ ६२ ॥

दादू प्राण पयाणा करि गया, माटी धरी मसांण ·
जालनहारे देखि करि, चेतैं नहीं अजांण ॥ ६३ ॥

दादू केइ जाले केइ जालिये, केई जालन जांहिं ।
केई जालन की करैं, दादू जीवन नांहिं ॥ ६४ ॥

---

हदा पड़ गया, संसार के चौरासी के चक्कर में भूल गया ।

५७—कर छिटके = हाथ से निकला हुआ समय ।

५८—सो दिन = अन्त का दिन । चीति न आवई=याद नहीं आरहा है ।

६०—सूता=अज्ञान निद्रा में प्रसुप्त ।

६१—स्याम वरण थैं श्वेत=काले बालों से बदल बाल सफेद हो गये ।

६२—झूठे के घर=संसार के मोह में व्यस्त । झूठे=ज्योतिषी ।

६३—पयाणा = कूच, गमन । माटी=भौतिक देह ।

केइ गाडे केइ गाडिये, केई गाडन जांहिं ।
केई गाडन की करैं, दादू जीवन नांहिं ॥ ६५ ॥
दादू उठ रे प्राणी जाग जीव, अपना सजन संभाल ।
गाफिल नींद न कीजिये, आइ पहूँचा काल ॥ ६६ ॥
समरथ का सरणा तजै, गहै आनकी ओट ।
दादू बलिवंत काल की, क्यौं करि बंचै चोट ॥ ६७ ॥

सजीवन

अविनासी के आसरै, अजरावर की ओट ।
दादू सरणै साचकै, कदे न लागै चोट ॥ ६८ ॥

काल चितावणी

मूसा भागा मरण थैं, जहां जाइ तहं गोर ।
दादू सर्ग पयाल सब, कठिन काल का सोर ॥ ६९ ॥
सब मुख मांहैं काल के, मांड्या माया जाल ।
दादू गोर मसाण में, झंषै सर्ग पयाल ॥ ७० ॥

---

६५—दृष्टान्त—कही पातशा मोहि कों, सोच न याद रहाइ ।
ल्याय बीरबल बोझ बहु, खड़े दिखाये आइ ॥

६७—समर्थ=सब शक्तियों की शक्तिरूप ईश्वर । आनकी=नायिक पदार्थों की, देवादिकों के ।

६८—दृष्टान्त—खोज पकड़ विश्वास गहि, धणी मिलैंगे आइ ।
अजा गयन्द मस्तक चढ़ी, निरभै कूंपल खाय ॥

६९—गौर = कब्र । सर्ग पयाल=स्वर्ग पाताल ।
दृष्टान्त—मूसे को पुनि उल्ह को, देखि हस्यो धर्मराज ।
कही गरुड़ सो जा धर्यो, गुहा मध्य अह खाज ॥

७०—झंखै=खाय ।

दादू मड़ा मसाण का, केता करै डफान।
मृतक मुरदा गोर का, बहुत करै अभिमान ॥ ७१ ॥
राजा राणा राव में, मैं खानौं सिर खान।
माया मोह पसारै एता, सब धरती असमान ॥ ७२ ॥
पंच तत्त का पूतला, यहु पिंड संवारा।
मंदिर मांटी मांस का, बिनसत नांही बारा ॥ ७३ ॥
हाड़ चाम का पिंजरा, बिचि बोलणहारा।
दादू ता मैं पैसि करि, बहुत किया पसारा ॥ ७४ ॥
बहुत पसारा करि गया, कुछ हाथि न आया।
दादू हरि की भगति बिन, प्राणी पछितायां ॥ ७५ ॥
माणस जल का बुदबुदा, पानी का पोटा।
दादू काया कोट मैं, मैं वासी मोटा ॥ ७६ ॥
बाहरि गढ़ निर्भै करै, जीबे के तांईं।
दादू माँहैं काल है, सो जाणै नांहीं ॥ ७७ ॥

---

७१—डफाण = शैतानी।

७२—सब धरती असमान=राज्य प्राप्त है तो सब भूमि के राज्य की इच्छा करता है। वह मिल जाय तो इन्द्रासन की इच्छा करता है। ऐसे धरती आसमान सब पर अपना ही कब्जा चाहता है।

७३—पिंड संवारा=रक्त मांस हाड़ के देह की कितनी सजावट करता है।

७४—पसारा कर गया=नाना तरह के कार्य व्यापार फैलाये।

७६—बुदबुदा = जलबुदबुद की तरह क्षणिक जीवन वाला है। मैं वासी मोटा=नश्वर शरीर में ममता कर अपने में महानता का ममत्व करने वाला।

७७—बाहर गढ निर्भै करे=बाहरी शत्रुओं से बचने के लिये बड़े-२ किल्ले बनाता है।

चिन कपटी

दादू साचै मत साहिब मिलै, कपट मिलैगा काल ।
साचै परमपद पाइये. कपट काया मैं साल ॥ ७८ ॥

काल चितावणी

मन ही माँहैं मीच है, सारौं के सिर साल ।
जे कुछ व्यापै राम विन, दादू सोई काल ॥ ७९ ॥
दादू जेती लहरि विकार की, काल कवल मैं सोइ ।
प्रेम लहरि सो पीव की, भिन्न भिन्न यौं होइ ॥ ८० ॥
दादू कालरूप माँहैं बसै, कोई न जाणै ताहि ।
यह कूड़ी करणी काल है, सब काहू कूं खाइ ॥ ८१ ॥
दादू विष अमृत घट मैं बसै, दोन्यूं एकै ठांव ।
माया विषै विकार सब, अमृत हरि का नांव ॥ ८२ ॥
दादू कहां महम्मद मीर था, सब नबियों सिरताज ।
सो भी मरि माटी हुआ, अमर अलह का राज ॥ ८३ ॥

---

दृष्टान्त—चौदह चौकी मांहि घर, मूसे रोक्या माग ।
खेम चाल सूं चाल कह. भयो चितो रो बाघ ॥

७९—दृष्टान्त—भृगुपुत्र मुवो कुबुद्धि तैं, कालहि देत सराय ।
कहीं काल मैं ना हर्यो, अपने कर्म संताप ॥

८०—काल कवल में सोइ=हृदय कमल में जितनी विषय विकार की लहर उठती है, वह सब काल के मुंह में जाने की तैयारी है । भिन्न भिन्न=मरने तैरने की ।

दृष्टान्त—काल हि कवल निरंजना, तिहुँ वारा कै वास ।
भिन्न भिन्न करि जो कहे सो सतगुरु मैं दास ॥

८१—कूड़ी करणी=विनाशी पदार्थों की प्राप्तिवाली करणी ।

केते मरि माटी भये, बहुत बड़े बलवन्त ।
दादू केते ह्वै गये, दानां देव अनन्त ॥ ८४ ॥

दादू धरती करते एक डग, दरिया करते फाल ।
हाकौं पर्वत फाड़ते, सो भी खाये काल ॥ ८५ ॥

दादू सब जग कंपै काल थैं, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सुरनर मुनिजन लोक सब, सर्ग रसातल सेस ॥ ८६ ॥

चंद सूर धर पवन जल, ब्रह्मंड खंड परवेस ।
सो काल डरै करतार थैं, जै जै तुम आदेस ॥ ८७ ॥

पवना पानी धरती अंबर, विनसै रवि ससि तारा ।
पंच तत्त सब माया विनसै, मानिष कहा बिचारा ॥८८॥

दादू विनसैं तेज के, माटी के किस मांहि ।
अमर उपावणहार है, दूजा कोई नांहि ॥ ८९ ॥

मत्सर ईर्षा

दीसै माणस प्रत्यष काल ।

---

८७—ब्रह्मंड खंड प्रवेश=काल का ब्रह्माण्ड के सभी नौ खंडों में प्रवेश है । तुम आदेश=आपको नमस्कार है ।

८९—तेज के = देव शरीर ।

९०—भावार्थ—विषय-व्यावृत्त मनुष्य है वह भी कालरूप है अतः विषयी पुरुष का संग व विषय-प्रवृत्ति इन दोनों को जैसे भी हो टालना चाहिये ।

दृष्टान्त—च्यार पुरुष विद्या पढण, चले मिल्यो मग मूढ ।
एक रह्यो इक वचन कह, लाग मर्‌यो इन गूढ ॥

ज्यौं करि त्यौं करि दादू टाल ॥ ६० ॥

॥ इति काल को अंग सम्पूर्ण ॥

# अथ सजीवन को अङ्ग ॥ २६ ॥
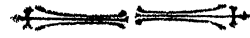
दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

दादू जे तूं जोगी गुरुमुखी, तो लेना तत्त विचारि ।
गहि आवध गुरु ज्ञान का, काल पुरिष कौं मारि ॥ २ ॥

नाद विंद सौं घट भरै, सो जोगी जीवै ।
दादू काहे कौं मरै, रामरस पीवै ॥ ३ ॥

साधू जन की वासना, सबद रहै संसार ।
दादू आत्म ले मिलै, अमर उपावण हार ॥ ४ ॥

---

*गोरख को मूरख मिल्यो, कह्यो कहा है रूंख ।*
*कही जु तो मानी नहीं, जो तूं किसो है मूर्ख ॥ २ ॥*

*❀ काल को अंग समाप्त ❀*

---

२—जोगी=साधक । गुरु मुखी=गुरु उपदेशानुसार चलन वाला । तत्त=साक्षीरूप । आवध=आयुध, शस्त्र । गुरु ज्ञान का = नाम चिन्तन का ।

३—नादविन्द सौं घट भरे=अनहद शब्द व वीर्य निरोध से शरीर परिपूर्ण करे ।

दृष्टान्त—द्वै गुरु सिष वन मे रहैं, साधन साधत पीर ।
खिचड़ी काली सिख भखी, ह्वै गयो अमर शरीर ॥

४—सबद रहे संसार=महात्माओं के उपदेश वाक्य संसार में रहते हैं ।

राम सरीषे ह्वै रहै, यहु नाहीं उनहार।
दादू साधू अमर है, विनसै सब संसार॥ ५॥

जे कोइ सेवै राम कौं, तौ राम सरीषा होइ।
दादू नाम कबीर ज्यौं, साखी बोलै सोइ॥ ६॥

अर्थि न आया सो गया, आया सो क्यौं जाइ।
दादू तन मन जीवतां, आपा ठौर लगाइ॥ ७॥

जे जन वेधे प्रीति सौं, ते जन सदा सजीव।
उलटि समाने आप मैं, अन्तर नाहीं पीव॥ ८॥

दया विनती

दादू सब रंग तेरे तैं रंगे, तूं ही सब रंग मांहिं।
सब रंग तेरे तैं किये, दूजा कोई नांहिं॥ ९॥

सजीवन

छूटै दंद तौ लागै बंद, लागै बंद तो अमरकंद।
अमरकंद दादू आननंद॥ १०॥

---

५—यहु नांहीं उनहार=उन आत्मजयी महात्माओं की सूरत संसारी पुरुषों जैसी नहीं है।

७—अर्थिन आया सो गया = जिस व्यक्ति ने आत्मचिन्तन नहीं किया वह यों ही व्यर्थ गया। आपा ठौर = साबत जगह, साक्षी चेतन में।

दृष्टान्त—*बन कपास नृप मांगियां, रुपया दस सहस।*
*तुलसीदल धरि दे लग्यो, लिये न मैंडतै वैस॥*

८—वेधे = घायल हुए। अन्तर नांहीं पीव = उन साधकों का साध्य=परमात्मा से कोई भेद नहीं रहता।

९—सब रंग तेरे = जो कुछ प्रतीत हो रहा है वह सब उस चितशक्ति का रंग है।

१०—दन्द=कामक्रोधादि। बंद=ध्यान, समाधि। अमरकंद = स्वस्वरूपप्राप्ति।

प्रश्न– कहं जमजौरा भंजिये, कहां काल कौ डंड ।
कहां मीच कौं मारिये, कहां जुरा सत खंड ॥ ११ ॥

उत्तर–अमर ठौर अविनासी आसन, तहां निरंजन लागि रहे ।
दादू जोगी जुगि जुगि जीवै, काल व्याल सब सहज गये ॥ १२

रोम रोम लै लाइ धुनि, ऐसैं सदा अखंड ।
दादू अविनासी मिलै, तौ जम कौं दीजै डंड ॥ १३ ॥

दादू जुरा काल जामण मरण, जहां जहां जीव जाइ ।
भगति पराइण लीन मन, ताकौं काल न खाइ ॥ १४ ॥

मरणा भागा मरण थैं, दुखैं नाठा दुख ।
दादू भै सौं भै गया, सुखैं छूटा सुख ॥ १५ ॥

मुक्ति अमोक्ष

जीवत मिले सो जीवते, मुयें मिलि मर जाइ ।
दादू दोन्यूं देख करि, जहं जाणौं तहं लाइ ॥ १६ ॥

---

११—जमजोरा = बली काल । डंड=सजा । जुरा = जीर्णता । सतखंड = टुकड़े टुकड़े की जा सके ।

१२—लयवृत्ति की परिपाक दशा जिसमें रोम रोम धुनि हो तब साधक अखंड=अमर हो सकता है । अविनाशी=चेतन से एकता प्राप्त हो जाय तब जम का कोई चारा नहीं पहुँचता, जमकाल की व्यर्थता ही उसके लिये दंड है ।

१४—पूर्वार्ध—जीव वासनानय प्रवृत्तियों में लगता है तब जन्म, मृत्यु, वार्धक्य पाता है ।

१५—निरभिमानता रूप मरण से मरणा भाग गया–निवृत्त हो गया । साधन काल की तितिक्षारूप कष्टसे सांसारिक=आने वाले कष्टों का नाश हो गया । ईश्वर के अस्तित्व मात्र के भय से संसार के भय भग गये । आत्मपरिचय सुख से संसार के विषय-भोग सुख छूट गये ।

१६—जीवत मिले सो जीवते=जो साधक आत्मपरिचय प्राप्त कर सार्थक जीवन मे मिलता

मर्जीवन

दादू साधन सब किया, जब उनमन लागा मन ।
दादू सुथिर आत्मा, यौं जुग जुग जीवै जन ॥ १७ ॥

रहते सेती लागि रहु, तौ अजरावर होइ ।
दादू देखि विचारि करि, जुदा न जीवै कोइ ॥ १८ ॥

जेती करणी कालकी, तेती परहरि प्राण ।
दादू आतमराम सौं, जो तूं खरा सुजाण ॥ १९ ॥

विष अमृत घटमैं बसै, बिरला जाणै कोइ ।
जिन विष खाया ते मुये, अमर अमी सौं होइ ॥ २० ॥

दादू सबही मरि रहे, जीवै नांहीं कोइ ।
सोई कहिये जीवता, जो कलि अजरावर होइ ॥ २१ ॥

दादू तजि संसार सब, रहै निराला होइ ।
अविनासी कै आसिरै, काल न लागै कोइ ॥ २२ ॥

जागहु लागहु रामसौं, रैनि बिहानी जाइ ।
सुमिर सनेही आपणा, दादू काल न खाइ ॥ २३ ॥

---

है वही अजर अमर है । मूये मिलि मर जाय=जो विषय-भोग की दौड़ दौड़ता मरता है वह मृतमिलन है । वह मृत ही रहता है । जहं जाणै=जिसको ठीक समझे । तहँ लाइ=वहीं अपने को लगा ।

१७—साधन=जप तप तीर्थादि ।

१८—रहते सेती=असंग ब्रह्म से । जुदा न = भेद ज्ञान युक्त है तब तक ।

१९—करणी = आचरण ।

२०—अमर अमी सौं होइ=नामचिन्तन, आत्मचिन्तन रूपी अमी=अमृत, उसीसे अमर होता है ।

२३—जागहु = सावधान होओ । राम सौं = नामचिन्तन से । रैनि = आयु रूपी रात्रि । बिहानी = खतम ।

दादू जागहु लागहु राम सौं, छाडहु विषै विकार ।
जीवहु पीवहु राम रस, आतम साधन सार ॥ २४ ॥

सुमिरण नाम निःसंशय

मरै न पावै पीव कौं, जीवत वंचै काल ।
दादू निर्भै नांव ले, दोन्यौं हाथि दयाल ॥ २५ ॥

दादू मरणे कौं चल्या, सजीवन के साथि ।
दादू लाहा मूल सौं, दोन्यौं आये हाथि ॥ २६ ॥

करुणा

दादू जाता देखिये, लाहा मूल गंवाइ ।
साहिब की गति अगम है, सो कुछ लखी न जाइ ॥ २७ ॥

सजीवन

साहिब मिलै तो जीविये, नहीं तो जीवै नांहिं ।
भावै अनंत उपाव करि, दादू मूवौं मांहिं ॥ २८ ॥

सजीवनि साधै नहीं, तातैं मरि मरि जाइ ।
दादू पीवै राम रस, सुख मैं रहै समाइ ॥ २९ ॥

---

२४—जीवहु=मृत्यु से बचो, सार्थक जीवो । आतम साधन सार = आत्मसाक्षात्कार करना यही जीवन का साधन सार है ।

२५—वंचै काल=काल से बच जाय, वासना की अतृप्ति तथा वासना की व्यर्थताजन्य काल से ।

२६—सजीवनी के साथि=आत्मज्ञान रूपी संजीवनी की प्राप्ति के लिये मरणे को अपनाया, वह मरना सार्थक है । लाहामूल=लाभ सहित मूल ।

२८—अनंत उपाव=जप, तप, तीर्थादि नाना कर्मज उपाय ।

२९—संजीवनी साधै नहीं=नामचिन्तन स्वस्वरूप परिचय रूपी संजीवनी की साधना नहीं करता ।

दिन दिन लहुँडे हूँहिं सब, कहैं मोटा होता जाइ ।
दादू दिन दिन ते बढ़ैं, जे रहैं राम ल्यौ लाइ ॥ ३० ॥
न जाणूं हांजी चुप गहि, मेटि अगिन की झाल ।
सदा सजीवन सुमिरिये, दादू बंचे काल ॥ ३१ ॥

मुक्ति अमोघ—जीवनमुक्ति

दादू जीवत छूटै देह गुण, जीवत मुकता होइ ।
जीवत काटै कर्म सब मुकति कहावै सोइ ॥ ३२ ॥
दादू जीवत ही दृतर तिरै, जीवत लंघे पार ।
जीवत पाया जगत गुरु, दादू ज्ञान विचार ॥ ३३ ॥
जीवत जगपति कौं मिलै, जीवत आतमराम ।
जीवत दर्सन देखिये, दादू मन विश्राम ॥ ३४ ॥
जीवत पाया प्रेम रस, जीवत पिया अघाइ ।
जीवत पाया स्वाद सुख, दादू रहे समाइ ॥ ३५ ॥
जीवत भागे भरम सब, छूटे कर्म अनेक ।
जीवत मुकत सदगत भये, दादू दर्सन एक ॥ ३६ ॥

---

३०—लहुंडे हूंहि सब=जन्म लिया हुआ प्राणी दिन-२ आयु क्षीण होने से छोटा होता जाता है ।

३१—ना जाणूं हांजी चुप गहि = किसी भी कार्य में अपने को कर्ता न समझ निरभिमान हो असंग भाव से शुद्ध कर्म कर ।

३३—दूतर तिरै = गुण विकारमय दुस्तर संसार से पार हो जाय ।

३४—दृष्टान्त—*द्वै नित लड़ती मातली, इक सन्तन को पूछ ।*
*जड़ी दई दांतों तले, बोलिये ना कह कुछ ॥*

३६—भरम सब = असत्य में सत्य की प्रतीतिरूप भ्रान्तियें । कर्म अनेक = वासनामय सब कर्म छूट गये । सदगत = सार्थक जीवन । दर्शन एक=एक ब्रह्माकार वृत्ति की स्थिरता ।

जीवत मेला ना भया, जीवत परस न होइ ।
जीवत जगपति ना मिले, दादू बूडे सोइ ॥ ३७ ॥
जीवत दूतर ना तिरे, जीवत न लंघे पार ।
जीवत निरभै ना भये, दादू ते संसार ॥ ३८ ॥
जीवत प्रगट ना भया, जीवत पर्चा नांहि ।
जीवत न पाया पीव कौं, बूडे भौजल मांहिं ॥ ३९ ॥
जीवत पद पाया नहीं, जीवत मिले न जाइ ।
जीवत जे छूटे नहीं, दादू गये विलाइ ॥ ४० ॥
दादू छूटै जीवतां, मूवां छूटै नांहि ।
मूवां पीछै छूटिये, तौ सब आये उस मांहिं ॥४१ ॥
मूवां पीछै मुकति बतावैं, मूवां पीछै मेला ।
मूवां पीछै अमर अभै पद, दादू भूले गहिला ॥ ४२ ॥
मूवां पीछै बैकुंठ बासा, मूवां सुरग पठावै ।
मूवां पीछै मुकति बतावै, दादू जग बौरावै ॥ ४३ ॥

---

३७—मेला = मिलाप, संयोग । परस = ऐक्यभाव । बूडे=डूबे ।

३८—दादू ते संसार=वे पुनः-२ संसार में ही उलझेंगे ।

३९—प्रगट = निरावरण, प्रत्यक्ष । पर्चा=अपरोक्ष दर्शन । पीवकों=अपने पालक को ।

४०—पद पाया=निर्भय पद, स्वस्वरूपस्थिति । छूटे नहीं=कर्मबन्धनों से ।

४१—छूटै जीवतां=कर्मों का बन्धन जीवन में ही साधन द्वारा काटा जा सकता है । यदि मरना ही कर्मबन्धन की निवृत्ति का कारण हो तो सारा संसार मरता है वह मरते ही कर्मों के बन्धन से मुक्त क्यों न हो जाय ? पर होता नहीं है । अतः जीवन में ही उन बन्धनों को तोड़ने का यत्न करना चाहिये ।

४२—मुकति बतावै=हरिद्वार, गया आदि तीर्थों में जाने से मृतक की मुक्ति बतावे ।

४३—दादू जग बौरावै = जो धर्मज्ञ, दान श्राद्ध, गया श्राद्ध आदि द्वारा मृत व्यक्ति की

मूवां पीछै पद पहुंचावै, मूवां पीछै तारै ।
मूवां पीछै सदगति होवै, दादू जीवत मारै ॥ ४४ ॥
मूवां पीछै भगति बतावैं, मूवां पीछै सेवा ।
मूवां पीछै संजम राषैं, दादू दोजग देवा ॥ ४५ ॥

सजीवन

दादू धरती क्या साधन किया, अंबर कौन अभ्यास ।
रवि ससि किस आरम्भ थैं, अमर भये निज दास ॥४६॥
साहिब मारे ते मुये, कोई जीवै नांहिं ।
साहिब राखै ते रहैं, दादू निज घर मांहिं ॥ ४७ ॥
जे जन राखे रामजी, अपनै अंग लगाइ ।
दादू कुछ व्यापै नहीं, कोटि काल झखि जाइ ॥ ४८ ॥

इति सजीवन को अङ्ग सम्पूर्ण ॥ २६ ॥

---

मुक्ति का उपदेश करते हैं वे संसार के अज्ञानी प्राणियों को बहकाते हैं ।

४५—दो जग देवा=वे दो जख=नरक-यातना के दाता हैं ।

४७—मारे=परमात्मा को जो भूले—या परमात्मा ने जिनको भुलाये । जीवै नांहिं=जीवन्मुक्त दशा के विना कोई जीवित नहीं कहा जा सकता । साहिब राखै=जिनने ईश्वर को आत्मा को सर्वदा स्मृति में रखा ।

४८—भावार्थ—जो साधक पुरुष रामजी=आत्माराम को, अपने अंग=अन्तःकरणमें, लगाइ= स्थिर कर राखे, वासनाजन्य कोई गुण वृत्ति में उत्पन्न हो नहीं, वे ही जीवित रहते हैं, जीवन्मुक्ति का आनन्द प्राप्त करते हैं । उनसे काल कितना ही संघर्ष करे काल का वश नहीं चलता ।

❀ सजीवन को अंग समाप्त ❀
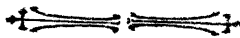
# अथ पारिष को अङ्ग ॥ २७ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १

दादू मन चित आतम देखिये, लागा है किस ठौर ।
जहं लागा तैसा जाणिये, का देखै दादू और ॥ २ ॥

दादू साधु परखिये, अंतर आतम देख ।
मन मांहैं माया रहै, कै आपै आप अलेख ॥ ३ ॥

दादू मन की देखि करि, पीछै धरिये नांव ।
अंतरगति की जे लखैं, तिनकी मैं बलि जांव ॥ ४ ॥

यहु परख सराफी ऊपली, भीतर की यहु नांहिं ।
अंतर की जाणैं नहीं, तातैं खोटा खांहिं ॥ ५ ॥

दादू जे नांहीं सो सब कहैं, है सो कहै न कोइ ।
खोटा खरा परखिये, तब ज्यौं था त्यौं ही होइ ॥ ६ ॥

घट की भानि अनीति सब, मनकी मेटि उपाधि ।
दादू परहर पंचकी, राम कहैं ते साध ॥ ७ ॥

---

२—चित=प्राण । आतम=बुद्धि । जहं लागा=विषयवासना, या नामचिन्तन में ।

३—परखिये=परीक्षा करिये । अन्तर आतम=अन्तःकरण की प्रवृत्ति ।

४—पीछे धरिये नांव = साधु असाधु नाम पीछे रखना ।

५—परख सराफी=पहचान, परीक्षा । ऊपली=दिखावे मात्र की, सारहीन है । तातैं खोटा खांहिं=उसी ऊपरी परीक्षावश ही सन्त का अनादर, असन्त का आदर कर खोटा भोग रहे हैं ।

७—घटकी=शरीराध्यासरूपी अनीति । मन की=अन्तःकरण की । मेटि उपाधि=चंचलता, वासना । परहर पंचकी=पांच ज्ञानेन्द्रियों की विषय-वृत्ति दूर कर । राम कहै=इस

अरथ आया तब जाणिये, जब अनरथ छूटै ।
दादू भांडा भरम का, गिर चौडै फूटै ॥ ८ ॥
दादू दूजा कहिबे कौं रह्या, अंतर डार्‌या धोइ ।
ऊपर की ये सब कहैं, मांहिं न देखै कोइ ॥ ९ ॥
दादू जैसे मांहैं जीव रहै, तैसी आवे बास ।
मुख बोलै तब जाणिये, अंतर का परकास ॥ १० ॥
दादू ऊपर देखि करि, सब को राखै नांव ।
अंतरगति की जे लखैं, तिनकी मैं बलि जांव ॥ ११ ॥

जगजन विपरीति

तन मन आतम एक है, दूजा सब उनहार ।
दादू मूल पाया नहीं, दुविध्या भर्म विकार ॥ १२ ॥
काया के सब गुण बंधे, चौरासी लख जीव ।
दादू सेवग सो नहीं, जे रंग राते पीव ॥ १३ ॥
काया के वसि जीव सब, ह्वै गये अनंत अपार ।
दादू काया वसि करै, निरंजन निराकार ॥ १४ ॥

---

तरह आत्मचिन्तन करे । ते साध = वस्तुतः वे ही साधु=श्रेष्ठ पुरुष हैं ।

८—अर्थ आया=सही काम आया, सार्थक हुआ । अनरथ छूटै=मन वाणी काया के दोष मिटैं । भांडा भ्रम का = असत्य में सत्य की प्रतीति का ।

दृष्टान्त—*साध एक त्यागी सदा, सेवग बान्धी म्होर ।*
*कथा करत सकुचे वदन, गई वदत सरजोर ॥*

९—कहवे को = कथनमात्र को । ऊपर की=दिखावे मात्र की । मांहिं=अन्तःकरण में ।

१०—जैसे मांहैं = जिस तरह की प्रवृत्ति में । अन्तर का=अन्तःकरण का । परकास=आशय ।

१२—तन मन आतम एक है=सभी मानवशरीरों में पंचभूत मन तथा चेतना एक से हैं । दुविध्या=संशय । भर्म=भ्रान्ति । विकार=विषय ।

१४—काया के वसि=शरीर की प्रवृत्तियों के वशीभूत । काया वस करे=मन इन्द्रिय प्राण

पूरण ब्रह्म बिचारिये, तब सकल आत्मा एक ।
काया के गुण देखिये, तौ नाना बरण अनेक ॥ १५ ॥

नर बिडरूप

मति बुद्धि बमेक विचार बिन, माणस पसू समान ।
समझाया समझै नहीं, दादू परम गियान ॥ १६ ॥
सब जीव प्राणी भूत हैं, साधु मिलै तब देव ।
ब्रह्म मिलै तब ब्रह्म हैं, दादू अलख अभेव ॥ १७ ॥

करतूति कम

दादू बंध्या जीव है, छूटा ब्रह्म समान ।
दादू दोनौं देखिये, दूजा नांहीं आन ॥ १८ ॥
कर्मों के बस जीव है, कर्म रहित सो ब्रह्म ।
जहं आत्म तहं परमात्मा, दादू भागा भ्रम ॥ १९ ॥

पारिख अपारिख

काचा उछलै ऊफणै, काया हांडी मांहिं ।
दादू पाका मिल रहै, जीव ब्रह्म द्वै नांहिं ॥ २० ॥

---

पर अपना अधिकार करे ।

१५—पूर्ण ब्रह्म विचारिये=लक्ष्य अर्थ का विचार करे, व्यापक समष्टि शक्ति का विचार करे तो ।

१६—मति=परमार्थ-भाव प्रधान । बुद्धि=संसार व्यवहार प्रधान । विमेक=सत्यज्ञान । विचार = आत्म विचार ।

१७—सब जीव प्राणी भूत हैं = संसार की विषय वासना में उलझे मानव प्राणी भूत प्रेतवत् है ।

१८ – बन्ध्या = विषयवासना, मोह के बन्धनों से बंधा हुआ । छूटा = मुक्त हुआ, वासना, मोह, अहंकार से रहित ।

१९—जहं आत्म तहं परमात्मा=अभेद निश्चय ।

२०—काचा उछलै ऊफणै=रागादि कषाय युक्त अन्तःकरण काचा है, उसमें वासना की

दादू बांधे सुर नवाये बाजैं, एह्वा सोधि रु लीज्यो ।
राम सनेही साधू हाथे, बेगा मोकलि दीज्यो ॥ २१ ॥
प्राण जौहरी पारिखू, मन खोटा ले आवै ।
खोटा मनकै माथै मारै, दादू दूरि उडावै ॥ २२ ॥
श्रवण हैं नैना नहीं, तार्थे खोटा खांहि ।
ज्ञान विचार न ऊपजै, सांच झूठ समझांहिं ॥ २३ ॥

साच

दादू सांचा लीजिये, झूठा दीजै डार ।
सांचा सनमुख राखिये, झूठा नेह निवारि ॥ २४ ॥
सांचे कूं सांचा कहै, झूठे कूं झूठा ।
दादू दुविध्या को नहीं, ज्यौं था त्यौं दीठा ॥ २५ ॥

---

उछाल अहंकार की उफाण होती रहती है। पाका=रागादि पंच कषाय से रहित, वह पाका = पक्का स्थिर निश्चल है।

२१—इस साखी के प्रसंग का कथानक है कि महाराज ने गुजरात से मंजीर मंगवाये तब यह साखी शिष्यों को लिखकर दे दी गई थी।

भावार्थ—बँधे सुर में बोलने वाले-मधुर आवाज निकालने वाले ऐसे मंजीर तलाश कर किसी प्रेमी महात्मा के हाथ जल्दी भेज देना।

इसका अन्य अर्थ भी है-जो साधक प्राण स्थिर कर चुका, किसी वासना से वृत्ति का उत्थान नहीं होता ऐसे सन्त साधक को तलाश कर जो परमात्मा का प्यारा है उसके हाथ में अपने आपको जल्दी से जल्दी समर्पित करदें ताकि अपने को अपने लक्ष्य तक पहुंचने का मार्ग प्राप्त हो।

दृष्टान्त—*गुरु दादू गुजरात से, मंगवाए मंजीर।*
*तब यह साखी लिख दई, सुनि ल्याये सिख धीर॥*

२२—प्राण=अन्तःकरण। जौहरी=सन्त महात्मा।

२३—श्रवण=श्रुतज्ञान है। नैना नहीं=विवेक विचार के नेत्र नहीं हैं।

२४—साचा सनमुख राखिये=साचा जिज्ञासु साधक है उसको आत्माभिमुख लगाये रहिये।

पारिख अपारिख

दादू हीरे कौं कंकर कहैं, मूरिख लोग अजान ।
दादू हीरा हाथि ले, परखैं साध सूजान ॥ २६ ॥

सगुरा निगुरा

सगुरा निगुरा परखिये, साध कहैं सब कोइ ।
सगुरा सांचा निगुरा झूठा, सहिब के दर होइ ॥ २७ ॥
सगुरा सति संजम रहै, सनमुख सिरजनहार ।
निगुरा लोभी लालची, भूंचै विषै विकार ॥ २८ ॥

कर्ता कसौटी

खोटा खरा परखिये, दादू कसि कसि लेइ ।
सांचा है सो राखिये, झूठा रहण न देइ ॥ २९ ॥

पारिख अपारिख

खोटा खरा करि देवै पारिष, तौ कैसे बनि आवै ।
खरे खोटे का न्याव नबेरै, साहिब के मन भावै ॥ ३० ॥
दादू जिन्है ज्यौं कही तिन्हैं त्यौं मानी, ज्ञान विचार न कीन्हां ।
खोटा खरा जीव परखि न जानैं, झूठ साच कर लीन्हां ॥ ३१ ॥

---

२६—हीरे कों=निर्द्वन्द्व जिज्ञासु साधक को। साध=आत्मानुभवी महात्माजन।

२८—सगुरा=गुरु उपदेश के अनुसार चलने वाला। भूंचै=भोगे।

२९—कसि कसि लेइ=भली प्रकार परीक्षा कर करके निश्चय करे।

३०—खोटा खरा कर देवै पारिख=परीक्षक यदि खोटे को=विषयासक्त को, खरा=आत्मनिष्ठ बतायें तो कैसे ठीक रहे?

कर्ता कसौटी

**जे निधि कहीं न पाइये, सो निधि घरि घरि आहि ।**
**दादू मंहगे मोल बिन, कोई न लेवै ताहि ॥ ३२ ॥**
**खरी कसौटी कीजिये, वाणी बधती जाइ ।**
**दादू साचा परखिये, मंहगे मोल विकाइ ॥ ३३ ॥**
**दादू राम कसै सेवग खरा, कदे न मोड़ै अंग ।**
**दादू जब लग राम है, तब लग सेवग संग ॥ ३४ ॥**
**दादू कसि कसि लीजिये, यहु ताते परिमान ।**
**खोटा गांठ न बांधिये, साहिब के दीवान ॥ ३५ ॥**
**दादू खरी कसौटी पीव की, कोई विरला पहुँचनहार ।**
**जे पहुँचे ते ऊबरे, ताइ किये ततसार ॥ ३६ ॥**
**दुर्बल देही निर्बल वाणी, दादू पंथी ऐसा जाणी ॥ ३७ ॥**

---

३२—जे निधि=जो सम्पत्ति, आत्मज्ञानी महात्माजन । आहि=आती है। मंहगे मोल बिन= अधिक कीमत बिना, तन मन समर्पण रूपी मूल्य विना ।

दृष्टान्त—*दादूजी दोपा विषै, घर घर ढूंढ़ी जाग ।*
*पारख विना वाहिज गए, वृद्ध मिल्यो बड़ भाग ॥ १ ॥*
*दुर्वासा दुर्बल बरण, जामूं जग हो जास ।*
*पुनि तिय पति को जाणिये, मूसल रजु कहि दास ॥ २ ॥*

३३—वाणी बढ़ती जाय=महिमा की वृद्धि होती जाय ।

३४—पूर्वार्ध—परमात्मा अपने अभ्यासी की कड़ी परीक्षा करता है । वही सेवक परीक्षा में सफल होता है जो कभी विविध लालच सामने आने पर भी नहीं डिगे ।

३५—यह ताते परमान=यह तात्विक प्रमाण है कि सच्चे झूठे की सम्यक् पहिचान करे । दीवान=दरबार में ।

३६—ताइ किये ततसार=ज्ञानाग्नि में खूब तपा तपाकर, सार=तत्त्व बना दिया ।

दादू साहिब कसै सेवग खरा, सेवग कौं सुख होई।
साहिब करै सो सब भला, बुरा न कहिये कोइ ॥ ३८ ॥
दादू ठग आंबेरि मैं, साधौं सौं कहियो।
हम सरणाई राम की, तुम नीके रहियो ॥ ३६ ॥
इति पारिख को अंग समाप्त ॥ २७ ॥

---

# अथ उपजण को अङ्ग ॥२८॥

दादू नमो नमो निरंजनम् नमस्कार गुरुदेवतः।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

विचार

दादू माया का गुण बल करै, आपा उपजै आइ।
राजस तामस सातगी, मन चंचल ह्वै जाइ ॥ २ ॥

---

३८—दृष्टान्त—*सन्त एक नृप पुर वसै, भली करी कह राम।*
*असुगज मरतैं भी कह्यो, पग टूटत भल राम ॥*
*पारिष को अंग सम्पूर्ण*

---

२—इस साखी में जड़ जगत का संक्षिप्त परिचय कहा गया है। माया मूल प्रकृति या शुद्ध सत्त्व प्रधान माया में सत्त्व का उद्रेक हो तब महान् अहंकार, पंचतन्मात्रादि प्रकृति विकृति का विस्तार होता है। प्रकृति से महान् महान् से फिर आपे=अहंकार की उत्पत्ति होती है। अहंकार में गुण विशेष के सम्बन्ध से तन्मात्रा भूतादि इन्द्रिय विकारों का विकाश होता है, ये सब संभार जिसका इस देह में अन्तःकरण से विशेष सम्बन्ध रहता है-है, अतः अन्तःकरण इनसे अनवरत चंचल होता रहता है।

आपा नाहीं बल मिटै, त्रिविध तिमिर नहिं होइ ।
दादू यहु गुण ब्रह्म का, सुंनि समाना सोइ ॥ ३ ॥

उपजण

दादू अनभै उपजी गुणमयी, गुण ही पै लेजाइ ।
गुणही सौं गहि बंधिया, छूटै कौन उपाय ? ॥ ४ ॥
द्वै पख उपजी परहरै, निरपख अनभै सार ।
एक राम दूजा नहीं, दूजा लेहु विचार ॥ ५ ॥

दृष्टान्त—*एक गुसांई द्रव्य ते, आवो बोले बोल ।*
*द्रव्य नृप लिया मद उतरियो, सरल भयो जिमि न्योल ॥*

३—इसमें चेतन का संक्षिप्त परिचय कहा गया है । अंग उपजण का है अतः अंग के अनुसार जड़ चेतन माया ब्रह्म का सामान्य दिग्दर्शन पहिले कराना संगत है ।

भावार्थ—चेतना सत्ता जो माया अविद्या अंश से रहित अवस्था में रहती है, तब न तो वहां गुण सम्बन्ध है न वहां अहंकार है । न वहां मूला, तूला लेखा अविद्या का आवरण रूप अन्धकार रहता है । सुंनि समाना=शून्यवत् स्फुरण रहित स्थिति है । इसी चेतन सत्ता का नाम ब्रह्म शब्द से कहा गया है ।

४—भावार्थ—स्वकीय स्फुरणा से उत्पन्न हुई माया त्रिविध अविद्यांस में परिवर्तित होती हुई गुण विस्तार की ओर ही बढ़ती जाती है । शुद्ध चेतन का अंश अविद्यादि अंसों से आवृत होता हुआ उसीसे आबद्ध हो जाता है, माया प्रपंच अविधा आवृत चिदाभास रूप जीवांस की इस आवरण-बन्धन से मुक्ति कैसे हो ?

५—इस साखी में चिदाभास की बन्ध निवृत्ति का निर्देश किया गया है । जो लय -विलय वाले दो स्वरूप से उत्पन्न होने वाला विश्व प्रपंच है उसकी सब प्रकृतियें परित्याग करे अर्थात् जितना विषय प्रपंच है उसकी आसक्ति का सर्वथा निवारण करे । निरपेक्ष द्वन्द्व व गुण रहित वृत्ति से सार=सत्य चेतन तत्व है उसकी अनुभूति में लगे । एकत्व भाव का ही निश्चय करे । असत्य द्वैतभाव को असत्य समझ उससे वृत्ति का अनुबन्ध न होने दे । इसी विचार का परिपाक करे तब बन्ध निवृत्ति प्राप्त हो ।

दादू काया व्यावर गुणमयी, मन मुख उपजै ज्ञान।
चौरासी लख जीव कौं, इस माया का ध्यान ॥ ६ ॥

आतम उपजि अकाश की, सुणि धरती की बाट।
दादू मारग गैब का, कोई लखै न घाट ॥ ७ ॥

आतम बोधी अनभई, साधू निरपख होइ।
दादू राता राम सौं, रस पीवैगा सोइ ॥ ८ ॥

प्रेम भगति जब ऊपजै, निहचल सहज समाधि।
दादू पीवै रामरस, सतगुरु के परसाद ॥ ९ ॥

प्रेम भगति जब ऊपजै, पंगुल ज्ञान विचार।
दादू हरिरस पाइये, छूटैं सकल विकार ॥ १० ॥

दादू बंझ बियाइ आत्मा, उपज्या आनन्द भाव।
सहज सील संतोष सत, प्रेम मगन मन राव ॥ ११ ॥

---

६--काया=नाम रूपमय प्रपंच। व्यावर=व्याने वाली, प्रसार पाने वाली।

७--इस साखी में विहंगम, पिपीलिका तथा गैबी साधन मार्गों का निरूपण है।

भावार्थ—वृत्ति में निर्लेप भावना की स्थिर स्थिति हो यह विहंगम मार्ग है। इसमें वृत्ति आकाश की तरह निर्लेप रहती है। आकाश सब वस्तुओं में व्याप्त है फिर भी उस वस्तु के गुण धर्मों से निर्लिप्त रहता है, ऐसे ही साधक की वृत्ति रहे। शून्य अवस्थावत् वृत्ति में भेदज्ञान की स्थिति है वह पीपिलिका मार्ग है, शून्य में अहंत्व ज्ञान का अभाव रहता है ऐसी ही वृत्ति साधक की बने वह शून्य मार्ग है।

आकस्मिक परिस्थिति से आत्मज्ञान की सहसा प्राप्ति होना इसको गैबी मार्ग कहते हैं। जैसे दादूजी को वृद्धोपदेश से हुआ। यह गैबी मार्ग है।

८—आत्मबोधी अनभई=आत्म-परिचय-साधना-सिद्ध साधक ही अपने अनुभव से निष्पक्ष दशा को प्राप्त हो सकता है।

१०--प्रेम भगति=प्रेमा भक्ति, पराभक्ति। पंगुल ज्ञान=गुण माया में रहित शुद्ध ज्ञान।

११—आत्मा=स्थिर बुद्धि। बंझ वियाई=बांझ पुत्र की तरह आत्मज्ञान को पैदा किया।

निंदा

जब हम ऊजड़ चालते, तब कहते मारग मांहिं।
दादू पहुंचे पंथ चलि, कहैं यहु मारग नांहिं ॥ १२ ॥

उपजण

पहिले हम सब कुछ किया, भरम करम संसार।
दादू अनभै ऊपजी, राते सिरजनहार ॥ १३ ॥
सोई अनभै सोई उपजी, सोई सबद तत सार।
सुणतां ही साहिब मिलै, मन के जांहिं विकार ॥ १४ ॥

परिचय जिज्ञासा उपदेश

पारब्रह्म कह्या प्राण सौं, प्राण कह्या घट सोइ।
दादू घट सब सौं कह्या, विष अमृत गुण दोइ ॥ १५ ॥

---

मन राव=अहंकार वासना रहित मन निर्विकल्प रूप वृत्ति वाणीको पाकर आत्मानन्द के प्रेम में मग्न हो रहा है।

१२—ऊजड़ चालते=संसारी पदार्थों की प्राप्ति में लगे प्रयास करते। पहुंचे पंथ चलि= निवृत्ति द्वारा प्रेम भक्ति के पंथ चले तब दुनियावी लोग कहते हैं यह पागल हो गये हैं।

१४—पूर्वार्द्ध—अनुभव उपजन तथा शब्द वही सार्थक है जिससे सार वस्तु की प्राप्ति हो सके।

१५—इस साखी में ज्ञान की प्राप्ति की परंपरा का संकेत है।

भावार्थ—कूटस्थ व्यापक ब्रह्म से हिरण्यगर्भ में, हिरण्यगर्भ से प्रतिबिंबित जीव चेतन में ज्ञान का प्रवाह आता है। जीव चेतन से फिर अन्य जीवों में ज्ञान प्रसार चलता है। इस तरह प्रवृत्ति रूप विष और निवृत्ति रूप अमृत के ज्ञान की परम्परा है।

दादू मालिक कह[illegible]ा अरवाह सौं, अरवाह कह्या औजूद।
औजूद आलम सौं कह[illegible]ा, हुकम खबर मौजूद ॥ १६ ॥

उपजण

दादू जैसा ब्रह्म है, तैसी अनभै उपजी होइ।
जैसा है तैसा कहै, दादू विरला कोइ ॥ १७ ॥

इति उपजन को अंग सम्पूर्ण ॥ २८ ॥

---

# अथ दया निर्बैरता को अङ्ग ॥२९॥

—:※:※:—

नमो नमो निरंजनम् , नमस्कार गुरुदेवतः।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार।
निर्बैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार ॥ २ ॥

---

१६—उपर्युक्त साखी का भाव ही इसमें अन्य शब्दों से कहा गया है। अर्थ वही है।
मालिक = समष्टि कूटस्थ चेतन। अरवाह=अन्त:करण। [illegible] शरीर।
आलम=जहान। हुकम खबर मौजूद=यह उस मालिक का हुकम है इसमें तत्पर रहो।

—उपजण का अंग समाप्त—

---

२—इस साखी में दादूजी ने जीवन को किस तरह व्यतीत करना उसका सार रूप बताया है। संसार में विभिन्न धर्मों मतों के नाना कर्त्तव्य कहे गये हैं। दादूजी ने सभी धर्म मतमतान्तर का समन्वय किया है।

भावार्थ—आपे का त्याग, आत्मचिन्तन, तन मन के विकार दूर करना, सब प्राणियों से प्रेम यही मत=यह मार्ग सारमय है।

दादू निर्बैरी निज आत्मा, साधन का मत सार।
दादू दूजा राम बिन, वैरी मंझि विकार॥ ३॥

निर्वैरी सब जीव सौं, संत जन सोइ।
दादू एकै आत्मा, बैरी नहिं कोई॥ ४॥

सब हम देख्या सोधि करि, दूजा नांहीं आन।
सब घट एकै आत्मा, क्या हिंदू मुसलमान॥ ५॥

दादू नारि पुरुष का नांव धरि, इहि संसै भर्मि भुलान।
सब घट एकै आत्मा, क्या हिंदू मुसलमान॥ ६॥

दादू दोनौं भाई हाथ पग, दोनौं भाई कान।
दोनौं भाई नैन हैं, हिंदू मुसलमान॥ ७॥

दादू संसा आरसी, देखत दूजा होइ।
भरम गया दुविध्या मिटी, तब दूसर नांहीं कोइ॥ ८॥

---

३—निर्बैरी निज आत्मा=चेतन में वैरभाव है ही नहीं यह साधु पुरुषों का मत है। वैरी मंझि विकार=मानव के वैरी तो उसमें जो कामादि विकार हैं वे ही हैं बाहरी कोई शत्रु नहीं है।

४—एकै आत्मा=आत्म तत्व सभी में एक है अतः वैर किससे हो।

५—दूजा नाहीं आन=अशेष चेतन सृष्टि में एक ही चेतन है, दूसरा है ही नहीं। अतः प्राणियों में मित्रता या द्वेष अज्ञान से है वस्तुतः नहीं।

६ - इहि संशै भ्रम भुलान=इस स्त्री पुरुष के लिंग भेदमय विकल्प ज्ञान, देह आत्मा में संशय ज्ञान से भ्रान्त हो लोग भूल रहे हैं।

८—पूर्वार्ध=संशय सम्पन्न बुद्धि से हमें जो भ्रमपूर्ण ज्ञान होता है तभी द्वैत की प्रतीति होती है।

किस सौं बैरी ह्वै रह्या, दूजा कोई नांहिं।
जिसके अंग थैं ऊपजे, सोई है सब मांहिं ॥ ९ ॥
सब घटि एकै आत्मा, जानै सो नीका।
आपा पर मैं चीन्हि ले, दर्शन है पीवका ॥ १० ॥
काहे कौं दुख दीजिये, घटि घटि आतमराम।
दादू सब संतोषिये, यह साधू का काम ॥ ११ ॥
काहे कौं दुख दीजिये, सांई है सब मांहिं।
दादू एकै आतमा, दूजा कोई नांहिं ॥ १२ ॥
साहिबजी की आतमा, दीजै सुख संतोष।
दादू दूजा को नहीं, चौदह तीनौं लोक ॥ १३ ॥
दादू जब प्राण पिछाणै आपकौं, आत्म सब भाई।
सिरजनहारा सबन का, तासौं ल्यौ लाई ॥ १४ ॥
आत्मराम विचारि करि, घटि घटि देव दयाल।
दादू सब संतोषिये, सब जीऊं प्रतिपाल ॥ १५ ॥
दादू पूरण ब्रह्म विचारि ले, दुतीभाव करि दूर।
सब घटि साहब देखिये, राम रह्या भरपूर ॥ १६ ॥
दादू मंदिर काच का, मर्कट सुनहां जाइ।
दादू एक अनेक ह्वै, आप आप कौं खाइ ॥ १७ ॥

---

८—अंग से=जिसके अवयव से।

१०—आपापर=अपने तथा दूसरों में। चीन्हिले=देख ले।

१४—प्राण पिछाणै=आत्म परिचय करे।

१६—पूर्ण ब्रह्म=समष्टि चेतन। दुतीभाव=द्वैत वृत्ति।

१७—भावार्थ=कांच के टुकडों से बने महलों में कुत्ता चलाजाय तो अपने अनेक प्रतिबिम्ब

आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार।
दादू मूल विचारिये तौ दूजा कौन गंवार ॥ १८ ॥

अदया हिंसा—वनस्पतियों में जीवभाव

दादू सूका सहजैं कीजिये, नीला भानैं नांहिं।
काहे कौं दुख दीजिये, साहिब है सब मांहिं ॥ १९ ॥

दया निर्वैरता

घट घट के ऊणहार सब, प्राण परस ह्वै जाइ।
दादू एक अनेक ह्वै, बरतै नाना भाइ ॥ २० ॥
आये एकंकार सब, सांईं दिये पठाइ।
दादू न्यारे नांव धरि, भिन्न भिन्न ह्वै जाइ ॥ २१ ॥
आये एकंकार सब, सांईं दिये पठाइ।
आदि अंति सब एक है, दादू सहज समाइ ॥ २२ ॥

---

देख भ्रान्त हुवा अपने प्रतिबिम्ब को आप कुत्ता समझ उस पर आक्रमण करता है इस तरह अपने आप पर ही आक्रमण करता करता घायल हो मर जाता है। इसी तरह अनन्त पंचभूतमय शरीरों में एकही चेतन आत्मा प्रतिबिम्बित है। विविध वासना में बिखरी हुई बुद्धि विषयरत हो आत्मसम्बंध को भूल, दैहिक भ्रान्त भेद को सही समझ, राग द्वेष मय प्रवृत्ति अपना भेदभावना में प्रवृत्त होती है। इस तरह आप ही आप का संसार वैरी मित्र बनता रहता है।

१८—एक पेट=एक ही प्रकृति से

२०—एक अनेक ह्वै=एक ही चिदात्मा शारीरिक उपाधि से अनन्त सूरतों में नजर आने लगता है

२१—न्यारे नांव धरि=वर्ण, धर्म, जाति, पंथ की कल्पना से भिन्न-२ संज्ञायें कर भिन्न-२ हो जाते हैं।

आत्मदेव अराधिये, विरोधिये नहिं कोइ।
आराधैं सुख पाइये, विरोधैं दुख होइ॥ २३॥
ज्यौं आपै देखै आपकौं, यौं जे दूसर होइ।
तौ दादू दूसर नहीं, दुक्ख न पावै कोइ॥ २४॥
दादू सम करि देखिये, कुंजर कीट समान।
दादू दुबिध्या दूरि करि, तजि आधा अभिमान॥ २५॥

अदया हिंसा

दादू अरस खुदाय का, अजरावर का थान।
दादू सो क्यौं ढाहिये, साहिब का नीसाण॥ २६॥
दादू आप चिणावै देहुरा, तिसका करहि जतन।
प्रत्यख परमेसुर किया, सो भानै जीव रतन॥ २७॥
मसीति संवारी माणसाँ, तिसकौं करैं सलाम।
ऐन आप पैदा किया, सो ढाहैं मूसलमान॥ २८॥

---

२३ आत्मदेव = सब देवों में चैतन्य आत्मा है वही एक देव है। अराधिये=उसी की आराधना-सेवा पूजा करिये।

२४—भावार्थ—ज्यों आपै देखे आपको=जिस वृत्ति से हम अपने आपको देखते हैं वैसे ही उसी वृत्ति से सारे संसार को देखें तो न कोई दूसरा दिखाई पड़े, न किसी क्लेश का सामना करना पड़े।

*दृष्टान्त—काजी से कहि पातसा, मम सुत सब ही पढाइ।*
*विद्या पर दिये चाव का, रोक दियो ले जाई॥ १॥*

२५—दुविधा=द्वैतभावना, भेदबुद्धि।

२६—अरस खुदाय का = प्रत्येक प्राणी ईश्वर का ही देह है। नीसाण = प्रत्याकृति, चिन्ह।

२७—देहुरा = देवस्थान। जतन = उपाय। भानै=तोड़े।

२८—मांणसां=मनुष्यों ने। ऐन=स्वयं, खुद।

दादू जंगल माँहैं जीव जे, जग थैं रहैं उदास।
भै भीत भयानक राति दिन, निह्चल नांहीं बास ॥२६॥
वाचा बंधी जीव सब, भोजन पानी घास।
आत्मज्ञान न ऊपजै, दादू करहि विनास ॥ ३० ॥
काला मुंह करि करद का, दिल थैं दूर निवार।
सब सूरति सुबहान की, मुल्लां! मुग्ध न मार ॥ ३१ ॥
गला गुसे का काटिये, मियां मनी कौं मारि।
पंचौं बिसमिल कीजिये, ये सब जीव उबारि ॥ ३२ ॥
बैर विरोधैं आत्मा, दया नहीं दिल मांहिं।
दादू मूरति रामकी, ताकौं मारन जांहिं ॥ ३३ ॥

दया निर्बैरता

कुल आलम एके दीदम, अरवाहे इषलास।
बद अमल बदकार दुई, पाक यारां पास ॥ ३४ ॥

---

३१—करद का=कुर्बानी के शस्त्र का, छुरे का। सूरति = आकृतियें। सुबहान की=परमात्मा की है। मुग्ध = मोहग्रस्त।

३२—मनी को=अहंकार को। पंचौं बिसमिल कीजिये=पांचों इन्द्रियों की आत्माभिमुख कुर्बानी करो।

३४—कुल आलम = सारा संसार। एके दीदम = एक ही रूप का है। अरवाहे इषलास= सब की आत्मा एक सा है। बद अमल बदकार दुई = बदमाशियें और लड़ाइयें भेदभावना से होती हैं। पाक=परमेश्वर है, वह उनके प्रेमियों मित्रों के सर्वदा पास है।

दृष्टान्त—*दादूजी आमेर थे, तुर्क संगोती ल्याइ।*
*तासन या माखी कही, लज्जित व्है उठि जाइ ॥*

काल झाल थैं काढकरि, आतम अंगि लगाइ ।
जीव दया यहु पालिये, दादू अमृत खाइ ॥ ३५ ॥
दादू बुरा न वांछै जीवका, सदा सजीवन सोइ ।
परलै विषै विकार सब, भाव भगति रत होइ ॥३६ ॥

मत्छर ईर्षा

ना को बैरी ना को मीत, दादू राम मिलन की चीत ॥३७॥

इति दया निर्बैरता कौ अंग संपूर्ण

---

## अथ सुन्दरी को अङ्ग ॥३०॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवत: ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

सुन्दरी विलाप

आरतिवंती सुन्दरी, पल पल चाहै पीव ।
दादू कारणि कंत के, तालाबेली जीव ॥ २ ॥

---

३५—इस साखी में दिखावटी जीवदया न कर असली जीवदया का संकेत किया है।
भावार्थ—अपने आप तथा अन्यों को विषयभोगमयी काल की ज्वाला से निकाल आत्मा में=आत्मज्ञान में लगाइये। इस आत्मज्ञानमय अमृतपान से जीव बचाओ यही सच्ची जीवरक्षा है।

३६—परलै विषै विकार सब = विषय विकार की ओर आकर्षित करने वाले सब पदार्थ नाशवान हैं।

*दया निर्बैरता को अंग सम्पूर्ण।*

---

२—यह सुन्दरी अंग सुन्दरी वृत्ति को लक्षित कर कहा गया है। अन्तःकरण की वृत्ति में

काहे न आवहु कंत घरि, क्यौं तुम रहे रिसाइ ।
दादू सुन्दरि सेज परि, जन्म अमोलिक जाइ ॥ ३ ॥
आतम अंतरि आव तूं, या है तेरी ठौर ।
दादू सुन्दरि पीव तूं, दूजा नांहीं और ॥ ४ ॥
दादू पीव न देख्या नैन भरि, कंठि न लागि धाइ ।
सूती नहिं गलि बांह दे, बिचही गई बिलाइ ॥ ५ ॥
सुरति पुकारै सुन्दरी, अगम अगोचर जाइ ।
दादू विरहनि आत्मा, उठि उठि आतुर धाइ ॥ ६ ॥

---

अपने आपको पहिचानने की प्रबल प्रेरणा उत्पन्न हो इस तरह की वृत्ति की संज्ञा ही सुन्दरी शब्द से महात्माओं ने की है । इस प्रकार की वृत्ति बनने के पश्चात् क्या होता है ? तथा क्या कर्तव्य है ? यह इस अंग में कहा गया है ।

आरतवंती = जन्म मृत्यु के दुःख से आरत । सुन्दरी=सन्तवृत्ति । पीव = कूटस्थ चैतन्य जो सबका स्वामी है । ताला वेली = तड़फन सहित अति चाहमय ।

३—कंत=अपने स्वामी, स्वस्वरूप । घरि=हृदयरूपी गेह में । सुन्दरि सेजपर=स्नेहवती वृत्ति वाली सेज—पलंग पर ।

४—आत्म अन्तर=शुद्ध हृदय प्रदेश में । सुन्दरि पीव तूं=अति स्नेहवती साधक की वृत्ति में तूं ही उसकी प्राप्ति का पीव रूप से लक्ष्य है ।

५—पीव=उपास्य, आराध्य । कंठ न लागी=अरस परस न हुई । बिच ही गई बिलाइ= आयु बीच में ही समाप्त हो गई ।

६—सुरति पुकारै सुन्दरी = अति स्नेहवती वृत्ति आत्मा स्वरूप की ही अनवरत चाह में लग गई है । अगम अगोचर जाइ=वृत्ति अन्तर्मुख हो उस अगम अगोचर जो निरुपाधिक सबका आधार है उसी की ओर लग गई है । विरहनि आत्मा = विरही साधक की बुद्धि । उठि उठि आतुर धाई = पुनः पुनः उसी की ओर आतुरता से दौड़ रही है, आकर्षित हो रही है ।

साँई कारणि सेज संवारी, सब थैं सुन्दर ठौर ।
दादू नारी नाह बिन, आणि बिठाये और ॥ ७ ॥
कोई अवगुण मन बस्या, चित थैं धरी उतार ।
दादू पति बिन सुन्दरी, हांढै घर घर बार ॥ ८ ॥

आनलगनि ( परपुरुष ) व्यभिचार

प्रेम प्रीति सनेह बिन, सब झूंठे सिंगार ।
दादू आतम रत नहीं, क्यौं मानै भर्तार ॥ ९ ॥

सुन्दरी विलाप

दादू हूं सुख सूती नींद भरि, जागै मेरा पीव ।
क्यौं करि मेला होइगा, जागै नांहीं जीव ॥ १० ॥
सखी न खेलै सुन्दरी, अपने पीव सौं जागि ।
स्वाद न पाया प्रेम का, रही नहीं उर लागि ॥ ११ ॥

---

७—सेज संवारी=शुद्ध अन्तःकरण रूपी सेज सज्जित की । सुन्दर ठौर=यही उसके लिये सब से अच्छी जगह है । नाह=पति, स्वामी, आराध्य । आंण बिठाये और=निर्गुण शुद्ध समष्टि की आराधना त्याग, सोपाधिक ससीम अवतार या देवादि को उपासनार्थ स्वीकार किया ।

८—अवगुण=विषय वासना अहंकारादि । चितथैं धरी उतारि=इसीसे उस परमात्मा ने वृत्ति को अपनी ओर आकर्षित न होने दी । पति विन सुन्दरी=स्वस्वरूप रूप पति की चाह के विना । हांढै घर घरबार=विषयरूपी घर घर वासना से पुनः पुनः प्रेरित दौड़ रही है ।

९—सब झूठे सिंगार=पूजा पाठ भजन स्मरणादि रूप श्रृङ्गार सब मिथ्या हैं यदि अनन्य प्रेम नहीं । आतम रत नहीं=आत्मा में अनुरक्त नहीं ।

१०—हूँ सुख सूती नींद भरि=मैं या मेरी वृत्ति विषय भोग में लग, अज्ञान की घोर निद्रा में प्रसुप्त है । जागे नांही जीव=यह अन्तःकरण जागता नहीं, विशुद्ध हो आत्मा की ओर प्रवृत्त होता नहीं ।

११—सखी न खेले सुन्दरी=सन्त साधक की वृत्ति अपने आत्मस्वरूप की ओर तीव्रता से

पंच दिहाड़े पीव सौं, मिलि काहे ना खेलै ।
दादू गहिली सुन्दरी, क्यौं रहे अकेलै ॥ १२ ॥

सखी सुहागनी सब कहैं, हूं'र दुहागनि आहि ।
पिव का महल न पाइये, कहां पुकारौं जाइ ॥ १३ ॥

सखी सुहागनि सब कहैं, कंत न बूझै बात ।
मनसा वाचा कर्मणा, मुरछि मुरछि जिव जात ॥ १४ ॥

सखि सुहागनि सब कहैं, पीव सौं परस न होइ ।
निसि वासुरि दुख पाइये, यहु विथा न जाणै कोइ ॥ १५ ॥

सखि सुहागनि सब कहैं, प्रगट न खेलै पीव ।
सेज सुहाग न पाइये, दुखिया मेरा जीव ॥ १६ ॥

आनलगनि व्यभिचार

पुरुष पुरातन छाडि करि, चली आन के साथ ।
सो भी संग थैं बीछुट्या, खड़ी मरोड़ै हाथ ॥ १७ ॥

---

लगती नहीं ।

१२—दिहाड़े=दिवस, दिन । गहलो=विषयभोग में पागल ।

१३—सखी = अन्य जन । सुहागनि = आत्मोपासना में लगी । हूर=मैं । दुहागनि=अनात्म पदार्थों में उलझी हुई अपने आत्मारूपी पति से त्यागी हुई हूँ । महल=स्वरूप ।

१४—कन्त=स्वामी, अपनी आत्मा । मुरछि-२=मूर्छित हो हो ।

१५—परस न = मिलाप नहीं ।

१६—प्रगट=निरावरण होकर । खेलै पीव=आत्म स्वरूप में विलीन वृत्ति उससे खेले । सेज सुहाग = हृदय प्रदेश में दर्शन ।

१७—पुरुष पुरातन = विशुद्ध समष्टि चेतनरूप ब्रह्म । आन के = देवी देवताओं के । संगथैं=

सुन्दरी विलाप

सुन्दरि कबहूं कंत का, मुख सौं नांव न लेइ ।
अपणे पिव के कारणैं, दादू तन मन देइ ॥ १८ ॥

नैन बैन करि वारणैं, तन मन पिंड परान ।
दादू सुन्दरि बलि गई, तुम परि कंत सुजान ॥ १९ ॥

तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा पिंड परान ।
सब कुछ तेरा तूं है मेरा, यहु दादू का ज्ञान ॥ २० ॥

सुन्दरी मोहै पीव कौं, बहुत भांति भर्तार ।
त्यौं दादू रिझावै राम कौं, अनंत कला कर्तार ॥ २१ ॥

नदियाँ नीर उलंघ करि, दरिया पैली पार ।
दादू सुन्दरि सो भली, जाइ मिलै भर्तार ॥ २२ ॥

सुन्दरी सुहाग

प्रेम लहरि गहि ले गई, अपने प्रीतम पास ।
आत्म सुन्दरि पीव कौं, विलसै दादू दास ॥ २३॥

---

वृत्ति सम्बन्ध से । विछुट्या = अलग हो गये ।

दृष्टान्त—*अपनो पति तिय मार कै, चली जार के संग ।*
*नदी पार पट ले गयो, नग्न फिरै जल ढिंग ॥*

१८—कंत=ब्रह्म । मुख सों नांव न लेइ = केवल नामोच्चारण रूप उपासना में ही न लगे ।

दृष्टान्त—*अन्तर्निष्ठि नृपति ज्यू , राम जपत तिय जांण ।*
*धनवारत उत्सव कियो, सुनत तजै नृप प्राण ॥*

१९—दादू सुन्दरि वल गई=सन्त वृत्ति शरीर के स्थूल सूक्ष्म संघात सहित अपने आराध्य के समर्पित हो गई ।

२१—मोहै=मोहित करे । बहुत भांति=निवृत्तिमय नाना भावना से ।

२२—नदियां=आशा तृष्णा आदि । दरिया=संसार ।

२३—प्रेम लहरि=प्रेम की अनन्य दशा । प्रीतम=उपास्य । आत्म सुन्दरि=साधक की स्नेह-

सुन्दरि कौं सांई मिल्या, पाया सेज सुहाग ।
पीव सौं खेलै प्रेमरस, दादू मोटे भाग ॥ २४ ॥
दादू सुन्दरी देह मैं, सांई कौं सेवै ।
राती अपणे पीव सौं, प्रेमरस लेवै ॥ २५ ॥
दादू निर्मल सुन्दरी, निर्मल मेरा नाह ।
दोन्यौं निर्मल मिलि रहे, निर्मल प्रेम प्रवाह ॥ २६ ॥
सांई सुन्दरी सेज परि, सदा एक रस होइ ।
दादू खेलै पीव सौं, तासमि और न कोइ ॥ २७ ॥

इति सुन्दरी कौ अंग संपूर्ण ॥ ३० ॥

---

वर्त्ता वृत्ति । विलसै=उपभोग करे ।

२४—मोटे भाग=महापुण्यमय दशा ।

२५—देह में=शुद्ध अन्तःकरण में । राती = अनुरागमयी ।

२६—निर्मल=विषय वासना अहंकार शून्य । निर्मल=माया अविद्यादि अंश रहित । निर्मल प्रेम=निष्काम स्नेह । प्रवाह=अजस्र धारा, अखंडित वृत्ति ।

२७—एक रस = अभेद स्थिति । ता समि=उसके बराबर ।

—: *सुन्दरी को अंग सम्पूर्ण* :—

# अथ कस्तूरिया मृग को अङ्ग ॥ ३१ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू घटि कस्तूरी मृग के, भर्मत फिरै उदास ।
अंतरि गति जाणै नहीं, ताथैं सूंघै घास ॥ २ ॥
दादू सब घट मैं गोविंद है, संगि रहै हरिदास ।
कस्तूरी मृग मैं बसै, सूंघत डोलै घास ॥ ३ ॥
दादू जीव न जानै राम कौं, राम जीव के पास ।
गुरु के शब्दौं बाहिरा, ताथैं फिरै उदास ॥ ४ ॥
दादू जा कारणि जग ढूंढिया, सो तौ घट ही मांहिं ।
मैं तैं पडदा भरम का, ताथैं जानत नांहिं ॥ ५ ॥

---

इस अंग में कस्तूरिया मृग के उदाहरण से अज्ञानावस्था की समानता करते हुये उसका निरूपण किया गया है ।

२—घट कस्तूरी मृग कै=जैसे मृग के शरीर में कस्तूरी है इसी तरह प्रत्येक मानव के शरीर में ही उसका आत्मा निवास करता है । ताथैं सूंघै घास=मृग को अपने ही शरीर में कस्तूरी है यह ज्ञान न होने से वह घास सूंघता फिरता है, इसी तरह साधक मानव भी अपने ही में अपनी आत्मा को न जान बाहर देवो देवादि रूप विविध उपासनामय घास सूंघता फिरता है ।

४—गुरु के शब्दों बाहिरा=गुरु के सत्य उपदेश के बिना ।

५—जाकारण=जिसकी चाह से । जग ढूंढिया=संसार में तलाश कर रहे हैं । मैं तैं पड़दा भरम का=अहंकार के कारण, मैं तैं की भ्रममय वृत्ति होने से ।

दृष्टान्त—*खाटू मकराणा बिचै, लोक खोदवा धायो ।*
*बखना रे गुरु ज्ञान सौं, धन घरु ही मैं पायो ॥*

दादू दूरि कहैं ते दूरि हैं, राम रह्या भरपूरि ।
नैनहु बिन सूझै नहीं, तातैं रवि कत दूरि ॥ ६ ॥
दादू ओडो डूंबो पाण सौं, न लधाऊं मंझ ।
न जातां ऊपाण मैं, तांई क्या ऊपंध ॥ ७ ॥
दादू केई दौडे द्वारिका, केई कासी जांहिं ।
केई मथुरा कौं चले, साहिब घटही मांहिं ॥ ८ ॥
दादू सब घट मांहैं रमि रह्या, बिरला बूझै कोइ ।
सोई बूझै राम कौं, जे राम सनेही होइ ॥ ९ ॥
दादू जड़मति जीव जाणै नहीं, परम स्वाद सुख जाइ ।
चेतनि समझै स्वाद सुख, पीवै प्रेम अघाइ ॥ १० ॥
जागत जे आनन्द करै, सो पावै सुख स्वाद ।
सूतैं सुख ना पाइये, प्रेम गंवाया बाद ॥ ११ ॥

---

६—दूरि कहैं ते दूर हैं=जो परमात्मा को शरीर से भिन्न दूर अन्य देवी देवादि में बताते हैं वे स्वयं भी परमात्मा से दूर हैं । भरपूरि=सभी स्थानों में परिपूर्ण है । नैनहु बिन= ज्ञान विज्ञानमय नेत्र, श्रुतिस्मृतिमय नेत्र, युक्ति अनुभूतिमय नेत्र । रवि = आत्मभानु ।

७—भावार्थ—जिससे यह स्थूल शरीर इतना बड़ा हुआ, उस आधार को अभी तक अपने भीतर न समझ सका । जो मानव अपने आपको समझने की प्रवृत्ति ही नहीं करता । जिसकी वृत्ति बाहर ही बाहर संसार की चकाचौंध में लग भ्रान्त है उसको क्या उपालंभ दिया जाय ।

९—रमि रह्या=व्याप्त हो रहा है । राम सनेही=आत्मराम को समझने की तीव्र इच्छा वाला ।

१०—जड़मति=स्थूल पदार्थों में ही बुद्धि का उपयोग करने वाला । परम स्वाद= आत्मानन्द रस का जायका । चेतन = मानव जीवन की सार्थकता में सावधान ।

११—जागत = जागृत, सचेत । जे=जो । सूतै=भौतिक पदार्थों में सत्य वृत्ति किये हुये असावधान ।

**दादू जिस का साहिब जागणा, सेवग सदा सुचेत ।**
**सावधान सनमुख रहै, गिर गिर पड़ै अचेत ॥ १२॥**
**दादू साँई सावधान, हमही भये अचेत ।**
**प्राणि राखि न जाणही, तार्थै निर्फल खेत ॥ १३ ॥**

सगुना निगुना कृतघनी

**दादू गोविंद के गुण बहुत हैं, कोई न जाणै जीव ।**
**अपणी बूझै आप गति, जे कुछ कीया पीव ॥ १४ ॥**

**इति कस्तूरिया मृग कौ अंग संपूर्ण ॥ ३१ ॥**

---

१२—पूर्वार्ध—जिस सेवक का स्वामी सचेत है वास्तविक है उसके सेवक सदा सावधान रहते हैं। आत्मपदार्थ रूप स्वामी ही सच्चा स्वामी है वह सदा जागरूक है। अशेष संसार के जड़ पदार्थ उसकी सत्ता से सत्तावान से लग रहे हैं, जिसने अपना स्वामी व आराध्य ही अचेत जड़ को ही बनाया है उसके उपासक सेवक बार बार अचेत मार्ग में ही पड़ते रहते हैं। सावधान उपासक हैं वे संसार के जड़ पदार्थों का व्यामोह छोड़ आत्मपदार्थ की आराधना में लगे रहते हैं वे सदा उसीके सम्मुख रहते हैं।

१३—अचेत = असावधान, अज्ञान। राख न जाण ही=हम, इस मानव जीवन को कैसे व्यतीत करना, यह ठीक से नहीं जान पाये। निर्फल खेत=इसी से जीवन रूप खेती निष्फल जा रही है।

१४—गोविन्द के गुण बहुत हैं=परब्रह्म व्यापक परमात्मा हमारे हित के लिये क्या क्या गुण=उपकार करता है वे अनन्त हैं। बूझै=जाने। जे कुछ किया पीव=पीव–परमेश्वर जो कुछ उपकार करता है उन्हें वही जानना है।

❀ कस्तूरिया मृग का अंग सम्पूर्ण ❀

# अथ निंदा को अङ्ग ॥३२॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

मत्सर ईर्षा

साधू निर्मल मल नहीं, राम रमै सम भाइ ।
दादू अवगुण काढ़ि करि, जीव रसातल जाइ ॥ २ ॥

दादू जबही साधु सताइये, तबही ऊंध पलट ।
आकास धसै धरती खिसै, तीनौं लोक गरक ॥ ३ ॥

निंदा

दादू जिहिं घर निंदा साधु की, सो घर गये समूल ।
तिन की नींव न पाइये, नांव न ठांव न धूल ॥ ४ ॥

दादू निंदा नांव न लीजिये, सुपिनैंही जनि होइ ।
ना हम कहैं न तुम सुनौं, हम जिन भाखैं कोइ ॥ ५ ॥

---

२—निर्मल=दोष रहित, निष्पाप । राम रमै=आत्मानंद में मग्न रहे । समभाइ=सब में सम बुद्धि रखे । अवगुण काढ़ि करि=ऐसे महापुरुषों में अवगुण निकाल उनकी निन्दा कर प्राणी रसातल में जाता है ।

३—ऊंध पलट=उल्टा बुरा परिणाम उत्पन्न होता है । व्यापकता तथा स्थिरता की भावना को बड़ा आघात लगता है, तीनों लोक आकाश, पाताल, मर्त्यलोक की अच्छाइयें नष्ट होती हैं ।

दृष्टान्त—खेडा पलटै धूंधली, जय अरु विजय अकाश ।
धरणी फटी जयदेव हित, तिहूँ लोक दुरवास ॥ १ ॥
नवडंडी को डंड वै, देखे सुर परसंग ।
इन्द्रलोक कंचन पुरी, जादूगर भये भंग ॥ २ ॥

४—घरि=जिस कायारूपी घर में, मानव में । समूल=जड़ सहित ।

५—निंदा=झूठे अवगुण दोष का आरोप ।

**दादू निंदा किये नरक है, कीट पडैं मुख मांहिं ।**
**राम विमुख जामैं मरैं, भग मुख आवैं जांहिं ॥ ६ ॥**
**दादू निंदक बपुरा जनि मरै, पर उपगारी सोइ ।**
**हम कूं करता ऊजला, आपण मैला होइ ॥ ७ ॥**
**दादू जिहि विधि आत्म उधरैं, परसैं प्रीतम प्राण ।**
**साधु सबद कूं निंदणा, समझै चतुर सुजाण ॥ ८ ॥**

मछर ( मत्सर ) ईर्षा

**अणदेख्या अनरथ कहैं, कलि प्रथमी का पाप ।**
**धरती अंबर जब लगैं, तब लग करैं कलाप ॥ ९ ॥**
**अणदेख्या अनरथ कहैं, अपराधी संसार ।**
**जदि तदि लेखा लेइगा, समरथ सिरजनहार ॥ १० ॥**

---

६—निंदा किये नरक है=जिस मनुष्यमें दूसरे पर दोष लगाने की आदत हो जाती है उसका अन्तःकरण सदा ही सदोष रहने लगता है अतः वह नरक का निवासी बन जाता है।

दृष्टान्त—*द्विजपुत्री इक पुरुष लखि, रैन आन गृह जात ।*
*प्रात फल तजि कीटर झड़, पितु कहे निंदा बात ॥*
*देख आईसा और तिय, वचन कह्यो लघु येह ।*
*मुहम्मद कहि तूं थूक दे, लोहू थूक्यो तेह ॥*

७—पर उपगारी सोइ=निंदा करने वाला प्रच्छन्न रूप में झूठे आरोप कर सच्चे मनुष्य की कीर्ति का अधिक प्रसार करता है अतः वह अन्यों का उपकारक भी बन जाता है।

८—साधु शब्द को निंदणा=महात्मा के आत्मोपदेश की व्यर्थ में निंदा करना ठीक नहीं यह चतुर समझदार मनुष्य जान जाते हैं।

९—अण देख्या=विना स्वयं देखे। अनरथ=झूठ, मिथ्यापवाद । प्रथमी का पाप=निंदक पृथ्वी पर पाप का बोझ बढ़ाते हैं। तब लग करैं कलाप=निंदक पुरुष तब तक दुःख का संताप सहते हैं।

दादू डरिये लोक थैं, कैसी धरहिं उठाइ ।
अणदेखी अजगैब की, ऐसी कहैं बनाइ ॥ ११ ॥

अमिट पाप प्रचंड

दादू अमृत कूं विष, विष कूं अमृत, फेरि धरैं सब नांव ।
निर्मल मैला, मैला निर्मल, जाहिंगे किस ठांव ॥१२॥

मछर ईर्षा

दादू सांचे कूं झूठा कहैं, झूठे कूं सांचा ।
राम दुहाई काढिये, कंठ थैं वाचा ॥ १३ ॥
दादू झूठ न कहिये सांच कूं, सांच न कहिये झूठ ।
दादू साहिब मानै नहीं, लागैं पाप अखूट ॥ १४ ॥
दादू झूठ दिखावैं सांच कूं, भयानक भैभीत ।
सांचा राता सांच सौं, झूठ न आनै चीत ॥ १५ ॥
सांचे कूं झूठा कहैं, झूठा सांच समान ।
दादू अचरज देखिया, यहु लोगौं का ज्ञान ॥ १६ ॥

---

११—धरहिं उठाइ=कैसी झूठी बात चला देते हैं ।

१२—भावार्थ—अमृत=सत्य, ईश्वर, आत्मा । विष = विषवत् बतावे । विषकूं अमृत= जड़ असत्य पदार्थ जिनके कारण संसार राग द्वेष में उलझ अनेकों अनर्थों में प्रवृत्त होता है उसको अमृतवत् कहता है । निर्मल=शुद्ध चेतन शक्ति आत्म पदार्थ उसको मैला और विषयभोग की वासना को निर्मल बताने वाले किस जगह शान्ति पायेंगे ?

१४—भावार्थ—साहिब माने नहीं=वह ईश्वरीय सत्ता, सत्य को झूठ और झूठ को सत्य बताना, इस तरह की हरकत को कभी स्वीकार नहीं करता । ऐसा करने वालों को अखूट=जिसका अन्त नहीं, ऐसा पाप=अपराध लगता है ।

१५—भावार्थ—मिथ्या को सत्य कह संसार को बहकाने वाले व्यक्ति, यदि उनकी इस बात

निंदा

दादू ज्यौं ज्यौं निंदै लोग बिचारा ।
त्यौं त्यौं छीजे रोग हमारा ॥ १७ ॥

इति निंदा कौ अंग संपूर्ण ॥ ३२ ॥

## अथ निगुणा को अङ्ग ॥ ३३ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

सगुणा, निगुणा कृतघ्नी

दादू चंदन बावना, बसै बटाऊ आइ ।
सुखदाई सीतल किये, तीन्यूं ताप नसाइ ॥ २ ॥

को न स्वीकार किया जाय तो वे विविध पाप लगने के भय दिखाते हैं, किन्तु सच्चा साधक उनके बहकावे में–उनके डराने में न आ अपने लक्ष्य सत्य आत्मपरिचय की साधना में लगा रहता है ।

१७—भावार्थ—निन्दक पुरुषों द्वारा जैसे-२ महात्मा पुरुषों की निन्दा की जाती है वैसे ही वैसे उनके महात्मापन के प्रच्छन्नता रूपी रोग की निवृत्ति हो उनका प्रसार बढता जाता है ।

❀ निगुणा का अंग सम्पूर्ण ❀

यह अंग अकृतज्ञ भावना वाले व्यक्तियों की प्रवृत्ति को लक्ष्य कर लिखा गया है स्वभावत: ही कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो कृत उपकार का महत्व कुछ भी नहीं मानते आत्मोपदेश की सार्थकता इस तरह के व्यक्तियों में होना शक्य नहीं, यह भी इस अंग में दिखाया है ।

२—चंदन बावना = महात्मा सन्त-जन मलयागिरि की तरह हैं । बटाऊ=जिज्ञासु साधक तीन्यूं ताप=कायिक, वाचिक, मानसिक; आध्यात्मिक आधिभौतिक, आधिदैविक ।

काल कुहाड़ा हाथि ले, काटन लागा ढाइ ।
ऐसा यहु संसार है, डाल मूल ले जाइ ॥ ३ ॥

अज्ञ स्वभाव अपलट

सतगुरु चंदन बावना, लागे रहैं भवंग ।
दादू विष छाडै नहीं, कहा करै सतसंग ॥ ४ ॥
दादू कीड़ा नरक का, राख्या चंदन मांहिं ।
उलटि अपूठा नरक मैं, चंदन भावै नांहिं ॥ ५ ॥
सतगुरु साधु सुजान है, सिखका गुण नहिं जाइ ।
दादू अमृत छाडि करि, विषै हलाहल खाइ ॥ ६ ॥
कोटि बरस लौं राखिये, बंसा चंदन पास ।
दादू गुण लीये रहै, कदे न लागै बास ॥ ७ ॥

---

दृष्टान्त—*पंखी राख्यो पेट में, चन्दन मैटी ताप ।*
*फिर ले आयो लोक बहु, काट्यो पहिले आप ॥*

३—भावार्थ—कृतघ्नी प्राणी सन्त महात्मा के उपदेश से अल्पकालिक शान्ति पाकर भी उन्हीं को निन्दित करते हुये उनके उपदेश को अपनी दुर्बलता से नष्ट करता है, जैसे चन्दन वृक्ष की छाया तथा सुगन्ध से शीतलता पाकर कृतघ्नी प्राणी चन्दन के मूल्य के लोभ से कुल्हाड़े से उसको काट काट कर नष्ट करने लगता है ।

४—भुवंग = संसारी जन सर्परूपी ।

५—दृष्टान्त—*गंधी के बाजार में, भंगी निकस्यो आय ॥*
*मुरछि पड्यो इक आय के, ले गयो नरक सुंघाय ॥१॥*

६—साधु सुजान = परम महात्मा है । सिख का गुण = कृतघ्नी शिष्य का कृतघ्नता का हेय गुण नहीं जाता ।

७—बंसा चन्दन पास = अकृतज्ञ रूप मानव बाँस की तरह चाहे जितने मलयागिरि रूप महात्मा के सत्संग में रहे, बाँस व बाँस की तरह मलिन वासना वाला मानव अपनी मलिनता त्यागता नहीं ।

कोटि बरस लौं राखिये, पत्थर पानी मांहिं ।
दादू आडा अंग है, भीतरि भेदै नांहिं ॥ ८ ॥
कोटि बरस लौं राखिये, लौहा पारस संग ।
दादू रोम का अंतरा, पलटै नांहिं अंग ॥ ९ ॥
कोटि बरस लौं राखिये, जीव ब्रह्म संगि दोइ ।
दादू मांहैं वासना, कदे न मेला होइ ॥ १० ॥

सगुणा, निगुणा, कृतघ्नी

मूसा जलता देखि करि, दादू हंस दयाल ।
मानसरोवर ले चल्या, पंखां काटै काल ॥ ११ ॥
सब जीव भुवंगम कूप मैं, साधू काढै आइ ।
दादू विषहरि विष भरै, फिर ताहि कौं खाइ ॥ १२ ॥

---

८—आडा अंग है = पत्थर में जाड्यता रूपी आड है उसी तरह अज्ञानजन्य तम की जड़ता से वह अकृतज्ञ मानव गृहीत है ।

१०—माँहैं वासना = भीतर मलिन वासना रहने पर । मेला होइ=आत्मपरिचय का मेला-समागम नहीं होता ।

दृष्टान्त—*हंस उड्यो नभ जात हो, मूसो दो मधि पेखि ॥*
*पीठ चढा सर ले चल्यो, निगुणो पंख न छेकि ॥१॥*

११—भावार्थ—संसारी जन मूँसे की तरह संसार के तापों से जलता देख सन्त महात्मा हँस रूप अपने सदुपदेश से उस मूँसे रूप मानव को मानसरोवर=शुद्ध हृदय सरोवर की ओर ले चले, पर वह अकृतज्ञ मानव उन्हीं के पंख काटने लगा—उनके उपदेश रूपी वचन पंखों को खंडित करने लगा ।

१२—जीव—अकृतज्ञ संसारी जन । भुवंगम = सर्पवत् । कूप में = वासनाजन्य दुःखों के कूवे में ।

दृष्टान्त—*चार जीव कूवे पड़्या, सगुणो निकस्यो आइ ॥*
*सर्प सिंघ नर बान्दरो, जाति सुनार दिखाइ ॥१॥*

दादू दूध पिलाइये, विषहरि विष करि लेइ ।
गुणका औगुण करि लिया, ताही कौं दुख देइ ॥ १३ ॥

अज्ञ स्वभाव अपलट

बिनही पावक जलि मुवा, जवासा जल मांहिं ।
दादू सूकै सींचतां, तो जल कौं दूषण नांहिं ॥ १४ ॥

सगुणा, निगुणा, कृतघ्नी

सफल बिरख परमार्थी, सुख देवै फल फूल ।
दादू ऊपर बैसि करि, निगुणा काटै मूल ॥ १५ ॥
दादू सगुणा गुण करै, निगुणा मानैं नांहिं ।
निगुणा मरि निरफल गया, सगुणा साहिब मांहिं ॥ १६ ॥
निगुणा गुण मानै नहीं, कोटि करै जे कोइ ।
दादू सब कुछ सौंपिये, सो फिर बैरी होइ ॥ १७ ॥

---

१३—दूध=आत्मोपदेश रूपी पय । ताही को दुख देइ = उसी अकृतज्ञ मानव के क्लेश का कारण होता है ।

दृष्टान्त—*राख्यो मारत सर्प को, सुगणे द्रव्य तलि ढाँकि ॥*
*फिरि निगुणे कहि काटस्यूं, त्रिय मार्यो सिर नाखि ॥१॥*

१४—पावक =अग्नि के बिना । सूकै सींचता = वर्षा का जल पाते हुये, उपदेशरूपी जल पाते हुये अकृतज्ञ पुरुष जवासे की तरह ।

१५—सुफल विरष = सन्त जन सुफल वाले वृक्ष रूप हैं ।

१६—सगुणा = हरि गुरु की मान्यता वाला, श्रद्धालु । निगुणा = अकृतज्ञ, वासनामय, संसारीजन ।

दृष्टान्त—*वित्रे क जिद लग्यो कन्या वन, पूछे निकसे नाँहि ॥*
*एक गुसाई छल कर्यो, जन्त्र लिखासु सुहानि ॥१॥*

१७— दृष्टान्त—*सन्त दया करि ऊंदरो, कीन्हो पलट बिलाव ।*
*श्वान कियो रु बघेर पुनि, सिंह कर्यो कहि खाव॥१॥*

दादू सगुणा लीजिये, निगुणा दीजै डारि।
सगुणा सनमुख राखिये निगुणा नेह निवारि ॥ १८ ॥
सगुणा गुण केते करैं, निगुणा न मानै एक।
दादू साधू सब कहैं, निगुणा नरक अनेक ॥ १९ ॥
सगुणा गुण केते करै, निगुणा नाखै ढाहि।
दादू साधू सब कहैं, निगुणा निरफल जाइ ॥ २० ॥
सगुणा गुण केते करै, निगुणा न मानै कोइ।
दादू साधू सब कहैं, भला कहां थैं होइ ॥ २१ ॥
सगुणा गुण केते करै, निगुणा न मानै नीच।
दादू साधू सब कहैं, निगुणा के सिर मीच ॥ २२ ॥
साहिबजी सब गुण करै, सतगुरु के घटि होइ।
दादू काढै कालमुखि, निगुणा न मानै कोइ ॥ २३ ॥
साहिबजी सब गुण करै, सतगुरु माँहैं आइ।
दादू राखै जीव दे, निगुणा मेटे जाइ ॥ २४ ॥

---

१८—सगुणा=कृतज्ञ। निगुणा=कृतघ्न।

१९—सगुणा गुण केते करे=सगुणा-कृतज्ञ पुरुष अपने पर किये गये उपकार को बहुत बढ़ावा देता है।

दृष्टान्त—*सिंघ पिंजरा ते दियो, सगुणो पुरुष निकार ॥*
*खाण लग्यो वानर मिल्यो, न्याय करत दियो बारि ॥१॥*

२२—निगुणा न मानै नीच=मलिन वासना से वृत्ति के निम्नगामिनी होने से अकृतज्ञ पुरुष अपने पर किये जाने वाले हित को मानता नहीं।

दृष्टान्त—*निगुणे सुगुणे कूप में, जल पीवत दियो डारि ॥*
*भूत मिले विद्या लही, निगुणे नाख्यो मारि ॥१॥*

२३—साहबजी=सर्वव्यापी शक्तिरूप परमेश्वर। काढे कालमुखि=जीवन मृत्यु के खंद से निकालना चाहते हैं।

**साहिबजी सब गुण करै, सतगुरु का दे संग ।**
**दादू परलै राखिले, निगुणां न पलटै अंग ॥ २५ ॥**

**साहिबजी सब गुणकरै, सतगुरु आड़ा देइ ।**
**दादू तारै देखतां, निगुणा गुण नहिं लेइ ॥ २६ ॥**

**सतगुरु दीया राम धन, रहै सुबुद्धि बताइ ।**
**मनसा वाचा कर्मणा, विलसैं वितड़ैं खाइ ॥ २७ ॥**

**कीया कृत मेटै नहीं, गुण ही मांहिं समाइ ।**
**दादू बधै अनंत धन, कबहूँ कदे न जाइ ॥ २८ ॥**

**इति निगुणा कौ अंग सम्पूर्ण ॥ ३३ ॥**

२५—दादू परलै राखिले = जोवन विनास से रक्षा करना चाहते हैं ।

२६—सतगुरु आडा देई = महात्मा सन्त जन की आड से परमात्मा ।

२७—सुबुद्धि = सद्बुद्धि, हितबुद्धि । विलसे = उपभोग करे । वितड़े = बाँटे, वितीर्ण करे ।

२८—भावार्थ—कृतज्ञ जन अपने पर किये गये उपकार को मेटते नहीं, अवज्ञा नहीं करते । वे उस उपकार को अधिकाधिक गुण वृद्धि में हेत रूप मानते हैं । उस कृतज्ञजन का विवेकरूपी धन इससे बराबर बढता है, कृतज्ञजन को प्राप्त हुवा लाभ कभी विनष्ट नहीं होता ।

दृष्टान्त—*नृप विद्या लई भील पै, पर राख्यो गुरु भाव ॥*
*गई नहीं नृप के रही, यूं मति चूको डाव ॥१॥*

❀ *निगुणा को अंग सम्पूर्ण* ❀
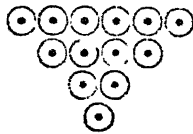
# अथ विनती को अङ्ग ॥ ३४ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम् , नमस्कार गुरु देवतः ।
वदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

करुणा

दादू बहुत बुरा किया, तुम्हैं न करना रोष ।
साहिब समाई का धनी, बंदे कौ सब दोष ॥ २ ॥

दादू बुरा बुरा सब हम किया, सो मुख कह्या न जाइ ।
निर्मल मेरा साइयां, ताकौ दोष न लाइ ॥ ३ ॥

सांई सेवा चोर मैं, अपराधी बंदा ।
दादू दूजा को नहीं, मुझ सरीखा गंदा ॥ ४ ॥

तिल तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर ।
पल पल का मैं गुनहीं तेरा, बकसहु औगुण मोर ॥ ५ ॥

महा अपराधी एक मैं, सारे इहि संसार ।
औगण मेरे अति घणे, अंत न आवै पार ॥ ६ ॥

बे मरजादा मिति नहीं, ऐसे किये अपार ।
मैं अपराधी बापजी, मेरे तुमही एक अधार ॥ ७ ॥

---

२—रोष=क्रोध । समाई का धनी=अतिगंभीर ।

४—सेवाचोर में=उस परमात्मा की सेवा का मैं चोर हूँ ।

५—तिल तिल=राई राई क्षण-क्षण, पद पद । बकसहु=बगसीस करो, क्षमा करो ।

६—दृष्टान्त—*पाप पुण्य का चोतरा, नृपति किये पुर बाझि ॥*
*सब दुनियाँ पुन के चढी, दूजे सन्त विराजि ॥१॥*

७—बे मरजादा=सीमारहित । मिति=शुमार ।

दोष अनेक कलंक सब, बहुत बुरा मुझ मांहिं ।
मैं कीये अपराध सब, तुमथैं छाना नांहिं ॥ ८ ॥
गुनहगार अपराधी तेरा, भाजि कहां हम जांहि ।
दादू देख्या सोधि सब, तुम बिन कहीं न समाहिं ॥६॥
आदि अंत लौं आय करि, सुकृत कछू ना कीन्ह ।
माया लोह मद मच्छरा, स्वाद सबै चित दीन्ह ॥ १० ॥

विनती

काम क्रोध संसै सदा, कबहूं नांव न लीन ।
पाखंड प्रपंच पाप मैं, दादू ऐसैं खीन ॥ ११ ॥
दादू बहु बंधन सौं बंधिया, एक बिचारा जीव ।
अपने बल छूटै नहीं, छोडनहारा पीव ॥ १२ ॥
दादू बंदीवान है, तू बंदी छोड दीवान ।
अब जनि राखौ बंद मैं, मीरा मेहरवान ॥ १३ ॥
दादू अंतरि कालिमा, हिरदै बहुत विकार ।
परगट पूरा दूरि कर, दादू करै पुकार ॥ १४ ॥

---

८—दोष=अवगुण । कलंक=पाप ।

६—गुनहगार=कसूरवार । सोधि सब=सब तलाश करके ।

१०—मछरा=मत्सरता । स्वाद सबै=सब विषयों में ।

११—पाषंड=बनावटी शारीरिक आडम्बर । प्रपंच=वाणी का आडम्बर । षीन=क्षीण ।

१२—बहुबन्धन=कर्मज, विषय वासना अहंकार अध्यासादि ।

१३—दीवान=न्यायकारी । मीरां=महान् । मेहरवान=कृपालु ।

१४—अंतर=अन्तःकरण में । कालिमा=मलिनता, विकार, कामादि ।

सब कुछ व्यापै रामजी, कुछ छूटा नांहीं ।
तुम्ह थैं कहा छिपाइये, सब देखौ मांहीं ॥ १५ ॥
सबल साल मन मैं रहैं, राम बिसरि क्यौं जाइ ।
यहु दुख दादू क्यौं सहै, सांई करौ सहाइ ॥ १६ ॥
राखणहारा राख तूं , यहु मन मेरा राखि ।
तुम बिन दूजा को नहीं, साधू बोलैं साखि ॥ १७ ॥
माया विषै विकार थैं, मेरा मन भागै ।
सोई कीजै साइयां, तूं मीठा लागै ॥ १८ ॥
सांई दीजै सो रती, तूं मीठा लागै ।
दूजा खारा होइ सब, सूता जीव जागै ॥ १९ ॥
ज्यूं आपै देखै आप कौं, सो नैना दे मुझ ।
मीरां मेरा मेहर कर, दादू देखै तुझ ॥ २० ॥

करुणा

दादू पछितावा रह्या, सके न ठाहर लाइ ।
अरथि न आया राम के, यहु तन यौंही जाइ ॥ २१ ॥

---

१५—सब कुछ व्यापै=कामादि दोष व अहंकार । कुछ छूटा नाँहीं=रज तम गुण की प्रवृत्तियें व लोभ मोहादि विकार छूटैं नहीं ।

१६—साल=चुभन, दर्द । बिसरि=भूल ।

१७—यहु मन मेरा राखि=मेरे इस मन को गुण रहित व विकार रहित शुद्ध रखिये ।

१९—रती=अनुरक्ति, श्रद्धा । दूजा खारा होइ सब=मानसिक विकार कामादि तथा इन्द्रियों के विषय रूप रसादि ये सब खारे लगने लगें ऐसी कृपा करिये । सूता=अज्ञान निद्रा में प्रसुप्त । जागै=सचेत हो, नामचिन्तन में लगे ।

२०—आपै देखे आपको= शुद्ध अन्त:करण शुद्ध आत्मस्वरूप को देखे । सौ नैना=वे नेत्र, ज्ञान विचार मय, श्रुति स्मृति मय ।

२१—पछितावा=पश्चात्ताप, खेद । ठाहर लाइ=इस मन को उचित सत्य प्रवृत्ति में न लगा

विनती

दादू दिन दिन नौतम भगति दे, दिन दिन नौतम नांव ।
दिन दिन नौतम नेह दे, मैं बलिहारी जांव ॥ २२ ॥
सांई संसै दूरि कर, करि संक्या का नास ।
भानि भरम दुविध्या दुख दारुण, समता सहज प्रकास ॥२३॥

दया विनती

नांहीं परगट ह्वै रह्या, है सो रह्या लुकाइ ।
संइयां पड़दा दूरि कर, तूं ह्वै परगट आइ ॥ २४ ॥
दादू माया परगट ह्वै रही, यौं जे होता राम ।
अरस परस मिलि खेलते, सब जिव सबही ठाम ॥ २५ ॥
दया करै तब अंगि लगावै, भगति अखंडित देवै ।
दादू दरसन आप अकेला, दूजा हरि सब लेवै ॥ २६ ॥
दादू साधु सिखावैं आत्मा, सेवा दिढ करि लेहु ।
पारब्रह्म सौं वीनती, दया करि दरसन देहु ॥ २७ ॥
साहिब साधु दयाल हैं, हमही अपराधी ।
दादू जीव अभागिया, अविद्या साधी ॥ २८ ॥

---

सके, मानवदेह का सार्थक उपयोग न कर सके । अरथि=काम ।

२२—नौतम=नवीन । नौतम=उत्कृष्ट ।

२३—संसै=संशय ज्ञान । संक्या=अश्रद्धा । भानि=तोड़, निवृत्तकर । भरमदुविध्या=भ्रम जनित द्वैत वृत्ति को । समता=समदृष्टि, आत्मदृष्टि ।

२४—नाहीं प्रगट ह्वै रह्या=संसार जो वस्तुतः है नहीं वह प्रतीत हो रहा है । है सो रह्या लुकाइ=जो आत्मशक्ति वस्तुतः है वह प्रत्यक्ष प्रतीत नहीं होती है ।

२६—दूजा हरि सब लेवै=सब तरह के भेद भाव की वृत्ति का निवारण कर देता है ।

**सब जीव तोरैं राम सौं, पै राम न तोरै ।**
**दादू काचे त्याग ज्यौं, टूटै त्यौं जोरै ॥ २९ ॥**

सजीवन

**फूटा फेरि संवारि करि, ले पहुँचावै ओर ।**
**ऐसा कोई ना मिलै, दादू गई बहोर ॥ ३० ॥**
**ऐसा कोई ना मिलै, तन फेरि संवारै ।**
**बूढ़े थैं बाला करै, खै काल निवारै ॥ ३१ ॥**

परचै करुणा विनती

**गलै विलै करि वीनती, एकमेक अरदास ।**
**अरस परस करुणां करै, तब दरवै दादूदास ॥ ३२ ॥**
**सांई तेरे डर डरूं, सदा रहूं भै भीत ।**
**अजा सिंह ज्यौं भै घणां, दादू लीया जीत ॥ ३३ ॥**

---

३०—भावार्थ—फूटा फेर सँवार करि=विषय प्रवृत्तियों में छिन्न भिन्न हुये मन को विषय वासना से हटा आत्माभिमुख कर एक आत्मचिन्तन दशा में लगादे । ले पहुँचावे ओर=अन्त तक वृत्ति को सु स्थिर कर आत्मसाक्षात् तक की अवस्था को प्राप्त करादे । बहोर=बहुत । बहुरि=फिरसे ।

३१—संवारै=अन्तःकरण के दोष हटा आत्मचिन्तन में सज्जित करे । बूढे थैं बाला करे= अज्ञानजन्य वृद्धावस्था से निकाल सत्य ज्ञान रूपी बाल्यावस्था उत्पन्न करदे ।

३२—गलै=आत्मचिन्तन के प्रेम में गलितान होकर । विलै=संसारी मायिक पदार्थों की इच्छाओं को विलीन करके । अरदास=विनीत प्रार्थना । दरवै=दयार्द्र होवे ।

३३—अजासिंह ज्यौं भै घणां=बकरी को सिंह की तरह, मलिन वासना, कामादि विकार, मिथ्या अहंकार जन्य विविध भय को ।

दृष्टान्त—*गयो बीरबल विसर करि, अकबर पाड़ी ठीक ॥*
*ग्राम ग्राम बकरो दियो, बढत न घटत रतीक ॥१॥*

पोष प्रतिपाल रक्षक

**दादू पलक मांहिं प्रगटै सही, जे जन करै पुकार।**
**दीन दुखी तब देखि करि, अति आतुर तिहिंबार ॥ ३४ ॥**
**आगैं पीछैं संगि रहै, आप उठाये भार।**
**साधु दुखी तब हरि दुखी, ऐसा सिरजनहार ॥ ३५ ॥**
**सेवग की रक्षा करै, सेवग की प्रतिपाल।**
**सेवग की बाहर चढ़ै, दादू दीन दयाल ॥ ३६ ॥**

विनती सागर तरण

**दादू काया नाव समंद मैं, औघट बूड़ैं आइ।**
**इहि औसर एक अगाध बिन, दादू कौन सहाइ ॥ ३७ ॥**

---

३४—प्रगटै=साक्षात् हो। सही=निश्चय।

दृष्टान्त—*द्विजतिय ले मुकलाव तें, ठग मार्यो वन जाहि ॥*
*विरह वचन सुन तीय के, प्रभु आये हित ताहि ॥१॥*
*दरजी वधिक जु भाइले, जाति निवनद्र जनेक ॥*
*मर्यो न कहती गौर को, वधिक साँकला देखि ॥१॥*

३५—दृष्टान्त—*बून्दी में बणियो भगत, रामदासजी नांव ॥*
*पोट लई सिर रामजी, जग जाना सब गाव ॥१॥*

३६—बाहर चढ़ै=मदद करे, सहायक हो।

दृष्टान्त—*बोला पढताँ बाल कै, पढी साखि करि प्रीत ॥*
*खेत बच्यो सेवग बच्यो, कर माधी परतोति ॥१॥*
*जैमल द्वै बाहर चढ़े, नगर मेड़ते माँहिं ॥*
*श्रीधर के संग चोर थे, लूंटण दीन्हो नाँहिं ॥२॥*

३७—समंद=समुद्र, संसार सागर। औघट=ऊवड़ खावड़ घाट।

यहु तन भेरा भौजला, क्यौं करि लंघै तीर।
खेवट बिन कैसे तिरै, दादू गहर गंभीर॥ ३८॥
पिंड परोहन सिंधु जल, भौसागर संसार।
राम बिना सूझै नहीं, दादू खेवनहार॥ ३९॥
यहु घट बोहिथ धार मैं, दरिया वार न पार।
भैभीत भयानक देखि करि, दादू करी पुकार॥ ४०॥
कलिजुग घोर अंधार है, तिस का वार न पार।
दादू तुम बिन क्यौं तिरै, समरथ सिरजनहार॥ ४१॥
काया के बसि जीव है, कसि कसि बंध्या मांहिं।
दादू आतमराम बिन, क्यौं ही छूटै नांहिं॥ ४२॥
दादू प्राणी बंध्या पंच सूं, क्यूं हीं छूटै नांहिं।
नीधणि आया मारिये, यहु जिव काया मांहिं॥ ४३॥
तुम बिन धणी न धोरी जीव का, यौं ही आवै जाइ।
जे तूं साईं सत्ति है, तौ बेगा प्रगटहु आइ॥ ४४॥
नीधणि आया मारिये, धणी न धोरी कोइ।
दादू सो क्यूं मारिये, साहिब सिर परि होइ॥ ४५॥

---

३८—भेरा=बाँस की नाव।

३९—पिंड=मानव शरीर। परोहन=सामान्य छोटी नौका।

४०—घट=शरीर। बोहित=नौका रूप। धार में=वासना तृष्णा की धारा में। दरिया=संसार समुद्र।

४२—काया के वसि=देहाध्यास में बंधा हुवा। आत्म राम बिन=आत्म परिचय बिना।

४३—नीधणि=बिना धणी के, बिना स्वामी के।

दया विनती

राम विमुख जुगि जुगि दुखी, लख चौरासी जीव ।
जामै मरै जगि आवटै, राखणहारा पीव ॥ ४६ ॥

पोष प्रतिपाल रक्षक

समर्थ सिरजनहार है, जे कुछ करै सो होइ ।
दादू सेवग राखिले, काल न लागै कोइ ॥ ४७ ॥

विनती

सांई सांचा नांव दे, काल झाल मिटि जाइ ।
दादू निर्भै ह्वै रहै, कबहूं काल न खाइ ॥ ४८ ॥
कोई नहिं करतार बिन, प्राण उधारणहार ।
जियरा दुखिया राम बिन, दादू इहि संसार ॥ ४९ ॥
जिन की रख्या तूं करै, ते उबरे करतार !
जे तैं छाड़े हाथ थैं, ते डूबे संसार ॥ ५० ॥
राखणहारा एक तूं, मारणहार अनेक ।
दादू के दूजा नहीं, तूं आपै ही देख ॥ ५१ ॥
दादू जग ज्वाला जमरूप है, साहिब राखणहार ।
तुम बिचि अंतर जनि पड़ै, ताथैं करूं पुकार ॥ ५२ ॥
जहं तहं विषै विकार थैं, तुम ही राखणहार ।
तन मन तुम्ह कौ सौंपिया, साचा सिरजनहार ॥ ५३ ॥

---

४६—आवटै=संतप्त होवे, नानाविध क्लेश तथा चिन्ताग्नि से उबलता रहे ।

४८—कालझालि=काल की ज्वाला, कामादि सभी काल रूप हैं ।

५१—मारणहार अनेक=विषय वासना, राग द्वेषादि विकार, रज तम गुण प्रधान प्रवृत्तियें सकाम कर्म बन्धन ये सब जन्म मृत्यु के निमित्त बनते रहते हैं ।

दया विनती

दादू गरक रसातल जात है, तुम बिन सब संसार ।
कर गहि कर्ता काढि ले, दे अवलंबन आधार ॥ ५४ ॥
दादू दौं लागी जग परजलै, घटि घटि सब संसार ।
हम थैं कछू न होत है, तुम बरसि बुझावणहार ॥ ५५ ॥
दादू आत्म जीव अनाथ सब, करतार उबारै ।
राम निहोरा कीजिये, जनि काहू मारै ॥ ५६ ॥
अरस जमीं औजूद मैं, तहां तपै अफताब ।
सब जग जलता देखि करि, दादू पुकारै साध ॥ ५७ ॥
सकल भुवन सब आत्मा, निर्विष करि हरि लेइ ।
पड़दा है सो दूरि करि, कुसमल रहण न देइ ॥ ५८ ॥
तन मन निर्मल आत्मा, सब काहू की होइ ।
दादू विषै विकार की, बात न बूझै कोइ ॥ ५९ ॥

---

५४—गरक=डूबता हुवा, ग्रसित । रसातल=नरक, पाप कर्म में । अवलंबन=आश्रय, नाम-स्मरण रूप आधार ।

५५—दौं लागी=दावाग्नि भभक उठी । परजलै=प्रज्वलित हो रहा है । जल रहा है ।

५६—अनाथ = असहाय, बिना स्वामी के । निहोरा = मेहरबानी, अनुकम्पा ।

दृष्टान्त—*गुरु दादू आमेर तैं, उठत साखि कहि एह ॥*
*पुनि फरीदजी जहाज में, कहीं लगावो नेह ॥१॥*

५७—अरस = आसमान । जमीं = भूमि । औजूद = हमारा शरीर । अफताव = सूर्य, वासना तृष्णा रूप सूरज ।

५७—निर्विष=निर्मल, शुद्ध । पड़दा = आड़ा, भ्रान्ति, अज्ञानजन्य आवरण । कुसमल=पाप, कल्मष ।

५९—आत्मा = बुद्धि ।

विनती

सामर्थ धोरी ! कंध धरि, रथ ले और निबाहि ।
मार्ग मांहिं न मेलिये, पीछैं बिड़द लजाहि ॥ ६० ॥
दादू गगन गिरै तब को धरै, धरती धर छुंडै ।
जे तुम छाडहु राम रथ, कंधा को मंडै ॥ ६१ ॥
अंतरजामी एक तूं, आत्म के आधार ।
जे तुम्ह छाडहु हाथ थैं, कौंण संभालणहार ॥ ६२ ॥
तेरा सेवग तुम्ह लगै, तुम्ह ही माथैं भार ।
दादू डूबत रामजी, वेगि उतारौ पार ॥ ६३ ॥
सत छूटा, सूरातन गया, बल पौरस भागा जाइ ।
कोई धीरज ना धरै, काल पहूँता आइ ॥ ६४ ॥
संगी थाके संग के, मेरा कछु न बसाइ ।
भाव भगति धन लूटिये, दादू दुखी खुदाइ ॥ ६५ ॥

प्रचय करुणा विनती

दादू जियरे जक नहीं, विश्राम न पावै ।
आतम पाणी लूंण ज्यूँ, ऐसै होइ न आवै ॥ ६६ ॥

दया विनती

दादू तेरी खूबी खूब है, सब नीका लागै ।
सुंदर सोभा काढि ले, सब कोई भागै ॥ ६७ ॥

---

६०—धोरी = धुरीण, बोझवाहक । निवाहि = निभाओ । विडद = महिमा, कीर्ति ।

६१—धर = धैर्य । छुंडै = त्याग करै । कंध = कन्धा, गर्दन । मंडै = माँडे ।

६३—तुम्ह लगै=तुम्हीं तक उसकी दौड़ हो सकती है ।

६४—बल=शारीरिक शक्ति । पौरिस=मानसिक बल । पहूंता=पहूँचा ।

६५—संगी = साथी, इन्द्रियग्राम, अन्तःकरणादि । वसाइ=वस, हाथ ।

६६—जक=चैन, शान्ति ।

६७—तेरी खूवी खूब है=जब तक तेरा चेतन शक्ति का शरीर से सम्बन्ध है तभी तक यह

विनती

तुम्ह हो तैसी कीजियो, तो छूटैंगे जीव ।
हम हैं ऐसी जनि करौ, मैं सादिकै जाऊं पीव ॥ ६८ ॥
अनाथों का आसिरा, निरधारों आधार ।
निर्धन का धन राम है, दादू सिरजनहार ॥ ६९ ॥
साहिब दर दादू खड़ा, निसदिन करै पुकार ।
मीरां मेरा मिहर कर, साहिब दे दीदार ॥ ७० ॥
दादू प्यासा प्रेमका, साहिब राम पिलाइ ।
परगट प्याला देहु भरि, मृतक लेहु जिलाइ ॥ ७१ ॥
अल्लह आली नूर का, भरि भरि प्याला देहु ।
हमकूं प्रेम पिलाइ करि, मतवाला करि लेहु ॥ ७२ ॥
तुम्हको हम से बहुत है, हमको तुम से नांहिं ।
दादू को जनि परिहरै, तूं रहु नैनहुं मांहिं ॥ ७३ ॥

---

सरीर तेरी खूबी से=आत्मशक्ति व्यापकता से खूब सुन्दर प्रतीत हो रहा है ।

६८—सदिकै=वारणै ।

६९—दृष्टान्त—*कर कट्या अरु घर लुट्या, छूट्यो जग को वास ।*
*वैवल बाई यूं कहे, राम तुम्हारी आश ॥ १ ॥*

७१—प्यासा=अनुरागी, तृषित । परगट=पड़दे रहित होकर, प्रत्यक्ष । प्याला=बुद्धि रूप प्याला । मृतक=मराहुवा, भोगमें आसक्त मन ।

७३—जनि परिहरै=मत त्यागे, दूर करे ।
दृष्टान्त—*गजसिंह बीकानेर को, कियो बादशाह दूरि ।*
*द्वादश वर्ष सेवा करी, भूखो रह्यो हजूरि ॥ १ ॥*

तुम्ह थैं तबही होइ सब, दरस परस दरहाल ।
हम थैं कबहुँ न होइगा, जे बीतहिं जुग काल ॥ ७४ ॥
तुम्ह ही थैं तुम्ह को मिलै, एक पलक मैं आइ ।
हम थै कबहुं न होइगा, कोटि कलप जे जाइ ॥ ७५ ॥

छिन विछोह

साहिब सूं मिलि खेलते, होता प्रेम सनेह ।
दादू प्रेम सनेह बिन, खरी दुहेली देह ॥ ७६ ॥
साहिब सौं मिलि खेलते, होता प्रेम सनेह ।
परगट दर्सन देखते, दादू सुखिया देह ॥ ७७ ॥

करुणा

तुम्ह को भावै और कुछ, हम कुछ कीया और ।
मिहर करौ तौ छूटिये, नहीं तौ नांहीं ठौर ॥ ७८ ॥
मुझ भावै सो मैं किया, तुझ भावै सो नांहिं ।
दादू गुनहगार है, मैं देख्या मन मांहिं ॥ ७९ ॥
खुसी तुम्हारी त्यूं करौ, हम तो मानी हारि ।
भावै वंदा बकसिये, भावै गहि करि मारि ॥ ८० ॥

---

७४—दरहाल=तुरन्त, तत्काल ।

७५—दृष्टान्त—लाल फकीर बुलाइयो, पातशाह अर्ध राति ॥
चार बात साहब कहो, खुदा मिलै कभि प्राति ॥ १ ॥
धान करे जन प्रीतिसौं, बैड आँमली हेठ ॥
नारद सों कही कब मिलै, पूछो हरि सौ नेठ ॥ १ ॥

७६—खरी दुहेली देह = सचमुच ही यह शरीर विना परमात्मा के प्रेम स्नेह के परम दुःख-दायी है ।

७८—मिहर = मेहर, दया ।

८०—भावै = चाहे । वन्दा = सेवग । वकसिये=माफ करै, क्षमा करै ।

दादू जे साहिब लेखा लिया, तो सीस काटि सूली दिया।
मिहर मया करि फिल किया, तौ जीये जीये करि जिया ॥८१॥

इति विनती को अंग सम्पूर्ण ॥ ३४ ॥

---

# अथ साखीभूत को अङ्ग ॥ ३५ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम् , नमस्कार गुरु देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

भरम विधूसन

सब देखणहारा जगत का, अंतरि पूरै साखि ।
दादू स्याबत सो सही, दूजा और न राखि ॥ २ ॥
मांहीं थैं मुझकौ कहै, अंतरजामी आप ।
दादू दूजा धंध है, साचा मेरा जाप ॥ ३ ॥

---

८१—लेखा = हिसाब । फिलकिया=क्षमादान देदिया ।

दृष्टान्त—*वर्ष हजार छतीसलौं, करी वंदगी सार ॥*
*अदल किया उल्टी पड़ी, फजल किया छुटकार ॥ १ ॥*

*❀ इति विनति को अंग समाप्त ❀*

[*]—

२—भावार्थ—वह परमात्मा चेतन अधिष्ठान सब संसार के शुभाशुभ कर्मों को देखता रहता है। सब प्रकार की प्रेरणा का दाता है तथा साक्षी है। उसी परमात्मा में अपना दृढ़ निश्चय स्थिर कर संसार के अन्य नाश होने वाले पदार्थों में आसक्ति मत रख।

करता साखीभूत

करता है सो करैगा, दादू साखीभूत।
कौतिगहारा ह्वै रह्या अणकरना औधूत ॥ ४ ॥
दादू राजस करि उतपति करै, सातिक करि प्रतिपाल।
तामस करि परलै करै, निर्गुण कौतिगहार ॥ ५ ॥
दादू ब्रह्म जीव हरि आत्मा, खेलैं गोपी कान्ह।
सकल निरंतरि भरि रह्या, साखीभूत सुजाण ॥ ६ ॥

स्वकीय मित्र-शत्रुता

दादू जामन मरणा सानि करि, यहु पिंड उपाया।
सांई दीया जीव कूं, ले जग मैं आया ॥ ७ ॥
विष अमृत सब पावक पाणी, सतगुरु समझाया।
मनसा वाचा कर्मणा, सोई फल पाया ॥ ८ ॥
दादू जाणै बूझै जीव सब, गुण औगुण कीजै।
जानि बूझि पावक पड़ै, दई दोस न दीजै ॥ ९ ॥

---

३—माँहिथैं = अन्तःकरण से। दूजा धंध है=संसार के वासनामय तथा सकाम कर्म सब धंध है=व्यर्थ है।

४—साखीभूत=कारणचैतन्य (अन्तर्यामी) कौतिगहारा=विराट्, एकान्तद्रष्टा। अणकरता=कूटस्थ चेतन। औधूत=सूत्रात्मा।

६—पूर्वार्ध=इस अर्ध साखी में भक्ति पक्ष, ज्ञान पक्ष व वेदान्त पक्ष से गोपी कान्ह, हरिआत्मा, ब्रह्म जीव से उस चित् शक्ति का निरूपण है जो सम्पूर्ण जड़ चेतन में व्याप्त है।

७—सानि करि=मिलाकर। ले जग में आया=चेतन इस तरह कार्यप्रपंच में प्रवृत्त हुवा।

८—भावार्थ—सद्गुरु ने सम्यक् समझा दिया कि जीवन को किस ओर लगाना चाहिये। संसार में विष अमृत, उष्ण, शीत, शुभ, अशुभ, हित अहित क्या है। जिसने अपने मन वचन कर्म को जिस ओर लगाया वही फल प्राप्त किया।

मन ही मांहै ह्वै मरै, जीवै मनही मांहिं ।
साहिब साखीभूत है, दादू दूसण नांहिं ॥ १० ॥
बुरा भला सिर जीव के, होवै इस ही मांहिं ।
दादू कर्ता करि रह्या, सो सिर दीजै नांहिं ॥ ११ ॥

साधु साखीभूत

कर्ता ह्वै करि कुछ करै, उस मांहिं बंधावै ।
दादू उसको पूछिये, उत्तर नहिं आवै ॥ १२ ॥
दादू केई उतारैं आरती, केइ सेवा करि जांहिं ।
केई आइ पूजा करैं, केइ खुलावैं खांहिं ॥ १३ ॥
केई सेवग ह्वै रहें, केइ साधु संगति मांहिं ।
केई आइ दर्सन करैं, हम थैं होता नांहिं ॥ १४ ॥
नां हम करैं करावैं आरती, नां हम पियैं पिलावैं नीर ।
करै करावै सांइयां, दादू सकल सरीर ॥ १५ ॥

---

११—जीव=चिदाभास । होवे इस ही मांहिं=चिदाभासयुक्त अन्तःकरण ही में सब भला व बुरा पैदा होता है ।

१२—भावार्थ— यदि कर्त्ता कारण चेतन ही सब कुछ करके स्वयं उसी बन्धन में बंध जा तो कैसे ठीक है ? कर्त्ता सब बन्धन से बेलाग रहता है ।

दृष्टान्त—कुंड बणायो खोद करि, जती घाट नहीं कीन्ह ॥
गाय मरी वासव कही, हत्या मम क्यूं दीन्ह ॥१॥
साध समझि बिन वनिक को, मोल लिवाइ मोढि ॥
घर नहीं नीधण कहै, लगे चढावण ढोढ ॥१॥

१३—इसमें दिखावटी ही भाव भक्ति का निरूपण किया है तथा उसकी व्यर्थता बताई है

करै करावै सांइयां, जिन दीया औजूद।
दादू बंदा बीचि है, सोभा कूं मौजूद ॥ १६ ॥
देवै लेवै सब करै, जिन सिरजे सब लोइ।
दादू बंदा महल मैं, सोभा करै सब कोइ ॥ १७ ॥

करता साषीभूत

दादू जुवा खेलै जाणराइ, ताकौं लखै न कोइ।
सब जग बैठा जीति करि, काहू लिप्त न होइ ॥ १८ ॥

इति साषीभूत कौ अंग संपूर्ण ॥ ३५ ॥

---

# अथ बेली को अंग ॥ ३६ ॥
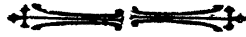
दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवतः।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू अमृत रूपी नांव ले, आतम तत्तहिं पोखै।
सहजैं सहज समाधिमैं, धरणी जल सोखै ॥ २ ॥

---

१६—औजूद=यह मानव शरीर। वन्दा=जीव।

१७—सिरजे=पैदा किये। सब लोइ=चौदह लोक रचे। वंदा=जीव। महल = शरीर में।

१८—भावार्थ—परमात्मा परमेश्वर बाजी खेल रहा है जिसको अज्ञानान्धकार से युक्त मनुष्य लख नहीं पाते। वह कूटस्थ चेतन सब कुछ जीतकर बैठा है किसी भी बन्धन में स्वयं बंधा हुवा नहीं है।

—०—
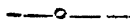
२—भावार्थ—आत्मचिन्तन रूपी नाम ले, आत्मतत्व अमृत रूपी=काल से छुड़ानेवाला

पसरै तीन्यूं लोक मैं, लिपत नहीं धोखै।
सो फल लागै सहज मैं, सुंदर सब लोकै॥ ३॥
दादू बेली आत्मा, सहज फूल फल होइ।
सहजि सहजि सतगुरु कहै, बूझै बिरला कोइ॥ ४॥
जे साहिब सींचै नहीं, तौ बेली कुमिलाइ।
दादू सींचै सांइयां, बेली बधती जाइ॥ ५॥
हरि तरवर तत आत्मा, बेली करि विसतार।
दादू लागै अमर फल, कोइ साधू सींचणहार॥ ६॥

---

अन्तःकरण चतुष्टय की चारों अवस्थाओं में आत्माकार वृत्ति की दृढ़ता से आत्म-तत्व की भावना को पोषण करता रहे। निर्द्वन्द्व समाधि अवस्था में स्थित हो धरणीरूप शरीर में नामचिन्तन रूपी जल का शोषण करता रहे।

३—भावार्थ—असत्य में सत्य की कल्पना,' सत्य में असत्य की कल्पना कर धोखे में कभी न आये। वृत्तिका प्रवाह स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर से आगे बढ़ कूटस्थ में पसरे=स्थिर हो। अर्थात् पंचकोशमय शरीर के अध्यास में वृत्ति को व्यामोहित न होनेदे। तभी ज्ञानरूपी फल, आत्मपरिचय रूपी फल। सहज=समाधि अवस्था में लगेगा। यह फल ही चौदह लोक में सबसे सुन्दर है श्रेष्ठ है।

४—दादू बेली आत्मा=जिज्ञासु की बुद्धि रूपी वेलि के सहज समाधिस्थ होने पर भजन रूप फल और ज्ञान रूपी फल लगते हैं। सद्गुरु शनैः शनैः इस वेलि को अपने अनुभवी उपदेश द्वारा उपरोक्त फल फूल वाली बनाने का प्रयास करते रहते हैं, सद्-गुरु के इस उपदेश को कोई विरला ही समझता है।

५—सींचे नहीं=दया अनुग्रह के पानी से सींचे नहीं।

६—हरि तरवर=व्यापक परमात्मा है वही वृक्ष रूप है। वेलि=जिज्ञासु की आत्मप्राप्ति की इच्छा वाली बुद्धि। करि विसतार=जैसे वृक्ष के आश्रय से वेल बढती है फैलती है वैसे ही आत्मा में आरूढ वृत्ति वेलि भी विवर्द्धित होती है। अमर फल=आत्मज्ञान रूपी फल। साधू=पहुँचे हुये महात्मा।

दादू सूका रूंखड़ा, काहे न हरिया होइ ।
आपै सींचे अमीरस, सुफल फलिया सोइ ॥ ७ ॥

कदे न सूकै रूंखड़ा, अमृत सींच्या आप ।
दादू हरिया सो फलै, कछू न व्यापै ताप ॥ ८ ॥

जे घट रोपै रामजी, सींचै अमी अघाइ ।
दादू लागै अमर फल, कबहूं सूकि न जाइ ॥ ९ ॥

दादू अमर बेलि है आत्मा, खार समंदां मांहिं ।
सूकै खारे नीरसौं, अमर फल लागै नांहिं ॥ १० ॥

दादू बहु गुणवंती बेली है, ऊगी कालर मांहिं ।
सींचैं खारे नीरसौं, तार्थे निपजै नांहिं ॥ ११ ॥

बहु गुणवंती बेली है, मीठी धरती बाहि ।
मीठा पाणी सींचिये, दादू अमर फल खाइ ॥ १२ ॥

—सूका रूंखड़ा=भाव भक्ति हीन यह शरीर सूके वृक्षसम है। आपैं=हरि गुरु। सुफल=ज्ञानरूपी फल से फलीभूत हो।

—रूंखड़ा=काया रूपी वृक्ष। अमृत=नामचिन्तन। आप=अपनी शुद्ध बुद्धि। हरिया=भाव भक्ति रूप हरियाली वाला। फलै=दर्शन फल से फलै। ताप=जन्म मृत्यु रूपी सन्ताप।

—अमी=नामरूपी अमृत। अघाइ=तृप्त कर। अमर फल=अखंड ज्ञान मुक्तिफल।

०—अमरवेलि=शुद्ध बुद्धि। आत्मा=जिज्ञासु। खार समंदा=संसार सागर में। खारे नीरसौं=विषय वासना के पानी से।

२—मीठी धरती वाहि=सत्संग रूपी अच्छी भूमि में लगाई हुई। मीठा पाणी=नाम चिन्तन रूपी जल।

अमृत बेली बाहिये, अमृत का फल होइ।
अमृत का फल खाइ करि, मुवा न सुणिया कोइ ॥ १३ ॥
दादू विषकी बेली बाहिये, विषही का फल होइ।
विषही का फल खाइ करि, अमर नहीं कलि कोइ ॥ १४ ॥
सतगुरु संगति नीपजै, साहिब सींचणहार।
प्राण विरख पीवै सदा, दादू फलै अपार ॥ १५ ॥
दया धर्म का रूंखड़ा, सतसौं बधता जाइ।
संतोष सौं फूलै फलै, दादू अमर फल खाइ ॥ १६ ॥

इति बेली कौ अंग संपूर्ण ॥ ३६ ॥

---

१३—अमृतवेलि = विवेक बुद्धि रूप वेली। मुवा न सुणिया कोइ = आत्मचिन्तन में लगे साधक भोगवासना में पुनः लिप्त हो कोई मरा हुवा सुना नहीं।

१४—विष की वेलि=कुसंग में प्रवृत्त वासनामय बुद्धि वेलि। विषफल=चौरासी लाख योनी। अमर नहीं=मुक्त नहीं।

१५—नीपजै=फलवती हो। अपार=असीम फल—मुक्तावस्था प्राप्त हो।

१६—सतसौं=सत रूपी जल से। फूलै=भक्तिमय वृत्ति बने। फलै=वैराग फल फलित हो। अमरफल=आत्मज्ञान रूपी फल। खाइ=प्राप्त करे, भोगे।

दृष्टान्त—कोउ नृप के तन कोढ थो, हंस दरस के काज ॥
सदाव्रत पंख न दघ्यो, सुन आये खगराज ॥१॥
दाता तरवर दया फल, उपगारी जीवन्त ॥
पंखी चले दिशावराँ, वृछा सुफल फलन्त ॥ १ ॥

—❀ वेलि को अंग समाप्त ❀—
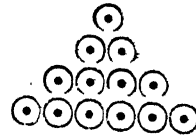
# अथ अविहड को अङ्ग ॥ ३७ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरु देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

दादू संगी सोई कीजिये, जे कलि अजरावर होइ ।
नां बहु मरै न बीछुटै, नां दुख व्यापै कोइ ॥ २ ॥

दादू संगी सोई कीजिये, जे सुथिर इहि संसार ।
नां बहु खिरै न हम खपैं, ऐसा लेहु विचार ॥ ३ ॥

दादू संगी सोई कीजिये, सुख दुख का साथी ।
दादू जीवण मरण का, सो सदा संगाती ॥ ४ ॥

दादू संगी सोई कीजिये, कबहूं पलटि न जाइ ।
आदि अंति बिहड़ै नहीं, तासन यहु मन लाइ ॥ ५ ॥

दादू अविहड़ आप है, अमर उपावण हार ।
अविनासी आपै रहै, विनसै सब संसार ॥ ६ ॥

दादू अविहड़ आप है, साचा सिरजनहार ।
आदि अंति विहड़ै नहीं, विनसै सब आकार ॥ ७ ॥

---

२—संगी=साथी । अजरावर=जरा मृत्यु रहित । विछुटै=दूरहो, न्यारा हो ।

३—सुथिर=बिलकुल स्थिर, सर्वदा सर्वकाल रहने वाला । खिरै=खंडित हो । खपै=विलीन हो, नष्ट हो ।

४—दृष्टान्त—*मित्त मृग मूसा जिसे, काग कछू चहुँ यार ॥*
*दुःख सुख में विहडै नहीं, त्यूं हरिजन के लार ॥ १ ॥*

५—पलटि न जाइ=बदल न जाय, कालजन्य परिवर्तन से मुक्त न हो जाय । विहडै नहीं=पलटे नहीं, परिवर्त्तित न हो । तासन = उसीसे ।

६—अविहड़=अपरिवर्त्तित, न बदलने वाला ।

७—आदि अन्त विहड़ै नहीं=आरम्भ से अन्त तक चेतन शक्ति कभी बदलती नहीं,

दादू अविहड़ आप है, अविचल रह्या समाइ ।
निहचल रमिता राम है, जो दीसै सो जाइ ॥ ८ ॥
दादू अविहड़ आप है, कबहूं विहड़े नांहिं ।
घटै बधै नहिं एक रस, सब उपजि खपै उस मांहिं ॥ ९ ॥
अविहड़ अंग विहड़ै नहीं, अपलट पलटि न जाइ ।
दादू अघट एक रस, सब मैं रह्या समाइ ॥ १० ॥

अंत समै की साखी

जेते गुण व्यापैं जीव कौं, तेते तैं तजे रे मन ।
साहिब अपणे कारणैं, भलो निवाह्यो पण ॥ ११ ॥

इति अविहड़ कौ अंग संपूर्ण ॥ ३७ ॥

इति श्रीस्वामी दादुदयालु की साखा संपूर्ण ॥

---

कालपरिणाम का उस पर कोई प्रभाव होता नहीं ।

८—जो दीसै सो जाइ=नाम, रूप, आकार वाली सब वस्तुएँ कालप्रभाव से समाप्त होजाती हैं।

१०—अविहड अंग=कूटस्थ चेतन । अघट=कमी वेसी से रहित ।

११—गुण व्यापै=रजोगुण, तमोगुण, विषय वासना, अहंकारादि । अपणैं=स्वस्वरूप-प्राप्ति के लिये । निवाह्यो=निभाया । पण=प्रतिज्ञा, प्रण ।

❀ इति अविहड अंग सम्पूर्ण ❀

❀ साखी भाग समाप्त ❀

ॐ नमः परब्रह्मणे

# श्री स्वामी दादूदयालुजी की अनभै वाणी

## द्वितीय भाग—सबद
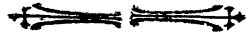
### राग गौड़ी ॥ १ ॥

१—सुमिरन सूरातन, नाम निश्चय

राम नाम नहिं छाड़ौं भाई, प्राण तजौं निकटि जिव जाई।
रती रती करि डारै मोहि, सांई संग न छाड़ौं तोहि ॥ १ ॥
भावै ले सिर करवत दे, जीवनमूरि न छाड़ौं ते ॥ २ ॥
पावक में ले डारै मोहि, जरै सरीर न छाड़ौं तोहि ॥ ३ ॥
इब दादू ऐसी बनि आई, मिलौं गोपाल निसान बजाई ॥ ४ ॥

२—अन्य उपदेस

राम नाम जनि छाडै कोई, राम कहत जन निर्मल होई ॥ टेक ॥
राम कहत सुख संपति सार, राम नाम तिरि लंघै पार ॥ १ ॥
राम कहत सुधि बुधि मति पाई, राम नाम जनि छाड़हु भाई ।२।
राम कहत जन निर्मल होइ, राम नाम कहि कुसमल धोइ ॥ ३ ॥
राम कहत को को नहिं तारे, यहु तत दादू प्राण हमारे ॥ ४ ॥

---

१—जीवनमूरि=जीवन जड़ी, जीवन मूल । निसान=स्वस्वरूप से प्रगट होके । बजाइ=अनहद ध्वनि पैदा कर.।

२—निर्मल=निष्पाप । जनि छाडहु=मत त्यागे । कुसमल=मलिनता, पाप । तत=नाम-चिंतनरूप तत्व।

३—सुमिरण उपदेस

मेरे मन भैया राम कहो रे, राम नाम मोहिं सहजि सुनावै।
उन ही चरण मन लीन रहौ रे ॥ टेक ॥
राम नाम ले संत सुहावै, कोई कहै सब सीस सहौ रे।
वाही सौं मन जोरे राखौ, नीकै रासि लिये निबहौ रे ॥ १ ॥
कहत सुनत तेरो कछू न जावै, पापनि छेदन सोइ लहौ रे।
दादू रे जन हरि गुण गावो, कालहि जालहि फेरि दहौ रे ॥२॥

४—विरह

कौंण विधि पाइये रे, मीत हमारा सोइ ॥ टेक ॥
पास पीव परदेश है रे, जब लग प्रगटै नांहिं।
बिन देखे दुख पाइये, यहु सालै मन मांहिं ॥ १ ॥
जब लग नैंन न देखिये, परगट मिलै न आइ।
एक सेज संगहि रहै, यहु दुख सह्या न जाइ ॥ २ ॥
तब लग नेड़ै दूरि है रे, जब लग मिलै न मोहि ।
नैंन निकट नहिं देखिये, संगि रहे क्या होइ ॥ ३ ॥
कहा करौं कैसे मिलै रे, तलपै मेरा जीव ।
दादू आतुर विरहनी, कारण अपने पीव ॥ ४ ॥

३—सहजि=स्वतः, स्वभावतः । सुहावे=शोभनीय हो । नीके=ठीक तरह । रासि=संग निबहो=निभ सकोगे। छेदन=काटने वाला। दहो=जलावो।

४—पास=समीप, हृदय देश में। एक सेज=अन्तःकरण की वृत्ति में । नैंन निकट=ज्ञान विचार के नेत्रों के साथ। तलपै=तड़फै, छटपटाये। विरहनी=सन्त आत्मा ।

५—विरह विलाप

जियरा क्यौं रहै रे, तुम्हारे दर्सन बिन बेहाल ॥ टेक ॥

परदा अंतरि करि रहे, हम जीवैं किहिं आधार ।
सदा संगाती प्रीतमा, अब कै लेहु उबारि ॥ १ ॥

गोपि गुसांईं ह्वै रहे, इब काहे न परगट होइ ।
राम सनेही संगिया, दूजा नांहीं कोइ ॥ २ ॥

अंतरजामी छिपि रहे, हम क्यौं जीवैं दूरि ।
तुम बिन व्याकुल केशवा, नैंन रहे जल पूरि ॥ ३ ॥

आप अपरछन ह्वै रहे, हम क्यौं रैनि विहाइ ।
दादू दर्सन कारणै, तलफि २ जिव जाइ ॥ ४ ॥

६—विरह हैरान

अजहूँ न निकसैं प्राण कठोर, दर्सन बिना बहुत दिन बीते ।
सुंदर प्रीतम मोर ॥ टेक ॥

चारि पहर चारयौं जुग बीते, रैनि गंवाई भोर ।
अवधि गई अजहूँ नहिं आये, कतहूँ रहे चित चोर ॥ १ ॥

कब हूँ नैंन निरखि नहिं देखे, मारग चितवत तोर ।
दादू ऐसैं आतुर विरहणि, जैसे चंद चकोर ॥ २ ॥

---

५—बेहाल=बुरी दशा, विह्वल । परदा=अज्ञान का आवरण । अबकैं=नरतन में । गोपि=गुप्त । हम=जिज्ञासुजन । अपरछिन=अदृश्य, अप्रत्यक्ष । रैनि=आयुरूपी रात्रि ।

६—निकसे=निकले । चारयौं युग=चारों अवस्था रूपी युग । रैनि = रात्रि । भोर = दिन । अवधि=नियत समय । चितवत=चिन्तन करते, एक टक देखते ।

७-सुंदरी सिंगार

सोधन पीवजी साजि संवारि, इब बेगि मिलौ तन जाइ बनवारी ॥ टेक
साजि सिंगार किया मन मांहीं, अजहूं पीव पतीजै नांहीं ॥ १ ॥
पीव मिलन कौ अहिनिस जागी, अजहूँ मेरी पलक न लागी ॥ २ ॥
जतम-२ करि पंथ निहारौं, पिव भावै त्यौं आप संवारौं ॥ ३ ॥
अब सुख दीजै जाऊं बलिहारी, कहै दादू सुणि विपति हमारी ॥ ४ ॥

८-विरहचिंता

सो दिन कबहूँ आवैगा, दादूड़ा पीव पावैगा ॥ टेक ॥
क्यूं ही अपने अंगि लगावैगा, तब सब दुख मेरा जावैगा ॥ १ ॥
पीव अपने बैन सुनावैगा, तब आनंद अंगि न मावैगा ॥ २ ॥
पीव मेरी प्यास मिटावैगा, तब आपहि प्रेम पिलावैगा ॥ ३ ॥
दे अपना दर्श दिखावैगा, तब दादू मंगल गावैगा ॥ ४ ॥

९-विरहप्रीति

तैं मन मोह्यो मोर रे, रहि न सकौं हौं रामजी ॥ टेक ॥
तोरे नांइ चित लाइया रे, अवरनि भया उदास ।
सांईं ये समझाइया, हौं संग न छाडौं पास रे ॥ १ ॥
जाणौं तिलहि न विछूटौं रे, जिनि पछितावा होइ ।
गुण तेरे रसना जपौं, सुणसी सांईं सोइ रे ॥ २ ॥

---

७—सो धन = वह सखी, वह स्त्री । साजि संवारि = हृदय को शुद्ध कर सज्जित किया । पतीजै = भरोसा करै । अहिनिस = दिन रात । जतन जतन करि=आत्म चिन्तन वृत्ति का प्रवाह, अनात्म चिन्तन के निरोध रूप उपाय करते करते । भावै=अच्छा लगै । संवारौं=सज्जित करौं ।

८ – अंगिन=अन्तःकरण में । मावेगा=समावेगा । प्यास=चाह, इच्छा ।

९—मोह्यो = मोहित किया । नांइ=नाम । अवरनि=औरों से, दूसरों से । तिलहि=पलभर

भोरैं जन्म गंवाइया रे, चीन्हा नहीं सो सार।
अजहूँ यह अचेत है, अवर नहीं आधार रे॥ ३॥
पीवकी प्रीति तौ पाइये रे, जो सिर होवै भाग।
यौ तो अनत न जाइसी, रहसी चरणहुँ लाग रे॥ ४॥
अनतैं मन निवारिया रे, मोहि एकै सेती काज।
अनत गये दुख ऊपजै, मोंहि एकहि सेती राज रे॥ ५॥
सांई सौं सहजैं रमौं रे, और नहीं आन देव।
तहां मन विलंबिया, जहां अलख अभेव रे॥ ६॥
चरण कवल चित लाइया रे, भोरैं ही ले भाव।
दादू जन अचेत है, सहजैं ही तूं आव रे॥ ७॥

१०-विरह विलाप

विरहनि कौं सिंगार न भावै, है कोइ ऐसा राम मिलावै॥ टेक॥
विसरे अंजन मंजन चीरा, विरह विथा यहु व्यापै पीरा॥ १॥
नव सत थाके सकल सिंगारा, है कोइ पीड़ मिटावणहारा॥ २॥
देह गेह नहीं सुधि सरीरा, निसदिन चितवत चात्रिग नीरा॥३॥
दादू ताहि न भावै आन, राम बिना भई मृतक समान॥ ४॥

---

भी। रसना=जीभ से। भोरैं=भोलेपन में, अनजान में। अनत=अन्य जगह। राज=शोभा, महत्व। अचेत=असावधान, गाफिल।

दृष्टान्त—*देखे दोउ जन भजत हरि, इक ऊंचै इक गोपि॥*
*मुहम्मद पूछे दुहन को, सुध आसा गुण लोपि॥ १॥*
*भैंरू सिंह भोले भज्यो, भोले भज्यो करीर॥*
*वखत कुवखत भोले कह्यो, प्रभु मिले सहज शरीर॥ १॥*

१०—सिंगार=दिखावट, टीप टाप। विसरे=भूले। चीरा=वस्त्र। नवसत=सोलह। गेह=घर, अन्तःकरण। आन=अन्य संसारी पदार्थ।

११—करुणा विनती

इब तो मोहि लागी बाइ, उन निहचल चित लियो चुराइ ॥टेक॥
आन न रुचै और नहिं भावै, अगम अगोचर तहं मन जाइ।
रूप न रेख वरण कहौं कैसा, तिन चरणौं चित रह्या समाइ ॥१॥
तिन चरणौं चित सहजि समाना, सो रस भीना तहं मन धाइ।
अब तौ ऐसी बनि आई, विष तजै अरु अमृत खाइ ॥ २॥
कहा करौं मेरा बस नांहीं, और न मेरे अंगि सुहाइ।
पल एक दादू देखन पावै, तौ जन्म जन्म की त्रिषा बुझाइ ॥ ३॥

१२—करुणा विनती

तूं जनि छाड़ै केसवा, मेरे और निबाहनहार हो ॥ टेक ॥
अवगुण मेरे देखि करि, तू ना कर मैला मन।
दीनानाथ दयाल है, अपराधी सेवग जन हो ॥ १ ॥
हम अपराधी जनम के, नख सिख भरे विकार।
मेटि हमारे अवगुणा, तू गरवा सिरजनहार हो ॥ २ ॥
मैं जन बहुत विगारिया, अब तुम ही लेहु संवारि।
समरथ मेरा सांइयां, तू आपै आप उधारि हो ॥ ३ ॥
तू न विसारि केसवा, मैं जन भूला तोहि।
दादू को और निवाहि ले, अब जनि छाड़ै मोहि हो ॥ ४ ॥

११—इब=अब। वाइ=विरह की भाफ। आन=अन्यप्रवृत्तिमय कर्म। भीना=भीजा, सुन्दर। विष तजै=भोग वासना छोड़े। अमृत=नामामृत।

१२—अवगुण=दोष, अपराध। नख सिख=मन, वचन, कर्म। गरवा=महान्, बड़ा।

१३—केवल विनती

राम संभालियें रे, विषम दुहेली बार ॥ टेक ॥
मंझि समंदा नावरी रे, बूडै खेवट बाज ।
काढनहारा को नहीं, एक राम बिन आज ॥ १ ॥
पार न पहुँचै राम बिन, भेरा भव जल मांहिं ।
तारणहारा एक तू, दूजा कोई नांहिं ॥ २ ॥
पार परोहन तौ चलै, तुम खेवहु सिरजनहार ।
भवसागर मैं डूबि है, तुम्ह बिन प्राण अधार ॥ ३ ॥
औघट दरिया क्यौं तिरै, बोहिथ बैसणहार ।
दादू खेवट राम बिन, कौंण उतारै पार ॥ ४ ॥

१४

पार नहिं पाइये रे, राम बिना को निबारणहार ॥ टेक ॥
तुम्ह बिन तारण को नहीं, दूभर यहु संसार ।
पैरति थाके केसवा, सूझै वार न पार ॥ १ ॥
विषम भयानक भवजला, तुम्ह बिन भारी होइ ।
तूं हरि तारण केसवा, दूजा नांहीं कोइ ॥ २ ॥
तुम्ह बिन खेवट को नहीं, अतिर तिर्‌यो नहिं जाइ ।
औघट भेरा डूबि है, नांहीं आन उपाइ ॥ ३ ॥
यहु घट औघट विषम है, डूबत मांहिं सरीर ।
दादू काइर राम बिन, मन नहिं बांधै धीर ॥ ४ ॥

---

१३—दुहेली वार=कठिन समय । मंझि=बीच । बूडै=डूबे । वाज=विना । भेरा=नौका । परोहन=जहाज । औघट=बिना घाट, बिना किनारे । वोहिथ=नौका ।

१४—दूभर=जिसकी पूर्ति नहीं, अति कठिन । पैरति=तिरते हुये । खेवट=पतवार चला

१५

क्यूं हम जीवैं दास गुसांई, जे तुम छाडहु समर्थ सांई ॥ टेक॥
जे तुम जन कौं मनहिं विसारा, तौ दूसर कौण संभालनहारा ॥१॥
जे तुम परहरि रहौ निन्यारे, तौ सेवक जाइ कवन के द्वारे।
जे जन सेवक बहुत बिगारै, तौ साहिब गरवा दोस निवारै ॥३॥
समर्थ सांई साहिब मेरा, दादू दास दीन है तेरा ॥ ४ ॥

१६—करुणा

क्यूं करि मिलै मोकौं राम गुसांई, यहु विषिया मेरे बसि नांहीं॥टेक
यहु मन मेरा दह दिसि धावै, नियरे राम न देखन पावै ॥ १ ॥
जिभ्भा स्वाद सबै रस लागै, इन्द्रिय भोग विषै कौं जागै ॥ २ ॥
श्रवणहुं साच कदे नहिं भावै, नैंन रूप तहं देखि लुभावै ॥ ३ ॥
काम क्रोध कदे नहिं छीजै, लालचि लागि विषै रस पीजै ॥ ४ ॥
दादू देखि मिलै क्यौं सांई, विषै विकार बसैं मन मांहीं ॥ ५ ॥

१७—प्रचय विनती

जो रे भाई राम दया नहिं करते, नवका नांव खेवट हरि आपैं,
यौं बिन क्यों निसतरते ॥ टेक ॥
करणी कठिन होत नहिं मोपै, क्यों कर ये दिन भरते।
लालचि लागि परत पावक मैं, आपहि आपै जरते ॥ १ ॥

वाला। काइर=भयातुर।

१५—जनकों=जिज्ञासु सन्त आत्मा को। परिहरि=छोड़ कर। निन्यारे=अलग। गरवा=गंभीर, उदार चित्त।

१६—मोकों=मुझे। यहु विषया=यह विषय भोग की चाह। दहदिसि=संसार के नाना पदार्थों की ओर। नियरे=पास, हृदय में ही। जागै=प्रवृत्त हो। छीजै=कम हो, शान्त हो।

१७—नवका=नौका। नांव खेवट=नामरूप मांझी। करणी कठिन=हठयोग आदि की

स्वादहि संग विषै नहिं छूटै, मन निहचल नहिं धरते।
खाय हलाहल सुख के तांईं, आपै ही पचि मरते ॥ १ ॥
मैं कामी कपटी क्रोध काया मैं, कूप परत नहिं डरते।
करवत काम सीस धरि अपनैं, आपहि आप विरहते ॥ ३ ॥
हरि अपना अंग आप नहिं छाडै, अपनी आप विचरते।
पिता क्यूं पूत कूं मारै, दादू यूं जन तिरते ॥ ४ ॥

१८—विरह विलाप विनती

तौ लग जनि मारै तूं मोहि, जौ लग मैं देखौं नहिं तोहि ॥टेक॥
इब के बिछुरे मिलन कैसैं होइ, इहि विधि बहुरि न चीन्है कोइ ॥१॥
दीन दयाल दया करि जोइ, सब सुख आनंद तुम्हथैं होइ ॥२॥
जन्म जन्म के बंधन खोइ, देखन दादू अहिनिसि रोइ ॥३॥

१९—स्पर्श विनती

संग न छाड़ौं मेरा पावन पीव, मैं बलि तेरे जीवनि जीव ॥टेक॥
संगि तुम्हारे सब सुख होइ, चरण कवल मुख देखौं तोहि ॥१॥
अनेक जतन करि पाया सोइ, देखौं नैंनहुं तौ सुख होइ ॥२॥
सरणि तुम्हारी अंतरि बास, चरण कवल तहं देहु निवास ॥३॥
अब दादू मन अनत न जाइ, अंतरि वेधि रह्यो ल्यौ लाइ ॥४॥

करणी। ये दिन=विरह का काल। हलाहल = विषय विष। कूप = संसारी भोग वासना रूपी कूवा। करवत=करोत। विहरते=चीरते। अपना अंग=अपनी [illegible]।

१८—तौलग=तबतक। जनि=मत। बहुरिन=फिर, दुवारा। चीन्है = जाने, [illegible]। देखन=दर्शन के लिये।

२०—परचै विनती (गुजराती भाषा)

**नहिं मेलूं राम, नहिं मेलूं, मैं शोधि लीधो नहिं मेलूं,**
**चित्त तूं सूं बांधूं नहिं मेलूं ॥टेक॥**
**हूं तारे काजे तालावेली, हवे केम मने जाशे मेली ॥ १ ॥**
**साहसि तूं न मनसों गाढ़ौ, चरण समानो केवी पेरे काढौ ॥ २ ॥**
**राखिष हूदे, तूं मारो स्वामी, मैं दुहिले पाम्यों अंतरजामी ॥ ३ ॥**
**हवे न मेलूं, तूं स्वामी मारो, दादू सनमुख सेवक तारो ॥ ४ ॥**

२१— परचै करुणा विनती

**राम, सुनहु न विपति हमारी हो, तेरी मूरति की बलिहारी हो**
**मैं जु चरण चित चाहना, तुम सेवग साधारना ॥ १ ॥**
**तेरे दिन प्रति चरण दिखावना, करि दया अंतरि आवना ॥ २ ॥**
**जन दादू विपति सुनावना, तुम गोविंद तपति बुझावना ॥ ३ ॥**

---

२०—मेलूं=त्यागूं । शोधि लीधो=तलाश कर लिया । ताला वेली = विकल, विह्वल । हवे=अब । केम=कैसे । जासे मेलि = छोड़ा जायगा ।

दृष्टान्त—*कृष्ण द्वारिका को चले, कुन्ती कियो विलाप ॥*
*राख लिये पुनि प्रेम वसि, मैटी जन की ताप ॥ १ ॥*

साहसि तूंनै मन सों गाढो=मन में दृढता से आपको ग्रहण किया है। मन उसमें अब भी दृढ है । चरण समानो केवी पेरे काढो=मैं आप के चरणों में लग गया हूं अतः आप कैसे दूर निकाल सकते हो। राखिश=रखूंगा । दुहिले=कठिनाई से। पाम्यौं = प्राप्त किया, पाया । हवेन = अब ।

२१—चाहना=चाहता हूँ। साधारनां=उधारना । प्रतिदिन=अनवरत । अंतरि=भीतर, अन्तःकरण में । आवना=आव । बुझावना=बुझाओ, शान्त करो ।

२२—परचै विनती—प्रश्न

कौन भाँति भल मानै गुसाईं, तुम भावै सो जानत नाहीं ॥ टेक ॥
कै भल मानैं नाचे गाये, कै भल मानैं लोक रिझाये ॥ १ ॥
कै भल मानैं तीरथ न्हाये, कै भल मानैं मूंड मुडाये ॥ २ ॥
कै भल मानैं सब घर त्यागी, कै भल मांनैं भये बैरागी ॥ ३ ॥
कै भल मानैं जटा बधाये, कै भल मांनैं भसम लगाये ॥ ४ ॥
कै भल मानैं वन वन डोलै, कै भल मांनैं मुखहि न बोले ॥ ५ ॥
कै भल मानैं जप तप कीये, कै भल मांनैं करवत लीये ॥ ६ ॥
कै भल मानैं ब्रह्म गियानी, कै भल मांनैं अधिक धियानी ॥ ७ ॥
जे तुम्ह भावै सो तुम्ह पै आहि, दादू न जांणैं कहि समझाइ ॥८॥

साखी उत्तर

दादू जे तूं समझै तौ कहौं, साचा एक अलेख ।
डाल पान तजि मूल गहि, क्या दिखलावै भेख ॥ १ ॥
दादू सबु बिन सांईं ना मिलै, भावै भेख बनाइ ॥
भावै करवत उरध मुखि, भावै तीरथ जाइ ॥ १ ॥

२३—परचै विनती

अहो गुण तोर, अवगुण मोर, गुसांईं, तुम्ह कृत कीन्हां ।
सो मैं जानत नांहीं ॥ टेक ॥
तुम्ह उपगार किये हरि केते, सो हम बिसरि गये ।
आप उपाइ अगनि मुख राखे, तहां प्रतिपाल भये ॥१॥

---

२२—करवत लिये=काशी करोत लिये । तुम्ह पै आहि = तुम्हारे ही पास है ।
दृष्टान्त—*लेखक स्याही पीवतां, माखी ताड़ां नाहिं ॥*
*आत्मदृष्टि विचारतां, हरि प्रगटे छिन माहि ॥ १ ॥*
२३—कृत=उपकारी काम । उपाइ=उत्पन्न कर । सजीवनि=चेतन ।

नख सिख साजि किये हो सजीवनि, उदरि आधार दिये।
अन्नपान जहं जाइ भसम ह्वै, तहं तैं राखि लिये ॥२॥
दिन दिन जानि जतन करि पोखे, सदा समीप रहे
अगम अपार किये गुन केते, कबहूँ नांहिं कहे ॥३॥
कबहूँ नांहिं न तुम्ह तन चितवत, माया मोह परे
दादू तुम्ह तजि जाइ गुसांई, विषिया मांहिं जरे ॥४॥

२४—उपदेश चितावणी

कैसे जीवियै रे, सांई संग न पास,
चंचल मन निहचल नहीं, निस दिन फिरै उदास ॥ टेक ॥
नेह नहीं रे राम का, प्रीति नहीं परकास।
साहिब का सुमिरण नहीं, करै मिलन की आस ॥ १ ॥
जिस देखे तूं फूलिया रे, पाणी पिंड बधाणां मांस।
सो भी जलि बलि जाइगा, झूठा भोग विलास ॥ २ ॥
तौ जीवीजै जीवणां, सुमिरै सासैं सास।
दादू परगट पिव मिलै, तौ अंतरि होइ उजास ॥ ३ ॥

२५—हित उपदेश

जियरा मेरे सुमिरि सार, काम क्रोध मद तजि विकार ॥टेक॥
तूं जनि भूलै मन गंवार, सिर भार न लीजै, मानि हार ॥ १ ॥
सुणि समझायौ बार बार, अजहूँ न चेतै, हो हुसियार ॥२॥
करि तसैं भव तिरिये पार, दादू इब थैं यही विचार ॥ ३ ॥

२४—परकास=ज्ञान की ज्योति। जीवीजै=जीवन सफल हो। उजास=उजियाला।
२५—सार = तत्त्व पदार्थ। भव=संसार।

२६—भय चितावणी

जियरा चेति रे, जनि जारै, हेजैं हरिसौं प्रीति न कीन्ही।
जनम अमोलक हारै ॥ टेग ॥
बेर बेर समझायौ रे जियरा, अचेत न होइ गंवारे।
यहु तन है कागद की गुड़िया, कछु एक चेत विचारे ॥ १ ॥
तिल तिल तुझ कौं हाणि होत है, जै पल राम विसारै।
भौ भारी दादू के जिय मैं, कहु कैसैं करि डारै ॥ २ ॥

२६७

जियरा काहे रे मूढ डोलै। वनवासी लाला पुकारै।
तुंही तुंही करि बोलै ॥ टेक ॥
साथ सवारी लैन गयौ रे, चालण लागौ बोलै।
तब जाइ जियरा जाणैगौ रे, बांधे ही कोइ खोलै ॥ १ ॥
तिल तिल मांहैं चेत चली रे, पंथ हमारा तोलै।
गहिला दादू कछू न जाणै, राखि ले मेरे मोलै ॥ २ ॥

२७—अप्रबल वैराग

ता सुख कौं कहौ का कीजै, जाथैं पल पल यहु तन छीजै ॥ टेक ॥
आसण कुंजर सिरि छत्र धरीजै, ताथैं फिरि फिरि दुख सहीजै ॥१॥
सेज संवारि सुंदरि संगि रमीजै, खाइ हलाहल, भर्मि मरीजै ॥२॥
बहु विधि भोजन मानि रुचि लीजै, स्वाद संकुटि भरमि पासि परीजै ३
ये तजि दादू प्राण पतीजै, सब सुख रसना राम रमीजै ॥ ४ ॥

---

२६—जनि जारै=मत जलावें, मत व्यर्थ खोवे। हेजैं=हेजसे, अति प्रेम से। हाणि=नुकसान। करि डारै=दूर कर सके। वनवासी लाल=वन में रहने वाली चिड़ियायें। बोलै=छाने। बांधे=बन्धनों से।

२८—उपदेश

मन निर्मल तन निर्मल भाई, आन उपाइ विकार न जाई ॥ टेक ॥
जो मन कोयला तौ तन कारा, कोटि करै नहिं जाइ विकारा ॥१॥
जो मन विसहर तौ तन भुवंगा, करै उपाइ बिषै पुनि संगा ॥२॥
मन मैला तन उज्जल नांहीं, बहुत पचिहारे विकार न जांहीं ॥३॥
मन निर्मला तन निर्मल होई, दादू साच विचारै कोई ॥ ४ ॥

२९—उपदेश चितावणी

मैं मैं करत सबै जग जावै, अजहूँ अंध न चेतै रे।
यह दुनिया सब देखि दिवानी, भूलि गये हैं केते रे ॥ टेक ॥
मैं मेरे मैं भूलि रहे रे, साजन सोइ विसारा।
आया हीरा हाथि अमोलक, जन्म जुवा ज्यूं हारा ॥ १ ॥
लालच लोभैं लागि रहे रे, जानत मेरी मेरा।
आपहि आप विचारत नांहीं, तूं काको को तेरा ॥ २ ॥
आवत है सब जाता दीसै, इन मैं तेरा नांहीं।
इन सौं लागि जन्म जनि खोवै, सोधि देख सचु मांहीं ॥ ३ ॥
निहचल सौं मन मानैं मेरा, सांई सौं बनि आई।
दादू एक तुम्हारा साजन, जिन यहु भुरकी लाई ॥ ४ ॥

३०—निर्वेद उपदेस ( ज्ञान बिना सब फीका )

का जिवना का मरणा रे भाई, जो तैं राम न रमसि अघाई ॥टेक॥
का सुख संपति छत्रपति राजा, वनखंडि जाइ बसे किहिं काजा ॥१॥

---

२८—मन कोयला=मन मैला। विसधर=विषय विष से युक्त। भुवंगा=सांप।
२९—साजन=अपना हितु, प्रेमी। भुरकी=मोहनी।
३०—रमसि=खेलेगा, ईश्वर से अरस परस होगा। अघाइ=तृप्त हो।

का विद्या गुन पाठ पुराना, का मूरिख जो तैं राम न जाना ॥ २ ॥
का आसन करि अहनिसि जागे, का फिर सोवत राम न लागे ।३।
का मुकता का बंधे होई, दादू राम न जाना सोई ॥ ४ ॥

३१—मन प्रबोध

मनरे ! राम बिना तन छीजै, जब यहु जाइ मिलै माटी मैं
तब कहु कैसैं कीजै ॥ टेक ॥
पारस परसि कंचन करि लीजै, सहज सुरति सुखदाई ।
माया बेलि, विषै फल लागे, तापरि भूलि न भाई ॥ १ ॥
जब लग प्राण पिंड है नीका, तब लग ताहि जनि भूलै ।
यहु संसार सैंबल के सुख ज्यूं, तापर तूं जनि फूलै ॥ २ ॥
अवसर येह जानि जग जीवन, समझि देखि सचु पावै ।
अंग अनेक आन मति भूलै, दादू जनि डहकावै ॥ ३ ॥

३२—मृगोक्त उपदेस

मोह्यो मृग देखि बन अंधा, सूझत नहीं काल के फंधा ॥ टेक ॥
फूल्यौ फिरत सकल बन मांहीं, सिर साधे सर सूझत नांहीं ॥ १ ॥
उदमदि मातौ बन के ठाट, छाडि चल्यौ सब बारहबाट ॥ २ ॥
फंध्यो न जानै बन के चाइ, दादू स्वादि बंधानौ आइ ॥ ३ ॥

---

३१—सहज=स्वाभाविक दशा। सुरति=सुरति वृत्ति। सैंबल=सैंवल के पुष्प की तरह। जानि जग जीवन = व्यापक परमेश्वर को पहचान। आन = और, विषय भोग। डहकावै=भ्रमै।

३२—उदमद=उन्मत्त, विषयासक्त। फंध्यो = फन्दा। चाइ=चाव, चाह।

३३—मन प्रति उपदेस

काहे रे मन राम विसारै, मनिखा जन्म जाय जिय हारै ॥ टेक ॥
मात पिता को बंध न भाई, सब ही सुपिना कहा सगाई ॥ १ ॥
तन धन जोवन झूठा जाणी, राम हृदै धरि सारंगप्राणी ॥ २ ॥
चंचल चित वित झूठी माया, काहे न चेतै सो दिन आया ॥ ३ ॥
दादू तन मन झूठा कहिये, रामचरण गहि काहे न रहिये ॥ ४ ॥

३४—मानुष देह माहात्म्य

ऐसा जनम अमोलक भाई, जामैं आइ मिलै राम राई ॥ टेक ॥
जामैं प्राण प्रेम रस पीवै, सदा सुहाग सेज सुख जीवै ॥ १ ॥
आत्म आइ राम सौं राती, अखिल अमर धन पावै थाती ॥ २ ॥
परगट परसन दरसन पावै, परम पुरुष मिलि मांहिं समावै ॥ ३ ॥
ऐसा जन्म नहीं नर आवै, सो क्यूं दादू रतन गंवावै ॥ ४ ॥

३५—परचै सतसंग

सतसंगति मगन पाइये, गुरु प्रसादैं राम गाइये ॥ टेक ॥
आकास धरन धरीजै, धरनी आकास कीजै,
सुनि मांहैं निरखि लीजै ॥ १ ॥
निरखि मुकताहल मांहैं साइर आयौ,
अपने पिया हौं ध्यावत खोजत पायौ ॥ २ ॥
सोच साइर अगोचर लहिये, देव देहुरे मांहैं कवन कहिये ॥ ३ ॥
हरि कौ हितारथ ऐसो लखै न कोई, दादू जे पीवै पावै अमर होई ॥ ४ ॥

---

३३—सारंगप्राणी=सब रंगो का रंग, सब प्राणों का प्राण ।

३४—प्राण=जीवात्मा । राती=प्रेममग्न । थाती=सम्पत्ति, खजाना ।

३५—आकास धरन धरीजै=निर्विकल्प अवस्था प्राप्त करिये । धरनी आकास कीजै=वृत्ति को

३६—उपदेस चितावणी

**कौण जनम कहं जाता है, अरे भाई राम छाडि कहं राता है ॥टेक॥**
**मैं मैं मेरी इनसौं लागि, स्वाद पतंग न सूझै आगि ॥ १ ॥**
**विषिया सौं रत गर्व गुमान, कुंजर काम बंधे अभिमान ॥ २ ॥**
**लोभ मोह मद माया फंध, ज्यौं जल मीन न चेतै अंध ॥ ३ ॥**
**दादू यहु तन यूंही जाइ, राम विमुख मरि गये विलाइ ॥ ४ ॥**

३७

**मन मूरिखा तैं क्या कीया, कुछ पीव कारणि वैराग न लीया।**
**रे तैं जप तप साधी क्या दीया ॥ टेग ॥**
**रे तैं करवत कासी कदि सह्या, रे तू गंगा माँहैं ना बह्या।**
**रे तैं विरहनी ज्यौं दुख ना सह्या ॥ १ ॥**
**रे तूं पालै पर्वत ना गल्या, रे तैं आपही आपा ना दह्या।**
**रे तैं पीव पुकारी कदि कह्या ॥ २ ॥**
**होइ प्यासे हरि जल ना पीया, रे तूं बजर, न फाटौ रे हिया।**
**ध्रिग जीवन दादू ये जीया ॥ ३ ॥**

३८

**क्या कीजै मनिखा जन्म कौं, राम न जपहि गंवारा।**
**माया के मदि मातौ बहै, भूलि रह्या संसारा ॥ टेक ॥**

---

निराधार व्यापक चेतन के आश्रित करिये। सुंनि=विकल्प रहित वृत्तिका स्थैर्य। साइर=सांई, परमेश्वर। हितारथ=हेत, उपकार।

३७—साधी = साधना कर। पालै = बर्फ में। बजर = कठोर। ध्रिग = धिक्कार। आपा = अभिमान।

दृष्टान्त—*हींग हलद खड़िये वसे, तो त्रिया किमि त्याग ॥*
*कै मोकों खडिये करो, कै ल्यो तीव्र वैराग ॥ १ ॥*

हिरदै राम न आवई, आवै विषै विकारा रे।
हरि मारग सूझै नहीं, कूप परत नहिं बारा रे ॥ १ ॥
आपा अग्नि जु आप मैं, तार्थं अहिनिसि जरै सरीरा रे।
भाव भगति भावै नहीं, पीवै न हरि जल नीरा रे ॥ २ ॥
मैं मेरी सब सूझई, सूझै माया जालो रे।
राम नाम सूझै नहीं, अंध न सूझै कालो रे ॥ ३ ॥
ऐसैं ही जनम गंवाइया, जित आया तित जाइ रे।
राम रसाइण ना पिया, जन दादू हेत लगाइ रे ॥ ४ ॥

३९—परचै वैराग

इनमैं क्या लीजै क्या दीजै, जनम अमोलक छीजै ॥ टेक ॥
सोवत सुपिना होई, जागे थैं नहिं कोई।
मृगतृष्णा जल जैसा, चेति देखि जगु ऐसा ॥ १ ॥
बाजी भरम दिखावा, बाजीगर डहकावा।
दादू संगी तेरा, कोई नहीं किस केरा ॥ २ ॥

४०—चितावणी उपदेश

खालिक जागै जियरा सोवै, क्यौं करि मेला होवै ॥ टेक ॥
सेज एक नहिं मेला, तार्थं प्रेम न खेला ॥ १ ॥
सांई संग न पावा, सोवत जनम गंवावा ॥ २ ॥
गाफिल नींद न कीजै, आव घटै तन छीजै ॥ ३ ॥
दादू जीव अयानां, झूठे भरमि भुलानां ॥ ४ ॥

४०—खालिक = खलक-संसार का मालिक। मेला = मिलना। अयाना = अज्ञानी।

# ॥ राग जंगली गौड़ी ॥

४१—पहरा (पंजाबी भाषा)

पहलै पहरै रैंणि दे, वणिजारिया, तूं आया इहि संसार वे ।
मायादा रस पीवण लागा, विसर‍्या सिरजनहार वे ॥
सिरजनहार विसारा, किया पसारा, मात पिता कुल नारि वे ।
झूठी माया आप बंधाया, चेतै नहीं गंवार वे ।
गंवार न चेतै, अवगुण केते, बंध्या सब परिवार वे ।
दादू दास कहै वणिजारा, तूं आया इहि संसार वे ॥ १ ॥
दूजै पहरै रैंणि दे, वणिजारिया, तूं रत्ता तरुणी नाल वे ।
माया मोहि फिरै मतवाला, राम न सक्या संभालि वे ॥
राम न संभाले, रत्ता नाले, अंध न सूझै काल वे ।
हरि नहिं ध्याया, जनम गंवाया, दह दिसि फूटा ताल वे ॥
दह दिसि फूटा, नीर निषूटा, लेखा डेवण साल वे ।
दादू दास कहै वणिजारा, तूं रत्ता तरुणी नाल वे ॥ २ ॥
तीजै पहरै रैंणि दे, वणिजारिया, तैं बहुत उठाया भार वे ।
जो मनि भाया, सो करि आया, ना कुछ किया विचार वे ॥
विचार न कीया, नाव न लीया, क्यों करि लंघै पार वे ।
पार न पावै फिरि पछितावै, डूबण लग्गा धार वे ॥
डूबण लग्गा भेरा भग्गा, हाथि न आया सार वे ।
दादू दास कहै वणिजारा तैं, बहुत उठाया भार वे ॥ ३ ॥

---

४१—पसारा=फैलाव । अवगुण केते = कितने अपराध किये । रत्ता=आसक्त । नालवे= साथ । निखूटा = निकल गया, चला गया । डेवण = देने में । भेरा भग्गा=धैर्य

चौथै पहरै रैंणि दे, वणिजारिया, तूं पका हूवा पीर वे।
जोवन गया, जरा वियापी, नांहीं सुधि सरीर वे॥
सुधि ना पाई, रैनि गंवाई, नैंनौं आया नीर वे।
भवजल भेरा डुबण लग्गा, कोई न बंधै धीर वे।
कोई धीर न बंधै, जम के फंधै, क्यौं करि लंघै तीर वे।
दादू दास कहै वणिजारा, तूं पका हूवा पीर वे॥ ४॥

## ॥ राग गौड़ी ॥

४२—काल चितावणी

काहे रे नर करहु डफाण, अंतिकालि घर गोर मसाण॥ टेक॥
पहले बलवंत गये विलाइ, ब्रह्मा आदि महेसुर जाइ॥ १॥
आगै होते मोटे मीर, गये छाडि पैगंबर पीर॥ २॥
काची देह कहा गर्वाना, जे उपज्या सो सबै बिलाना॥ ३॥
दादू अमर उपावनहार, आपहि आप रहै करतार॥ ४॥

४३—उपदेस

इत घरि चोर न मूसै कोई, अंतरि है जे जानै सोई। टेक॥
जागहु रे जन तत न जाई, जागत है सो रह्या समाई॥ १॥
जतन जतन करि राखहु सार, तस्कर उपजैं कौन विचार॥ २॥
इब करि दूजा जाणैं जे, तौ साहिब सरणागति ले॥ ३॥

---

रूपी नौका टूट गई। वियापी=छागई।

दृष्टान्त— *सुरत जाली को खाण ने, मुहम्मद आनो देय॥*
*गर्भ तवे लेखो लियो, यौं सब का प्रभु लेय॥ १॥*

४२—डफाण=पाखंड, शैतानी। गोर=कब्र। उपावनहार=पैदा करनेवाला।

४३—अंतरि है जै जाने सोई=जो हमारे भीतर चेतन है उसको हम जान जांय तो। ततः

४४—उपदेस चितावणी

मेरी मेरी करत जग खीना, देखत ही चलि जावै ।
काम क्रोध तृष्णा तन जालैं, ताथैं पार न पावै ॥ टेक ॥
मूरिख ममिता जनम गंवावै, भूलि रहे इहि बाजी ।
बाजीगर कौ जानत नांहीं, जनम गंवावै बादी ॥ १ ॥
परपंच पंच करै बहुतेरा, काल कुटुम्ब के तांई ।
विष के स्वादि सबै ये लागे, ताथैं चीन्हत नांहीं ॥ २ ॥
येता जिय मैं जानत नांहीं, आइ कहां चलि जावै ।
आगै पीछै समझै नांहीं, मूरखि यूं डहकावै ॥ ३ ॥
ये सब भरम भानि भल पावै, सोधि लेहु सो सांई ।
सोई एक तुम्हारा साजन, दादू दूसर नांहीं ॥ ४ ॥

४५

गर्व न कीजिये रे, गर्वैं होई विनास ।
गर्वैं गोबिंद ना मिलै, गर्वैं नरक निवास ॥ टेक ॥
गर्वैं रसातलि जाइये, गर्वैं घोर अंधार ।
गर्वैं भौजल डूबिये, गर्वैं वार न पार ॥ १ ॥
गर्वैं पार न पाइये, गर्वैं जमपुरि जाइ ।
गर्वैं को छूटै नहीं, गर्वैं बंधे आइ ॥ २ ॥
गर्वैं भाव न ऊपजे, गर्वैं भगति न होइ ।

---

तत्व, सार । जतन जतन करि = वृत्ति को आत्माभिमुख रख । इव = मनुष्य देह में ।

४४—खीना = क्षीण, नष्ट । इहि बाजी = संसार की बाजीगरी में । बादी = व्यर्थ, फालतू ।
पंच=पांचों इन्द्रियाँ । येता=इतना भी ।

४५—घोर=अति, बहुत । अंधार=अज्ञान का अंधेरा । भाव=विश्वास ।

गर्वैं पिव क्यों पाइये, गर्व करै जनि कोइ ॥ ३ ॥
गर्वैं बहुत विनास है, गर्वैं बहुत विकार ।
दादू गर्व न कीजिये, सनमुख सिरजनहार ॥ ४ ॥

४६—हित उपदेस

हुसियार रही, मन, मारैगा, सांई सतगुरु तारैगा ॥ टेक ॥
माया का सुख भावै, मूरख मन बौरावै रे ॥ १ ॥
झूठ साच करि जाना, इन्द्रिय स्वाद भुलाना रे ॥ २ ॥
दुख कौं सुख करि मानै, काल झाल नहिं जानै रे ॥ ३ ॥
दादू कहि समझावै, यहु अवसर बहुरि न पावै रे ॥ ४ ॥

४७—बेसास

साहिबजी सत मेरा रे, लोग झषैं बहुतेरा रे ॥ टेक ॥
जीव जन्म जब पाया रे, मस्तकि लेख लिखाया रे ॥ १ ॥
घटै बधै कुछ नांहीं, कर्म लिख्या उस मांहीं रे ॥ २ ॥
विधाता विधि कीन्हां, सिरजि सबनि को दीन्हां रे ॥ ३ ॥
समरथ सिरजनहारा, सो तेरे निकटि गंवारा रे ॥ ४ ॥
सकल लोक फिरि आवै, तौ दादू दीया पावै रे ॥ ५ ॥

---

४६—बौरावे=पागल होरहा है । अवसर = मानव शरीर का मौका । बहुरि = पुनः पुनः ।

दृष्टान्त—*लिखि भेजी तुक दयालजी, गरीबदास आमेरि ॥*
*उन गुरु को अगली लिखी, सांई सतगुरु मेरि ॥ १ ॥*

४७—झषैं = बकवाद करें ।

दृष्टान्त—*दिया मिलै परलोक में. करणी तणि मति जोइ ॥*
*कंचनदत कंचन लह्यो, अवर मिल्यो नहिं कोइ ॥ १ ॥*

४८

पूरि रह्या परमेसुर मेरा, अणमांग्या देवै बहुतेरा ॥ टेक ॥
सिरजनहार सहज मैं देइ, तौ काहे धाइ मांगि जन लेइ ॥ १ ॥
विसंभर सब जग कौ पूरै, उदर काजि नर काहे झूरै ॥ २ ॥
पूरिक पूरा है गोपाल, सब की चिंत करै दरहाल ॥ ३ ॥
समरथ सोई है जगनाथ, दादू देखु रहे संग साथ ॥ ४ ॥

४९—नाम विश्वास

रामधन खात न खूटै रे, अपरंपार पार नहिं आवै, आथि न टूटै रे ।टेक।
तस्कर लेइ न पावक जालै, प्रेम न छूटै रे ।
चहुं दिसि पसर्‌यो बिन रखवाले चोर न लूटै रे ॥ १ ॥
हरि हीरा है राम रसाइण, सरस न सूकै रे ॥ ।
दादू और आथि बहुतेरी, उस नर कूटै रे ॥ २ ॥

५०—तत उपदेस

तू है तू है तू है तेरा, मैं नहिं मैं नहिं मैं नहिं मेरा ॥ टेक ॥
तूं है तेरा जगत उपाया, मैं मैं मेरा धंधै लाया ॥ १ ॥
तूं है तेरा खेल पसारा, मैं मैं मेरा कहै गंवारा ॥ २ ॥
तूं है तेरा सब संसारा, मैं मैं मेरा तिन सिरि भारा ॥ ३ ॥
तूं है तेरा काल न खाइ, मैं मैं मेरा मरि मरि जाइ ॥ ४ ॥

---

४८—अंण मांग्या = बिना चाहा । झूरै=रोवे, विकल हो । दरहाल=उसी समय ।

४९—आथि=अर्थ की राशि । तुस=भूषा, छिलका ।

५० धंधे=काम में, सांसारिक प्रवृत्ति में । मैं मैं मेरा तिन सिर भारा=जो अपने अहंकार में उलझते हैं उन्हीं पर सुख दुख का अधिक भार पड़ता है । गया विलाइ=निष्फल चला गया ।

तूं है तेरा रह्या समाइ, मैं मैं मेरा गया विलाइ ॥ ५ ॥
तूं है तेरा तुमही मांहिं, मैं मैं मेरा मैं कुछ नांहिं ॥ ६ ॥
तूं है तेरा तूं ही होइ, मैं मैं मेरा मिल्या न कोइ ॥ ७ ॥
तूं है तेरा लंघै पार, दादू पाया ग्यांन विचार ॥ ८ ॥

४१—संजीवनि

राम विमुख जग मरि मरि जाइ, जीवैं संत रहे ल्यौ लाइ ॥ टेक ॥
लीन भये जे आतमरामा, सदा सजीवनि कीये नामा ॥ १ ॥
अमृत राम रसाइन पीया, ता थैं अमर कबीरा कीया ॥ २ ॥
राम राम कहि राम समाना, जन रैदास मिले भगवाना ॥ ३ ॥
आदि अंति केते कलि जागे, अमर भये अविनासी लागे ॥ ४ ॥
राम रसाइन दादू माते, अविचलि भये राम रंगि राते ॥ ५ ॥

४२

निकटि निरंजन लागि रहे, तब हम जीवत मुकत भये ॥ टेक ॥
मरि करि मुकति जहां जग जाइ, तहां न मेरा मन पतियाइ ॥१॥
आगे जन्म लहैं औतारा, तहां न मानैं मना हमारा ॥ २ ॥
तन छूटे गति जो पद होइ, मृतक जीव मिलै सब कोइ ॥ ३ ॥
जीवत जन्म सुफल करि जाना, दादू राम मिलै मन माना ॥ ४ ॥

४३—हैरान प्रश्न

कादिर कुदरति लखी न जाइ, कहां थैं उपजै कहां समाइ ॥ टेक ॥
कहां थैं कीन्ह पवन अरु पानी, धरनि गगन गतिजाइ न जानी ॥१॥

४१—लीन भये=उसी में लवलीन हुये ।

४३—कादिर=परमपिता । रहिमाना=दयालु ईश्वर ।

कहां थैं काया प्राण प्रकासा, कहां पंच मिलि एक निवासा ॥२॥
कहां थैं एक अनेक दिखावा, कहां थैं सकल एक ह्वै आवा ॥३॥
दादू कुदरति बहुत हैरानां, कहां थैं राखि रहे रहिमाना ॥ ४ ॥

❀ साखी उत्तर की ❀

रहै नियारा सब करै, काहू लिप्त न होइ ।
आदि अंति भानै घड़ै, अैसा समथ सोई ॥
सुरम नहीं सब कुछ करै, यौं कल धरी बनाइ ।
कौतिगहारा ह्वै रह्या, सब कुछ होता जाइ ॥ २ ॥
दादू सबदैं बंध्या सब रहै, सबदैं ही सब जाइ ।
सबदैं हीं सब ऊपजै, सबदैं सबै समाइ ॥

५४—सरूपगति हैरान

अैसा राम हमारे आवै, वार पार कोइ अंत न पावै ॥टेक॥
हलका भारी कह्या न जाइ, मोल माप नहिं रह्या समाइ ॥१॥
कीमत लेखा नहिं परिमाण, सब पचि हारे साधु सुजाण ॥२॥
आगौ पीछौ परिमित नांहिं, केते पारिख आवहि जांहिं ॥३॥
आदि अंत मधि कहै न कोइ, दादू देखै अचिरज होइ ॥४॥

५५—प्रश्न

कौण सबद कौण परखणहार, कौण सुरति कहु कौण विचार ॥टेक॥
कौण सुज्ञाता कौण गियान, कौण उन्मनी कौण धियान ॥१॥

---

५४—परिमाण=माप तोल । परिमित=परिधि, अन्त ।
दृष्टान्त—*रामदास डाकोर में, हले भये रण छोड़ ॥*
*भारी नामा के भये, तुला चढ्यो धन जोड़ ॥ १ ॥*

५५—इस पद में अनेक प्रश्न हैं जिनके उत्तर वाणी में ही विभिन्न स्थलों में आये हैं ।

कौण सहज कहु कौण समाध, कौण भगति कहु कौण अराध ॥२॥
कौण जाप कहु कौण अभ्यास, कौण प्रेम कहु कौण पियास ॥ ३ ॥
सेवा कौण कहौ गुरदेव, दादू पूछै अलख अभेव ॥ ४ ॥

॥ साखी उत्तर की ॥

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार ।
निर्वैरी सब जीवसौं, दादू यहु मत सार ॥
आपा गर्व गुमान तजि, मद मंछर अहंकार ।
गहै गरीबी वंदगी, सेवा सिरजनहार ॥

८६—प्रश्न

मैं नहिं जानौं सिरजनहार, ज्यूं है त्यूंहि कहौ करतार ॥ टेक ॥
मस्तक कहां कहां कर पाइ, अविगत नाथ कहो समझाइ ॥१॥
कहं मुख नैंनां श्रवणा सांई, जानराइ सब कहौ गुसांई ॥२॥
पेट पीठि कहां है काया, पड़दा खोलि कहौ गुरराया ॥३॥
ज्यौं है त्यौं कहि अंतरजामी, दादू पूछै सतगुरु स्वामी ॥४॥

---

प्रश्नोत्तर—कौण शब्द—राम शब्द । कौण परखणहार=प्राणपारग्व् जौंहरी । कौण सुरति—अखंड सुरति । कौण विचार—सहज विचार । कोण सुज्ञाता—आत्मज्ञाता । कौण गियान–हंसवृत्ति ज्ञान । कौण उन्मनि–निराधार वृत्ति की स्थिरता । कौण धियान=एकत्वभाव का ध्यान । कौण सहज–विकल्प तथा भेदरहित वृत्ति की अवस्था । कौण समाधि–निर्विकल्प समाधि । कौण भक्ति–आत्म श्रद्धा । कौण अराध=आत्मदेव । कौण जाप–अजपा जाप । कौण अभ्यास–वृत्ति की निश्चलता । कौण प्रेम अनन्य प्रेम । कौण पियास=विरह की अन्तिम दशा । सेवा कोण=घट परिचय = आपा=अहंबुद्धि । तनके विकार—शरीर की अनिष्ट क्रियायें । मनके विकार—काम क्रोधादि, रागद्वेषादि ।

८६—इस पद में परमात्मा की विविधता सम्बन्धी प्रश्न है—परमेश्वर का विराट् रूप है

❀ साखी उत्तर की ❀

दादू सबै दिसा सो सारिखा, सबै दिसा मुख बैन ।
सबै दिसा श्रवणहुं सुणै, सबै दिसा कर नैन ॥
सबै दिसा पग सीस हैं, सबैं दिसा मन चैन ।
सबै दिसा सनमुख रहै, सबै दिसा अंग अैन ॥

२६—प्रश्न

अलख देव गुरु देहु बताइ, कहां रहौ त्रिभुवन पतिराइ ॥ टेक ॥
धरती गगन बसहु कविलास, तिहूं लोक मैं कहां निवास ॥१॥
जल थल पावक पवनां पूरि, चंदा सूर निकट कै दूरि ॥२॥
मंदिर कौण कौण घरबार, आसण कौण कहौ करतार ॥३॥
अलख देव गति लखी न जाइ, दादू पूछै कहि समझाइ ॥४॥

❀साखी उत्तर की ❀

दादू मुझ ही माँहैं मैं रहूँ, मैं मेरा घरबार ।
मुझ ही माँहैं मैं बसूं, आप कहै करतार ॥
दादू मैं ही मेरा अरस मैं, मैं ही मेरा थान ।
मैं ही मेरा ठौर मैं, आप कहै रहिमान ॥

---

वही इन प्रश्नोंका उत्तर समझना चाहिये । प्रत्युत्तर में दो साखी—सबै दिसा—कही गई हैं ।

दृष्टान्त—मद मछर अहंकार—*मछरपै दृष्टान्त है, समदर दीनो संख ॥*
*जो चाहे सो देइ सो, दुगुन परोसी अंक ॥ १ ॥*

२७—कविलास=कैलास । पूरि=पूर्ण ।
इस पद में परमात्मा का निवास कहां है यह प्रश्न किया है । उत्तर में चार साखियें कही गई हैं । इनसे अपनी व्यापकता व्यक्त की गई है ।

दादू मैं ही मेरे आसिरे, मैं मेरे आधार ।
मेरे तकिये मैं रहूं, कहै सिरजनहार ॥
दादू मैं ही मेरी जाति मैं, मैं ही मेरा अंग ।
मैं ही मेरा जीव मैं, आप कहै परसंग ॥

४८—रस

राम रस मीठा रे, पीवै साधु सुजाण ।
सदा रस पीवै प्रेम सौं, सो अविनासी प्राण ॥ टेक ॥
इहि रसि मुनि लागे सबै, ब्रह्मा विश्नु महेस ।
सुरनर साधू संत जन, सो रस पीवै सेस ॥ १ ॥
सिध साधिक जोगी जती, सती सबै सुखदेव ।
पीवत अंत न आवई, ऐसा अलख अभेव ॥ २ ॥
इहि रसि राते नामदेव, पीपा अरु रैदास ।
पीवत कबीरा ना थक्या, अजहूँ प्रेम पियास ॥ ३ ॥
यहु रस मीठा जिन पिया, सो रस ही मांहिं समाइ ।
मीठे मीठा मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ ॥ ४ ॥

४९

मन मतिवाला मधु पीवै, पीवै बारंबारो रे ।
हरि रसि रातौ राम के, सदा रहै इकतारौ रे ॥ टेक ॥

---

दृष्टान्त—द्विजधरणौं रणछोडकै=कह मैं दक्षिण देश ॥
एक नाथ के जल भरूँ, चीणपटण करि भेष ॥ १ ॥

४८—सिध-मछेन्द्र गोरख भर्तृ आदि । योगी=दत्तात्रेय आदि । जती=भीष्म हनुमान आदि ।
सती=हरिश्चन्द्र आदि ।

४९—भाठी=भट्टी ।

भाव भगति भाठी भई, काया कसणी सारो रे।
पोता मेरे प्रेम का, सदा अखंडित धारो रे॥ १॥
ब्रह्म अगनि जौबन जरै, चेतन चितहि उजासो रे।
सुमति कलाली सारवै, कोइ पीवै विरला दासो रे॥ २॥
प्रीति पियाले पीव ही, छिन छिन बारंबारो रे।
आपा धन सब सौंपिया, तब रस पाया सारो रे॥ ३॥
आपा पर नहिं जाणिये, भूलो माया जालो रे।
दादू हरि रस जे पिवै, ताकौं कदे न लागै कालौ रे॥ ४॥

६०

रस के रसिया लीन भये, सकल शिरोमणि तहां गये॥ टेक॥
राम रसाइण अमृत माते, अविचल भये नरकि नहिं जाते॥ १॥
राम रसाइण भरि भरि पीवै, सदा सजीवन जुगि जुगि जीवै॥ २॥
राम रसाइण त्रिभुवन सार, राम रसिक सब उतरे पार॥ ३॥
दादू अमली बहुरि न आये, सुष सागर ता मांहिं समाये॥ ४॥

६१—भेष

भेख न रीझै मेरा निज भर्तार, तार्थं कीजै प्रीति विचार॥टेक॥
दुराचारनी रचि भेख बनावै, सील साच नहिं पिव को भावै॥१॥
कंत न भावै करै सिंगार, डिंभपणैं रीझै संसार॥ २॥
जो पैं पतिव्रता ह्वै है नारी, सो धन भावै पियहिं पियारी॥३॥
पीव पहिचानैं आन नहिं कोई, दादू सोई सुहागनि होई॥४॥

६०—अमली=व्यसनी।

६१—भेष=बनावटी रूप। डिंभपणे=पाखंडीपनसे, नकली रूपसे। रीझै= राजी हो।
धन=स्त्री।

६२

सब हम नारी एक भरतार, सब कोई तनि करै सिंगार ॥टेक॥
घरि घरि अपने सेज संवारै, कंत पियारे पंथ निहारै ॥१॥
आरती अपनी पीव को धावै, मिलै नाह कय अंगि लगावै ॥२॥
अति आतुर ये खौजत डोलैं, बानि परी विवोगनि बोलैं ॥३॥
सब हम नारी दादू दीन, दे सुहाग काहू संग लीन ॥४॥

६३—आत्मार्थी भेख

सोई सुहागनि साच सिंगार, तन मन लाइ भजै भरतार ॥टेक॥
भाव भगति प्रेम ल्यौ लावै, नारी सोई सार सुख पावै ॥१॥
सहज संतोष सील सब आया, तब नारी नाह अमोलिक पाया ॥२॥
तन मन जोवन सौंपि सब दीन्हां,
तब कंत रिझाइ आप बसि कीन्हा ॥३॥
दादू बहुरि वियोग न होइ, पिव सौं प्रीति सुहागनि सोइ ॥४॥

६४—ममता

तब हम एक भये रे भाई, मोहन मिलि साची मति आइ ॥टेक॥
पारस परसि भये सुखदाई, तब दुनिया दुर्मति दूरि गंवाई ॥१॥
मलियागिरि मरम मिलि पाया, तब वंस वरन कुल भर्म गंवाया॥२॥
हरि जल नीर निकट जब आया,
तब बूंद बूंद मिलि सहज समाया ॥३॥
नाना भेद भर्म सब भागा, तब दादू एकै रंगै रंग लागा ॥४॥

---

६२—नारी=स्त्री। दासातन=भक्ति भावनासे। सेज=अन्त:करण रूपी शैय्या। आरति=अनुरक्त, उसी पर मोहित। नाह=पति, स्वामी। बानि=आदत, स्वभाव।
दृष्टान्त—मीरां वृन्दावन गई, सबठाँ दर्शन कीन्ह ॥
जीव गुंसाई के गई, तर्क वचन कह दीन्ह ॥ १ ॥
६४—सांची मति=सत्यबुद्धि। दुतिया दुर्मति=द्वैध भावकी भावना। कुल=सम्पूर्ण।

६५

अलह राम छूटा भ्रम मोरा, हिंदू तुरक भेद कुछ नांहीं,
देखौ दरसन तेरा ॥ टेक ॥
सोई प्राण पिंड पुनि सोई, सोई लोही मांसा ।
सोई नैन नासिका सोई, सहजै कीन्ह तमासा ॥ १ ॥
श्रवणौं सबद बाजता सुणिये, जिभ्भा मीठा लागै ।
सोई भूख सबन कौ व्यापै, एक जुगति सोई जागै ॥ २ ॥
सोई संधि बंध पुनि सोई, सोई सुख सोई पीरा ।
सोई हस्त पाँव पुनि सोई, सोई एक सरीरा ॥ ३ ॥
यहु सब खेल खालिक हरि तेरा, तैंही एक कर लीना ।
दादू जगति जानि करि ऐसी, तब यहु प्रान पतीना ॥ ४ ॥

६६

भाई रे ऐसा पंथ हमारा, द्वै पख रहित पंथ गहि पूरा,
अवरण एक आधारा टेक ॥ टेक ॥
वाद विवाद काहू सौं नांहीं, मांहीं जगत थैं न्यारा ।
समदृष्टी सुभाइ सहज मैं, आपहि आप विचारा ॥ १ ॥
मैं तैं मेरी यहु मति नांहीं, निर्वैरी निराकारा ।
पूरण सबै देखि आपा पर, निरालंब निराधारा ॥ २ ॥
काहू के संगि मोह न ममिता, संगी सिरजनहारा ।
मनही मनसौं समझि सयाना, आनंद एक अपारा ॥ ३ ॥

---

६५—जुगति=युक्ति, तरीका । पतीना=पतियाया, विश्वास किया ।
दृष्टान्त—एक साधके कहेंते, बेटो भयो न एक ॥
दूजे सन्त बैरा दिया, रूस्यो जन हरिदेव ॥ १ ॥

६६—द्वै पष=हिन्दु मुसलमानपन । अवरण=अरूप । वाद=शास्त्रीय कथनोपकथन । विवाद=

काम कल्पना कदे न कीजै, पूरण ब्रह्म पियारा।
इहि पंथि पहुँचि पार गहि दादू, सो तत सहजि संभारा॥४॥

६७—परचै हैरान

ऐसो खेल बन्यो मेरी माई, कैसै कहौं कछु जान्यौ न जाई॥टेक॥
सुरनर मुनिजन अचरज आई, राम चरण कोइ भेद न पाई॥१॥
मंदिर माँहैं सुरति समाई, कोऊ है सो देहु दिखाई॥२॥
मनहिं विचार करहु ल्यौ लाई, दिवा समाना कहं जोति छिपाई॥३॥
देहि निरांति सुनि ल्यौ लाई, तहं कौण रमै कौण सूता रे भाई॥४॥
दादू न जाणै ये चतुराई, सोइ गुरु मेरा जिन सुधि पाई॥५॥

६८—प्रश्न

भाई रे घरही में घर पाया, सहजि समाइ रह्यो ता मांहीं,
सतगुरु खोज बताया॥ टेक॥
ता घर काजि सबै फिर आया, आपै आप लखाया।
खोलि कपाट महल के दीन्हें, थिर अस्थांन दिखाया॥१॥
भय औ भेद, भर्म सब भागा, साच सोइ मन लागा।
पिंड परे जहां जिव जावै, तामैं सहजि समाया॥२॥
निहचल सदा चलै नहिं कबहूं, देख्या सब मैं सोई।
ताही सौं मेरा मन लागा, और न दूजा कोई॥३॥
आदि अनंत सोई घर पाया, इब मन अनत न जाई।
दादू एक रंगै रंग लागा, तामैं रह्या समाई॥४॥

---

वितंडा। काम कल्पना=विषयकी चाह।

६७—मंदिर=हृदयमंदिर। है=जो नित्य सत्य है। सो=वह। निरांति=अलग।

६८—घरहीमें=अपने ही भीतर। महल=हृदय। थिर अस्थांन=अधिष्ठान ब्रह्म। भयो भेद=रहस्य मिला। आदि अनंत= आरंभ से अन्त तक।

६९—मानसी तीर्थ

इत है नीर नहावन जोग, अनतहि भूमि भूला रे लोग ॥ टेक ॥
तिहि तटि न्हाये निर्मल होइ, वस्त अगोचर लखै रे सोइ ॥१॥
सुघट घाट अरु तिरिवौ तीर, बैठे तहां जगत गुरुपीर ॥२॥
दादू न जाणैं तिन का भेव, आप लखावै अंतरि देव ॥३॥

७०

ऐसा ग्यांन कथौ मन ग्यांनी,
इहि घरि होइ सहजि सुख जानी ॥टेक॥
गंग जमुन तहं नीर नहाइ, सुषमन नारी रंग लगाइ ॥१॥
आप तेज तन रह्यो समाइ, मैं बलि ताकि देखौं अघाइ ॥२॥
बास निरंतर सो समझाइ, बिन नैनहुँ देख तहं जाइ ॥३॥
दादू रे यहु अगम अपार, सो धन मेरे अधर आधार ॥४॥

७१—परचै सत्संग

इब तौ ऐसी बनि आई, राम चरण बिन रह्यौ न जाई ॥टेक॥
सांईं कौ मिलबे के कारनि, त्रिकुटी संगम नीर नहाई।
चरण कवल की तहं ल्यौ लागै, जतन जतन करि प्रीति बनाई ॥१॥
जे रस भीनां छावरि जावै, सुंदरि सहजैं संग समाई।
अनहद बाजे बाजन लागे, जिभ्भाहीणैं कीरति गाई ॥२॥

---

६९—इत है=इस ओर, आत्म उपासनामें। तिहिं तट=त्रिकुटि तीर।
७०—कथो=कहो। गंग जमन=इडा पिंगला। सुषमन नारी=सुषुम्ना नाडी। रंग=प्रेम। वास=निवास। अघाइ=तृप्त हो। अधर अधार=स्वाश्रयी, ब्रह्म।
७१—त्रिकुटी=मन, प्राण, सुरति। संगम=संयुक्त, एकलक्ष्य निहित। जतन जतन करि=आत्मा की ओर वृत्तिके प्रवाहको निरंतरकर—संसारके पदार्थोंसे वृत्तिको हटाकर। छावरि

कहा कहौं कछु वरणि न जाई, अविगति अंतरि जोत जगाई।
दादू उन कौ मरम न जानैं, आप सुरंगे बेन बजाई ॥३॥

७२

नीकै राम कहत है बपरा, घर मांहैं घर निर्मल राखै,
पंचौं धोवै काया कपरा ॥ टेक ॥
सहज समर्पण सुमिरण सेवा, निरवेणी तट संजम सपरा।
सुंदरि सन्मुख जागण लागी, तहं मोहन मेरा मन पकरा ॥१॥
बिन रसनां मोहन गुण गावै, नाना वाणी अनभै अपरा।
दादू अनहद अैसैं कहिये, भगति तत्त यहु मारग सकरा ॥२॥

७३—मनसा गायत्री

अवधू कामधेनु गहि राखी, बसि कीन्हीं तब अमृत सरवै,
आगैं चारि न नांखी ॥ टेक ॥
पोषंता पहली उठि गरजै, पीछै हाथि न आवै।
भूखी भलैं दूध नित दूणा, यूं या धेनु दुहावै ॥१
ज्यूं ज्यूं षीण पड़ै त्यूं दूझै, मुकता मेल्यां मारै।
घाटा रोकि घेरि घरि आणै, बांधी कारिज सारै ॥२

जावे=तृप्त होजाय। सुन्दरी=सन्तवृत्ति। जिभ्भाहींणे=जीभ बिना, केवल वृत्ति से।
७२— नीके=सावधानी से। वपरा=अभिमान रहित साधक। घर=शरीर। घर=अन्तःकरण। पंचो=पांचों इन्द्रियाँ। संजम सपरा=संयमरूपी स्नान। सुन्दरी=सन्तवृत्ति। अपरा=परा वाणी।
७३— कामधेनु=मनसा। अमृत=आत्मरस। सरवे=झरावे। चारि=विषय भोग का चारा खुराक। पोषंता=वासना को विषयसुख देना। भूखी=विषय भोग की खुराक बिना। दूणा=द्विगुण। मुकता मेल्यां मारै=वासना की चाह के विषय भोग देने पर विनाश करती है। घाटारोकि=नौ द्वार को समाधिदशासे रोक। घरआंणैं-आत्मा

सहजैं बांधी कदे न छूटै, कर्म बंधन छुटि जाई।
काटै कर्म सहज सूं बांधै, सहजैं रहै समाई ॥३
छिन छिन मांहि मनोरथ पूरै, दिन दिन होय अनन्दा।
दादू सोई देखतां पावै, कलि अजरावर कंदा ॥ ४ ॥

७४—परचै

जब घटि परगट राम मिलै, आत्म मंगल चार चहूं दिसि,
जनम सुफल करि जीति चले ॥टेक॥
भगति मुकति अभै करि राखै, सकल सिरोमणि आप किये।
निरगुण राम निरंजन आपै, अजरावर उर लाइ लिये ॥१॥
अपनैं अंग संग करि राखै, निरभै नांव निसान बजावा।
अविगत नाथ अमर अविनासी, परम पुरिष निज सो पावा ॥ २॥
सोई बड भागी सदा सुहागी, परगट प्रीतम संगि भये।
दादू भाग बड़े बरवरि करि, सो अजरावर जीति गये ॥ ३ ॥

७५ पराभक्ति प्रार्थना

रमैया यहु दुख साले मोहि, सेज सुहाग न प्रीति प्रेम रस,
दरसन नांहीं तोहि ॥ टेक ॥

---

मुखकरे। घेरि = वाह्यविषयों से हटा। वांधी कारज सारे=वृत्ति आत्मामें बन्ध जाय लग जाय तभी दुःखनिवृत्ति का काम सिद्ध करे। सहजै वाँधी कदे न छूटे = निर्द्वन्द अवस्थामें बन्धी वृत्ति फिर कभी विषयों की ओर नहीं मुड़ती। अजरावर कन्दा= नित्य आनंद।

७४—चहुँदिसि = चारों ओर—अन्तःकरण चतुष्टय। अभै = जन्ममृत्यु भय रहित। उर लाइ लिये = अपने में प्राप्त कर लिये। बरबरि = समान।

७५—साले = चुभे, खटके। बहुरि=फिर। निकसे=अलग हो।

अंग प्रसंग एक रस नांहीं, सदा समीप न पावै ।
ज्यौं रस मैं रस बहुरि न निकसै, अैसैं होइ न आवै ॥ १ ॥
आत्मलीन नहीं निसिवासुरि, भगति अखंडित सेवा ।
सनमुख सदा परसपर नांहीं, ता थैं दुख मोहि देवा ॥ २ ॥
मगन गलित महारसि माता, तूं है तब लग पीजै ।
दादू जब लग अंत न आवै, तब लग देखण दीजै ॥ ३ ॥

७६—लांबी (अधीरता, अस्थिरता)

गुरु मुखि पाइये रे, अैसा ग्यांन विचार ।
समझि समझि समझ्या नहीं, लागा रंग अपार ॥टेक॥
जाणि जाणि जाण्या नहीं, अैसी उपजै आइ ।
बूझि बूझि बूझ्या नहीं, ढोरी लाग्या जाइ ॥१॥
ले ले ले लीया नहीं, हौंस रही मन मांहिं ।
राखि राखि राख्या नहीं, मैं रस पीया नांहिं ॥२॥
पाय पाय पाया नहीं, तेजैं तेज समाइ ।
करि करि कुछ कीया नहीं, आतम अंगि लगाइ ॥३॥
खेलि खेलि खेल्या नहीं, सनमुख सिरजनहार ।
देखि देखि देख्या नहीं, दादू सेवग सार ॥४॥

७७—गुरु आधीन ज्ञान

बाबा गुरु मुखि ग्यांना रे, गुरु मुखि ध्यांना रे ॥ टेक ॥
गुरु मुखि दाता, गुरु मुखि राता, गुरु मुखि गवना रे ।
गुरु मुखि भवना, गुरु मुखि छुवना, गुरु मुखि रवना रे ॥ १ ॥

७६— बूझि = समझ । ढोरी = लगन मय वृत्ति । हौंस=चाह ।

७७—इस पद में ज्ञान की प्राप्ति गुरु द्वारा ही हो सकती है इसका कथन किया है ।

गुरु मुखि पूरा, गुरु मुखि सूरा, गुरु मुखि बाणी रे।
गुरु मुखि देणा, गुरु मुखि लेणा, गुरु मुखि जाणी रे ॥ २ ॥
गुरु मुखि गहिबा, गुरु मुखि रहिबा, गुरु मुखि न्यारा रे।
गुरु मुखि सारा, गुरु मुखि तारा, गुरु मुखि पारा रे ॥ ३ ॥
गुरु मुखि राया, गुरु मुखि पाया, गुरु मुखि मेला रे।
गुरु मुखि तेजं, गुरु मुखि सेजं, दादू खेला रे ॥ ४ ॥

७८—निज स्थान निरणय

मैं मेरे मैं हेरा, मधि मांहैं पीव नेरा ॥ टेक ॥
जहां अगम अनूप अवासा, तहं महापुरिष का वासा।
तहं जानेगा जन कोई, हरि मांहिं समाना सोई ॥ १ ॥
अखंड जोति जहं जागै, तहं राम नाम ल्यौ लागै।
तहं राम रहै भरपूरा, हरि संग रहै नहिं दूरा ॥ २ ॥
तिरवेणी तटि तीरा, तहं अमर अमोलक हीरा।
उस हीरे सौं मन लागा, तब भरम गया भौ भागा ॥ ३ ॥
दादू देख हरि पावा, हरि सहजैं संगि लखावा।
पूरण परम निधाना, निज निरखत हौं भगवाना ॥ ४ ॥

---

गवना=चलना, साधन करना। सब पद में गुरु मुखि शब्दों का प्रति चरण में प्रयोग गुरु उपदेश=गुरु आज्ञा में रहना। भवना=हृदय रूपी स्थान। रवना=होना। पूरा=अखंड। सूरा=अटल निश्चयी। गहिबा=ग्रहण करना। रहिबा=स्थिर होना। न्यारा=मायिक पदार्थोंसे अलग। सारा=पूर्ण ज्ञान। तारा=सं वासना सागर को तैरना। पारा=पार पहुंचना। मेला=आत्म संयोग।

७८—हेरा=खोजा। मधिमांहे=मेरे बीच में ही। त्रिवेणी तट=मन पवन सुरति

७६

मेरा मनि लागा सकल करा, हम निसि दिन हिरदै सो धरा ॥टेक॥
हम हिरदै माँहैं हेरा, पीव परगट पाया नेरा।
सो नेरे ही निज लीजै, तब सहजैं अमृत पीजै॥ १ ॥
जब मनही सौं मन लागा, तब जोति सरूपी जागा।
जब जोति सरूपी पाया, तब अंतरि माँहिं समाया॥ २ ॥
जब चित्तहि चित्त समाना, हम हरि बिन और न जाना।
जाना जीवनि सोई, इब हरि बिन और न कोई ॥ ३ ॥
जब आतम एकै बासा, पर आतम माँहिं प्रकासा।
परकासा पीव पियारा, सो दादू मींत हमारा॥ ४ ॥

॥ इति राग ॥ १ ॥

## अथ राग माली गौड़ ॥ २ ॥

८०—नाँव महिमा

गोबिंदे नाउं तेरा, जीवन मेरा, तारण भौपारा।
आगैं इहि नांइ लागे, संतनि आधारा॥ टेक॥

---

७६— सकल करा=सृष्टि कर्ता से। नेरा=पास ही। जोति स्वरूपी = प्रकाश मय। एकै एकत्व ही में वृत्ति लीन होगई।

इति गौड़ी राग सम्पूर्ण

८०—भौपारा=संसार से पार करने वाला। नांइ=नाम। अगम ठांउ=ब्रह्म देश। कलिविपैः पाप, अपराध।

करि विचार तत्तसार, पूरण धन पाया ।
अखिल नाउं अगम ठाउं, भाग हमारे आया ॥ १ ॥
भगति मूल मुकति मूल, भौजल निसतरना ।
भरम करम भंजनां भै, कलि विषै सब हरना ॥ २ ॥
सकल सिधि नवै निधि, पूरण सब कामा ।
राम रूप तत अनूप, दादू निज नामा ॥ ३ ॥

८०—करुणा

गोबिंदे कैसैं तरिये, नाव नांहीं खेव नांहीं, राम बिमुख मरिये ॥टेक॥
ग्यान नांहीं ध्यान नांहीं, लै समाधि नांहीं ।
बिरहा बैराग नांहीं, पंचौं गुण मांहीं ॥ १ ॥
प्रेम नांहीं प्रीति नांहीं, नांव नांहीं तेरा ।
भाव नांहीं, भगति नांहीं, काइर जीव मेरा ॥ २ ॥
घाट नांहीं, बाट नांहीं, कैसैं पग धरिये ।
बार नांहीं पार नांहीं, दादू बहु डरिये ॥ ३ ॥

८२—विरह

पिव आव हमारे रे, मिलि प्राण पियारे रे, बलिजाउं तुम्हारे रे।टेक।
सुनि सखी सयानीं रे, मैं सेव न जानीं रे, हौं भई दिवानीं रे ।१।
सुनि सखी सहेली रे, क्यूं रहूँ अकेली रे, हूं खरी दुहेली रे ॥ २ ॥
हूं करौं पुकारा रे, सुनि सिरजनहारा रे, दादू दास तुम्हारा रे ॥३॥

८१—खेव नांही =खेवठ नहीं,नाविक नहीं । घाट नांही=ध्यानरूपीघाट नहीं । बाट नाहीं= रास्ता नहीं ज्ञान रूषी रास्ता नहीं पाया

८२ - सखी सयानी= सावधानसाधक । खरी दुहेली = वस्तुतः बहुत दुखी ।

८३

वाल्हा सेज हमारी रे, तूं आव हूँ वारी रे, हूं दासी तुम्हारी रे ॥टेक॥
तेरा पंथ निहारौं रे, सुंदर सेज संवारौं रे,
जियरा तुम्हपरि वारौं रे ॥ १ ॥
तेरा अंगड़ा पेखौं रे, तेरा मुखड़ा देखौं रे, तब जीवन लेखौं रे ॥२॥
मिलि सुखड़ा दीजै रे, यहु लाहड़ा लीजै रे, तुम देखैं जीजै रे ॥३॥
तेरे प्रेमकी माती रे, तेरे रंगड़ै राती रे, दादू वारणैं जाती रे ॥४॥

८४

दरबार तुम्हारे दरदवंद, पीव पीव पुकारै ।
दीदार दरूनैं दीजिये, सुनि खसम हमारे ॥ टेक ॥
तनहां के तनि पीर है, सुनि तुही निवारै ।
करम करीमा कीजिये, मिलि पीव पियारे ॥ १ ॥
सूल सुलाकौं सौ सहूं, तेग तनि मारै ।
मिलि साईं सुख दीजिये, तूंहीं तूं संभारै ॥ २ ॥
मैं सुहदा तन सोखता, विरहा दुख जारै ।
जिय तरसै दीदार को, दादू न विसारै ॥ ३ ॥

---

८३—वाल्हा = प्रीतम । सेज=हृदय प्रदेश रूपी शय्या । वारी=वारणे,निछावर ।अंगड़ा=स्वरूप । लाहड़ा=लाभ ।

८४—दरबार = दरीबे,दौलतखाने । दरदवन्द=उपासक,साधक जन । दरूने=हृदय में । खसम=स्वामी,मालिक । तनहां = विरही जनके । करम=कृपा कर्म । सूल सुलाकौं=विरह वेदना । सुहदा = वियोगी ।

८५

संइयां तूं है साहिब मेरा, मैं हूं बंदा तेरा ॥ टेक ॥

बंदा बरदा चेरा तेरा, हुकमीं मैं बीचारा ।

मीरां मेहरबान गुसांईं, तूं सिरताज हमारा ॥ १ ॥

गुलाम तुम्हारा मुल्लां जादा, लौंडा घर का जाया ।

राजिक रिजक जीव तैं दीया, हुकम तुम्हारे आया ॥ २ ॥

सादील बै हाजिर बंदा, हुकम तुम्हारे मांहीं ।

जबहिं बुलाया तबहीं आया, मैं मेवासी नांहीं ॥ ३ ॥

खसम हमारा सिरजनहारा, साहिब समर्थ सांईं ।

मीरां मेरा मेहर मया कर, दादू तुम्ह हीं तांईं ॥ ४ ॥

८६—करुणा

मुझ थीं कुछ न भया रे, यहु यूंहिं गयारे, पछितावा रह्या रे॥टेक॥

मैं सीस न दीया रे, भरि प्रेम न पीया रे, मैं क्या कीया रे ॥१॥

हौं रंग न राता रे, रस प्रेम न माता रे, नहिं गछित गाता रे ॥२॥

मैं पीव न पाया रे, कीया मन का भाया रे, कुछ होइ न आया रे ॥३॥

हूं रहूं उदासा रे, मुझ तेरी आसा रे, कहै दादू दासा रे ॥४॥

८७—वैराग उपदेश

मेरा मेरा छाड़ि गंवारा, सिर पर तेरे सिरजनहारा ।

अपणें जीव विचारत नांहीं, क्या ले गइला वंस तुम्हारा ॥ टेक ॥

---

८५—वरदा = वरदान दिया हुआ । हुकमी = आज्ञा पालने वाला । मीरां=महान् । मुल्ला-जादा=मोललिया हुआ । राजिक=प्रकाशक । सामिल = दिलसहित ।मैवासी = सामना करने वाला ।

८६—गल्लित गाता==शरीर को तेरे प्रेम में गलतान नहीं किया ।

८७—गइला=गया । हकारा=हरकारा,यम के दूत या हिचकी । संजम कीजे=मन इन्द्रियों

तब मेरा कृत करता नांहीं, आवत है हंकारा।
काल चक्र सौं खरी परी रे, विसर गया घरबारा ॥ १ ॥
जाइ तहां का संजम कीजै, विकट पंथ गिरधारा।
दादू रे तन अपणा नांहीं, तौ कैसे भया संसारा ॥ २ ॥

८८

दादू दास पुकारै रे, सिरि काल तुम्हारै रे,
सर सांधे मारै रे ॥ टेक ॥
जमकाल निवारी रे, मन मनसा मारी रे, यहु जनम न हारी रे॥१॥
सुख नींद न सोई रे, अपणा दुख न रोई रे, मन मूल न खोई रे ॥२॥
सिरिभार न लीजै रे, जिसका तिसकूं दीजै रे, इब ढील न कीजै रे
यहु औसर तेरा रे, पंथी जागि सवेरा रे, सब बाट बसेरा रे ॥४॥
सब तरवर छाया, रे, धन जोबन माया रे, यहु काची काया रे॥५॥
इस भर्म न भूली रे, बाजी देखि न फूली रे, सुख सागर झूली रे॥६॥
रस अमृत पीजे रे, विष का नाव न लीजे रे, कह्या सो कीजे रे७
सब आतम जाणी रै, अपणा पीव पिछाणी रे, यहु दादू वाणी रे॥८॥

८९—भगति उपदेश

पूजौं पहली गणपति राइ, पड़िहौं पावौं चरणौं धाइ।
आगै होकर तीर लगावै, सहजैं अपने बैन सुनावै ॥टेक ॥
कहूं कथा कुछ कही न जाइ, इक तिल में ले सबै समाइ ॥१ ॥

---

को काबू में करिये। गिरधारा=पहाड़ की चोटी।

८८—सांधे=चढाये। सुखनींद=अज्ञान मोह की नींद में। दुखरोइ=जन्ममरण के दुःख को जान। मूल=नरतन। बाट बसेरा=राहगीर, पथिक। सुखसागर=स्वस्वरूप में।

८९—गणपति=सब दृश्य समूह के स्वामी। बैन=पुकार।

गुणहु गहीर धीर तन देही, ऐसा समरथ सबै सुहाइ ॥ २ ॥
जिस दिसि देखौं ओही है रे, आप रह्या गिरि तरवर छाइ ।
दादू रे आगै क्या होवै, प्रीति पिया कर जोड़ि लगाइ ॥ ३ ॥

९०—परचै

नीकौ धन हरि करि मैं जान्यौ, मेरे अखई ओही ।
आगै पीछे सोई है रे, और न दूजा कोई ॥ टेक ॥
कबहूँ न छाड़ौं संग पिया को, हरि के दर्शन मोही ।
भाग हमारे जो हौं पाऔं, सरनैं आयो तोही ॥ १ ॥
आनंद भयो सखी जिय मेरे, चरण कमल को जोई ।
दादू हरि को बावरो, बहुरि विओग न होई ॥ २ ॥

९१—हित उपदेश

बाबा मर्दे मर्दां गोई, ये दिल पाक करदम दोइ ॥ टेक ॥
तर्क दुनियां दूरि कर दिल, फर्ज फारिग होइ ।
पैवस्त परवरदिगार सौं, आकिलां सिर सोइ ॥१॥
मनी मुरदः हिर्स फानी, नफ्स रा पामाल ।
बदीरा बरतर्फ करदः, नाम नेकी ख्याल ॥ २ ॥
जिंदगानी मुरदः बाशद, कुंजे कादिरकार ।
तालिबां रा हक हासिल, पासबाने यार ॥ ३ ॥
मर्दे मर्दां सालिकां, सर आशिकां सुलतान ।
हजूरी होशियार दादू, इहै गो मैदान ॥ ४ ॥

---

९०—अखई=अक्षय । मोहि=मोहित हो । विओग=विछोह ।

९१—मर्दे मर्दां गोइ=मर्दों में मर्द उसी को समझो । पाक=शुद्ध.साफ । करदम=कीचड़

६२

ये सब चरित तुम्हारे मोहना, मोहे सब ब्रह्मंड खंडा।
मोहे पवन पानी परमेसुर, सब मुनि मोहे रवि चंदा ॥ टेक ॥
साइर सप्त मोहे धरणीधरा, अष्ट कुली पर्वत मेर मोहे।
तीनि लोक मोहे जग जीवन, सकल भवन तेरी सेव सोहे ॥ १ ॥
सिव विरंच नारद मुनि मोहे, मोहे सुर सब सकल देवा।
मोहे इंद्र फुनग फुनि मोहे, मुनि मोहे तेरी करत सेवा ॥ २ ॥
अगम अगोचर अपार अपरंपारा, को यहु तेरे चरित न जानैं।
ये सोभा तुम्ह कौं सोहै सुंदर, बलि बलि जाऊं दादू न जानैं ॥ ३ ॥

६३—गुरुज्ञान

ऐसा रे गुरुग्यांन लखाया, आवै जाइ सो दिष्टि न आया ॥ टेक ॥

---

दोइ=द्वैतभाव,भेदभाव। फर्ज=अपना कर्तव्य। फारिग=निमट,जिम्मेदारी से बरी
पैवस्त=प्रवेश करो, लग जाओ। आकिलां=अकल वालों का। सिरसोइ=प्रधान
मनी=अहंकारी। मुरद=मारो, मिटाओ। हिर्सफानी=चाह को दूर करो। नफस रा
पैमाल=मन की शैतानी,नाना चाह को पैमाल-नष्ट करदो।
वदीरा=बदी की बुराई की राह। वर तर्फ=एक ओर, अलग। नेकी=भलाई
ख्याल=ध्यान। जिंदगानी मुरदः बाशिद=जीवन को अहंकार रहित मरे हुवे की तर
दिन रात रखो। कुंजे=हृदय गुफा। कादिर कार=ईश्वर की चाह से युक्त। तालि
बां रा=ऐसे जिज्ञासु साधक जनों को। हक हासिल=अपनी साधना का फल मि
जाता है। पास वाने यार=अपने स्वामी परमात्मा के पास रहने का। मर्दे मर्दां
साधकों मे साधक। सालिकां=मुख्य, शिरोमणि। आशिकां सुलतान=वही मुमुक्षु
का सिरताज है। हजूरी=आत्म जिज्ञासा। हुशियार=सावधान। इहै गौ मैदान
यह मानव शरीर ही इस खेल का मैदान है।

६२—साइर=समुद्र। सोहे=सुहावने लगे। फुनग=शेष।

६३—दिष्टि=लखने में, देखने में। अधर=गुण रहित। कर्म=संचित, क्रियमाण। वहुंग

मन थिर करौंगा, नाद भरौंगा, राम रमौंगा, रसिमाता ॥ १ ॥
अधर रहूँगा, करम दहूँगा, एक भजौंगा भगवंता ॥ २ ॥
अलख लखौंगा अकथ कथौंगा, एकहि मथौंगा गोविंदा ॥ ३ ॥
अगह गहौंगा, अकह कहौंगा, अलह लहौंगा खोजंता ॥ ४ ॥
अचर चरौंगा, अजर जरौंगा, अतिर तिरौंगा आनंदा ॥ ५ ॥
यहु तन तारौं, विषै निवारौं, आप उबारौं साधंता ॥ ६ ॥
आऊं न जाऊं, उनमनि लाऊं, सहज समाऊं गुणवंता ॥ ७ ॥
नूर पिछाणौं, तेजहि जाणौं, दादू जोतिहि देखंता ॥ ८ ॥

९४—तत्त्व उपदेश

वंदे हाजिरां हजूर वे, अल्लह आली नूर वे ।
आशिकां रा सिदक स्याबति, तालिबां भरपूर वे ॥ टेक ॥
औजूद मैं मौजूद है, पाक परवरदिगार वे ।
देखि ले दीदार कौं, गैब गोता मारि वे ॥ १ ॥
मौजूद मालिक तख्त खालिक, आशिकां रा ऐंन वे ।
गुदर कर दिल मग्ज भीतर, अजब है यहु सैंन वे ॥ २ ॥
अर्श ऊपरि आप बैठा, दोस्त दाना यार वे ।
खोजि करि दिल कब्ज करि ले, दरूंनैं दीदार वे ॥ ३ ॥

---

नष्ट कर दूंगा । अकथ=कहने में न आवे । साधंता=साधना में लग । सहज समाऊं= कार्य मात्र को कारण में लय करना । नूर=शुद्धरूप ।

९४—आशिकाँ=जिज्ञासु जन । सिदक स्याबति=पूरा निश्चय । तालिबां=तलबवान, अति विरही । औजूद=शरीर । पाक=पवित्र । दीदार=दर्शन । गैब=अचानक, सहसा । तख्त=हृदय रूपी तख्त पर । खालिक=संसार का स्वामी । ऐनवे=अरस परस है ।

हुशियार हाजिर चुस्त करदम, मीरां मेहरवान वे।
देखि ले दरहाल दादू, आप है दीवान वे ॥ ४ ॥

१९—वस्तु निर्देस

निर्मल तत, निर्मल तत, निर्मल तत ऐसा,
निर्गुण निज निधि निरंजन, जैसा है तैसा ॥ टेक ॥
उतपति आकार नांहीं, जीव नांहीं काया।
काल नांहीं कर्म नांहीं, रहिता राम राया ॥ १ ॥
सीत नांहीं घाम नांहीं धूप नांहीं छाया।
बाव नांहीं वरण नांहीं, मोह नांहीं माया ॥ २ ॥
धरणी आकास अगम, चंद सूर नांहीं।
रजनी निसि दिवस नांहीं, पवनां नांहीं जांहीं ॥ ३ ॥
कृत्यम घट कला नांहीं, सकल रहित सोई।
दादू निज अगम निगम, दूजा नहिं कोई ॥ ४ ॥

इति राग माली गौड़ समाप्त ॥ २ ॥

---

सैंन=इशारा । अर्श=हृदयाकाश में । दांना=स्याणा, हुशियार। कब्ज=कब्ज अधिकार । दरूंनै=दिल में । दम=प्राण श्वास । दर हाल = उसी समय, तत्काल

१९—निज = कूटस्थ । निधि=खजाना । कृत्यम=बनावटी, बनाया हुवा ।

❀ माली गौड़ समाप्त ❀

# अथ राग कल्याण ॥ ३ ॥

६६—उपदेश चितावणी

मन मेरे कछु भी चेत गंवार, पीछे फिर पछुतावेगा रे,
आवे न दूजी बार ॥ टेक ॥
काहे रे मन भूलौ फिरत है, काया सोचि विचारि ।
जिनि पंथौं चलना है तुझ कौ, सोई पंथ संवारि ॥ १ ॥
आगै बाट बिषम जो मन रे, जैसी खांडे की धार ।
दादू दास तूं सांईं सौं सूत करि, कूड़े काम निवार ॥ २ ॥

६७—परचै

जग सौं कहा हमारा, जब देख्या नूर तुम्हारा ॥ टेक ॥
परम तेज घर मेरा, सुख सागर मांहिं बसेरा ॥ १ ॥
झिलिमिलि अति आनंदा, तहं पाया परमानंदा ॥ २ ॥
जोति अपार अनंता, खेलैं फाग बसंता ॥ ३ ॥
आदि अंति अस्थाना, जन दादू सो पहिचाना ॥ ४ ॥

॥ इति राग कल्याण समाप्त ॥ ३ ॥

—०※०—

६६—चेत = सावधान हो । काया=मनुष्य शरीर । संवारि=सज्जित कर । बाट=राह ।
बिषम = कठिन । सूत=मेल ।

६७—बसेरा=निवास । अस्थाना=जगह ।

※ इति कल्याण ※

# राग कानड़ो ॥ ४ ॥

१८—विरह विनती

दे दर्सन देखन तेरा, तो जिय जक पावै मेरा ॥ टेक ॥

पीव तूं मेरी वेदन जानैं, हूं कहा दुराऊं छानैं

मेरा तुम्ह देखे मन मानैं ॥ १ ॥

पीव करक कलेजे मांहीं, सो क्यौं ही निकसै नांहीं,

पीव पकरि हमारी बांहीं ॥ २ ॥

पीव रोम रोम दुख सालै, इन पीरौं पिंजर जालै ।

जीव जाता क्यौं ही वालै ॥ ३ ॥

पीव सेज अकेली मेरी, मुझ आरति मिलणै तेरी,

धन दादू वारी फेरी ॥ ४ ॥

१९—

आव सलौने देखन दे रे, बलि बलि जांउं बलिहारी तेरी ॥ टेक ॥

आव पिया तूं सेज हमारी, निस दिन देखौं वाट तुम्हारी ॥ १ ॥

सब गुण तेरे अवगुण मेरे, पीव हमारी आहि न लेरे ॥ २ ॥

सब गुणवंता साहिब मेरा, लाड़ गहेला दादू केरा ॥ ३ ॥

---

१८—जक=चैन, शान्ति । दुराऊं=गुप्त रखूं, छिपाऊं । करक=कसक, चुभन । पीरौं=वेदनाओं । पिंजर=शरीर ।

१९—सलौने=सुन्दर । आहि=दुराशीस, शाप । लाड गहेला=प्यार स्वीकार करना ।

१००

आव पियारे मींत हमारे, निस दिन देखौं पाँव तुम्हारे ॥ टेक ॥
सेज हमारी पीव संवारी, दासी तुम्हारी सो धन वारी ॥ १ ॥
जे तुझ पाऊं अंगि लगाऊं, क्यौं समझाऊं वारणैं जाऊं ॥ २ ॥
पंथ निहारौं बाट संवारौं, दादू तारौं तन मन वारौं ॥ ३ ॥

१०१—(पंजाबी भाषा)

आवे सजणां आव, सिरपर धरि पांव,
जानी मैंडा ज्यंद असाडे, तूं रावैंदा राव वे ॥ टेक ॥
इत्थां उत्थां जित्थां कित्थां, हूँ जीवां तो नाल वे ।
मींयां मैंडा आव असाडे, तूं लालौं सिर लालवे ॥ १ ॥
तन भी डेवां मन भी डेवां, डेवां पिंड परांण वे ।
सच्चा सांईं, मिल इथांईं, जिंद करां कुरवांण वे ॥ २ ॥
तूं पाकौं सिर पाक वे सजणां, तूं खूबौं सिर खूब ।
दादू भावै सजणां आवै, तूं मिट्ठा महबूब वे ॥ ३ ॥

१०२—विनती

दयाल अपने चरननि मेरा चित लगावहु, नीकैं ही करी ॥ टेक ॥
नख सिख सुरति सरीर, तूं नांव रहौं भरी ॥ १ ॥
मैं अजाण मतिहींण, जम की पासि थैं रहत हूं डरी ॥ २ ॥
सबै दोष दादू के दूरि करि, तुमही रहौ हरी ॥ ३ ॥

---

१००—दासी=दासातन भक्तिमय बुद्धि । धन=स्त्री । अंगि = हृदय में । बाट=साधनपथ ।
१०१—सजणां=सज्जन, अति प्रिय । जांनी=दिलदार । मैंडा=मेरा । ज्यंद=जीवन ।
असाड़=हमारा । तो नाल=तेरे साथ । मैंडा=मेरे । डेवाँ=देवें । पराण=जीवन । जिंद=
जीवन । खूबे = शोभनीक । महबूब वे=प्रेमी जन है ।
१०२—तूं नांव = तेरा नाम ।

१०३—तरक चितावणी

मन मतिहीण धरै, मूरख मन कछु समझन नांहीं,
ऐसैं जाइ जरै ॥ टेक ॥

नांव विसारि अवर चिति राखै, कूड़े काज करै ।
सेवा हरि की मनहूं न आणैं, मूरिख बहुरि मरै ॥ १ ॥
नांव संगम करि लीजै प्राणी, जमथैं कहा डरै ।
दादू रे जे राम संभारै, सागर तीर तिरै ॥ २ ॥

१०४—संत सहाइ रचैं।

पीव तैं अपने काज संवारे, कोई दुष्ट दीन कौं मारन,
सोई गहि तैं मारै ॥ टेक ॥

मेर समान ताप तनि व्यापै, सहजैं ही सो टारे ।
संतन को सुखदाई माधौ, बिन पावक फंध जारे ॥ १ ॥
तुमथैं होइ सबै विधि समर्थ, आगम सबै विचारे ।
संत उबारि दुष्ट दुख दीन्हां, अंध कूपमैं डारे ॥ २ ॥
ऐसा है सिरि खसम हमारे, तुम जीते खल हारे ॥ ३ ॥
दादू सौं ऐसैं निर्वहिये, प्रेम प्रीति पिव प्यारे ॥ ४ ॥

---

१०३—मति=नही । हींण धरै=गन्दे विचार करे । ऐसें=इस तरह, व्यर्थ । कूड़े = झूठे ।
आणे=लावे ।

१०४—गहि=पकड़ । मेर=मेरु के समान बहुत अधिक । आगम=वेदशास्त्र । ऐसें=इस
तरह ।

दृष्टान्त—गुरु दादू के कूड कर, मारण मेले नीच ॥
तब स्वामी यह पद कह्यो, दुष्ट कूप के बीच ॥ १ ॥
मेले आवत साधु को, लूटण लागे मूढ ॥
चढ घोड़े रच्छा करी, भेद दियो न गूढ ॥ १ ॥

१०५—माया

काहू तेरा मरम न जाना रे, सब भये दीवाना रे ॥ टेक ॥
माया के रस राते माते, जगत भुलाना रे ।
कोइ काहू का कह्या न मानैं, भये अयाना रे ॥ १ ॥
माया मोहे मुदित मगन, खांन स्वाना रे ।
विषिया रस अरसपरस, साच ठाना रे ॥ २ ॥
आदि अंति जीव जंत, कीया पयाना रे ।
दादू सब भरमि भूले, देखि दाना रे ॥ ३ ॥

१०६—अनन्य सरन

तूं ही तूं गुरुदेव हमारा, सब कुछ मेरे, नांव तुम्हारा ॥ टेक ॥
तुमही पूजा तुम ही सेवा, तुम ही पाती तुमही देवा ॥ टेक ॥
जोग जग्य तूं साधन जापं, तुम्ह ही मेरे आपैं आपं ॥ २ ॥
तप तीरथ तूं व्रत सनाना, तुम्ह ही ज्ञाना तुम्ह ही ध्याना । ३ ॥
वेद भेद तूं पाठ पुराना, दादू के तुम पिंड पराना ॥ ४ ॥

१०७

तूं ही तूं आधार हमारे, सेवग सुत हम राम तुम्हारे ॥ टेक ॥
माइ बाप तूं साहिब मेरा, भगति हीण मैं सेवग तेरा ॥ १ ॥
मात पिता तूं बांधव भाई, तुम्ह ही मेरे सजन सहाई ॥ २ ॥

---

*मृगी घेरी चहुं दिशा, व्याध, स्वान, फंद आग ।*
*सर्प डस्यो सुनहा मरयो, फंद जल्यो इति भाग ॥ १ ॥*

१०५—दीवाना=पागल । अयाना=बेसमझ । मुदित = प्रसन्न । पयाना = कूच ।

१०७—हीण = हीन, रहित । न्यात=बिरादरी ।

दृष्टान्त—*मात हती मारण लगे, आडो फिर्यो जु सीस ॥*
*दूजो द्रव्य लडत ही, माता राख्यो हीस ॥ १ ॥*

तुम्ह ही तातं तुम्ह ही मातं, तुम्ह ही जातं तुम्ह ही न्यातं ॥३॥
कुल कुटुम्ब तूं सब परिवारा, दादू का तूं तारणहारा ॥ ४ ॥

१०८—परचय विनती

नूर नैन भरि देखण दीजै, अमी महारस भरि भरि पीजै ॥ टेक ॥
अमृत धारा वार न पारा, निर्मल सारा तेज तुम्हारा ॥ १ ॥
अजर जरंता अमी झरंता, तार अनंता बहु गुणवंता ॥ २ ॥
झिलिमिलि सांईं जोति गुसांईं, दादू मांहीं नूर रहांईं ॥ ३ ॥

१०९—परिचय

ऐंन एक सो मीठा लागै, जोति सरूपी ठाढ़ा आगै ॥ टेक ॥
झिलिमिलि करणा अजरा जरणा, नीझर झरणा, तहं मन धरणा,
निज निरधारं निर्मल सारं, तेज अपारं, प्राण अधारं ॥ २ ॥
अगहा गहणा, अकहा कहणा, अलहा लहणा, तहं मिलि रहणा ३
निरसंध नूरं, सकल भरपूरं, सदा हजूरं दादू सूरं ॥ ४ ॥

११०—निस्पृहता

तौ काहे की परवाह हमारै, राते माते नाउं तुम्हारे ॥ टेक ॥
झिलिझिलि झिलिमिलि तेज तुम्हारा, परगट खेलै प्राण हमारा
नूर तुम्हारा नैनौं मांहीं, तन मन लागा छूटै नांहीं ॥ २ ॥
सुख का सागर वार न पारा, अमी महारस पीवणहारा ॥ ३ ॥
प्रेम मगन मतिवाला माता, रंगि तुम्हारे दादू राता ॥ ४ ॥

इति राग कानड़ी समाप्त ॥ ४ ॥

---

१०८—सारा=साररूप, तत्व रूप ।

१०९—ऐंन=साक्षात् , सचमुच । ठाढा=खड़ा । निज = अकृत्रिम, बिना बनाया ।

११०—परवाह = गरज ।

# अथ राग अडाणों ॥ ५ ॥

—:⚬[❀]⚬:—

१११—गुरुसमर्थ महिमा

भाई रे ऐसा सतगुर कहिये, भगति मुकति फल लहिये ॥ टेक ॥
अविचल अमर अविनासी, अठ सिधि नवनिधि दासी ॥ १ ॥
ऐसा सतगुरु राया, चारि पदारथ पाया ॥ २ ॥
अमी महारस माता, अमर अभै पद दाता ॥ ३ ॥
सतगुरु त्रिभुवन तारै, दादू पार उतारै ॥ ४ ॥

११२—गुरुमुख कसौटी

भाई रे भानि घड़ै गुरु मेरा, मैं सेवग उस केरा ॥ टेक ॥
कंचन करिले काया, घड़ि घड़ि घाट निपाया ॥ १ ॥
मुख दर्पण मांहिं दिखावै, पिव परगट आनि मिलावै ॥ २ ॥
सतगुरु साचा धोवै, तौ बहुरि न मैला होवै ॥ ३ ॥
तन मन फेरि संवारै, दादू कर गहि तारै ॥ ४ ॥

११३—गुरु उपदेस

भाई रे तेन्हौं रूडौ थाये, जे गुरुमुख मारगि जाये ॥ टेक ॥
कुसंगति परिहरिये, सत संगति अणसरिये ॥ १ ॥

---

१११—अविचल=स्थितप्रज्ञ। अविनासी=आत्मनिष्ठ वृत्ति को एकरस रखने वाले। त्रिभुवन=तीनों लोक से।

११२—भानि=संसार के बन्धन तोड़। निपाया=बनाया। दर्पण मांहि=शुद्ध अन्तःकरण में। साचा=सचमुच, वस्तुतः।

दृष्टान्त—*नारि विवाही रांगडे, सौ जूर्ता को नेम।*
*छाज तोड़ खोतो हन्यो, डरी राड कियो प्रेम ॥ १ ॥*

११३—रूडो थापे=भला होवे। अणसरिये=अनुसरण करिये। वारै=निवारे, टाले।

काम क्रोध नहिं आणै, वाणी ब्रह्म बखाणै ॥ २ ॥
विषिया थैं मन वारै, ते आपणपौ तारै ॥ ३ ॥
विष मूकी अमृत लीधौ, दादू रूडौं कीधौ ॥ ४ ॥

११४—विनती

बाबा मन अपराधी मेरा, कह्या न मानैं तेरा ॥ टेक ॥
माया मोह [illegible] माता, कनक कामिणी राता ॥ १ ॥
काम क्रोध [illegible]हंकारा, भावै विषै विकारा ॥ २ ॥
काल मीच [illegible] सूझै, आतमराम न बूझै ॥ ३ ॥
समरथ सिरजनहारा, दादू करै पुकारा ॥ ४ ॥

११५—तरक चितावणी

भाई रे यूं विनसै संसारा, काम क्रोध अहंकारा ॥ टेक ॥
लोभ मोह मैं मेरा, मद मछर बहुतेरा ॥ १ ॥
आपा पर अभिमाना, केता गर्व गुमाना ॥ २ ॥
तीनि तिमिर नहिं जाहीं, पंचौं के गुण मांहीं ॥ ३ ॥
आतम [illegible] न जाना, दादू जगत दिवाना ॥ ४ ॥

११६—ग्यान

भाई रे [illegible] कथा कथिसि गियाना, जब दूसर नांहीं आना ॥ टेक ॥
जब [illegible] समाना, जहं का तहं ले साना ॥ १ ॥
जहं का [illegible]लावा, ज्यूं था त्यूं होइ आवा ॥ २ ॥

---

मूकी=त्याग, छोड । लीधौ=लिया । कीधौ=किया ।

११४—मीच = मृत्यु । बूझै=जाने । तीनि=तीन गुण, प्रकाश, प्रवृत्ति, मोह; या मल विक्षेप, आवरण । तिमिर=अन्धेरा ।

११६—कथिसि = कहते हो । साना=मिलाया । तिथि=स्थिति, घन ।

संधे संधि मिलाई, जहां तहां थिति पाई ॥ ३ ॥
सब अंग सब ही ठांईं, दादू दूसर नांहीं ॥ ४ ॥

इति राग अडाणौं सम्पूर्ण ॥ ५ ॥

—०※०—

# अथ राग केदारौ ॥ ६ ॥

११७—विनती (गुजराती भाषा)

मारा नाथजी, तारो नाम लेवाड़ रे, राम रतन हृदया में राखे ।
मारा वाहला जी, विषया थी वारे ॥ टेक ॥
वाहला वाणी ने मन मांहै मारे, चिंतवन तारों चित्त राखे ।
श्रवण नेत्र आ इंद्री ना गुण, मारा मांहेला मल ते नाखे ॥ १ ॥
वाहला जीवाड़े तो राम रमाड़े, मने जीव्यांनो फल ये आपे ।
तारा नाम बिना हूं ज्यां ज्यां बंध्यो, जन दादू ना बंधन कापे ॥ २ ॥

११८—विरह विनती

अरे मेरे सदा संगाती रे राम, कारणि तेरे ॥ टेक ॥
कंथा पहिरौं भसम लगाऊं, बैरागनि ह्वै ढूंढौं, रे राम ॥ १ ॥
गिरवर बासा रहूं उदासा, चढ़ि सिर मेर पुकारौं, रे राम ॥ २ ॥

---

११७—लेवाड = लिवाय । वाणी = जाप । चिंतवन=ध्यान, चिन्तन । मांहेला = भीतरी ।
मल=मलीनता, मैल । जीव्यानौं=जीवन का । कापे=काटे ।
दृष्टान्त - *शिव पारवती भक्त कूं, दीन्हों विभव अघाय ॥*
*विष्णु भक्त के गाय इक, मार चले सुख पाय ॥ १ ॥*

११८—कंथा = गूदड़ी । गालो=गलादूं ।

यहु तन जालौं यहु मन गालौं, करवत सीस चढ़ाऊं, रे राम ॥ ३॥
सीस उतारौं तुम्ह परि वारौं, दादू बलि बलि जाइ, रे राम ॥ ४ ॥

११९

अरे मेरा अमर उपावणहार रे खालिक, आशिक तेरा ॥ टेक ॥
तुन्हसौं राता, तुम्हसौं माता, तुम्हसौं लागा रंग, रे खालिक ॥१॥
तुम्हसौं खेला, तुम्हसौं मेला, तुम्हसौं प्रेम सनेह, रे खालिक ॥२॥
तुम्हसौं लेणा, तुम्हसौं देणा, तुम्हही सौं रत होइ, रे खालिक ॥३॥
खालिक मेरा, आशिक तेरा, दादू अनत न जाइ, रे खालिक ॥४॥

१२०—स्तुति

अरे मेरे समर्थ साहिब रे अल्लः, नूर तुम्हारा ॥ टेक ॥
सब दिसि देवै, सब दिसि लेवै, सब दिसि वार न पार, रे अल्लः ॥१॥
सब दिसि कर्ता, सब दिसि हरता, सब दिसि तारणहार, रे अल्लः ॥२॥
सब दिसि बकता, सब दिसि सुरता, सब दिसि देखणहार, रे अल्लः ॥३॥
तूं है तैसा कहिये ऐसा, दादू आनंद होइ रे अल्लः ॥४॥

१२१—विरह विलाप

हाल असां जो लालड़े, तो के सब मालूम ड़े ॥ टेक ॥
मंझे खामां मंझि बराला, मंझे लगी भाहिड़े ।
मंझे मेड़ी मुच थईला, कैं दरि करिया धाहड़े ॥ १ ॥

---

१२०—बकता—कहने वाला, व्यास रूप में । सुरता=श्रोता, सुनने वाला, परीक्षित की तरह । देखण हार=द्रष्टा, सूर्यवत् ।

१२१—हाल = दशा, स्थिति । असां=हमारा । लालडे=हे ईश्वर । मंझे=भीतर । खांमा = दबी हुई विरहाग्नि । वराला=जला रही है । भाहिडे = जलन । मेडी = मेरे मुच थईला = त्याग कर । कै = किस । दरि=दरवाजे । करियां धाहडे=पुकार करें

विरह कसाई मुंगरेला, मंझे वढै माइ हड़े ।
सीखौं करे कवाब जीला, इयें दादू जे ह्याहड़े ॥ २ ॥

१२२—विनती

पीवजी सेती नेह नवेला, अति मीठा मोहि भावै रे ।
निसदिन देखौं बाट तुम्हारी, कब मेरे घरि आवै रे ॥ टेक ॥
आइ बनी है साहिब सेती, तिस बिन तिल क्यौं जावै रे ।
दासी कौं दर्सन हरि दीजै, अब क्यौं आप छिपावै रे ॥ १ ॥
तिल तिल देखौं साहिब मेरा, त्यौं त्यौं आनन्द अंगि न मावै रे ।
दादू ऊपर दया करी, कब नैनहुँ नैन मिलावै रे ॥ २ ॥

१२३—गुजराती भाषा

पीव घरि आवै रे, वेदन मारी जाणी रे ।
विरह संताप कोण पर कीजै, कहूं छूं दुख नी कहाणी रे ॥ टेक ॥
अंतरजामी नाथ मारो, तुज विण हूं सीदाणी रे ।
मंदिर मारे केम न आवै, रजनी जाइ विहाणी रे ॥ १ ॥
तारी वाट हूँ जोइ थाकी, नेण निखूट्या पाणी रे ।
दादू तुज विण दीन दुखी रे, तू साथी रह्यो छे ताणी रे ॥ २ ॥

---

मुं=मेर । गरेला=गला । वढै=काटे । सीखौं करे=लोहे के तकवों पर । जीला कवाव=मेरे शरीर का माँस सेक रहा है । ईये = ऐसे । ह्याहडे=दीनता से पुकार रहे हैं ।

१२२—नवेला=पुराना । घरि आवे=हृदय में साक्षात्कार हो । दासी=निरभिमानी जिज्ञासु ।

१२३—वेदन=विरह पीडा । कहाणी = कथा । सीदांणी=कुम्हला रही हूँ । केम = क्यों । निखूट्या=खतम होगया । तांणी = तांण रहा है, कष्ट दे रहा है ।

१२४—विरह विनती

कब मिलसी पीव ग्रिह छाती, हूं औरां संग मिलाती ॥ टेक ॥
तिसज लागी तिसही केरी, जन्म जन्म नो साथी ।
मीत हमारा आव पियारा, ताहरा रंगनी राती ॥ १ ॥
पीव बिना मने नींद न आवे, गुण ताहरा लै गाती ।
दादू ऊपर दया मया करि, ताहरे वारणें जाती ॥ २ ॥

१२५—विरह

माहरा रे वाहला ने काजे, हृदये जोवाने हूं ध्यान धरूं ।
आकुल थाये प्राण माहरा, कोने कही पर करूं ॥ टेक ॥
संभार्यों आवे रे वाहला, वेहला एहों जोई ठरूं ॥
साथीजी साथे थई ने, पेली तीरे पार तरूं ॥ १ ॥
पीव पाखे दिन दुहेला जाये, घड़ी वरसां सौं केम भरूं ।
दादू रे जन हरि गुण गाता, पूरण स्वामी ते वरूं ॥ २ ॥

१२६—विरह विलाप

मरिये मीत विछोहे, जियरा जाइ अंदोहे ॥ टेक ॥
ज्यौं जल विछुरै मीना, तलफि तलफि जिव दीन्हा ।
यौं हरि हम सौं कीन्हा ॥ १ ॥

---

१२४ ग्रह छाती=अपने हृदय रूपी घर में । तिसज=प्यास, चाह । तिसही=उसी आत्म स्वरूप को । रंग=प्रेम । वारणें=निछावर ।

१२५—वाहला=[illegible] प्रिय । जोवाने=देखने को । आकुल=व्याकुल । थाये=हो रहे हैं । संभार्यों=संभालते ही, याद करते ही । वेहला=समय पर । ऐहों जोई=ऐसे देख । ठरूं=शांति पाऊं । थई ने=होकर । पाखे=बिना । दुहेला=कठिन, दुःखी वरूं=वरण करूं, स्वामी बनाऊं ।

१२६—अंदोहे=व्यर्थ । सुहेला=आसान, सहज । दुहेला=कठिन ।

चात्रिग मरै पियासा, निस दिन रहै उदासा।
जीवै किहि बेसासा ॥ २ ॥
जल बिन कंवल कुमिलावै, प्यासा नीर न पावै।
क्यौं करि त्रिषा बुझावै ॥ ३ ॥
मिलि जिनि विछुरौ कोई, बिछुरे बहु दुख होई।
क्यौं करि जीवै जन सोई ॥ ४ ॥
मरणा मीति सुहेला, विछुरन षरा दुहेला।
दादू पीव सौं मेला ॥ ५ ॥

१२७

पीव हौं, कहा करौं रे, पाइ परौं के प्रांण हरौं रे,
अब हौं मरणै नांहिं डरौं रे ॥ टेक ॥
गालि मरौं कै जालि मरौं रे, कै हौं करवत सीस धरौं रे ॥ १ ॥
खाइ मरौं कै घाइ मरौं रे, कै हौं कतहूं जाइ मरौं रे ॥ २ ॥
तलफि मरौं कै झूरि मरौं रे, कै हौं विरही रोइ मरौं रे ॥३॥
टेरि कह्या मैं मरण गह्या रे, दादू दुखिया दीन भया रे ॥४॥

१२८—(गुजराती भाषा)

वाहला हूँ जाणूं जे रंग भरि रमिये, मारो नाथ निमिष नहिं मेलूं रे
अंतरजामी नाह न आवे, ते दिन आव्यो छेलो रे ॥ टेक ॥
वाहला सेज हमारी ऐकलड़ी रे, तहं तुजने केम न पामूं रे।
आ दत्त अमारो पूरवलो रे, तेतो आव्यो सामो रे ॥ १ ॥

---

१२७—घाइ=आघात कर। टेरि = पुकार कर। गह्या=ग्रहण किया।

१२८—हूँ जाणूं=मैं चाहूं। रंगभरि=अति प्रेम से। निमिष=पल। नाह=स्वामी, पति। आव्यो=आयो। छेलो=अखीर का। एकलडी=अकेली। केम=कैसे। पामूं=पाऊं।

वाहला मारा हृदया भीतर केम न आवे, मने चरण विलंबन दीजे रे।
दादू तो अपराधी तारो, नाथ उधारी लीजे रे ॥ २ ॥

१२९

तूं छे मारो राम गुसांईं, पालवे तारे बाँधी रे।
तुज बिना हूँ आंतरे खल्यो, कीधी कमाई लीधी रे ॥ टेक ॥
जीवुं जेटला हरि बिना रे, देहड़ी दुखे दाधी रे।
अेणे अवतारे कांई न जाण्युं, माथे टक्कर खाधी रे ॥ १ ॥
छूटको मारो क्यारे थशे, शक्यो न राम अराधी रे।
दादू ऊपर दया मया कर, हूँ तारो अपराधी रे ॥ २ ॥

१३०—विनती

तूं ही तूं तनि माहरे गुसांईं, तूं विना तूं केने कहूँ रे।
तूं त्यां तूं ही थई रह्यो रे, शरण तुम्हारी जाय रहूँ रे ॥ टेक ॥
तन मन मांहे जोइये त्यां तूं, तुज दीठा हूँ सुख लहूँ रे।
तूं त्यां जेटली दूर रहूँ रे, तेम तेम त्यां हूँ दुख सहूँ रे ॥ १ ॥
तुम बिन माहरो कोई नहीं रे, हूँ तो ताहरा वण बहूँ रे।
दादू रे जण हरि गुण जाता, मैं मेलूं माहरो मैं हूँ रे ॥ २ ॥

---

आ दत्त=यह दुर्भाग्य। विलंबन=लगने। उधारी लीजे=उद्धार करिये।

१२९—पालवे = पल्ले, तेरे जिम्मे। आंतरे=दूर। खल्यो = रुलिया, भटका। जेटलां = जितना। देहडी=देह, शरीर। दाधी=जली, सन्तप्त हो रही है। एणे अवतारे = इस मनुष्य जन्म में। छुटको=छूटकारा। क्यारे=कब। थशे=होगा। अराधी=आराधना, उपासना। तारो=तुम्हारा।

१३०—तनि=मेरे शरीर में। केने=किसे। त्यां=तहां। थई रहयो=हो रहा। मांहे=भीतर जोइये = देखें। दीठां=देखे। जेटली=जितनी। वैण वहूं=वचनों में चलूं। मैं मेलूं = मैं अपने अहंकार को त्यागदूं। माहरो मैं हूं=तब मैं ही मेरा स्वरूप रह जाऊं।

### १३१—केवल विनती

हमारे तुम्ह ही हौ रखपाल,
तुम बिन और नहीं को मेरे, भौदुख मेटणहार ॥ टेक ॥
वैरी पंच निमिष नहिं न्यारे, रोकि रहे जमकाल ।
हा जगदीश दास दुख पावै, स्वामी करहु संभाल ॥ १ ॥
तुम्ह बिन राम दहैं ये दूंदर, दसौं दिसा सब साल ।
देखत दीन दुखी क्यौं कीजै, तुम्ह हौ दीन दयाल ॥ २ ॥
निर्भै नांउं हेत हरि दीजै, दर्सन परसन लाल ।
दादू दीन लीन करि लीजै, मेटहु सब जंजाल ॥ ३ ॥

### १३२

ये मन माधौ बरजि बरजि,
अति गति विषिया सौं रत, उठत जु गरजि गरजि ॥ टेक ॥
विषै विलास अधिकअति आतुर, विलसत संक न मानै ।
खाइ हलाहल मगन माया मैं, विष अमृत करि जांनैं ॥ १ ॥
पंचन के संगि बहत चहूं दिसि, उलटि न कबहूं आवै ।
जहं जहं काल ये जाइ तहं तहँ, मृग जल ज्यौं मन धावै ॥ २ ॥
साध कहैं गुर ग्यांन न मानै, भाव भजन न तुम्हारा ।
दादू के तुम्ह सजन सहाई, कछू न बसाइ हमारा ॥ ३ ॥

---

१३१—रखपाल = रक्षक। भौ दुःख=संसार के दुख। संभाल = खबर। दहैं=जलावें। दूंदर = द्वन्द्व। नांउ हेत=नाम का प्रेम।

१३२—अतिगति=अति चंचलता। उठत = दौड़ता है। आतुर=उतावला, अस्थिर। विलसत = भोगते हुये। संक = कांण, महत्त्व। उलटि=पलट कर। बसाइ = जोर, वश।

वाहला मारा हृदया भीतर केम न आवे, मने चरण विलंबन दीजे रे।
दादू तो अपराधी तारो, नाथ उधारी लीजे रे ॥ २ ॥

१२६

तूं छे मारो राम गुसांई, पालवे तारे बांधी रे।
तुज बिना हूँ आंतरे खल्यो, कीधी कमाई लीधी रे ॥ टेक ॥
जीवुं जेटला हरि बिना रे, देहड़ी दुखे दाधी रे।
अणे अवतारे कांई न जाण्युं, माथे टक्कर खाधी रे ॥ १ ॥
छूटको मारो क्यारे थशे, शक्यो न राम अराधी रे।
दादू ऊपर दया मया कर, हूँ तारो अपराधी रे ॥ २ ॥

१३०—विनती

तूं ही तूं तनि माहरे गुसांई, तूं विना तूं केने कहूँ रे।
तूं त्यां तूं ही थई रह्यो रे, शरण तुम्हारी जाय रहूँ रे ॥ टेक ॥
तन मन मांहे जोइये त्यां तूं, तुज दीठा हूँ सुख लहूँ रे।
तूं त्यां जेटली दूर रहूँ रे, तेम तेम त्यां हूँ दुख सहूँ रे ॥ १ ॥
तुम बिन माहरो कोई नहीं रे, हूँ तो ताहरा वण वहूँ रे।
दादू रे जण हरि गुण जाता, मैं मेलूं माहरो मैं हूँ रे ॥ २ ॥

---

आ दत्त=यह दुर्भाग्य। विलंबन=लगने। उधारी लीजे=उद्धार करिये।

१२६—पालवे=पल्ले, तेरे जिम्मे। आंतरे=दूर। खल्यो=रुलिया, भटका। जेढलां=जितना। देहडी=देह, शरीर। दाधी=जली, सन्तप्त हो रही है। एणे अवतारे=इस मनुष्य जन्म में। छुटको=छूटकारा। क्यारे=कब। थशे=होगा। अराधी=आरधना, उपासना। तारो=तुम्हारा।

१३०—तनि=मेरे शरीर में। केने=किसे। त्यां=तहां। थई रहयो=हो रहा। मांहे=भीतर जोइये=देखें। दीठां=देखे। जेटली=जितनी। वैण वहूं=वचनों में चलूं। मैं मेलूं=मैं अपने अहंकार को त्यागदूं। माहरो मैं हूं=तब मैं ही मेरा स्वरूप रह जाऊं।

१३१—केवल विनती

हमारे तुम्ह ही हौ रखपाल,
तुम बिन और नहीं को मेरे, भौदुख मेटणहार ॥ टेक ॥
वैरी पंच निमिष नहिं न्यारे, रोकि रहे जमकाल ।
हा जगदीश दास दुख पावै, स्वामी करहु संभाल ॥ १ ॥
तुम्ह बिन राम दहैं ये दूंदर, दसौं दिसा सब साल ।
देखत दीन दुखी क्यौं कीजै, तुम्ह हौ दीन दयाल ॥ २ ॥
निभै नांउं हेत हरि दीजै, दर्सन परसन लाल ।
दादू दीन लीन करि लीजै, मेटहु सब जंजाल ॥ ३ ॥

१३२

ये मन माधौ बरजि बरजि,
अति गति विषिया सौं रत, उठत जु गरजि गरजि ॥ टेक ॥
विषै विलास अधिकअति आतुर, विलसत संक न मानै ।
खाइ हलाहल मगन माया मैं, विष अमृत करि जानैं ॥ १ ॥
पंचन के संगि बहत चहूं दिसि, उलटि न कबहूं आवै ।
जहं जहं काल ये जाइ तहं तहँ, मृग जल ज्यौं मन धावै ॥ २ ॥
साध कहैं गुर ग्यांन न मानै, भाव भजन न तुम्हारा ।
दादू के तुम्ह सजन सहाई, कछू न बसाइ हमारा ॥ ३ ॥

---

१३१—रखपाल = रक्षक । भौ दुःख=संसार के दुख । संभाल = खबर । दहैं=जलावें । दूंदर = द्वन्द्व । नांउ हेत=नाम का प्रेम ।

१३२—अतिगति=अति चंचलता । उठत = दौड़ता है । आतुर=उतावला, अस्थिर । विलसत = भोगते हुये । संक = कांण, महत्व । उलटि=पलट कर । बसाइ = जोर, वश ।

१३३—मन उपदेश

हां हमारे जियरा राम गुण गाइ, एही वचन विचारी मान ॥टेक॥
केती कहूं मन कारणैं, तू छाड़ी रे अभिमान ।
कहि समझाऊं बेर बेर, तुझ अजहूँ न आवै ग्यांन ॥ १ ॥
अैसा संग कहां पाइये, गुण गावत आवै तान ।
चरणौं सौं चित राखिये, निसदिन हरि कौ ध्यान ॥ २ ॥
बै भी लेखा देहिंगे, आप कहावैं खान ।
जन दादू रे गुण गाइये, पूरण है निर्वाण ॥ ३ ॥

१३४—कालचितावणी

बटाऊ ! चलणा आज कि काल्हि,
समझि न देखै कहा सुख सोवै, रे मन राम संभालि ॥ टेक ॥
जैसैं तरवर विरष वसेरा, पंखी बैठे आइ ।
अैसैं यहु सब हाट पसारा, आप आप कौं जाइ ॥ १ ॥
कोइ नहिं तेरा सजन संगाती, जनि खोवै मन मूल ।
यहु संसार देखि जनि भूलैं, सब ही सैंबल फूल ॥ २ ॥
तन नहिं तेरा, धन नहिं तेरा, कहा रह्यौ इहि लागि ।
दादू हरि बिन क्यौं सुख सोवै, काहे न देखै जागि ॥ ३ ॥

१३५—तरक चितावणी

जात कत मद कौ मातौ रे,

---

१३३—कारणैं=लिए । आवैतान=आनंद आये ।

१३४—बटाऊ=राहगीर, पथिक । पंखी=पक्षी । मूल=नर तन ।

दृष्टान्त—बाप वृद्ध को पुत्र जो, धरे ठीकरा खान ।
पोते लेले धर दिये, तोकों द्यूंगो आन ॥

१३५—कत=किधर । चीतिन=चित्त में, ध्यान में । मेवड=अपना अभिमान ।

तन धन जोवन देखि गर्वानौ, गमाया गतौ रे ॥ टेक ॥
अपनो हि रूप नैन भरि देखै, कामनि कौ संग भावै रे।
बारंबार विषै रत मानै, मरिबौ चीति न आवै रे ॥ १ ॥
मैं बड़ आगै और न आवै, करत केत अभिमाना रे।
मेरी मेरी करि करि भूल्यौ, मायामोह भुलाना रे ॥ २ ॥
मैं मैं करत जनम सब खोयौ, काल सिरहाणै आयौ रे।
दादू देखु मूढ़ नर प्राणी, हरि बिन जनम गंवायौ रे ॥ ३ ॥

१३६—हित उपदेस

जागत कौं कदे न मूसै कोई,
जागत जानि जतन करि राखै, चौर न लागू होइ ॥ टेक ॥
सोवत साह वस्त नहिं पावै, चोर मुसै घर घेरा।
आसि पास पहरै को नांहीं, वस्तैं कीन्ह नवेरा ॥ १ ॥
पीछैं कहु क्या जागै होई, वसत हाथ थैं जाई।
बीती रैंनि बहुरि नहिं आगै, तब क्या करि है भाई ॥ २ ॥
पहलै ही पहरै जे जागै, वस्त कछू नहिं छीजै।
दादू जुगति जांनि कर ऐसी, करना है सो कीजै ॥ ३ ॥

१३७—उपदेश

सजनी रजनी घटती जाइ, पल पल छीजै अवधि दिन आवै।

---

१३६—मूसै=लूटै। साह=जीव रूपी साहूकार। वस्त=अपना लक्ष्य, ध्येय रूप वस्तु। वस्तै=सद्गुण, शील। नवेरा=अन्त। रैनि=जीवनरूप रात।

१३७—सजनि=सहेली, हे बुद्धि, हे वृत्ति। अवधि=करार का, अन्त का। अति गति=अत्यन्त। प्राणपति=अपना आत्मा। सुन्दरी=सन्त वृत्ति। आतुर=व्याकुल। गहि=पकड़।

अपनौं लाल मनाइ ॥ टेक ॥

अति गति नींद कहा सुखि सोवै, यहु अवसर चलि जाइ ।
यहु तन बिछुरैं बहुरि कहं पावै, पीछै ही पछिताइ ॥ १ ॥
प्राणपति जागै सुंदरि क्यौं सोवै, उठि आतुर गहि पाइ ।
कोमल बचन करुणा करि आगैं, नख सिख रहु लपटाइ ॥ २ ॥
सखी सुहाग सेज सुख पावै, प्रीतम प्रेम बढाइ ।
दादू भाग बड़े पिव पावै, सकल सिरोमणि राइ ॥ ३ ॥

१३८—प्रश्न उत्तर

कोई जानै रे मरम माधइये केरौ,
कैसे रहै करै का सजनी प्राण मेरौ ॥ टेक ॥
कौन विनोद करत री सजनी, कवननि संग वसेरौ ?
संत साधु गमि आये उनके, करत जु प्रेम घणेरौ ॥ १ ॥
कहां निवास वास कहं सजनी, गवन तेरौ ?
घट घट मांहैं रहै निरंतर, ये दादू नेरौ ॥ २ ॥

१३९—विरह विनती

मन बैरागी रामकौ, संगि रहै सुख होइ हो ॥ टेक ॥
हरि कारनि मन जोगिया, क्यौंहि मिलै मुझ सोइ ।
निरखण का मोहि चाव है, क्यों हीं आप दिखावै मोहि हो ॥ १ ॥
हिरदै मैं हरि आव तूं, मुख देखौं मन धोइ ।
तन मन मैं तूहीं बसै, दया न आवै तोहि हो ॥ २ ॥
निरखण का मोहि चाव है, ए दुख मेरा खोइ ।

---

१३८—प्राण मेरौ=मेरे प्राणों का प्राण वह । विनोद=खेल । गमि आये=नजर आये
१३९—निरखण=प्रत्यक्ष देखने का । चाव=कोड, उत्सुकता । मनधोइ=मन शुद्ध कर ।

दादू तुम्हारा दास है, नैन देखन कौ रोइ हो ॥ ३ ॥

१४०—अधीरज, उराहना

भरणी घर वाह्या धूतो रे, अंग परस नहिं आपे रे ।
कह्यो अमारो कांई न माने, मन भावे ते थापे रे ॥ टेक ॥
वाही वाही ने सर्वस लीधो, अबला कोइ न जाणे रे ।
अलगो रहे येणी परि तेड़े, आपनड़े घर आणे रे ॥ १ ॥
रमी रमी ने राम रजावी, केन्हों अंत न दीधो रे ।
गोप्य गुह्य ते कोइ न जाणे, एवो अचरज कीधो रे ॥ २ ॥
माता बालक रुदन करतां, वाही वाही ने राखे रे ।
जेवो छे तेवो आपणपो, दादू ते नहिं दाखे रे ॥ ३ ॥

१४१—समर्थाई

सिरजन हार थैं सब होइ,
उत्पति परलै करै आप, दूसर नांहीं कोइ ॥ टेक ॥
आप होइ कुलाल करता, बूंद थैं सब लोइ ।
आप करि अगोच बैठा, दुनी मनकौ मोहि ॥ १ ॥
आपथैं उपाइ बाजी, निरखि देखै सोइ ।
बाजीगर कौ यहु भेद आवै, सहजि सौंज समोइ ॥ २ ॥

---

१४०—वाह्या = बहकाया, भ्रम में डाला । धूतोरे = ठगोरा है । परस=स्पर्श, एकता । आपे=दे । थापे=थोपे, करे । वाहि वाहि=बहका बहकाकर । सर्वस = शील, शान्ति, सत्य, क्षमा आदि सब । अलगो = दूर । येणीपरि=अपनी ओर । तेडे = बुलावे । आपनडे = अपने । केन्हो=किसी तरह का । अंत=भेद । गोप=गुप्त । गुह्य=गहन, समझ से बाहर । वाही=भ्रमित कर । जेवोछै=जैसा वह है । आपणपो=अपनी असलियत । दाखे=बतावे ।

१४१—परलै=विनास, अन्त । कुलाल=कुंभारी अगोच = अदृश्य । वाजी=वाजीगरी ।

जे कुछ कीया सु करै आपै, येह उपजै मोहि।
दादू रे हरि नांउं सेती, मैल कुसमल धोइ ॥ ३ ॥

१४२—परचै

देहुरे मंझे देव पायो, बस्त अगोच लखायौ ॥ टेक ॥
अति अनूप जोति पति, सोई अंतरि आयौ।
प्यंड ब्रह्मंड समि तुलि दिखायौ ॥ १॥
सदा प्रकास निवास निरंतर, सब घट मांहिं समायौ।
नैन निरखि नेरौ, हिरदै हेत लायौ ॥ २ ॥
पूरब भाग सुहाग सेज सुख, सो हरि लैन पठायौ।
देव कौ दादू पार न पावै, अहो पैं उनहीं चितायौ ॥ ३ ॥

इति राग केदारौ समाप्त ॥ ६ ॥

मैल=मलिनता। कुसमल=पापवृत्ति।

१४२—देहुरे=शरीर मंदिरमें। देव=परमात्मारूपी देवता। अगोच=अगोचर, इन्द्रियातीत। जोतिपति=ज्योतिस्वरूप। समि=समान, एक। नैंन=ज्ञान, विचार। चितायो=चेतन किया, सावधान किया।

राग केदारो समाप्त।
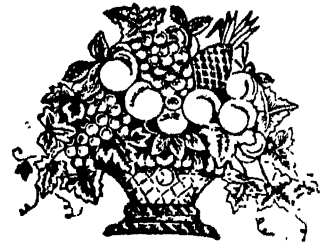
# अथ राग मारू ॥ ७ ॥

—:⇔[❀]⇔:—
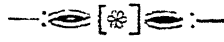
१४३—उपदेश

मना भजि राम नाम लीजै,<br>
साध संगति सुमिरि सुमिरि, रसना रस पीजै ॥ टेक ॥<br>
साधु जन सुमिरन करि, केते जपि जागे।<br>
अगम निगम अमर किये, काल कोइ न लागे ॥ १ ॥<br>
नीच ऊंच चिंतन करि, सरणागति लीये ।<br>
भगति मुकति अपनी गति, असैं जन कीये ॥ २ ॥<br>
केते तिरि तीर लागे, बंधन भव छूटे।<br>
कलि मल विष जुग जुग के, राम नाम खूटे ॥ ३ ॥<br>
भरम करम सब निवारि, जीवन जपि सोई ।<br>
दादू दुख दूरि करण, दूजा नहिं कोई ॥ ४ ॥

१४४

मना जपि राम नाम कहिये,<br>
राम नाम मन विश्राम, संगी सो गहिये ॥ टेक ॥<br>
जागि जागि सोवै कहा, काल कंध तेरै ।<br>
बारंबार करि पुकार, आवत दिन नेरै ॥ १ ॥<br>
सोवत सोवत जनम बीते, अजहूँ न जीव जागै ।<br>
राम संभारि नींद निवारि, जनम जुरा लागै ॥ २ ॥

---

१४३—रसना= जीभसे । रस = नाम रस । जागे=सचेत हुये । खूटे = खतम हो गये ।

१४४— विश्राम=शान्ति । कंध=शिरपर । नेरै=समीप । आसपास=आशा की फाँसी से।

आस पास भर्म बंध्यो, नारी गृह मेरा।
अंति काल छाडि चल्यौ, कोई नहिं तेरा। ३॥

तजि काम क्रोध मोह माया, राम राम करणा।
जब लग जीव प्राण पिंड, दादू गहि सरणा॥ ४॥

१४५—विरह

क्यों बिसरै मेरा पीव पियारा, जीव की जीवनि प्राण हमारा॥टेक॥
क्यों करि जीवै मीन जल बिछुरै, तुम्ह बिन प्राण सनेही।
चिंतामणि जब कर थैं छूटै, तब दुख पावै देही॥ १॥
माता बालक दूध न देवै, सो कैसे करि पीवै।
निर्धन का धन अनत भुलाना, सो कैसे करि जीवै॥ २॥
बरसहु राम सदा सुख अमृत, नीझर निर्मल धारा।
प्रेम पियाला भरि भरि दीजै, दादू दास तुम्हारा॥ ३॥

१४६—अत्यंत विरह (गुजराती)

कोई कहो रे मारा नाथ ने, नारी नेण निहारे वाट रे॥ टेक॥
दीन दुखिया सुंदरी, करुणा बचन कहे रे।
तुम बिन नाह विरहणि व्याकुल, केम करि नाथ रहे रे॥ १॥
भूधर विना भावे नहिं कोई, हरि बिन और न जाणे रे।
देह गृह हूं तेने आपूं, जे कोइ गोविंद आणे रे॥ २॥

---

**दृष्टान्त**—*साँई स्वर्ग पधारिया, कुछ साँनू भी अख॥*
*खीर सपासप मारिया, कुच पोंडी भी चख॥ १॥*

१४५—विसरै = भूले। अनत=अन्यजगह नीझर=प्रेमरूपी झरणे से।

१४६—निहारे=देखे। वाट=रास्ता। नाह=स्वामी, पति। केम=कैसे। आपूं=देवूँ अर्प

जगपति ने जोवा ने काजे, आतुर थई रही रे ।
दादू ने देखाड़ो स्वामी, व्याकुल होइ गई रे ॥ ३ ॥

१४७—विरह विलाप

कबहूँ असा बिरह उपावै रे, पीव बिन देखें जीव जावै रे ॥ टेक ॥
विपति हमारी सुनहु सहेली, पीव बिन चैन न आवै रे ।
ज्यौं जल मीन भीन तन तलफै, पीव बिन वज्र बिहावै रे ॥ १ ॥
असी प्रीति प्रेमकी लागै, ज्यूं पंखी पीव सुनावै रे ।
त्यूं मन मेरा रहै निसवासुरि, कोइ पीव कूं आणि मिलावै रे ॥२॥
तौ मन मेरा धीरज धरही, कोइ आगम आणि जनावै रे ।
तौ सुखजीव दादू का पावै, पल पिवजी आप दिखावै रे ॥ ३ ॥

१४८—(गुजराती)

अमे बिरहणिया राम तुम्हारड़िया,
तुम बिन नाथ अनाथ, कांइ बिसारड़िया ॥ टेक ॥
अपने अंग अनल परजाले, नाथ निकट नहिं आवे रे ।
दर्शन कारण विरहणि व्याकुल, और न कोई भावे रे ॥ १ ॥

---

करूँ । जोवाने=देखनेको । थई=हो ।

१४७—उपावे = पैदा करे । भीन=अलग । पंखी=पपीहा । आगम=आना ।

दृष्टान्त—*फकीर रुपया घर धरे, नारनौल के माँहि ॥*
*फौज गई कोउ ले गयो, सीस टेक मर जाँहि ॥ १ ॥*
*एक कहै धोवत गई, एक सुनत बौराइ ॥*
*सो कैसे धीरज धरै, जाकी धरी हाथसों जाइ ॥ २ ॥*

१४८—अमे=हम । तुम्हारड़िया = तुम्हारी । काँइ=क्यों ! विसारडिया=भुलाई । अनल = अग्नि । पर जाले=प्रज्वलित करे । अप्रछन=छिपा हुवा । अमने=हमे । अंतर= पड़दा.

आप अप्रछन अमने देखे, आपणपो न दिखाड़े रे ।
प्राणी पिंजर लेइ रह्यो रे, आड़ा अंतर पाड़े रे ॥ २ ॥
देव देव करि दर्शन मांगे, अंतरजामी आपे रे ।
दादू बिरहणि बन बन ढूंढे, ये दुख कांय न कापे रे ॥ ३ ॥

१४९—विरह प्रश्न

पंथीड़ा बूझै बिरहणी कहिनै पीव की बात, कब घरि आवै
कब मिलौं, जोऊं दिन अरु राति ॥ टेक ॥
कहां मेरा प्रीतम कहां बसे, कहां रहे करि बास ।
कहं ढूंढौं कहं पाइये, कहां रहे किस पास ॥ १ ॥
कवन देश कहं जाइये, कीजै कौन उपाय ।
कौण अंग कैसे रहे, कहा करै समझाइ ॥ २ ॥
परम सनेही प्राण का, सो कत देहु दिखाइ ।
जीवनि मेरे जीव की, सो मुझ आनि मिलाइ ॥ ३ ॥
नैंन न आवैं नींदड़ी, निसिदिन तलफत जाइ ।
दादू आतुर बिरहणी, क्यूं करि रैंनि बिहाइ ॥ ४ ॥

१५०—समुच्चय उत्तर

पंथीड़ा पंथ पिछाणी रे पीव का, गहि बिरहे की वाट ।
जीवन मृतक ह्वै चलै, लंघै औघट घाट ॥ टेक ॥

आवरण । पाड़े = डाले । आपे=देवे । कापे=काटे, नष्ट करे ।

१४९—बूझै=पूछे । कवन=कौनसे । कत = कहाँ है । आनि=लाकर । रैंनि=आयुरूप रात्रि
विहाइ=समाप्त हो ।

१५०—पिछाणी=पहिचान । औघट घाट=रजतम मय अनेक वृत्तियों का कठिन घाट ।

सतगुरु सिरपरि राखिये, निर्मल ग्यान विचार।
प्रेम भगति करि प्रीति सौं, सनमुख सिरजनहार ॥ १ ॥
पर आत्म सौं आतमा, ज्यौं जल जलहि समाइ।
मन ही सौं मन लाइये, लै के मारग जाइ ॥ २ ॥
तालाबेली ऊपजै, आतुर पीड़ पुकार।
सुमिरि सनेही आपणा, निस दिन बारंबार ॥ ३ ॥
देखि देखि पग राखिये, मारग खांडे धार।
मनसा वाचा कर्मना, दादू लंघै पार ॥ ४ ॥

१५१—अनुक्रम उत्तर

साध कहैं उपदेश, विरहणी,
तन भूलै तब पाइये, निकटि भया परदेस ॥ टेक ॥
तुमही माहैं ते बसैं, तहां रहे करि वास।
तहं ढूंढौं पिव पाइये, जीवनि जीव के पास ॥ १ ॥
परम देस तहं जाइये, आतम लीन उपाइ।
एक अंग असे रहै, ज्यौं जल जलहि समाइ ॥ २ ॥
सदा संगाती आपणा, कबहू दूरि न जाइ।
प्राण सनेही पाइये, तन मन लेहु लगाइ ॥ ३ ॥
जागै जगपति देखिये, परगट मिलि है आइ।
दादू सनमुख ह्वै रहै, आनंद अंगि न माइ ॥ ४ ॥

१५२—विरहविनती

गोविंदा गाइबा देरे आडड़ी आन निवार, गोविंदा गाइबा दे,

१५१—तनभूलैं=शरीर का अध्यास छोडे। जागे = सचेष्ट हुवे।

१५२—आडड़ी=आड-ओट, पड़दा। आंन=ओर, दूसरी। अनदिन=अनवरत, सबसमय।

अनदिन अंतरि आनंद कीजै, भगति प्रेम रस सार रे ॥ टेक ॥
अनभै आतम अभै एक रस, निरभै कांइ न कीजै रे ।
अमी महारस अमृत आपै, अम्हे रसिक रस पीजै रे ॥ १ ॥
अविचल अमर अखै अविनासी, ते रस कांइ न दीजै रे ।
आतम राम अधार अम्हारो, जनम सुफल करि लीजै रे ॥ २ ॥
देव दयाल कृपाल दमोदर, प्रेम बिना क्यूं रहिये रे ।
दादू रंग भरि राम रमाड़ौ, भगत वछल तूं कहिये रे ॥ ३ ॥

१५३—(गुजराती)

गोविंदा जोइबा दे रे, जे बरजै ते वारि रे, गोविंदा जोइबा दे रे ।
आदि पुरिष तूं अछय अम्हारौ, कंथ तुम्हारी नारि रे ॥ टेक ॥
अंगै संगै रंगै रमिये, देवा दूर न कीजै रे ।
रस मांहैं रस इम थइ रहिये, ये सुख अमने दीजै रे ।
सेजड़िये सुख रंग भरि रमिये, प्रेम भगति रस लीजै रे ।
एकमेक रस केलि करंता, अम्हे अबला इम जीजै रे ॥ २ ॥
सम्रथ स्वामी अन्तरजामी, बारबार कांइ बाहै रे ।
आदैं अन्तैं तेज तुम्हारौ, दादू देखै गाये रे ॥ ३ ॥

१५४

तुम्ह सरसी रंग रमाड़,

---

काइन=क्यों; नही । रमाड़ौ=रमाओ, खिलाओ, प्रसन्न करो ।

दृष्टान्त—*नगर निराणे देहुरे, गुरु राखे पध राइ ॥*
*स्वामी पद यह गावते, पुतली गई हिराइ ॥ १ ॥*

१५३—वरजैं=रोके । बारि=दूरकर । अछय=अक्षय । कंत=स्वामी । इम=ऐसे । थइ=हो ।
केलि=आनंद । अम्हे=हम । वाहे=वहकावे ।

१५४—तुम्ह सरसी=तुम्हें किये सरेगा । थई=हो । मा=मत । भरमाड़=भ्रमावे । भोलवे=

आप अपरछन थई करी, मने भा भरमाड़ ॥ टेक ॥
मन भोलवे कांइ थई वेगलो, आपणपो देखाड़ ।
केम जीवूं हूं एकली, बिरहणिया नार ॥ १ ॥
मने बाहिश मा अलगो थई, आत्मा उद्धार ।
दादू सूं रमिये सदा, येणे परैं तार ॥ २ ॥

१५५—काल चितावणी

जागि रे किस नींदड़ी सूता,
रैंणि बिहाई सब गई, दिन आइ पहूंता ॥ टेक ॥
सो क्यों सोवै नींदड़ी, जिस मरणा होवै रे ।
जौरा बैरी जागणा, जीव तूं क्यों सोवै रे ॥ १ ॥
जाके सिर परि जम खड़ा रे, सर सांधे मारै रे ।
सो क्यूं सोवै नींदड़ी, कहि क्यूं न पुकारै रे ॥ २ ॥
दिन प्रति निस काल झंपै, जीव न जागै रे ।
दादू सूता नींदड़ी, उस अंगि न लागै रे ॥ ३ ॥

१५६

जागिरे सब रैंणि बिहाणी, जाइ जन्म अंजुलि को पांणीं ॥ टेक ॥
घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै, जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै ॥१॥
सूरज चंद कहैं समझाइ, दिन दिन आव घटती जाइ ॥२॥

---

भुलाये । वेगलो=शीघ्र, जल्दी । आपणपो=अपना रूप । वाहि शमा=मत बहका, मत कष्ट दे । येणों=ऐसे । परैं=पार ।

१५५—पहूंता=पहुँचा । जौरा बैरी=जबर्दस्ती । झंपै = पकड़े ।

१५६—घड़ियाल=प्राणों की घड़ी श्वास प्रश्वास के खटके बजा रही है । आव=आयु । गरासे=खाय ।

सरवर पाणी तरवर छाया, निस दिन काल गरासै काया ॥३॥
हंस बटाऊ प्राण पयाना, दादू आत्म राम न जांना ॥ ४ ॥

१२७

आदि काल अंति काल, मधि काल भाई।
जन्म काल जुरा काल, काल संगि सदाई ॥ टेक ॥
जागत काल सोवत काल, काल झंपै आई।
काल चलत काल फिरत, कबहूँ ले जाई ॥ १ ॥
आवत काल जावत काल, काल कठिन खाई।
लेत काल देत काल, काल ग्रसे धाई ॥ २ ॥
कहत काल सुनत काल, करत काल सगाई।
काम काल क्रोध काल, काल जाल छाई ॥ ३ ॥
काल आगे काल पीछे, काल संगि समाई।
काल रहित राम गहित, दादू ल्यौ लाई ॥ ४ ॥

१२८—हित उपदेश

तो कौ केता कह्या मन मेरे।
खिण इक मांहै जाइ अनेरे, प्राण उधारी ले रे ॥ टेक ॥
आगैं है मन खरी बिमासणि, लेखा मांगैं दे रे।
काहे सोवै नींद भरी रे, कृत विचारै तेरे ॥ १ ॥
ते परि कीजै मन विचारे, राखै चरणहु नेरे।
रती एक जीवनि मोहि न सूझै, दादू चेति सवेरे ॥ २ ॥

---

१२७—जुरा = वृद्धपना।

१२८ खिण=क्षण, पल। अनेरे=फालतू। विमासणि=कसोटी। लेखा=हिसाब। कृत=किये हुये काम।

१५६

मन वाहला रे, कछू विचारी खेल, पड़शे रे गढ़ भेल ॥ टेक ॥
बहु भाँतैं दुख देइगा वाहला, ज्यों तिल माँहैं लीजै तेल ।
करणी ताहरी सोधसी, होसी रें सिर हेल ॥ १ ॥
अबही थैं करि लीजिये रे वाहला, सांई सेती मेल ।
दादू संग न छाडी पीव का, पाई है गुण की बेल ॥ २ ॥

१६०

मन बावरे हो अनत जनि जाइ,
तौ तू जीवै अमी रस पीवै, अमर फल काहे न खाइ ॥ टेक ॥
रहु चरण सरण सुखपावै, देखहु नैन अघाइ ।
भाग तेरे पीव नेरे, थीर थान बताइ ॥ १ ॥
संग तेरे रहै घेरे, सहगैं अंगि समाइ ।
सरीर माँहैं सोधि सांई, अनहद ध्यान लगाइ ॥ २ ॥
पीव पासि आवै सुख पावै, तन की तपति बुझाइ ।
दादू रे जहं नाद ऊपजै, पीव पासि दिखाइ ॥ ३ ॥

१६१—भरम विधूसण

निरंजन अंजन कीन्हां रे, सब आतम लीन्हा रे ॥ टेक ॥
अंजन माया अंजन काया, अंजन छाया रे ।
अंजन राते अंजन माते, अंजन पाया रे ॥ १ ॥

---

१५६—पडसे=पडेगा । गढ भेल=जीवन रूपी गढ़ को तोडने के लिये विषयों की फौज हमला करेगी । ताहरी=तेरी । सोधसी=तलाश करेंगे । हेल=हल्ला, धावा । गुण की बेल=मनुष्य शरीर ।

१६०—अनत = अनन्त विषयों में । जनि=मत । थान=जगह, हृदय देश ।

१६१—अंजन=माया, नामरूपमय संसार ।

अंजन मेरा अंजन तेरा, अंजन मेला रे।
अंजन लीया अंजन दीया, अंजन खेला रे ॥ २ ॥
अंजन देवा अंजन सेवा, अंजन पूजा रे।
अंजन ज्ञाना अंजन ध्याना, अंजन दूजा रे ॥ ३ ॥
अंजन वकता अंजन सुरता, अंजन भावै रे।
सुंजन राम निरंजन कीन्हा, दादू गावै रे ॥ ४ ॥

१६२—निज वचन महिमा

ऐन बेन चैन होवै, सुणतां सुख लागै रे।
तीन्यूं गुण त्रिविध तिमर, भरम करम भागै रे ॥ टेक ॥
होइ प्रकास अति उजास, परम तत्त सूझै।
परम सार निर्विकार, विरला कोई बूझै ॥ १ ॥
परम थान सुख निधान, परम सुंनि खेलै।
सहज भाइ सुवै समाइ, जीव ब्रह्म मेलै ॥ २ ॥
अगम निगम होइ सुगम, दादू दूतर तिरि आवै।
आदि पुरिष दरस परस, दादू सो पावै ॥ ३ ॥

१६३—साध सांई हेरै

कोई राम का राता रे, कोई प्रेम का माता रे ॥ टेक ॥
कोई मन कौं मारै रे, कोई तन कौं तारै रे, कोई आप उबारै रे ॥१॥
कोई जोग जुगंता रे, कोई मोख मुकता रे, कोई है भगवंता रे ॥२
कोई सदगति सारा रे, कोई तारणहारा रे, कोई पीव का प्यारा रे॥

---

१६२—ऐंनबैंन = साक्षात् आत्म उपदेश। त्रिविध=प्रकाश, प्रवृत्ति, मोह। तिमिर=अंधेरा
तत्त = तत्त्व।

१६३—उबारै = बचावे। जुगंता = युक्तिवाला। मोष = मोक्ष।

कोई पार को पाया रे, कोई मिलि करि आया रे, कोई मन का भाया रे

कोई है बड़ भागी रे, कोई सेज सुहागी रे, कोई है अनुरागी रे ॥ ५ ॥

कोई सब सुखदाता रे, कोई रूप विधाता रे, कोई अमृत खाता रे ॥ ६ ॥

कोई नूर पिछाणैं रे, कोई तेज कौं जाणैं रे, कोई जोति बखाणैं रे ७

कोई साहिब जैसा ते, कोई साँई तैसा रे, कोई दादू ऐसा रे ॥ ८ ॥

१६४—साधु लक्षण

सद्गति साधवा रे, सनमुख सिरजनहार ।

भौ जल आप तिरैं ते तारैं, प्राण उधारनहार ॥ टेक ॥

पूरण ब्रह्म राम रङ्गि राते, निर्मल नांउं अधार ।

सुख संतोष सदा सति संजम, मति गति वार न पार ॥ १ ॥

जुगि जुगि राते जुगि जुगि माते, जुगि जुगि संगति सार ।

जुगि जुगि मेला जुगि जुगि जीवन, जुगि जुगि ग्यांन विचार ॥ २

सकल सिरोमणि सब सुखदाता, दुरलभ इहि संसार ।

दादू हंस रहैं सुख सागर, आये पर उपगार ॥ ३ ॥

१६५—परिचय उत्साह मंगल

अम्ह घरि पाहुणां ये, आव्या आतमराम ॥ टेक ॥

चहुँ दिसि मंगलचार, आनन्द अति घणांये ।

वरत्या जैजैकार, विरद वधावणां ये ॥ १ ॥

कनक कलस रस मांहिं, सखी भरि ल्यावज्यौ ये ।

आनंद अङ्गि न माइ, अम्हारै आविज्यौ ये ॥ २ ॥

१६४— सद्गति=उच्चगति । हँस=निर्मल सन्तजन । सुख सागर=आत्मानन्द समुद्र में ।

१६५—अम्ह = हमारे । पाहुणाँ = अति प्रिय सम्बन्धी । आव्या=आया । चहुंदिशि = अन्तः-
करणचतुष्टय में । वरत्या=हुवा । विरद=यशदायी, अच्छा । कनककलश = शुद्ध

भावै भगति अपार, सेवा कीजिये ये।
सनमुख सिरजनहार, सदा सुख लीजिये ये ॥ ३॥
धन्य अम्हारा भाग, आव्या अम्ह भणी ये।
दादू सेज सुहाग, तूं त्रिभवन धणी ये ॥ ४ ॥

पद १६६

गावहु मंगलाचार, आज बधावणां ये।
सुपनौं देख्यौ साच, पीव घरि आवणां ये ॥ टेक ॥
भाव कलस जल प्रेम का, सब सखियन के सीस।
गावत चलीं बधावणां, जै जै जै जगदीस ॥ १ ॥
पदम कोटि रवि झिलमिलैं, अंगि अंगि तेज अनंत।
बिगसि वदन बिरहनि मिली, घरि आये हरि कंत ॥ १ ॥
सुन्दरि सुरति सिंगार करि, सनमुख परसे पीव।
मो मंदिर मोहन आविया, वारूं तन मन जीव ॥ ३ ॥
कवल निरंतर नर हरी, प्रगट भये भगवंत।
जहं बिरहनि गुण बीनवै, खेलै फाग बसंत ॥ ४ ॥
वर आयौ बिरहनि मिली, अरस परस सब अंग।
दादू सुन्दरि सुख भया, जुगि जुगि यहु रस रंग ॥ ५ ॥

॥ इति राग मारू समाप्त ॥ ७ ॥

---

वृत्ति। माइ = समावे। अम्ह भणीये=हमारे भजने योग्य। धणी = स्वामी।

१६६—बधावणां=बधाई देने का समय, धन्यवाद का समय है। सुपनो देख्यो सांच=संसार स्वप्नवत् सुनते थे वह आज सचमुच देख लिया। सखियन=बुद्धिवृत्ति। बिगसि=प्रफुल्लित, मुसकाते हुये। सुन्दरि सुरति=शुद्ध वृत्ति। कवल=हृदय कमल में बीनवे=चुगे, इकट्ठे करे।

❀ राग मारू समाप्त ❀

# अथ राग रामकली ॥ ८ ॥

—:≈[❀]≈:—

१६७

सबदि समाना जो रहे, गुरुबाइक बीधा ।
उनही लागा येक सौं, सोई जन सीधा ॥ टेक ॥
असी लागी मरम की, तन मन सब भूला ।
जीवत मृतक ह्वै रहै, गहि आतम मूला ॥ १ ॥
चेतनि चितहि न बीसरै, महारस मीठा ।
सबद निरंजन गहि रह्या, उनि साहिब दीठा ॥ २ ॥
एक सबद जन ऊधरे, सुनि सहजैं जागे ।
अंतरि राते येक सूं, सरस न मुख लागे ॥ ३ ॥
सबदि समाना सनमुख रहै, पर आतम आगे ।
दादू सीझै देखतां, अविनासी लागे ॥ ४ ॥

१६८—नाम महिमा

अहो नर नीका है हरि नाम,
दूजा नहीं नाउं बिन नीका, कहिले केवल राम ॥ टेक ॥
निर्मल सदा येक अविनासी, अजर अकल रस असा ।
दिढ़ गहि राखि मूल मन मांहीं, निरखि देखि निज कैसा ॥ १ ॥
यहु रस मीठा महा अमीरस, अमर अनूपम पीवै ।
राता रहै प्रेम प्रेम सूं माता, असैं जुगि जुगि जीवै ॥ २ ॥

---

१६७—गुर बाइक=गुरु वचनों से । बीधा=घायल हुवा । बीसरे=भूले । दीठा = देखा । ऊधरे=उद्धार हो जाय । सर=बाण । सनमुख=सामने । सीझै=सिद्ध हो, सफल हो ।

दृष्टान्त—*भाई कन्हैया तप कियो, दिन पचीस भये बोल ॥*
*भाई सेवा भोजन दियो, कहत ही लागो बोल ॥ १ ॥*

१६८—अकल=कलन रहित, दोष रहित । दिढ़=मजबूत । निज=वेवनाघटी । अञ्जन=

दूजा नहीं और को ऐसा, गुरु अंजन करि सूझै।
दादू मोटे भाग हमारे, दास बमेकी बूझै ॥ ३ ॥

१६९—अत्यंत विरह

कब आवैगा कब आवैगा,
पिव परघट आप दिखावैगा, मिठड़ा मुझकूं भावैगा ॥ टेक ॥
कंठड़ै लागि रहूं रे, नैनों मैं बाहि धरूं रे, पीव तुझ बिन झूरि मरूं रे
पाऊं मस्तक मेरा रे, तन मन पीवजी तेरा रे, हौं राखो नैंनहुँ नेरा रे
हियड़े हेत लगाऊं रे, अबकै जे पीवै पाऊं रे, तौ बेर बेर बलि जाऊं रे
सेजड़ीये पीव आवैरे, तब आनंद अङ्गि न मावै रे, दादू दरस दिखावै रे॥४

१७०

पिरी तूं पाण पसाइड़े, मूं तनि लागी भाहिड़े ॥ टेक ॥
पांधी वींदो निकरीला, असां साण गल्हाइड़े।
सांई सिका सडकेला, गुझी गालि सुनाइड़े ॥ १ ॥
पसां पाक दीदार केला, सिक असां जी लाहिड़े।
दादू मंझि कलूब मैला, तोडे बीयांन काइड़े ॥ २ ॥

---

ज्ञानांजन। वसेकी=ज्ञानवान।

१६९—आवेगा=आविर्भाव होगा, प्रगटेगा। कंठडे=गले। वाहि=आँजकर। पांऊँ=चरणों में। हियड़े=हृदय में।

१७०—पिरी=प्यारे। पांणा=आप। पसाइडे=दर्शन दो। मूं=मेरे। भाहिडे=विरह की भाफ। पाँधा=पंथी, जीवात्मा। वींदो=वन्दा। निकरीला=निकल रहा है, जा रहा है। असां साण=हमारे साथ। गल्हाइडे=बात करिये। सिकाँ=चाह। सड़केला=हभारे। गुझी=गुप्त। गालि=बात। सुनाइडे=सुनाइये। पसां=देखूँ।

१७१

को मेड़ीदो सजणां, सुहारि सुरति केला, लगे डीहु वणां ॥टेक॥
पीरीयां संदी गाल्हड़ीला, पांधीड़ा पूछां।
कडी ईंदो मूंगरेला, डीदों बांह असां ॥ १ ॥
आहे सिक दीदार जीला, पिरी पूर पसां।
इयं दादू जे ज्यंद येला, सजण सांण रहां ॥ २ ॥

१७२—विनती

हरिहां दिखावौ नैंना, सुंदर मूरति मोहना,
बोलि सुनावी वैना ॥ टेक ॥
प्रगटि पुरातन खंडना, महीमान सुख मंडना ॥ १ ॥
अविनासी अपरंपरा, दीन दयाल गगन धरा ॥ १ ॥
पारब्रह्म परिपूरणां, दरस देहु दुख दूरणां ॥ ३ ॥
करि कृपा करुणामई, तब दादू देखै तुम दई ॥ ४ ॥

---

पाक=पवित्र, शुद्ध। दीदार=दर्शन। केला=का। सिक=इच्छा। असां=हमारी। लाहिड़े=पूरी कर दे। मंझि=हृदय में। कलूव मैला=मिलाप करो। तोडे=तुम बिना। काइड़े=कुछ और इच्छा नहीं है।

१७१—मेडीदो=मिला दो। सुहारी सुरति केला=सुन्दर सूरत वाले को। डीहु=दिन। घणां=वहुत। पीरिया संदी गाल्ह ढीला=प्यारे के साथ बातचीत का। पांधीधा=पहुंचे हुए सन्तजनों से। पूछां=मालूम करें। कड़ी=कब। ईंदो=देगा। मूंगरेला=मेरे गले में। डीदों=दे। वांह=भुजा। असां=हमारे। आहे सक दीदार जीला=जी की दर्शनों की चाह है। पिरी=प्यारे। पूर=पूर्ण। पसाँ=देखें। इयं=ऐसे। ज्यंदयेला=जीवन। साँण=साथ।

१७२—खंडना=माया जाल का खंडन करने वाला। महीमांन=सबसे बडे। गगनधरा=पृथ्वी आकाश के आधार। दई=हे देव।

१७३—निस्पृहता

राम सुख सेवग जाने रे, दूजा दुख करि मानै रे ॥ टेक ॥
और अगिन की झाला, फंध रोपे हैं जमजाला ।
सम काल कठिन सर पेखैं, ये सिंघरूप सब देखै ॥ १ ॥
विष सागर लहरि तरङ्गा, यहु ऐसा कूप भुवंगा ।
भै भीत भयानक भारी, रिप करवत मीच विचारी ॥ २ ॥
यहु ऐसा रूप छुलावा, ठग पासी हारा आवा ।
सब ऐसा देखि विचारे, ये प्रानघात बटवारे ॥ ३ ॥
ऐसा जन सेवग सोई, मनि और न भावै कोई ।
हरि प्रेम मगन रंगि राता, दादू राम रमै रसिमाता ॥ ४ ॥

१७४—साधु महिमा

आप निरंजन यौं कहै, कीरति करतार ।
मैं जन सेवग द्वै नहीं, एकै अंग सार ॥ टेक ॥
मम कारणि सब परहरै, आपा अभिमान ।
सदा अखंडित उर धरै, बोलै भगवान ॥ १ ॥
अंतर पट जीवै नहीं, तबही मरि जाइ ।
बिछुरे तलपै मीन ज्यूं, जीवै जल आइ ॥ २ ॥
खीर नीर ज्यूं मिलि रहै, जलजलहि समान ।

---

१७३—और = संसार के पदार्थ । झाला = ज्वाला । ये=स्त्री, पुत्र धनादि । भुवंगा=सर्प
रिप = बैरी । रूपछलावा=नाशवान रूप का छल । बटपारे=लुटेरे ।
दृष्टान्त—*किलो वरगत कहुँ छीतरी, डरि कही लेहु नाम ॥*
*दूँणी कोडि देहुगे, अलसीनें गये घांम ॥ १ ॥*

१७४—कीरति करतार=ईश्वर की महिमा समझने वाले साधक सन्त जन । परहरै=त्यागे

आत्म पाणी लूण ज्यूं, दूजा नांहीं आन ॥ ३ ॥
मैं जन सेवग द्वै नहीं, मेरा विश्राम ।
मेरा जन मुझ सारिखा, दादू कहै राम ॥ ४ ॥

१७५—परिचय विनती

सरनि तुम्हारी केसवा, मैं अनंत सुख पाया ।
भाग बड़े तूं भेटिया, हौं चरणौं आया ॥ टेक ॥
मेरी तपति मिटी तुम्ह देखतां, सीतल भयो भारी ।
भव बंधन मुकता भया, जब मिल्या मुरारी ॥ १ ॥
भरम भेद सब भूलिया, चेतनि चित लाया ।
पारस सूं परचा भया, उनि सहजि लखाया ॥ २ ॥
मेरा चंचल चित निहल भवा, इब अनत न जाई ।
मगन भया सर बेधिया, रस पीया अघाई ॥ ३ ॥
सनमुख ह्वै तैं सुख दिया, यहु दया तुम्हारी ।
दादू दरसन पावै ई, पीव प्राण अधारी ॥ ४ ॥

पद १७६—परस्पर गोष्ठी, परिचय वीनती

गोबिंद राखौ अपणी वोट,
काम क्रोध फये बटपारे, तकि मारैं उर चोट ॥ टेक ॥
बैरी पंच सबल संगि मेरे, मारग रोकि रहे ।
काल अहेड़ी बधिक ह्वै लागै, ज्यूं जिव बाज गहे ॥ १ ॥

अखंडित=स्थिर वृत्ति से। अंतर पट=अंतर होने से, पड़दा रहने से। मेरा विश्राम=मेरे आधार मेरे भक्तजन हैं।

१७५—भेटिया=मिला। तपति=सन्ताप। मुकता=मुक्त, रहित। परचा=प्रत्यक्ष पहचान। सर=गुरु उपदेश वाक्य वाण से। अघाई=तृप्त हो।

१७६—वोट=शरण, सहारे। अहेड़ी = शिकारी। हरि=हरा, अपहरण।

ग्यान ध्यान हिरदै हरि लीनां, सँगही घेरि रहे ।
समझि न परई बाप रमईया, तुम्ह बिन [illegible] ॥ १ ॥
सरणि तुम्हारी राखौ गोविंद, इनसों सँग न दीजै ।
इनकै सँगि बहुत दुख पाया, दादू कूँ गहि लीजै ॥ २ ॥

पद १७७ भयमान विनती

राम कृपा करि होहु दयाला, दरसन देहु करहु प्रतिपाला ॥ टेक ।
बालक दूध न देई माता, तौ वै क्यूं करि जिवै विधाता ॥ १ ॥
गुण औगुण हरि कुछ न विचारै, अंतरि हेत प्रीति करि पालै ॥२
अपणौं जाणि करै प्रतिपाला, नैन निकट उरि धरै गोपाला ॥ ३ ।
दादू कहै नहीं बस मेरा, तू माता मैं बालक तेरा ॥ ४ ॥

१७८—विनती

भगति मांगूं बाप भगति मांगौं, मूनै ताहरा नावं नौ प्रेम लागौं ।
सिवपुर ब्रह्मपुर सर्व सौं कीजिये, अमर थावा नहीं लोक मांगौं रे
आपि अवलंबन ताहरा अंगनौं, भगति सजीवनी रंगि राचौं ।
देहनै ग्रेह नौं वास बैकुंठ तणौं, इंद्रासण नहीं मुकती जाचौं ॥१॥
भगति वाहली खरी, आपि अविचल हरी, निर्मलौ नाउं रसपान भावै ।
सिधि नै रिधि नै राज रूडौ नहीं, देवपद माहरै काजि न आवै ।२।

१७७—प्रतिपाला=रक्षा । गोपाला=वेद वाणी रूप गो, इन्द्रिय रूप गो, पृथ्वी रूप गो को अपनी करुणा कर प्रतिपाल करने वाले ।

१७८—सो=क्या । थावा=होना । लोक=स्वर्ग लोक । आपि=दे । अंगनो=स्वरूप का राचो=सप्रेम लगो । जाचौं=मांगूं । वाहली=प्यारी । रूडो=चोखो, अच्छा

आत्मा अंतरि सदा निरंतरि, ताहरी बापजी भगति दीजै ।
कहै दादू हिवैं कोड़ीदत्त आपै, तुम्ह बिना ते अम्हे नहीं लीजै ॥ ३

१७६

एह्वौ येक तू रामजी नाउं रूडौ,
ताह्रा नाउं बिना बीजौ सबै ही कूडौ ॥ टेक ॥
तुम्ह बिना अवर कोई कलिमां नहीं, सुमिरतां संत नैं साद आपै,
कर्म कीधां कोटि छोड़वै बाधौ, नांउं लेतां खिणनही ये कापै ॥ १ ॥
संतनै सांकड़ो दुष्ट पीड़ा करै, बाहरैं वाह्लौ बेगि आवै ।
पापना पुंज पह्रां करी लीधौं, भाजियां भै भर्म जोनि न आवै ॥२॥
साधनैं दुहेलौं तहा तूं आकुलौं, माह्रौं माह्रौं करीनैं धाए ।
दुष्टनै मारिबा, संतनै तारिबा, प्रगट थावा तिहां आप जाए ॥ ३॥
नाम लेता खिण नाथ तैं एकलैं, कोटिना कर्मना छेद्द कीधा ।
कहै दादू हिवैं तुम्ह बिना को नहीं, साखि बोलैं जे सरणि लीधा ४

१८०—परिचय विनती

हरि नाम देहु निरंजन तेरा, हरि हरिषैं जपै जिय मेरा ॥ टेक ॥
भाव भगति हेत हरि दीजै, प्रेम उमगि मन आवै ।
कोमल वचन दीनता दीजै, राम रसाइण भावै । १ ॥

---

कोडिदत्त=करोडों की सम्पत्ति ।

१७६—एह्वौ=ऐसा । कूडो=असार, झूंठो । साद=प्रसाद, प्रसन्नता । आपे=दे । षिणतही=पलभरमें । कापै=काटदे । सांकडो=सहायक, समीप । वाहरे=सहायता के लिये । वेगि=शीघ्र । वाहलौ=प्यारा । पुंज=समूह । पहां = दूर । दुहेलों=कष्ट के समय, दुख के समय । आकुलो = आकुल हो, चंचल हो । एकले = एकाकी ।

विरह वैराग प्रीति मोहि दीजै, हिरदै साच सति भाखौं ।
चित चरणौं चिंतामणि दीजै, अंतिर दिढ़ करि राखौं ॥ २ ॥
सहज संतोष सील सब दीजै, मन निहचल तुम्ह लागै ।
चेतनि चिंतनि सदा निवासी, संगि तुम्हारे जागै ॥ ३ ॥
ग्यान ध्यान मोहन मोहि दीजै, सुरति सदा संगी तेरे ।
दीन दयाल दादू कौ दीजै, परम जोति घटि मेरे ॥ ४ ॥

१८१—आसीरबाद मंगल

जै जै जै जगदीश तूं, तूं समर्थ सांई ।
सकल भवन भानैं घड़ै, दूजा को नांहीं ॥ टेक ॥
काल मींच करुणा करै, जम किंकर माया ।
महा जोध बलिवंत बली, भय कंपै राया ॥ १ ॥
जुरा मरण तुम्ह थैं डरै, मन कौं भै भारी ।
काम दलन करुणा मई, तूं देव मुरारी ॥ २ ॥
सब कंपैं करतार थैं, भव बंधन पासा ।
अरि रिपु भंजन भयगता, सब विघन विनासा ॥ ३ ॥
सिर ऊपरि सांई खड़ा, सोई हम मांहीं ।
दादू सेवग राम का, निर्भै न डराई ॥ ४ ॥

१८२—हित उपदेस

हरि के चरण पकरि मन मेरा, यहु अविनासी घर तेरा ॥ टेक ॥

---

साखींवाले=गवाह कहते हैं, वेदशास्त्र सन्त महात्मा कहते हैं ।

१८०—हरिखै=प्रसन्न हो । उमगि = उत्साह । डिढ=मजबूत, स्थिर । सहज=द्वन्द रहित अवस्था । परमजोति=दिव्य प्रकाश, ब्रह्म साक्षात्कार ।

१८१—भानैं=नष्ट करै । घड़ै = उत्पन्न करे । जमकिंकर=यम के दूतों से । जोध=सूरवीर ।

जब चरण कवल रज पावै, तब काल ब्याल बौरावै ।
तब त्रिविध ताप तनि नासै, तब सुख की रासि बिलासै ॥ १ ॥
जब चरण कवल चित लागै, तब माथैं मीच न जागै ।
तब जनम जुरा सब खींना, तब पद पावन उर लीना ॥ २ ॥
जब चरण कवल रस पीवै, तब माया न ब्यापै जीवै ।
तब भरम करम भौ भाजै, तब तीन्यूं लोक बिराजै ॥ ३ ॥
जब चरण कवल रुचि तेरी, तब चारि पदारथ चेरी ।
तब दादू और न बाँछै, जब मन लागै साचै ॥ ४ ॥

१८३—संत उपदेश

संतौ और कहौ क्या कहिये,
हम तुम्ह सीख इहै सतगुरु की, निकटि राम के रहिये ॥ टेक ॥
हम तुम्ह मांहिं बसै सो स्वामी, साचे सौं सचु लहिये ।
दरसन परसन जुगि जुगि कीजै, काहे कौ दुख सहिये ॥ १ ॥
हम तुम संगि निकट रहैं नेरै, हरि केवल कर गहिये ।
चरण कवल छाड़ि करि ऐसे, अनत काहे कौ बहिये ॥ २ ॥
हम तुम्ह तारन तेज घन सुंदर, नीके सौं निरबहिये ।
दादू देख और दुख सबहीं, तामैं तन क्यौं दहिये ॥ ३ ॥

१८४—मन प्रति उपदेश

मन रे बहुरि न ऐसे होई,
पीछैं फिरि पछितावैगा रे, नींद भरे जनि सोई ॥ टेक ॥

---

जुरा=बुढापा । दलन=खंडन करने वाला । भयगता = भयरहित ।
१८२—अविनासी=नित्य सत्य । ब्याल=सर्प । बौरावे=पागल हो, अकिञ्चन हो । रासि=ढेर । विलासे=भोगे । मीच=मृत्यु, काल । ब्यापै=असर करे । बांछै=चाहे, मांगे ।
१८३—सीख=शिक्षा, उपदेश । इहै = यही । केवल कर = एक ब्यापक । तेजघन=तेजपुञ्ज ।

आगम सारै संचु करीले, तो सुख होवै तोही।
प्रीति करी पीव पाईये, चरणौं राखै मोही॥ १॥
संसार सागर विषम अति भारी, जनि राखै मन मोहि॥ १॥
दादू रे जन राम नाम सौं, कुसमल देही धोइ॥ २॥

१८५—कालचितावणी

साथी सावधान ह्वै रहिये,
पलक माँहिं परमेसुर जाणैं, कहा होइ कहा कहिये॥ टेक॥
बाबा बाट घाट कुछ समझि न आवै, दूरि गवन हम जाना।
परदेसी पंथि चलै अकेला, औघट घाट पयाना॥ १॥
बाबा संग न साथी कोइ नहिं तेरा, यहु सब हाट पसारा।
तरवर पंखी सबै सिधाये, तेरा कौण गंवारा॥ २॥
बाबा सबै बटाऊ पंथि सिरानै, सुथिर नांहीं कोई।
अंतिकाल को आगै पीछै, बिछुरत बार न होई॥ ३॥
बाबा काची काया कौण भरोसा, रैनि गई क्या सोवै।
दादू संबल सुकृत लीजै, सावधान किन होवै॥ ४॥

१८६—तरक चितावणी

मेरा मेरा काहे को कीजै रे, जे कुछ संगि न आवै।
अनत करी नै धन धरीला रे, तेऊ तौ रीता जावै॥ टेक॥

---

नीके=श्रेष्ठ। दहिये=जलाइये।

दृष्टान्त—*गलता तें जे आइया, सांभर स्वामी पास।*
*या पद तें उत्तर दियो, उठि गये होय उदास॥*

१८४—बहुरिन=फिर। नींद्यरे=अज्ञान की घोर नींद में। संचु=संग्रह। करीले=करले
मोहि=मोहित हो। कुसमल=पाप।

१८५—सावधान=सचेत। वाटघाट=रस्ता तथा घाट। गवन=चलना। पयाना=जान

माया बंधन अंध न चेतै रे, मेर माँहिं लपटाया।
ते जाणै हूं येह विलासौं, अनत विरोधें खाया॥ १॥
आप स्वारथ येह विलूधा रे, आगम मरम न जाणै।
जम कर माथैं बाण धरीला, ते तौ मनि न आणै॥ २॥
मन विचारि सारी ते लीजै, तिल माँहैं तन पड़िबा।
दादू रे तहँ तन ताड़ीजै, जेणैं मारग चढ़िबा॥ ३॥

१८७—विनती हित उपदेश

सनमुख भइला रे, तब दुख गइला रे, ते मेरे प्राण अधारी।
निराकार निरंजन देवा रे, लेवा तेह विचारी॥ टेक॥
अपरम्पार परम निज सोई, अलख तोरा बिस्तारं।
अंकुर बीजै सहजि समाना रे, ऐसा समर्थ सारं॥ १॥
जे तैं कीन्हां किन्हि इक चीन्हा रे, भइला ते परिमाणं।
अविगत तोरी विगति न जाणूं, मैं मूरिख अयानं॥ २॥
सहजैं तोरा ए मन मोरा, साधन सौं रङ्ग आई।
दादू तोरी गति नहिं जानै, निरबाहौ कर लाई॥ ३॥

१८८—मन प्रति सूरापन

हरि मारग मस्तक दीजिये, तब निकटि परम पद लीजिये॥ टेक॥
इस मारग माँहैं मरणा, तिल पीछैं पाव न धरणा।

पंथिसिराने = रास्ते चल रहे हैं। संवल= अच्छा सहारा, अच्छी कमाई।

१८६—अनतकरीने=अनेक उपाय कर। तेऊ=तोभी। रीता=ख़ाली। मेर=ममता
विलासौं = भोगूं। विलूधा = लगा, चिपटा। सारी=सारवस्तु। तिल=पल।
ताडीजै=दंडित होगा।

१८७—भइला=हुये। गइला=गये। किन्हइक=किसी एक महापुरुष नें। चीन्हा=जाणा।

अब आगैं होई सु होई, पीछै सोच न करणा कोई ॥ १ ॥

ज्यूं सूरा रण झूझै, आपा पर नहिं बूझै ।
सिरि साहिब काज संवारै, घण घावां आपा डारै ॥ २ ॥

सती संत गहि साचा बोलै, मन निहचल कदे न डोलै ।
वाकै सोच पोच जिय न आवै, जग देखत आप जलावै ॥ ३ ॥

इस सिरसौं साटा कीजै, तब अविनासी पद लीजै ।
ताका तब सिर स्याबति होवै, जब दादू आपा खोवै ॥ ४ ॥

१८९—कलिजुग

झूठा कलिजुग कह्या न जाइ, अमृत कौ विष कहै बनाइ ॥ टेक ॥

धन कौ निर्धन निर्धन कौ धन, नीति अनीति पुकारैं ।
निर्मल मैला मैला निर्मल, साध चोर करि मारैं ॥ १ ॥

कंचन काच काच कौ कंचन, हीरा कंकर भाखैं ।
माणिक मणियां मणियां माणिक, साच झूठ करि नाखैं ॥ २ ॥

पारस पत्थर पत्थर पारस, कामधेन पशु गावैं ।
चंदन काठ काठ कौ चंदन, ऐसी बहुत बनावैं ॥ ३ ॥

रस कौ अणरस अणरस कौ रस, मीठा खारा होई ।
दादू कलिजुग ऐसा बरतै, साचा विरला कोई ॥ ४ ॥

---

अनं = अज्ञानी । करलाई = हाथ पकड़ ।

१८८—हरिमारग = परमात्मा के रास्ते । निकटि = पास ही, अपने में ही । रिणझूझै रणमें लड़े । घणघावां=बहुत चोटों से । आपाडारै=अहंकार खोवें । सोचपोच चिन्तामय । साटा=बदला, परिवर्तन ।

१६०—भगवंत भरोसा

दादू मोहि भरोसा मोटा,
तारण तिरण सोई संगि मेरे, कहा करै कलि खोटा ॥ टेक ॥
दौं लागौ दरिया थैं न्यारी, दरिया मंझि न जाई ।
मच्छ कच्छ रहैं जलि जेते, तिनकूं काल न खाई ॥ १ ॥
जब सूवै पिंजर घर पाया, बाज रह्या बन मांहीं ।
जिनका समर्थ राखणहारा, तिनकूं को डर नाहीं ॥ २ ॥
साचै झूठ न पूजै कबहूँ, सति न लागै काई ।
दादू साचा सहजि समाना, फिरि वै झूठ बिलाई ॥ ३ ॥

१६१—साच झूठ निरनै

सांई कौ साच पियारा,
साचैं साच सुहावै देखौ, साचा सिरजनहारा ॥ टेक ॥
ज्यूं घण घावां सार घड़ीजै, झूठ सबै झड़ि जाई ।
घण के घाऊं सार रहेगा, झूठ न मांहिं समाई ॥ १ ॥
कनक कसौटी अगनि मुख दीजै, कंप सबै जलि जाई
यौं तों कसणी साच सहैगा, झूठ सहै नहिं भाई ॥ २ ॥
ज्यूं घृत कूं ले ताता कीजै, ताइ ताइ तत कीन्हा ।
तत्तैं तत्त रहैगा भाई, झूठ सबै जलि खीनां ॥ ३ ॥
यौं तौ कसणीं साच सहैगा, साचा कसि कसि लेवै ।
दादू दरसन साचा पावै, झूठे दरस न देवै ॥ ४ ॥

---

१८९—भाखैं=कहे । माणिक=रतन । मंणिया=काठ का दाणा । बनावे=रचे ।

१६०—मोटा=बड़ा, मजबूत । खोटा=बदमाश, बुरा । दौं = अग्नि । पूजै=पूजा करे, माने ।
काई = मैल । बिलाई=विलीन हुवा ।

१६२—करणी बिना कथनी

बातैं बादी जाहिंगी भइये, तुम्ह जनि जानौं बातनिपइये ॥ टेक ॥
जब लग अपना आप न जानै, तब लग कथनीं काची ।
आपा जानि सांईं कूं जानै, तब कथनी सब साची ॥ १ ॥
करनी बिना कंथ नहिं पावै, कहै सुनै का होई ।
जैसी कहै करै जे तैसी, पावैगा जन सोई ॥ २ ॥
बातनि हीं जे निर्मल होवै, तौ काहै कूं कसि लीजै ।
सोना अगनि दहै दसबारा, तब यहु प्रान पतीजै ॥ ३ ॥
यौं हम जाना मन पतियाना, करनी कठिन अपारा ।
दादू तनका आपा जारै, तौ तिरत न लागै बारा ॥ ४ ॥

१६३

पंडित, राम मिलै सो कीजै,
पढि पढि वेद पुरान बखानैं, सोई तत्त कहि दीजै ॥ टेक ॥
आतम रोगी विषम बियाधी, सोई करि औषध सारा ।
परसत प्राणी होइ परम सुख, छूटै सब संसारा ॥ १ ॥
ए गुण इंन्द्रिय अग्नि अपारा, तासनि जलै सरीरा ।
तन मन सीतल होइ सदा सुख, सो जल नावो नीरा ॥ २ ॥
सोई मारग हमहिं बतावो, जेहि पंथी पहुँचैं पारा ।
भूलि न परै उलटि नहिं आवै, सो कुछ करहु बिचारा ॥ ३ ॥

१६१—पियारा = प्यारा है । घावां=चोटों से । सार=लोह । कंप=मैल । कसणी=कसोटी. परीक्षा की आंच । ताता=गर्म ।

१६२—बातें = कर्म रहित कथनी । वादि=व्यर्थ, फालतू । काची=मिथ्या, झूंठी । कसिलीजै=निग्रह करिये । पतियानां = भरोसा किया, विश्वास हुवा ।

गुरु उपदेश देहु कर दीपक, तिमिर मिटै सब सूझै।
दादू सोई पंडित ग्याता, राम मिलन की बूझै॥ ४॥

१५४

हरि राम बिना सब भर्मि गये, कोई जन तेरा साच गहै॥ टेक॥
पीवै नीर त्रिषा तनि भाजै, ग्यान गुरु बिन कोइ न लहै।
परगट पूरा समझि न आवै, तार्थं सो जल दूरि रहै॥ १॥
हरषि सोक दोउ समि करि राखै, येक येक के संगि न बहै।
अनतहि जाइ तहां दुख पावै, आपहि आपा आप दहै॥ २॥
आपा पर भरम सब छाड़ै, तीनि लोक परि ताहि धरै।
सो जन सही साचकौं परसै, अमर मिलै नहिं कबहुँ मरै॥ ३॥
पारब्रह्म सूं प्रीति निरंतर, राम रसाइण भरि पीवै।
सदा आनंद सुखी साचैसौं, कहै दादू सौ जन जीवै॥ ४॥

१५५—भरम विधूसण

जग अंधा नैन न सूझै, जिन सिरजे ताहि न बूझै॥ टेक॥
पाहण की पूजा करै, करि आतम घाता।
निर्मल नैंन न आवई, दोजग दिसि जाता॥ १॥

बखाने=कहे। विषम = कठिन। वियाधी=रोग। परसत = स्पर्श करते ही। तासनि= उससे। नावो = नहावो। कर = हाथ में।

दृष्टान्त—जगजीवणजी बैललदि. आये चर्चा काज।
गुरुदादू यह पद कह्यो, सवतजि सिष सिरताज॥

१५४—भर्मिगये = भ्रम में पड़ गये। त्रिषा = तृष्णा। सोजल = आत्म रस। अनतहि= अनात्म पदार्थों में। तीनलोकपरि=तीन गुण सृष्टि से आगे। ताहि धरै=उस निर्द्वन्द चेतन को धारण करे।

१५५—अंधा=अज्ञान के पड़दे से। सिरजे = उत्पन्न किये। पाहण=पत्थर। निर्मल=माया-

पूजैं देव दिहाड़ियां, महा माई मानैं।
परगट देव निरंजना, ताकी सेव न जानैं ॥ २ ॥
भैरौं भूत सब भ्रम के, पसु प्राणी धावैं।
सिरजनहारा सबनि का, ताकूं नहिं पावैं। ३ ॥
आप सुवारथ मेदनी, का का नहिं करई।
दादू साचे राम बिन, मरि मरि दुख भरई ॥ ४ ॥

१६६—आन उपासी विसमय वादी भरम

साचा राम न जाणैं रे, सब झूठ वखाणै रे ॥ टेक ॥
झूठे देवा झूठी सेवा ? झूठा करै पसारा।
झूठी पूजा झूठी पाती, झूठा पूजनहारा ॥ १ ॥
झूठा पाक करै रे प्राणी, झूठा भोग लगावै।
झूठा आडा पड़दा देवै, झूठा थाल बजावै ॥ २ ॥
झूठे बकता झूठे सुरता, झूठी कथा सुणावै।
झूठा कलिजुग सब को मानै, झूठा भर्म डिढ़ावै ॥ ३ ॥
थावर जंगम जल थल महियल, घटि घ टि तेज समाना।
दादू आतम राम हमारा, आदि पुरिख पहिचाना ॥ ४ ॥

१६७—निज मार्ग निर्णय

मैं पंथि येक अपार के, मनि और न भावै।
सोई पंथ पावै पीव का, जिसै आप लखावै ॥ टेक ॥

---

अविद्या रहित। पसुप्राणी=पशुवृत्ति मनुष्य। मेदनी=भूमिपर।

१६६—थावर=जड़। जंगम=चेतनप्राणी। महियल=आकाश।

को पंथि हिंदू तुरक के, को काहू राता।
को पंथि सोफी सेवड़े, को सन्यासी माता ॥ १ ॥
को पंथि जोगी जंगमा, को सकति पंथ ध्यावै।
को पंथि कमड़े कापड़ी, को बहुत मनावै ॥ २ ॥
को पंथि काहूं के चलै, मैं और न जानौं।
दादू जिन जग सिरजिया, ताही कौ मानौं ॥ ३ ॥

१९८—साधु मिलाप मंगल

आज हमारे रामजी, साधु घरि आये।
मंगलचार चहुंदिसि भये, आनंद बधाये ॥ टेक ॥
चौक पुराऊं मोतियां, घसि चंदन लाऊं।
पांच पदारथ पोइ कै, यहु माल चढाऊं ॥ १ ॥
तन मन धन करौं वारनैं, परदखना दीजै।
सीस हमारा जीव ले, नौछावर कीजै ॥ २ ॥
भाव भगति करि प्रीति सौं, प्रेम रस पीजै।
सेवा वंदन आरती, यहु लाहा लीजै ॥ ३ ॥
भाग हमारा है सखी, सुख सागर पाया।
दादू का दरसन किया, मिले त्रिभुवन राया ॥ ४ ॥

---

१९७—बहुत मनावे=पंच देव पूजा। सिरजिया=बनाया।

१९८—चहुँदिसि=मन, बुद्धि, चित, अहंकार सब में। चोक पुराऊं=हृदय प्रदेश सजाऊँ। मोतियाँ=नामजप रूपी मोतियों से। चंदन=चित्तवृत्ति रूप। पांच पदारथ=पांचों विषय। परदखनां=प्रदक्षिणा, फेरी। लाहा=लाभ, फल।

१९९—संत समागम प्रार्थना

निरंजन नांउं के रसिमाते, कोई पूरे प्राणी राते ।। टेक ।।
सदा सनेही राम के, सोई जन साचे।
तुम्ह बिन और न जानहीं, रंगि तेरे ही राचे ।। १ ।।
आन न भावै एक तूं, साति साधू सोई।
प्रेम पियासे पीव के, ऐसा जन कोई ।। २ ।।
तुमहीं जीवनि उरि रहे, आनंद अनरागी।
प्रेम मगन पिव प्रितड़ी, लै तुम्ह सूं लागी ।। ३ ।।
जे जन तेरे रंगि रंगे, दूजा रंग नांहीं।
जनम सुफल करि लीजिये, दादू उन मांहीं ।। ४ ।।

२००—अत्यंत निर्मल उपदेस

चलु रे मन जहां अमृत बनाँ, निर्मल नीके संत जना ।। टेक ।।
निर्गुण नांउं फल अगम अपार, संतन जीवनि प्राण अधार ।। १ ।।
सीतल छाया सुखी शरीर, चरण सरोवर निर्मल नीर ।। २ ।।
सुफल सदा फल बारह मास, नाना वाणी धुनि परकास ।। ३ ।।
तहां बास बसि अमर अनेक, तहं चलि दादू इहै बवेक ।। ४ ।।

२०१—

चलौ मन माहरा, जहां मित्र अम्हारा,
तहं जामण मरण नहिं जाणिये नहिं जाणिये ।। १ ।।

---

१९९—पूरे = सर्वात्मना साधक। आन = अन्य, मायिक वस्तुऐं। भावे = अच्छी येक तूं = एकत्वभाव। प्रीतिड़ी = परमस्नेह।
२००—अमृत वनाँ = नाम चिंतन काही अमृत मय कानन है। बवेक = सत्यग्यान।

मोहन माया मेरा न तेरा, आवागमन नहीं जम फेरा।
पिंड पड़ै नहिं प्राण न छूटै, काल न लागै आव न खूटै ॥ १ ॥
अमर लोक तहं अखिल सरीरा, व्याधि बिकार न व्यापै पीरा ॥२॥
राम राज कोइ भिड़ै न भाजै, सुस्थिर रहणा बैठा छाजै ॥ ३ ॥
अलख निरंजन और न कोई, मित्र अम्हारा दादू सोई ॥ ४ ॥

२०२—बेली

बेली आनंद प्रेम समाइ,
सहजैं मगन राम रस सींचै, दिन दिन बधती जाइ ॥ टेक ॥
सतगुरु सहजैं बाही बेली, सहजि मगन घर आया।
सहजैं सहजैं कूंपल मेल्है, जाणौं अवधूराया ॥ १ ॥
आतम बेली सहजैं फूलै, सदा फूल फल होई।
काया बाड़ी सहजैं निपजै, जानैं बिरला कोई ॥ २ ॥
मन हठ बेली सूकण लागी, सहजैं जुगि जुगि जीवै।
दादू बेलि अमर फल लागै, सहजि सदा रस पीवै ॥ ३ ॥

२०३—सबद बाण

संतौ राम बाण मोहि लागे,
मारत मिरग मरम तब पायौ, सब संगी मिलि जागे ॥ टेक ॥
चित चेतनि चिंतामणि चीन्है, उलटि अपूठा आया।
मंदिर पैसि बहुरि नहिं निकसै, परम तत्त घर पाया ॥ १ ॥

---

आव = आयु। भिड़ै=लडै। भाजै = दौड़े। छाजै=शोभे।

२०३—बेलि=शुद्धमति। वाही बेली=बेललगाई। कूंपल = अंकुर। फूलफल = आत्मज्ञान, मुक्तावस्था। मनहठ = मन के निग्रह से। बेली सूकण लागी=विषय भोग की प्रवृत्ति रूप वेल सूकने लगी।

आवै न जाइ जाइ नहिं आवै, तिहि रस मनवां माता।
पान करत परमानंद पायौ, थकित भयौ चलि जाता ॥ २ ॥
भयौ अपंग पंक नहिं लागै, निर्मल संगि सहाई।
पूरण ब्रह्म अखिल अविनासी, तिहि तजि अनत न जाई ॥ ३ ॥
सो सर लागि प्रेम परकासा, प्रगटी प्रीतम वाणी।
दादू दीनदयालहि जानै, सुखमैं सुरति समाणी ॥ ४ ॥

२०४—निज थान निर्णय

मधि नैन निरखौं सदा, सो सहज सरूप,
देखतही मन मोहिया, है सो तत्त अनूप ॥ टेक ॥
त्रिवेणी तटि पाइया, मूरति अविनासी।
जुगि जुगि मेरा भांवता, सोई सुख रासी ॥ १ ॥
तारूणी तटि देखिहौं, तहां अस्थाना।
सेवग स्वामीं संगि रहै, बैठे भगवाना ॥ २ ॥
निर्भै थान सुहात सो, तहं सेवग स्वामी।
अनेक जतन करि पाइया, मैं अन्तरजामी ॥ ३ ॥
तेज तार परमिति नहीं, अैसा उजियारा।
दादू पार न पाइये, सो सरूप संभारा ॥ ४ ॥

२०५

निकटि निरंजन देखि हौं, छिन दूरि न जाई।

---

मिरग=मन इन्द्रियरूपी मृग। संगी=इन्द्रिय, अन्त.करण। लागे=आत्माभि
लगे। मंदिर=हृदय मंदिर। पैसि=प्रवेशकर। निकसै=निकलें। अपंग=पाप पुण्य
पैर रहित। पंक=कीच, मैलै, गुण विकार का मैल। सो सर=गुरु उपदेशमय वा
२०४—नैन=ज्ञान विचार के नेत्रों से। त्रिवेणी तट = मन वचन वृत्ति की एकता के किन

बाहरि भीतर येकसा, सब रह्या समाई ॥ टेक ॥
सतगुरु भेद लखाइया, तब पूरा पाया,
नैंननहीं निरखूं सदा, घरि सहजैं आया ॥ १ ॥
पूरे सौं पर्चा भया, पूरी मति जागी,
जीव जानि जीवनि मिल्या, ऐसे बड़भागी ॥ २ ॥
रोम रोम मैं रमि रह्या, सो जीवनि मेरा,
जीव पीव न्यारा नहीं, सब संगि बसेरा ॥ ३ ॥
सुंदर सो सहजैं रहै, घटि अंतरजामी,
दादू सोई देखि हौं, सारौ संगि स्वामी ॥ ४ ॥

२०६—परचय उपदेश

सहज सहेलड़ी हे, तूं निर्मल नैंन निहारि ।
रूप अरूप निर्गुण अगुण मैं, त्रिभुवन देव मुरारि ॥ टेक ॥
बारंबार निरखि जगजीवन, इहि घरि हरि अविनासी ।
सुंदरि जाइ सेज सुख विलसै, पूरण परम निवासी ॥ १ ॥
सहजैं संगि परसि जगजीवन, आसणि अमर अकेला ।
सुंदरि जाइ सेज सुख सोवै, जीव ब्रह्म का मेला ॥ २ ॥
मिलि आनन्द प्रीति करि पावन, अगम निगम जहं राजा ।
जाइ तहां परसि पावन को, सुंदरि सारै काजा ॥ ३ ॥
मंगलचार चहूँ दिसि रोपै, जब सुंदरि पिव पावै ।
परम जोति पूरे सौं मिलि करि, दादू रंग लगावै ॥ ४ ॥

---

मेरा भाँवता=मुझे प्रिय लगता । तारुखीलट—इड़ा, पिंगला, सुषम्ना के संयोग स्थान में । थान=जगह । तेजतार=प्रकाश की किरणें । परमिति=अन्तवाली ।
२०५—छिन=पल । जीवजानि जीवन मिल्या=जीव समष्टिचेतन को अपना जीव समझ

२०७—वस्तु निर्देश

तहं आपैं आप निरंजना, तहं निसवासुरि नहिं संजमा ॥ टेक ॥
तहं धरती अंबर नाहीं, तहं धूप न दीसैं छांहीं ।
तहं पवन न चालै पानी, तहं आपै एक विनानी ॥ १ ॥
तहं चंद न ऊगै सूरा, मुखि काल न बाजै तूरा ।
तहं सुख दुख का गमि नाहीं, ओ तौ अगम अगोचर माहीं ॥ २ ॥
तहं काल काया नहिं लागै, तहं को सोवै को जागै ।
तहं पाप पुण्य नहिं कोई, तहं अलख निरंजन सोई ॥ ३ ॥
तहं सहजि रहै सो स्वामी, सब घटि घटि अंतरजामी ।
सकल निरंतर बासा, रटि दादू संगम पासा ॥ ४ ॥

२०८

अवधू बोलि निरंजन वांणी, तहं एकै अनहद जाणी ॥ टेक ॥
तहं वसुधा का बल नाहीं, तहं गगन घाम नहिं छांहीं ।
तहं चंद सूर नहिं जाई, तहं काल काया नहिं भाई ॥ १ ॥
तहं रैंणि दिवस नहिं छाया, तहं बाव बरण नहिं माया ।
तहं उदै अस्त नहिं होई, तहं मरै न जीवै कोई ॥ २ ॥
तहं नाहीं पाठ पुराना, तहं अगम निगम नहिं जाना ।
तहं विद्या बाद नहिं ग्याना, नहिं तहां जोग अरु ध्याना ॥ ३ ॥

---

उस से मिला । वसेरा=वास, निवास ।

२०६—सहज = निर्द्वन्द दशावाली । सहेलडी=शुद्ध बुद्धि वृत्ति । निर्मलनैन=विशुद्धज्ञान नेत्रों से । निहारि=देख । इहिवर=अपने शुद्ध हृदय स्थान में । परसि=स्पर्शकर, एव प्राप्तकर । सुंदरि = सुरति वृत्ति । जहं राजा=जहाँ प्रकाशमान हो रहा है । मंगलचार=आनन्दोत्सव । [illegible]

२०७—संजमा = संयोग-संगम । विनानी=कर्ता-हर्ता । गमि=पहुँच ।

तहं निराकार निज ऐसा, तहं जाण्या जाइ न जैसा ।
तहं सब गुण रहिता गहिये, तहं दादू अनहद कहिये ॥ ४ ॥

२०९—प्रसिद्ध साधु

बाबा को ऐसा जन जोगी,
अंजन छाड़ै रहै निरंजन, सहजि सदा रस भोगी ॥ टेक ॥
छाया माया रहै विवर्जित, पिंड ब्रह्मँड नियारे ।
चँद सूर थैं अगम अगोचर, सो गहि तत्त बिचारे ॥ १ ॥
पाप पुन्य लिपै नहिं कबहूँ, दोइ पख रहिता सोई ।
धरनि आकाश ताहि थैं ऊपरि, तहां जाइ रत होई ॥ २ ॥
जीवण मरण न बांछै कबहूँ, आवागवन न फेरा ।
पानी पवन परस नहिं लागै, तिहि सँगि करै बसेरा ॥ ३ ॥
गुण आकार जहां गमि नाहीं, आपैं आप अकेला ।
दादू जाइ तहां जन जोगी, परम पुरिष सौं मेला ॥ ४ ॥

२१०—परचै पराभक्ति

जोगी जानि जानि जन जीवै,
बिनहीं मनसा मनहि बिचारै, बिन रसना रस पीवै ॥ टेक ॥
बिनहीं लोचन निरखि नैंन बिन, श्रवण रहित सुनि सोई ।
ऐसैं आतम रहै येकरस, तौ दूसर नांउं न होई ॥ १ ॥
बिनहीं मारग चलै चरण बिन, निहचल बैठा जाई ।
बिनहीं काया मिलै परस्पर, ज्यौं जल जलहि समाई ॥ २ ॥

---

२०८—निरंजनवाणी = अनहद ध्वनि । वसुधाका = पार्थिव भोग वृत्ति का । बाव = श्वास प्रश्वास, प्राण । वरण=रूप । वाद=जल्प, वितंडा, अध्यात्म । निज=कूटस्थ ।

२०९—जन=सन्तजन, साधक । अंजन=दृश्य, अनित्य, मायिक । छाया=आभास । माया=

बिनहीं ठाहर आसण पूरै, बिन कर बैन बजावै ।
बिनहीं पाऊँ नाचै निसदिन, बिन जिभ्या गुण गावै ॥ ३ ॥
सब गुण रहिता सकल बियापी, बिन इंद्री रस भोगी ।
दादू अैसा गुरू हमारा, आप निरंजन जोगी ॥ ४ ॥

२११

इहै परम गुरु जोगं, अमी महारस भोगं ॥ टेक ॥
मन पौना थिर साधं, अविगत नाथ अराधं, तहँ सबद अनाहद नादं ।
पंच सखी परमोधं, अगम ज्ञान गुरु बोधं, तहँ नाथ निरंजन सोधं ।२।
सतगुरु मांहिं बतावा, निराधार घर छावा, तहँ जोति सरूपी पावा ।
सहजैं सदा प्रकासं, पूरण ब्रह्म विलासँ, तहँ सेवग दादू दासं ॥४॥

२१२—अनभई

मूनै येह अचंभौ थाये, कीड़ीये हस्ती विडार्‌यो, तेन्हैं बैठी खाये ।टेक
जाण हुतौ ते बैठौ हारे, अजाण तेन्हैं ता वाहे ।
पांगुलौ उजावा लाग्यौ, तेन्हैं कर को साहै ॥ १ ॥
नान्हौ हुतौ ते मोटौ थायो, गगन मँडल नहिं माये ।
मोटेरौ बिस्तार भणींजै, तेतौ केन्हे जाये ॥ २ ॥

---

चिद् सुख । विवर्जित=दूर । गहि=ग्रहण कर । लिपे = बन्धे, आसक्त न हो । वांछै=चाहे ।

२१०—इस पद में साधना की अन्तिम दशा का वर्णन किया है । इस दशा में मन और शरीर की साधनामें कोई सहायता सापेक्ष नहीं रहती=वृत्तितादात्म्य रूप होजाते हैं एकरस=एकरूप वृत्तिका लयरूप । ठाहर=जगह । निरंजन जोगी=साधक स्वयं साध्य दशा में पहुंच गया है, यह अभेद स्थिति है ।

२११—पौना=प्राण, श्वासोच्छ्वास । थिर=निश्चल । पंच सखी=पांचों इन्द्रियें । परमोध=सम-

**ते जाणैं जे निरखी जोवै, खोजी नैं वली माँहैं ।**
**दादू तेन्हीं मर्म न जाणैं, जे जिभ्या विहूँणौं गाये ॥ ३ ॥**

**इति राग रामकली समाप्त ॥ ८ ॥**

झाना । गुरुबोधं=गुरु उपदेश जन्य ज्ञान ।

२१२—मूनैं=मुझे । अचंभो=आश्चर्य । थाये=होता है । किडिये=आत्माकार सूक्ष्म वृत्ति । हस्ती=अहंकार रूपी हाथी को / बिडारयो=चीर दिया, मारा । वैठि खाये=बाध चिन्तन करे । जाणहु तोते बैठो हारे = अज्ञान, बाधयुक्त मन जो भेद वृत्ति से भ्रान्त ज्ञान का अपने को ज्ञाता मानता था भ्रान्ति मिटने से वह अब अपने को हार बैठा, भेद ज्ञान का ज्ञाता नहीं मानता । अजाण तैन्है तो वाहे=आत्म परिचय रहित पुरुष को यह मन भ्रमाता रहता है ।

पांगुलो उजावा लाग्यो=गुणविकार के पैरों से रहित शुद्धमन प्रकाशमय होने लगा । तेन्है कर को सोहे=उस शुद्ध प्रकाश मय मनकी समता कौन कर सकता है । नान्हो हुतो ते मोटो थायो=जो मन विषय सम्बन्ध से भोग पदार्थों तथा कुटुम्बियों की सीमा से बन्धा हुवा लघुता वाला था वही अब गुण विकार के बन्धनों से रहित हो समष्टि चेतन में अपने को समावेश करने को उद्यत हुवा तो वह भी महान् हो गया । मोटे रो विस्तार भणीजे, तेतो केन्हे जाये=उस समष्टि चेतन की महानता का विस्तार कहा जाय तो उसकी व्याप्ति कहां नहीं है, अर्थात् वही सर्वत्र व्यापक है । उसकी इस व्यापकता को 'ते जांण जे निरखी जोवे' वे ही जानते हैं जिनने आत्मचिन्तन द्वारा उसका साक्षात् कार किया है । 'खोजीने वलि मांहि' जो तर्क बुद्धि से उसकी तलाश करते हैं वे उस तर्क मे हीं उलझे रह जाते हैं । तेन्हो मर्म न जाणे=उसका भेद उन युक्तिवादी खोजियों को नहीं मिलता । जे जिभ्या विहूँणा गाये=जो वाणी की शक्ति से आगे है उसको युक्तिवादी कैसे पाये । शब्दमय तर्कयुक्ति जाति, गुण, क्रिया तथा सम्बन्ध इन्हीं का विवेचन कर सकती है । चेतन सत्ता में जाति गुण क्रिया सम्बन्ध है नहीं अतः वह शब्द द्वारा सिद्ध करने का विषय नहीं है ।

*इति राग रामकली सम्पूर्ण*

# राग आसावरी ॥ ६ ॥

२१३ – उत्तम सुमिरण

तूहीं मेरे रसना तूहीं मेरे बैना, तूहीं मेरे श्रवना तूहीं मेरे नैना। टेक
तूहीं मेरे आतम कवंल मंझारी, तूहीं मेरी मनसा तुम्ह परिवारी।
तूहीं मेरे मनही तूही मेरे सासा, तूहीं मेरे सुरतें प्राण निवासा ॥२॥
तूहीं मेरे नखसिख सकल सरीरा, तूहीं मेरे जियरे ज्यौं जलनीरा॥३
तुम्ह बिन मेरे अब कोइ नाहीं, तूहीं मेरी जीवन दादू मांहीं ॥ ४॥

२१४—अनन्य सरणि

तुम्हारे नांइ लागि हरि जीवन मेरा,
मेरे साधन सकल नांव निज तेरा ॥ टेक ॥
दान पुन्य तप तीरथ मेरे, केवल नांउं तुम्हारा।
ये सब मेरे सेवा पूजा, ऐसा वरत हमारा ॥ १ ॥
ये सब मेरे वेद पुराना, सुचि संजम है सोई।
ग्यान ध्यान येई सब मेरे, और न दूजा कोई ॥ २ ॥
काम क्रोध काया बसि करणा, ये सब मेरे नामा।
मुकता गुपता परगट कहिये, मेरे केवल रामा ॥ ३ ॥
तारण तिरण नांउं निज तेरा, तुम्ह हीं एक अधारा।
दादू अंग येक रस लागा, नांउं गहै भौ पारा ॥ ४ ॥

---

२१३—इस पदमें सर्वात्मना चिन्तन का कथन करते हैं। मंझारी=बीचमें। अवर=अन्य

२१४—साधन=उपाय। सकल=तमाम। वरत=व्रत, उपवास। नांउं गहै=निरंजन ना[म]
कोधारण करनेसे। भौपारा=संसार से पार हो सकता है।

२१५

हरि केवल एक अधारा, सोइ तारण तिरण हमारा ॥ टेक ॥
ना मैं पंडित पढि गुणि जानौं, ना कुछ ग्यान विचारा ।
ना मैं अगमी जोतिग जाणौं, ना मुझ रूप सिंगारा ॥ १ ॥
ना तप मेरे इन्द्रिय निग्रह, ना कुछ तीरथ फिरणा ।
देवल पूजा मेरे नाहीं, ध्यान कछू नहिं धरणा ॥ २ ॥
जोग जुगति कछू नहिं मेरे, ना मैं साधन जानौं ।
औषधि मूली मेरे नाहीं, ना मैं देस बखानौं ॥ ३ ॥
मैं तौ और कछू नहिं जानूं, कहौ और क्या कीजै ।
दादू एक गलित गोविंद सौं, इहि विधि प्राण पतीजै ॥ ४ ॥

२१६—परचै

पीव घरि आवनौ ए, अहो मोहि भावनौ ते ॥ टेक ॥
मोहन नीकौ री हरी, देखौंगी अंखियां भरी ।
राखौं हौं उर धरी प्रीति खरी, मोहन मेरौ री माई ।
रहौं हौं चरणौं धाई, आनंद बधाई, हरि के गुण गाई ॥ १ ॥
दादू रे चरण गहिये, जाई ने तिहां तौ रहिये ।
तन मन सुख लहिये, बीनती गहिये ॥ २ ॥

२१७

हां माई ! मेरौ राम बैरागी, तजि जनि जाइ ॥ टेक ॥
राम विनोद करत उर अंतरि, मिलिहौं बैरागनि धाई ॥ १ ॥
जोगनि ह्वै कर फिरौंगी विदेसा, राम नाम ल्यौ लाइ ॥ २ ॥

---

२१५—अगमी=अगम भविष्य का कहने वाला । जोतिग=ज्योतिष ।

२१६—भावनौ=अच्छा लगे, प्रिय लगे ।

२१७—विनोद=मजाक, हंसी । उदासी=उदासीन, माया, अविद्या से रहित ।

प्राण पुरिस पछितावण लागा, दादू औसरि काहे न जागा ॥ ४ ॥

२२१—उपदेस

हरि बिन हां हो कहुँ सचु नांहीं, देखत जाइ विषै फल खाहीं ॥टेक॥
रस रसना के मीन मन भीरा, जलथैं जाइ यौं दहै सरीरा ॥ १ ॥
गजके ग्यान मगन मदि माता, अंकुस डोरि गहै फंद गाता ॥ २ ॥
मरकट मूठी मांहिं मन लागा, दुखकी रासि भ्रमैं भूम भागा ॥ ३ ॥
दादू देषु हरि सुख दाता, ताकूं छाड़ि कहां मन राता ॥ ४ ॥

२२२

सांई बिना संतोष न पावै, भावै घर तजि बन बन धावै ॥ टेक ॥
भावै पढि गुनि वेद उचारै, आगम निगम सबै विचारै ॥ १॥
भावै नव खंड सब फिरि आवै, अजहूं आगैं काहे न जावै ॥ २॥
भावै सब तजि रहै अकेला, भाई बंध न काहू मेला ॥ ३ ॥
दादू देखै सांई सोई, साच बिना संतोष न होई ॥ ४ ॥

२२३—मन उपदेस चितावणी

मन माया रातौ भूले,
मेरी मेरी करि करि बौरे, कहा मुगध नर फूले ॥ टेक ॥
माया कारणि मूल गंवावै, समझि देखि मन मेरा ।
अंति काल जब आइ पहूंता, कोई नहीं तब तेरा ॥ १ ॥
मेरी मेरी करि नर जाणैं, मन मेरी करि रहिया ।
तब यहु मेरी कामि न आवै, प्राण पुरिस जब गहिया ॥ २ ॥

---

२२१—कहुँ=कहीं, संसारी पदार्थोंमें । जलथैं=विषयभोग के जलसे । मदिमाता=काम वासना में मस्त ।

२२३—रातौ=रत, संलग्न । बौरे=बेसमझ । मुगध=मोहित, भ्रमित ।

राव रंक सब राजा राणा, सबहिन कौ बौरावै।
छत्रपति भूपति तिनहूं के संगि, चलती बेर न आवै ॥ ३ ॥
चेति विचारि जानि जिय अपनैं, माया संगि न जाई।
दादू हरि भज, समझि सयाना, रहौ राम ल्यौ लाई ॥ ४ ॥

२२४—काल चितावणी

रहसी येक उपावनहारा, और चलसी सब संसारा ॥ टेक ॥
चलसी गगन धरणि सब चलसी, चलसी पवन अरु पाणी।
चलसी चंद सूर पुनि चलसी, चलसी सबै उपानी ॥ १ ॥
चलसी दिवस रैंणि भी चलसी, चलसी जुग जमवारा।
चलसी काल व्याल पुनि चलसी, चलसी सबै पसारा ॥ २ ॥
चलसी सरग नरक भी चलसी, चलसी भूचणहारा।
चलसी सुख दुख भी चलसी, चलसी कर्म विचारा ॥ ३ ॥
चलसी चंचल निहचल रहसी, चलसी जे कुछ कीन्हा।
दादू देखि रहै अविनासी, और सबै घट खीना ॥ ४ ॥

२२५

इहि कलि हम मरणें को आये, मरण मीत उन संगि पठाये ॥ टेक ॥
जबथैं यहु हम मरण विचारा, तबथैं आगम पंथ संवारा ॥ १ ॥
मरण देखि हम गर्व न कीन्हा, मरण पठाये सो हम लीन्हा ॥ २ ॥
मरणा मीठा लागै मोहि, इहि मरणें मीठा सुख होइ ॥ ३ ॥
मरणे पहिले मरै जे कोई, दादू सो अजरावर होई ॥ ४ ॥

---

२२४—उपावनहारा=रचने वाला। उपांनी=पैदाहुये सो। पसारा=दिखाई पड़ने वाली स
वस्तुएँ। भूचणहारा=भोगनेवाला। चंचल=असत्य, अस्थिर।
२२५—आगमपंथ=आगे का रास्ता। मरै जे कोई=गुण विकार से रहित हो जाय।

रे मन मरण कहा डराई, आगै पीछै मरणा रे भाई ॥ टेक ॥
जे कुछ आवै थिर न रहाई, देखत सबै चल्या जग जाई ॥ १ ॥
पीर पैगंबर किया पयाना, सेख मसाइक सबै समाना ॥ २ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेस महाबलि, मोटे मुनि जन गये सबै चलि ॥ ३ ॥
निहचल सदा सोई मन लाइ, दादू हरखि राम गुण गाइ ॥ ४ ॥

२२७—वस्तु निर्देश निर्णय

ऐसा तत्त अनूपम भाई, मरै न जीवै काल न खाई ॥ टेक ॥
पावकि जरै न मार्‌यो मरई, काट्यो कटै न टार्‌यो टरई ॥ १ ॥
अखिर खिरै न लागै काई, सीत घाम जल डूबि न जाई ॥ २ ॥
माटी मिलै न गगन विलाई, अघट येक रस रह्या समाई ॥ ३ ॥
ऐसा तत्त अनूपम कहिये, सो गहि दादू काहे न रहिये ॥ ४ ॥

२२८—मन उपदेस

मन रे सेवि निरंजन राई, ताकौ सेवौ रे चित लाई ॥ टेक ॥
आदि अंतैं सोई उपावै, परलै ले छिपाई ।
बिन थंभा जिन गगन रहाया, सो रह्या सबनि मैं समाई ॥ १ ॥
पाताल माँहैं जे आराधै, बासिग रे गुण गाई ।
सहस मुख जिभ्भा ह्वै ताकै, सो भी पार न पाई ॥ २ ॥
सुर नर जाकौ पार न पावैं, कोटि मुनि जन ध्याई ।
दादू रे तन ताकौ है रे, जाकौ सकल लोक आराही ॥ ३ ॥

---

२२६—थिर=सर्वदा कायम । पयाना=गमन । मोटे=महान् ।
२२७—तत्त=तत्व । काई=मैल, काठ । विलाई=विलीन हो । अघट= देह रहित ।
२२८—परलै=नाशकाल में । वासिग=शेष । आराही = आराधना करता है ।

२२९—जीव उपदेस

निरंजन जोगी जानि लै चेला, सकल बियापी रहै अकेला ॥टेक॥
खपर न झोली डंड अधारी, मढी न माया लेहु विचारी ॥ १ ॥
सींगी मुद्रा विभूति न कंथा, जटा जाप आसण नहिं पंथा ॥ २ ॥
तीरथ व्रत न बन खंडि बासा, मांगि न खाइ नहीं जगि आसा ॥३॥
अमर गुरू अविनासी जोगी, दादू चेला महारस भोगी ॥ ४ ॥

२३०—उपदेश

जोगिया बैरागी बाबा, रहै अकेला उनमनि लागा ॥ टेक ॥
आत्म जोगी धीरज कंथा, निहजल आसण आगम पंथा ॥ १ ॥
सहजैं मुद्रा अलख अधारी, अनहद सींगी रहणि हमारी ॥ २ ॥
काया बनखंड पांचौं चेला, ज्ञान गुफा में रहै अकेला ॥ ३ ॥
दादू दरसन कारनि जागै, निरंजन नगरी भिख्या मांगै ॥ ४ ॥

२३१—समता ज्ञान

बाबा कहु दूजा क्यौं कहिये, तातैं इहि संसै दुख सहिये ॥ टेक ॥
यहु मत अैसी पसुवां जैसी, काहे चेतत नाहीं ।
अपना अंग आप नहिं जानै, देखै दर्पण माहीं ॥ १ ॥
इहि मति मींच मरण के तांई, कूप सिंह तहं आया ।
डूबि मुवा मनि मरम न जान्या, देखि आपनी छाया ॥ २ ॥

---

२२९— चेला = हे चित्त, मन ।

२३०—उनमनि लागा=निराश्रय ध्यान में । अधारी=आसा । नगरी=मनुष्य शरीर
भिख्या मांगे=साक्षात्कार चाहे ।

२३१—संसै=संशय, भ्रम । मघ=मद, अहंकार । मेंगल=हाथी की । झाई=छाया ।

मध के माते समझत नाहीं, मैंगल की मति आई।
आपैं आप आप दुख दीया, देखि आपणी झाई ॥ ३ ॥
मन समझै तौ दूजा नाहीं, बिन समझें दुख पावै।
दादू ज्ञान गुरू का नाहीं, समझि कहां थैं आवै ॥ ४ ॥

२३२

बाबा नांहीं दूजा कोई,
येक अनेक नांउ तुम्हारे, मोपैं और न होई ॥ टेक ॥
अलख इलाही एक तूं, तूंही राम रहीम।
तूंही मालिक मोहनां, केसौ नांउं करीम ॥ १ ॥
सांई सिरजनहार तूं, तूं पावन तूं पाक।
तूं काइम करतार तूं, तूं हरी हाजरी आप ॥ २ ॥
रमता राजिक येक तूं, तूं सारंग सुबहान।
कादिर करता येक तूं, तूं साहिब सुलतान ॥ ३ ॥
अविगत अल्लः येक तूं, गनी गुसांई येक।
अजब अनूपम आप है, दादू नांउ अनेक ॥ ४ ॥

२३३—समर्थाई

जीवत मारे मुये जिलाये, बोलत गूंगे गुंग बुलाये ॥ टेक ॥
जागत निस भरि सेई सुलाये, सोवत रैनि सोई जगाये ॥ १ ॥

---

दृष्टान्त—जार खेत में हल खड़े, छोरो रोटी खाइ ॥
ग्रास कुंभ बालक लख्यो, फटे मुंह कहि आइ ॥ १ ॥
बूड़ा भया तो क्या भया, जो बुधि उपजी नाँहि ॥
सुसै सिंह कालू कहै, नाख्यो कूवे माँहि ॥ १ ॥

२३२—मोपैं=मेरे से। पावन=पवित्र। पाक=शुद्ध।

२३३—लोइन लिये = देख न सके। अपंग=पांगले।

सूझत नैनहुँ लोइन लीये, अंध बिचारे ता मुखि दीये ॥ २ ॥
चलते भारी ते बिठलाये, अपंग बिचारे सोई चलाये ॥ ३ ॥
असा अद्भुत हम कुछ पाया, दादू सतगुरु कहि समझाया ॥ ४ ॥

२३४—प्रश्न

क्यौं करि यहु जग रच्यौ गुसांई,
तेरे कौन विनोद बन्यौ मन मांहीं ॥ टेक ॥
कै तुम्ह आपा परगट करणा, कै यहु रचिले जीव उधरना ॥ १
कै यहु तुम्हकौं सेवग जानै, कै यहु रचिले मन के मानै ॥ २
कै यहु तुम्हकौं सेवग भावै, कै यहु रचिले खेल दिखावै ॥ ३
कै यहु तुम्हकौं खेल पियारा, कै यहु भावै कीन्ह पसारा ॥ ४
यहु सब दादू अकथ कहानी, कहि समझावौ सारंगपानी ॥ ५

२३५—साखी जवाब की

दादू परमारथ कौ सब किया, आप सवारथ नाहिं ।
परमेसुर परमारथी, कै साधू कलि माहिं ।
खालिक खेलै खेल करि, बूझै बिरला कोइ ।
ले करि सुखिया ना भया, देकरि सुखिया होइ ।

२३६—समर्थाई

हरे हरे सकल भुवन भरे, जुगि जुगि सब करै ।
जुगि जुगि सब धरै, अकल सकल जरै, हरे हरे ॥ टेक ॥
सकल भुवन छाजै, सकल भुवन राजै, सकल कहै ।
धरती अंबर गहै, चंद सूर सुधि लहै, पवन प्रगट बहै ॥ १ ॥

२३४—विनोद=खेल, मजाक । रचिले = रचनाकर । भावै=वैसे ही ।
२३६—सकल जरै = सबमें प्रकाश कर रहा है । मंडतिभाया । माया का फैलाव ।

घट घट आप देवै, घट घट आप लेवै, मंडित माया ।
जहां तहां आप राया, जहां तहां आप छाया, अगम अगम पाया ।२।
रस माहैं रस राता, रस माहैं रस माता, अमृत पीया ।
नूर मांहैं नूर लीया, तेज मांहैं तेज कीया, दादू दरस दीया ॥ ३ ॥

२३७ – परचै उपदेस

पीव पीव आदि अंति पीव,
परसि परसि अंग संग, पीव तहां जीव ॥ टेक ॥
मन पवन भवन गवन, प्राणकवल मांहिं ।
निधि निवास विधि विलास, राति दिवस नांहिं ॥ १ ॥
सास बास आस पास, आत्म अंगि लगाइ ।
अैंन बैन निरखि नैंन, गाइ गाइ रिझाइ ॥ २ ॥
आदि तेज अंति तेज, सहजैं सहजि आइ ।
आदि नूर अंति नूर, दादू बलि बलि जाइ ॥ ३ ॥

२३८

नूर नूर अव्वल आखिर नूर,
दाइम काइम, काइम दाइम, हाजिर है भरपूर ॥ टेक ॥
आसमान नूर जिमी नूर, पाक परवर दिगार ।
आब नूर, बाद नूर, खूब खूबां यार ॥ १ ॥
जाहिर बातिन, हाजिर नाजिर, दाना तूं दीवान ।
अजब अजाइब नूर दीदम, दादू है हैरान ॥ २ ॥

---

२३७—भवन गवन=अपनी ठीक जगह जाना । सास वास=प्राणों के निवास के । आस पास=अति समीप । आत्म अंग लगाइ=अपने स्वरूप में ही प्राण और वृत्ति को लगावो ।

२३८—दाइम=दम दम में । आब=पानी । बाद=वायु । जाहिर=प्रगट में । बातिन=गुप्त ।

२३९—रस

मैं अमली मतवाला माता, प्रेम मगन मेरा मन राता ॥ टेक ॥
अमी महारस भरि भरि पीवै, मन मतवाला जोगी जीवै ॥ १ ॥
रहै निरंतर गगन मंझारी, प्रेम पियाला सहजि खुमारी ॥ २ ॥
आसणि अवधू अमृतधारा, जुगि जुगि जीवै पीवनहारा ॥ ३ ॥
दादू अमली इहि रस माते, राम रसाइन पीवत छाके ॥ ४ ॥

२४०

सुख दुख संसा दूरि किया, तब हम केवल राम लिया ॥ टेक ॥
सुख दुख दोऊ भरम विचारा, इनसूं बंध्या है जग सारा ॥ १ ॥
मेरी मेरा सुखके तांई, जाइ जनम नर चेतै नांहीं ॥ २ ॥
सुखके तांई झूठा बोलै, बांधे बंधन कबहूं न खोलै ॥ ३ ॥
दादू सुख दुख संगि न जाई, प्रेम प्रीति पिय सौं ल्यौ लाई ॥ ४ ॥

२४१—हैरान

कासौं कहूं हो अगम हरि बाता,
गगन धरणी दिवस नहिं राता ॥ टेक ॥
संग न साथी गुरू न चेला, आसन पास यूं रहै अकेला ॥ १ ॥
बेद न भेद न करत विचारा, अवरण बरण सबनि थैं न्यारा ॥ २ ॥
प्राण न पिंड रूप नहिं रेखा, सोइ ततसार नैंन बिन देखा ॥ ३ ॥

---

हाजिर=समीप । नाजिर = दूर ।

२३९—अमली = व्यसनी । गगनमंझारी=हृदयाकाश में । खुमारी=नशा । छाके=तृ[प्त]
होगये ।

२४०—संसा=भ्रम संशय । मेरी मेरा=अहंकार । बांधे बन्धन= बासनामय कर्म के बन्ध[न]
बांधता है ।

२४१—अगम = नहिं जानी जाने वाली । आस न पास=चिदाभास के संमुख । नैनबिन=

जोग न भोग मोह नहिं माया, दादू देखु काल नहिं काया ॥ ४ ॥

२४२—गुरुज्ञान

मेरा गुरु अैसा ग्यान बतावै ।

काल न लागै संसा भागै, ज्यूं है त्यूं समझावै ॥ टेक ॥

अमर गुरू के आसणि रहिये, परम जोति तहं लहिये ।

परम तेज सो डिढ करि गहिये, गहिये लहिये रहिये ॥ १ ॥

मन पवना गहि आतम खेला, सहज सुंनि घर मेला ।

अगम अगोचर आप अकेला, अकेला मेला खेला ॥ २ ॥

धरती अंबर चंद न सूरा, सकल निरंतर पूरा ।

सबद अनाहद बाजहि तूरा, तूरा पूरा सूरा ॥ ३ ॥

अविचल अमर अभै पद दाता, तहां निरंजन राता ।

ग्यान गुरू ले दादू माता, माता राता दाता ॥ ४ ॥

२४३

मेरा गुरु आप अकेला खेलै,

आपै देवै आपै लेवै, आपै द्वै कर मेलै ॥ टेक ॥

आपै आप उपावै माया, पंच तत्त करि काया ।

जीव जनम ले जग मैं आया, आया काया माया ॥ १ ॥

धरती अंबर महल उपाया, सब जग धंधै लाया ।

आपै अलख निरंजन राया, राया लाया उपाया ॥ २ ॥

---

प्रज्ञा नेत्र बिना ।

२४२—आसण=लक्ष्य स्थान । डिढ=स्थिर वृति से । अकेला मेला खेला=एकत्व से समष्टि चेतन में मिल खेल रहा है । तूरा पूरा सूरा=उस शुद्ध स्वरूप में स्थिर रहे वह शूरवीर है ।

२४३—द्वै कर=द्वैतकर, माया अविद्या के आवरण से । उपाया=पैदा किया । लाया=माया

चंद सूर दोइ दीपक कीन्हा, राति दिवस करि लीन्हा।
राजिक रिजक सबनि कूं दीन्हा, दीन्हा लीन्हा कीन्हा ॥ ३ ॥
परम गुरु सो प्राण हमारा, सब सुख देवै सारा।
दादू खेलै अनत अपारा, अपारा सारा हमारा ॥ ४ ॥

२४४—हैरान

थकित भयौ मन कह्यो न जाई, सहजि समाधि रह्यो ल्यौ लाई रे,
जे कुछ कहिये सोचि विचारा, ज्ञान अगोच्चर अगम अपारा ॥१॥
साइर बूंद कैसे करि तोलैं, आप अबोल कहा कहि बोलैं ॥ २ ॥
अनल पंख परै पर दूरि, ऐसी राम रह्या भरपूरि ॥ ३ ॥
इब मन मेरा ऐसे रे भाई, दादू कहिबा कहण न जाई ॥ ४ ॥

२४५

अविगत की गति कोइ न लहै, सब अपना उनमान कहै ॥ टेक ॥
केते ब्रह्मा वेद विचारैं, केते पंडित पाठ पढ़ैं।
केते अनभैं आत्म खोजैं, केते सुर नर नाउं रटैं ॥ १ ॥
केते ईसुर आसणि बैठे, केते जोगी ध्यान धरैं।
केते मुनियर मन कूं मारैं, केते ग्यांनी ग्यांन करैं ॥ २ ॥
केते पीर केते पैकंबर, केते पढैं कुराना।
केते काजी केते मुल्लां, केते सेख सयाना ॥ ३ ॥
केते पारिख अन्त न पावैं, वार पार कछु नांहीं।
दादू कीमति कोई न जानैं, केते आवैं जांहीं ॥ ४ ॥

---

मोह में लगाया।

२४४—थकित=हैरान। साइर बून्द=समुद्र और जलबिन्दु। कहिबा=कहने वाली जी से। कहण न जाई=कहा नहीं जा सकता।

२४५—उनमान=अनुमान, अन्दाज। अनभैं=अनुभवी। रटैं=जपें।

२४६

ये हौं बूझि रही पिव जैसा, है तैसा कोइ न कहै रे ।
अगम अगाध अपार अगोचर, सुधि बुधि कोइ न लहै रे ॥ टेक ॥
वार पार कोइ अन्त न पावै, आदि अन्ति मधि नांहीं रे ।
खरे सयाने भये दिवाने, कैसा कहां रहै रे ॥ १ ॥
ब्रह्मा विश्न महेसुर बूझै, केता कोई बतावै रे ।
सेख मसाइक पीर पैगंबर, है कोइ अगह गहै रे ॥ २ ॥
अंबर धरती सूर ससि बूझै, बाव वरण सब सोधै रे ।
दादू चक्रित है हैराना, को है करम दहै रे ॥ ३ ॥

इति राग आसावरी समाप्त ॥ ६ ॥

# राग सिंधूड़ो ॥ १० ॥

२४७—परचै उपदेस

हंस सरोवर तहां रमैं, सूभर हरि जल नीर ।
प्राणी आप पखालिये, निरमल सदा होइ सरीर ॥ टेक ॥
मुकताहल मन मानिया, चुगैं हंस सुजान ।
मधि निरंतर झूलिये, मधुर विमल रसपान ॥ १ ॥

२४६—बूझि रही=पूछ हारी । सुधबुधि=संभाल । खरे सयाने=सच्चे हुशियार । बाव वरण=हवा पानी ।

❀ इति राग आसावरी समाप्त ❀

२४७—हंस=निर्मल सन्त जन । सरोवर=हृदय सरोवर । आप पखालिये=आपा अहंकारादि

भंवर कवल रस वासना, रातौ राम पीवंत ।
अरस परस आनंद करै, तहां मन सदा होइ जीवंत ॥ २ ॥
मीन मगन मांहैं रहै, मुदित सरोवर मांहिं ।
सुख सागर क्रीला करैं, पूरण परमिति नांहिं ॥ ३ ॥
निरभै तहां भै को नहीं, विलसै बारंबार ।
दादू दरसन कीजिये, सनमुख सिरजनहार ॥ ४ ॥

२४८

सुख सागर मैं झूलिबौ, कुसमल झड़ै हो अपार ।
निर्मल प्राणी होइबौ, मिलिबौ सिरजनहार ॥ टेक ॥
तिहिं संजमि पावन सदा, पंक न लागै प्राण ।
कवल विगासै तिहिं तणौं, उपजै ब्रह्म गियान ॥ १ ॥
अगम निगम तहं गमि करै, तत्तैं तत्त मिलान ।
आसणि गुरु के आइबौ, मुकतै महलि समान ॥ २ ॥
प्राणी परि पूजा करै, पूरै प्रेम विलास ।
सहजैं सुंदर सेविये, लागी लै कविलास ॥ ३ ॥

दोषों को धोवे । मुकताहल=स्वरूप दर्शन । चुगै=पुनः पुनः स्मरण करे । मधि=ब्रह्म, सागर, समष्टि चेतन । निरंतर=विक्षेप रहित वृत्ति से । झूलिये = स्नान करिये । भँवर = सन्त जनों का शुद्ध मन । कँवल = हृदय कमल । रसवासना = आत्मानन्द रस का उपभोग करता है । तहाँ=आत्मानन्द रसपान दशा में । मीन=साधक का मन । सरोवर=आत्मसरोवर । सुखसागर=व्यापक ब्रह्म । क्रीला = केलि, आनंद । सनमुख = सामने ।

२४८—झूलिवो = स्नान करना । कुसमल=कामादि मैल । संजमि = निरोध । विगासे = विकसित हो । आगम निगम=वेदशास्त्र जिसका कथन करते हैं । तंह गम करे = उस आत्म स्थान को जाने । आसणि = जगह । गुरुके = गुरुने बताई वहाँ । समान=

रैणि दिवस दीसै नहीं, सहजैं पुंज प्रकास।
दादू दरसन देखिये, इहि रसि रातौ हौ दास ॥ ४ ॥

२४६

अविनासी संगि आत्मा, रमै हौ रैणि दिवस राम।
एक निरंतर ते भजै, हरि हरि प्राणी नाम ॥ टेक ॥
सदा अखंडित उरि बसै, सो मन जाणी ले।
सकल निरंतर पूरि सब, आतम रातौ ते ॥ १ ॥
निराधार निज बैसणौ, जिहि तति आसण पूरि।
गुरु सिख आनंद ऊपजै, सनमुख सदा हजूरि ॥ २ ॥
निहचल ते चालै नहीं, प्राणी ते परिमाण।
साथी साथैं ते रहैं, जाणैं जाण सुजाण ॥ ३ ॥
ते निरगुण आगुण धरी, मांहैं कौतिगहार।
देह अछत अलगौ रहै, दादू सेवि अपार ॥ ४ ॥

---

समाना, मिलना। परि=परिपूर्ण। लै=लय वृत्ति। कविलास=ब्रह्मरूपमें। रैणि दिवस दीसै नहीं=समाधिस्थ लयवृत्ति वहाँ काल भेद नहीं रहता। सहजैं पुंज प्रकास=पुंज-तेजोमय ब्रह्म उसके सहजस्वरूप की प्रतीति हो।

२४६—आत्मा=अन्तःकरण। एक=अद्वितीय। ते=उसमें। निराधार=आश्रय हीन। निज=कूटस्थ। बैसणौं=वृत्ति को वहाँ स्थिर करना। जिहिं तति=उस समष्टिचेतन में। आसणपूरि=वासना का लय कर। गुर=अति, भारी। निहचल=स्थितप्रज्ञ। ते=वे। चाले नहीं=वृत्तिको चंचल नहीं होने देते। प्राणी=साधक। ते=वे। परिमाण=प्रामाणिक हैं। साथी=निरुपाधिक आत्मा। साथैं=साथ, संग। जांणे=जानते हैं। जाँणसुजाण=जानकार साधक। निरगुण=वह गुणातीत है। आगुणधरी=माया तथा प्रकृति तदाश्रित चेतन आश्रित ही व्यक्त होता है। अतः वह गुणधारी भी कहाजा सकता है। दादू सेवि अपार=ऐसे अपार व्यापक चेतन की आराधना करने वाला साधक देहधारी होते हुये भी देह के अध्यास से अलग रहता है।

२५०

पारब्रह्म भजि प्राणिया, अविगत एक अपार।
अविनासी गुरु सेवियै, सहजैं प्राण अधार॥ टेक॥
ते पुर प्राणी तेहनौ, अविचल सदा रहंत।
आदि पुरिस ते आपणौं, पूरण परम अनंत॥ १॥
अविगत आसण कीजियै, आपै आप निधान।
निरालंब भजि तेहनौं, आनंद आतमराम॥ २॥
निरगुण निहचल थिर रहै, निराकार निज सोइ।
ते सति प्राणी सेवियै, लै समाधि रत होइ॥ ३॥
अमर आप रमिता रमैं, घटि घटि सिरजनहार।
गुण अतीत भजि प्राणीया, दादू येह विचार॥ ४॥

२५१—सूरातन

क्यूं भाजै सेवग तेरा, औसा सिरि साहिब मेरा॥ टेक॥
जाके धरती गगन आकासा, जाके चंद सूर कविलासा।
जाके तेज पवन जल साजा, जाके पंचतत्त के बाजा॥ १॥
जाके अठार भार बन माला, गिरि पर्वत दीनदयाला।
जाके सायर अनंत तरंगा, जाके चौरासी लख संगा॥ २॥
जाके ऐसे लोक अनंता, रचि राखे विधि बहु भंता।

---

२५०—ते=वह। पुर=स्थान। तेहनौ=तेरा। अविचल=असंग, अक्रिय। आसण कीजि वृत्ति स्थिर करिये। निधान=लय की अवधिभूत। निरालंब=प्रतीक रहित से। निज=साचो। गुण अतीत=गुण विकार से रहित होकर। ये चारों पद बारीदासजी को उपदेश में कहे गये हैं, ऐसी परम्परा है।

२५१—भाजै=विषय वासना की ओर दौड़े। साजा=सजाया, रचा। अठारह भार= वनस्पति, रोमावली है। भंता=भाँति। सुधि=खबर। वांने=वणावे। वाण=

जाके ऐसा खेल पसारा, सब देखै कोतिगहारा ॥ ३ ॥
जाके काल मीच डर नांहीं, सो बरति रह्या सब मांहीं ।
मनि भावै खेलै खेला, असा है आप अकेला ॥ ४ ॥
जाके ब्रह्मा ईसुर वंदा, सब मुनिजन लागे अंगा ।
जाके साध सिद्ध सब मांहीं, परिपूरण परिमित नांहीं ॥ ५ ॥
सोइ भानै घड़ै संवारै, जुग केते कबहूँ न हारै ।
ऐसा हरि साहिब पूरा, सब जीवनि आतमसूरा ॥ ६ ॥
सो सबहिन की सुधि जानै, जो जैसा तैसी बानै ।
सर्वंगी राम सयाना, हरि करै सो होइ निदाना ॥ ७ ॥
जे हरिजन सेवग भागैं, तौ असा साहिब लाजै ।
अब मरण मांडि हरि आगैं, तौ दादू बाण न लागैं ॥ ८ ॥

२५२

हरि भजतां किम भजिये, भाजैं भल नांहीं ।
भागे भल क्यूं पाइये, पछितावै मांहीं ॥ टेक ॥
सूरौ सो सहजैं भिड़ै, साइर उर झेलै ।
रण रोकै भाजै नहीं, ते बाण न मेलै ॥ १ ॥
सती सन साचा गहै, मरणैं न डराई ।
प्राण तजै जग देखतां, पियड़ौ उरलाई ॥ २ ॥

---

कर्म का तीर ।

२५३—किमि = क्यों। भाजिये = अनित्य पदार्थों की ओर दौड़िये । भिड़ै = सामना करे । साइर=गुरुवायक । रण रोके=कामादि के प्रहार को रोके, मनोनिग्रह से । पियड़े= पति, स्वामी । सुख संगम=सुख का स्थान । विहावणी=डरावणी, डुबोनेवाली ।

प्राण पतंगा यौं तजै, वो अंग न मोड़ै ।
जोवन जारै जोति सूं, नैंना भल जोड़ै ॥ ३ ॥
सेवग सो स्वामी भजै, तन मन तजि आसा ।
दादू दरसन ते लहैं, सुख संगम पासा ॥ ४ ॥

२५३—चितावनी

सुणि तूं मना रे मूरखि मूढ विचार,
आवै लहरि विहावणी, दमैं देह अपार ॥ टेक ॥
करिबौ है तिम कीजिये रे, सुमिरि सो आधार ॥ १ ॥
चरण विहूँणौं चालिबौ रे, संभारी ले सार ॥ २ ॥
दादू तेहज लीजिये रे, साचौ सिरजनहार ॥ ३ ॥

२५४

रे मन साथी माहरा, तूनैं समझायौ [illegible] रे ।
रातौ रंग कसूंभ कै, तैं विसार्‌यौ आ[illegible] रे ॥ टेक ॥
सुपिनां सुखके कारणै, फिरि पीछै दुख होई रे ।
दीपक दृष्टि पतङ्ग ज्यूं, यूं भ्रमि जलै जनि कोइ रे ॥ १ ॥
जिभ्भा स्वारथि आपणैं, ज्यूं मीन मरै तजि नीरो रे ।
मांहैं जाल न जाणियौ, तार्थैं उपनौं दुख सरीरो रे ॥ २ ॥
स्वादैं ही संकुटि पर्‌यौ, देखत ही नर अंधो रे ।
मूरिख मूठी छाड़ि दे, होइ रह्‌यो निरबंधो रे ॥ ३ ॥
मानि सिखावणि माहरी, तूं हरि भज मूल न हारी रे ।

---

दमैं=दमन करे, रोके । विहूणौं=बिना । [illegible]=नहीं
२५४—रंग कसूंभकै=संसार के नाशवान पदा[illegible] से भूला है। भर्मि=भ्रमित हो।

सुख सागर सोइ सेविये, जन दादू राम संभारी रे ॥ ४ ॥

इति राग सिंधूड़ौ समाप्त ॥ १० ॥

# अथ राग गूजरी (देवगंधार) ॥ ११ ॥

२५५—अनन्य सरण

सरणि तुम्हारी आइ परे,
जहां तहां हम सब फिरि आये, राखि राखि दुखित खरे ॥ टेक ॥
कसि कसि काया तप व्रत करि करि, भ्रमंत भ्रमंत हम भूलि परे।
कहुँ सीतल कहुँ तपति दहे तन, कहुँ हम करवत सीस धरे ॥१॥
कहूं वन तीरथ फिरि फिरि थाके, कहुँ गिरि पर्वत जाइ चढे।
कहुँ सिखिर चढि परे धरणि पर, कहुँ हति आपा जाइ हरे ॥२॥
अंध भये हम निकटि न सूझै, तातैं तुम्ह तजि जाइ जरे।
हाहा हरि अब दीन लीन करि, दादू बहु अपराध भरे ॥३॥

२५६—पतिव्रत उपदेश

बौरी तूं बार बार बौरानी,
सखी सुहाग न पावै ऐसैं, कैसैं भरमि भुलानी ॥ टेक ॥

---

उपनौ=उपजे। निरवंधो=बन्धन रहित। माहरी=मेरी। सिखावण=शिक्षा, सीख।

❀ राग सींधूडो समाप्त ❀

२५५—सीतल=पंचधारा लेना। तपति=पंच धूनी तपना। जाइ जरे=नाना प्रकार की आराधनाओं में लग जीवन समाप्त कर चले।

२५६—बौरानी=पागल हुई, भ्रमी। नाइ=झुकाकर, गर्व तज [illegible]। प्रेम उमंग=विरह

चरनौं चेरी चित नहिं राख्यौ, पतिव्रत नांहिं न जान्यौ।
सुंदरि सेज संगि नहिं जानै, पीव सूं मन नहिं मान्यौ ॥१॥
तन मन सबै सरीर न सौंप्यौ, सीस नाइ नहिं ठाढी।
इकरस प्रीति रही नहिं कबहूँ, प्रेम उमंग नहिं बाढी ॥ २ ॥
प्रीतम अपनौं परम सनेही, नैंन निरखि न अघानी।
निसबासुरि आनि उर अंतरि, परम पूज्य नहिं जानी ॥ ३ ॥
पतिव्रत आगैं जिन जिन पाल्यौ, सुंदरि तिनि सब छाजै।
दादू पिव बिन और न जानै, ताहि सुहाग बिराजै ॥ ४ ॥

२९७—उपदेश चितावणी

मन मूरिखा! तैं यौं ही जन्म गँवायौ, सांई केरी सेवा न कीन्हीं।
इहि कलि काहे कूं आयौ ॥ टेक ॥
जिन बातनि तेरौ छूटिक नांहीं, सोइ मन तेरे भायौ।
कामी ह्वै बिषिया संगि लागौ, रोम रोम लपटायौ ॥ १ ॥
कुछ इक चेति बिचारि देखौ, कहा पाप जिय लायौ।
दादू दास भजन करि लीजै, सुपिनैं जग डहकायौ ॥ २ ॥

**इति राग गूजरी ( देव गंधार ) समाप्त**

---

कातरता। सुहाग बिराजै=उन्हीं साधकों को आत्म पदार्थ की प्राप्ति होती है।
२९७—यह पद बषनाजी को उपदेस में कहा गया था, ऐसी परम्परा है। छूटिक=छुटकारा
रोम रोम=सब इन्द्रियों से। डहकायो=भरमायो।

❀ राग कल्हेरो समाप्त ❀
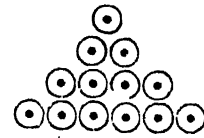
# अथ राग कल्हेरौ ॥ १२ ॥

—:<>[*]<>:—

२५८ · विनती

वाल्हा हूं ताहरी तूं माहरौ नाथ,
तुम सूं पहली प्रीतड़ी, पूरिबलौ साथ ॥ टेक ॥
वाल्हा मैं तूं म्हारो ओलखियौ रे, राखिस नैनं रिदा मंझारि ।
हूं पामूं पीव आपणों रे, त्रिभुवन दाना देव मुरारि ॥ १ ॥
वाल्हा मन माहरौ मन माँहैं राखिस, आत्म येक निरंजन देव ।
चित माँहैं चित सदा निरंतर, येणीं पेरें तुम्हारी सेव ॥ २ ॥
वाल्हा भाव भगति हरि भजन तुम्हारौ, प्रेमैं पूरि कवल विगास ।
अभिअंतरि आनंद अविनासी, दादू नी एवैं पूरवी आस ॥ ३ ॥

२५९

वारीवार कहूं रे गहिला, राम नाम काय बिसारयौ रे ।
जनम अमोलिक पामियौ, एह्वौ रतन काय हारयौ रे ॥ टेक ॥
विषिया वाह्यौ नैं तहं धायौ, कीधूं नहिं मारूं वारयूं रे ।
माया धन जोई नैं भूल्यौ, सर्वथ येणैं हारयूं रे ॥ १ ॥
गर्भवास देह ह्वै तो प्राणी, आश्रम तेह संभारयौ रे ।
दादू रे जन राम भणीजे, नहिं तो जथा विधि हारयौ रे ॥ २ ॥

इति राग कल्हेरौ समाप्त ॥ १२ ॥

---

२५८—ओलखियो=पहचान लिया । रिदा=हृदय में । पामूं=पाऊँ । येणीपरैं=इस प्रकार से । कवल विगास=हृदय विकसित । अभिअंतरि=चित्तवृत्ति में । एवैं=यह । पूरवी=पूर्ण करो ।

२५९—पामियो=पायो । एह्वो=ऐसा । हारयो=खोयो । वाह्यो=प्रेरित कियो । कीधूं=कियो ।

## अथ राग परजियो ॥ १३ ॥

२६०—परिचय

नूर रह्या भरपूर, अमीरस पीजिये,
रस मांहै रस होइ, लाहा लीजिये ॥ टेक ॥
परगट तेज अनंत, पार नहिं पाइये ।
झिलिमिलि झिलिमिलि होइ, तहां मन लाइये ॥ १ ॥
सहजैं सदा प्रकास, जोति जल पूरिया ।
तहां रहै निजदास, सेवग सूरिया ॥ २ ॥
सुख सागर वार न पार, हमारा वास है ।
हंस रहैं तामांहिं, दादू दास है ॥ ३ ॥

इति राग परजियौ समाप्त ॥ १३ ॥

## अथ राग भाणमली ॥१४॥

२६१—विनती

मारा वाल्हा रे ! तारे सरणि रहीश ।
बिनंतड़ी वाल्हाने कहतां, अनंत सुख लहीश ॥ टेक ॥

---

वार-थोर=वर्जना, रोकना । सर्वंथ=सर्वथा, सब । हारयो=खोयो । भणीजे=कहीजे ।
यथाविधि=विषय भोगरत हो ।

❀ इति राग कल्हेरो समाप्त ❀

२६०—नूर=शुद्ध आत्मप्रकाश । लाहा=लाभ । निजदास=निष्काम साधक । सूरिया=शूरवीर दृढ़ साधक ।

❀ इति राग परजियो समाप्त ❀

२६१—रहीश=रहूँगी । विनंतड़ी=प्रार्थना । लहीश=लूंगी । वनावहीश = वचन या आ[illegible]

स्वामी तणौं हूं संग न मेलूं, वीनंतडी कहीश।
हूं अबला तूं बलिवंत राजा, ताहरा वना वहीश ॥ १ ॥
संगि रहूँ ता सब सुख पामूं, अंतरथैं दहीश।
दादू ऊपर दया करीनैं, आवो आंणी वेश ॥ २ ॥

२६२

चरण देखाड़ तो परमाण,
स्वामी माहरे नैणों निरखूं, मांगू येज मान ॥ टेक ॥
जोवूं तुझने आशा मुझने, लागूं येज ध्यान।
वाहला मारा मला रे सहिये, आवै केवल ग्यान ॥ १ ॥
जेणी पेरे हूँ देखूं तुझनें, मुझने आलो जाण।
पीव तणी हूं पर नहिं जाणूं, दादू रे अजाण ॥ २ ॥

२६३

ते हरि मलूं मारो नाथ, जोवाने मारो तन तपै।
केवी पेरे पामूं साथ ॥ टेक ॥
ते कारणि हूँ आकुल व्याकुल, ऊभी करूं विलाप।
स्वामी मारौ नैणैं निरखूं, ते तणो मने ताप ॥ १ ॥
एक बार घर आवै वाहला, नव मेलूं कर हाथ।
ये विनंती सांभल स्वामी, दादू तारो दास ॥ २ ॥

---

में चलूंगी। तौ=वहां, तो। अंतरथैं=दूर होने पर। दहीश=सन्तप्त होऊँगी। आंणी=आवो। वेश=श्रेष्ठ।

२६२—देखाड=दिखावो। परमांण=विश्वास हो। माहरे=मेरे। निरखूं=देखूं। येज=यही। मेलो=मिलाप। सहिये=स्वीकार करिये। जेणीपेरें=जैसे। आलो=अपना प्रिय। अजाण=अपरिचित।

२६३—मलूं=मिलूं, प्राप्त करूँ। तपै=विरह संतापसे संतप्त हो रहा है। केवीपेरें=किस तरह

२६४

ते केम पामिये रे, दुर्लभ जे आधार ।
ते विना तारण को नहीं, केम उतरिये पार ॥ टेक ॥
केवी पेरें कीजै आपणो रे, तत्व ते छे सार ।
मन मनोरथ पूरे मारा, तननो आप निवार ॥ १ ॥
संभारथौ आवे रे वाहला, वेलाये अवार ।
विरहणी विलाप करे, तेम दादू मन विचार ॥ २ ॥

इति राग भांणमली समाप्त ॥ १४ ॥

---

## अथ राग सारंग ॥ १५ ॥

२६५—गुरुज्ञान

हो ऐसा ग्यांन ध्यान, गुरु बिना क्यौं पावै ।
वारपार पारवार, दूतर तिरि आवै ॥ टेक ॥
भवन गवन गवन भवन, मन हीं मन लावै ।
रवन छवन छवन रवन, सतगुरु समझावै ॥ १ ॥
खीर नीर नीर खीर, प्रेम भगति भावै ।
प्रान कवल बिगसि बिगसि, गोबिंद गुण गावै ॥ २ ॥

---

आकुल=आतुर । व्याकुल=व्यग्र । नव मेलूं=विनय करूँ । सांभल=स्वीकारकर सुन ।

२६४—केम=कैसे । सार=तत्वरूप । निवार=दूरकर । संभारथो=सुमरते ही । वेलाये=यह समय है । अवार=देर, विलम्ब ।

२६५—वारपार=जीव ब्रह्म । पारवार=ब्रह्मजीव एकता । दूतर=दुस्तर, अलंघनीय । भव

जोति जुगति बाट घाट, लै समाधि धावै ।
परम नूर परम तेज, दादू दिखलावै ॥ ३ ॥

२६६—केवल विनती

तौ निबहै जन सेवग तेरा, अैसै दया करि साहिब मेरा ॥ टेक ॥
ज्यूं हम तोरैं त्यूं तूं जोरै, हम तोरैं पै तूं नहिं तोरै ॥ १ ॥
हम विसरैं तूं न विसारै, हम विगरैं पै तूं न विगारै ॥ २ ॥
हम भूलैं तूं आनि मिलावै, हम विछुरैं तूं अंगि लगावै ॥ ३ ॥
तुम्ह भावै सो हम पै नाहीं, दादू दरसन देहु गुसांई ॥ ४ ॥

२६७—काल चितावणी

माया संसार की सब झूठी, मात पिता सब ऊभे भाई ।
तिनहिं देखतां लूटी ॥ टेक ॥
जब लग जीव काया मैं था रे, षिण बैठी षिण ऊठी ।
हंस जु था सो खेलि गया रे, तब थैं संगति छूटी ॥ १ ॥
ए दिन पूगे आव घटानी, तब निचंत होइ सूती ।
दादूदास कहै अैसी काया, जैसी गगरिया फूटी ॥ २ ॥

---

गथन = हृदयरूपी भवन में वृत्ति को लेजा । मन ही मन=समष्टि मनमें व्यष्टि मन । रवनं छवन=अखंड ररंकार का प्रवाह । खीर नीर नीर खीर=ब्रह्म जगत् का भेद समझ । प्रेम भगति=आत्मा में अनन्य स्नेह श्रद्धा रख । "जोति जुगति बाट घाट=समष्टि में व्यापक ज्योति उसको जुगति उन्मुख वृत्ति द्वारा स्मरण करता हुवा लय मार्ग से समाधि साधना से प्राप्त करे ।

२६६—निबहै=निभेगा । विसरे=भूलै । विगरे=पतित हों । अंगि लगावे=अपने निकट करे ।
२६७—ऊभे = खड़े । षिण=क्षण,पल । संगति=साथ । आव=आयु ।

२६८—माया मध्य मुक्ति

ऐसे गृह मैं क्यूं न रहै, मनसा वाचा राम कहै ॥ टेक ॥

संपति विपति नहीं मैं मेरा, हरिष सोक दोइ नाहीं।

राग दोष रहित सुख दुख थैं, बैठा हरि पद मांहीं ॥ १ ॥

तन धन माया मोह न बांधै, बैरी मीत न कोई।

आपा पर समि रहै निरंतर, निज जन सेवग सोई ॥ २ ॥

सरवर कवल रहै जल जैसें, दधि मथि घृत करि लीन्हा।

जैसें वन मैं रहै बटाऊ, काहूं हेत न कीन्हा ॥ ३ ॥

भाव भगति रहै रसि माता, प्रेम मगन गुन गावै।

जीवत मुकत होइ जन दादू, अमर अभै पद पावै ॥ ४ ॥

२६९—परचै उपदेस

चल रे मन तहां जाइये, चरण बिन चलिबो।

श्रवन बिन सुनिबौ, बिन कर बैन बजाइये ॥ टेक ॥

तन नाहीं जहं, मन नाहीं तहं, प्राण नहीं तहं आइये।

सबद नहीं जहं, जीव नहीं तहं, बिन रसना मुख गाइये ॥ १

पवन पावक नहीं, धरणि अंबर नहीं, उभै नहीं तहं लाइये।

चंद नहीं जहं, सूर नहीं तहं, परम जोति सुख पाइये ॥ २ ॥

तेज पुंज सो सुख का सागर, झिलि मिलि नूर नहाइये।

तहं चलि दादू अगम अगोचर, ता मैं सहज समाइये ॥ ३ ॥

इति राग सारंग समाप्त ॥ १५ ॥
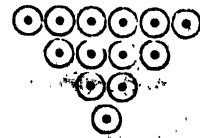
# अथ राग टोडी ॥१६॥

२७०—सुमिरन उपदेश

सो तत सहजैं सुषमन कहणा,
साच पकड़ि मन जुगि जुगि रहणा ॥ टेक ॥
प्रेम प्रीति करि नीका राखै, बारंबार सहजि नर भाखै ॥ १ ॥
मुखि हिरदै सो सहजि संभारै, तिहि तत रहणा कदे न विसारै ।२।
अन्तरि सोई नीका जाणै, निमख न विसरै ब्रह्म बखाणै ॥ ३ ॥
सोई सुजाण सुधा रस पीवै, दादू देखु जुगि जुगि जीवै ॥ ४ ॥

२७१—नांव महिमा

नाउंरे नाउंरे, सकल सिरोमणि नाउं रे, मैं बलिहारी जाउंरे ॥टेक॥
दूतर तारै पार उतारै, नरक निवारै नाउं रे ॥ १ ॥
तारणहारा भौ जल पारा, निर्मल सारा नाउं रे ॥ २ ॥
नूर दिखावै तेज मिलावै, जोति जगावै नाउं रे ॥ ३ ॥
सब सुख दाता अमृत राता, दादू माता नाउं रे ॥ ४ ॥

२७२—नांव विनती

राइ रे राइ रे सकल भुवन पतिराइ रे,
अमृत देहु अघाइ रे ॥ टेक ॥
परगट राता परगट माता, प्रगट नूर दिखाइ रे ॥ १ ॥

---

२७०—सुषमण=कुंभक करके । नीकौं=ठीक तरह । भाषै=स्मरण करे । अंतरि=अन्तःकरण में । निमष=पल ।

२७१—दूतर तारे=अलंघनीय संसार सागर से पार करे । तेज मिलावे=आत्म-ज्योति से एकता करावे ।

२७२—राइ=राजा-सर्वोपरि । अघाइ=तृप्त कर । अस्थिर=निश्चल । समाइ=एकत्व प्राप्त कर ।

अस्थिर ग्याना अस्थिर ध्याना, अस्थिर तेज मिलाइ रे ॥ २॥
अविचल मेला अविचल खेला, अविचल जोति समाइ रे ॥ ३॥
निह्चल बैना निह्चल नैंना, दादू बलि बलि जाइ रे ॥४॥

२७३—रसिक अवस्था

हरिरस माते मगन भये, सुमिरि सुमिरि भये मतवाले।
जामण मरण सब भूलि गये ॥ टेक ॥
निर्मल भगति प्रेम रस पीवैं, आन न दूजा भाव धरैं।
सहजैं सदा राम रंगि राते, मुकति बैकुंठैं कहा करैं ॥ १ ।
गाइ गाइ रस लीन भये हैं, कछू न मांगैं संतजना।
और अनेक देहु दत आगैं, आन न भावै राम बिना ॥ २ ।
इकटग ध्यान रहैं ल्यौ लागे, छाकि परे हरिरस पीवैं।
दादू मग्न रहैं रसिमाते, ऐसैं हरि के जन जीवैं ॥ ३ ॥

२७४—केवल बिनती

ते मैं कीधेला राम जे तैं वार्‍या ते, मारग मेल्ही अमारग
अणसरि अकरम करम हरे ॥ टेक ॥
साधू कौ संग छाड़ीनै, असंगति अणसरियां।
सुकृत मूकी अविद्या साधी, विषिया विस्तरियां ॥ १ ॥
आन कह्‌यु आन सांभल्युं, नेणें आन दीठो।
अमृत कड़वो विष इम लागौ, खातां अति मीठो ॥ २ ॥

---

२७३—हरिरस = आत्म चिन्तन रस से। गाइ गाइ = वृत्तिद्वारा निरन्तर चिन्तन कर
दत=द्रव्य, सम्पत्ति। इकटग=स्थिर वृत्ति से। छाकि परे=तृप्त होगये।

२७४—कीधेला=किया। वार्‍या=मना किया। मेल्ही=छोड, त्याग। अणसरि=प्र
मूकी = छोड। आन = और, मायिक पदार्थ। आन=विषय भोग। सांभल्यु=स
आन दीठो=सत्य आत्मा को असत्य, असत्य देह को सत्य देखा। अमृत=आत्म

राम रिदाथी विसारी नै, माया मन दीधौ ।
पांचे प्राण गुरुमुखि वरज्या, ते दादू कीधौ ॥ ३ ॥

२७५—विरह विनती

कहौ क्यूं जन जीवै साइयां, दे चरण कवल आधार हो ।
डूबत है भौ सागरा, कारी करौ करतार हो ॥ टेक ॥
मीन मरै बिन पाणियां, तुम बिन येह विचार हो ।
जल बिन कैसैं जीवही, इब तौ किनी इक बार हो ॥ १ ॥
ज्यूं परै पतङ्गा जोतिमां, देखि देखि निज सार हो ।
प्यासा बूंद न पावई, तब वनि वनि करै पुकार हो ॥ २ ॥
निस दिन पीर पुकारही, तनकी ताप निवारि हो ।
दादू विपति सुनावही, करि लोचन सनमुख चारि हो ॥ ३ ॥

२७६—केवल विनती

तूं साचा साहिब मेरा,
कर्म करीम कृपाल निहारौ, मैं जन बंदा तेरा ॥ टेक ॥
तुम्ह दीवान सबहिन की जानौ, दीनानाथ दयाला ।
दिखाइ दीदार मौज बंदे कौ, काइम करौ निहाला ॥ १ ॥

---

कड़वो = खारो । विष=विषयविष । रिदाथी=अन्तःकरण से । गुरुमुखि=गुरुउपदेश द्वारा । वरज्या=मना किया । कीधौ=मना किया ।

दृष्टान्त—*जहाँ वरजै तहाँ जाइ मन, ज्यूं नृप कालो वेल ॥*
*वैद बताई रोग में, आप छुडाइ गैल ॥ १ ॥*

२७५—जन=सेवक साधक । कारी करो=सहायता करो । प्यासा = तृषित, इच्छुक, जिज्ञासु । ताप = वियोग की अग्नि ।

२७६—निहारो=देखो । दीवान=सर्वज्ञ । मौज=आनंद । काइम=स्थिर । खैर खुदाइ=परमात्मा

मालिक सबै मुलिक के सांई, समर्थ सिरजनहारा ।
खैर खुदाइ खलक मैं खेलत, दे दीदार तुम्हारा ॥ २ ॥
मैं शिकस्तः दरगह तेरी, हरि हजूर तूं कहिये ।
दादू द्वारै दीन पुकारै, काहे न दर्शन लहिये ॥ ३ ॥

२७७—उपदेस चितावणी

कुछ चेति रे कहि क्या आया,
इनमैं बैठा फूलि कर, तैं देखी माया ॥ टेक ॥
तूं जनि जानैं तन धन मेरा, मूरखि देख भुलाया ।
आज कालि चलि जावै देही, ऐसी सुंदर काया ॥ १ ॥
राम नाम निज लीजिये, मैं कहि समझाया ।
दादू हरि की सेवा कीजै, सुंदर साज मिलाया ॥ २ ॥

२७८

नेटि रे माटी मैं मिलना, मोड़ि मोड़ि देही काहे को चलना ॥ टेक ॥
काहे कौ अपना मन डुलावै, यहु तन अपना नीका धरना ।
कोटि बरस तूं काहे न जीवै, बिचारि देखि आगै हैं मरना ॥ १ ॥
काहे न अपनी बाट संवारै, संजमि रहना सुमिरण करना ।
गहिला दादू गर्व न कीजै, यहु संसार पंच दिन भरणा ॥ २ ॥

---

की कृपा । मैं शिकस्त=मैं हारा हुवा । दरगह तेरी=तुमारी दरगाह तुम्हारे दरबार में हाजिर हुवा हूँ ।

२७७—कहि=कहकर, गर्भ में वादा कर । इनमें=विषयभोग में । सुन्दर साज=मनुष्यशरीर ।

२७८—नेटि रे=अन्तमें । मोडि-मोडि=ऐंठ ऐंठ । डुलावे=ललचावे । बाट=राह ।

२७९

जाइ रे तन जाइ रे, जनम सुफल करि लेहु राम रमि।
सुमरि सुमरि गुन गाइ रे ॥ टेक ॥
नर नाराइन सकल सिरोमणि, जनम अमोलिक आहि रे।
सो तन जाइ जगत नहिं जानैं, सकहि त ठाहर लाइ रे ॥ १ ॥
जरा काल दिन जाइ गरासै, तासौं कुछु न बसाइ रे।
छिन छिन छीजत जाइ मुग्ध नर, अंति काल दिन आइ रे ॥ २ ॥
प्रेम भगति साधु की संगति, नाउं निरंतर गाइ रे।
जे सिरि भाग तो सौंज सुफल करि, दादू विलंब न लाइ रे ॥ ३ ॥

२८०

काहे रे बकि मूल गवांवै, राम के नांइ भलैं सचु पावै ॥ टेक ॥
वाद विवाद न कीजै लोई, वाद विवाद न हरि रस होई ॥ १ ॥
मैं तैं मेरी मानैं नांहीं, मैं तैं मेटि मिलैं हरि मांहीं ॥ २ ॥
हारि जीति सौं हरि रस जाई, समझि देखि मेरे मन भाई ॥३॥
मूल न छाडी दादू बौरे, जनि भूलै तूं बकिबे औरे ॥ ४ ॥

२८१

हुशियार हाकिम न्याव है, सांई के दीवान।
कुलि का हसेब ह्वैगा, समझि मुसलमान ॥ टेक ॥

---

२७९—सुफल=सार्थक। आहि=मिला, प्राप्त हुवा। ठाहर लाइ=अपनी असली जगह लगा। वसाइ = बस। सिरिभाग=अहोभाग्य, श्रेष्ठ भाग। सौंज=नर शरीर।

२८०—बकि = बकवाद कर। लोई=लोगों से। बौरे=भोले, अनजान। वकिबे औरे=नाम चिन्तन तज और ही निन्द्य स्तुति में समय न गँवा।

दृष्टान्त—*पंडित वाद्यो पाठ पै, दूजो वोल्यो डाटि ॥*
*पाठ करत संचर पड्यो, रसना डारी काटि ॥ १ ॥*

२८१—दीवांन-दरबार खास में। हसेब=लेखा। सालिकां=हमेशां। ईमान=सचाई।

नीयत नेकी सालिकां, रास्ता ईमान ।
इखलास अंदरि आपणै, रखणा सुबहान ॥ १ ॥
हुक्म हाजिर होइ बाबा, मुसल्लम मिहरबान ।
अक्ल सेती आपना, सोधि लेहु सुजान ॥ २ ॥
हक सौं हजूरी हूणा, देखणां करि ग्यांन ।
दोस्त दाना दीन का, मनणा फुरमान ॥ ३ ॥
गुस्सा हैवानी दूरि कर, छाड़ि दे अभिमान ।
दुई दरोगां नांहिं खुशियां, दादू लेहु पिछान ॥ ४ ॥

२८२—साधु प्रति उपदेस

निर्पष रहणां राम नाम कहणां, काम क्रोध मैं देह न दहणा ॥टेक॥
जेणैं मारगि संसार जाइला, तेणैं प्राणी आप बहाइला ॥ १ ॥
जे जे करणी जगत करीला, सो करणी संत दूरि धरीला ॥ २ ॥
जेणैं पंथैं लोक राता, तेणैं पंथैं साधु न जाता ॥ ३ ॥
राम नाम दादू ऐसैं कहिये, राम रमत रामहिं मिलि रहिये ॥ ४ ॥

---

इखलास=एकता, आत्मभाव । मुसल्लम=उत्तम जन । अक्ल=विचार हकसौं=अधिकार, कर्त्तव्य । हजूरी हूँणा=हाजिर रहना । दानां=बड़ा । मनणा=मानना । फुरमान=हुकम, आज्ञा । हैवानी=बदनीयत । दुई दरोगा=भेदभाव से खुसियाँ=प्रसन्न ।

दृष्टान्त—*सांभर हाकिम सूँ कह्यो, पद यह दादू देव ॥*
*मान वचन गहि तात को, करी गुरुन की सेव ॥ १ ॥*

२८२—दहणा=जलाना । जेंणे=जिस । वहाइला=बहादेना, त्याग देना । लोक राता=संसार में लगा हुवा है ।

२८३—भेष बिडवन

हम पाया हम पाया रे भाई, भेष बनाइ ऐसी मनि आई ॥ टेक
भीतर का यहु भेद न जानैं, कहै सुहागनि क्यूं मन मानैं ॥ १
अंतरि पीव सौं पर्चा नांहीं, भई सुहागनि लोगन मांहीं ॥ २ ।
सांई सुपिनै कबहुं न आवै, कहिबा ऐसैं महलि बुलावै ॥ ३ ॥
इन बातनि मोहि अचिरज आवै, पटम कियें कैसे पिव पावै ॥४
दादू सुहागनि ऐसैं कोई, आपा मेटि राम रत होई ॥ ५ ॥

२८४—आत्म ममता

ऐसैं बाबा राम रमीजै, आत्म सौं अंतर नहिं कीजै ॥ टेक ॥
जैसैं आतम आपा लेखैं, जीव जंत ऐसैं करि पेखैं ॥ १ ॥
एक राम एसैं करि जानैं, आपा पर अंतर नहिं आनैं ॥ २ ॥
सब घंटि आतम एक बिचारै, राम सनेही प्राण हमारै ॥ ३ ॥
दादू साची राम सगाई, ऐसा भाव हमारे भाई ॥ ४ ॥

२८५—नांव समता

माधइयौ माधइयौ मीठौ री माइ, माहवौ माहवौ भेटियौ आइ ॥टे
कान्हइयौ कान्हइयौ करतां जाई, केसवौ केसवौ केसवौ धाइ ॥ १
भूधरौ भूधरौ भूधरौ भाइ, रामयौ रामयौ रह्यौ समाइ ॥ २
नरहरि नरहरि नरहरि राइ, गोविंदौ गोविंदौ दादू गाइ ॥ ३ ॥

---

२८३—मनिआई=मन में समझी । अंतरि पीवसौं=अपने भीतर अपनी आत्मा से । प
मुलाकात । कहिबा=कहने को । पटम=पाखंड ।

दृष्टान्त—*कुंभ गाडि आसण तले, दीपक धरि ढकि मांहि ॥*
*लोकन को कहि रात कों, ब्रम्ह जोति दरसांहि ॥ १ ॥*

२८४—आत्म आपा लेखैं = अपने आप के लिये जैसा चाहता है । एक राम = एक
आत्मा सब में है ।

२८५—माधइयो = मुक्त, सन्त कहते हैं । माहवो=भीतर ही । भाइ=अच्छा लगे ।

२८६—समता

एकहीं एकैं भया अनंद, एकहीं एकैं भागे दंद ॥ टेक ॥
एकहीं एकैं एक समान, एकहीं एकैं पद निर्बान ॥ १ ॥
एकहीं एकैं त्रिभुवन सार, एकहीं एकैं अगम अपार ॥ २ ॥
एकहीं एकैं निर्भै होइ, एकहीं एकैं काल न कोइ ॥ ३ ॥
एकहीं एकैं घट परकास, एकहीं एकैं निरंजन बास ॥ ४ ॥
एकहीं एकैं आपहि आप, एकहीं एकैं माइ न बाप ॥ ५ ॥
एकहीं एकैं सहज सरूप, एकहीं एकैं भये अनूप ॥ ६ ॥
एकहीं एकैं अनत न जाइ, एकहीं एकैं रह्या समाइ ॥ ७ ॥
एकहीं एकैं भये लै लीन, एकहीं एकैं दादू दीन ॥ ८ ॥

२८७—विनती

आदि है आदि अनादि मेरा, संसार सागर भगति भेरा ।
आदि है अंति हैं अंति है आदि है, बिड़द तेरा ॥ टेक ॥
काल है झाल है झाल है काल है, राखिले राखिले प्राण घेरा ।
जीव का जनम का, जनम का जीव का, आपहीं आपले भांनि झेरा ।
भर्म का कर्म का कर्म का भर्म का, आइबा जाइबा मेटि फेरा ।
तारिले पारिले पारिले तारिले, जीवसौं सीव है निकटि नेरा ॥ २ ॥
आत्मा राम है, राम है आत्मा, जोति है जुगति सौं करौ मेला ।
तेज है सेज है, सेज है तेज है, एक रस दादू खेल खेला ॥ ३ ॥

---

२८६—इस पद में एकत्व का विवेचन किया गया है—

दंद=गुण विकार । निर्वान=मुक्ति । घटपरकास = अन्तःकरण में आत्म भाव का उदय ।

२८७—भगति भेरा=भक्ति रूप जहाज । बिड़द=महत्त्व, कीर्त्ति । काल=देहाध्यास रूपी काल । झाल=विषय संताप । जीवका जनमका = अविद्या से आवृत चेतन जीवत्व भावको

२८८—परचै

सुंदर राम राया, परम ग्यान परम ध्यान, परम प्राण आया ॥टेक॥
अकल सकल अति अनूप, छाया नहिं माया ।
निराकार निराधार, वार पार न पाया ॥ १ ॥
गंभीर धीर निधि सरीर, निर्गुण निरकारा ।
अखिल अमर परम पुरिष, निर्मल निज सारा ॥ २ ॥
परम नूर परम तेज, परम जोति परकास ।
परम पुंज परापरं, दादू निज दास ॥ ३ ॥

२८९—परचै परा भक्ति

अखिल भाव अखिल भगति, अखिल नांव देवा ।
अखिल प्रेम अखिल प्रीति, अखिल सुरति सेवा ॥ टेक ॥
अखिल अङ्ग अखिल संग, अखिल रंग रामा ।
अखिलारत अखिलामत, अखिलानिज नामा ॥ १ ॥
अखिल ग्यान अखिल ध्यान, अखिल आनंद कीजै ।
अखिला लै अखिला मैं, अखिला रस पीजै ॥ २ ॥

---

प्राप्त हुवा । भांनि भेरा = दूरकर उलझन । तारिले पारले=नाम जप अर्थ जान । सीव=ब्रह्म । आत्मराम है = व्यष्टिचेतन है वही राम है, समष्टिचेतन है । जुगति=समवृत्ति अभेद वृत्ति । भेला=एक । तेज है=कूटस्थ है । सेजै है = मन, प्राण, सुरति की त्रिपुटी ।

२८८—राया=प्रकाशक । अकल=निर्गुण । सकल=सगुण । छाया=चिदाभास । माया=विवरण । निधि=अमूर्त । दादू निजदास = जीवन्मुक्त साधक ही इस रूप को जानते हैं ।

२८९—अखिल=व्यापक, पूरी । अखिलारत=सब अवस्था में आत्मा ही में वृत्ति आरूढ रहे ।

अखिल मगन अखिल मुदित, अखिल गलित सांई।
अखिल दरस अखिल परस, दादू तुम मांहीं ॥ ३॥

इति राग टोडी समाप्त ॥१६॥

# अथ राग हुसेनी बंगालो ॥१७॥

२६०

है दाना, है दाना, दिलदार मेरे कान्हा।
तूं हीं मेरे जान जिगर, यार मेरे खाना ॥ टेक॥
तूं हीं मेरे मादर पिदर, आलम बेगाना।
साहिब सिरताज मेरे, तूंहीं सुलताना ॥ १ ॥
दोस्त दिल तूहीं मेरे, किस का खिलखाना।
नूर चश्म जिंद मेरे, तूंहीं रहमाना ॥ २॥
एकै असनाव मेरे, तूहीं हमजाना।
जानिवा अजीज मेरे, खूब खजाना॥ ३ ॥
नेक नजर मेहर मीरा, बंदा मैं तेरा।
दादू दरबार तेरे, खूब साहिब मेरा॥ ४ ॥

---

मुदित = प्रसन्न। गलित = गलतान, सराबोर।

---

२६०—दिलदार=अति प्रिय। खाना = कबीला, कुटुम्ब। मादरपिदर=माता पिता। आलम=संसार। बेगाना=पराया। सिरताज=शिरोमणि। सुलताना=शहंशाह। किसका खिलखाना=सब यह प्राणियों का कुटुम्ब तेरा ही है। नूर चश्म जिंद मेरे=आप की ज्योति ही मेरे नेत्रों का लक्ष्य है। एकै असनाव=एक तूं ही साथी। जानिवा=जानिब, प्रिय। नेक = शीतल। मेहर=दया।

२६१

तूं घरि आव सुलच्छिन पीव,

हिक तिल मुख दिखलावहु तेरा, क्या तरसावै जीव ॥ टेक ॥

निसदिन तेरा पंथ निहारौं, तूं घरि मेरे आवै।

हिरदा भीतरि हेतसौं रे वाहला, तेरा मुख दिखलावै ॥ १ ॥

वारी फेरी बलि गई रे, सोभित सोई कपोल।

दादू ऊपरि दया करीनै, सुनाइ सुहावे बोल ॥ २ ॥

इति राग हुसेनी बंगालौ समाप्त ॥ १७ ॥

## अथ राग नट नाराइण ॥ १८ ॥

—:—[❀]—:—

२६२—हित उपदेश

ताकौं काहे न प्राण संभालै।

कोटि अपराध कलप के लागे, मांहिं महूरत टालै ॥ टेक ॥

अनेक जनम के बंधन बाढ़ै, विन पावक फंध जालै।

असौ है मन नांव हरीकौ, कबहूं दुख न सालै ॥ १ ॥

चिंतामणि जुगति सौं राखै, ज्यूं जननी सुत पालै।

दादू देखु दया करै ऐसी, जन कौं जाल न रालै ॥ २ ॥

२६१—सुलच्छिन पीव = अच्छे लक्षण वाले प्यारे। हिकतिल=एक पल। तरसावै=ललचावे। हेतसौं = अति स्नेहसे। वाराफेरी=निछावर हुई।

❀ इति राग हुसेनी बंगालौ सम्पूर्ण ❀

२६२—संभालै=धारण करे। कलप=युगयुगान्तर। मुहूरत=घडीमें। वाढै=काटे। फंध=फन्दे। जाल निरालै=जंजाल दूर कर देता है।

२९३—विरह

गोविंद कबहुँ मिलै पिव मेरा,
चरण कंवल क्यूंहीं करि देखौं, राखौं नैंनहूं नेरा ॥ टेक ॥
निरखण का मोहि चाव घणेरा, कब मुख देखौं तेरा ।
प्राण मिलन कौ भये उदासी, मिलि तूं मींत सवेरा ॥ १ ॥
व्याकुल ताथैं भई तन देहीं, सिरपरि जम का हेरा ।
दादू रे जन राम मिलनकूं, तपई तन बहुतेरा ॥ २ ॥

२९४

कब देखौं नैंनहुं रेख रती, प्राण मिलन कौं भई मती ।
हरि सौं खेलौं हरी गती, कब मिलि हैं मोही प्राणपती ॥ टेक ॥
बल कीती क्यूं देखौंगी रे, मुझमाहैं अति बात अनेरी ।
सुणि साहिब येक विनती मेरी, जनम जनम हूं दासी तेरी ॥ १ ॥
कहु दादू सो सुनसी सांई, हौं अबला बल मुझमैं नांहीं ।
करम करी घरि मेरे आई, तौ सोभा पिव तेरे तांई ॥ २ ॥

२९५

नीके मोहन सौं प्रीति लाई,
तन मन प्राण देत बजाई, रंग रस के बनाई ॥ टेक ॥

---

२९३— चाव=चाहना । उदासी=दुःखी, खिन्न । सवेरा=शीघ्र । तपई=संतप्त हो रही है ।

२९४- रेखरती=दर्शन की झलक । हरीगती=आत्म भावना से । अनेरी=बुरी, खराब ।
करमकरी=कृपाकर ।
दृष्टान्त—*नृपति हरसहिं साधके, जातो दर्सन चलाइ ॥*
*जो सिध तो धन भाग मों, न तो वडाई पाइ ॥ १ ॥*

२९५—देतबजाई=नाम चिन्तन से ध्वनित करे । छोर्यो=त्यागा । वाण=विरह वाण ।

येहीं जीयरे वैहीं पीवरे, छोरयो न जाई माई।
बाण भेद के देत लगाई, देखत ही मुरझाई॥ १॥
निर्मल नेह पिया सौं लागौ, रती न राखी काई।
दादू रे तिलमैं तन जावै, संग न छाडौं माई॥ २॥

२९६—परमेश्वर महिमा

तुम्ह बिन असैं कौन करै,
गरीब निवाज गुसांई मेरौ, माथैं मुकट धरै॥ टेक॥
नीच ऊँच ले करै गुसांई, टारयौ हूँ न टरै।
हस्त कवल की छाया राखै, काहूं थैं न डरै॥ १॥
जाकी छोति जगत कौं लागै, तापरि तूंहीं ढरै।
अमर आप ले करे गुसांई, मारयो हूँ न मरै॥ २॥
नामदेव कबीर जुलाहौ, जन रैदास तिरै।
दादू बेगि बार नहीं लागै, हरि सौं सबै सरै॥ ३॥

२९७ मंगलाचरण

नमो नमो हरि नमो नमो,
ताहि गुसांई नमो नमो, अकल निरंजन नमो नमो।
सकल वियापी जिहि जग कीन्हा, नारायण निज नमो नमो॥टेक॥
जिन सिरजे जल सीस चरण कर, अविगत जीव दियौ।
श्रवण संवारि नैंन रसना मुख, ऐसौ चित्र कियौ॥ १॥

---

काई=मेल। तिलमैं=पलमे।

२९६—मुकटधरै=वेश्या के विश्वास भक्ति से मुकट धारण किया। हस्त कँवल=वरदहाथ, करुणाकर। छोति=छूत। ढरै=कृपाकर। मारयो हूँ न मरे=प्रहलाद, मार्कण्डेय की तरह। सरै=पूर्ति हो।

२९७—अकल=निर्गुण। जल=शुक्र बिन्दु से। चित्र=शरीर। उपाय=उत्पन्न कर।

आप उपाइ किये जग जीवन, सुर नर संकर साजे।
पीर पैगंबर सिध अरु साधिक, अपनैं नांइ निवाजे ॥ २ ॥
धरती अंबर चंद सूर जिन, पाणी पवन किये।
भानण घड़न पलक मैं केते, सकल संवारि लिये ॥ ३ ॥
आप अखंडित खंडित नाहीं, सब समि पूरि रहे।
दादू दीन ताहि नइ बंदति, अगम अगाध कहे ॥ ४ ॥

२१८

हम थैं दूरि रही गति तेरी,
तुम हौ तैसे तुमहीं जानौं, कहा बपरी मति मेरी ॥ टेक ॥
मन थैं अगम दृष्टि अगोचर, मनसा की गमि नांहीं।
सुरति समाइ बुद्धि बल थाके, बचन न पहुंचैं तांहीं ॥ १ ॥
जोग न ध्यान ग्यान गमि नांहीं, समझि समझि सब हारे।
उनमनी रहत प्राण घट साधे, पार न गहत तुम्हारे ॥ २ ॥
खोजि परे गति जाइ न जानी, अगह गहन कैसे आवै।
दादू अविगति देइ दया करि, भाग बड़े सो पावै ॥ ३ ॥

इति राग नट नाराइण समाप्त ॥ १८ ॥

---

अपने नांइ = अपनी आराधना, अपने नाम चिन्तन पर। निवाजै = महरवान हुये
नइ वंदित=नम्र हो, गर्व रहित हो वन्दना करता है।

२१८—वपरी मति=देहाभिमानी बुद्धि। दृष्टि=इन्द्रिय। अगोचर=अलक्षित। सुरति=वृत्ति
वचन=वाँणी। उनमनी=लयवृत्ति। खोजिपरे=तलाश कर हारे। अगह=गृही
न हो सकने वाला। गहन=पकड़ में।

❀ इति राग नट नारायण सम्पूर्ण ❀

# अथ राग सोरठ ॥ १६ ॥

२६६—सुमिरण

कोली साल न छाडै रे, सब घावर काढै रे ॥ टेक ॥
प्रेम प्राण लगाई धागैं, तत्त तेल निज दीया ।
एक मना इस आरंभ लागा, ग्यान राछ भरि लीया ॥ १ ॥
नांव नली भरि बुणकर लागा, अंतर गति रंग राता ।
ताणैं बाणैं जीव जुलाहा, परम तत्त सौं माता ॥ २ ॥
सकल सिरोमणि बुनै विचारा, सान्हां सूत न तोड़ै ।
सदा सचेत रहै ल्यौ लागा, ज्यौं टूटै त्यौं जोड़ै ॥ ३ ॥
ऐसे तनि बुनि गहर गजीना, सांई के मन भावै ।
दादू कोली करता के संगि, बहुरि न इहि जुगि आवै ॥ ४ ॥

३००—विरही

विरहणी वपु न संभारै, निस दिन तलफै राम के कारण ।
अंतरि एक विचारै ॥ टेक ॥

---

२६६—कोली=जीव । साल = हृदय देश । घावर=मल, विक्षेप, आवरण । काढै=निकाले । लगाई धागे=सुरति रूप तागे में लगा ।.तत्त तेल=स्मरण रूपी तैल । निज=हृदय प्रदेश में । एकमना=एकाग्रचित्त । आरंभ=साधना । ग्यांन=आत्मज्ञान । राछ=नली कोली, वृत्ति विचार । नांव=नाम चिन्तन । विचार=निरभिमानी । सान्हा=जुडा, संलग्नवृति । सूत=वृत्ति रूप तागा । ल्यौ=लयवृत्तिमें । टूटै=भग हो, वृत्ति विचलित हो । तनि बुनि=लय ध्यान में लग । गहर=गाढा । गजीना=गजीचा । कोली = जीव । करता=ब्रह्म ।

३००—विरहणी=विरह वृत्ति साधक । वपु=शरीर । आतुर=उतावली । जिततित=सब

आतुर भई मिलन के कारण, कहि कहि राम पुकारै ।
सास उसास निमष नहिं विसरै, जित तित पंथ निहारै ॥१॥
फिरै उदास चहूँ दिसि चितवत, नैंन नीर भरि आवै ।
राम बिवोग बिरह की जारी, और न कोई भावै ॥ २ ॥
व्याकुल भई सरीर न समझै, बिषम बाण हरि मारै ।
दादू दर्सन बिन क्यूं जीवै, राम सनेही हमारे ॥ ३ ॥

३०१—उपदेश चितावणी

मन रे राम रटत क्यूं रहिये, यहु तत बार बार क्यूं न कहिये ॥टेक॥
जब लग जिभ्या बाणी, तौ लौं जपि लै सारंगपाणी ।
जब पवना चलि जावै, तब प्राणी पछितावै ॥ १ ॥
जब लग श्रवण सुणीजै, तौ लौं साधु सबद सुणि लीजै ।
श्रवणौं सुरति जब जाई, ए तब का सुणि है भाई ॥ २ ॥
जब लग नैंनहुँ पेखै, तो लौं चरण कंवल क्यूं न देखै ।
जब नैंनहुँ कछू न सूझै, ये तब मूरखि क्या बूझै ॥ ३ ॥
जब लग तन मन नीका, तौ लौं जपिलै जीवनि जीका ।
जब दादू जीव आवै, तब हरि के मनि भावै ॥ ४ ॥

३०२

मनरे तेरा कौन गंवारा, जपि जीवनि प्राण अधारा ॥ टेक ॥

साधन,सब शास्त्रों में । चहूँदिसि=चतुष्टय वृत्ति । विवोग = वियोग । राम सनेही हमारे=हे हमारे प्रिय राम ।

३०१—क्यूं रहिये=क्यों रुकिये । पवना=श्वास । साधसबद = महात्मा पुरुषों के वचन जीवआवे=आत्माभिमुख हो ।

३०२—दारा=स्त्री । संगि=आत्मा के साथ । मेरी मेरा=अपना अभिमान । जागे

रे मात पिता कुल जाती, धन जोबन सजन संगाती।
रे गृह दारा सुत भाई, हरि बिन सब झूठा ह्वै जाई॥ १॥

रे तूं अन्ति अकेला जावै, काहू के संगि न आवै।
रे तूं नां करि मेरी मेरा, हरि राम बिना को तेरा॥ २॥

रे तूं चेत न देखै अंधा, यहु माया मोह सब धंधा।
रे काल मीच सिरि जागै, हरि सुमिरण काहे न लागै॥ ३॥

यहु औसर बहुरि न आवै, फिरि मनिखा जनम न पावै।
अब दादू ढील न कीजै, हरि राम भजन करि लीजै॥ ४॥

३०३

मन रे देखत जनम गयौ, ता थैं काज न कोई भयो रे॥ टेक॥
मन इंद्री ग्यान विचारा, ता थैं जनम जुवा ज्यूं हारा।
मन झूठ साच करि जानैं, हरि साधु कहै नहिं मानैं॥ १॥

मन रे बादि गहे चतुराई, ता थैं सनमुखि बात बनाई।
मन आप आप कौ थापै, करता होइ बैठा आपै॥ २॥

मन स्वादी बहुत बनावै, मैं जान्या विषै बतावै।
मन मांगै सोई दीजै, हमहिं राम दुखी क्यूं कीजै॥ ३॥

मन सब हीं छाडि विकारा, प्राणी होइ गुनन थैं न्यारा।
निर्गुण निज गहि रहिये, दादू साधु कहैं ते कहिये॥ ४॥

---

सावधान है।

३०३—हरिसाधु = सन्तजन। बादि = व्यर्थ, फालतू। मनमुखो=मनचाही। थापै=समर्थन करे, स्थापना करे।

३०४

मन रे अंतिकाल दिन आया, ता थैं यहु सब भया पराया ॥ टेक॥
श्रवनौं सुनैं न नैंनहूं सूझै, रसना कह्या न जाई।
सीस चरण कर कंपन लागे, सो दिन पहुंच्या आई ॥ १ ॥
काले धौले वरन पलटिया, तन मन का बल भागा।
जोबन गया जुरा चलि आई, तब पछितावन लागा ॥ २ ॥
आव घटै घटि छीजै काया, यहु तन भया पुराना।
पाचौं थाके कह्या न मानैं, ताका मर्म न जाना ॥ ३ ॥
हंस बटाऊ प्राण पयाना, समझि देखि मन माहीं।
दिन दिन काल गरासै जियरा, दादू चेतै नाहीं ॥ ४ ॥

३०५

मन रे तूं देखै सो नाहीं, है सो अगम अगोचर माहीं ॥ टेक॥
निस अंधियारी कछू न सूझै, संसै सरप दिखावा।
ऐसैं अंध जगत नहिं जानैं, जीव जेवड़ी खावा ॥ १ ॥
मृग जल देखि तहां मन धावै, दिन दिन झूठी आसा।
जहं जहं जाइ तहां जल नाहीं, निहचै मरै पियासा ॥ २ ॥
भर्म बिलास बहुत विधि कीन्हां, ज्यौं सुपिनैं सुख पावै।
जागत झूठ तहां कुछ नाहीं, फिरि पीछै पछितावै ॥ ३ ॥
जब लग सूता तब लग देखै, जागत भर्म बिलाना।
दादू अंति इहां कुछ नाहीं, है सो सोधि सयाना। ४ ॥

३०४—पराया=दूसरे का। पयाना=कूच कर गया, चला गया।
३०५—संसैसरप=संशय रूपी काल। जेवड़ी=रस्सी। भर्मविलास=मिथ्या संसार के भो
सूता=अज्ञाननींद में।

३०६

भाई रे बाजीगर नट खेला, ऐसैं आपैं रहै अकेला ॥ टेक ॥
यहु बाजी खेल पसारा, सब मोहे कौतिग हारा ।
यहु बाजी खेल दिखावा, बाजीगर किनहूं न पावा ॥ १ ॥
इहि बाजी जगत भुलाना, बाजीगर किनहूं न जाना ।
कुछ नाहीं सो पेखा, है सो किनहुं न देखा ॥ २ ॥
कुछ ऐसा चेटक कीन्हा, तन मन सब हरि लीन्हा ।
बाजीगर भुरकी बाही, काहू पैं लखी न जाई ॥ ३ ॥
बाजीगर परकासा, यहु बाजी झूठ तमासा ।
दादू पावा सोई, जो इहि बाजी लिपत न होई ॥ ४ ॥

३०७—ज्ञान उपदेश

भाई रे ऐसा एक विचारा, यूं हरि गुर कहै हमारा ॥ टेक ॥
जागत सूते सोवत सूते, जब लग राम न जाना ।
जागत जागे सोवत जागे, जब राम नाम मन माना ॥ १ ॥
देखत अंधे अंध भी अंधे, जब लग सत्य न सूझै ।
देखत देखै अंध भी देखैं, जब राम सनेही बूझै ॥ २ ॥
बोलत गूंगे गूंग भी गूंगे, जब लग सत्य न चीन्हां ।
बोलत बोले गूंग भी बोले, जब राम नाम कहि दीन्हां ॥३॥
जीवत मूये मुये भी मूये, जब लग नहीं प्रकासा ।
जीवत जीये. मुये भी जीये, दादू राम निवासा ॥ ४ ॥

---

३०६—चेटक = मोहनीमाया । भुरकी वाही=भ्रान्ति में भ्रमित किया । बाजीगर=परमात्मा । बाजी = संसार ।

३०७—जागतसूते=अपने को सावधान कहने वाले सोये हुये । देखतअंधे=नेत्र वाले संसार को सत्य समझ रहे हैं वे भी अन्धवत् है । बोलत गूंगे=वेद, शास्त्र का कथन करने

३०८—नांव महिमा

ामजी नाउं बिना दुख भारी, तेरे साधनि कही विचारी ॥टेक॥
ई जोग ध्यान गहि रहिया, केई कुल के मारगि बहिया।
ेई सकल देव कौ धावैं, केई रिधि सिधि चाहैं पावैं ॥ १ ॥
ई वेद पुरानौं माते, केई माया के संगि राते।
ेई देस दिसंतर डोलैं, केई ग्यानी व्है बहु बोलैं ॥ २ ॥
ेई काया कसैं अपारा, केई मरे खड़ग की धारा।
ेई अनत जिवन की आसा, केई करैं गुफा मैं बासा ॥ ३ ॥
आदि अंति जे जागे, सो तौ राम नाम ल्यौ लागे।
इब दादू इहै बिचारा, हरि लागा प्राण हमारा ॥ ४ ॥

३०९—भरम विधूसन

साधौ हरि सौं हेत हमारा, जिन यहु कीन्ह पसारा ॥ टेक ॥
जा कारणि व्रत कीजै, तिल तिल यहु तन छीजै।
सहजैं ही सो जाना, हरि जानत ही मन माना ॥ १ ॥
जा कारणि तप जइये, धूप सीत सिरि सहिये।
सहजैं ही सो आवा, हरि आवत ही सचु पावा ॥ २ ॥

---

वाले भी अनात्म बुद्धि से युक्त हैं तब तक उन का सब कहना गलत है गूंगेवत् हैं।

३०८—साधनि=साधक सन्त जनों ने। कुल के मारग=वंश परम्परा। ज्ञानी=वाचक ज्ञानी। कायाकसै=शरसय्या·पंच धूणी, खड़े रहना आदि से श को कष्ट देना। आदि अन्त=आरंभ से अन्त तक। जागे=आत्मचिन्तन में लगे

दृष्टान्त—*नृप दरसायो संत के, सूते सन्त रु दास ॥*
*नृपति जगाये दोउनको, राम राम कहिंसास ॥ १ ॥*

३०९—चीन्हा=पहिचाना।

जा कारणि बहु फिरिये, करि तीरथ भूमि भूमि मरिये।
सहजैं हीं सो चीन्हां, हरि चीन्हि सबै सुख लीन्हां ॥ ३ ॥
प्रेम भगति जिन जानी, सो काहे भरमैं प्रानी।
हरि सहजैं ही भल मानैं, ताथैं दादू और न जानैं ॥ ४ ॥

३१०—परचै विनती

रामजी जिनि भरमावै हम को, ताथैं करौं वीनती तुम्ह कौं ॥ टेक ॥
चरण तुम्हारे सबही देखौं, तप तीरथ व्रत दाना।
गंग जमुन पासि पाइन के, तहां देहु अस्नाना ॥ १ ॥
संग तुम्हारे सबही लागे, जोग जगि जे कीजै।
साधन सकल एई सब मेरे, संग आपनौं दीजै ॥ २ ॥
पूजा पाती देवी देवल, सब देखौं तुम मांहीं।
मोकौं ओट आपणी दीजै, चरण कवल की छांहीं ॥ ३ ॥
ये अरदास दास की सुणिये, दूरि करो भ्रम मेरा।
दादू तुम्ह बिन और न जानैं, राखौ चरनौं नेरा ॥ ४ ॥

३११

सोई देव पूजौं, जे टांची नहिं घड़िया,
गरभवास नांहीं औतरिया ॥ टेक ॥
बिन जल संजम सदा सोइ देवा, भाव भगति करौं हरि सेवा ॥१॥
पाती प्राण हरि देव चढाऊं, सहज समाधि प्रेम ल्यौ लाऊं ॥२॥
इहि विधि सेवा सदा तहं होई, अलख निरंजन लखै न कोई ॥३॥
ये पूजा मेरे मनि मांनैं, जिहि विधि होइ सु दादू न जानैं ॥४॥

---

३१०—जिनिभरमावो=मतभ्रमित करो। पाइन=चरणों के। ओट=शरण, आश्रय। अरदास=प्रार्थना।

३११—टांची=टांकीसे घड़िया=बनाया गया। पाती=तुलसीपत्र।

३१२—परचै हैरान

राम राई मोकौं अचिरज आवै, तेरा पार न कोइ पावै ॥ टेक ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद, नेति नेति जे गावैं।
सरणि तुम्हारी रटैं निसबासुरि, तिन कौं तूं न लखावै ॥ १ ॥
शंकर शेष सबै सुरमुनि जन, तिन कौं तूं न जनावै।
तीनि लोक रटैं रसना भरि, तिन कौं तूं न दिखावै ॥ २ ॥
अपनै अंग की जुगति न जानै, सो मनि तेरे भावै।
सेवा संजम करैं जप पूजा, सबद न तिन कौं सुनावै ॥ ३ ॥
दीन लीन राम रंगि राते, तिन कौं तूं संगि लावै।
मैं अछोप हींन मति मेरी, दादू कौं दिखलावै ॥ ४ ॥
इति राग सोरठ समाप्त ॥ १९ ॥

## अथ राग गुंड़ ॥ २० ॥

३१३—भगति निःकाम

दर्सन दे दर्सन दे, हौं तौ तेरी मुकति न मांगौं ॥ टेक ॥
सिधि न मांगौं रिधि न मांगौं, तुम्ह हीं मांगौं गोबिंदा ॥ १ ॥
जोग न मांगौं भोग न मांगौं, तुम्ह हीं मांगौं रामजी ॥ २ ॥
घर नहीं मांगौं बन नहीं मांगौ, तुम्ह हीं मांगौं देवजी ॥ ३ ॥
दादू तुम्ह बिन और न मांगौं, दर्सन मांगौं देहुजी ॥ ४ ॥

३१२—लखावे=मालूम हो। अपने अंग की=अपने पन की। दीन = निरभिमानी। लं
स्थिर वृत्ति। अछोप=अछूत, नहीं छूने जैसा।

३१४—विरह विनती

तू आपैं ही बिचारि, तुझ बिन क्यूं रहौं ।
मेरे और न दूजा कोइ, दुख किस कौ कहौं ॥ टेक ॥
मीत हमारा सोइ, आदैं जे पीया ।
मुझै मिलावै कोइ, वै जीवनि जीया ॥ १ ॥
तेरे नैंन दिखाइ, जीऊँ जिस आसि रे ।
सो धन जीवै क्यूं, नहीं जिस पासि रे ॥ २ ॥
पिंजर मांहैं प्राण, तुझ बिन जाइसी ।
जन दादू मांगैं मान, कब घरि आइसी ॥ ३ ॥

३१५

हूं जोइ रही रे वाट, तूं घरि आव ने ।
तारा दर्सन थी सुख होइ, ते तूं देखाड़ ने ॥ टेक ॥
चरण जौवा ने खांत, ते तूं देखाड़ ने ।
तुझ बिना जीव देइ, दुहेली कामनी ॥ १ ॥
नेणे निहारूं वाट, ऊभी चावनी ।
तूं अंतर थी ऊरौ आव, देही जावनी ॥ २ ॥
तूं दया करी घरि आव, दासी गांवनी ।
जण दादू राम संभाल, बैन सुहावनी ॥ ३ ॥

---

३१४—आपैं=आरंभ से हां । धन=स्त्री । मान = वरदान ।

३१५—बाट=राह । देखाड़=दिखाय । खांत=लगन । दुहेली=दुखी । चावनी = उत्सुक, आतुर । ऊरोआव=नजदीक आ, हृदयमें आ । घटि=अन्तःकरणमें । दासी=साधक । गांवनी = गुणगाण करता है, चिन्तन करता है । जण = भक्त को, साधको ।

३१६

पीव देखे बिन क्यूं रहौं, जिय तलफै मेरा।
सब सुख आनंद पाइये, मुख देखौं तेरा॥ टेक॥
पिव बिन कैसा जीवनां, मोहि चैन न आवै।
निर्धन ज्यूं धन पाइये, जब दरस दिखावै॥ १॥
तुम्ह बिन क्यूं धीरज धरौं, जौ लौं तोहि न पाऊँ।
सनमुख ह्वै सुख दीजिये, बलिहारी जाऊँ॥ २॥
विरह बियोग न सहि सकौं, काइर घट काचा।
पावन परसन पाइये, सुनि साहिब साचा॥ ३॥
सुनि यूं मेरी वीनती, इब दरसन दीजै।
दादू देखन पांवहीं, तैसैं कुछ कीजै॥ ४॥

३१७—प्रीति अखंडित

इहि बिधि बेध्यौ मोर मना, ज्यूं लै भृंगी कीट तना॥ टेक॥
चात्रिग रटतैं रैंनि बिहाइ, पिंड परै पै बानि न जाइ॥ १॥
मरै मीन बिसरै नहिं पानी, प्राण तजे उनि और न जानी॥२॥
जलै सरीर न मोड़ै अंगा, जोति न छाड़ै पड़ै पतंगा॥ ३॥
दादू इब थैं ऐसैं होइ, पिंड परै नहिं छाड़ौं तोहि॥ ४॥

३१८—विरह

आवौ राम दया करि मेरे, बार बार बलिहारी तेरे॥ टेक॥
विरहनि आतुर पंथ निहारै, राम राम कहि पीव पुकारै॥ १॥

---

३१६—पावन = पवित्र। परसन=एकता, अरसपरस।

३१७—लै=लय। पिंडपरै=प्राणजाय। बाँन=आदत, स्वभाव।

३१८—पंथीबूझै = रास्ते चलने वालों को पूछे। बप = शरीर। सुधि=खबर।

पंथी बूझै मारग जोवै, नैंन नीर जल भरि भरि रोवै ॥ २ ॥
निस दिन तलफै रहै उदास, आतम राम तुम्हारै पास ॥ ३ ॥
बप बिसरै तन की सुधि नांहीं, दादू विरहनि मृतक मांहीं ॥ ४ ॥

३१९—केवल विनती

निरंजन क्यूं रहै, मोनि गहैं बैराग, केते जुग गये ॥ टेक ॥
जागैं जगपति राइ, हंसि बोलै नहीं ।
परगट घूंघट मांहिं, पट खोलै नहीं ॥ १ ॥
सदिकै करौं संसार, सब जग वारणैं ।
छाड़ौं सब परिवार, तेरे कारणैं ॥ २ ॥
वारौं पिंड परान, पांऊं सिर धरूं ।
ज्यूं ज्यूं भावै राम, सो सेवा करूं ॥ ३ ॥
दीनानाथ दयाल ! विलंब न कीजिये ।
दादू बलि बलि जाइ, सेज सुख दीजिये ॥ ४ ॥

३२०

निरंजन यूं रहै, काहू लिपति न होइ,
जल थल थावर जंगमा, गुण नहीं लागै कोइ ॥ टेक ॥
धर अंबर लागै नहीं, नहिं लागै ससिहर सूर ।
पाणी पवन लागै नहीं, जहां तहां भरपूर ॥ १ ॥

---

३१९—क्यूं रहे=कैसे रहे । जागैजगपतिराइ=प्रकाशक परमात्मा कर्म फल देने को जाग रहा है सावधान है । घूंघटमाँहिं=माया अविद्या के आवरण में । पट=पड़दा हृदय कपाट । सिदके करौं=समर्पण करूँ । संसार=संसार की सब वस्तुएँ ।

३२०—यूं रहै=इस तरह परमात्मा में रह सकते हैं । लिपत=आसक्त । लागैं नहीं=उनमें स्नेह करे नहीं । इकलस=एकरूप । दादू खेले सेज=मन, वचन, सुरति की त्रिपुटी

निस बासुरि लागै नहीं, नहिं लागै सीतल घाम ।
खुध्या त्रिषा लागै नहीं, घटि घटि आतमराम ॥ २ ॥
माया मोह लागै नहीं, नहीं लागै काया जीव ।
काल करम लागै नहीं, प्रगटै मेरा पीव ॥ ३ ॥
इकलस एकै नूर है, इकलस एकै तेज ।
इकलस एकै जोति है, दादू खेलै सेज ॥ ४ ॥

३२१

जग जीवन प्राण अधार, वाचा पालणा ।
हौं कहां पुकारौं जाइ, मेरे लालना ॥ टेक ॥
मेरे बेदन अंगि अपार, सो दुख टालना ।
सागर ये निस्तारि, गहरा अति घणा ॥ १ ॥
अंतर है सो टालि, कीजै आपणा ।
मेरे तुम्ह बिन और न कोइ, इहै बिचारणा ॥ २ ॥
ताथैं करौं पुकार, यहु तन चालणां ।
दादू कौ दर्सन देहु, जाइ दुख सालणा ॥ ३ ॥

३२२—मनकां नीकी बिनती

मेरे तुम हीं राखणहार, दूजा को नहीं ।
ये चंचल चहुँ दिसि जाइ, काल तहीं तहीं ॥ टेक ॥
मैं केते किये उपाइ, निहचल ना रहै ।
जहं बरजौं तहं जाइ, मदि मातो बहै ॥ १ ॥

---

रूपी सेज में सन्त साधक वृत्ति को रोक आत्मरूप को देखते हैं ।

३२१—वाचापालणां=अपनी भक्त वत्सलता का पालन करो । लालना=परमप्रिय

वेदन=पीडा । सागर=संसार समुद्र । अन्तर है=द्वैत है' भेद ।

३२२—ये=मन, इन्द्रियें । काल=विषय भोग । निहचल=आत्मा में स्थिर । वमाइ=

जहं जाणौं तहं जाइ, तुम्ह थैं ना डरै ।
तासौं कहा बसाइ, भावै त्यूं करै ॥ २ ॥
सकल पुकारैं साधु, मैं केता कह्या ।
गुरु अंकुस मानै नहीं, निरभै ह्वै रह्या ॥ ३ ॥
तुम्ह बिन और न कोइ, इस मन कौं गहै ।
तूं राखै राखणहार, दादू तौ रहै ॥ ४ ॥

३२३—संसार कातीकी विनती

निरंजन काइर कंपै प्राणिया, देखि यहु दरिया ।
वार पार सूझै नहीं, मन मेरा डरिया ॥ टेक ॥
अति अथाह ये भौ जला, आसंघ नहिं आवै ।
देखि देखि डरपै घणां, प्राणी दुख पावै ॥ १ ॥
बिष जल भरिया सागरा, सब थके सयाना ।
तुम्ह बिन कहु कैसैं तिरौं, मैं मूढ अयाना ॥ २ ॥
आगैही डरपै घणां, मेरी का कहिये ।
कर गहि काढौ केसवा, पार तौ लहिये ॥ ३ ॥
एक भरोसा तौर है, जे तुम्ह होहु दयाला ।
दादू कहु कैसै तिरै, तूं तारि गोपाला ॥ ४ ॥

३२४—उपदेश समरथ

समर्थ मेरा सांइयां, सकल अघ जारै ।
सुखदाता मेरे प्राण का, संकोच निवारै ॥ टेक ॥

---

६२३—काइर = भयभीत । कंपै=डरै । यहुदरिया=संसारसागर । आसंघ=धारणा में । घणां=अनेक ।

३२४—अघ=पाप । चौथे = तुर्यावस्था में । दारन=कठिन । यंछया=इच्छा । जन=साधक ।

त्रिविध ताप तन की हरै, चौथे जन राखै।
आप समागम सेवगा, साधू यूं भाखै॥ १॥
आप करै प्रतिपालना, दारन दुख टारै।
यंछ्या जन की पूरवै, सब कारिज सारै॥ २॥
करम कोटि भै भंजना, सुख मंडन सोई।
मन मनोर्थ पूरणा, ऐसा और न कोई॥ ३॥
ऐसा और न देखि हौं, सब पूरण कामा।
दादू साधु संगी किये, उनि आतम रामा॥ ४॥

३२५—मन की विनती

तुम्ह बिन राम कवन कलि मांहीं, विषिया थैं कोइ वारै रे।
मुनियर मोटा मनवै बाह्या, येन्हां कौन मनोरथ मारै रे॥ टेक
छिन एकैं मनवौं मर्कट माहरो, घर घर बारि नचावै रे।
छिन एकैं मनवौं चंचल माहरो, छिन एकैं घरमां आवै रे॥ १
छिन एकैं मनवौं मीन अम्हारो, सचराचर मां ध्यायोरे।
छिन एकैं मनवौं उदमदि मातौ, स्वादै लागौ खायेरे॥ २॥
छिन एकैं मनवौं जोति पतंगा, भूमि भूमि स्वादैं दाझै रे।
छिन एकैं मनवौं लोभैं लागौ, आपा पर मैं बाझै रे॥ ३।
छिन एकैं मनवौं कुंजर माहरौ, बन बन मांहिं भ्रमाड़ै रे।
छिन एकैं मनवौं कामी माहरौ, बिसिया रंग रमाड़ै रे॥ ४

पूरवै=पूरी करे।

३२५—वारै=टालै। वाह्या = चलाया। येन्हां = मनके। उदमदि = उन्मत्त। दा

छिन एकैं मनवौं मिरग अम्हारौ, नादैं मोह्यो जाये रे ।
छिन एकैं मनवौं माया रातौ, छिन एकैं अम्हनैं वाहै रे ॥ ५ ॥
छिन एकैं मनवौं भंवर अम्हारौ, बासैं कंवल बधाणौं रे ।
छिन एकैं मनवौं चहुँ दिसि जाये, मनवां नै कोई आणैं रे ॥ ६ ॥
तुझ बिन राखै कौंण बिधाता, मुनियर साखी आणैं रे ।
दादू मृतक छिनमां जीवै, मनवां चरित न जाणैं रे ॥ ७ ॥

३२६—बेखर्च व्यसनी

करणी पोच, सोच सुख करई, लोह की नाव कैसैं भौ जल तिरई ।टेक।
दिखन जात, पछिम कैसैं आवै, नैंन बिन भूलि बाट कत पावै ॥१॥
विष बन बेलि, अमृत फल चाहै, खाइ हलाहल, अमर उमाहै ॥२॥
अगनि गृह पैंसि करि, सुख क्यूं सोवै,
जलणि जागी घणी, सीत क्यूं होवै ॥ ३ ॥
पाप पाखंड कीयें, पुण्य क्यूं पाइये ।
कूप खनि पड़िबा, गगन क्यूं जाइये ॥ ४ ॥
कहै दादू मोहि अचिरज भारी, हिरदै कपट क्यूं मिलैं मुरारी ॥५॥

३२७—परचै प्राप्ति

मेरा मनके मन सौं मन लागा, सबद के सबद सौं नाद बागा ॥टेक॥
श्रवण के श्रवण सुणि सुख पाया, नैंन कै नैन सौं निरखि राया ॥१॥
प्राण के प्राण सौं खेलि प्राणी, मुख के मुखसौं बोलि बाणी ॥२॥
जीव के जीवसौं रंगि राता, चित्त के चित्तसौं प्रेम माता ॥३॥

वाझै=भागे, दौडे । मिरग=मृग । नादै=शब्द में । वाहै=वहकावे ।

३२६—पोच=हलकी, बुरी । नैनविन=ज्ञान विचार के नेत्रों विना । उमाहै=आशा करे ।

३२७- मनके मनसों=समष्टि मन से । नादवागा=शब्द वजा । आगे श्रवण, नैंन, प्राण,

३३२—विरह विनती

देहुजी देहुजी, प्रेम पियाला देहुजी, देकरि बहुरि न लेहुजी ॥टेक॥
ज्यूं ज्यूं नूर न देखौं तेरा, त्यूं त्यूं जियरा तलफै मेरा ॥ १ ॥
अमी महारस नांव न आवै, त्यूं त्यूं प्राण बहुत दुख पावै ॥ २ ॥
प्रेम भगति रस पावै नाहीं, त्यूं त्यूं सालै मनही मांहीं ॥ ३ ॥
सेज सुहाग सदा सुख दीजै, दादू दुखिया विलंब न कीजै ॥ ४ ॥

३३३—परचै विनती

वरिषहु राम अमृत धारा,
झिलिमिलि झिलिमिलि सींचनहारा ॥ टेक ॥
प्राण वेलि निज नीर न पावै, जलहर बिना कंवल कुमिलावै ॥ १ ॥
सूकै बेलि सकल वनराइ, रामदेव जल वरिषहु आइ ॥ २ ॥
आत्म बेलि मरै पियास, नीर न पावै दादू दास ॥ ३ ॥

इति राग गुड़ समाप्त ॥ २० ॥

दृष्टान्त—*सांभर में गाली दई, गुरु दादू को आइ ॥*
*तबही शब्द यह उचर्‌यो, धर्‌ा मिठाई पाइ ॥ १ ॥*

३३३—निज=साक्षी चेतन का परिचय । जलहर=पानी । वनराइ=वनस्पति । आत्मवेलि=साधक की जीवन वेल ।

*❀ इति राग गुड़ समाप्त ❀*

# अथ राग बिलावल ॥ २१ ॥

३३४—परचै विनती

दया तुम्हारी दरसन पइये, जानत हौ तुम्ह अंतरजामी।
जानराइ तुम सौं कहा कहिये ॥ टेक ॥
तुम्ह सौं कहा चतुराई कीजे, कौंण कर्म करि तुम्ह पाये।
को नहिं मिलै प्राण बल आपणैं, दया तुम्हारी तुम्ह आये ॥ १ ॥
कहा हमारौ आनि तुम्ह आगैं, कौंण कला करि बसि कीये।
जीतैं कौंण बुधि बल पौरिष, रुचि अपनी तैं सरनि लीये ॥ २ ॥
तुम्हही आदि अंति पुनि तुम्हही, तुम्ही कर्ता त्रिय लोक मंझारि।
कुछ नांहीं थैं कहा होत है, दादू बलि पावै दीदार ॥ ३ ॥

३३५—विनती

मालिक मेहरवान करीम,
गुनहगार हररोज हरदम, पनह राखि रहीम ॥ टेक ॥
अव्वल आखिर बंदा गुनही, अमल बद बिसियार।
गरक दुनिया सितार, साहिब, दरदवंद पुकार ॥ १ ॥
फरामोस नेकी बदी, करदः बुराई बद फैल।
बखसिंदः तूं अजीव आखिर, हुक्म हाजिर सैल ॥ २ ॥
नाम नेक रहीम राजिक, पाक परवरदिगार।
गुनह फिल करि देहु दादू, तलब दर दीदार ॥ ३ ॥

३३४—जानराइ=सब कुछ जानने वाले। प्राणबल=अपनी शक्ति। आनि=और। कलाकरि=उपायकर।

३३५—पनह=शरण, चरण में। अव्वल=पहला। गुनही=अपराधी। अमल बद बसियार=बुरी

३३६

कौण आदमी कमींण विचारा, किसकूं पूजै गरीब पियारा ॥टेक॥
मैं जन एक अनेक पसारा, भौजन भरिया अधिक अपारा ॥१॥
एक होइ तौ कहि समझाऊं, अनेक अरुझे क्यूं सुरझाऊं ॥ २।
मैं हौं निबल सबल ये सारे, क्यूं करि पूजौं बहुत पसारे ॥३॥
पीव पुकारौं समझत नाहीं, दादू देखु दसौं दिसि जांहीं ॥ ४।

३३७—उपदेस चितावणी

जागहु जियरा काहे सोवै, सेइ करीमां तौ सुख होवै ॥ टेक ॥
जाथैं जीवन सोतैं बिसारा, पछिम जाना पंथ न संवारा।
मैं मेरी करि बहुत भुलाना, अजहूं न चेतै दूरि पयाना ॥ १ ॥
सांई केरी सेवा नांहीं, फिरि फिरि डूबै दरिया मांहीं।
ओर न आवै, पार न पावा, झूठा जीवन बहुत भुलावा ॥ २ ॥
मूल न राख्या, लाह न लीया, कौड़ी बदलै हीरा दीया।
फिर पछिताना सबलु नांहीं, हारि चल्या क्यूं पावै सांई ॥
इब सुख कारणि फिर दुख पावै, अजहूं न चेतै क्यूं डहिकावै।
दादू कहै सीख सुणि मेरी, कहु करीम संभालि सवेरी ॥ ४ ॥

---

आदतों के वश में हूँ। गरक=डूबा हुआ। सितार=निस्तारक । दरदवंद=दु
फरामोस नेकां=भलाई को भूलता हूँ। बदी करदः=बुराई करता हूँ। बद्फैल
चालचलन। बखसिंदः=बखशीसकर। सैल=स्वतः सहज । परवरदिगार=पा
गुनह=कसूर। फिल करि देहु=माफ करदो। तलब=आकाँक्षी, चाहनावाला।
हृदय में। दीदार=दर्शनका।

३३६—कमींण=नीच। अनेक पसारा=संसार के अनन्त पदार्थ। अरुझे=उलझे। क्यूं=
पूजौं=बराबरी करूँ।

३३७—जाथैं=जिससे। पछिमजाना=अधोगति में गया। दूरि पयाना=पहुंचना
ओर=अन्त। मूल=नरतन। लाह=लाभ। सबलु=संभला, सचेष्ट हुवा।

३३८

बार बार तन नहीं बावरे, काहे कौ बादि गवांवै रे ।
बिनसत बार कछू नहिं लागै, बहुरि कहा कौ पावै रे ॥ टेक ॥
तेरे भाग बड़े भाव धरि कीन्हा, क्यूं करि चित्र बनावै रे ।
सो तूं लेइ विषै मैं डारै, कंचन छार मिलावै रे ॥ १ ॥
तूं मति जानै बहुरि पाइये, अबकै जनि डहिकावै रे ।
तीनि लोक की पूंजी तेरै, बनजि बेगि सो आवै रे ॥ २ ॥
जब लग घट मैं सास वास है, तब लग काहे न धावै रे ।
दादू तन धरि नांउ न लीन्हा, सो प्राणी पछितावै रे ॥ ३ ॥

३३९

राम बिसार्यो रे जगनाथ,
हीरा हार्यो देखत ही रे, कौडी कीन्ही हाथ ॥ टेक ॥
काच हुता कंचन करि जानै, भूल्यो रे भ्रम पास ।
साचे सो पल परचा नांहीं, करि काचे की आस ॥ १ ॥
विष ताकौं अमृत करि जानै, सो संग न आवै साथ ।
सैंबल के फूलन परि फूल्यौ, चूकौ अब की घात ॥ २ ॥
हरि भजि रे मन सहजि पिछानैं, ये सुनि साची बात ।
दादू रे इब थैं करि लीजे, आव घटै दिन जात ॥ १ ॥

३४०— मन

मन चंचल मेरौ कह्यो न मानै, दसौं दिसा दौरावै रे ।
आवत जात बार नहिं लागै, बहुत भांति बौरावै रे ॥ टेक ॥

---

३३८—कंचन=सोना । छार = राख में । डहिकावे = वहकै । वनजि = व्यापार कर ।

३३९—हुता=था । पल=रति भर । घात=मौका ।

३४०—दौरावे=दौड़ावे । बौरावै=बहकावे । निमष=पल ।

बेर बेर वरजत या मन कौ, किंचित सीख न मानै रे।
ऐसे निकसि जात या तन थैं, जैसे जीव न जानै रे ॥ १ ॥
कोटिक जतन करत या मन कौ, निह्चल निमष न होई रे।
चंचल चपल चहूँ दिसि भरमैं, कहा करै जन कोई रे ॥ २ ॥
सदा सोच रहत घट भीतरि, मन थिर कैसे कीजै रे।
सहजैं सहज साधु की संगति, दादू हरि भजि लीजै रे ॥ ३ ॥

३४१-माया

इन कामनि घर घाले रे।
प्रीति लगाइ प्राण सब सोषै, बिन पावक जिय जालै रे ॥ टेक।
अंगि लगाइ सार सब लेवै, इन थैं कोई न बाचै रे।
यहु संसार जीति सब लीया, मिलन न देई साचै रे ॥ १ ॥
हेत लगाइ सबै धन लेवै, बाकी कछू न राखै रे ॥
माखन मांहिं सोधि सब लेवै, छाछ छिया करि नाखै रे ॥ २ ॥
जे जन जानि जुगति सौं त्यागैं, तिन कौ निज पद परसै रे।
काल न खाइ मरैं नहिं कबहूँ, दादू तिनकौ दरसै रे ॥ ३ ॥

३४२-वेसास

जनि सत छाड़ै बावरे, पूरिक है पूरा,
सिरजे की सब चिंत है, देवे कौं सूरा ॥ टेक ॥
गर्भवास जिन राखिया, पावक थैं न्यारा।
जुगति जतन करि सींचिया, दे प्राण अधारा ॥ १ ॥

---

३४१—घरघाले=घर नष्ट किये। सारा=तत्व, शुक्र। वाचै=बचे। छियाकरि=निक समझकर। जुगति=नामचिन्तन, मनोनिरोध के उपाय से।

३४२—सत=सच्चे परमात्मा को। सिरजे की=पैदा किये हुये की। चिंत=है=ख़याल

कुंज कहां धरि संचरै, तहां को रखवारा ।
हेम हरत जिन राखिया, सो खसम हमारा ॥ १ ॥
जल थल जीव जिते रहैं, सो सब कौ पूरै ।
संपट सिला मैं देत है, काहे नर झूरै ॥ १ ॥
जिन यहु भार उठाइया, निर्वाहै सोई ।
दादू छिन न विसारिये, तार्थें जीवन होई ॥ ३ ॥

३४३

सोई राम संभालि जियरा, प्राण पिंड जिन दीन्हा रे ।
अंबर आप उपावनहारा, मांहिं चित्र जिन कीन्हा रे ॥ टेक ॥
चंद सूर जिन किये चिराका, चरनौं बिना चलावै रे ।
इक सीतल इक ताता डोलै, अनन्त कला दिखलावै रे ॥ १ ॥
धरती धरनि बरनि बहु वाणी, रचिले सप्त समंदा रे ।
जल थल जीव संभालनहारा, पूरि रह्या सब संगा रे ॥ २ ॥
प्रगट पवन पानी जिन कीन्हा, वरिषावै बहु धारा रे ।
अठार भार बिरख बहु विधि के, सबका सींचनहारा रे ॥ ३ ॥
पंच तत्त जिन किये पसारा, सब करि देखन लागा रे ।
निहचल राम जपी मेरे जियरा, दादू तार्थें जागा रे ॥ ४ ॥

३४४—परचै

जब मैं रहते की रह जानी,
काल काया के निकटि न आवै, पावत है सुख प्राणी ॥टेक॥

संचरै = पोषण करे । हेम हरत=हिमालय में, बर्फ में । संपट=बीच में ।
३४३—रचिले = रचे । समंदा=समुद्र ।
३४४—रहते=परमात्मा की । रह=रहस्य, भेद । सोग=शोक ।

सोग संताप नैन नहिं देखौं, राग दोष नहिं आवै।
जागत है जासौं रुचि मेरी, सुपिनैं सोइ दिखावै ॥ १ ॥
भरम करम मोह नहिं ममिता, वाद विवादन जानौं।
मोहन सौं मेरी बनि आई, रसना सोई बखानौं ॥ २ ॥
निस वासुरि मोहन तनि मेरे, चरन कंवल मन मानैं।
सोई निधि निरखि देखि सचु पाऊं, दादू और न जानैं ॥ ३ ॥

३४५

जब मैं साचे की सुधि पाई,
तब थैं अंगि और नहिं आवै, देखत हूँ सुखदाई ॥ टेक ॥
ता दिन थैं तनि ताप न व्यापैं, सुख दुख संगि न जाऊँ।
पावन पीव परसि पद लीन्हा, आनंद भरि गुन गाऊँ।
सब सौं संग नहीं पुनि मेरे, अरस परस कुछ नांहीं।
एक अनंत सोई संगि मेरे, निरखत हौं निज मांहीं ॥ २ ॥
तन मन मांहिं सोधि सो लीन्हां, निरखत हौं निज सारा।
सोई संग सबै सुखदाई, दादू भाग हमारा ॥ ३ ॥

३४६—साच निदान

हरि बिन निहचल कहीं न देखौं, तीनि लोक फिरि सोधा रे।
जे दीसै सो विनसि जाइगा, ऐसा गुरु परमोधा रे ॥ टेक ॥
धरती गगन पवन अरु पानी, चंद सूर थिर नांहीं रे।
रैंनि दिवस रहत नहिं दीसै, एक रहै कलि मांहीं रे ॥ १ ॥

---

३४५—सुधि=खबर। सब सौं=संसार के पदार्थों से।

३४६—निहचल=अचल। सोधा=तलाश किया। परमोधा=उपदेश दिया। एक=

पीर पैगंबर सेष मसाइक, सिव विरंच सब देवा रे ।
कलि आया सो कोइ न रहसी, रहसी अलख अभेवा रे ॥ २ ॥
सवालाख मेर गिरि पर्वत, समँद न रहसी थीरा रे ।
नदी निवान कछू नहिं दीसै, रहसी अकल सरीरा रे ॥ ३ ॥
अविनासी औ एक रहेगा, जिन यहु सब कुछ कीन्हा रे ।
दादू जाता सब जग देखौं, एक रहत सो चीन्हा रे ॥ ४ ॥

३४७—पतिव्रता

मूल सींचि बधै ज्यूं बेला, सो तत तरवर रहै अकेला ॥ टेक ॥
देवी देखत फिरै ज्यूं भूले, खाइ हलाहल विषै कौ फूले ।
सुख कौ चाहै पड़ै गलि पासी, देखत हीरा हाथ थैं जासी ॥ १ ॥
केइ पूजा रचि ध्यान लगावैं, देवल देखैं खबरि न पावैं ।
तोरैं पाती जुगति न जानी, इहि भूमि भूलि रहे अभिमानी ॥२॥
तीर्थ व्रत न पूजैं आसा, वनखंडि जांहिं रहैं उदासा ।
यूं तप करि करि देह जलावैं, भर्मत डोलैं जन्म गवावैं ॥ ३ ॥
सतगुरु मिलै न संसा जाइ, ये बंधन सब देइ छुड़ाइ ।
तब दादू परम गति पावै, सो निज मूरति मांहिं लखावै ॥ ४ ॥

३४८—साधु परीक्षा

सोई साधु सिरोमणी, गोविंद गुण गावै ।
राम भजै विषिया तजै, आपा न जनावै ॥ टेक ॥

---

चेतन परमात्मा । अकल=कलन रहित, समष्टि चेतन ।

३४७—तत तरवर=तत्व वृक्ष । पूजा रचि = पार्थिव पूजा । तोरैं पाती=तुलसी के पत्ते तोड़ते फिरते हैं ।

३४८—निंद्या=बुराई । पर आतम जानै=दूसरे को अपने सम समझै । आपा पर अंतर

मिथ्या मुखि बोलै नहीं, पर निंदा नांहीं ।
औगुण छाड़ै गुण गहै, मन हरि पद मांहीं ॥ १ ॥
निर्वैरी सब आत्मा, पर आतम जानै ।
सुखदाई समिता गहै, आपा नहिं आनै ॥ २ ॥
आपा पर अंतर नहीं, निर्मल निज सारा ।
सतवादी साचा कहै, लै लीन विचारा ॥ ३ ॥
निर्भै भजि न्यारा रहै, काहू लिपत न होई ।
दादू सब संसार मैं, ऐसा जन कोई ॥ ४ ॥

३४९—परचै परीक्षा

राम मिल्या यूं जानिये, जाकौ काल न व्यापै ।
जरा मरण ताकौ नहीं, अरु मेटै आपै ॥ टेक ॥
सुख दुख कबहूं न ऊपजै, अरु सब जग सूझै ।
करम को बांधै नहीं, सब आगम बूझै ॥ १ ॥
जागत व्है सो जन रहै, अरु जुगि जुगि जागै ।
अंतरजामी सौं रहै, कछु काई न लागै ॥ २ ॥
काम दहै सहजैं रहै, अरु सुन्य विचारै ।
दादू सो सबकी लहै, अरु कबहूं न हारै ॥ ३ ॥

३५०—समता ज्ञान

इन बातनि मेरा मन मानैं, दुतिया दोइ नहीं उर अंतरि ।
येक येक करि पीवकौं जानै ॥ टेक ॥

---

नहीं=भेद भाव के विचार नहीं । लैलीन=ध्यान समाधि में ।

३४९—यूं=ऐसे । आपै=अपना अहंकार । सूझै=ज्ञान विचार से दीखे । जागत व्है हो, सावधान हो । काई=मैल । सुंन्य विचारे = सहज अवस्था प्राप्त करे ।

३५०—दुतिया दोइ=मैं तूं का भेद । येक येक करि=एक ही आत्मदृष्टि कर

पूरण ब्रह्म देखै सबहिन मैं, भर्म न जीव काहूं थैं आनै।
होइ दयाल दीनता सबसौं, अरि पांचनि कौ करैं किसानै ॥१॥
आपा पर सम सब तत चीन्है, हरि भजै केवल जस गानै।
दादू सोई सहजि घरि आनै, संकुट सबै जीव के भानै ॥ २ ॥

३५१—परचै

ये मन मेरा पीवसौं, औरनि सौं नांहीं।
पीव बिन पलहि न जीव सौं, येह उपजै नांहीं ॥ टेक ॥
देखि देखि सुख जीव सौं, तहां धूप न छांहीं।
अजरावर मन बंधिया, ताथैं अनत न जाहीं ॥ १ ॥
तेज पुंज फल पाइया, तहां रस खाहीं।
अमर बेलि अमृत झरै, पीव पीव अघाहीं ॥ २ ॥
प्राणपती तहं पाइया, जहं उलटि समाहीं।
दादू पीव परचा भया, हियरे हित लाई ॥ ३ ॥

३५२

आजि परभाति मिले हरि लाल,
दिलकी विथा पीड़ सब भागी, मिट्यो जीव कौ साल ॥ टेक ॥
देखत नैंन संतोष भयो है, इहै तुम्हारो ख्याल।
दादू जन सौं हिलि मिलि रहिबौ, तुम्ह हौ दीन दयाल ॥ १ ॥

---

वैरी। पांचनि=पांचों इन्द्रियाँ। किसानै=उखाड़ फेंके। भानै=नष्ट करे।

३५१—तेज पुंज=अखंड प्रकाश। तहां=अभेद दशा में। रस=आत्मानन्द रस। अमर बेलि=आत्मनिष्ठ स्थिर वृत्ति। अमृत=आनन्द।

३५२—परभाति=सवेरे ही, समय रहते। साल=दुःख। ख्याल=रचना।

सब कुछ इथैं आववे, इथां परमानंद वे।
दादू आपा दूरि करि, हरि इथांईं आनंद वे ॥ ३ ॥

॥ इति राग बिलावल समाप्त ॥ २१ ॥

## अथ राग सूहौ ॥ २२ ॥

३५५—विनती

तुम्ह बिचि अंतर जनि परै माधव, भावै तन धन लेहु ।
भावै सरग नरक रसातल, भावै करवत देहु ॥ टेक ॥
भावै विपति देह दुख संकुट, भावै संपति सुख सरीर ।
भावै घर वन राव रंक करि, भावै सागर तीर ॥ १ ॥
भावै बंध मुकत करि माधव, भावै त्रिभुवन सार ।
भावै सकल दोष धरि माधव, भावै सकल निवारि ॥२॥
भावै धरनि गगन धरि माधव, भावै सीतल सूर ।
दादू निकटि सदा संगि माधव, तूं जनि होवै दूरि ॥३॥

३५६—परचै

इब हम राम सनेही पाया, आगम अनहद सौं चित लाया ॥टेक॥
तन मन आतम ताकौं दीन्हा, तब हरि हम अपना करि लीन्हा ॥१॥

---

यहीं आ।
३५५—भावै=चाहे। रंक = दरिद्री। सकल दोष=सब बुराई।
३५६—अनहद=असीम, सर्वव्यापक। पहिली सीस = पहिले आत्मसमर्पण करने से।

वाणी विमल पंच पराना, पहिली सीस मिले भगवाना ॥२
जीवत जनम सुफल करि लीन्हा, पहली चेते तिन भल कीन्हा ॥३
औसरि आपा ठौर लगावा, दादू जीवत ले पहुँचावा ॥४

---

# अथ काया बेली ग्रंथ राग सूहो

३४७

साचा सतगुरु राम मिलावे, सब कुछ काया मांहिं दिखावे ॥टेक
काया मांहै सिरजनहार, काया मांहै ओंकार ।
काया मांहै है आकाश, काया मांहै धरती पास ॥
काया मांहै पवन प्रकाश, काया मांहै नीर निवास ।
काया मांहै ससि हर सूर, काया मांहै बाजे तूर ॥

---

परमेश्वर सब जगह व्यापक है पर वह गुरुकृपा बिना प्राप्त नहीं होता। संस
जो कुछ सार वस्तु है वह सब सद्गुरु कायामें ही दिखा देते हैं। संसारका आधारभूत
अधिष्ठान चेतन है वही सिरजनहार हमारे शरीरमें है। जैसे ॐकार शब्दसे सम्पूर्ण
सृष्टि होती है उसी तरह अनहद शब्दरूप से ॐकार हमारे शरीर में स्थित है, हमारे
की गति उसीके आधीन है। जैसे महाकाशमें संसारके सब पदार्थ आश्रय पाते हैं, वै
सन्त साधकका समभाव है वही आकाश है, उसमें सब प्राणिमात्र आदर पाते हैं।
पृथ्वीमें अत्यन्त सहनशीलता है उसी तरह सन्त महात्मा क्षमारूप धरती को शरीरमें
करते हैं। जैसे बाह्य संसारमें वायु प्राणदायक है उसी तरह शरीरमें भी प्राणवायु
का प्रकाशक है। जैसे बाह्यसृष्टिमें जलसे हरियाली है, सरसता है, आनन्द है, वैसे ही
में भी ज्ञानरूपी नीरसे सरसता व आनन्दकी प्राप्ति होती है। जैसे बाह्य संसारमें सू
चन्द्रमा प्रकाश करते हैं वैसे मन और प्राण आत्मामय होकर शरीरलोकको प्
करते हैं। चन्द्रमा जिसका देवता है उस मनकी ये सोलह कलायें हैं—शांति,
क्षमा, उदारता, निर्मलता, स्थैर्य, निर्भय, निःशङ्क, समता, निर्लोभता, निर्ममता, निरहं

**काया मांहै तीन्यूं देव, काया मांहै अलख अभेव ।**
**काया मांहै चारों वेद, काया मांहै पाया भेद ॥**
**काया मांहै चारों खाणी, काया मांहै चारों वाणी ।**
**काया मांहै उपजै आइ, काया मांहै मर मर जाइ ॥**

ब्रह्मवीर्यता, ज्ञान, आनन्द, निर्वाण । प्राणका अधिपति सूर्य है वह बारह कलामय है । बारह कलायें हैं—चिंता, तरंग, डिम्भ, माया, परिग्रह, प्रपञ्च, हेत, बुद्धि, काम, लोभ, क्रोध, दृष्टि । संसारमें जैसे शब्द व्याप्त है उसी तरह कायामें अनहद शब्द व्यापक है ।

लोक में जैसे ब्रह्मा विष्णु महेश तीन देवों की प्रमुखता है वैसे ही कायालोक में सतोगुण विष्णु, रजोगुण ब्रह्मा, तमोगुण महेश की प्रमुखता है । लोक में जैसे माया अविद्या रहित समष्टि चेतन व्याप्त है वैसे ही गुणातीत चेतन इस काया में अलख अभेव रूप में विद्यमान है । जैसे लोक में ऋक्, यजु, साम, अथर्व चार वेदों की प्रसिद्धि है काया में भी नामचिन्तनरूप ऋग्, जरणारूप यजु, सहनशीलतारूप साम और अनुभवरूप अथर्व प्रसिद्ध है । जैसे अविद्या-उपाधि से लोक में नानात्व है उसी तरह काया-उपाधि से भेदज्ञान होता है औपाधिक भेदज्ञान की निवृत्ति इस शरीर द्वारा साधना कर सत्य ज्ञान की प्राप्ति से होती है अतः इस काया ही से ज्ञान का रहस्य प्राप्त होता है ।

जैसे लोक में जरायुज, अंडज, उद्भिज्ज, स्वेदज चतुर्विध प्राणी सृष्टि है उसी तरह इस काया में आत्मा, मन, प्रकृति, शरीर तथा नाड़ी, नेत्र, रोमकूप, अस्थियें ऐसे चतुर्विध सृष्टि है ।

जैसे लोक में ब्रह्मवाणी परा, देववाणी पश्यन्ती, पशुपक्षियों की वाणी मध्यमा, मनुष्यों की वाणी वैखरी है, वैसे ही काया लोक में नाभि, हृदय, कंठ, मुख की क्रमशः परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणी हैं ।

जैसे लोक में उत्पत्ति और मृत्यु का प्रवाह बराबर चलता रहता है, वैसे ही काया लोक में भी अन्तःकरण में अनन्त वृत्तियो की तरंग रूप में उत्पत्ति तथा विलय का क्रम चलता रहता है ।

**काया मांहै जामै मरै, काया मांहै चौरासी फिरै ।**
**काया मांहै ले अवतार, काया मांहै बारम्बार ॥**
**काया मांहै रात दिन, उदै अस्त इक तार ।**
**दादू पाया परम गुरु, कीया एकं कार ॥**

३२८

**काया मांहै खेल पसारा, काया मांहै प्राण अधारा ।**
**काया मांहै अठारह भारा, काया मांहै उपावन हारा ॥**

जैसे लोक में अनन्त प्राणी जन्मते तथा मरते रहते हैं, वैसे ही इस का मन के अनन्त मनोरथों के जन्म तथा मृत्यु होती रहती है। जैसे लोक में प्रा लाख योनियों का परिभ्रमण करतारहता है वैसे हो इस काया लोक में यह भी विविध वासनाओं से प्रेरित चौरासी लाख से भी अधिक भावनाओं में परि रहता है।

लोक में पुनः पुनः धर्मस्थिति की स्थापना के लिये परमेश्वर के नृ मच्छ, राम, कृष्ण, वामनादि रूप में अवतार होते रहते हैं, वैसे ही इस काया मनोनुबन्धी जीवात्मा सत्व, रज, तम की प्रधानता से विविध रूपों में पुनः पुनः रहता है।

लोक में जैसे सूर्य के उदय तथा अस्त से रात दिन का एक तार लग वैसे ही इस काया लोक में भी ज्ञान और अज्ञान दशा से दिन रात का अनु रहता है।

दादूजी महाराज कहते हैं परमगुरु की प्राप्ति होने से लोक का सब में ही प्राप्त हो गया है। परम गुरु की अनुकम्पा से ही द्वैतभावनाओं की निवृ अद्वैत निष्ठा है उसकी प्राप्ति हो गई है।

जैसे लोक में राजा, प्रजा, धनी, कंगाल, दुःखी, सुखी आदि विवि पड़ती हैं वैसे ही इस काया लोक में भी दिखाई पड़ती हैं। जिसका मन नि निर्मल, आत्माभिमुख है वह राजा सम है। जिसका मन विविधवासनाओं से

**काया मांहै सब बन राइ, काया मांहै रहे घर छाइ ।**
**काया मांहै कंदलि वासा, काया मांहै है कैलाशा ॥**

**काया मांहै तरवर छाया, काया मांहै पंखी माया ।**
**काया मांहै आदि अनंत, काया मांहै है भगवंत ॥**

है वह पूजा की तरह विविध भोग त्रास से पीड़ित होता है। जो व्यक्ति पृत्येक श्वास निश्वास का बूह्मचिंतन में लय करता है वह धनी है। जिसके श्वास पृश्वास निंदा, स्तुति, तथा भोगवासना में व्यतीत होते हैं वह कंगाल है। जिसका अन्तःकरण आत्माभिमुख है, जिसने देह अध्यास को त्याग दिया है वह सुखी है। जो वासना से पूरित है, मल विक्षेप से पीडित है वह दुःखी है।

जैसे लोक में स्रष्टा समष्टि चेतन उसका आधार है उसी तरह काया में व्यष्टि चेतन है वही काया का आधार है। जैसे लोक में अठारह भार हैं उसी तरह इस काया में भी रस रक्तादि धातु, केश रोम नख स्तन्यादि उपधातु, मल मूत्र स्वेदादि अठारह भारवत् हैं। जैसे लोक में मायोपहित समष्टिचेतन बूह्माण्ड का रचयिता है उसी तरह व्यष्टिचेतन कायोपहित स्वकर्मानुसार काया में निवास करता है।

जैसे लोक में विविध बनराइ हैं उन सब में एक ही उनका स्रष्टा मौजूद है उसी तरह इस काया लोक में भी मन पूाण इन्द्रियादि बनों का एक ही बनराइ चेतन आत्मा है। लोक में जैसे पूाणी विविध घर बना निवास करते हैं ऐसे काया लोक में भी हृदयरूपी घर में साधक सन्त स्थिर हो आत्मचिंतन करते हैं।

जैसे लोक में साधक विविध गुफाओं में तथा हिमालय के कैलाशादि स्थानों में निवास कर आत्मचिंतन करते हैं वैसे ही काया लोक में हृदयरूपी गुफा तथा इन्द्रियाधार मस्तिष्करूपी कैलाश में वृत्ति को विलय कर साधक साधना करते हैं।

लोक में अनन्त वृक्ष व पक्षी जातियां हैं उसी तरह कायालोक में भी ब्रह्मरूप निगु'ण आत्मस्वरूप के परिचयरूप वृक्ष से सुखोपलब्धि प्राप्त होती है, तथा मायामोहित जीव पक्षीरूप है।

**काया मांहै त्रिभुवन राइ, काया मांहै रहे समाय ।**
**काया मांहै चौदह भवन, काया मांहै आवागवन ॥**
**काया मांहै सब ब्रह्मंड, काया मांहै है नव खण्ड ।**

लोक में प्रत्येक वस्तु का आदि है तथा आनन्त्य है। सम्पूर्ण लोक परमेश
व्याप्त है। इसी तरह कायालोक में भी त्रिगुणात्मक प्रकृति उसका आदि है। त्रिगुण
विविध प्रवृत्तियें हैं उनका रूप भी अनन्त है। उन सबसे परे या आगे अ
चेतन है वही कूटस्थ—अपना आत्मा—भगवत्स्वरूप है।

जैसे तीनों लोक में त्रिभुवनपति समाया हुवा है उसी तरह इस कायाल
भी हम अपनी वृत्ति को अन्तर्मुख कर स्वस्वरूप में समाहित कर सकते हैं।

बाह्यजगत में जैसे चौदहलोक माने गये हैं, उसी तरह इस काया
चौदहलोक मौजूद हैं। जैसे जगत में आने जाने का क्रम चलता रहता है. उसी त
कायालोक में भी मन तथा मन के मनोरथों का आवागमन-चक्र चलता रहता है।

चौदह लोक:—भूर, भुवः, स्वः, महर, जन, तप, सत्य, अतल, वितल,
रसातल, तलातल, महातल, पाताल।

काया के चौदह लोक:—नाभि, हृदय, उदर, वक्ष, कंठ, नासिका, दश
कुक्षी, कटि, उरु, घुटने, पिंडली, टखने, पदतल।

जैसे ब्रह्माण्ड का निरूपण चौदह लोक, इक्कीस स्वर्ग तथा नवखण्ड के
द्वारा किया गया है, वह सब सामग्री कायालोक में भी है। चौदहलोक का
उनका विवरण पीछे आगया है। सुमेर में इक्कीस स्वर्गों का नामतः भिन्न लेख है
पुराण में ये इक्कीस स्वर्ग निम्न नामों से लिखे गये हैं:—आनंद, प्रमोध
निर्मल, त्रिविष्टप, नाकपृष्ट, निर्वृति, पौष्टिक, सौभाग्य, अप्सरस, निरहंकार,
निर्मल, पुण्याय, मंगल, श्वेत, मन्मथ, उपसोहन, शांति, निर्वेद, अभेद।

देह लोक में मेरुदण्ड की शृंखला है वही इक्कीस स्वर्ग हैं। बा
पार्थिव नवखंडों की तरह कायालोक में नव चक्र ही नवखंड हैं। उनके नाम हैं:
स्वाधिष्ठान, मणिपूर, निरंजन, उद्यद, विशुद्ध, बत्तीसा, आज्ञा, ब्रह्मरंध्र।

काया मांहै लोक सब, दादू दिये दिखाइ ।
मनसा वाचा कर्मना, गुरु बिन लख्या न जाइ ।

३५१

काया मांहै सागर सात, काया मांहै अविगत नाथ ।
काया मांहै नदिया नीर, काया मांहै गहर गंभीर ॥
काया मांहै सरवर पाणी, काया मांहै बसे विनाणी ।
काया मांहै नीर निवान, काया मांहै हँस सुजान ॥

---

दादूजी महाराज कहते हैं ऊपर जो कुछ पंक्तियां आई हैं तदनुसार ब्रह्माण्ड का सब रूप इस कायानगरी में ही प्रतीत करा दिया गया है । तीन लोक, चौदह भवन, इक्कीस ब्रह्माण्ड, नौ खंड ये सब काया में हैं। काया में ब्रह्मरन्ध्र, स्वर्ग, उदर मृत्य लोक और पादतल पाताल लोक हैं—काया में ब्रह्माण्ड का स्वरूप तभी समझ में आ सकता हैं, जब हम मन वचन कर्म से गुरु-उपदेश के अनुसार आचरण करें अन्यथा काया नगरी का खेल समझना कठिन है ।

३५१—भौतिक लोक में जैसे लवण, ईख, सुरा, क्षीर, दधि, घृत, सुधा, ये सात तरह के सागर माने गये हैं काया लोक में भी इसी तरह रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, शुक्र ये सात सागर हैं। जैसे लोक में एक अवर्णनीय अलक्षित शक्ति सर्वत्र कार्य करती है पर प्रतीत नहीं होती। इसी तरह कायालोक में भी इस स्थूल प्रपंच से भिन्न एक अविगत= विवरण रहित एक शक्ति काम करती है ।

जैसे भौतिक लोक में स्थान स्थान से गंभीर नीर से परिपूर्ण नदियां प्रवाहित हैं उसी तरह इस कायालोक में भी विविध नदियां प्रवाहित हैं । जैसे रसवह नाड़ियां, उदकवह नाड़ियां, रक्तवह नाड़ियां, शुक्रवह नाड़ियां आदि तथा नवद्वार मलमूत्रादि का प्रवहन अथवा मनोमय शरीर में नवधाभक्ति का प्रवाह जिसमें रामनामरूपी विशुद्ध जल का प्रवहन होता है ।

जैसे लोक में मानसरोवर की तरह के विशुद्ध जल से परिपूर्ण अनेक सरोवर हैं जिनमें पक्षियों में सर्वोत्तम पक्षी हंस केलि करते हैं, वैसे ही कायानगरी में भी हृदय

**काया मांहै गंग तरंग, काया मांहै जमना संग।**
**काया मांहै है सुरसती, काया मांहै द्वारा मति ॥**
**काया मांहै कासी थान, काया मांहै करे सनान।**
**काया मांहै पूजा पाती, काया मांहै तीरथ जाती ॥**
**काया मांहै मुनियर मेला, काया मांहै आप अकेला ॥**
**काया मांहै जपिये जाप, काया मांहै आपै आप ॥**

---

रूपी सरोवर प्रेमरूपी विशुद्ध जल से परिपूर्ण है वहीं विनांणी=विशुद्ध बुद्धि जिसके सन्त साधक हंस जन ब्रह्म में वृत्ति लवलीन कर परमानंद का उपभोग करते रहते हैं।

बाह्य लोक में जैसे गंगा जमुना तरंगित हैं इसी तरह कायानगरी में भी पिं नाड़ी में स्वर का प्रवहण गंगा, इड़ा नाड़ी में प्राण का संवहन जमुना तरंगित दशा है ।

जैसे बाह्य लोक में सरस्वती लुप्त तथा द्वारामती लुप्त नगरी है, इसी कायालोक में शुद्ध सुरतिवृत्ति है वह सरस्वती है। ब्रह्मरंध्र में प्राण का निरो बुद्धि का आत्मा में विलय करना यही द्वारामती नगरी है।

बाह्य लोक में जैसे काशीपुरी प्रसिद्ध है तथा उसमें स्नान करना परम कल दायी है, इसी तरह इस कायालोक में अन्तःकरण है यही काशीपुरी है, इसमें वृ स्थिर कर आत्मचिन्तनरूपी स्नान से अन्तःकरण के मल विक्षेप निवृत्त करना पुण्य मुक्ति का दाता है।

बाह्य लोक में देवादिकों की विविध पूजा होती है, विविध तीर्थों का माना गया है, वैसे ही कायालोक में भी अनन्य आत्मप्राप्ति के प्रेम की पाती तथा रूपी पूजा होती है। लौकिक में केदार, गया, गंगासागर, प्रयाग, काशी परम माने गये हैं, काया में मस्तिष्क, कंठ, नाभि, उपस्थ और हृदय परम तीर्थ हैं। मन सुरति की एकता है यही कायालोक की परम तीर्थयात्रा है ।

बाह्य लोक में बडे-२ ऋषि मुनियों का समूह है, ज्ञानी-ध्यानी-त्यागी-त सिद्ध-महात्मा तथा लौकिक व्यक्तियों के अनन्त समूह होते हुये भी इन सबसे

**काया नगर निधान है, मांहै कौतिग होइ ॥**
**दादू सतगुरु संग ले, भूल पड़ै जनि कोइ ।**

३६०

**काया मांहै विषमी वाट, काया मांहै औघट घाट ।**
**काया मांहै पट्टण गाँव, काया मांहै उत्तम ठाँव ॥**

सर्वदा स्थिर रहने वाला, एक ही परमेश्वर शेष मिलता है, इसी तरह कायालोक में भी मन और इन्द्रियां हैं, ये मुनि स्थानीय हैं। अन्तःकरण-चतुष्टय की अनन्त वृत्तियों के व्यापार से आगे कायालोक में भी चिदाभास आत्मा ही आप अकेला सर्वदा स्थायी रहता है। जैसे बाह्य लोक में माया अविद्या से रहित समष्टिचेतन ब्रह्म आप ही आप है, सब ऋषि मुनि उसीका जाप जपते हैं, इसी तरह इस कायानगरी में भी मन, इन्द्रियां तथा अन्तःकरण की वृत्तियाँ उस स्वस्वरूप आत्मा के ही चिन्तन में लग आप ही आपका द्रष्टा तथा ज्ञाता होता है ।

लौकिक संसार जिस तरह नाना प्रकारों का आगार है, अनेकों आश्चर्य-कारक कार्य संसार में होते रहते हैं, इसी तरह कायानगरी में भी दैवी तथा आसुरी सम्पद्-रूपी गुणावगुणों की खान है, इसमें भी वृत्तिव्यापार तथा वृत्तिस्थैर्यजन्य अनेकों आश्चर्य होते रहते हैं। सर्वोपरि आश्चर्य है व्यष्टि-समष्टि की एकता ।

दादूजी महाराज कहते हैं—सद्गुरु के उपदेश को सर्वदा साथ रखे यानी स्मरण करता रहे, जिससे भेदमूलक भावना के फेर में न पड़े। तीर्थ, व्रत, दान, यज्ञ, जप, होम आदि सकाम साधन से भेदनिवृत्ति नहीं होती है। भेदनिवृत्ति का मूल है आत्मचिन्तन। सद्गुरु के उपदेश से उसकी प्राप्ति इसी शरीर में करनी है अतः काया में ही उसकी प्राप्ति का मुख्य साधन है—सद्गुरु और उनका तात्विक उपदेश, उसको लक्ष्य में रखे ।

३६०—बाह्य लोक में बद्री, केदार, अमरनाथ, गंगासागर आदि तीर्थ स्थानों का बड़ा विकट रास्ता है। बड़ी-२ नदियों तथा बड़े तीर्थ सरोवरों के पंथ भी अत्यन्त ऊबड़ खाबड़ होते हैं। वैसे ही कायानगरी के तीर्थों में भी विकट मार्ग हैं। अहंकार, काम, क्रोध, हिंसा, लोभ, मोह आदि पहाड़ तथा घाटियां हैं। झूठ, कपट, छल, तथा वासना के

**काया मांहै मण्डप छाजै, काया मांहै आप विराजै।**
**काया मांहै महल अवास, काया मांहै निहचल वास ॥**
**काया मांहै राजद्वार, काया मांहै बोलणहार।**
**काया मांहै भरे भण्डार, काया मांहै वस्त अपार ॥**

कंकर पत्थर खाडे पड़े हुये हैं ।

जैसे बाह्य संसार में बड़े-२ नगर हैं, जहां आवश्यक सब वस्तुऐं प्राप्त हो जा
राजधानियां हैं जिन्हें विशिष्ट महत्त्व के स्थान प्राप्त हैं। वैसे ही इस कायालोक
सत्य, शील, क्षमा, दया, आदि गुण ही बड़े नगर तथा राजधानियां हैं। हृदयकमल
राजधानी ही सर्वोपरि श्रेष्ठ स्थान है जहां स्वस्वरूप का निवास है ।

लोक में प्रतीक उपासना के लिये परमात्मा के ध्यान करने के लिये
देवमंदिरों के मण्डप शोभायमान हैं, जिनमें परमेश्वर के विविध अवतारों की मूर्तियां
जती हैं । वैसे ही इस कायालोक में भी ब्रह्मरन्ध्र, भ्रकुटि, हृदय, नाभिकमल,
मंदिरों के मण्डप शोभायमान हैं, जिनमें स्वयं अपना आराध्य आत्मा विराजमान

लोक में बड़े-२ महल रहने को निर्मित हैं। स्वभावतः निर्मित गिरिगुहायें
ऐसे ही कायालोक में पंचकोष ( अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय
विशिष्ट महल हैं। वृत्ति का चांचल्य निवृत्त कर स्थिर करना यही इन महलों में
स्थायी निवास है ।

संसार में राजद्वार की मान्यता है । प्राणी की सजीवता बोलने से है ।
तरह इस कायालोक में काया ही राजद्वार है। कारण, सकल सृष्टि का आधारभूत चेत
काया में निवास करता है वही सब राजाओं का राजा है । बोलने वाली शक्ति भ
से संचालित है, जो घट घट में बोलती है, वही बोलने वाला इस काया में भी
करता है । लोक सृष्टि में नानापदार्थों के भंडार भरे होते हैं ऐसे ही इस काया
भी शान्ति, प्रेम, क्षमा, धैर्य, सत्य, शील, सन्तोष आदि सद्गुणों के भण्डार भ
जैसे बाह्य लोक में अनन्त पदार्थ हैं उसी तरह इस काया में भी बुद्धि विचार व
जन्य अनन्त पदार्थ भरे हैं ।

**काया माँहै नौ निधि होइ, काया माँहै अठ सिधि सोइ।**
**काया माँहै हीरा साल, काया माँहै निपजै लाल ॥**
**काया माँहै माणक भरे, काया माँहै ले ले धरे।**
**काया माँहै रतन अमोल, काया माँहै मोल न तोल ॥**
**काया माँहै कर्त्तार है, सो निधि जाँणे नाँहिं।**
**दादू गुरुमुख पाइये, सब कुछ काया माँहिं ॥**

बाह्य लोक में पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील तथा वज्र ये नौ निधियां मानी गई हैं, अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, सर्वकाम, अवसायित्व, ये आठ सिद्धियां हैं। कायालोक में भी इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गोधारी, हस्तिजिव्हा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू ये नौ प्रमुख नाड़ियां हैं तथा पंचतत्व और तीन गुणों को विजित कर लेना ये अष्ट सिद्धियां हैं। बाह्य लोक में जैसे हीरा लाल आदि विविध रत्नों की खानें हैं, ऐसे ही कायालोक में ज्ञान की खान हृदयप्रदेश है जहां ब्रह्मपरिचयरूप हीरा प्राप्त किया जाता है। मन तथा इन्द्रियां हैं ये आत्मपरक होने पर विविध लाल के रूप में हैं। ऐसे काया भी रत्नराशि है।

बाह्य संसार में अनेक प्रकार के माणिक मणि भरे पड़े हैं। उसी तरह कायालोक में प्रतिश्वास जो आत्मचिंतन के साथ जाता है माणिकमणि हैं, साधक श्वास श्वास में आत्मचिंतन से माणिक मणि को वृत्तिअवरोध से अपने अन्दर भरता रहता है। बाह्य लोक के विविध रत्न जिनका मोल तोल नहीं होता जो अमूल्य कहे जाते हैं, वैसे ही कायालोक में भी पांचों इन्द्रियां मन, बुद्धि तथा वृत्ति जब आत्माभिमुख हो आत्म-चिन्तन में स्थिर होती है, उस समय का श्वास श्वास अमूल्य रत्न है, उसका कोई दुनियावी मोल तोल नहीं हो सकता।

जैसे बाह्य लोक में सब संसार का कर्त्ता ईश्वर जगत में रहते हुये प्रतीत नहीं होता, इसी तरह इस कायानगरी में भी सब प्रपंच का आश्रयरूप आत्मा व्याप्त है पर प्रतीत नहीं होता। भोगवृत्ति की वासना से प्रेरित मन आत्म-खजाने के पास रह कर भी उसको जानता नहीं है। इस काया का कर्त्ता रचयिता इस काया ही में है। दादूजी महाराज कहते

३६१

काया मांहै सब कुछ जाँणि, काया मांहै लेहु पिछाणि।
काया मांहै बहु विस्तार, काया मांहै अनन्त अपार॥
काया मांहै अगम अगाध, काया मांहै निपजै साध।
काया मांहै कह्या न जाइ, काया मांहै रहै ल्यौ लाइ॥
काया मांहै साधन सार, काया मांहै करै विचार।
काया मांहै अमृत वाणी, काया माँहै सारंग प्राणी॥

हैं—सब कुछ दृश्य अदृश्य का आधार काया में ही है; पर बिना गुरुमुख यानी गु
अनन्य श्रद्धा के उस सर्वात्मता की प्राप्ति नहीं होती। अत: यदि सब पदार्थों को
है तो गुरु उपदेश को ही आधार बनाया जाय यही सर्वाधार की प्राप्ति का मार्ग है।

३६१—जैसे बाह्य लोक में सर्वोपरि परमेश्वर है वही सब दृश्यादृश्य का आधार
इसी तरह इस काया में भी इन्द्रियां, मन, वासना, बुद्धि आदि से रचा हुआ नान
वह सब उस आत्मा के आधार से है। सब विविधताओं में उसी को जानना चा
सत्यासत्य में, नित्यानित्य में, आधार आधेय में, सत्य नित्य आधार को इस क
ही पहिचानिये। जैसे लोक में लोक का विस्तार असीम है और अनन्त है वैसे ही
लोक में भी काया का जो मूलाधार आत्मा है वह असीम और अपार है।

जैसे जगत में उस अगम अगाध की खोज करने वाले जगत में ही
हैं, इसी तरह कायालोक में भी उस अगम अगाध की खोज करने वाले
जन उत्पन्न होते हैं।

बाह्य संसारके रचियता जो संसारमें रहते हैं फिर भी उनका याथातथ्य व
किया जाता है, उसको प्राप्त करने की इच्छा वाले उसी में लयलीन होने व
करते हैं। ऐसे ही कायालोक का आधार चेतन काया में ही निवास कर
उसके स्वरूप का यथार्थ कथन नहीं किया जाता। साधक सन्त काया में ही ह
में वृत्ति को स्थिर कर उसमें तल्लीन होने का प्रयास करते हैं।

बाह्य लोक में साधक जन जैसे, योग, भक्ति, ज्ञान आदि विविध साध
व्यापक ब्रह्म का विचार करते हैं वैसे ही इस कायालोक में भी अनवरत श

**काया माँहै खेले प्राण, काया माँहै पद निर्वाण।**
**काया माँहै मूल गहि रहै, काया माँहै सब कुछ लहै॥**
**काया माँहै निज निरधार, काया माँहै अपरम्पार।**
**काया माँहै सेवा करे, काया माँहै नीझर झरै॥**

का अभ्यास है यही साधन सार है। अनवरत वृत्तिको अन्तर्मुख कर, देहाध्यास त्याग, अपने भीतर ही स्वस्वरूपप्राप्ति का विचार करे।

बाह्य लोक में साधक जन जैसे भक्ति तथा अनन्य प्रेम से प्रेरित अमृतमय वाणी द्वारा उस सारंगपाणी का गुण गान करते हैं, ऐसे ही इस कायालोक में अनन्य श्रद्धा व वासनारहित प्रेम से विरही साधक विरह में व्यक्त अमृतमय वाणी से उस सारंगपाणी= आत्मा की प्राप्ति करते हैं।

जैसे बाह्य लोक में भौतिक प्रवृत्तियों में उलझ, प्राणी विविध खेल खेलते हैं तथा आध्यात्मिकतामें लग निर्वाण—मुक्त पदको प्राप्त करते हैं। वैसे ही कायालोकमें भी वासनासे प्रवृत्त प्राणी त्रिविध खेल खेलता है। वासना का परित्याग कर आत्मनिष्ठ होता है तब निर्वाण स्थिति को प्राप्त होता है।

जैसे बाह्य लोक में जब तक उसके मूल तक न पहुँचा जाय तब तक अकिंचनता या लालसा निवृत्त नहीं होती। लालसा की निवृत्ति ही अशेष पदार्थों की प्राप्ति कराती है, ऐसे ही जब तक कायालोक में काया का मूल आधार गृहीत न हो, आत्मपरिचय या वृत्ति आत्मनिष्ठ न हो, तब तक इच्छा का परिहार नहीं होता। कायाका मूल आत्मा है. उसका साक्षात्कार होने ही से कायामें सब कुछ पदार्थों की प्राप्ति होती है।

जैसे लोक में अपरंपार ब्रह्म सबका आधार होकर भी स्वयं किसी के आश्रित नहीं है, वैसे ही इस कायालोक में भी व्यष्टि चेतन सम्पूर्ण काया का आधार होते हुये भी स्वयं अपने ही आधार में आधारित है। वह व्यष्टि चेतन भी उसी अपरंपार का रूप है। अतः स्वयं भी असीम तथा अपरंपार है।

बाह्य लोक में जैसे देवादि की कल्पना से या आत्मसम्बन्ध से सेवा भावना, अपने प्रेम में मग्न साधक के अखंड वृत्ति के निर्झर झरते हैं, ऐसे ही कायालोक में आत्मा की सेवा में रत निष्काम वृत्ति वाले प्रेम, साधक के आत्मनिष्ठ अखण्ड वृत्ति के प्रवाह का निर्झर

**काया माँहै वास कर, रहै निरन्तर छाइ ।**
**दादू पाया आदि घर, सत गुरु दिया दिखाइ ॥**

३६२

**काया माँहै अनभै सार, काया माँहै करे विचार ।**
**काया माँहै उपजै ज्ञान, काया माँहै लागे ध्यान ॥**
**काया माँहै अमर अस्थान, काया माँहै आत्म राम ।**

अनवरत करता रहता है ।

जैसे लोक में लोकाधार ईश्वर की उपासना कर लोक में ही निवास करते हुये नि
तर उसमें अपने को लगा देते हैं, वैसे ही कायालोक में वृत्ति का निवास अन्तर
हृदय प्रदेश में कर, साधक निरंतर अन्तर रहित ब्रह्म में ही अपने को लवलीन कर लेते

दादूजी महाराज कहते हैं:—आदि घर=आत्मस्थान की प्राप्ति इसी कायानगर
होती है । पर उस प्राप्ति का आधार है सद्गुरु । सद्गुरु कृपा कर देह जीव की भि
का साक्षात्कार कर देते हैं तभी उस आदि घर=आत्मस्थान की प्राप्ति होती है ।

३६२—लौकिक संसार में विज्ञपुरुष जैसे विचार और व्यवहार के बार बार परीक्षण
उचित अनुचित, तथ्य अतथ्य का अनुभव प्राप्त करते हैं, ऐसे ही कायालोक में भी स
जन आत्मविचार की प्रौढता प्राप्त कर, विषयभोग की वासना निःसार है, भोग विनाश
कल्पित है, नित्य सत्य शान्तिदायक वस्तु आत्मपरिचय ही है, यह अनुभ
प्राप्त करते रहते हैं ।

लोक में निवास करने वाले महात्मा जन वहीं उसी लोक में स्थित हो, वृत्ति
एकाग्रता तथा आत्मज्ञान की सिद्धि करते हैं, ऐसे हो कायालोक में वृत्ति को अन
कर एकाग्रता का दार्ढ्य सम्पादन करते हुये सन्तजन काया में ही नीर-क्षीर-विवेक
से नित्य सत्य आत्मज्ञान की प्राप्ति करते हैं ।

बाह्य लोक में लौकिक ज्ञान की यथार्थता से ही महात्मागण उस जगत्पि
अमर स्थान की प्राप्ति करते रहते हैं, ऐसे ही साधक जन कायालोकमें भी, काया के
राम को पहचान, वृत्ति से भोगवासना का निवारण कर हृदय प्रदेश में वृत्ति की ि
से जीवन मृत्यु से रहित ऐसे आत्मस्थान को प्राप्त करते रहते हैं ।

**काया माँहै कला अनेक, काया माँहै कर्त्ता एक ॥**
**काया माँहै लागे रंग, काया माँहै साँई संग ।**
**काया माँहै सरवर तीर, काया माँहै कोकिल कीर ॥**
**काया माँहै कछुप नैन, काया माँहै कुंजी बैन ।**
**काया माँहै कंवल प्रकाश, काया माँहै मधुकर वास ॥**

जैसे बाह्य लोक में उपाधिभेद को लेकर अनन्त कलायें प्रतीत होती हैं। उन सबमें अध्यात्मविचार से अवलोकन करने पर जैसे एक कर्त्ता की ही सत्ता सर्वत्र प्रतीत होती है, ऐसे ही कायालोक में भी उपाधिवृत्ति से एक में अनेकत्व की प्रतीति तथा उपाधिनिवारण से अनेक में एकत्व की प्राप्ति की जाती है ।

जैसे लोकमें लौकिक जन कला, साहित्य, कविता, शौर्य, भक्ति, वैराग्य, दान, पुण्य, व्यवसाय, उपरति आदि विविध रंगों में रंगे हुए मिलते हैं। लोक में ही लोक से उपरति ग्रहण कर सांईकी खोजमें लगे हुए साधकजन मिलते हैं, ऐसे ही कायालोकमें भी प्राणी काया में निवास कर, नाना रंगों की निःसारता देख, अपनी आत्मा के पहिचान का रंग लगाता है। यही रंग है जिसमें ओत-प्रोत होजाने पर कायालोकमें ही उस सांई=सर्वाधारका संग प्राप्त किया जाता है।

लोकमें जैसे सुन्दर सरोवर तथा शुक, मैना आदि सुन्दर पक्षी मनका हरण करते हैं, ऐसे ही कायालोक में भी सबसे सुन्दर सुखदायी हृदय-सरोवर है। काया में ही मनरूपी शुक और वृत्तिरूपी मैना मौजूद है।

बाह्यलोक में साधक जैसे कच्छपवृत्ति से अन्तर्मुख ध्यान व कुञ्ज वाणी से सुरति साधना द्वारा ब्रह्मप्राप्ति की जाती है, ऐसे ही कायालोक में अन्तर्मुखवृत्तिसे सुरति को ब्रह्म में=आत्मस्वरूप में स्थिर कर आत्मपरिचय प्राप्त किया जाता है।

लोकमें नाना प्रकारके कमल खिलते हैं, उनकी गन्ध का पान भ्रमर करते रहते हैं, ऐसे ही कायाजगत में भी सात्विक भावना के उद्रेक से हृदय-कमल प्रफुल्लित होता रहता है। वासनारहित मन मधुकर होकर ब्रह्मरूपी सुवास का उपभोग करने लगता है।

काया माँहै नाद कुंरग, काया माँहै जोति पतंग।
काया माँहै चात्रग मोर, काया माँहै चन्द चकोर ॥
काया माँहै प्रीति कर, काया माँहै सनेह ।
काया माँहै प्रेम रस, दादू गुरु मुख येह ॥

३६३

काया माँहै तारणहार, काया माँहै उतरे पार ।
काया माँहै दूतर तारै, काया माँहै आप उबारै ॥

---

लोक में मृगका नादप्रेम, पतंग का ज्योतिप्रेम, चातकका स्वातिबून्दप्रे मयूर का घनप्रेम और चकोर का शशिप्रेम प्रख्यात है, इसी तरह कायालोक में ये प्रेमी प्राप्त किये जा सकते हैं। मल-विक्षेप-वासना-विहीन विशुद्ध अन्तःकरण मृग अनहदनाद के प्रेम में मस्त रहता है। पांचों तत्वों की पच्चीस प्रकृतियां ये पतंग ब्रह्मज्योति का अनन्य प्रेम इनमें उत्पन्न होता है। आत्मस्वरूपकी प्राप्ति रूपी स्वा बून्द के लिये साधक का स्थिरप्राण चातक तरसता रहता है, अहंकार और वास विहीन चित्त आत्मज्ञानरूपी चन्द्रमा को एकटक निहारता रहता है, निर्मल मन वि प्रेम में उन्मत्त हो आत्मघन की प्राप्ति के लिये नाचता रहता है।

दादूजी महाराज कहते हैं:—हे प्राणी ! कहां संसार के नश्वर भोगों के पीछे भाग है ? अरे प्रेम, प्रीति, सनेह करना है तो धन धाम धरा स्त्री पुत्रादि का मोह तज काया में ही निवास करने वाले उस अटूट आत्मधन से, सर्वकाल में साथ रहने साथी स्वस्वरूप से जरामृत्युभयविहीन परम तत्व से स्नेह कर, उसी के प्रेम में प हो, उसकी प्रीति में अपने को न्योछावर कर। सद्गुरु ने यही उपदेश दिया है। उनकी आज्ञा है।

३६३—जैसे लोक में दुस्तर संसार-सागर को पार करने के लिये उस लोक के परम परम पिता की सहायता परमावश्यक है, उसी के सहारे से संसार-सागर पार किया है। उस अलंघ्य संसार से वही पार उतारता है, वही डूबते को उबारने वाला है ही कायालोक में काया का आधार जो आत्मा है, वही तारणहार है, उसीको जान से इस मनुष्यजन्म को सफलता से पार किया जा सकता है। इस अलंघनीय

**काया माँहै दूतर तरे, काया माँहै होइ उधरे।**
**काया माँहै निपजै आइ, काया माँहै रहै समाइ॥**
**काया मांहै खुले कपाट, काया मांहै निरंजन हाट।**
**काया मांहै है दीदार, काया मांहै देखणहार॥**
**काया मांहै राम रंग राते, काया मांहै प्रेम रस माते।**

सागर को तभी पार किया जा सकता है जब काया में रहने वाले स्वस्वरूप को पहचाना जाय। वह अपना आत्मा ही हमें माया मोह में डूबने से उबारने वाला है।

जैसे लोक में आने से ही दूतर = नहीं तरा जा सके ऐसा संसारसागर पार किया जाता है। लोक में जन्म लेकर ही लोक मे उद्धार=छुटकारा प्राप्त किया जाता है। लोक में ही उत्पत्ति है और लोक में ही विलय है। इसी तरह कायालोक में भी बिना मानव देह पाये दुस्तर संसार से पार नहीं पहुँचा जाता। शरीर धारण करके ही हम उस शरीर के सहारे, आत्मसाधना कर, अपना उद्धार करते हैं।

सत्य ज्ञान की उत्पति काया में ही वृत्ति को अन्तर्मुख करने से होती है। शरीर के मिथ्यात्व का ज्ञान शरीर धारण करने ही से होता है। भोग-वासना तथा देह की अनित्यता का निश्चय कर हम अपनी सुरतिवृत्ति को अन्तर्लीन कर, इस शरीर में ही, आत्मानंद की प्राप्ति का उपभोग करते हुये, उसी में समाविष्ट हो जाते हैं।

लोक में संसार के मायिक पदार्थों का अज्ञान मनुष्य के ज्ञाननेत्रों को बन्द कर देता है, वे कपाट लोक के वास्तविक रूप को जानने ही से खुलते हैं। लोक में ही लोक का रक्षक समष्टि चेतन है उसकी प्राप्ति होती है। संसार में ही संसार के पैदा करने वाले का दीदाररूप व्याप्त रहता है। वही उस संसार में अपने व्याप्त स्वरूप का देखने वाला है। इसी तरह इस कायालोक में भी मलविक्षेप के कपाट बुद्धि को आवृत किये रहते हैं। वे काया के अभिमान की निवृत्ति से ही खुलते हैं, वासना और अभिमान रहित काया ही उस आत्मा की प्राप्ति की हाट है, अपने दीदारका= अपने स्वरूप का घर काया का ही शुद्ध अन्तःकरण है। विशुद्ध मन और स्थिर बुद्धि से ही इस काया में अपने आपको—अपने स्वरूप को हम देख पाते हैं।

बाह्य लोक में संसार के विनाशी पदार्थ तथा सम्बन्धों की असत्यता को

**काया मांहै अविचल भये, काया मांहै निहचल रहे ॥**
**काया मांहै जीवे जीव, काया मांहै पाया पीव ।**
**काया मांहै सदा अनंद, काया मांहै परमानंद ॥**
**काया मांहै कुसल है, सो हम देख्या आइ ।**
**दादू गुरु मुख पाइये, साध कहैं समझाइ ॥**

---

समझ उसमें रमने वाले राम के रंग में अनुरक्ति होती है । लोक में रह कर उस लोकपुरुष के प्रेम में मस्त होना पड़ता है । संसार के चल=विनाशी पदा में वही सत्यनिकेतन व्यापक ब्रह्म अविचल रहता है । उसको समझने वाले ही चला मान संसार में अविचल परमात्मा से नाता जोड़ स्वयं चंचलता से विहीन हो निश्च बनते हैं ।

ऐसे ही कायालोक में भी शब्दादि सब विषयों की असारता देख देख प्रतिक्ष बदलने वाली काया में एकरस रहने वाले उस आत्मराम को समझ उसी के र में साधक रंग जाते हैं. शान्त अन्तःकरण में स्थिर वृत्ति से अनन्य श्रद्धा के स उसी आत्मा के प्रेम में मस्त हो जाते हैं । साधक साधना करते-२ इस काया हृदय-प्रदेश में ही वृत्ति द्वारा स्थैर्य प्राप्त कर अविचल—एकनिष्ठ होते हैं । मन मन की चंचलता निवृत्त कर काया में ही आत्मस्वरूप में वृत्ति का विलय कर निश्च हो जाते हैं । जीवन मरण के चांचल्य से छूट जाते हैं ।

संसार विनाशी है, पर उसी संसार में साधकजन चिरजीवन प्राप्त करते हैं । संस में ही संसार के स्वामी को प्राप्त किया जा सकता है । शोक और संताप के घर संसार ही नित्यसुख तथा परमानंद की प्राप्ति की जाती है । इसी तरह काया विनाशी प्रतिपल वह नाश की ओर चलती है पर साधना से इसी विनाशी काया में यह जीवन अ चिरजीवन को प्राप्त करता है । काया का स्वामी चेतन आत्मा वह काया में पाया जाता है ।

दादूजी महाराज कहते हैं कुशल क्षेम की प्राप्ति इस काया से ही प्राप्त होती मन के विविध द्वन्द्व निवृत्त होते हैं तब देह के अमंगलकारी भावों का निवारण होता वह साधन द्वारा प्रत्यक्ष देखा जाता है, पर यह सब होगा यदि हम गुरुमुख से उस इ

३६४

काया मांहै देख्या नूर, काया मांहै रह्या भरपूर।
काया मांहै पाया तेज, काया मांहै सुन्दर सेज॥
काया मांहै पुंज प्रकाश, काया मांहै सदा उजास।
काया मांहै झिलमिल सारा, काया मांहै सब थैं न्यारा॥
काया मांहै जोति अनंत, काया मांहै सदा बसन्त।

---

को प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। कहने के अभिप्राय पर बल दिया जाता है कि महात्मा तथा साधकजन हैं उन सबने इस बात का समर्थन किया है अर्थात् काया में सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है यदि सद्गुरु की कृपा होजाय।

३६४—बाह्य लोक जिसमें आकाशादि भूतात्मक पञ्चतत्व का ही बोलबाला है पर सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो उस भूतात्मक सृष्टि के अन्तर्निगूढ उस व्यापक समष्टि चेतन का नूर व्याप्त है। संसार का कण कण उस चिदानन्द की चेतना से भरपूर है। लोक में उसी परम पिता का परम तेज पाया जाता है। सारा संसार उस समष्टि चेतन की सुन्दर शय्या के समान है। इसी तरह इस काया में भी भौतिक संघात के आगे उसी आत्मा के नूर—प्रकाश का पसारा है। वही शरीर के रोम रोम में भरपूर है। हम उस परम तेज या आत्म-प्रकाश का अवलोकन इस काया में ही कर सकते हैं। यह शरीर जिसके मन और बुद्धि निर्मल होगये हैं उस आत्मा की सुन्दर शय्या है।

जैसे बाह्य लोक उस परम पिता के प्रकाशपुंज से प्रकाशित होता रहता है। वह अविनाशी प्रकाश ही संसार का प्रकाशक है, संसार में रहते हुये भी वह परम प्रकाश उससे सर्वथा अलग है। उसकी झिलमिलाहट से सृष्टि का कण कण प्रदीप्त है फिर भी वह उसमें व्यापक होकर भी उससे न्यारा है।

इसी तरह कायानगरी भी जिसके प्रकाश से प्रकाशित है वह आत्मा का प्रकाश-पुंज ही उस नगरी को निरंतर प्रकाशवान बनाता है। वह अपनी आत्मा है जिसके नूर से ही इस काया का रोम रोम झिलमिल करता है। वह आत्मा काया में व्यापक होते हुये भी इस नाशवान काया से न्यारा है।

काया मांहै खेलें फाग, काया मांहै सब वन बाग ॥
काया मांहै खेलें रास, काया मांहै विविध विलास ।
काया मांहै बाजैं बाजे, काया मांहै नाद धुनि साजे ॥
काया मांहै सेज सुहाग, काया मांहै मोटे भाग ।
काया मांहै मंगलचार, काया मांहै जै जै कार ॥

---

बाह्य लोक जैसे अनन्त है उसका आधार भी अनन्त है । बाह्य लो
कालानुबन्ध से बसन्तऋतु आती है । लोक में मनोविनोद के लिये फाग का
खेला जाता है । सृष्टि में और भी मनोविनोद के साधन विविध बन बाग ब
हैं। इसीलिये रास का खेल, रामलीला, नाटकादिक हैं । मनोविनोद के लिये
विविध वाद्य हैं, विविध राग रागिनी की धुनियां हैं, इसी तरह कायालोक भी
साज सज्जाओं का घर है । आत्मा जिसकी ज्योति का कभी अन्त नहीं उसर
लोक सदा प्रकाशमय रहता है। बसन्तऋतु आनन्द और उत्साह की दाता है,
साधकों ने आत्मपरिचय प्राप्त कर लिया उनकी कायानगरी सदा बसन्त क
से सुशोभित रहती है । अनन्य प्रेम और श्रद्धा से प्लावित मन अपने
रूप से फाग खेलता है उस स्थिति में काया की सब इन्द्रियां, मन तथा बु
सब वन बाग की तरह लहलहाने लगती हैं । साधकजन अपने स्वस्वरूप के
सुरति वृत्ति से रासलीला खेलते हैं, कभी अनन्यता, कभी प्रेमाभक्ति, कभी एक
समत्वभाव ऐसे साधक जन आत्मनिरत विविध विलास का आनंद उपभोग क

वृत्ति में निरंतर आत्मचिंतन प्रवाह का स्थैर्य होजाता है तब रोम
ररंकार ध्वनि के बाजे बजने लगते हैं, साधक काया में ही हृदयगुहा में
निश्चलकर अनाहद नाद में ध्यान लगाते हैं ।

बाह्यलोक में जैसे स्त्री का सेजसुहाग उसके पति से माना जाता
बड़भागिनी स्त्री है जो सदा सुहागिन हो । लोक में इच्छित पदार्थों की
उसीको मङ्गलाचार मंगलीक समय कहते हैं । इच्छित आत्मा की प्राप्ति से
कार होता है, लोक यात्रा सफल होती है, ऐसे ही काया नगरी में भी

काया मांहै अगम है, सो मुख कह्या न जाइ।
दादू परगट पीव मिल्या, गुरु मुख रहे समाइ ॥
॥ इति काया बेलि ग्रन्थ समाप्त ॥ २२ ॥

# अथ राग बसंत ॥२३॥

३६९—भजन भेद

निर्मल नाउं न लीया जाइ, जाके भाग बड़े सोई फल खाइ ॥टेक॥
मन माया मोह मद माते, कर्म कठिन ता मांहिं परे।
विषै विकार मांनि मन मांहीं, सकल मनोरथ स्वाद खरे ॥ १ ॥
काम क्रोध ये काल कल्पना, मैं मैं मेरी अति अहंकार।

---

के भाग मोटे हैं जिनकी मति सर्वदा आत्मनिष्ठ रहती है। आत्मा ही सुरतिवृत्ति का स्वामी है। जब वृत्ति आत्मपरक होजाय तभी वह सदा सुहागिन होती है। काया लोक में काया प्राप्ति का=मानव जीवन का साफल्य प्राप्त होजाय तभी काया में हर्ष उत्साह का अवसर आता है। जीवन में आत्मपरिचय हो जाय तभी जैजैकार है।

दादूजी महाराज कहते हैं—जो अगम वस्तु है वेद शास्त्र तथा बुद्धिगम्य नहीं है वह अगम वस्तु इस काया ही में प्राप्त की जाती है। उसकी प्राप्ति का वर्णन जिव्हा से नहीं किया जा सकता। उस परम पीव का प्रत्यक्ष परिचय इस काया में ही हुआ। उसी में गुरुकृपा से समाहित हो परमपद को प्राप्त किया जा सकता है। कायावेलि के कथन का सार है गुरुकृपा से ही परम तत्व की प्राप्ति इस नरजन्म में की जा सकती है।

❀ इति काया बेलि ग्रन्थ समाप्त ❀

३६९—निर्मल=शुद्ध। कर्म कठिन=सकाम कर्म यज्ञादि। जोध=जोधा, शील, विनय, धैर्य, त्याग आदि।

तहं दिन दिन अति आनंद होइ, प्रेम पिलावै आप सोइ ।
संगियन सेती रमौं रास, तहं पूजा अरचा चरन पास ॥ १ ॥
तहं वचन अमोलिक सबही सार, तहं बरतै लीला अति अपार
उमंगि देइ तब मेरे भाग, तिहि तरवर फल अमर लाग ॥ २ ॥
अलख देव कोइ जाणैं भेव, तहं अलख देव की कीजै सेव ।
दादू बलि बलि बारंबार, तहं आप निरंजन निराधार ॥ ३ ॥

३७१—परचै सुख वर्णन

मोहन माली सहज समाना, कोई जाणैं सुजाना ॥ टेक ॥
काया बाड़ी मांहैं माली, तहां रास बनाया ।
सेवग सौं स्वामी खेलन कौं, आप दया करि आया ॥ १ ॥
बाहरि भीतरि सर्व निरंतरि, सब में रह्या समाइ ।
परगट गुपत गुपत पुनि परगट, अविगत लख्या न जाइ ॥ २
ता मालीकी अकथ कहाणी, कहत कहि नहिं आवै ।
अगम अगोचर करत अनंदा, दादू ये जस गावै ॥ ३ ॥

३७२—परचै

मन मोहन मेरे मन ही मांहिं, कीजै सेवा अति तहां ॥ टेक ॥
तहं पायौ देव निरंजना, परगट भयौ हरि ये तनां ।
नैंन नहिं देखौं अघाइ, प्रगट्यौ है हरि मेरे भाइ ॥ १ ॥
मोहि कर नैंनन की सैन देइ, प्राण मूंसि हरि मोर लेइ ।
कब उपजै मोकौं इहै बांनि, निज निरखत हौं सारंग पांनि ॥ २

३७०—फाग=होली । संगियनि=इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण । तहं=ईश्वर के । बरतै=
तिहिं तरवर=साधकहृदय में ।

३७१—माली=कायाबाड़ी का रखवाला । सहज समाना=समतावृत्ति वाला । रास=खे

अंकुर आदैं प्रगट्यौ सोइ, बैंन बान तार्थैं लागे मोहि ।
सरणैं दादू रह्यौ जाइ, हरि चरन दिखावै आप आइ ॥ ३ ॥

३७३—थकित निहचल

मतिवाले पंचूं प्रेम पूरि, निमष न इत उत जाहिं दूरि ॥ टेक ॥
हरि रस माते दया दीन, राम रमत ह्वै रहे लीन ।
उलटि अपूठे भये थीर, अमृतधारा पीवहिं नीर ॥ १ ॥
सहजि समाधी तजि विकार, अविनासी रस पीवहिं सार ।
थकित भये मिलि महल मांहिं, मनसा वाचा आन नांहिं ॥ १ ॥
मन मतिवाला राम रंगि, मिलि आसणि बैठे एक संगि ।
अस्थिर दादू एक अंग, प्राणनाथ तहं परमानंद ॥ ३ ॥

इति राग बसंत समाप्त ॥ २३ ॥

# अथ राग भैरूं ॥२४॥

३७४—गुरु नाम महिमा माहात्म्य

सतगुरु चरणां मस्तक धरणा, राम नाम कहि दूतर तिरणा ॥टेक॥
अठ सिधि नव निधि सहजैं पावै, अमर अभै पद सुख में आवै ॥१॥
भगति मुकति बैकुंठा जाइ, अमर लोक फल लेवै आइ ॥ २ ॥

३७२—ये तनाँ=इस शरीर में। अघाइ=तृप्त हो। मूंसि=चुराकर। वानि=आदत। निज=साक्षीरूप।

३७३—मति वाले=शुद्ध बुद्धि वाले। पंचूं=पांचों इन्द्रियों को। थकित भये= निश्चल हुये। महल = अन्तःकरणमें। आसणि=स्थान।

❀ अथ राग बसंत समाप्त ❀

३७४—दूतर=दुस्तर। पदारथ=मुक्तिधन। राता=लगा।

परम पदारथ मंगल चार, साहिब के सब भरे भंडार ॥ ३ ॥
नूर तेज है जोति अपार, दादू राता सिरजनहार ॥ ४ ॥

३७५—उत्तम ज्ञान स्मरण

तन ही राम मन ही राम, राम रिदै रमि राखिले ॥ टेक ॥
मनसा राम सकल परिपूरण, सहज सदा रस चाखिले ॥ टेक ॥
नैंना राम बैना राम, रसना राम संभारिले ।
श्रवणां राम सनमुख राम, रमता राम विचारिले ॥ १ ॥
सासैं राम सुरतैं राम, सबदैं राम समाइले ।
अंतरि राम निरंतरि राम, आतमाराम ध्याइले ॥ २ ॥
सवैं राम संगै राम, राम नाम ल्यौ लाइले ।
बाहरि राम भीतरि राम, दादू गोविन्द गाइले ॥ ३ ॥

३७६—उत्तम सुमिरन

ऐसी सुरति राम ल्यौ लाई, हरि हिरदै जनि विसरि जाइ ॥टे
छिन छिन मात संभारै पूत, बिंद राखै जोगी औधूत ।
त्रिया कुरूप रूप कौं रटै, नटणी निरखि बांस व्रत चढै ॥ १ ॥
कछिब दृष्टि धरै ध्यान, चात्रिग नीर प्रेम की बान ।
कुंजी कुरलि संभालै सोइ, भृंगी ध्यान कीट कौं होइ ॥ २ ॥
श्रवणौं सबद ज्यूं सुनै कुरंग, जोति पतंग न मोड़ै अंग ।
जल बिन मीन तलफि ज्यौं मरै, दादू सेवग ऐसै करै ॥ ३ ॥

---

३७५—रिदै रम=अन्तःकरण में लीन कर। संभारिले = धारण कर। ध्याइले=ध्य

३७६—इस पद में ध्यान की एकाग्रता साधक की कैसी हो, तदर्थ विविध दृष्टान्त हैं। बिंद = वीर्य। त्रिया=पतिव्रता स्त्री। वरत=रस्सा। बान = आदत। पुकार, शब्द।

३७७—स्मरण फल

निर्गुण राम रहै ल्यौ लाइ, सहजैं सहज मिलै हरि जाइ ॥ टेक ॥
भौजल व्याधि लिपै नहिं कबहूं, करम न कोई लागै आइ ।
तीन्यूं ताप जरै नहिं जियरा, सो पद परसै सहज सुभाइ ॥ १ ॥
जनम जरा जोनि नहिं आवै, माया मोह न लागै ताहि ।
पांचौ पीड़ प्राण नहिं व्यापै, सकल सोधि सब इहै उपाइ ॥ २ ॥
संकुट संसा नरक न नैनहुँ, ताकौं कबहूँ काल न खाइ ।
कंप न काई भै भ्रम भागै, सब विधि ऐसी एक लगाइ ॥ ३ ॥
सहज समाधि गहौ जे दिढ़ करि, जासौं लागै सोई आइ ।
भृङ्गी होइ कीटकी नांई, हरि जन दादू एक दिखाइ ॥ ४ ॥

३७८—आशीर्वाद

धनि धनि तूं धनि धणी, तुम्हसौं मेरी आइ बणी ॥ टेक ॥
धनि धनि तू तारै जगदीश, सुरनर मुनि जन सेवैं ईस ।
धनि धनि तूं केवल राम, सेस सहस मुख ले हरि नाम ॥ १ ॥
धनि धनि तूं सिरजनहार, तेरा कोई न पावै पार ।
धनि धनि तूं निरंजन देव, दादू तेरा लखै न भेव ॥ २ ॥

३७९—भयभीत भयानक

का जाणौं मोहि का ले करसी,
तनहि ताप मोहि छिन न विसरसी ॥ टेक ॥

---

३७७—व्याधि = रोग । तीन्यूं ताप=आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दुःख । पद परसै=पद प्राप्त करे । पांचों पीड़=इन्द्रियों के विषयजन्य दुःख । संकट संसा= संशयजन्य दुःख । कंपन काइ=मलविक्षेप । हरिजन = साध्य साधक ।

३७८—आइ बणी = आपसे ही लक्ष्यसिद्धि होसकती है । सेवैं = सेवा करें, चिन्तन करें ।

३७९—का जाणौं=क्या पता । तनहि ताप=विरह सन्ताप । आगम=अगम, नहीं जाना

आगम मोपैं जान्यूं न जाइ, इहै बिमासण जियरे मांहिं ॥१॥
मैं नहिं जानौं क्या सिरि होइ, ताथैं जियरा डरपै रोइ ॥ २ ॥
काहू थैं ले कछू करै, ताथैं मइया जीव डरै ॥ ३ ॥
दादू न जाणैं कैसे कहै, तुम सरणागति आइ रहै ॥ ४ ॥

३८०

का जाणौं राम को गति मेरी, मैं विषयी मनसा नहिं फेरी ॥टे
जे मन मांगै सोई दीन्हा, जाता देखि फेरि नहिं लीन्हा ॥ १ ॥
देवा दुंदर अधिक पसारे, पांचौं पकरि पटकि नहिं मारे ॥ २ ॥
इन बातनि घट भरे विकारा, तृष्णा तेज मोह नहिं हारा ॥ ३
इनहिं लागि मैं सेव न जाणी, कहे दादू सो कर्म कहाणी ॥ ४

३८१

डरिये रे डरिये, ताथैं राम नाम चित धरिये ॥ टेक ॥
जिन ये पंच पसारे रे, मारे रे ते मारे रे ॥ १ ॥
जिन ये पंच समेटे रे, भेटे रे ते भेटे रे ॥ २ ॥
कलिब ज्यूं करि लीये रे, जीये रे ते जीये रे ॥ ३ ॥

---

जा सके ऐसा परमात्मा । इहैं विमांसण=यही त्रास, यही डर । क्या सिर
अन्त क्या होगा ?

३८०—मनसा=अपनी चाहना । नहिं फेरी=बदली नहीं । जाता देख=विषयमें लग
दुन्दर=काम, क्रोध, लोभ आदि द्वन्द्व । पसारे=फैलाये । इन बातनि = इ
से । कर्म कहाणी=अपने किये हुए कर्मों की कथा ।

३८१—डरिये = निंद्य पापकर्म से डरिये । पंच पसारे=पांचों इन्द्रियों को विषयों
अधिक बढ़ने दिया । पञ्च समेटे=इन्द्रियों को आत्माभिमुख किया । कह

भृंगी कीट समाना रे, ध्याना रे यहु ध्याना रे ॥ ४ ॥
अजा सिंघ ज्यूं रहिये रे, दादू दरसन लहिये रे ॥ ५ ॥

३८२—हरिप्राप्ति दुर्लभ

तहं मुझ कमीन की कौंण चलावै,
जाको अजहूँ मुनि जन महल न पावै ॥ टेक ॥
शिव विरंचि नारद जस गावैं, कौंन भांति करि निकटि बुलावैं ॥१॥
देवा सकल तेतीसौं कोरि, रहे दरबार ठाढे कर जोरि ॥ २ ॥
सिध साधिक रहे ल्यौ लाइ, अजहूँ मोटे महल न पाइ ॥ ३ ॥
सब थैं नीच मैं नांव न जाना, कहै दादू क्यूं मिलै सयाना ॥४॥

३८३—विनती करुणा

तुम्ह बिन कहु क्यौं जीवन मेरा, अजहूँ न देख्या दरसन तेरा ॥टेक॥
होइ दयाल दीन के दाता, तुम पति पूरण सब विधि साचा ॥१॥
जो तुम्ह करौ सोई तुम्ह छाजै, अपने जन कौं काहे न निवाजै ॥२॥
अकरन करन ऐसैं अब कीजै, अपनौं जानि करि दरसन दीजै ॥३॥
दादू कहै सुनहुँ हरि सांई, दरसन दीजै मिलौ गुसांई ॥ ४ ॥

३८४—उपदेश चितावणी

कागारे करंक परि बोलै, खाइ मास अरु लगही डोलै ॥ टेक ॥
जा तन कौं रचि अधिक संवारा, सौ तन लै माटी मैं डारा ॥ १ ॥

• मन इन्द्रियों का निग्रह, समेटना। भृंगी कीट = भ्रमर कीट की तरह एकाग्रवृत्ति से चिन्तन।

३८२—कमीन=नीच, अकिंचन। महल=घर। मोटे महल=उस परमात्माके निवासका स्थान।

३८३—पति=स्वामी। पूर्ण=व्यापक। छाजै=अच्छा लगे। निवाजै= ढूंढै, प्रसन्न हो।

३८४—कागा रे करंक पर बोले=काग की तरह यह मन करंक—हड्डियों के ढांचे की तरह विषयवासनाओं में लगा रहता है। लगही=उसी के पास। डोले=फिरे।

जा तन देखि अधिक नर फूले, सो तन छाडि चल्या रे भूले ॥ २ ।
जा तन देखि मनमैं गर्वाना, मिलि गया माटी तजि अभिमाना॥३
दादू तन की कहा बड़ाई, निमख मांहिं माटी मिलि जाई ॥ ४ ॥

३८५—उपदेश

जपि गोविंद विसरि जनि जाइ, जनम सुफल करिये लै लाइ ॥टेक
हरि सुमिरण स्यूं हेत लगाइ, भजन प्रेम जस गोविंद गाइ ।
मनिखा देह मुकति का द्वारा, राम सुमरि जग सिरजनहारा ॥१
जबलग विषम व्याधि नहिं आइ, जबलग काल काया नहिं खाइ
जबलग शब्द पलटि नहिं जाइ, तबलग सेवा करि राम राइ ॥
औसरि राम कहसि नहिं लोई, जनम गया तब कहै न कोई
जब लग जीवै तब लग सोई, पीछैं फिरि पछितावा होई ।
सांई सेवा सेवग लागे, सोई पावै जे कोइ जागे ।
गुरुमुखि तिमर भर्म सब भागे, बहुरि न उलटे मारगि लागे ॥
ऐसा औसर बहुरि न तेरा, देखि विचारि समझि जिय मेरा ।
दादू हारि जीति जगि आया, बहुत भांति कहि कहि समझाया

३८६

राम नाम तत काहे न बोलै, रे मन मूढ अनत जनि डोलै ॥टे
भूला भर्मत जनम गमावै, यहु रस रसना काहे न गावै

---

निमख=क्षण में ।

३८५—हेत=स्नेह । विषमव्याधि=जन्ममरण । औसरि=समय पर । लोई=लोग ।

दृष्टान्त—इक जन जोरे देह के, साध वचन नहिं धार ।
खेद भई सन्तन कही, जम को किमैं निवार ॥

३८६—अनत=विषयभोग में । झखि=बक, व्यर्थ बोल । सार=जीवन का

क्या ऋषि औरै परत जंजालै, वाणी विमल हरि काहे न संभालै ॥२॥
राम विसारि जनम जनि खोवै, जपिलै जीवनि साफिल होवै ॥३॥
सार सुधा सदा रस पीजै, दादू तन धरि लाहा लीजै ॥४॥

३८७—तत्व उपदेश

आप आपण मैं खोजौ रे भाई, बस्त अगोचर गुरू लखाइ ॥ टेक ॥
ज्यूं मही विलोयें माखण आवै, त्यूं मन मथियां तैं तत पावै ॥१॥
काष्ट हुतासन रह्या समाई, त्यूं मन मांहिं निरंजन राई ॥ २ ॥
ज्यूं अवनी मैं नीर समाना, त्यूं मन मांहैं साच सयाना ॥ ३ ॥
ज्यूं दर्पण कै नहिं लागै काई, त्यूं मूरति मांहैं निरखि लखाई ॥४॥
सहजैं मन मथियां तैं तत पाया, दादू उनि तौ आप लखाया ॥५॥

३८८—उपदेश

मन मैला मनहीं स्यूं धोइ, उनमनि लागैं निर्मल होइ ॥ टेक ॥
मनहीं उपजै विषै विकार, मनहीं निर्मल त्रिभुवन सार ॥ १ ॥
मनहीं दुविधा नाना भेद, मनहीं समझै द्वै पख छेद ॥ २ ॥
मनहीं चंचल जहुँ दिसि जाइ, मनहीं निहचल रह्या समाइ ॥३॥
मनहीं उपजै अगनि शरीर, मनहीं शीतल निर्मल नीर ॥ ४ ॥
मन उपदेश मनहिं समझाइ, दादू यहु मन उनमन लाइ ॥ ५ ॥

---

सुधा=नामरूपी अमृत ।

३८७—आपण में = अपने ही अन्तःकरण में । अगोचर=इन्द्रियातीत । मही=दही । मन मथियां = मन को शुद्ध कियाँ । हुतासन=अग्नि । अवनी = भूमि में ।

३८८—उनमनि लागै= वृत्ति सहज अवस्था में लगे । दुविधा=संशयज्ञान । द्वैपख छेद= एकत्व भाव । अगनि=विषयभोग का सन्ताप ।

ऐसौ राजा सोई आहि, चौदह भुवन मैं रह्यौ समाइ।
दादू ताकी सेवा करै, जिन यहु रचिले अधर धरै ॥ ८ ॥

३९३—जीवत मृतक

जब यहु मैं मैं मेरी जाइ, तब देखत बेगि मिलै राम राइ ॥टे
मैं मैं मेरी तबलग दूरि, मैं मैं मेटि मिलै भरपूरि ॥ १ ॥
मैं मैं मेरी तबलग नांहिं, मैं मैं मेटि मिलै मन मांहिं ॥ २ ॥
मैं मैं मेरी न पावै कोइ, मैं मैं मेटि मिलै जन सोइ ॥ ३ ॥
दादू मैं मैं मेरी मेटि, तब तूं जांणि राम सौं भेटि ॥ ४ ॥

३९४—ज्ञान प्रलय

नाहीं रे हम नाहीं रे, सत्य राम सब माहीं रे ॥ टेक ॥
नाहीं धरणि अकासा रे, नाहीं पवन प्रकाशा रे।
नाहीं रवि ससि तारा रे, नहिं पावक प्रजारा रे ॥ १ ॥
नाहीं पंच पसारा रे, नाहीं सब संसारा रे।
नहिं काया जीव हमारा रे, नहिं बाजी कौतिगहारा रे ॥ २
नाहीं तरवर छाया रे, नहिं पंखी नहिं माया रे।
नाहीं गिरवर बासा रे, नाहीं समद निवासा रे ॥ ३ ॥

---

मेटे आन = मर्यादा नहीं छोडे। सोई आहि=उसी की सेवा में लग।

दृष्टान्त—*कही भरूंटे राव जी, दादू चलि मम गांव।*
*ताको या पद तें कही, नृपत सुनायो नांव ॥*

३९३—मैं मैं=अहंकार। मेटि = निवारण कर। भेटि = मिलाप।

३९४—इसमें प्रलय का रूपक द्वारा वर्णन किया है। प्रलय के नित्य, नैमित्ति
और आत्यन्तिक ऐसे चार भेद माने गये हैं।
हम नांहीं रे = जो यह शरीर दीख रहा है यह सत्य नहीं है। पा
प्रजारा=प्रकाश। बाजी=संसार रूपी तमाशा। कौतिगहारा = बाजीगर

नाहीं जल थल खंडा रे, नाहीं सब बृह्मंडा रे ।
नाहीं आदि अनंता रे, दादू राम रहंता रे ॥ ४ ॥

३१५—मध्यमार्ग निष्पक्ष

अलह कहौ भावै राम कहो, डाल तजौ सब मूल गहौ ॥ टेक ॥
अलह राम कहि कर्म दहौ, झूठे मारगि कहा बहौ ॥ १ ॥
साधू संगति तौ निबहौ, आइ परै सो सीसि सहौ ॥ २ ॥
काया कँवल दिल लाइ रहौ, अलख अलह दीदार लहौ ॥ ३ ॥
सद्‌गुरु की सुणि सीख अहौ, दादू पहुँचे पार पहौ ॥ ४ ॥

३१६

हिंदू तुरक न जाणौं दोइ,
सांई सबनि का सोई है रे, और न दूजा देखौं कोइ ॥ टेक ॥
कीट पतंग सबै जोनिन मैं, जल थल संगि समाना सोइ ।
पीर पैकंबर देवा दानव, मीर मलिक मुनिजन कौं मोहि ॥ १ ॥
कर्ता है रे सोई चीन्हौं, जनि वै क्रोध करै रे कोइ ।
जैसैं आरसी मंजन कीजै, राम रहीम देही तन धोइ ॥ २ ॥
सांई केरी सेवा कीजै, पायौ धन काहे कौं खोइ ।
दादू रे जन हरि जपि लीजै, जनमि जनमि जे सुरिजन होइ ॥३॥

३१७

को स्वामी को सेख कहै, इस दुनियां का मर्म न कोई लहै ॥टेक॥
कोई राम कोई अलह सुनावै, पुनि अलह राम का भेद न पावै ॥१॥

---

३१५—भावै = चाहे । डाल तजौ=बाहरी आवरण छोड़ो । मूल गहौ=व्यापक तत्व पकड़ो । कर्म दहौ = नित्य, नैमित्तिक, संचित कर्म । निवहौ = निभोगे ।

३१६—सोई चीन्हो = वह आत्मा जो सबका आधार है उसी को जानो । धन= शरीर रूपी सम्पत्ति ।

३१७ – स्वामी = संन्यासी । सेख=फकीर । खबर = सच्चा भेद ।

कोइ हिंदू कोइ तुरक करि मानैं, पुनि हिंदू तुरक की खबरि न जानैं ॥२

यहु सब करणी दोन्यूं वेद, समझ परी तब पाया भेद ॥३

दादू देखै आतम एक, कहिबा सुनिबा अनंत अनेक ॥४

३९८—निंदा

निंदत है सब लोक विचारा, हम कौ भावै राम पियारा ॥ टेक

निरसंसै निरदोष लगावै, ताथैं मोकौ अचिरज आवै ॥ १ ॥

दुविधा द्वैपख रहिता जे, तासनि कहत गये रे ये ॥ २ ॥

निरबैरी निहकामी साध, ता सिरि देत बहुत अपराध ॥ ३ ॥

लोहा कंचन एक समान, तासनि कहत करत अभिमान ॥ ४ ॥

निंदा सतुति एकै तोलै, तास कहैं अपवादहि बोलै ॥ ५ ॥

दादू निंदा ताकौ भावै, जाकै हिरदै राम न आवै ॥ ६ ॥

३९९—अनन्यसरण

माहरूं सूं जेहूं आपूं, ताहरूं छै तूनै थापूं ॥ टेक ॥

सर्व जीव ने तूं दातार, तैं सिरज्या ने तूं प्रतिपाल ॥ १ ॥

तन धन ताहरो तैं दीधौ, हूं ताहरो ने तैं कीधो ॥ २ ॥

सहुवें ताहरौ साचौ ये, मैं ने माहरो झूठो ते ॥ ३ ॥

दादू ने मनि और न आवै, तूं कर्ता ने तूंहि जु भावै ॥ ४ ॥

---

३९८—निंदत = निंदा करे। निरसंसै = विनासंशय। निरदोष = बहुत दोष। द्वैपख धर्म जाति का पक्षपात। तासनि=उसको। तोलै = मापै। अपवादहि=मिथ

३९९—माहरूं = मेरा। सूँ=क्या है। जेहूँ=जिसको। आपूं = देवूं। ताहरूं=तेरा थापूं = अर्पण करूं। तैं कीधो = तुमने ही पैदा किया। सहुवे = सभी। माहरो = मैं तथा मेरा अभिमान।

जामण मरण जाइ भव भाजै, अबरण के घरि बरण समाइ ।
दादू जाय मिलै जग जीवन, तब यहु आवागवन बिलाइ ॥४॥

४०६

जीवन मूरी मेरे आत्मराम, भाग बड़े पायौ निज ठाम ॥ टेक ॥
सबद अनाहद उपजै जहाँ, सुषमन रंग लगावै तहां ।
तहं रंग लागे निर्मल होइ, ये तत उपजै जानैं सोइ ॥ १ ॥
सरवर तहां हंसा रहे, करि स्नान सबै सुख लहै ।
सुखदाई कौं नैंनहुँ जोइ, त्यूं त्यूं मनि अति आनंद होइ ॥ २ ॥
सो हंसा सरनागति जाइ, सुंदरि तहां पखालै पाइ ।
पीवै अमृत नीझर नीर, बैठे तहां जगत गुर पीर ॥ ३ ॥
तहं भाव प्रेम की पूजा होइ, जा परि किरपा जानैं सोइ ।
कृपा करि हरि देइ उमंग, तहं जन पायौ निर्भै संग ॥ ४ ॥
तब हंसा मनि आनंद होइ, बस्त अगोचर लखै रे सोइ ।
जाकौ हरि लखावै आप, ताहि न लेपैं पुन्य न पाप ॥ ५ ॥
तहं अनहद बाजे अद्भुत खेल, दीपक जलै बाति बिन तेल ।
अखंड जोति तहं भयौ प्रकास, फाग बसंत जो बारह मास ॥६॥
त्री अस्थान निरंतरि निरधार, तहं प्रभु बैठे समृथ सार ।
नैंनहुं निरखौं तो सुख होइ, ताहि पुरिष कौं लखै न कोइ ॥७॥
ऐसा है हरि दीन दयाल, सेवग की जानैं प्रतिपाल ।
चलु हंसा तहं चरण समान, तहं दादू पहुँचे परिवान ॥ ८ ॥

४०६—मूरी = जड़ी । कुञ्ज=हृदय कुञ्ज । केलि=क्रीडा, खेल । सब संगी=मन, इन्द्रियां, प्राण । बिन वैनां=बिना जीभ, सुरतिवृत्ति द्वारा । बाजैं तूर = अनाहद शब्द । विगसै कंवल=हृदय कंवल प्रफुल्लित हो । चंद अरु सूर=इडा पिंगला स्थिर हो ।

४०७—आत्म परमात्म रास

घटि घटि गोपी घटि घटि कान्ह, घटि घटि राम अमर अस्थान ।टेक

गंगा जमना अंतर वेद, सुरसती नीर बहै परसेद ॥ १ ॥

कुंज केलि तहं परम विलास, सब संगी मिलि खेलैं रास ॥ २ ॥

तहं बिन बैना बाजैं तूर, विगसै कँवल चंद अरु सूर ॥ ३ ॥

पूरण ब्रह्म परम परकास, तहं निज देखैं दादू दास ॥ ४ ॥

॥ इति राग भैरूं समाप्त ॥ २४ ॥

# अथ राग ललित ॥ २५ ॥

४०८—पराभक्ति

राम तूं मोरा हूं तोरा, पाइन परत निहोरा ॥ टेक ॥

एकै संगैं बासा, तुम्ह ठाकुर हम दासा ॥ १ ॥

तन मन तुम्हकौं देवा, तेज पुंज हम लेवा ॥ २ ॥

---

४०७—गोपी=सद्बुद्धि, सद्वृत्ति । कान्ह=साक्षीआत्मा । गंगा जमना=इडा [illegible] श्वास प्रश्वास । अंतर वेद=हृदय में जान । सरस्वती=सुषुम्ना, सुरति वृत्ति [illegible] रूप । वहै परसेद = प्रेम प्रवाह । सुषमन = कुंभक । सरवर=हृदय स[illegible] हंसा=आत्मा । सुखदाई को=सुखदाता को । सोहंसा=जिज्ञासु साधक । [illegible] सहज वृत्ति । देइउमंग=परम प्रेम प्रदान करें । दीपक जलै=ज्ञान [illegible] त्रिअस्थान=मन, प्राण, सुरति । नैनहुँ निरखा=ज्ञान विज्ञान वृत्ति नेत्र से ।

❀ इति राग भैरूं समाप्त ❀

४०८—निहोरा=विनय, प्रार्थना करना । एकै संगे=एक साथ, अरस परस । देवा

४००—निष्काम साधु

ऐसा औधू राम पियारा, प्राण पिंड थैं रहै नियारा ॥ टेक ॥
जब लग काया तब लग माया, रहै निरंतर औधू राया ॥ १ ॥
अठ सिधि भाई नौ निधि आई, निकटि न जाई राम दुहाई ॥२॥
अमर अभै पद बैकुंठ बास, छाया माया रहै उदास ॥ ३ ॥
सांई सेवग सब दिखलावै, दादू दूजा दिष्टि न आवै ॥ ४ ॥

४०१—सूरातन कसौटी

तूं साहिब मैं सेवग तेरा, भावै सिरि दे सूली मेरा ॥ टेक ॥
भावै करवत सिर परि सारि, भावै लेकर गरदन मारि ॥ १ ॥
भावै चहुँ दिसि अगिन लगाइ, भावै काल दसौं दिसि खाइ ॥२॥
भावै गिरवर गगन गिराइ, भावै दरिया मांहैं बहाइ ॥ ३ ॥
भावै कनक कसौटी देहु, दादू सेवग कसि कसि लेहु ॥ ४ ॥

४०२—साधु

काम क्रोध नहिं आवै मेरे, ताथैं गोविंद पाया नेरे ॥ टेक ॥
भरम करम जालि सब दीन्हा, रमिता राम सबनि मैं चीन्हा ॥१॥
दुविधा दुरमति दूरि गवाँई, राम रमति साची मनि आई ॥ २ ॥
नीच ऊँच मधिम को नाहीं, देखौं राम सबनि के माहीं ॥ ३ ॥
दादू साच सबनि मैं सोई, पेड पकरि जन निर्भै होइ ॥ ४ ॥

४०३—हित उपदेश

हाजिरां हजूर सांई, है हरि नेड़ा दूरि नांहीं ॥ टेक ॥
मनी मेटि महल मैं पावै, काहे खोजन दूरि जावै ॥ १ ॥

---

४००—औधू = निर्व्यसनी सन्त साधक । निरंतर = अलग, दूर ।
४०१—सारि = खींच । कसि कसि = परीक्षा कर कर ।
४०२—दुरमति=कुमति । पेड़ पकरि=मूल ग्रहण कर ।
४०३—हाजिरां = परमात्मा की हाजिरी में रहने वालों के । मनी मेटि = मन की चंचलता

हिरस न होइ गुसा सब खाइ, ताथैं संइयां दूरि न जाइ ॥ २ ॥
दुई दूरि दरोग न होइ, मालिक मन मैं देखै सोइ ॥ ३ ॥
अरि ये पंच सोधि सब मारै, तब दादू देखै निकटि विचारै ॥ ४ ॥

४०४

राम रमत है देषै न कोई, जो देखै सो पावन होई ॥ टेक ॥
बाहरि भीतरि नेड़ा न दूरि, स्वामी सकल रह्या भरपूरि ॥ १ ॥
जहं देखौं तहं दूसर नांहिं, सब घटि राम समाना मांहिं ॥ २ ॥
जहां जाऊँ तहं सोई साथ, पूरि रह्या हरि त्रिभुवन नाथ ॥ ३ ॥
दादू हरि देखैं सुष होइ, निस दिन निरखन दीजै मोहि ॥ ४ ॥

४०५—अध्यात्म

मन पवन ले उनमन रहै, अगम निगम मूल सो लहै ॥ टेक ॥
पंच बाइ जे सहजि समावै, ससिहर के घरि आणें सूर ।
सीतल सदा मिलै सुखदाई, अनहद शब्द बजावै तूर ॥ १ ॥
बंक नालि सदा रस पीवै, तब यहु मनवा कहीं न जाइ ।
बिगसै कँवल प्रेम जब उपजै, ब्रह्म जीवकी करै सहाइ ॥ २ ॥
बैसि गुफा मैं जोति विचारै, तब तेहिं सूझै त्रिभुवन राइ ।
अंतरि आप मिलै अविनासी, पद आनंद काल नहिं खाइ ॥ ३ ॥

---

मिटा । महल = अन्तःकरण में । दूरि=मंदिर, तीर्थ, वन, गुफा, मूर्ति आदि में हिरस = चाह । दरोग = झूठ, द्वेष ।

४०४—अगम निगम = वेद स्मृति निरूपित । पंचवाइ = पांच विषय प्रवृत्ति । ससिहरः इडा, चन्द्रमां के घर । आंणे=लावे । सूर = पिंगला, सूर्य के घर । बंकनालिः तालु मूल से । बिगसै = खिलै, प्रशन्न हो । कंवल=हृदय कमल । वैसि गुफाः हृदय गुहा में वृत्ति स्थिर कर । सूझै=प्रतीत हो, दीखे ।

रस माँहैं रस होइबा, जोति सरूपी जोइबा ॥ ३ ॥
ब्रह्म जीव का मेला, दादू नूर अकेला ॥ ४ ॥

४०९—अनन्य शरण

मेरे गृह आव हो गुरु मेरा, मैं बालक सेवग तेरा ॥ टेक ॥
मात पिता तूं अम्हचा स्वामी, देव हमारे अंतरजामी ॥ १ ॥
अम्हचा सजणी अम्हचा बंधू, प्राण हमारे अम्हचा जिंदू ॥ २ ॥
अम्हचा प्रीतम अम्हचा मेला, अम्हची जीवनि आप अकेला ॥३॥
अम्हचा साथी संग सनेही, राम बिना दुख दादू देही ॥ ४ ॥

४१०—हित उपदेश

वाहला माहरा !
प्रेम भगति रस पीजिये, रमिये रमिता राम ॥ टेक ॥
हिरदा कँवलमां राखिये, उत्तिम एहज ठाम ।
सतगुरु सरणैं अणसरै, साध समागम थाइ ।
वाणी ब्रह्म बखाणिये, आनन्द मैं दिन जाइ ॥ १ ॥
आत्म अनभै ऊपजै, उपजै ब्रह्म गियान ।
सुख सागर मैं झूलिये, साचौ ये स्नान ॥ २ ॥
भौ बंधन सब छूटिये, कर्म न लागे कोइ ।
जीवनि मुकति फल पामिये, अमर अभै पद होइ ॥ ३ ॥
अठ सिधि नौ निधि आंगणैं, परम पदारथ चार ।
दादू जन देखै नहीं, रातौ सिरजनहार ॥ ४ ॥

---

करें । नूर=शुद्ध रूप । अकेला=माया अविद्याविहीन एकाकी ।

४०९—गृह = घर. अन्तःकरण में । अम्हचा = हमारा । जिंदू = जीवन ।

४१०—एहज ठांन = यही जगह । सद्‌गुरु सरणैं अणसरै = सद्‌गुरु की कृपा बिना काम रुका हुआ है । थाइ = हो । मुकतिफल = निर्वासिक आनन्द ।

४११—प्रीति अखंडित

हमारौ मन माई ! राम नाम रंगितौ,
पिव पिव करै पीव कौं जानै, मगन रहै रसि मातौ ॥ टेक ॥
सदा सील संतोष सु भावत, चरन कँवल मन बाँधौ ।
हिरदा मांहिं जतन करि राखौ, मानौं रंक धन लाधौ ॥ १ ॥
प्रेम भगति प्रीति हरि जानौं, हरि सेवा सुखदाई ।
ग्यान ध्यान मोहन कौ मेरे, कंप न लागै काई ॥ २ ॥
संगि सदा हेत हरि लागौ, अंगि और नहिं आवै ।
दादू दीन दयाल दमोदर, सार सुधा रस भावै ॥ ३ ॥

४१२—साहिब सिफति

मेहरवान मेहरवान,
आब बाय खाक आतिश, आदम नीशान ॥ टेक ॥
सीस पांव हाथ कीये, नैंन कीये कान ।
मुख कीया जीव दीया, राजिक रहमान ॥ १ ॥
मादर पिदर परदः पौश, सांई सुबहान ।
संग रहै दस्त गहै, साहिब सुलतान ॥ २ ॥
या करीम या रहीम, दाना तू दीवान ।
पाक नूर है हजूर, दादू है हैरान ॥ ३ ॥

॥ इति राग ललित समाप्त ॥ २५ ॥

---

४११—पिव पिव करे = नाम चिन्तन में रत रहै । संग सदा = निरंतर आत्मा में वृत्ति साथ रहना । हेत = अतिप्रेम । सार सुधा रस = आत्मानुभूति का रस ।

४१२—आव = पानी । वाय = हवा । खाक = जमीन । आतिश = अग्नि । आद

# अथ राग जैतश्री ॥ २६ ॥

४१३—अमिट नांव विनती

तेरे नाउँ की बलि जाउँ, जहां रहौं जिस ठाऊँ ॥ टेक ॥
तेरे बैनौंकी बलिहारी, तेरे नैंनहुं ऊपरि वारी ।
तेरी मूरति की बलि कीती, वारि वारि हौं दीती ॥ १ ॥
सोभित नूर तुम्हारा, सुन्दर जोति उजारा ।
मीठा प्राण पियारा, तू है पीव हमारा ॥ २ ॥
तेज तुम्हारा कहिये, निर्मल काहे न लहिये ।
दादू बलि बलि तेरे, आव पिया तूं मेरे ॥ ३ ॥

४१४—विरह विनती

मेरे जीवकि जाणैं जाणराइ, तुम थैं सेवग कहा दुराइ ॥ टेक ॥
जल बिन जैसैं जाइ जिय तलफत, तुम्ह बिन तैसैं हमहु बिहाइ ।
तन मन व्याकुल होइ बिरहनी, दरस पियासी प्रान जाइ ॥ १ ॥
जैसैं चित्त चकोर चंदमनि, ऐसैं मोहन हमहि आहि ।
बिरह अगनि दहत दादू कौ, दर्शन परसन तना सिराइ ॥ २ ॥

॥ इति राग जैतश्री समाप्त ॥ २६ ॥

---

खुदा के । नीशान=चिन्ह । राजिक=रिजक रोजी देने वाला । रहमान = दयालु । मादर पिदर = माता पिता । परद: पोश = अविद्या के पड़दे से ढका हुवा । दस्त गहै = हाथ पकड़ै ।

❀ इति राग ललित समाप्त ❀

४१३—जिस ठाऊँ=जिस जगह, जिस अवस्था में । वलिकीती=वारणा लिया । दीती=दिया ।
४१४—जाणराई = घट घट की जानने वालों का स्वामी । दुराइ = छिपावे । दरस

# अथ राग धनाश्री ॥ २७ ॥

४१५—अमिट अविनासी रंग

रंग लागौ रे राम कौ, सो रंग कदे न जाई रे।
हरि रंग मेरौ मन रंग्यौ, और न रंग सुहाई रे ॥ टेक ॥
अविनासी रंग ऊपनौं, रचि मचि लागौ चौलौ रे।
सो रंग सदा सुहावणौं, ऐसौ रंग अमोलौ रे ॥ १ ॥
हरि रंग कदे न ऊतरै, दिन दिन होइ सुरंगौ रे।
नित नवौं निरवाण है, कदे न ह्वैला भंगौ रे ॥ २ ॥
साचौ रंग सहजैं मिल्यौ, सुंदर रंग अपारौ रे।
भाग विना क्यूं पाइये, सब रंग माहैं सारौ रे ॥ ३ ॥
अवरण को का वरणिये, सो रंग सहज सरूपौ रे।
बलिहारी उस रंग की, जन दादू देखि अनूपौ रे ॥ ४ ॥

४१६

लागि रह्यौ मन राम सौं, अब अनंत नहिं जाये रे।
अचला सौं थिर ह्वै रह्यौ, सकै न चित डुलाये रे ॥ टेक ॥

पियासी = दर्शनों की प्यासी। चंदमनि = चन्द्रमा के लिये। तना = शरीर
सिराइ = शीतल करो।

❀ इति राग जैतश्री समाप्त ❀

४१५—ऊपनो=गहरो, उघड़ने वाला। चौलौ=अन्तःकरण में। अमोलौ=बेस-कीमती
सुरंगो = गहरो। निरवाँण = निर्माण, बनना।

४१६—अचलासौं = निश्चल व्यापक आत्मा। डुलाये = डोले, चलायमान हो।

ज्यूं फुनिंग चंदनि रहै, परिमल रहै लुभाये रे।
त्यूं मन मेरा राम सौं, अबकी बेर अघाये रे ॥ १ ॥
भंवर न छाड़ै बासकूं, कँवलहि रह्यौ बंधाये रे।
त्यूं मन मेरा राम सौं, वेधि रह्यौ चित लाये रे ॥ २ ॥
जल विन मीन न जीवई, विछुरत ही मरि जाये रे।
त्यूं मन मेरा राम सौं, ऐसी प्रीति बनाये रे ॥ ३ ॥
ज्यूं चात्रिग जल कौं रटै, पिव पिव करत विहाये रे।
त्यूं मन मेरा राम सौं, जन दादू हेत लगाये रे ॥ ४ ॥

४१७—विनती

मन मोहन हो !
कठिन विरह की पीर, सुन्दर दरस दिखाइये ॥ टेक ॥
सुनहु न दीन दयाल, तव मुख बैन सुनाइये ॥ १ ॥
करुणामय कृपाल, सकल सिरोमणि आइये ॥ २ ॥
मम जीवनि प्राण अधार, अविनासी उर लाइये ॥ ३ ॥
इब हरि दरसन देहु, दादू प्रेम बढ़ाइये ॥ ४ ॥

४१८

कतहूँ रहे हो विदेश, हरि नहिं आये हो।
जन्म सिरानौं जाइ, पीव नहिं पाये हो ॥ टेक ॥
विपति हमारी जाइ, हरिसौं को कहै हो।
तुम्ह बिन नाथ अनाथ, विरहनि क्यूं रहै हो ॥ १ ॥

---

फुनिंग=सर्प । परिमल=सुगन्ध । वेधि रह्यो=विंध रह्यो । जलकों=स्वातिबून्द ।
४१७—सुन्दर = श्रेष्ठ । सुनहू न = सुनिये तो । उर लाइये=मेरे अन्तःकरण को आपकी ओर लगाइये ।
४१८—विदेश = दूर देश । सिरानौ = बीतता, खतम होता ।

पीव के विरह वियोग, तन की सुधि नहीं हो ।
तलफि तलफि जिव जाइ, मृतक ह्वै रही हो ॥ २ ॥
दुखित भई हम नारि, कब हरि आवै हो ।
तुम्ह बिन प्राण अधार, जीव दुख पावै हो ॥ ३ ॥
प्रगटहु दीन दयाल, बिलम न कीजिये हो ।
दादू दुखी बेहाल, दरसन दीजिये हो ॥ ४ ॥

४१६

सुरिजन मेरा वे ! कीहै पारि लहांउं ।
जे सुरिजन घरि आवै वे, हिक कहाण कहाउं ॥ टेक ॥
तो बाझें मेकौं चैंन न आवै, ये दुख कींह कहाउं ।
तो बाझें मेकौं निदु न आवै, अखियां नीर भराउं ॥ १ ॥
जे तूं मेकौं सुरिजन डेवै, सोहौं सीस सहाउं ।
ये जन दादू सुरिजन आवै, दरिगह सेव कराउं ॥ २ ॥

४२०

मोहन माधौ कब मिलै, सकल सिरोमणि राइ ।
तन मन व्याकुल होत है, दरस दिखावो आइ ॥ टेक ॥
नैंन रहे पंथ जोवतां, रोवत रैंणि बिहाइ ।
बाल सनेही कब मिलै, मोपैं रह्या न जाइ ॥ १ ॥

४१६—कीहै = कैसे । पार लहाऊं=पार पाऊं । हिक कहाण=एक कथा । बांझे=वि
कीह कहाऊं = किससे कहूँ । डेवे = देवे । सोहौं = वह मैं । सीस सहा
सब सहन करूं । दरिगह = हृदय रूपी मसजिद में । सेव = सेवा, अर्चना

४२०—अंगि = शरीर को । अनल दहै = विरह अग्नि-जला रही है । तपति = ।

छिन छिन अंगि अनल दहै, हरिजी कब मिलि हैं आइ ।
अंतरजामी जाणि करि, मेरे तन की तपति बुझाइ ॥ २ ॥
तुम्ह दाता सुख देत हौ, हां हो सुणि दीन दयाल ।
चाहैं नैंन उतावले, हां हो कब देखौं लाल ॥ ३ ॥
चरन कँवल कब देखिहौं, सनमुख सिरजनहार ।
सांईं संग सदा रहौं, हां हो तब भाग हमार ॥ ४ ॥
जीवनि मेरी जब मिलै, हां हो तब ही सुख होइ ।
तन मन मैं तूंही बसै, हां हो कब देखौं सोइ ॥ ५ ॥
तन मन की तूंही लखै, हां हो सुणि चतुर सुजान ।
तुम्ह देखे बिन क्यूं रहौं, हां हो मोहि लागे बान ॥ ६ ॥
बिन देखै दुख पाइये, हां हो इब विलंब न लाइ ।
दादू दरसन कारनैं, हां हो सुख दीजै आइ ॥ ७ ॥

४२१—वैराग

ये खूहि पये सब भोग विलासन, तैसहु वाकौ छत्र सिंघासन ॥टेक॥
जनतहु राम भिस्त नहिं भावै, लाल पलिंग क्या कीजे।
भाहि लगै इहि सेज सुखासन, मेकौं देखण दीजै ॥ १ ॥
वैकुंठ मुकति सरग क्या कीजे, सकल भवन नहिं भावै ।
भठी पयें सब मंडप छाजे, जे घरि कंत न आवै ॥ २ ॥

---

का सन्ताप । चाहैं = चाहना कर रहे हैं । बांन = विरह बाण ।
४२१—खूहि = कूवे में । पये = पड़ें । छत्र सिंघासन = राज पाट । जनतहु = जिन्नत ।
भिस्त = स्वर्ग । लाल = हे प्रिय । भाहि लगै = आग लगो । मेकौं = मेरे को ।
देखण दीजे = दर्शन दे । भठी पये = भाड़ में पड़े । मंडप छाजै = साज सामान ।
घरि = हृदय में । कंत = स्वामी, प्रिय आत्मा ।

लोक अनंत अभै क्या कीजै, मैं विरही जन तेरा।
दादू दरसन देखण दीजै, ये सुनि साहिब मेरा ॥ ३ ॥

४२२.—ईमान साबित (राग काफी)

अल्लः आशिकां ईमान,
बहिश्त दोजख दीन दुनिया, चेकारे रहमान ॥ टेक ॥
मीर मीरी पीर पीरी, फरिश्तः फरमान।
आब आतिश अरश कुर्सी, दीदनी दीवान ॥ १ ॥
हरदो आलम खलक खाना, मोमिना इसलाम।
हजां हाजी कजां काजी, खान तू सुलतान ॥ २ ॥
इल्म आलम मुल्क मालुम, हाजते हैरान।
अजब यारां खबरदारां, सूरते सुबहान ॥ ३ ॥

४२२—आशिकां = आशिक, तेरे उपासकों। ईमान = भरोसा है। बहिश्त = स्वर्ग। दोज़ख = नरक। चेकारे = क्या करिये। मीरमीरी = बड़ों के बड़े। पीर पीरी= पीरों के पीर। फरिश्तः = सिद्धों के सिद्ध। फरमान = आज्ञा। आव आतिश अरश कुर्सी=पानी, आग, आकाश, जमीन। दीदनी दीवान=तेरे ही दर्शन होते हैं। हरदो आलम खलक खाना = सम्पूर्ण संसार, जहान के सब कबीले। मोमिन इसलाम = मोमिन और धर्म सब में तू ही निवास करता है। हजां हाजी = ह‍ के यात्रियों में। कजां काजी=इनसाफ करने वाले काजियों में। खान तू सुलतान= तू ही बड़ा बादशाह है। इल्म आलम=संसार की विद्यायें। मुल्क मालुम=मुल्क की जानकारी की चाह। हाजते हैरान = तीर्थ यात्राओं की हैरानी में उलझ र हैं। हे याराँ=मित्रो यह आश्चर्य की बात है। खबरदारां=हुशियार होओ, सावधा होओ। सूरते सुबहान = सुबहान—सबमें व्यापक परमात्मा की प्राप्ति में लगो

अव्वल आखिर एक तूहीं, जिंद है कुरबान।
आशिकां दीदार दादू, नूर का नीशान ॥ ४ ॥

४२३—विरह विनती (राग काफी)

अल्हः तेरा जिकर फिकर करते हैं।
आशिकां मुश्ताक तेरे, तर्स तर्स मरते हैं ॥ टेक ॥
खलक खेश दिगर नेस, बैठे दिन भरते हैं।
दायम दरबार तेरे, गैर महल डरते हैं ॥ १ ॥
तन शहीद मन शहीद, रात दिवस लड़ते हैं।
ग्यान तेरा ध्यान तेरा, इश्क आग जलते हैं ॥ २ ॥
जान तेरा जिंद तेरा, पावों सिर धरते हैं।
दादू दीवान तेरा, जर खरीद घरके हैं ॥ ३ ॥

---

अव्वल आखिर = आदि से अन्त तक। एक तूही = एक वही कायम रहता है। जिंद है कुरबान = उसी पर यह मानव जीवन कुर्वान है, निछावर है। आशिकाँ-उपासकों, साधकों को नूर-शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होना चाहिये।

४२३—अल्हः=अलह, हे न पाने वाले। जिकर = स्मरण। फिकर=चिन्तवन। मुस्ताक तेरे = तेरे लिये मस्त दिवाने। खलक खेश दिगर नेस = संसार और कुटुम्ब के ध्यान को खतम कर। बैठे दिन भरते हैं = वृत्ति स्थैर्य द्वारा जीवन के दिन सफल करते हैं। दायम दरबार तेरे = तेरे दरबार के भक्त जन। गैर महल = खोटे रास्ते से। तन शहीद मन शहीद = तन मन को मारने के लिये। लड़ते हैं = अभ्यास साधन द्वारा लड़ रहे हैं। इश्क आग = प्रेम की आग में। जान=प्राण। जिंद = जीवन। दीवान = हे महाराज। जर खरीद = मोल लिये हुये।

दृष्टान्तः—*गुरु दादू को हर कही, कहा करत मम रूप।*
*तब स्वामी यह पद कह्यो, भजन तुम्हार अनूप ॥ १ ॥*

४२४

मुखि बोलि स्वामी, तूं अंतरजामी ।
तेरा सबद सुहावै रामजी ॥ टेक ॥
धेन चरावन बैन बजावन, दरस दिखावन कामिनी ॥ १ ॥
बिरह उपावन तपति बुझावन, अंगि लगावन भामिनी ॥ २ ॥
संगि खिलावन रास बनावन, गोपी भावन भूधरा ॥ ३ ॥
दादू तारन दुरति निवारण, संत सुधारण रामजी ॥ ४ ॥

४२५—केवल विनती

हाथ दे हो रामा, तुम पूरण सब कामा ।
हौं तो उरझि रह्यौ संसार ॥ टेक ॥
अंध कूप गृह मैं पर्‌यौ, मेरी करहु संभाल ।
तुम बिन दूजा को नहीं, मेरे दीनानाथ दयाल ॥ १ ॥
मारग को सूझै नहीं, दह दिसि माया जाल ।
काल पासि कसि बांधियौ, मेरे कोइ न छुडावनहार ॥ २ ॥
राम बिना छूटै नहीं, कीजै बहुत उपाइ ।
कोटि किया सुलझै नहीं, अधिक अलूझत जाइ ॥ ३ ॥
दीन दुखी तुम देखतां, भै दुख भंजन राम ।
दादू कहै कर हाथ दे हो, तुम सब पूरण काम ॥ ४ ॥

४२४—धेन = आशा रूपी गाय । बैंन=परावाणी वैखरी । कामिनी = कामना वा
बुद्धि । भामिनी = श्रद्धामय बुद्धि रूपो भामिनी-स्त्री को अपने अंग लगाते
गोपी =अन्तर्निष्ठ बुद्धि । भावन=प्यारे । दुरति = पाप कर्म ।

४२५—हाथ दे = सहारा दे, आश्रय दे । अंध कूप गृह=अज्ञान से अंधा विषय वासन
कूप में पड़ा हूँ । मारग = मुक्ति का रास्ता । कोटि किया = सब
कर्म करोड़ों करने पर भी ।

४२६—करुणा विनती

जनि छाडै राम जनि छाडै, हमहिं विसारि जनि छाडै ।
जीव जात न लागै बार जनि छाडै ॥ टेक ॥

माता क्यूं बालक तजै, सुत अपराधी होइ ।
कबहुं न छाड़ै जीवथैं, जिनि दुख पावै सोइ ॥ १ ॥
ठाकुर दीन दयाल है, सेवग सदा अचेत ।
गुण औगुण हरि ना गिणै, अंतरि तासौं हेत ॥ २ ॥
अपराधी सुत सेवगा, तुम्ह हौ दीन दयाल ।
हम थैं औगुण होत हैं, तुम्ह पूरण प्रतिपाल ॥ ३ ॥
जब मोहन प्राणी चलै, तब देही किहि काम ।
तुम्ह जानत दादू का कहै, अब जनि छाड़ै राम ॥ ४ ॥

४२७

विषम बार हरि अधार, करुणा बहु नामी ।
भगति भाइ बेगि आइ, भीड़ भंजन स्वामी ॥ टेक ॥

अंति अधार संत सधार, सुन्दर सुखदाई ।
काम क्रोध काल ग्रसत, प्रगटौ हरि आई ॥ १ ॥
पूरण प्रतिपाल कहिये, सुमिर्‍यौं थैं आवै ।
भरम करम मोह लागे, काहे न छुड़ावै ॥ २ ॥

---

४२६—जनि छाडै = मत त्यागिये । अपराधी = दोषी, कसूरवान । ठाकुर = मालिक, स्वामी । अचेत = असावधान, गाफिल । अंतरि = भीतर से । प्राणी = जीव ।

४२७—विषम बार = कठिन समय । करुणा बहु = अति दयालु । भगति भाइ = भक्ति भाव वाले साधक के लिये । भीड़ भंजन = दुःखनाशन । अंति अधार = आखिर

दीन दयाल होइ कृपाल, अंतरजामी कहिये ।
एक जीव अनेक लागे, कैसै दुख सहिये ॥ ३ ॥
पावन पीव चरण शरण, जुगि जुगि तैं तारे ।
अनाथ नाथ दादू के, हरि जी हमारे ॥ ४ ॥

४२८—विनती

साजनियां नेह न तोरी रे ।
जे हम तोरैं महा अपराधी, तौ तूं जोरी रे ॥ टेक ॥
प्रेम बिना रस फीका लागै, मीठा मधुर न होई ।
सकल शिरोमणि सब थैं नीका, कड़वा लागै सोई ॥ १ ॥
जब लग प्रीति प्रेम रस नाहीं, त्रिषा बिना जल ऐसा ।
सब थैं सुन्दर एक अमीरस, होइ हलाहल जैसा ॥ २ ॥
सुन्दरि सांई खरा पियारा, नेह नवा नित होवै ।
दादू मेरा तब मन मानै, सेज सदा सुख सोवै ॥ ३ ॥

४२९—कर्ता कीर्ति

काइमा ! कीरति करौंली रे, तूं मोटौ दातार ।
सब तैं सिरजीला साहिबजी, तूं मोटौ कर्तार ॥ टेक ॥
चौदह भवन भानैं घड़ै, घड़त न लागै बार ।
थापै उथपैं तूं धणी, धनि धनि सिरजनहार ॥ १ ॥

---

का आश्रय । ग्रसत = खारहे हैं । सुमिर्यौं थैं = याद करने से ।

४२८—साजनियां = प्रिय स्वामी । फीका लागे = नीरस लागे । नीका = अच्छा । कड़वा = खारा, बुरा । प्रीति प्रेम = श्रद्धा भक्ति । त्रिषा = प्यास । अमीरस = अमृत हलाहल = जहर । सुन्दरि = मनोहर । सेज = हृदय रूपी सेज पर ।

४२९—काइमां = सर्वदा मौजूद रहने वाले परमात्मा । कीरति करौंली = तेरा गुणगा

धरती अंबर तैं धर्‌या, पाणी पवन अपार ।
चंद सूर दीपक रच्या, रैणि दिवस विसतार ॥ २ ॥
ब्रह्मा शंकर तैं किया, विष्णु दिया अवतार ।
सुर नर साधू सिरजिया, करि ले जीव विचार ॥ ३ ॥
आप निरंजन ह्वै रह्‌यो, काइमौं कौतिगहार ।
दादू निर्गुण गुण कहै, जाऊंली हौं बलिहार ॥ ४ ॥

४३० उपदेश चितावणी

जियरा राम भजन करि लीजै,
साहिब लेखा मांगैगा रे, उत्तर कैसे दीजै ॥ टेक ॥
आगै जाइ पछितावन लागौ, पल पल यहु तन छीजै ।
तातैं जिय समझाइ कहूँ रे, सुकृत अबथैं कीजै ॥ १ ॥
राम जपत जम काल न लागै, संगि रहैं जन जीजै ।
दादू दास भजन करि लीजै, हरिजी की रासि रमीजै ॥ २ ॥

४३१—काल चितावणी

काल काया गढ भेलसी, छीजै दसौं दुवारो रे ।
देखतड़ां ते लूटिये, होसी हाहाकारो रे ॥ टेक ॥

---

करूंगा । सिरजोला = बनाया । भवन=लोक । भानै घड़ै=बनावे नाश करे । थापै उथपै=स्थापित करे उखाड़े । जीव विचार=हे जीव ! अभेदनिश्चय का विचार करले । निर्गुण गुण कहै = निर्द्वन्द्व परमात्मा को सगुण कहै ।

४३०—लेखा=जीवन का हिसाब । अबथैं=अभी । रासि रमीजै=आनंदमय रास खेलिये ।

४३१—कायागढ़=देहरूपी किले को । भेलसी=तोड़ेगा । छीजै=आयु घट रही है । दसौं दुवारो=नेत्र, मुंह, कान, नाक, उपस्थ, अपान मार्ग के जरिये । देखतड़ां=

नाइक नगर न मीलसी, एकलड़ो ते जाई रे ।
संग न साथी कोई न आसी, तहं को जाणैं किम थाई रे ॥१॥
संतजन साधौ माहरा भाईड़ा, कांई सुकृत लीजै सारो रे ।
मारिग विषम चलिवौ, कांई लीजै प्राण अधारो रे ॥ २ ॥
जिम नीर निवाणा ठाहरै, तिम साजी बांधौ पालो रे ।
समर्थ सोई सेविये, तौ काया न लागैं कालो रे ॥ ३ ॥
दादू थिर मन आणिये, तौ निहचल थिर थाये रे ।
प्राणी ने पूरो मिलौ, तौ काया न मेल्ही जाये रे ॥ ४ ॥

४३२—भैभीत भयानक

डरिये रे डरिये, परमेसुरथैं डरिये रे ।
लेखा लेवै भरि भरि देवै, ताथैं बुरा न करिये रे ॥ टेक ॥
साचा लीजी साचा दीजी, साचा सौदा कीजी रे ।
साचा राखी झूठा नाखी, विष ना पीजी रे ॥ १ ॥
निर्मल गहिये, निर्मल रहिये, निर्मल कहिये रे ।
निर्मल लीजी निर्मल दीजी, अनत न बहिये रे ॥ २ ॥

---

देखते-२ । नाइक=जीवरक्षक । नगर=शरीर । किमथाई=क्या हो । वि
कठिन । निवाणाँ=नीची जगह । ठाहरे=ठहरे । साजी=सजकर । बांधोपाल=शमद
की पाल बान्ध कर मन को रोको । थिर मन आणिये=मन को स्थिर करिये ।

४३२—विष ना पीजी रे = विषय विषका पान न करो । निर्मल = शुद्ध ब्रह्म । 
रहिये = शुद्ध बुद्धि से साधन में लगे रहिये । निर्मल कहिये = निरपक्ष वा
वृत्ति वाणी से कहिये—चिन्तन करिये । निर्मल लीजी=माया अविद्यारहित स
चेतन को लीजिये, प्राप्त करिये । निर्मल दीजी = शुद्ध वृत्ति हृदय प्रदेश में दी
लीन करिये । अनत = विषय वासना । ठाया = भेजा । वनिज = जीवन

साहिब ठाया, बनिज न आया, जनि डहकावै रे।
झूठ न भावै फेरि पठावै, कीया पावै रे॥ ३॥
पंथ दुहेला जाइ अकेला, भार न लीजी रे।
दादू मेला होइ सुहेला, सो कुछ कीजी रे॥ ४॥

४३३

डरिये रे डरिये, देखि देखि पग धरिये।
तारे तरिये मारे मरिये, तार्थें गर्व न करिये रे॥ टेक॥
देवै लेवै समर्थ दाता, सब कुछ छाजै रे।
तारै मारै गर्व निवारै, बैठा गाजै रे॥ १॥
राखैं रहिये बाहें बहिये, अनत न लहिये रे।
भानैं घड़ै संवारै आपै, ऐसा कहिये रे॥ २॥
निकटि बुलावै दूरि पठावै, सब बनि आवै रे।
पाके काचे काचे पाके, ज्यूं मन भावै रे॥ ३॥
पावक पाणी पाणी पावक, करि दिखलावै रे।
लोहा कंचन कंचन लोहा, कहि समझावै रे॥ ४॥

---

सौदा। जनि डहकावे = बहकै मत, डाँवां डोल मत हो। पंथ दुहेला = आत्म प्राप्ति का मार्ग करड़ा है। भार न लीजी = कर्म फल का भार शिर पर न लेना। मेला = आत्म मिलाप। सुहेला = सरल सीधा।

४३३—देखि देखि = समझ समझ। पग धरिये = प्रवृत्त हुइये। तार्थें = उससे। गर्व = अभिमान। देवे = स्वस्वरूप का ज्ञान दे। लेवे = विषय विकार सब हरले। गर्व निवारै = आपा दूर करे। वाहे वहिये = चलाये चलिये। अनत = और। निकट बुलावे = अपनी ओर लगावे। दूर पठावे = विषय भोग में उलझावे।

ससिहर सूर सूरथैं ससिहर, परगट खेलै रे ।
धरती अंबर अंबर धरती, दादू मेलै रे ॥ ५ ॥

४३४—हित उपदेश

मनसा मन सबद सुरति, पांचौं थिर कीजै ।
एक अंग सदा संग, सहजैं रस पीजै ॥ टेक ॥
सकल रहित मूल गहित, आपा नहिं जानैं ।
अंतर गति निर्मल रति, ऐकै मनि मानैं ॥ १ ॥
हिरदै सुधि विमल बुद्धि, पूरण परकासै ।
रसना निज नांउं निरखि, अन्तर गति बासै ॥ २ ॥
आत्म मति पूरण गति, प्रेम भगति राता ।
मगन गलत अरस परस, दादू रसि माता ॥ ३ ॥

४३५—विनती

गोविंद के चरनौं ही ल्यौ लाऊं ।
जैसै चातक वन में बोलै, पीव पीव करि ध्याऊं ॥ टेक ॥
सुरिजन मेरी सुनहु वीनती, मैं बलि तेरे जाऊं ।
विनती हमारी तोहि सुनाऊं, दे दरसन क्यूं ही पाऊं ॥ १ ॥

---

पाके काचे = नारदादि पक्के साधकों को काचे कर दिये । ससिहर = चन्द से । मेलै = बनादे ।

४३४—मनसा = चाह । सबद = प्राण । सुरति = वृत्ति । एक अंग = अद्वितीय ब्रह्म । सकल रहित = माया अविद्या के विस्तार रहित । मूल गहति = शुद्ध ब्रह्म को ग्रहण कर । अंतरगति = अन्तमु'ख वृत्ति । निर्मल रति = निष्काम प्रेम । विमल बुद्धि = शुद्ध बुद्धि से ।

४३५—ल्यौ=ध्यान । सुरिजन=प्रिय जन । जात दुख=सब क्लेश मिटै । सुख उपजत= चिरंतन सुख पैदा हो ।

जात दुख सुख उपजत तिनकौं, तुम सरनागति आऊं।
दादू को दया करि दीजै, नांउं तुम्हारौ गाऊं ॥ २ ॥

४३६

ये प्रेम भगति बिन रह्यौ न जाई, परगट दरसन देहु अघाई ॥ टेक ॥
तालाबेली तलफै मांहीं, तुम बिन राम जियरे जक नांहीं ॥ १ ॥
निसबासुरि मन रहै उदासा, मैं जन व्याकुल सास उसासा ॥ २ ॥
एकमेक रस होइ न आवै, ताथैं प्राण बहुत दुख पावै ॥ ३ ॥
अंग संग मिलि यहु सुख दीजै, दादू राम रसाइन पीजै ॥ ४ ॥

४३७—परचै उपदेश

तिस घरि जाना वे, जहां वै अकल सरूप।
सो इब ध्याइये रे, सब देवनि का भूप ॥ टेक ॥
अकल सरूप पीव का, बान बरन न पाइये।
अखंड मंडल मांहिं रहै, सोई प्रीतम गाइये।
गावहु मन विचारा वे, मन विचारा सोई सारा।
प्रगट पीव ते पाइये,
सांई सेती संग साचा, जीवत तिस घरि जाइये ॥ १ ॥
अकल सरूप पीवका, कैसै करि आलेखिये।
सुन्य मंडल मांहिं साचा, नैंन भरि सो देखिये।

४३६—अघाई = भरपूर। तालावेली = अति उतावली से। जक = शान्ति। सास उसासा=श्वास श्वास में। एकमेक=एकत्व भाव। अंग संग मिलि=अरस परस हो।

४३७—तिस घर = उस हृदयरूपी घर में। अकल सरूप = निर्लेप, कला किरण से रहित। इब = इस जन्म में। ध्याइये = याद करिये, सुमरिये। बान = भेष। वरन=रंग, जाति। अखंड मंडल = विषय भाव से खंडित नहीं ऐसे हृदय मण्डल में। विचारा वे = विचार हुआ, समझा हुआ। आलेखिये = देखिये। सून्य मंडल=

देखौं लोचन सार वे, देखौं लोचन सार ।
सोई प्रगट होई, यह अचम्भा पेखिये ।
दयावंत दयाल ऐसौ, बरण अति बसेखिये ॥ २ ॥
अकल सरूप पीव का, प्राण जीवका ।
सोई जन जे पावई ।
दयावंत दयाल ऐसौ, सहजैं आप लखावई ।
लखै सुलखणहार वे, लखै सोई संग होइ ।
अगम बैन सुनावही ।
सब दुख भागा रंग लागा, काहे न मंगल गावही ॥ ३ ॥
अकल सरूपी पीव का, कर कैसे करि आणिये ।
निरंतर निर्धार आपै, अन्तरि सोई आणिये ।
जाणहुँ मन विचारा वे, मनि विचारा सोई सारा,
सुमिरि सोई बखानिये ।
श्री रंग सेती रंग लागा, दादू तौ सुख मानिये ॥ ४ ॥

४३८

राम तहां प्रगट रहे भरपूर,
आतमा कँवल तहां, परम पुरिष तहां ।

---

निर्विकल्प हृदय प्रदेश में । लोचनसार = नेत्रों का सार फल । लखै = जा[illegible]
सुलखणहार = निष्काम दृढव्रती साधक । कर कैसे करि=किस साधन की सा[illegible]
द्वारा । जाणहुं मन विचार वे=मन की शुद्धि—स्थिर विचार से ही उसको ज[illegible]
जा सकता है । श्रीरंग = सर्वोपरि रंग से । रंग लागा = प्रेम लगा ।

४३८—आतम कँवल तहां = शुद्ध निश्चल हृदय प्रदेश में । परम पुरिष = समष्टि नि[illegible]

झिलिमिलि झिलिमिलि नूर ॥ टेक ॥

चंद सूर मधि भाइ, तहां बसै राम राइ,

गंग जमन के तीर ।

त्रिवेणी संगम जहां, निर्मल विमल तहां,

निरखि निरखि निज नीर ॥ १ ॥

आत्मा उलटि जहां, तेज पुंज रहै तहां,

सहजि समाइ ।

अगम निगम अति, तहां बसै प्राणपति ।

परसि परसि निज आइ ॥ २ ॥

कोमल कुसम दल, निराकार जोति जल ।

वार पार सुन्य सरोवर जहां,

दादू हंसा रहै तहां, विलसि विलसि निज सार ॥ ३ ॥

---

चेतन । चंद सूर मधि = इड़ा पिंगला सुषुम्ना में या श्वास प्रश्वास कैं स्थैर्य में । गंग जमन के तीर = इड़ा पिंगला के किनारे । त्रिवेणी = मन, प्राण, सुरति । संगम = एकता । निजनीर = स्वस्वरूप । आत्मा = अन्तःकरण । निगम अगम अति = वेद शास्त्र के प्रवचन से आगे । परसि परसि = स्पर्श कर, साक्षात् कर । कोमल कुसम दल = शुद्ध हृदय कमल में । निराकार जोति जल = प्रतिबिम्बित चेतन रूप जल । सून्य सरोवर = वासनाविहीन हृदय सरोवर ही में । हंसा = साधक वृत्ति । विलसि विलसि = उपभोग कर कर ।

४३९

गोविंद पाया मनि भया, अमर कीये संग लीये।
अखै अभै दान दीये, छाया नहीं माया ॥ टेक ॥
अगम गगन अगम तूर, अगम चंद अगम सूर।
काल झाल रहे दूर, जीव नहीं काया।
आदि अंति नहीं कोइ, राति दिवस नहीं होइ।
उदै अस्त नहीं दोइ, मनही मन लाया ॥ १ ॥
अमर गुरु अमर ग्यान, अमर पुरिष अमर ध्यान।
अमर ब्रह्म अमर थान, सहजि सुन्य आया।
अमर नूर अमर बास, अमर तेज सुख निवास।
अमर जोति दादू दास, सकल भुवन राया ॥ २ ॥

४४०

राम की राती भई माती, लोक वेद विधि निषेध।
भागे सब भ्रम भेद, अमृत रस पीवै ॥ टेक ॥

---

४३९—संग लिये = अपने साथ लिये। अखै अभै=नाश भय रहित। छाया=आभास माया=आवरण नहीं। अगम गगन=शून्यवत् अगम्य। अगम तूर=अनाहद शब्द आदि अंत नहीं = जन्म मरण नहीं। रात दिवस नहीं = कालक्रम से रहित उदै अस्त नहीं = उद्भव विलय नहीं। मनही मन लागा = समष्टि मनमें व्य मनको मिलाया। अमर गुरु=गुरु उपदेश अमर। सहज सून्य आया = निर्विक अपने अधिष्ठान में वृत्ति लय की।

४४०—राती = अनुरागमय बुद्धि। भई माती = स्वस्वरूप ध्यान में मस्त। लो संसार की मर्यादा। वेद = शास्त्रमर्यादा। विधि निषेध=सकाम कर्म अनुबन्ध भ्रम भेद = संशय तथा द्वैतवृत्ति। भागे सब = ये सब निवृत्त होगये। अ

भागे सब काल झाल, छूटे सब जग जंजाल।
बिसरे सब हाल चाल, हरि की सुधि पाई।
प्राण पवन जहाँ जाइ, अगम निगम मिले आइ।
प्रेम मगन रहे समाइ, विलसै वपु नाहीं ॥ १ ॥

परम नूर परम तेज, परम पुंज परम सेज।
परम जोति परम हेज, सुन्दरि सुख पावै।
परम पुरिष परम रास, परम लाल सुख विलास।
परम मंगल दादूदास, पीव सौं मिलि खेलै ॥ २ ॥

रस पीवै = वृत्ति आत्मरस पान करने में संलग्न है। काल झाल = कामादि वासना का संताप सब भागे। जग जंजाल = घरबार कुटुम्ब कबीला छूटै। सब हाल चाल = मायिक पदार्थ की प्रवृत्ति। बिसरे = भूले। प्राण पवन जहां जाइ= प्राण की गति वहां गई- समाधिस्थ हुई। अगम निगम मिले आइ = वह अगम्य तत्व आ मिला। विलसै = वृत्ति विलास करे। वपु नाहीं = शरीर का अध्यास नहीं रहा। परम सेज = शुद्ध हृदय की शय्या पर। परम हेज = परम अनुराग। सुन्दरि = सन्त वृत्ति। परम रास = एकत्व लीला।

### ४४१—आरती

इहि विधि आरती राम की कीजै, आत्मा अंतरि वारणा लीजै ॥

तन मन चन्दन प्रेम की माला, अनहद घंटा दीन दयाला ॥

ग्यान का दीपक पवन की बाती, देव निरंजन पांचौं पाती ॥

आनंद मंगल भाव की सेवा, मनसा मन्दिर आतम देवा ॥

भगति निरंतर मैं बलिहारी, दादू न जानैं सेव तुम्हारी ॥

### ४४२

आरती जगजीवन तेरी, तेरे चरन कँवल परि वारी फेरी ॥

चित चांवर हेत हरि ढारै, दीपक ग्यान हरि जोति विचारै ॥

घंटा सबद अनाहद बाजै, आनन्द आरती गगन गाजै ॥

धूप ध्यान हरि सेती कीजै, पुहप प्रीति हरि भांवरि लीजै ॥

सेवा सार आत्म पूजा, देव निरंजन और न दूजा ॥

भाव भगति सौं आरती कीजै, इहि विधि दादू जुगि जुगि जीजै ॥

---

४४१—आत्म अंतर = अन्तःकरण में । अनहद घंटा = अनहद शब्द रूपी घंटा । प
पाती = पांचौं इन्द्रियों की स्थिरता यही पाती—तुलसीदल है ।

४४२—चित चांवर = शुद्ध अन्तःकरण है वह चंवर है । हेत = अति अनुराग । ग
गाजै=हृदयाकाश में । पुहप प्रीति=प्रेम के पुष्प । भांवरि लीजै=वलैयां लीजि

४४३

अविचल आरती देव तुम्हारी, जुगि जुगि जीवनि राम हमारी ॥टेक॥

मरण मीच जम काल न लागै, आवागवन सकल भ्रम भागै ॥१॥

जोनी जीव जनमि नहिं आवै, निर्भै नांउं अमर पद पावै ॥२॥

कलि विष कुसमल बंधन काँपे, पारि पहूंते थिर करि थापे ॥३॥

अनेक उधारे तैं जन तारे, दादू आरती नरक निवारे ॥४॥

४४४

निराकार तेरी आरती, बलि जाऊं अनंत भवन कै राइ ॥टेक।

सुर नर सब सेवा करैं, ब्रह्मा विष्णु महेश।

देव तुम्हारा भेव न जानैं, पार न पावै सेस ॥ १ ॥

चंद सूर आरती करैं, नमो निरंजन देव।

धरनि पवन आकास अराधैं, सबै तुम्हारी सेव ॥ २ ॥

---

४४३—अविचल=हे स्थिर परमात्मन् । मीच = मृत्यु । आवागवन = आना जाना । भ्रम= संशय । बंधन काँपे = ममता के बंधन काट दिये । पार पहूँते = वासना के समुद्र से पार निकल गये । थिर करि थापै=मन वृत्ति को स्थिर कर आत्मचिंतन में लगाये ।

४४४—निराकार = रूप रहित । अनंत भवन = चौदह लोक के । राइ = स्वामी । भेव= भेद । अराधैं = आराधन करे । मुनियर = मुनिश्रेष्ठ व्यास शुकदेवादि । सिद्ध

सकल भवन सेवा करैं, मुनियर सिद्ध समाध।
दीन लीन ह्वै रहे संत जन, अविगत के आराध ॥ ३ ॥
जै जै जीवनि राम हमारी, भगति करैं ल्यौ लाइ।
निराकार की आरती कीजै, दादू बलि बलि जाइ ॥ ४ ॥

४४५

तेरी आरती ए, जुगि जुगि जै जै कार ॥ टेक ॥
जुगि जुगि आतमराम, जुगि जुगि सेवा कीजिये ॥ १ ॥
जुगि जुगि लंघे पार, जुगि जुगि जगपति कौ मिले ॥ २ ॥
जुगि जुगि तारणहार, जुगि जुगि दरसन देखिये ॥ ३ ॥
जुगि जुगि मंगलचार, जुगि जुगि दादू गाइये ॥ ४ ॥

॥ इति राग धनाश्री सम्पूर्ण ॥ २७ ॥

---

दत्तात्रेयादि, गोरख आदि। संतजन = कबीर आदि।

४४५—जुगि जुगि = अखंड काल। सेवा = साधना। लंघे पार = संसार समुद्र से पार

❀ इति राग धनाश्री सम्पूर्ण ❀
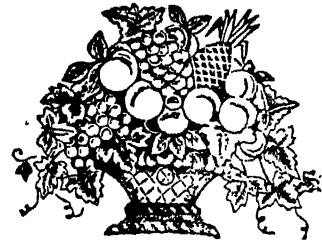
गुरुदेव के अंग के अन्त में "अविचल मंत्र" नाम से महाराज दादूजी ने जिस गुरु मंत्र का साधक को निर्देश किया है, उसका वहां अर्थ नहीं दिया था । क्योंकि वहां अर्थ देने से स्थान की अधिक आवश्यकता होती ।

अविचल मंत्र में एक एक पाद में पांच-२ उस परब्रह्म परमेश्वर की विशेषता बताने वाले विशेषण दिये गये हैं। प्रतिपाद में एक एक फलनिर्देशक वाक्य है। इस तरह इन चौबीस वाक्यों द्वारा महाराज दादूजी ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना कैसे करनी, यह साधक को बतलाया है । प्रत्येक वाक्य या विशेषण के आगे मंत्र शब्द का प्रयोग है । मंत्र शब्द का अर्थ है किसी गूढ रहस्य को जिसके द्वारा ज्ञान हो। इसी अर्थ में यहां मंत्र शब्द का प्रयोग समझना ।

## १. दादू अविचल मंत्र—

दा शब्द का अर्थ है ज्ञानादि देने वाले। दू शब्द का अर्थ है अज्ञानादि का छेदन करने वाले ।

सम्पूर्ण त्रिगुणात्मक ( सत्व, रज, तम ) समष्टि व्यष्टि जगत हैं वह सब चल है, गतिमान् है । स्थूल, सूक्ष्म, कारण त्रिविध शरीर भी चल है—परिवर्तन शील है । इससे विपरीत चेतन सत्ता है वह अविचल है । अविचल के आरम्भ में अकार शब्द का प्रयोग शुद्ध ब्रह्म का बताने वाला है । आत्मा का अविचल विशेषण परात्पर रूप का जताने वाला है । अज्ञानादि हर्त्ता ज्ञानादि के दाता ऐसे सद्गुरु दादूजी महाराज साधक को मंत्रत्वेन निगूढ़ार्थबोधक इस विशेषण वाक्य से निर्देश करते हैं कि हे साधक ! उस सर्वगुरु, सर्व विकारशून्य, निरन्तर प्रत्यग्, अभिन्न देवरूप चित् शक्ति को अविचल मानकर नित्य सत्य स्थिर एक रस समझ कर उसका ध्यान धर ।

## २. अमर मंत्र—

प्राण से पंचभूतात्मक पिंड का वियोग होना मृत्यु कहलाता है । दृश्यमान जितनी भी जड़ चेतन सृष्टि है वह काल कवलित होती दिखाई पड़ती है। जितने भी जड़ पदार्थ हैं वे सब नाशवान हैं । आत्मपदार्थ ही ऐसा है जिसका कभी विच्छेद नहीं होता ।

भावात्मक पदार्थों में ही उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि, परिवर्तन, ह्रास और विन
छः विकार रहते हैं। आत्मा इन विकारों से रहित है। विकारहीनता है वही अमर
ज्ञापक है। अतः साधक संसार के सब पदार्थों को विनाशी समझ अविनाशी आत्म
अमरभावना से अनवरत चिंतन करे।

## ३. अक्षय मंत्र—

अक्ष धातु व्याप्ति अर्थ में है। अक्ष का अभिप्राय है निरतिशय व्यापक। य
उपरति का बोधक है। अक्षय आत्मा का अर्थ है माया तथा माया के कार्य तथा
रहित। साधक इस अक्षय मंत्र से आत्मा को जीव ईश्वरादि अविद्या माया
चेतन का साक्षी समझ उसको सर्वव्यापी तथा सबसे अलग असंग सम
उसका चिंतन करें।

## ४. अभय मंत्र—

रिपु, राज्य, समाज, मृत्यु जन्मादिजन्य विविध भय हैं। किसी भी
भय न होना अभय कहलाता है। भय का हेतु है भिन्नता। अपने से भिन्न की
या किसी दूसरी वस्तु की सत्ता स्वीकार करने ही से नानात्मक भय का अनुबन्ध बन
द्वैत या भिन्नता भौतिक वस्तु में ही हो सकती है। कारण उनको उत्पन्न करने वाले भ
संयोग विविध रूप में होता है। हेतुवैचित्र्य के कारण जड़ में ही नानात्व है।
अनेकत्वभेद से रहित है। आत्मा एक है अतः आत्मा का अभेद होने से वह
अभय है। महाराज इस मंत्र द्वारा साधक को निर्देश करते हैं कि वह आत्मा को
समझ कर जन्म मरणादि सब भयों से उसको मुक्त मानकर अभय रूप
उसका चिन्तन करे।

## ५. राम मंत्र—

जिसके ध्यान में अनन्त मुनिजन लगे रहते हैं, जो आध्यात्मिक मय
संस्थापक है जो परात् पर है वही "राम" है। इसी राम का परम पुरुषार्थ की
के लिये साधक काल–कर्म रहित, निरतिशय सुखदायी मानकर ध्यान लगाये।

## ६. निज सार—

यहां निज शब्द का प्रयोग अतिशय अर्थ में है। आत्मा पदार्थ है वह
परि सार वस्तु है। भाव रूप संसार के सभी पदार्थ जन्म, स्थिति, वृद्ध्यादि षड्
गृहीत हैं अतः नाशवान् हैं। इसी से संसार को असार कहा जाता है। ष
हीन आत्मा है वही अविनाशी है। वही सर्वातिशय सारमेय है। अतः साधक

को शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, स्वयं प्रकाश, सर्वात्मा, परमानन्द रूप सर्वातिशय सार समझ उसी में अपना ध्यान लगाये।

### ७. सजीवन मंत्र—

कालानुबन्धी भौतिक संयोग का आत्मा से सम्बन्ध इसी का नाम जीवन है। आत्मा ही जीवन तथा जीवन का आधार रूप है। भोग्य तथा भोक्ता रूप में आत्मा ही से जीवन की स्थिति है। भोग्य, भोक्ता, प्रेरक, जीव, परमात्मा, ब्रह्म सब आत्मतत्व में ही है। अतः साधक आत्मा को भोक्ता, भोग्य तथा प्रेरक मानकर सजीवन रूप से उसका चिन्तन करे।

### ८. सवीर्य मंत्र—

वीर्य शब्द का लौकिक अर्थ है बल या शक्ति। भौतिक तत्वों में भी अपना-२ बल या शक्ति रहती है। पर भौतिक तत्व अस्थायी हैं तथा परिवर्तनशील भी, अतः उनके परिवर्तन के साथ-२ उनकी शक्ति में भी अन्तर पड़ता रहता है। आत्मिक तत्व में देशकाल जन्य कोई परिवर्तन नहीं होता अतः उसके बल में भी कमी वेशी नहीं होती। फिर भौतिक शक्ति से आध्यात्मिक शक्ति अधिक बलशाली है। अतः इस विशेषण से दादूजी महाराज साधक को ज्ञात करते हैं कि वह आत्मा को सवीर्य—अशेष शक्तिसम्पन्न, अविजित मानकर उसके ध्यान में दत्तचित्त हो।

### ९. सुन्दर मंत्र—

सुन्दर शब्द मनोहारी अर्थ में प्रयुक्त होता है। जो वस्तु मन को भावे, अच्छी लगे वह सुन्दर कही जाती है। भौतिक वस्तुएँ भी अपेक्षाकृत सुन्दर कही जाती हैं। बहुतसी वस्तुएँ वस्तुतः सुन्दर न होते हुये भी मन की आसक्ति के कारण सुन्दर प्रतीत होती हैं। भौतिक जगत् का सौन्दर्य उसके स्वयं के अस्थिर होने के कारण अस्थायी होता है। दृश्य संसार की सुन्दर मानी जाने वाली वस्तुएँ काल पाकर जीर्ण शीर्ण होने से सौन्दर्यविहीन हो जाती हैं। अतः दादूजी महाराज का इस विशेषण द्वारा साधक को संकेत मिलता है कि वह विनाशी सौन्दर्य वाली सांसारिक वस्तुओं में अपने को न उलझा जो नित्य सत्य रहने वाली है जो सब सुन्दरताओं का मूल है उस चिदात्मा को मनोज्ञ से मनोज्ञ मान उसके चिन्तन में अपने को स्थिर करे।

### १०. शिरोमणि मंत्र—

शिरोमणि में दो शब्द हैं शिर और मणि। शिर सम्पूर्ण अंगों में सबसे ऊपर रखा गया है। इसका अभिप्राय है शीर्षस्थानीय अर्थात् सर्वोपरि। मणि शब्द रत्न वाचक है

रत्न सब तेजोमय प्रकाशमय माने गये हैं । इस विशेषण से अभिप्राय यह है कि
अपने अभीष्ट आत्मा को सर्वोपरि—सबका शीर्षस्थानीय तथा परम प्रकाशमय म
उसी के ध्यान में निमग्न हो ।

## ११. निर्मल मंत्र—

मल शब्द पाप और दोष दोनों का वाचक है। वैसे मल शब्द का प्रयोग
पुरीष, स्वयं, कफ, स्वेदनादि तथा विकृत वात पित्त कफ के लिये भी प्रयुक्त होत
अभिधाजन्य कार्य भी मलिन शब्द से कहे जाते हैं। मलिनता से रहित का न
निर्मल। रागादि, पापादि तथा वातादि दोषों से मुक्त रहने का नाम निर्मल है।
की दृश्यमान तथा न दीखने वाली भौतिक वस्तुएँ सभी मलिन हैं। उनमें कि
किसी तरह की सदोषता रहती है। केवल चित्शक्ति ही ऐसी है जो सब मलों से
हैं। अतः इस मंत्र का अभिप्राय है साधक आत्मा को सब रागादि दोषों से मुक्त
पवित्र समझकर ही उसका चिन्तन करे।

## १२. निराकार मंत्र—

निर्मलता या पवित्रता आत्मा में ही क्यों? इस आशंका का निवारण इ
द्वारा किया गया है। साकार नाम उसी वस्तु का हो सकता है जो देश,
परिमाणादि से बाधित है। किसी न किसी तरह का आकार हो वही साका
आत्मा में किसी तरह के अवयव अंग उपांग नहीं हैं। आकार न होने से ही आत्मा
कहा जाता है। भौतिक द्रव्य हैं वे सब परिमाण या अणुसंयोग से बनते हैं।
द्रव्य परमाणुरहित है। अतः आत्मजिज्ञासु साधक को चाहिये कि वह आत्मा क
पुनीत असंग निराकार मानकर उसका ध्यान करे।

## १३. अलख मंत्र—

स्पृहा या इच्छा लख शब्द का क्षेत्र हैं, जिसको देखे समझे उसको भी
कहा जाता है। यह भी एक चाह ही है। अलख से अभिप्राय है—जिसको स
सकें देख न सकें। परिणामी वस्तु सब समझी व देखी जा सकती है। अपरिणामी
वस्तुतः अलख है अतः इस मंत्र से महाराज का साधक को संकेत है कि वह सूक्ष्म,
स्थूल के अधिष्ठान आत्मा को असंग इच्छारहित अलख मान उसी के ध्यान में लो ल

## १४. अकल मंत्र—

पाप पुण्य सुख दुःखादि भावों व भोगों को भोगने वाले का नाम है कल
मर्यादा रहित वेदविरुद्ध मार्ग का नाम भी कल है। कल या कल्मष से कलनध

पापादि फल भोगने वाले का संकेत है, इससे रहित का नाम है अकल। साधक आत्मा को कलन रहित पापादि फलभोगों से रहित निष्पाप मानकर उसका चिन्तन करे।

### १५. अगाध मंत्र—

गाध से अभिप्राय है अन्त या तल—अगाध का अभिप्राय है अतलस्पर्श। भौतिक वस्तुऐं सब सकारण हैं अतः तलस्पर्शी हैं। आत्मा अकारण है अतः अतलस्पर्शी है। इस मंत्र से साधक यह समझे कि आत्मा निराधार है, वह अवधिरहित है। अतः उसको अगाध मानकर ही चिन्तन किया जाय।

### १६. अपार मंत्र—

पार अन्तवाली वस्तु का नाम है। अन्त या अवधि देशज भी है कालज भी। जो वस्तु देश काल की परिधि से रहित है वह अपार है। भौतिक द्रव्य सब देश काल की अवधि से युक्त हैं अतः सान्त हैं। आत्मा उनकी परिधि से रहित है अतः अनन्त है। इससे महाराज ने आत्मा को निरवधि तथा सर्व देश व सर्व कालगत बताया। अतः साधक आत्मा को सर्वदेशी, सर्वकाल, व्यापी मान उसका अपार बुद्धि से ध्यान धरे।

### १७. अनंत मंत्र—

जिसका अवश्य अवसान है जिसमें समाप्ति की इयत्ता है वह वस्तु अन्त शब्द-वाच्य है। अन्त से रहित का नाम ही अनंत है। इस विशेषण द्वारा महाराज साधक का ध्यान आकर्षित करते हैं कि वह आत्मा को निरावरण, अपरिच्छिन्न, अनन्त मानकर उसका चिन्तन करता रहे।

### १८. राया-मंत्र—

लौकिक व्यवहार में 'राया' राय का अर्थ है अधिपति, स्वामी, मुखिया। वैसे राय राजार्थ का भी द्योतक है: इसका अभिप्राय है शक्तिमान्। जो सब कुछ लेने की तथा सब कुछ देने की शक्ति वाला है वही रायों का राया है। इस विशेषण से चित्शक्ति में त्रिभुवनपति राया की सत्ता व्यक्त की गई है। साधक उस आत्मा को सर्वशक्तिमान्, सर्वग्राही, सर्वदाता, मानकर उसका निरंतर चिन्तन करता रहे।

### १९. नूर मंत्र—

नूर शब्द का सामान्य प्रयोग स्वरूप में है। वर्ण वाली वस्तु ही रूपवान् है। वर्णविहीन वस्तु है वह अरूप है। आत्मा का रूप सत्ता या स्फूर्ति से निर्देश किया जाता है। अतः साधक आत्मा को उत्पादक, प्रेरक, रक्षक, संहारक सत्तामय जान,

सम्पूर्ण स्फूर्णाओं का मूल समझ नूर स्वरूप आत्मा के चिन्तन में लगे।

## २०. तेज मंत्र—

तेज का सामान्य अर्थ है तेजस्वीपन—दूसरे से दबना नहीं। जिस पर औ का दबाव या असर न पड़े उसी को लोक में तेजस्वी कहते हैं। महाराज दादूजी को इस मंत्र द्वारा आत्मा की अजेयता का निर्देश करते हैं। भौतिक संसार में ए का एक दूसरे से हारना देखा जाता है पर आत्मतत्व को कोई हराने वाला नहीं है। साधक आत्मा को किसी से न दबने वाला किसी से न जीता जाने वाला समझ चिन्तन में अपने को दृढ़ बनाये।

## २१. जोति मंत्र—

जोति शब्द का लाक्षणिक प्रयोग सारवस्तु में है। जिसके बिना सब वस्तु रहित हो जाँय उसी तात्विक पदार्थ को जोति कहते हैं। यहां जोति शब्द प्रकाश प्रयुक्त नहीं है क्यों कि आगे का मंत्र ही प्रकाश मंत्र है।

भौतिक पदार्थ भी शक्तिमय या सारमय होते हैं पर उनकी शक्ति काल क्षीण हो जाती है या उनकी शक्ति का भी आधार दूसरा होता है वह दू आत्मा या चित् शक्ति है। वही परमात्मा रूप से समष्टि (संसार), व्यष्टि (व्यक्ति) शरीर का आधार हैं। वह आत्मा ही हिरण्यगर्भ के रूप में समष्टि व्यष्टि शरीर का जनक है। मायादि प्रपंचरहित जीव, परमात्मा, ब्रह्मरूप में आत्मा ही आश्रय हैं। अतः उसी को सार रूप समझकर उसी का चिन्तन किया जाय

## २२. प्रकाश मंत्र—

प्रकाश शब्द यहां उजाले का द्योतक है। दिखाई पड़ने वाले सूर्य, तारकादि प्रकाशपिंड हैं वे सब एक ही प्रकाश के विभिन्न रूप हैं। इ जिसका प्रकाश है वही प्रकाशमान है। दादूजी महाराज कहते हैं कि हृदय उसी परम प्रकाशमय आत्मा को ज्योतिर्धन समझ सर्वदा उसी का चिंतन करना चा

## २३. परम मंत्र—

परम शब्द का प्रयोग उत्कृष्ट, प्रधान तथा प्रणव के लिये किया गय इस मंत्र द्वारा दादूजी महाराज साधक को ज्ञात करते हैं कि नाना पदार्थ देखते हैं या सुनते हैं उनमें चेतनतत्त्व ही सर्वोत्कृष्ट तत्व है। इन्द्रादि देवों ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि का आधार, सब स्वामियों का स्वामी वही है अ आत्मा को सबसे श्रेष्ठ, सबका मान्य समझकर उसका चिन्तन किया जाय।

## २४. पाया मंत्र—

ऊपर जिन तेईस विशेषणों से आत्मतत्व की विशेषता महाराज दादूजी ने साधक को समझाई अपने उस निर्देश का इस मंत्र द्वारा उपसंहार करते हुये दादूजी महाराज कहते हैं कि जिस साधक ने इस तरह आत्मतत्व का दृढ श्रद्धा से चिन्तन किया उसी ने अपने स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान पाया=प्राप्त किया । जिसने अपने स्वरूप को पा लिया वही मुक्त है वही परमानन्द का उपभोग करता है ।

गुरुदेव के अंग की इस "अविचल मंत्र" के साथ समाप्ति होती है । गुरु से पाये ज्ञान का जो फल होता है या होना है वह इस मंत्र द्वारा व्यक्त किया गया है । यह मंत्र आत्मोपदेश का सारभूत है । साधक उसका चिन्तन करे जिससे गुरु-उपदेश के फल की प्राप्ति हो ।

## गुरुमंत्र की पद्यमय टीका

**अविचल मंत्र—**

अविचल दादू रामजी, अविचल जाके वैन ।
अविचल संत उरधार के, अविचल पावे चैन ॥ १ ॥

**२. अमर मंत्र—**

अमर अनूपम आप है, अमर हरी का नाम ।
अमर हरी के सन्त हैं, अमर लहै सुख धाम ॥ २ ॥

**३. अक्षय मंत्र—**

अक्षय अखण्डित एक रस, सबमें रह्या समाय ।
आपै आप उदार हरि, सुमर सुमर सुख पाय ॥ ३ ॥

**४. अभय मंत्र—**

अभय एक रस अजित अति, सत् चित् आनंद गोय ।
अज अभिनाशी ब्रह्म जन, ध्याय अभय भय सोय ॥ ४ ।

**५. राम मंत्र—**

राम रमै रमतीत नित, ररंकार रट सोय ।
गुरू कृपा गम सुरति सूं, रामरूप तब होय ॥ ५ ॥

**६. निजसार मंत्र—**

निज चेतन तत्तसार है, ता विन सकल असार ।
कारज कारण रूप है, समझ रु ज्ञान विचार ॥ ६ ॥

**७. संजीवन मंत्र—**

संजीवन सत सारसुख, ता विन असत असार ।
दिढ नौका निज नांव गह, जन भव उतरे पार ॥ ७ ॥

**८. सवीर्ज मंत्र—**

सवीर्ज अमृत हरि, सचराचर में पूर ।
गुरु ज्ञान तैं गम भई, अज्ञजन भाषत दूर ॥ ८ ॥

**९. सुन्दर मंत्र—**

सुन्दर सिरजनहार है, निरामय निज नूर ।
गुरु ज्ञान तैं गम भई, अज्ञजन भाषत दूर ॥ ९ ॥

**१०. शिरोमणि मंत्र—**

सत्य शिरोमणि सबन में, व्याप रह्या सम भाइ।
साच शील संतोष गहे, सतगुरु ज्ञान लखाइ॥ १०॥

**११. निर्मल मंत्र—**

निर्मल अपनी आतमा, निर्मल गुरु का ज्ञान।
निर्मल हरि का सन्त है, निर्मल नांव बखान॥ ११॥

**१२. निराकार मंत्र—**

निराकारनिर्गुणमई, निरालंब निरधार।
निजानन्द निज बोधमय, सतगुरु ज्ञान बिचार॥ १२॥

**१३. अलष मंत्र—**

अलख निरंजन एक रस, सतगुरु दीन दयाल।
समरथ सिरजनहार जप, शरणागत प्रतिपाल॥ १३॥

**१४. अकल मंत्र—**

अकल अरूपी अमितगति, अविनासी अज एक।
जनजप तत्सत् ऊधरे, सतगुरु ज्ञान विवेक॥ १४

**१५. अगाध मंत्र—**

अगाध अगोजर एकरस, अतोल अमोल अमाप।
सिध साधक मुनि थक रहे, वेद अकें जप जा॥

**१६. अपार मंत्र—**

अपार पार नहिं जास को, सनकादिक रहे हार।
पारन पाव न शेष शिव, ब्रह्मा वेद बिचार॥

**१७. अनंत मंत्र—**

अनन्तरूप परमात्मा, अनन्त रूप गुरुदेव।
अनन्त सन्त हरि को भजें, है जु विरला भेव॥

**१८. राया मंत्र—**

राया सतगुरु रामजी, सकल भवन के ईश।
अखिल चराचर में वसे, ब्रह्मादिक के शीश॥

**२०. तेज मंत्र—**

तेज तत्त्व तिंहु लोक में, व्याप रह्या इकसार ।
समझें तें भवसिन्धु से, हरिजन उतरे पार ।। २० ।।

**२१. जोति मंत्र—**

परम जोति जगदीश की, सब में रही समाय ।
सकल जोति उस जोति तें, प्रकाशितसम भाय ।। २१ ।।

**२२. प्रकाश मन्त्र—**

सब घट ब्रह्म प्रकाश है, ब्रह्म दृष्टि कर देख ।
वेद कहें पुनि साधु सब, सतगुरु ज्ञान विवेक ।। २२ ।।

**२३. परम मन्त्र—**

परम गुरु परब्रह है, परम हरीजन सोइ ।
परम प्रभु का जाप है, भेद भाव नहिं कोइ ।। २३ ।।

**२४. पाया मन्त्र—**

पाया परम दयाल गुरु, पावा सतगुरु वैन ।
पाया यहि जिहिं उर धर्‍या, यह आतम की सैन ।।२४।।

—:※ गुरुमंत्र टीका सम्पूर्ण ※:—
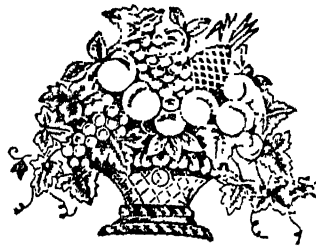
## श्री स्वामी दादूदयालजी महाराज की वाणी का

# ❋ शुद्धि-पत्र ❋

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १३ | ४ | विना | बिन |
| १५ | ६ | मनलै | मन लै |
| १७ | २५ | अभी | अमी |
| २५ | १८ | अभ्यासों | अध्यासों |
| २६ | १८ | रोजी | रोगी |
| ३१ | १२ | प्रावित्श | प्राविशत |
| ३२ | १६ | तीसरा | तीसरी |
| ३४ | २० | सपजैं ही | सहजैं ही |
| ३५ | २३ | द्वै | व्है |
| ४० | २० | तय | तप |
| ४१ | १६ | प्रेन | प्रेम |
| ४६ | १२ | लोग | लागे |
| ४६ | १५ | भुमिरथां | सुमिरथां |
| ४७ | २३ | वासक | वाचक |
| ४७ | २४ | हाकिज | हाफिज |
| ४८ | १६ | पहै | पढ़ै |
| ५० | १६ | ढरि | ढारि |
| ५४ | १८ | मायावहित | मायारहित |
| ५५ | ६ | परवहु | पुरवहु |
| ५६ | ६ | प्रतीम | प्रीतम |
| ५६ | १८ | जाति | जारि |
| ५६ | २० | रुण | करुणा |
| ६२ | १६ | मंत | भंत |
| ६३ | १ | आपणां | अपणां |
| ६३ | २५ | वाटी | वांटी |
| ६८ | १६ | प्रेमी भक्ति | प्रेमी की भक्ति |
| ६८ | १८ | प्रेम | प्रेय |
| ७२ | २० | सन्तोपी | सन्तोषी |
| ७५ | १६ | अच्छर | अक्षर |
| ७७ | ५ | दाइू | दादू |
| ७८ | १० | ददू | दादू |
| ८० | १७ | आपके | आयके |
| ८० | २१ | थे | था |
| ८२ | ८ | लप | लय |
| ८४ | ७ | निरन्त | निरन्तर |
| ८६ | १ | पांइयां | पाइया |
| ८६ | २ | आंप | आप |
| ८७ | १२ | वाणी | वाणों |
| ९० | २३ | जैनहुं | नैनहुं |
| ९५ | १ | सो चुगैं | मोती चुगैं |
| ९५ | ४ | मनमुख | सनमुख |
| १०३ | १६ | संकर | कंकर |
| १०३ | १६ | वांझि | वार |
| १११ | १७ | रहि | राहे |
| ११६ | १६ | नवसिख | नखसिख |
| १२२ | ४ | पतला | पातला |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १२२ | २० | एकभाव का | ब्रह्मभाव को | १७० | १६ | लवनृत्ति | लयवृत्ति |
| १२८ | २२ | गिभाना | निभाना | १७१ | २१ | सम्यक्तया | सम्यक्तया |
| १३३ | ६ | जड़ | जड़े | १७२ | २२ | षट्उऊर्मी | षट् ऊर्मी |
| १३४ | २१ | प्रसादा | प्रसादी | १८२ | १६ | पतिव्रत | पत्नीव्रत |
| १३६ | १८ | षट्सुण | षट्गुण | १८३ | १५ | कागणगारी | कामणगारी |
| १३८ | २२ | चटाइ | चढाइ | १९० | ६ | विन | वित |
| १४० | १६ | भागे | भीगे | १९० | १४ | वांछ | वांछे |
| १४० | २० | न्ध्या | वन्ध्या | २०१ | १६ | लोभ लाभ | लोभ मोह |
| १४३ | १ | सहिये | रहिये | २०२ | १६ | विगाना जाइ | दिवानां जाइ |
| १४५ | २३ | वाट | भाट | २०३ | १ | आपणै | अपणै |
| १४७ | ८ | पुगण | पुणग | २०६ | ३ | मड़हत | मड़हट |
| १५० | ११ | अंगीकर | अंगीकार | २१० | १७ | आघो | आछो |
| १५३ | २० | वकली | नकली | २१६ | १५ | वहिमूर्खवृत्ति | वहिमुखवृत्ति |
| १५४ | ५ | हिरद | हिरदै | २२२ | २३ | दोड़ा | दोड़ौ |
| १५४ | ११ | ठेढ | ठेठ | २२३ | ३ | आगसरे | अगसरे |
| १५४ | १६ | पाना | काना | २२५ | १५ | वंव्या | वंध्या |
| १५४ | २२ | फरणा | जरणा | २३६ | १८ | दोच | दोट |
| १५५ | २२ | द्वारार | द्वारा | २४२ | २३ | भोजन की | भोगजन्य |
| १५५ | २३ | परिचयजन्म | परिचयजन्य | २४३ | १५ | बिगाढ | बिगाड़ |
| १५६ | १७ | मुक्त | युक्त | २४३ | २२ | खोया | खाया |
| १५६ | १९ | साणक | साधक | २४६ | २२ | घिंतामणि | चिन्तामणि |
| १५६ | २२ | कलथैं | कालथैं | २५१ | ७ | कहिय | कहिये |
| १५८ | २१ | मईत्रिय | मुई त्रिय | २५२ | १८ | वटपरि | बटपारे |
| १६० | १२ | यत्तार्थ | यथार्थ | २५८ | ८ | जाऊं | लाऊं |
| १६० | १५ | सम्पक्तवा | सम्यक्तया | २६१ | ७ | लोगौ क्या | लोगों का क्या! |
| १६० | १६ | इसके | किसके | २६४ | १५ | रहता | रखता |
| १६० | १९ | अभिप्राव | अभिप्राय | २७४ | १५ | अन्ध | अन्धे |
| १६१ | १४ | मेरा | मेरी | २७४ | १८ | ऐसा | ऐसी |
| १६३ | १ | किते | केते | २८४ | १२ | सं | सुं |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २९३ | १९ | अतिक्रिया | अतिक्षपा. |
| ३०९ | २० | खेत | सन्त |
| ३१४ | ५ | निरधार | निराधार |
| ३१४ | २२ | दोनों | दोनों में |
| ३१४ | २२ | आप | आपै |
| ३३० | २० | अ ंनत | अनंत |
| ३३२ | १६ | कालझल | कालझाल |
| ३४२ | २० | उण | कण |
| ३४६ | ११ | कपडे | कापडे |
| ३४६ | २१ | साम्मदायिक | साम्प्रदायिक |
| ३४९ | १९ | नाथै | नाचै |
| ३५० | १६ | वस्त्र | ब्रम्ह |
| ३६० | १२ | स्रष्ट | स्रष्टा |
| ३६८ | १२ | ददू | दादू |
| ३६९ | १५ | सुख | सख |
| ३७० | ५ | दोदू | दादू |
| ३७१ | ८ | ज्यौ | ज्यौं |
| ३७१ | १० | वंदा का | वंदौंका |
| ३७२ | ९ | मत | मन |
| ३७२ | १० | काडै | काढै |
| ३७४ | १२ | डौर | ठौर |
| ३७६ | ३ | मरणामरणा | मरणा |
| ३७८ | २ | राग | राम |
| ३७९ | १८ | आत्मपरिच्य | आत्मपरिचय |
| ३८४ | १९ | मरण | मारण |
| ३८६ | १७ | करिज | कारिज |
| ३९० | ७ | पम | पल |
| ३९१ | ८ | कहतहूं | कतहूं |
| ३९३ | १६ | नौक | नौका |
| ३९३ | १६ | वेहंदा | विहंदा |
| ३९३ | २३ | वासनमय | वासनामय |
| ३९६ | १७ | छीज | छीजै |
| ३९७ | ५ | तिनदिन | दिनदिन |
| ४१२ | १९ | घुद्धि | बुद्धि |
| ४१३ | ५ | श्रवण | श्रवणा |
| ४१४ | ६ | सहिब | साहिब |
| ४३२ | ६ | वैस | वसै |
| ४४३ | १४ | हैत | हेतु |
| ४५४ | १८ | अनुराजी | अनुरागी |
| ४५५ | २० | वैड़ | वैठ |
| ४६८ | ५ | जतम-२ | जतन-२ |
| ४७२ | ४ | निन्यारे | नियारे |
| ४७२ | ११ | देसि | देखि |
| ४७३ | ४ | विरहतें | विहरतें |
| ४७८ | ६ | निर्मला | निर्मल |
| ४७९ | १ | सूरिख | मूरिख |
| ४८७ | १२ | उस | तुस |
| ४९५ | ७ | संघि | संधि |
| ४९५ | ११ | जगति | जुगति |
| ४९५ | १५ | जवत | जगत |
| ४९५ | २३ | वरा | वेटा |
| ५०० | २ | रख | रस |
| ५०१ | २० | स्धिर | स्थिर |
| ५०२ | १९ | कलिविपै | कलिविषै |
| ५०४ | १८ | लाहढा | लाहड़ा |
| ५०४ | १९ | जब | जन |
| ५०५ | २१ | सामिल | सादील |
| ५०५ | २४ | हकारा | हंकारा |
| ५१२ | १४ | अवगुग | अवगुण |
| ५२४ | १५ | वण | वैण |
| ५२४ | १६ | जाता | गाता |
| ५२४ | १८ | जेढला | जेटला |
| ५२७ | १ | मभाया | माया |
| ५३१ | ६ | सुक्रति | मुकति |
| ५३२ | २२ | आयूँ | आपूं |
| ५४० | ६ | सुंजन | अंजन |
| ५४० | १३ | सुवै | सुषै |
| ५४० | १४ | दादूहूतर | दूतर |
| ५४५ | १२ | निहल | निहचल |
| ५४७ | ११ | भवा | भया |
| ५४७ | १६ | फये | भये |
| ५४७ | २३ | नृत्य | तृप्त |